

* ओ३म *

वैदिक कोषः

दयानन्दमहाविद्यालयस्थानुसन्धानविभागस्य
पुस्तकाध्यक्षेण हंसराजेन संगृहीतः

भगवद्दत्त-कृतया

ब्राह्मण-ग्रन्थेतिहास-प्रकाशिकया भूमिकया सहितः ।

प्रथमो भागः

अत्र पञ्चदशमुद्रितब्राह्मणग्रन्थान्तर्गतवैदिकशब्दानामर्था निर्वचनानि
च, तत्तद्देवतानां विशिष्टकर्मार्दानि, यज्ञसम्बन्धानि विशे-
षवक्तव्यानि, विविधविधानामाचाराणाञ्च मूलभू-
तान्यार्षाणि वचांसि च संगृहीतानि ।

ऋषिदयानन्दसरस्वतीजन्मशताब्द्युपहारः ।

आर्य्यं सम्वत् १९६०८५३०२६

विक्रम सं० १९८२ ।

सन् १९२६ ई० ।

दयानन्दाब्दः १०१

प्रथम संस्करण

* ओ३म् *

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।

यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० ॥

❀ प्राक्कथन ❀

ग्रन्थारम्भ का इतिहास ।

कालेज में अध्ययन करते समय मैं ऋषि दयानन्द सरस्वती प्रणीत वेद-भाष्य का स्वाध्याय किया करता था । श्री स्वामी जी महाराज अपने वेद-व्याख्यान में स्थल स्थल पर ब्राह्मणग्रन्थों के प्रमाणों को उद्धृत करते हैं । इन्हीं प्रमाणों के बल पर उन्होंने वेद-मन्त्रों के अनेक सार-गर्भित अर्थ दर्शाए हैं । मेरे मन में अनेक वार यह कामना उठती थी कि अखिल ज्ञात ब्राह्मण-ग्रन्थों के ऐसे ही वाक्यों का यदि अकारादि-क्रम से संग्रह हो जाय, तो वेदान्यासियों को बड़ी सुगमता होगी । पुनः सन् १९१६ में मैं निरुक्त का पाठ किया करता था । निरुक्त में—

इति ह विज्ञायते । इति ब्राह्मणम् ।

कह कर कई स्थलों पर ब्राह्मणग्रन्थान्तर्गत वैदिक-शब्दों का निर्वचन भी दिया हुआ है । उस निर्वचन से वेदार्थ में बड़ी सहायता मिलती है । उस से यह बात हृदयंगम हुई कि ब्राह्मण-ग्रन्थों में आये हुए वैदिक-पदों के निर्वचन का भी अकारादि क्रम से संग्रह होना चाहिये ।

सन् १९१७ में 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' भाग प्रथम छापते समय मेरा ध्यान उनके एक पत्र* की ओर आकृष्ट हुआ । उस में लिखा है—

“ निघण्टु सूचीपत्र के सहित तुम्हारे पास भेज दिया है । और निरुक्त तथा ब्राह्मणों के प्रसिद्ध शब्दों की संक्षिप्त सूची† भी बनाकर भेजेंगे सो निघण्टु की सूची के अन्त में छपवाना । ”

* देखो—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन भाग प्रथम, पत्र (४४) ।

† मैंने इस ग्रन्थ का अन्वेषण किया । मुझे इसका पता न लगा । हाँ, मार्च सन् १९२१ में पण्डित रामगोपाल शास्त्री ने अजमेर समाजोत्सव से आकर मुझे सूचित किया कि उन्होंने श्रीस्वामी जी के काराजों के एक बण्डल में इस ग्रन्थ को खोज लिया है ।

सन् १९१८ में पं० हंसराज इस पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष बने । मैंने ब्राह्मण-ग्रन्थों में से पूर्वोक्त दोनों प्रकार के वाक्यों का संग्रह करने के सम्बन्ध में उन से बात की । वे मुझे ही कार्य भार लेने के लिये कहते थे । अन्त को हम दोनों एक निश्चय पर पहुँच गये । तदनुसार पं० हंसराज ने सन् १९१८ के अन्त में संग्रह का काम आरम्भ कर दिया । तब से वे यह काम करते ही आये हैं । उन के इस अविश्रान्त परिश्रम का फल अब वैदिक-विद्वानों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है । मैं भी समय २ पर उनके कार्य का निरीक्षण करता रहा हूँ । मुझे सदा ही अत्यन्त प्रसन्नता होती थी, जब मैं उनके संग्रह में प्रायः सब ही आवश्यक शब्दों को आया हुआ पाता था ।

पर इतने बड़े काम में त्रुटियों का होना बहुत साधारण बात है । हमें स्वयं इसकी अनेक त्रुटियों का ज्ञान है । पर धनाभाव में हम इससे अधिक अच्छा काम नहीं कर सकते थे ।

ग्रन्थनाम ।

हम ने इस संग्रह का नाम वैदिककोष रखा है । सम्भव है अनेक विद्वान् प्रश्न करें कि यह वेदान्तगत प्रत्येक शब्द का कोष तो है नहीं, पुनः इसका ऐसा नाम क्यों ? हमारा विचार है कि जैसे यास्क्रीय-निघण्टु वैदिककोष कहा जाता है, वैसे यह बृहत्संग्रह भी वैदिककोष कहला सकता है । विशेषता इस में यह है कि इस में निर्वचनादि का संग्रह होनेसे यह निरुक्तादि का भी मूल कहा जा सकता है ।

कोषार्थ-प्रयुक्त ब्राह्मण-ग्रन्थों के नाम ।

अब तक जितने ब्राह्मण ग्रन्थ मुद्रित हो चुके हैं, उनसे ही कोष के इस प्रथम-भाग की रचना हुई है । उनके नामादि और संस्करण जो समय २ पर वर्ते गये निम्नलिखित हैं ।

ऋग्वेदीय ब्राह्मण ।

(१) क-ऐतरेय ब्राह्मणम्—Martin Haug द्वारा सम्पादित । मुम्बई गवर्नमेण्ट द्वारा प्रकाशित । सन् १८६३ । Vol. I.

ख-ऐतरेय ब्राह्मणम्—सायणभाष्य समेतम् । सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा सम्पादित । Asiatic Society of Bengal, Calcutta. सन् १९५२-१९६२. Vol. I-IV.

ग-ऐतरेय ब्राह्मणम्—Das Aitareya Brahmana सम्पादक Theodor Aufrecht. Bonn. सन् १८७९ ।

- घ—ऐतरेय ब्राह्मणम्—सायणभाष्य समेतम् । सम्पादक—काशीनाथ शास्त्री
आनन्दाश्रम पूना । सन् १८९६ । Vol. I. II.
- (२) क—कौषीतकि ब्राह्मणम्—सम्पादक—B. Lindner. Jena. सन् १८८७
- ख—शाङ्खायन ब्राह्मणम्—सम्पादक—गुलाबराय बजेशेकर आनन्दाश्रम
पूना । सन् १९११ ।

यजुर्वेदीय ब्राह्मण ।

- (३) क—शतपथ ब्राह्मणम्—भाष्यन्दिनीयम् । सम्पादक A. Weber.
Reprint लाइपज़िग । सन् १९२४ ।
- ख—शतपथ ब्राह्मणम्—भाष्यन्दिनीयम् । अजमेर संवत् १९५९ ।
- ग—शतपथ ब्राह्मणम्—सायणभाष्य सहितम् काण्ड १-३, ५-७, ९ सम्पा-
दक सत्यव्रत सामश्रमी । सन् १९०३-१९११ । Asiatic Society of
Bengal, Calcutta. Vols. I-VII.
- (४) क—तैत्तिरीय ब्राह्मणम्—सायणभाष्य सहितम् सम्पादक राजेन्द्रलाल मित्र ।
Asiatic Society of Bengal, Calcutta. सन् १८५९-१८९० ।
Vols. I-III.
- ख—तैत्तिरीय ब्राह्मणम्—सायणभाष्य सहितम् । सम्पादक—नारायण शास्त्री ।
भाग १-३ । आनन्दाश्रम पूना । सन् १८९९ ।
- ग—तैत्तिरीय ब्राह्मणम्—भट्टभास्कर भाष्ययुतम् । सम्पादक—महादेव
शास्त्री तथा श्रीनिवासाचार्य । सन् १९०८-१९२१ । मैसूर ।

सामवेदीय ब्राह्मण ।

- (५) ताण्ड्यमहाब्राह्मणम्—सायणभाष्य सहितम् । सम्पादक—आनन्दचन्द्र
वेदान्तवागीश Asiatic Society of Bengal, Calcutta. सन् १८७० ।
- (६) (७) क—दैवतब्राह्मणम्—तथा षड्विंशब्राह्मणम्—सायणभाष्य सहितम्
सम्पादक जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता । सन् १८८१ ।
- ख—षड्विंशब्राह्मणम्—विष्णुपनभाष्य सहितम् । सम्पादक—H. F.
Eelsingh. लाईडन । सन् १९०८ ।
- ग—षड्विंशब्राह्मणम्—सायणभाष्य सहितम् । प्रथमः प्रपाठकः ।
सम्पादक Kurt Klemm. Gutersloh. सन् १८९४ ।

- (८) क-मन्त्रब्राह्मणम्—सम्पादक सत्यव्रत-सामश्रमी । संवत् १९४७ ।
कलकत्ता ।
- ख-मन्त्रब्राह्मणम्—प्रथमः प्रपाठकः । सम्पादक Heinrich Stonner.
Halle. सन् १९०१ ।
- (९) संहितोपनिषद् ब्राह्मणम्—भाष्यसहितम् । सम्पादक A. C. Burnell.
मंगलोर । सन् १८७७ ।
- (१०) आर्षेय ब्राह्मणम्—सम्पादक A. C. Burnell. मंगलोर । सन् १८७६ ।
- (११) वंशब्राह्मणम्—सायणभाष्य सहितम् । सम्पादक-सत्यव्रत सामश्रमी ।
कलकत्ता । संवत् १९४९ ।
- (१२) क-सामविधानब्राह्मणम्—सायणभाष्य सहितम् । सम्पादक-सत्यव्रत
सामश्रमी । कलकत्ता । संवत् १९५१ ।
- ख-सामविधानब्राह्मणम्—सायणभाष्य सहितम् । सम्पादक A. C.
Burnell. लण्डन । सन् १८७३ ।
- (१३) जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मणम्—सम्पादक—Hanns Oertel. देव-
नागरी संस्करण । लाहौर । सन् १९२१ ।
- (१४) जैमिनि आर्षेय ब्राह्मणम्—सम्पादक—A. C. Burnell. मंगलोर ।
सन् १८७८ ।

अथर्ववेदीय ब्राह्मण ।

- (१५) क-गोपथ ब्राह्मणम्—सम्पादक—हरचन्द्र विद्याभूषण । कलकत्ता ।
सन् १८७० ।
- ख-गोपथ ब्राह्मणम्—सम्पादक—Dr. Dieuke Gaastra. लाईडन
सन् १९१९ ।

कोष में संग्रह किये हुए वाक्यों का विषय ।

जैसा पूर्व कहा जा चुका है, इस कोष में ब्राह्मणान्तर्गत वैदिक-पदों का निर्वचन तथा अर्थ तो मुख्यतया एकत्र किया ही गया है, पर इसके अतिरिक्त वैदिक देवताओं के गुण, कर्म, स्वरूपादि के सम्बन्धी वाक्य; अनेक उपयोगी वैज्ञानिक वाक्य; तथा यज्ञसम्बन्धी विशेष बातें, वा अन्वेषणोपयोगी अनेक प्रकार के वाक्य भी संग्रह किये गये हैं ।

कोषान्तर्गत वाक्य क्रम ।

वाक्यों के संग्रह होजाने पर उनको क्रम देने का काम बड़ा कठिन था । बहुत विचारानन्तर यही निश्चित किया गया कि यदि किसी शब्द का निर्वचन ब्राह्मण ग्रन्थों में विद्यमान है, तो वह आरम्भ में धरना चाहिये । अन्ततः ऐसा किया भी गया है । तत्पश्चात् अनेक सदृश वा समानार्थ वाक्य एकत्र रखे गये हैं । यह शैली ब्राह्मण-ग्रन्थों के भावी सम्पादकों के लिये बड़ी उपयोगी होगी, एक ही दृष्टि से उन्हें तुल्य-वाक्यों वा भ्रष्टपाठों का ज्ञान होजायगा ।

माडर्न रीव्यू अक्टूबर सन् १९२४ में हमारे कोष की समालोचना करते हुए पं० विधुशेखर भट्टाचार्य ने लिखा था कि 'ये वाक्य भी अकारादि क्रम से देने चाहिये थे ।' यह प्रस्ताव सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है । हमारा पूर्व-प्रदर्शित अभिप्राय इससे पूर्णतया सिद्ध नहीं होता था । हमारे सामने यह विचार आया था, परन्तु अति-उपयोगी न होने से इसको कार्य में नहीं लाया गया ।

कोष के सम्बन्ध में इतना लिखने के उपरान्त ब्राह्मणों के इतिहास सम्बन्ध में भी ब्राह्मणों की भूमिका रूप में कुछ लिखना आवश्यक है ।

अनुसन्धान विभाग
दयानन्द ऍंगलों वैदिक कालिज, लाहौर ।
२० अगस्त १९२५

भगवद्दत्त

भूमिका ।

ब्राह्मण-ग्रन्थों का इतिहास ।

(१) सङ्कलन काल

ब्राह्मण ग्रन्थों की मौलिक सामग्री प्राचीनतम कालों से चली आई है। शतपथ १०।६।५।९॥१४।७।३।२८ ॥ वा बृहदारण्यक ४।६।३॥६।५।४॥ के वंश ब्राह्मणों के अनुसार ब्राह्मण-वाक्यों का आदि-प्रवचनकर्त्ता ब्रह्मा=स्वयम्भु ब्रह्म हुआ है। प्रजापति*, मन्वादि† महर्षियों ने भी अनेक ब्राह्मण-वाक्यों का प्रवचन किया था। ऐसे ही अन्य ऋषि लोग भी समय २ पर इन ब्राह्मणों के अनेक पाठों का प्रवचन करते आये हैं। इन सब का संकलन महाभारत-काल‡ अर्थात् द्वापर के अन्त या कलि के आरम्भ में भगवान् कृष्ण-द्वैपायन वेद-व्यास वा उनके शिष्य प्रशिष्यों ने किया था। इसमें प्रमाण भी है। शतपथादि ब्राह्मणों में अनेक स्थलों पर उन ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पाये जाते हैं, जो महाभारत-काल से कुछ ही पहिले के थे। देखो—

तेन हैतेन भरतो दौःषन्तिरीजे..... ।

तदेतद् गाथयाभिगीतम्—

अष्टासप्ततिं भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु ।

गङ्गायां वृत्रघ्ने स्वभात् पञ्चपञ्चाशत्* हयान् ॥इति॥११॥

शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे*** ॥ १३ ॥

* आधानं ब्राह्मणं प्रजापतेः । इष्टिब्राह्मणानि प्रजापतेः ॥

चारायणीय मन्त्रार्थाध्यायः ९, ११ ॥

† आपो वा इदं निरमृजन् । स मनुरेवोदशिष्यत ।

स एतामिष्टिमपश्यत्तामाहरत्तयायजत ॥

काठक सं० ११ । २ ॥ तथा देखो तै० सं० ३ । १ । ९ । ३० ॥

‡ महाभारत काल से हमारा अभिप्राय महाभारत-युद्ध के लगभग १०० वर्ष पूर्व और १०० वर्ष उत्तर का है। महाभारत युद्ध विक्रम संवत् से ३००० वर्ष से कुछ पूर्व हुआ था।

महदद्य भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव बाहुभ्यां नोदापुः पञ्चमानवाः ॥ इति ॥१४॥

शतपथ १३।५।४॥

तथा च—

एतेन ह वा ऐंद्रेण महाभिषेकेण
दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच ।
…………तदप्येते श्लोका अभिगीताः ।
हिरण्येन परीवृतान् कृष्णान् शुक्लदतो मृगान् ।
मष्णारे भरतो ऽददाच्छतं बद्धानि सप्त च ॥
भरतस्यैष दौष्यन्तेरग्निः साचिगुणे चितः ।
यस्मिन्सहस्रं ब्राह्मणा बद्रशो गावि भेजिरे ॥
अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु ।
गङ्गायां वृत्रघ्ने स्वभात् पञ्चपञ्चाशतं हयान् ॥
त्रयस्त्रिंशच्छतं राजा ऽध्वान् बध्वाय मैध्यान् ।
दौष्यन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायावत्तरः ॥
महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पञ्च मानवाः ॥ इति

ऐतरेय ब्रा० ८।२३॥

इन गाथाओं=यज्ञगाथाओं=श्लोकों* में वर्तमान दौष्यन्ति भरत और शकुन्तला नाम स्पष्ट महाभारत-काल से कुछ ही पहले होने वाले व्यक्तियों के हैं । अतः शतपथादि ब्राह्मण महाभारत-काल में ही संकलित हुए, ऐसा मानना युक्तियुक्त है ।

प्रश्न—(क) ये सब नाम यौगिक होने से अपने धात्वर्थ मात्र का निर्देश करते हैं । (ख) दुःप्यन्त, भरत, शकुन्तला आदि नाम व्यक्ति-वाची नहीं है, प्रत्युत जातिवाची

* एतरेय ८।२३ जिसे श्लोक कहता है शतपथ १३।५।४ । १४ ॥ उसे गाथा कहता है, और जैमिनीय १।२५८ ॥ जिसे श्लोक कहता है, ऐतरेय ३।४३ ॥ उसे ही यज्ञगाथा कहता है। अतएव श्लोक, गाथा और यज्ञगाथा, यह तीनों शब्द पर्याय ही हैं ।

हैं। जैसे गौ, अश्व, पुरुष, हरित आदि नाम जातिवाची हैं, ऐसे ही अनेक कल्पों में होने वाले दुःध्यन्त, भरत आदिकों के लिये, यह भी जातिवाची नाम हैं। अतएव ऐसे नामों के ब्राह्मणों में आने से ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत-कालीन नहीं कहे जा सकते।

उत्तर—(क) जो यज्ञगाथायें हमने प्रमाणार्थ उद्धृत की हैं, वे सब पौरुषेय हैं। उनके पौरुषेय होने में जो प्रमाण हैं, वे आगे “क्या ब्राह्मण वेद हैं” इस प्रकरण में दिये जायेंगे। अतः पौरुषेय वाक्यों को “श्रुतिसामान्यमात्र” मान कर अर्थ करना कल्पनामात्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं। मन्त्र-संहिताओं में जो नियम चरितार्थ होते हैं वे मनुष्य रचित ग्रन्थों में नहीं हो सकते। (ख) दुःध्यन्त, भरत आदि शब्दों को हम जातिवाची भी नहीं मान सकते। क्योंकि वहाँ भी वही पौरुषेय की आपत्ति आयेगी। जिन नवीन मीमांसकों ने “वेदों” में विश्वामित्र आदि शब्दों को जातिवाची माना है, उन्होंने भी अपौरुषेय वेदों में ही माना है। और हम तो उनकी इस कल्पना को भी निराधार ही मानते हैं।

प्रश्न—अनेक लोग निम्नलिखित गाथास्थ नामों को भी महाभारत-कालीन ही मानते हैं, क्या यह सत्य है ?

एतेन हेन्द्रोतो दैवापः शौनकः जनमेजयं पारिक्षतं
याजयां चकार ॥ १ ॥

तदेतद्गाथयाभिगीतम्—

आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम् ।

अवघ्नादश्वं सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः ॥ इति ॥ २ ॥

शतपथ १३।५।४॥

तथा च—

एतेन ह वा ऐंद्रेण महाभिषेकेण तुरः कावषेयो* जनमे-
जयं पारिक्षितमभिषिषेच । तदेषाभि यज्ञगाथा गीयते—

आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम् ।

अश्वं बबन्ध सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः ॥ इति

ऐतरेय ८।२१॥

* इसी तुरः कावषेय का उल्लेख शतपथ ९।४।३।१५॥ में है।

उत्तर—यद्यपि महाभारत-काल में भी पाण्डवों की सन्तति में “पारिक्षित जनमेजय” था, तथापि यह व्यक्ति उससे पूर्वकालीन प्रतीत होता है । देखो महा-भारत*, शान्तिपर्व अध्याय १४९ में कहा है—

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्यामि पुराणमृषिसंस्तुतम् ।

इन्द्रोतः शौनको विप्रो यदाह जनमेजयम् ॥ २ ॥

आसीद्राजा महावीर्यः पारिक्षिज्जनमेजयः ।

तथा अध्याय १५१—

एवमुक्त्वा तु राजानमिन्द्रोतो जनमेजयम् ।

याजयामास विधिवत् वाजिमेधेन शौनकः ॥ ३८ ॥

यहां भीष्म महाराज युधिष्ठिर को कह रहे हैं कि—

“महावीर्यवान् राजा पारिक्षित जनमेजय हुआ था ।”

अतः ब्राह्मणान्तर्गत गाथास्थ ‘पारिक्षित जनमेजय’† महाभारत-काल से कुछ पहले ही चुका था ।

प्रश्न—अथर्ववेद २० । १२७ । ७-१० ॥ में महाराज परिक्षित का वर्णन है । उसे कौरव्य भी कहा है । पं० भगवान दास पाठक भी अपने ग्रन्थ Hindu-Aryan Astronomy and Antiquity of Aryan Race (सन् १९२०) पृ० ४६ पर अथर्ववेद के महाभारतोत्तर-कालीन होने में यह एक युक्ति देते हैं । तो क्या वस्तुतः यह बात ठीक है ?

उत्तर—अथर्ववेद के जिस सूक्त में परिक्षित शब्द आया है वह कुन्ताप सूक्तों में से पहला है । कुन्ताप सूक्त अथर्व संहितान्तर्गत नहीं है । इन सूक्तों का पदपाठ भी नहीं है । अनुक्रमणिका में इन्हें खिल कहा है । इन सूक्तों में परिक्षित शब्द के आजाने से सारी संहिता महाभारतोत्तर-कालीन नहीं कही जा सकती । और वस्तुतः

*महाभारत के सब प्रमाण कुम्भघोष के संस्करण से दिये गये हैं । यद्यपि महाभारत के सब संस्करण प्रक्षेपों से भरे हुए हैं, तथापि हमने अपने दिए हुए प्रमाणों की तुलना दूसरे संस्करणों से करके प्रमाण का कुछ २ निश्चित रूप ही उपस्थित किया है ।

†गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग २ । ५ ॥ में जिस जनमेजय पारिक्षित का वर्णन आया है, वह भी यही व्यक्ति प्रतीत होता है ।

इन मन्त्रों में भी परिक्षित् आदि पदों का अर्थ संवत्सर तथा अग्नि ही है । देखो ऐ० ब्रा० ६ । ३२ ॥ और गो० उ० ६ । १२ ॥ यहां किसी राजा आदि का वर्णन नहीं है । विस्तरभय से मन्त्रार्थ नहीं किये गये ।

ब्राह्मणग्रन्थों के महाभारत-कालीन* होने में और भी प्रमाण देखो ।

(क) महाभारत आदिपर्व अध्याय ६४ में लिखा है—

ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च तथानुग्रहकाङ्क्षया ।

विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद्रचास इति स्मृतः ॥१३०॥

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ।

सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुक्रं चैव स्वमात्मजम् ॥ १३१ ॥

प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशंपायनमेव च ।

संहितासैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥ १३२ ॥

अर्थात् वेदव्यास के सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल चार शिष्य थे । इन्हीं चारों को उन्होंने ने मुख्यतः से वेदादि पढ़ाये । वैशंपायन को ही चरक कहते हैं । काशिकावृत्ति ४ । ३ । १०४ ॥ में लिखा है—

वैशंपायनान्तेवासिनो नव ।

चरक इति वैशंपायनस्याख्या ।

तत् संबन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते ।

*महाशय L. A. Waddell अपने पुस्तक Indo-Sumerian Seals Deciphered (सन् १९२५) पृ० ३ पर महाभारत-युद्ध का काल बताते हुए सब पाश्चात्य लेखकों को मात कर गये हैं । वे लिखते हैं—

..... at the time of the Mahabharata War about 650 B. C., was the Bharat Khattiyo (क्षत्रिय) King Dhritarashtra,

यह लिखते समय वे उस भारतीय ऐतिह्य को भूल गये हैं, जिस पर अपने पुस्तक के अन्य स्थलों में वे बड़ी श्रद्धा दिखाते हैं । क्या उन्हें इतना भी स्मरण नहीं रहा कि धृतराष्ट्र तो गौतम बुद्ध के काल से सैकड़ों ही नहीं, सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ था । समस्त भारतीय राज-वंशावलियां इस बात का अकाट्य प्रमाण हैं ।

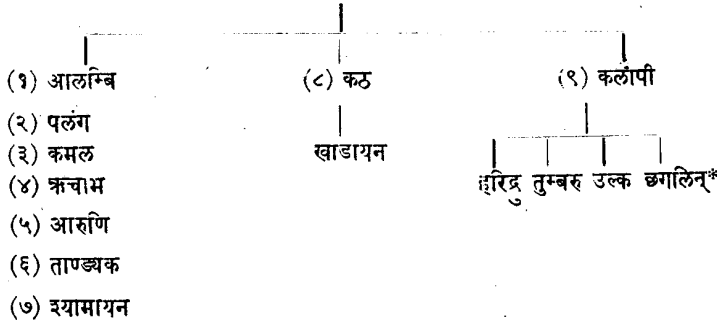
पुनः महाभाष्य ४।३।१०४ ॥ पर पतञ्जलि मुनि लिखता है—

वैशंपायनान्तेवासी कठः । कठान्तेवासी खाडायनः ।

वैशंपायनान्तेवासी कलापी ।

यह शिष्य-परम्परा निम्नलिखित प्रकार से सुस्पष्ट होजायगी ।

वैशंपायन(=चरक)



इन में से १-३ प्राच्य; ४-६ उदीच्य और ७-९ माध्यम हैं । देखो महाभाष्य ४।२।१३८ ॥ और काशिकावृत्ति ४।३।१०४ ॥ † पूर्वोक्त नामों में से—

(१) हारिद्रविणः ‡ ।

(२) तौम्बुरविणः ।

(३) आरुणिनः ।

ये तीन महाभाष्य ४।२।१०४ ॥ में ब्राह्मण-ग्रन्थ प्रवचनकर्ता कहे गये हैं । अतः यह निर्विवाद है कि साम्प्रतिक सब ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत-काल में ही संगृहीत हुए ।

*पं० श्रीपाद कृष्ण बेल्वल्कर ने जो Four Unpublished Upanisadic Texts (सन् १९२५) में अगलेयोपनिषद् छापा है । वह इसी ऋषि का प्रवचन प्रतीत होता है । इस उपनिषद् के आर्ष होने में कोई सन्देह नहीं । पाणिनि सूत्र “अगलिनो द्विनुक्” ४।३।१०९ ॥ में इसी ऋषि के प्रोक्त-ब्राह्मण का वर्णन है ।

† वायुपुराण पू० ६०।७-९ ॥ में इस से स्वल्पभेद है ।

‡ यही हारिद्रविक है जिनकी संहिता वा ब्राह्मण का प्रमाण निरुक्त १०।५ ॥ में ऐसे दिया है—“यदरोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्” इति हारिद्रविकम् ॥

प्रश्न—सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल किसी पहले युग वाले व्यास के शिष्य थे। वे पाराशर्य व्यास के शिष्य न थे, अतः यही ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत से बहुत पहले काल के हैं।

उत्तर—ऐसी निराधार कल्पना मत करो। यह आर्येतिहास के विरुद्ध है। देखो महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ३३५ में कहा है—

विविक्ते पर्वततटे पाराशर्यो महातपाः।

वेदानध्यापयामास व्यासः शिष्यान् महातपाः ॥ २६ ॥

सुमन्तुं च महाभागं वैशंपायनमेव च।

जैमिनिं च महाप्राज्ञं पैलं चापि तपस्विनम् ॥ २७ ॥

यहां स्पष्ट ही कहा है कि ये सुमन्त्वाद पाराशर्य व्यास के शिष्य थे। और क्योंकि ये सब ब्राह्मण-ग्रन्थों के प्रवचनकर्त्ता थे, अतः ब्राह्मण-ग्रन्थ द्वापरान्त में ही एकत्र किये गये थे।

(ख) याज्ञवल्क्य भां महाभारत-कालीन ही है। महाभारत समापन, अध्याय ४ में लिखा है—

बको दाल्भ्यः स्थूलशिराः कृष्णद्वैपायनः शुक्रः।

सुमन्तुजैमिनिः पैलो व्यासशिष्यास्तथा वयम् ॥ १७ ॥

तित्तिरिर्याज्ञवल्क्यश्च ससुतो रोमहर्षणः।

अर्थात् ये सब महाशय ऋषि महाराज युधिष्ठिर की समा का सुशोभित कर रहे थे।

शतपथ ब्रा० याज्ञवल्क्य-प्रोक्त है। उसके विषय में काशिकावृत्ति ४।३।१०५॥ पर लिखा है—

ब्राह्मणेषु तावत्-भाल्लविनः। शाखायनिनः। ऐतरेयिणः।

••• पुराणप्रोक्तेष्विति किम्। याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि।

•••••। याज्ञवल्क्यादयो ऽचिरकाला इत्याख्यानेषु वार्ता।

जयादिल का यह लेख महाभाष्य से विरुद्ध है। हम अपने “ऋग्वेद पर व्याख्यान” पृ० ५८ पर यह बता चुके हैं। जयादिल के सन्देह का कारण कोई प्राचीन “आख्यान” है। परन्तु उससे जयादिल का अभिप्राय सिद्ध नहीं होता। ब्राह्मण ग्रन्थों के अवान्तर भागों को भी ब्राह्मण कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनेक

अवान्तर ब्राह्मण अत्यन्त प्राचीन हैं। वे ब्राह्मण प्रजापति आदि ऋषियों ने कहे थे। उनकी अपेक्षा याज्ञवल्क्य प्रोक्त ब्राह्मण नवीन हैं। आख्यानान्तर्गत लेख का अभिप्राय समग्र शतपथ ब्राह्मण से नहीं, प्रत्युत उसके अवान्तर ब्राह्मणों से है। शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन तो तर्मा हुआ था जब कि भाङ्गवि, शाङ्खायन और ऐतरेय आदि ब्राह्मणों का प्रवचन हुआ था। इन में से ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता महिदास सुमन्तु आदि से कुछ उत्तरकालीन हैं। देखो आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।४।४॥ यहाँ ऐतरेय आदि सुमन्तु आदि से उत्तर गण वाले होने से उत्तर कालीन हैं। भगवान् याज्ञवल्क्य इन्हीं का सहकारी हैं। अतः याज्ञवल्क्य और तत्प्रीक शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन ही है।

प्रश्न—इस पक्ष को स्वीकार करने में एक भारी आपत्ति है। उसकी उपेक्षा भी नहीं हो सकती। तदनुसार शतपथ ब्राह्मण महाभारत-काल का तो क्या, उस से लाखों वर्ष पुराना अर्थात् अत्यन्त प्राचीन है। महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३१५ में कहा है—

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।

याज्ञवल्क्यस्य संवादं जनकस्य च भारत ॥ ३ ॥

याज्ञवल्क्यमृषिश्रेष्ठं दैवरातिर्महायशः ।

पप्रच्छ जनको राजा प्रश्नं प्रश्नविदांवरः ॥ ४ ॥

तथा अध्याय ३२३—

याज्ञवल्क्य उवाच—

यथार्षेणेह विधिना चरताऽवमतेन ह ।

मयाऽऽदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप ॥ २ ॥

.....

सूर्यस्य चानुभावेन प्रवृत्तोऽहं नराधिप ॥ २२ ॥

कर्तुं शतपथं चेदमपूर्वं च कृतं मया ।

यथाभिलषितं मार्गं तथा तच्चोपपादितम् ॥ २३ ॥

अर्थात् शतपथ ब्राह्मण के प्रवचनकर्ता भगवान् याज्ञवल्क्य का संवाद दैवराति जनक से हुआ था। वाल्मीकि-रामायण बालकाण्ड, सर्ग ७१* में लिखा है—

*सीरामपुर संस्करण, सन् १८०६, सर्ग ५८ ॥

सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः ।

देवरातस्य राजर्षेर्वृहद्रथ इति स्मृतः ॥ ६ ॥

अर्थात् देवराति बृहद्रथ जनक था। यह जनक सीता के पिता महाराज सीरम्बज जनक से भी बहुत प्राचीन हुआ है। इसी के साथ शतपथ के प्रवचन-कर्ता याज्ञवल्क्य का संवाद हुआ, अतः शतपथ ब्राह्मण अति प्राचीन-काल का ग्रन्थ है।

उत्तर—ऐसा भ्रम मत करो। देवराति जनक अनेक हो सकते हैं। महा-भारत-काल में भी तो एक प्रसिद्ध जनक था। उसी से वैयासकि शुक का संवाद हुआ। देवराति जनक वही या उस से कुछ ही पूर्वकालीन होसकता है, क्योंकि महाभारत में इसी प्रकरण की समाप्ति पर भीष्म जी कहते हैं कि याज्ञवल्क्य और देवराति जनक के संवाद का तथ्य उन्होंने स्वयं देवराति जनक से प्राप्त किया था।

भीष्म उवाच—

एतन्मयाऽऽप्तं जनकात् पुरस्तात्

तेनापि चाप्तं नृप याज्ञवल्क्यात् ।

ज्ञातं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा

ज्ञानेन दुर्ग तरते न यज्ञैः ॥ १०९ ॥

शान्तिपर्व, अ० ३२२ ॥

शान्तिपर्व के उपदेश के समय भीष्म जी का आयु २०० वर्ष से कुछ कम ही था। इस गणनानुसार देवराति जनक महाभारत-युद्ध से १५० वर्ष के अन्दर २ ही होसकता है। अतएव शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत-काल में ही 'प्रोक्त' हुआ था, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

(ग) शतपथ ब्राह्मण और उसका प्रवचन-कर्ता याज्ञवल्क्य महाभारत-कालीन ही हैं, और किसी पहले युग के नहीं, इस में शतपथान्तर्गत एक और भी साक्ष्य है। देखो—

अथ पृषदाज्यं तदु ह चरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्ने ऽभि-
धारयन्ति प्राणः पृषदाज्यमिति वदन्तस्तदु ह याज्ञवल्क्यं चरका-
ध्वर्युरनुव्याजहार ॥

शतपथ ३।८।२।२४ ॥

ता ऽऽ ह चरकाः । नानैव मन्त्राभ्यां जुह्वति प्राणोदानौ

वा ऽस्यैतौ नानावीर्यौ प्राणोदानौ कुर्म इति वदन्तस्तदु तथा न
कुर्यात् ॥

शतपथ ४ । १ । २ । १९ ॥

यदि तं चरकेभ्यो वा यतो वानुब्रवीत ॥

शतपथ ४ । २ । ४ । १ ॥

तदु ह चरकाध्वर्यवो विगृह्णन्ति ॥

शतपथ ४ । २ । ३ । १५ ॥

प्राजापत्यं चरका आलभन्ते ॥

शतपथ ६ । २ । २ । १ ॥

इति ह स्माह माहित्थिर्यं चरकाः प्राजापत्ये पशावाहुरिति

शतपथ ६ । २ । १ । १० ॥

तदु ह चरकाध्वर्यवः ॥

शतपथ ८ । १ । ३ । ७ ॥

इत्यादि स्थलों में जो “चरक” अथवा “चरकाध्वर्यु” कहे गये हैं, वे सब वैशंपायन-शिष्य हैं ।* हम पूर्व प्रदर्शित कर चुके हैं कि चरक=वैशंपायन महाभारत-कालीन था, अतः उसका वा उसके शिष्यों का उल्लेख करने वाला ग्रन्थ महाभारत-काल से पहले का नहीं हो सकता । वह महाभारत-काल का ही है ।

(घ) याज्ञवल्क्य और शतपथ ब्रा० के महाभारत-कालीन होने में एक और प्रमाण भी है—

महाराज जनक की सभा में याज्ञवल्क्य का ऋषियों के साथ जो महान् संवाद हुआ था, उसका वर्णन शतपथ काण्ड ११-१४ में है । ऋषियों में एक विदग्ध शाकल्य ११ । ४ । ६ । ३ ॥ था । याज्ञवल्क्य के एक प्रश्न का उत्तर न देने से उसकी मूर्धा गिर गई १४ । ५ । ७ । २८ ॥ यह शाकल्य ऋग्वेद का प्रसिद्ध आचार्य हुआ है । यही पदकारों में सर्वश्रेष्ठ था ।† इसका पूरा नाम देवमित्र शाकल्य

*देखो वायुपुराण पू० अध्याय ६२—

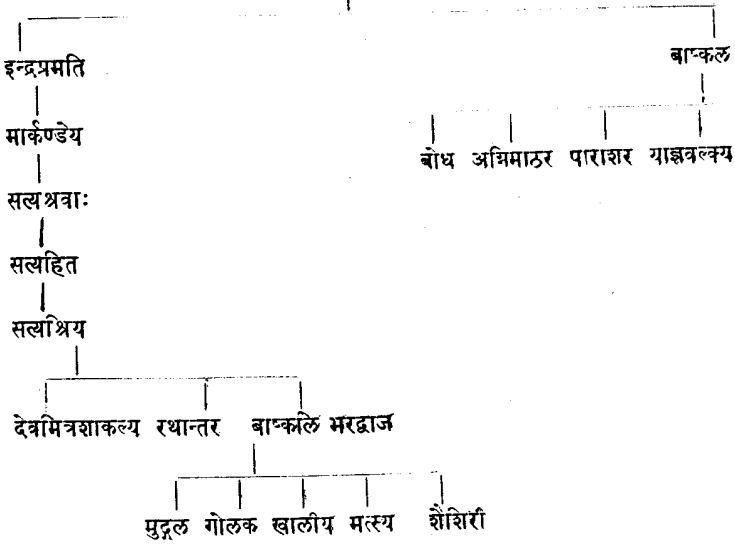
ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णा चरणाच्चरकाः स्मृताः ।

वैशंपायनशिष्यास्ते चरकाः समुदाहृताः ॥ २३ ॥

†वायुपुराण, पू० ६० । ६३ ॥ “पदवित्तमः” ।

था। ब्रह्मवाहसुत याज्ञवल्क्य (वायुपुराण, पूर्वार्ध ६०।४१ ॥) के साथ इसका जो वाद हुआ था, उसका उल्लेख वायुपुराण पूर्वार्ध अध्याय ६० श्लोक ३२-६० में भी है। वायुपुराण के पूर्वार्ध अध्याय ६० के अनुसार इस देवमित्र शाकल्य (विदग्ध) के पूर्वोत्तर कुछ ऋग्वेदीय आचार्यों की गुरुपरम्परा का चित्र निम्नलिखित है।

पैल (ऋग्वेदाध्यापक)



पैल के शिष्य प्रशस्य होने से ये शाकल्य आदि आचार्य महाभारत-कालीन ही हैं। इन में से शाकल्य का विस्तृत वर्णन शतपथ में मिलता है। और शतपथ के प्रवचन-कर्ता याज्ञवल्क्य के साथ इसका संवाद भी हुआ था, अतः याज्ञवल्क्य और शतपथ दोनों महाभारत-कालीन हैं।

इस विषय में और भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं, पर विद्वानों के लिये इतने ही पर्याप्त होंगे।

(ड) ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन महाभारत काल में हुआ, इस में एक और प्रमाण है। काठक संहिता १०।६ ॥ के आरम्भ का यह वचन है—

नैमिष्या वै सत्रमासत त उत्थाय सप्तविंशतिं कुरुपञ्चालेषु
वत्सतरानवन्वत तान्बको दालिभरब्रवीच्चूयमेवैतान् विभजध्वमिममहं
धृतराष्ट्रं वैचित्रवीर्यं गमिष्यामि ।

इसी कथा का उल्लेख महाभारत शल्य पर्व अध्याय ४१ में है—

ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रममन्तिकात् ।

यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः ॥ ३२ ॥

तथा अध्याय ४२ में—

यत्र दाल्भ्यो बको राजन्पश्चर्थं सुमहातपाः ।

जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं कोपसमन्वितः ॥ १ ॥

.....

तानब्रवीद्बको दाल्भ्यो विभजध्वं पशूनि ॥ ५ ॥

इस से निश्चय होता है कि काठक संहिता में त्रिचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र का वर्णन है। वह भी लगभग महाभारत-कालीन ही था। उसका उल्लेख करने वाली संहिता और तदुपरान्त प्रवचन होने वाला ब्राह्मण अवश्य महाभारत काल के हैं।

पश्च—धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य कोई पुराकाल का राजा होसकता है। उसी का यहाँ वर्णन है।

उत्तर—यह कल्पना असत्य है। काठक संहिता में धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य के साथ जिस ऋषि “बको दाल्भ्य” *का कथन है, वह महाराज युधिष्ठिर के समय में विद्यमान था। देखो महाभारत वनपर्व, अध्याय २६—

अथाब्रवीद्बको दाल्भ्यो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।

सन्ध्यां कौन्तेयमासीनमृषिभिः परिवारितम् ॥ ५ ॥

इत्यादि। और मनु के—

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वात् दीर्घमायुरवाप्नुयुः । ४ । ९४ ॥

इस वचन के अनुसार यद्यपि ऋषि जन दीर्घजीवी थे, तथापि उनका आयु १०० वर्ष से लेकर ३०० या ४०० वर्ष तक ही होता था।† यदि इस से अधिक आयु होता तो भगवान् पतञ्जलि यह क्यों लिखता—

* सम्भवतः यही बको दाल्भ्य छान्दोग्य उपनिषद् १।१२।१ ॥ में स्मरण किया गया है। इसी बकोदाल्भ्य का वर्णन जै० उपनिषद् ब्राह्मण १।९।३ ॥ ४।७।२ ॥ में भी है।

† अपि हि भूयाश्सि शताब्देष्वभ्यः पुरुषो जीवति ।

शतपथ १।९।३।१९ ॥

किं पुनरद्यत्वे यः सर्वथा चिरं जीवति स वर्षशतं जीवति ।

(महाभाष्य कीलहार्न सं० प्रथम माग पृ० ५)

और भगवान् कात्यायन यह क्यों लिखता—

सहस्रसंवत्सरमनुष्याणामसम्भवात्* ॥ १३८ ॥

नादर्शनात् ॥ १४३ ॥

श्रौतसूत्र अध्याय १ ॥

अर्थात् मनुष्य का सामान्य आयु १०० वर्ष ही श्रुति आदि में दिखाई देता है । इसलिये जब बको दाल्भ्य युधिष्ठिर कालीन है, तो इसी बको दाल्भ्य का युधिष्ठिर के पूर्वज धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य से वार्तालाप हुआ था । अतः उसकी कथा का प्रसंग कठ-संहिता में आजाने से कठब्राह्मण धृतराष्ट्र के कुछ पीछे अर्थात् महाभारत-काल में संकलित हुआ । हम कह चुके हैं कि सब ब्राह्मण ग्रन्थों का सङ्कलन एक समय में हुआ था । अतः यदि कठब्राह्मण महाभारत कालीन हो, तो दूसरे ब्राह्मण भी उसी काल में संगृहीत हुए ।

(च) आरण्यक ग्रन्थ या तो ब्राह्मणों के विभाग हैं, या उन के साथ के ही ग्रन्थ हैं । तैत्तिरीय आरण्यक, तैत्तिरीय ब्राह्मण का साथी ग्रन्थ है । इस में १।१।२ ॥ पर पाराशर्य व्यास का एक मत उद्धृत किया है । तैत्तिरीय आरण्यक का प्रवक्ता तित्तिरि भी महाभारत कालीन था, अतः तित्तिरि का प्रवचन होने वा पाराशर्य व्यास का कथन करने से तैत्तिरीय आदि ब्राह्मण वा आरण्यक महाभारत कालीन ही हैं ।

(छ) भगवान् जैमिनि सामवेद की जैमिनि संहिता का प्रवक्ता हैं । यही जैमिनि पाराशर्य व्यास का प्रिय शिष्य था । † इसे ही वेदव्यास ने साम शाखाओं का सबसे पहले पाठ पढ़ाया । इसी ने तलवकार-जैमिनि ब्राह्मण का प्रवचन किया था । पाराशर्य व्यास शिष्य होने से यह महाभारत-कालीन है और इसका प्रवचन किया हुआ

*यहां मनुष्य शब्द का प्रयोग देव के पुकाबले में है । देवी सृष्टि में तो कल्प पर्यन्त ही यज्ञ हो रहा है । मनुष्य में ऋषियों की गणना भी है । मीमांसासूत्र ६ । ७ । ३१—४० ॥ का भी यही अभिप्राय है ।

† इसी तित्तिरि का उल्लेख अष्टाध्यायी ४ । ३ । १०२ ॥

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् ।

में है । इसी के कहे हुए किन्हीं श्लोकविशेषों के सम्बन्ध में पतञ्जलि ४ । २ । ६६ ॥ पर कहना है—तित्तिरिणा प्रोक्ताः श्लोका इति ।

‡ देखो सामविधान ब्राह्मणम्—व्यासः पाराशर्यो जैमिनये । ३ । ९ । ३ ॥

ब्राह्मण भी महाभारत कालीन ही हैं। जैमिनि ब्राह्मण में भी अनेक नाम ऐसे हैं जो केवल महाभारत कालीन ही हैं। विस्तरभय से यहाँ नहीं दिये गए। विद्वान् लोग उन्हें स्वयं देखें।

इन्हीं भगवान् जैमिनि ने मीमांसा शास्त्र भी बनाया था। इसी कारण जैमिनि ब्राह्मण के कई हस्तलेखों के प्रारम्भ में प्राचीन परम्परागत ऐतिह्यका द्योतक यह श्लोक विद्यमान है—

उज्जहारागमाम्भोधेयो धर्मामृतमञ्जसा ।

न्यायैर्निर्मथ्य भगवान् स प्रसीदतु जैमिनिः ॥

प्रश्न—इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ आर्थर बेरीडेल कीथ अपने पुस्तक The Karma Mimansa (सन् १९२१) पृ ४—५ पर लिखते हैं—

A Jaimini is credited with the authorship of a Sruta and a Grhya Sutra, and the name occurs in lists of doubtful authenticity in Asvalayana and Sankhayana Grhya Sutras; a Jaiminiya Samhita and a Jaiminiya Brahmana of the Sama Veda are extant

It is, then, a plausible conclusion that the Mimansa Sutra does not date after 200 A. D., but that it is probably not much earlier

उनके इस लेख के भावानुसार—

- (१) जैमिनि ब्राह्मण का प्रवक्ता जैमिनि, मीमांसा सूत्रों का प्रणेता नहीं।
- (२) मीमांसा सूत्र ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में ही बने थे। इत्यादि क्या कीथ महाशय का यह सब भाव सत्य है ?

उत्तर—कीथ महाशय का यह कथन सत्य तो क्या, सत्य से कोसों दूर है। क्योंकि—

(१) जैमिनि ब्राह्मण के अनेक हस्तलेखों के आरम्भ में आने वाला जो श्लोक हम पूर्व उद्धृत कर चुके हैं, वह परम्परागत ऐतिह्य का स्पष्ट द्योतक है। और आर्यावर्त के पण्डित आज तक अविच्छिन्न रूप से इसे मानते आये हैं कि तलवकार ब्राह्मण का प्रवक्ता, भगवान् वेदव्यास का शिष्य जैमिनि ही मीमांसा सूत्रों का प्रणेता था। कीथ साहेब के भ्रम का कारण यह है कि वे मीमांसा सूत्रों को ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में रचा गया मानते हैं।

(२) मीमांसा सूत्र ईसा से सैंकड़ों वर्ष पहले विद्यमान थे । शङ्कर, वेदान्त-सूत्र ३।३।५३ ॥ के प्रमाण से कीथ स्वयं मानता है कि भगवान् उपवर्ष ने मीमांसा सूत्रों पर भाष्य लिखा । शङ्कर ही नहीं कौशिक सूत्र पद्धतिकार आथर्वणिक केशव भी मीमांसा भाष्यकार उपवर्ष का स्मरण करता है—

**उपवर्षाचार्येणोक्तं । मीमांसायां स्मृतिपादे कल्पसूत्राधिकरणे
.....इति भगवानुपवर्षाचार्येण (!)प्रतिपादितं ।**

(कौशिकसूत्र, पृ० ३०७)

यह भगवान् उपवर्ष पाणिनि से पहले हो चुका था । कथासरित्सागर आदि के अनुसार तो यह पाणिनि का गुरु वा गुरुभ्राता था । उपवर्ष पाणिनि से पूर्व हो चुका था, इस में एक और भी प्रमाण है । राजशेखर (नवम शताब्दी) अपनी काव्य-मीमांसा पृ० ५५ में लिखता है—

श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा—

अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह व्याडिः ।

वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः ॥

इस श्लोक में सारे शास्त्रकारों के नाम काल-क्रम से ही आये हैं पतञ्जलि से पहले वररुचि, और उससे कुछ पहले होने वाले वा साथी पाणिनि और पिङ्गल* थे । इनसे कुछ पहले वर्ष, और उपवर्ष थे । यही उपवर्ष शास्त्रकार हैं । इसी ने मीमांसा सूत्रों पर आदि भाष्य लिखा था ।

प्रश्न—यह उपवर्ष कोई और शास्त्रकार होगा ।

उत्तर—यदि यह कोई और शास्त्रकार है, तो इस के शास्त्र का कोई उद्धरण कोई पता, कोई चिन्ह चक्र बताओ । जब तुम यह बता ही नहीं सकते, तो ऐसी अलीकतम कल्पनाओं से परे रहो ।

प्रश्न—राजशेखरप्रदर्शित श्लोक में आने वाले नाम काल-क्रमानुसार नहीं हैं ।

उत्तर—ऐसे ही पूर्व पक्षों से तुम्हारा हठ और दुराम्रह सिद्ध होता है । जब शेष सब नाम काल-क्रमानुसार हैं, तो पहले दो नामों के ऐसा होने में क्या सन्देह है ? और जब आद्यन्त आर्य ऐतिह्य भी यही मानता है, तो तुम्हारे इस कहने से क्या ? यैरुप में तुम पण्डित बने रहो । आर्यावर्चीय विद्वान् तुम्हारा कुछ सम्मान न करेंगे ।

* आचार्य पिङ्गल पाणिनि का कनिष्ठ भ्राता था । देखो ! मेरा लेख, मासिक पत्र आर्य्य, आषाढ १९२२ पृ० २६-२९, लहौर ।

इस प्रकार जब मीमांसा सूत्रों का भाष्यकार ही इतना पुराना है, तो मूल सूत्र क्यों नवीन होंगे ? हम पाणिनि को कलियुग की लगभग दूसरी शताब्दी में मानते हैं ।*

पाश्चात्य लेखक त्रिक्रम से चार शताब्दी पहले मानते हैं । अतः पाश्चात्यों के अनुसार भी जैमिनि सूत्र त्रिक्रम की पांचवीं शताब्दी से पहले होना चाहिये । इस से यह स्पष्ट होगया कि कीथ का लेख श्रमपूर्ण है और व्यास शिष्य जैमिनि ही मीमांसा सूत्र का कर्ता वा तलवकार ब्राह्मण का प्रवक्ता है । इस लिये वे तलवकारादि ब्राह्मण महाभारत कालीन हैं ।

(ज) छान्दोग्य उपनिषद्, छान्दोग्य-ताण्ड्य ब्राह्मण का अन्तिम भाग ही है । छान्दोग्य-उपनिषद् ३ । १६ । ६ ॥ में कहा है—

एतद् स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः । ।

स ह षोडशं वर्षशतमजीवत् ।

यहाँ महिदास ऐतरेय, ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता है । आश्वलायन गृह्य सूत्र ३ । ४ । ४ ॥ में भी इसी का उल्लेख है ।† महिदास ऐतरेय व्यास और शौनक तथा आश्वलायन के बीच में आता है । पाणिनीय सूत्र—

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥ ४ । ३ । १०६ ॥

से हम जानते हैं कि शौनक किसी शाखा वा ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता हैं । सम्भवतः

* प्रश्न—पाटलिपुत्र बहुत पुराना नगर नहीं है । इसे महाराज अजातशत्रु (त्रिक्रम से लगभग ५०० वर्ष पूर्व) ने बसाया था । जब यह नगर ही बहुत पुराना नहीं, तो उसमें परीक्षा देने वाले शास्त्रकार पाणिनि आदि कैसे कलियुग की दूसरी शताब्दी में हो सकते हैं ?

उत्तर—यद्यपि पाटलिपुत्र नवीन नगर है, तथापि मगध देश में इससे पहले गिरिव्रज राजधानी थी । गिरिव्रज के सम्राट् ही पहले शास्त्रकारों की परीक्षा कराया करते थे । राजशेखर के काल में पाटलिपुत्र नाम प्रसिद्ध हो चुका था, अतः उस ने यहीं लिख दिया । राजशेखर का वास्तविक अभिप्राय सम्राट् से है, नगर से नहीं, यह उसके पूर्वापर प्रकरण को देखने से स्पष्ट हो जाता है ।

† पूर्वोद्धृत (पृ० १९) वाक्य में कीथ साहेब आश्वलायन गृह्यसूत्र की इन सूचियों को प्रक्षिप्त सा मानते हैं । ऐतरेय आरण्यक पृ० १७ (सन् १९०९) के प्रथम टिप्पण में भी वे इन सूचियों को “सम्भवतः नया” मानते हैं । स्वप्रयोजन सिद्ध होता न देख कर ही, वे ऐसा मानने पर बाधित हुए हैं, अन्यथा इन वाक्यों के ग्रन्थान्तर्गत होने में कोई सन्देह नहीं ।

यह शाखा आथर्वणों की थी ।* आश्वलायन इसी शौनक का शिष्य था ।† शौनक शिष्य होने से ही आश्वलायन अपने श्रौतसूत्र वा गृह्यसूत्र के अन्त में—

नमः शौनकाय । नमः शौनकाय ॥

लिखता है ।

शाखा प्रवर्तक होने से भगवान् शौनक व्यास का समीपवर्ती ही है । अतएव महिदास ऐतरेय भी कृष्ण-द्वैपायन व्यास से अनतिदूर है । इस महिदास ऐतरेय का प्रवचन होने से ऐतरेय ब्राह्मण महाभारत-कालीन है । और इसी महिदास का उल्लेख करने से छान्दोग्य उपनिषद् वा ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन हैं । हां, उपनिषद् भाग कुछ पीछे का भी हो सकता है । याज्ञवल्क्यादि ऋषियों ने एक दिन में ही तो सारा ब्राह्मण नहीं कह दिया था । इन के प्रवचन में कई कई वर्ष लगे होंगे । इस से प्रतीत होता है कि ताण्ड्य आदि ऋषि जब छान्दोग्यादि उपनिषदों का प्रवचन अर्थात् कर रहे थे, तो महिदास ऐतरेय का देहान्त हो चुका था । महिदास इन दूसरे ऋषियों की अपेक्षा कुछ कम ही जिया ।

जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण ४ । २ । ११ ॥ के निम्नलिखित वाक्य की भां यही संगति है—

एतद् तद्विद्वान् ब्राह्मण उवाच महिदास ऐतरेयः । ।

स ह षोडशशतं वर्षाणि जिजीव ।

ऐतरेय आरण्यक ऐतरेय ब्राह्मण का ही अन्तिम भाग है । उस में भी महिदास ऐतरेय का नाम आया है—

एतद् स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः । २ । १ । ८ ॥

इससे हमारा पूर्वोक्त कथन ही सिद्ध होता है ।

* शौनक का शिष्य आश्वलायन, प्रधानतया ऋग्वेदी है । शौनक ने आप भी अनेक ऋग्वेद सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे थे । इस से यह सन्देह न होना चाहिये कि उसने आथर्वण शाखा का प्रवचन कैसे किया । महाभारत-काल के आचार्य किसी शाखाविशेष से ही सम्बद्ध न रहते थे । शौनक-शिष्य कात्यायन ने चारों ही वेदों पर अपने ग्रन्थ लिखे हैं ।

† देखो षड्गुरुशिष्य कृत सर्वानुक्रमणी वृत्ति की भूमिका—

शौनकस्य तु शिष्योऽभूत् भगवानाश्वलायनः ।

प्रश्न—इसी आरण्यकस्थ वाक्य के अनुवाद (पृ० २१० टिप्पणी २) के एक नोट में कीथ महाशय लिखते हैं—

“This mention is enough to prove that Mahidasa did not write the Aranyaka. But it is quite probable that he was the redactor of the Brahmana, in its form of forty chapters.”

क्या उनका अभिप्राय विश्वसनीय है ।

उत्तर—कीथ साहेब का यह लेख सर्वथा भ्रमपूर्ण है । सब विद्वान् इस विषय में सहमत हैं कि शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन याज्ञवल्क्य ने ही किया था । जब उसी शतपथ ब्राह्मण में —

तदु होवाच याज्ञवल्क्यः ।

१ । ३ । ४ । २१ ॥ २ । ३ । १ । २१ ॥

२ । ४ । ३ । २ ॥ १२ । ४ । १ । १० ॥

इति ह स्माह याज्ञवल्क्यः ।

३ । १ । ३ । १० ॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः ।

१२ । ६ । ३ । २ ॥

इन लेखों के आने से किसी विद्वान् को शतपथ ब्राह्मण के याज्ञवल्क्य प्रोक्त होने में सन्देह नहीं हुआ, तो ऐतरेय आरण्यक में महिदास का नाम आ जाने से कीथ को सन्देह न होना चाहिये था । अनेकों पाश्चात्य लेखक ऐसी ही भ्रममूलक कल्पनाएं कर के बहुत लोगों को भ्रम में डालते वा स्वयं संशय में पड़े रहते हैं । और यदि यह कही कि ग्रन्थ-कर्ता स्वयं अपने को “विद्वान्” कैसे कह सकता है, तो इतना शब्द उसके किसी समीपवर्ती शिष्य ने धर दिया है, ऐसा मानने में कोई हानि नहीं ।

प्रश्न—छान्दोग्य उपनिषद् के वाक्य का अर्थ ११६ वर्ष नहीं, प्रत्युत १६०० वर्ष है । तदनुसार महिदास ऐतरेय १६०० वर्ष जीवित रहा । न जाने उसने ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचन इतने लम्बे जीवन के किस भाग में किया । अतः उस के प्रवचन किये हुए ब्राह्मण को महाभारत कालीन मानना उचित नहीं । मनु १।८३॥ पर भाष्य करते हुए मेघातिथि लिखता है—

ननु “स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्” इति परममायुर्वेदे श्रूयते ।

इस का अभिप्राय १६०० वर्ष प्रतीत होता है । महामहोपाध्याय पं० गङ्गानाथ झा मेधातिथिमास्य के अङ्गरेजी अनुवाद में लिखते हैं—

“But we find the highest age described as 1600 years, in the Chhandogya Upanisad (3:16. 7), where it is said ‘he lived for sixteen hundred years’.”

राजेन्द्रलाल मित्र भी ऐतरेय आरण्यक के Introduction पृ० ३ के नोट में छान्दोग्य के वाक्य का अर्थ ‘for sixteen hundred years’ करते हैं ।

इतने बड़े २ विद्वानों का अर्थ कैसे अशुद्ध हो सकता है ?

उत्तर—“षोडशं वर्षशतं” का अर्थ ११६ वर्ष ही है । पं० गङ्गानाथ झा ने अनुवाद में भूल की है । वही भूल राजेन्द्रलाल मित्र ने दिखाई है । मेधातिथि का अभिप्राय भी पं० गङ्गानाथ झा वाला नहीं है । वहाँ अर्थ तो लिया ही नहीं । यह कल्पना झा महाशय की अपना ही है । छान्दोग्य के उपस्थित वाक्य का अर्थ सब प्राचीन आचार्यों ने भी ११६ वर्ष ही किया है । देखो—

षोडशोत्तरवर्षशतम्—शङ्कर ।

षोडषाधिकं वर्षशतम्—रामानुज ।

षोडशोत्तरं शतम्—मध्व ।

मैक्समूलर का भी यही अर्थ है । जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण में Hanns Oertel ने भी ११६ वर्ष ही अर्थ किया है । बहुत खेच तान करके १६०० अर्थ यदि कर भी लें तो एक और आपत्ति आ पड़ती है । छान्दोग्य के इस प्रकरण में पुरुष को यज्ञरूप मान कर उसे सवनों से तुलना दी है । तीनों सवनों के कुल वर्ष भी $२४+४४+४८=११६$ ही बनते हैं । अतः १६०० वर्ष अर्थ प्रकरणानुकूल भी नहीं झा महाशय यहाँ नहीं, अन्यत्र भी ऐसे ही अर्थ करते हैं । मेधातिथि के शाखाभेद-निरूपक—

एक शतमध्वर्युणां ।

वाक्य का अर्थ “a hundred Recensions” करते हैं । परन्तु समस्त आर्य वाङ्मय में ऐसे वाक्य का अर्थ १०१ ही लिया गया है । अतः ऐसे अनुकारों के लिये झा महाशय को ही सधुवाद । उन की भूल से हम ११६ से १६०० का असम्भव अर्थ नहीं मान सकते ।

(श) सामान्निधान ब्राह्मण ३ । ९ । ३ ॥ में एक वंश कहा है । वह निम्न-
लिखित प्रकार से है—

- (१) प्रजापति
|
(२) बृहस्पति
|
(३) नारद
|
(४) विश्वक्सेन
|
(५) व्यास पाराशर्य
|
(६) जैमिनि
|
(७) पौष्पिण्य
|
(८) पाराशर्यायण
|
(९) बादरायण
|
(१०) ताण्डि (११) शाठ्यायनि

इन्हीं अन्तिम दो व्यक्तियों ने ताण्ड्य और शाठ्यायन ब्राह्मणों का प्रवचन किया था । ये आचार्य पाराशर्य व्यास से कुछ ही पीछे के हैं । अतः इनके कहे हुए ब्राह्मणग्रन्थ भी महाभारत-कालीन ही हैं । सम्भवतः शतपथ ६ । १ । २ । २५ ॥ में

अथ ह स्माह ताण्ड्यः ।

जिस ताण्ड्य का कथन है, वह इसी का सम्बन्धी है ।

(ज) पं० अभयकुमार गुह ने सन् १९२१ में एक ग्रन्थ लिखा था । नाम है उसका Jivatman in the Brahma Sutras. इस ग्रन्थ में एक विषय का बड़ा अच्छा प्रतिपादन है । गुह महाशय ने यह सिद्ध कर दिया है कि कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास और बादरायण एक ही व्यक्ति थे । हम इस विषय में गुह की युक्तियों से पूरे सहमत हैं । वेदान्तसूत्र, वेदव्यास का अन्तिम ग्रन्थ प्रतीत होता है । वेदान्त सूत्रों में उपनिषदों, आरण्यकों, ब्राह्मणों और मन्त्र संहिताओं का स्पष्ट कथन किया गया है

देखो—

१—इक्षतेर्ना शब्दम् । १ । १ । ५ ॥

- २—श्रुतत्वाच्च । १ । १ । ११ ॥
 ३—मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते । १ । १ । १५ ॥
 ४—अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् । १ । २ । १८ ॥
 ५—शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते । १ । २ । २० ॥
 ६—आमनन्ति चैनमस्मिन् । १ । २ । ३२ ॥
 ७—परात्तु तच्छ्रुतेः । २ । ३ । ४१ ॥
 ८—अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् । ३ । १ । ४ ॥
 ९—पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नानात् । ३ । ३ । २४ ॥
 १०—शब्दश्चातोऽकामकारे । ३ । ४ । ३१ ॥

इन सूत्रों में छान्दोग्य उप०, श्वेताश्रतर उप०, तैत्तिरीय उप०, बृहदारण्यक उप०, काण्व और माध्यन्दिन शतपथ ब्रा०, जाबाल उप०, कौषीतकि उप०, बृहदारण्यक उप०, ताण्डी और पैङ्गी ब्राह्मण, तथा काठक संहिता की श्रुतियों का क्रमशः वर्णन है ।

हम कह चुके हैं कि व्यास और उन के शिष्य प्रशिष्यों ने ही ब्राह्मणों का सङ्कलन आरम्भ किया था । वेदान्त सूत्रों में इन सब के प्रमाण आ जाने से यह निश्चय होता है कि व्यास जी के जीवन काल में ही यह सङ्कलन समाप्त हो चुका था । वेदान्त भूत भगवान् व्यास का अन्तिम ग्रन्थ प्रतीत होता है । इस प्रकार भी यहाँ निश्चय होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ महाभारत काल में ही सङ्कलित हुए ।

प्रश्न—वेदान्त सूत्र ३ । ४ । ३० ॥ ३ । ४ । ३८ ॥ इत्यादि में मनुस्मृति का उल्लेख है । मनुस्मृति तो बहुत नया ग्रन्थ है । पाश्चात्य लेखक इसे ईसा का प्रथम शताब्दी के समीप का मानते हैं । मनु का उल्लेख करने से वेदान्तसूत्र भी बहुत नवीन हैं । ऐसे सूत्रों के साक्ष्य के आधार पर ब्राह्मण-ग्रन्थों का काल निश्चय करना क्या मूल नहीं है ।

उत्तर—मनुस्मृति के कुछ श्लोक अवश्य नवीन हैं, परन्तु मूल ग्रन्थ महाभारत से सहस्रों वर्ष पूर्व का है । इस लिये ऐसी कल्पनाएँ निरर्थक हैं ।

(ट) महाभारत आदि पर्व अध्याय ६३ में कहा है—

प्रतीपस्तु खलु शैव्यामुपयेमे सुनन्दी नाम । तस्यां त्रीन्
 पुत्रानुत्पादयामास । देवापि शन्तनुं बाह्यिकं चेति । ४७ ॥

प्रतीप के इस तीसरे पुत्र बाह्लीक का वर्णन शतपथ ब्राह्मण में मिलता है—
तदु ह बलिहकः प्रातिपीयः शुश्राव कौरव्यो राजा ।

१२।९।३।३॥

यह व्यक्ति महाभारत कालीन ही है, और इसका उल्लेख करने से शतपथ में लगभग उसी काल का है ।

प्रश्न—और तो सब बातें उचित प्रतीत होती हैं, पर वाल्मीकि रामायण में एक ऐसा स्थल है जो ब्राह्मण-ग्रन्थों को महाभारत-कालीन मानने नहीं देता । दाक्ष-रथि राम का काल महाभारत से लाखों वर्ष पहले का है । कठ, कालाप और तैत्तिरीय आदि लोग जब राम के काल में थे, तो ये ब्राह्मण-ग्रन्थ जो इन्हीं ऋषियों का प्रवचन हैं, महाभारत काल के कैसे हो सकते हैं । देखो रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ३२ (दाक्षिणात्य संस्करण) में क्या लिखा है—

कौसल्यां च य आशीर्भिर्भक्तः पर्युपतिष्ठति ।

आचार्यस्तैत्तिरीयाणामभिरूपश्च वेदवित् ॥ १५ ॥

पशुकाभिश्च सर्वाभिर्गवां दशशतेन च ।

ये च मे कठकालापा बहवो दण्डमाण्वाः ॥ १८ ॥

उत्तर—ये श्लोक अवश्यमेव प्रक्षिप्त हैं । वङ्गीय वाल्मीकि रामायण सर्ग ३२ में ये ऐसे हैं—

सुहृन्मां परया भक्त्या य उपास्ते तु देवलः ।

आचार्यस्तैत्तिरीयाणां तमानय यतव्रतम् ॥ १७ ॥

ये च मे वन्दिनः सन्ति ये चापि परिचारकाः ।

सर्वास्तर्पय कामैस्तान् समाहूयाशु लक्ष्मण ॥ २० ॥

और पश्चिमोत्तरीय वाल्मीकि रामायण सर्ग ३५ में यह श्लोक ऐसे हैं ।

सुहृन्मां परया भक्त्या य उपास्ते सदैव सः ।

आचार्यस्तैत्तिरीयाणां तमानय यतव्रतम् ॥ १७ ॥

ये च मे वन्दिनः सन्ति ये चान्ये परिचारिकाः ।

सर्वास्तर्पय कामैस्तान् समाहूयाशु लक्ष्मण ॥ २० ॥

इन दो श्लोकों में से पहला श्लोक तीनों पाठों में कुछ २ मिलता है । परन्तु

लाहौर संस्करण के सर्वोत्तम कोष में यह नहीं है। और दूसरा श्लोक केवल दाक्षिणत्य पाठ में ही है। उस के स्थान में दूसरे दोनों पाठ कुछ और ही लिखते हैं। इस का प्रक्षिप्त होना निर्विवाद है। पहला श्लोक और उस में “तैत्तिरीयाणां” पाठ किसी कृष्ण-यजुर्वेद-भक्त दाक्षिणात्य का मिलाया हुआ प्रतीत होता है। महाभारत और महाभाग्य के प्रमाण से* हम बता चुके हैं कि ब्राह्मणकार तित्तिरि और कठ आदि आचार्य महाभारत काल में ही थे, अतः उन को राम के काल में कहने वाला श्लोक किसी इतिहासानभिज्ञ व्यक्ति का मिलाया हुआ है।

पश्च—हम तो ब्राह्मण-ग्रन्थों को बहुत पुराना समझते थे, पुराना ही नहीं, काल की दृष्टि से वेदों के सर्वापतम समझते थे। आर्यों का इतिहास महाभारत-काल से भी लाखों वर्ष पहले का है। वेद भी तभी से चल आये हैं। यदि ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत काल के हैं, तो इन लाखों वर्षों में अग्रा-बुद्धि रखने वाले ब्रह्मवर्चस्वी, सर्वविद्यावित् ऋषियों ने क्या कोई भी ग्रन्थ न बनाये थे।

उत्तर—हम ने कब कहा है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों की सब सामग्री महाभारत काल ही में बनी। इस के विपरीत हम कह चुके हैं कि ब्रह्मा के काल से ही ब्राह्मण वाक्यों का प्रवचन होना आरम्भ हो गया था। वह प्रवचन इन लाखों वर्ष पर्यन्त होता रहा। तदनन्तर महाभारत काल में कुछ नया प्रवचन हुआ। और सब प्रवचन का आद्यन्त संग्रह करके महाभारत कालीन ऋषियों ने ये साम्प्रतिक ब्राह्मण-ग्रन्थ बनाये।

महाभारत के पूर्व लाखों वर्षों तक इन ब्राह्मण-ग्रन्थों की मौलिक सामग्री का ही केवल प्रवचन नहीं हुआ, प्रत्युत आर्य ऋषि मुनि सब ही विद्याओं के ग्रन्थ बनाते रहे हैं। इस में प्रमाण भी देखो। न्याय भाष्यकार महासुनि वात्स्यायन न्याय सूत्र ४।

१। ६२ ॥ पर भाष्य करते हुए किसी ब्राह्मण-ग्रन्थ का यह प्रमाण देते हैं—

प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते । ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन्
.....य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते ख-
ल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति ।

*जब तित्तिरि ही वैशंपायन का प्रशिष्य है तो तैत्तिरीय लोग राम-काल में कैसे हो सकते हैं। देखो काण्डानुक्रमणिका—

वैशम्पायनो यास्कायैतां प्राह पैङ्गये ।

यास्कस्ति तित्तिरये प्राह उखाय प्राह तित्तिरिः ॥ १५ ॥

पुनः सूत्र २ । २ । ६७ ॥ पर लिखते हैं—

**य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतो-
नामिति ।**

किसी विलुप्त ब्राह्मण, वा वात्स्यायन के इस लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाभारत-काल से बहुत पहले, आदि सृष्टि अर्थात् अथर्वाङ्गिरस ऋषियों के काल से ही, तथा मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषियों के काल में भी ये ग्रन्थ विद्यमान थे ।

१—इतिहास

२—पुराण—सृष्ट्युत्पत्ति आदि विषयक बातें ।

३—धर्म शास्त्र—मानवादि ।

४—आयुर्वेद

शतपथ ब्राह्मण ११ । ५ । ६ । ८ ॥ में जो निम्नलिखित वाक्य हैं, उस के अनुसार इन ब्राह्मण-ग्रन्थों के सङ्कलन से पहले ये ग्रन्थ भी विद्यमान थे ।

**यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा
नाराशंस्यः ।**

अर्थात्—

५—अनुशासन ग्रन्थ

६—वाकोवाक्य ,,

७—गाथा ,,

८—नाराशंसी ,,

तथा शतपथ १४ । ६ । १० । ६ ॥ के अनुसार—

**इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्या-
ख्यानानि व्याख्यानानि ।**

९—उपनिषद् (मौलिक उपनिषद्)

१०—श्लोक-ग्रन्थ

११—सूत्र ग्रन्थ

१२—अनुव्याख्यान

१३—व्याख्यान

तथा छान्दोग्य उपनिषद् ७ । २ ॥ के अनुसार—

इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्र-

विद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ।

१४-भूत विद्या

१५-क्षत्र विद्या

१६-नक्षत्र विद्या

१७-सर्पदेवजनादि विद्या

और मुण्डकोपनिषद् १ । ५ के प्रमाण से—

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तम् छन्दो ज्योतिषम् इति ।

१८-शिक्षा

१९-कल्प

२०-व्याकरण

२१-निरुक्त

२२-छन्दः शास्त्र

२३-ज्योतिष

तथा तैत्तिरीयारण्यक २ । ९ ॥ के अनुसार—

**ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशं-
सीरिति ।**

२४-ब्राह्मण (मौलिक ब्राह्मण) ।

भासकवि को हम बहुत प्राचीन मानते हैं । कई विद्वान् उसे नवीन भी मानते हैं । पर एक बात निश्चित है । कोई विद्वान् नाटककार, और फिर भास जैसा कवि अपने पात्र के मुख से असमयोचित शब्द नहीं निकलवा सकता । प्रतिमा नाटक में जो वाक्य रावण के मुख से कहाया गया है वह महाभारत काल से सहस्रों वर्ष पहले का इतिहास बताता है । तदनुसार—

**रावणः—“...काश्यपगोत्रोऽस्मि साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये,
मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं,
मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च । प्रतिमा नाटक पृ० ७९**

२५-उपाङ्ग ग्रन्थ

२६-माहेश्वर योगशास्त्र

२७-बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र

२८-न्याय शास्त्र मेधातिथि विरचित

२९—प्राचितस श्राद्धकल्प

वाल्मीकि रामायण निश्चय ही महाभारत से बहुत पहले काल का ग्रन्थ है ।

अतः—

३०—वाल्मीकि रामायण*—इत्यादि ।

कहाँ तक गिनावे महाभारत काल से सहस्रों लाखों वर्ष पहले आयों के वाङ्मय में प्रायः सब ही विद्याओं के ग्रन्थ थे । आयों में जब कोई—

नाविद्वान्† ।

*महाशय हेमचन्द्र राय चौधुरी अपन ग्रन्थ Political History of Ancient India (सन् १९२३) में लिखते हैं—but large portions of which (Ramayana etc.), in the opinions of competent critics, belong to the post—Bimbarsarian period. The present Ramayana not only mentions Buddha Tathagat (II. 109. 34) etc. P. iii.

चौधुरी महाशय जैसे विद्वानों को इतनी शीघ्रता से सम्मति न देनी चाहिये थी । रामायण के कुछ श्लोक प्राक्षिप्त तो अवश्य हैं, पर रामायण का अधिकांश भाग ऐसा नहीं । न ही रामायण महाभारत-काल से पीछे का ग्रन्थ है । जो श्लोक—

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धः तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि ।

उन्होंने प्रमाणरूपेण उद्धृत किया है, वह वङ्ग शास्त्रीय वा पश्चिमोत्तर रामायणों में नहीं है । देखो दोना रामायणों का अयोध्याकाण्ड, क्रमशः सर्ग ११८ और १२२ ।

ऐसे ही चौधुरी महाशय पृ० ११ पर रामायण अयोध्याकाण्ड (II.64.4-2) का प्रमाण “जनमेजय” के विषय में देते हैं ।

यां गतिं सगरः शैव्यो दिलीपो जनमेजयः ।

यह श्लोक भी दोनों अन्य शाखाओं में नहीं मिलता । देखो क्रमशः सर्ग ६६ और ७० ।

बिना पूरा प्रमाण देखे, इसी प्रकार सम्मतियां बना लेना विद्वानों को उचित नहीं है ।

†वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ६ । ८ ॥

छान्दोग्य उपनिषद् ५ । ११ । ५ ॥

महाभारत शान्तिपर्व ७७ । ९ ॥

अविद्वान् ही न था, तो पुनः विद्या सम्बन्धी ग्रन्थों का क्या कहना । अतः ऐसा प्रश्न निरर्थक है ।

प्रश्न—इन ब्राह्मणों की भाषा वेदों के बहुत समीप है । अतः ब्राह्मणों से पहले लौकिक भाषा में ग्रन्थों का होना एक असम्भव बात है ।

उत्तर—यह भी तुम्हारे मिथ्या भ्रम का ही कारण है । पश्चिम के कुछ विद्वानों के दर्शाये हुए असत्य-भाषा-विज्ञान (Philology) को सत्य मानकर पढ़ने से ही ऐसे सारहाने प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं । लो इसका उत्तर सुनो । ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनकों ऐसी गाथायें और श्लोक हैं, जो सर्वथा लोकभाषा में हैं । उसके कुछ उदाहरण देखो—

तदेष श्लोकोऽभ्युक्तः—

तद्वै स प्राणोऽभवन् महाभूत्वा प्रजापतिः ।

भुजो भुजिष्या वित्वैतद् यत् प्राणान् प्राणयत् पुरि ॥

शतपथ ७ । ५ । १ । २१ ॥

तदेष श्लोको भवति—

अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम् ।

मृत्युर्विवस्वन्तं वस्ते मृत्योरात्मा विवस्वति ॥

शतपथ १० । ५ । २ । ४ ॥

तथा अन्य श्लोकों के लिये देखो शतपथ—

१० । ५ । २ । १८ ॥ १० । ५ । ४ । १६ ॥ ११ । ३ । १ । ५, ६ ॥

११ । ५ । ४ । १२ ॥ ११ । ५ । ५ । १२ ॥ १२ । ३ । २ । ७, ८ ॥ इत्यादि तेरहवें और चौदहवें काण्ड में भी बहुत से श्लोक हैं । गाथाओं के कुछ उदाहरण हम पृष्ठ ६-७ पर देखे चुके हैं । ऐसे ही अन्य ब्राह्मणों में भी श्लोक आदि पाये जाते हैं । ये सब श्लोक वा गाथाएं भाषा अर्थात् लोकभाषा में ही हैं । और ऊपर भी हम बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र* आदि नाम के जो ग्रन्थ गिना चुके हैं, वे भी सब लोकभाषा में ही हैं । इस से ज्ञात होता है कि प्रवचन की भाषा के साथ ही साथ, लोकभाषा भी सदा से विद्यमान रही है । अधिक विचार करने पर विद्वान् लोग स्वयं इसी विचार पर पहुंच जावेंगे ।

* इस अर्थशास्त्र के कई लम्बे २ उद्धरण विश्वरूपाचार्य प्रणीत याज्ञवल्क्य-स्मृति की बालक्रीडा टीका में पाये जाते हैं ।

शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने ज्योतिष शास्त्र का इतिहास मराठी भाषा में लिखा है । उस में उन्होंने ब्राह्मण-ग्रन्थों के काल निरूपण का भी यत्न किया है । शतपथ ब्राह्मण २ । १ । २ । ३ ॥ में ऐसा पाठ है—

एता (कृत्तिकाः) ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते ।

सर्वाणि ह वाऽ अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते ॥

इस पाठ में कहा है कि नक्षत्रसंसार में कभी ऐसी अवस्था थी, जब कि कृत्तिका नक्षत्र को छोड़ कर शेष सब नक्षत्र प्राची दिशा में जाते थे । दीक्षित महाशय ने ज्योतिष के अनुसार गणना कर के यह दिखाया है कि ऐसी अवस्था अनेक बार हो चुकी होगी । परन्तु अन्तिम दशा जो इस समय से पहले हो चुकी है विक्रम से लगभग ३००० वर्ष पहले हुई थी । शतपथ आदि ब्राह्मणों में इसी का उल्लेख है । अतः शतपथादि ब्राह्मण अवश्य ही इतने पुराने हैं । जो परिणाम हमने ऐतिहासिक दृष्टि से निकाला है, वही परिणाम दीक्षित महाशय ने ज्योतिष की गणनाओं से निकाला है । ब्राह्मण ग्रन्थों में और भी ऐसे अनेक पाठ हैं, जिन्हें यदि ज्योतिष की दृष्टि से देखा जावे, तो हमें इसी परिणाम पर पहुँचाते हैं । अतएव ब्राह्मण-ग्रन्थों का सङ्कलन महाभारत-काल में हुआ, ऐसा कहना निर्विवाद है ।

पाश्चात्य लेखकों में से रांथ, वेबर, मैक्समूलर, मैकडानल, वूमफोल्ड काँथ आदि सज्जनों ने भी ब्राह्मणों के काल पर लेख लिखे हैं । उन सब लेखों का आधार उन की निज की कल्पनायें हैं । कल्पनाएं प्रमाण नहीं हुआ करतीं । इस लिये हम ने उन सबको उपेक्षा-दृष्टि से देखा है । हमारा सारा कथन आर्य ऐतिह्य के अनु-कूल है । ऐतिह्य को त्याग कर कल्पना का आधार लेना पाश्चात्यां की ही प्रिय है । विद्वान् इसकी अवहेलना ही करते हैं ।

ब्राह्मण-ग्रन्थ ब्रह्मा के काल से बनने आरम्भ हुए और उन का अन्तिम संग्रह महाभारत काल में हुआ, इस विषय में भगवान् दयानन्द सरस्वती स्वामी की भी यही सम्मति है । वे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के भाष्यकरणशैक्षासमाधानादिविषय के आरम्भ में लिखते हैं—

**यानि पूर्वैर्वैर्विद्वद्भिर्ब्रह्माणमारभ्य याज्ञवल्क्य-चात्स्यायन
जैमिन्यन्तैर्ऋषिभिश्चैतरेय-शतपथादीनि भाष्याणि रचितान्यासन्।**

(२) क्या ब्राह्मण वेद हैं ?

शबर, पितृभूति, शङ्कर, कुमारिल, विश्वरूप, मेधातिथि, कर्क, वाचस्पतिमिश्र, रामानुज, उज्वट, सायण प्रभृति सबहीं बड़े २ आचार्य मन्त्र ब्राह्मण दोनों को वेद मानते आये हैं। गत ३००० वर्ष में आर्यावर्त के किसी विद्वान् को इस बात का सन्देह नहीं हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। इतने काल से आर्यों के हृदयों में ब्राह्मणों की श्रुतियों का उतना ही मान रहा है, जितना संहिताओं के मन्त्रों का। आर्यों के समस्त श्रौतकर्म इन दोनों को तुल्य मान कर ही होते चले आये हैं।

यह सब कुछ ही था, पर इस बीसवीं शताब्दी विक्रम में दयानन्द सरस्वती ने इन सब के विरुद्ध इस बात का प्रकाश किया कि ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं हैं। वे ऋषि-प्रोक्त हैं, ईश्वरोक्त नहीं। इत्यादि। दयानन्द सरस्वती ने स्वपक्ष पोषणार्थ अनेक युक्तियाँ दीं। वे युक्तियाँ इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त ही हैं। उन के विरुद्ध जो उचित पूर्वपक्ष उठाया गया है, हम उसका उत्तर तो दें ही गे, पर कुछ एक सर्वथैव नये प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं। इन प्रमाणों से ब्राह्मणों का अनीश्वरोक्त होना सिद्ध होजायगा। अन्त में हम यह भी बतावेंगे कि इतने बड़े २ पुराने आचार्यों का इस बात में क्यों भ्रम होगया। लो अब प्रमाणों के बल को देखो, और सत्य को ग्रहण करो।

(क) गोपथ ब्राह्मण पू० २। १० ॥ में कहा है—

**एवमिमे सर्वे वेदा निर्मितः सकल्पाः सरहस्याः* सत्राह्वणाः*
सोपनिषत्काः* सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः
ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाको-
वाक्याः ।**

यहां ब्राह्मणकार स्वयं कह रहे हैं कि (१) कल्प (२) रहस्य (३) ब्राह्मण (४) उपनिषत् (५) इतिहास (६) अन्वाख्यान (७) पुराण (८) स्वर+ (ग्रन्थ) (९) संस्कार+ (ग्रन्थ) (१०) निरुक्त (११) अनुशासन (१२) अनुमार्जन और (१३) वाकोवाक्य आदि ग्रन्थ वेद नहीं हैं। जब ब्राह्मणकार स्वयं इन्हें वेद नहीं मानते, तो फिर हम क्यों इन्हें वेद मानें।

* प्रतीत होता है, इन साम्प्रतिक ब्राह्मणों से पहले, रहस्य अर्थात् आरण्य-कादि और उपनिषद् ब्राह्मणों का भाग नहीं थे।

† प्रातिशाल्यादि।

(ख) परम विद्वान्, वेदविद् भगवान् मनु अपने धर्मशास्त्र में कहते हैं—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।

सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ २ । १४० ॥

इस श्लोक में रहस्य शब्द आया है। “रहस्य” शब्द आरण्यक अथवा उपनिषद् का द्योतक है। उपनिषद् और आरण्यक आजकल ब्राह्मणों का भागमात्र हैं। मनु इनका वेद से पृथङ् निर्देश करते हैं। अतएव मनु जी की दृष्टि में ब्राह्मण वेद नहीं हैं।

मेधातिथि प्रभृति मनु के टीकाकार स्वपक्ष में इस आपत्ति को देख कर अनेक कल्पनाएं उठाते हैं, पर वे सब कल्पनाएं ऐसी ही हैं जो किसी अमत्य पक्ष को छिपा तो सकती हैं, हटा नहीं सकतीं।

प्रश्न—महामोहविद्रावण के लिखाने वाले राममिश्र शास्त्री आदि* तथा उस का लिखकर प्रकाशित करने वाला मोहनलाल स्वग्रन्थ के प्रथम प्रबोध में कहता है—
“तथा हि षष्ठेऽध्याये मनुः—

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ।

विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ २९ ॥

अत्र “औपनिषदीः श्रुतीः” इत्युक्त्या उपनिषदां श्रुतिसन्दवाच्यत्वं श्रुतिसन्दस्य च वेदान्नायपदपर्यायत्वम् । यथाह मनुरेव—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः । २ । १० ॥

अतएव—

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन् समाहितः ।

वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥ ६ । ९४ ॥

इत्यादि मानवशास्त्रे वेदान्तपदेनोपनिषदां परिग्रहः ।” इति

उत्तर—जिस ब्राह्मण को पूर्वपक्षी वेद मानता है, जब वही ब्राह्मण रहस्य, उपनिषद् और ब्राह्मण को वेद नहीं मानता, तो मनुजी उसके विरुद्ध कैसे कह सकते हैं। और मनुजी के अपने लेख में भी परस्पर विरोध नहीं होना चाहिये। अत एव मनु अध्याय २ के श्लोक ८-१५ तक का यही समन्वय है कि स्मृति के प्रतिपक्ष में श्रुति

* वेदान्ताचार्य मोहनलाल के मित्र वा अध्यापक श्रीपूज्य स्वा० अच्युतानन्दजी ने यह बात हम से कही थी।

और वेद शब्द यहां प्रयुक्त हुए हैं। स्मृति वेद के उतनी समीप नहीं जितने कि ब्राह्मण उपनिषद् आदि। वेदव्याख्यान होने से, ये वेद के बहुत समीप हैं। इसी लिये इन्हें वेद वा श्रुति कहा गया है। फिर भी उपनिषद् को उतना ऊँचा पद नहीं दिया। स्पष्ट मनु कह रहा है कि “औपनिषदीः श्रुतीः”। श्रुति शब्द का सर्वत्र वेदार्थ है भी नहीं। महाभारत आदि ग्रन्थों में लौकिक ऐतिह्य को भी श्रुति कहा है। देखो—

यत्र तपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः ॥

शल्यपर्व ४१। ३२ ॥

इसी प्रकार उपनिषद् में होने वाली परम्परा से सुनी हुई सच्चाई को “औपनिषदी श्रुतीः” कहा है। जो ऐसा न मानोंगे, तो मनु में परस्पर विरोध होने से मनु का ही प्रमाण न रहेगा। और मनु ६। ९४ ॥ में जो “वेदान्त” शब्द आया है, तो वहां “अन्त” का अर्थ समीप ही है। अतएव हमारे सिद्धान्त में कोई आपत्ति नहीं आती।

(ग) महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि भी कहते हैं—

सप्तद्वीपा वसुमती । त्रयो लोकाः । चत्वारो वेदाः । साङ्गाः सरहस्याः । १ । १ । १ ॥

(कीलहार्नि सं० पृ० ९)

यहां पर पतञ्जलि भी रहस्य अर्थात् उपनिषद् को वेदों से पृथक् मानता है। जब उपनिषद् आदि ब्राह्मण भाग वेदों से पृथक् हैं और वेद नहीं हैं, तो ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानना अज्ञान ही है।

प्रश्न—महाभाष्य में तो—

वेदे खल्वपि—“पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः” इत्युच्यते । १ । १ । १ ॥

(कील० सं० पृ० ८)

पुनः—

वेदशब्दा अप्येवमभिवदन्ति—

योऽग्निष्टोमेन यजते य उ चैनमेवं वेद ।

योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते य उ चैनमेवं वेद ।*

(कील० सं० पृ० १०)

* तैत्तिरीय ब्रा० ३। ११। ८। ५ ॥ इत्यादि।

तथा—

वेदे ऽपि—

य एवं विश्वसृजः सत्राण्यध्यास्त इति तेषामनुकुर्वस्तद्धत्
सत्राण्यध्यासीत सोऽप्यभ्युदयेन युज्यते ॥

(कौल० सं० पृ० २०)

इत्यादि पाठ हैं । ये पाठ ब्राह्मणों में ही मिलते हैं । इन से स्पष्ट हो जाता है कि पतञ्जलि मुनि ब्राह्मणों को वेद मानते थे ।

उत्तर—ब्राह्मणों की भाषा वह नहीं, जो मन्त्रों की भाषा है । न ही ब्राह्मणों की भाषा सर्वथा लौकिक है । ब्राह्मणों की भाषा प्रवचन की भाषा है । ब्राह्मण वेद-व्याख्यान है ।* वेद-व्याख्यान होने से तथा प्रवचन की भाषा में होने से ही इन्हें वेद के अत्यन्त सर्माप माना जाता है । जिस प्रकार से इस समय भी हम कल्पों को वैदिक तो मानते हैं पर साक्षात् ईश्वरप्रोक्त वेद नहीं, वैसे ही प्राचीन लोग भी ब्राह्मणों को वैदिक तथा औपचारिक दृष्टि से वेद कह देते थे ।

महाभाष्य के प्रस्तुत वाक्य में भी पतञ्जलि का यही अभिप्राय है । पतञ्जलि इस से पूर्व कात्यायन का वाक्य पढ़ता है—

यथा लौकिकवैदिकेषु ।

इसी पर चलते २ वह लोक के प्रतिपक्ष में ब्राह्मणों को वेदवत् मानकर उन का प्रमाण उद्धृत करता है । इस में और कोई बात नहीं । महाभाष्य में अन्यत्र भी ऐसा ही समझना ।

* सायण आदि पूर्वपक्षी लोग भी ऐसा ही मानते हैं—

तत्र शतपथब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वाद् व्याख्येय-
मन्त्रप्रतिपादकः संहिताग्रन्थः पूर्वभाषित्वात् प्रथमो भवति ।

काण्वसंहिता भाष्यम् पृ० ८ ।

तथा च

यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदस्तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्र-
व्याख्यानरूपत्वान्मन्त्रा एवादौ समान्नाताः ।

तैत्तिरीयसंहिता भाष्यम् पृ० ७ । आनन्दाश्रम सं० ॥

(घ) ऐतरेय ब्राह्मण ७ । १८ ॥ में लिखा है*—

ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः ।

ओमिति वै देवं, तथेति मानुषम् ।

पुनः काठक संहिता १४ । ५ ॥ में कहा है—

अनृतं हि गाथानृतं नाराशंसी ।

और शंतपथब्राह्मण १ । १ । १ । ४ ॥ में कहा है—

अनृतं मनुष्याः ।

इस से निश्चय होता है कि जो बात पूर्वोक्त ऐतरेय ब्रा० के प्रमाण से स्पष्ट होती है, वही सिद्धान्त काठक संहिता से प्रकाशित किया गया है । ऐतरेय ब्रा० में

*श्रौतसूत्रों में भी यही बात कही गयी है । आश्वलायन श्रौतसूत्र ९ । ३ ॥ में कहा है—

ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः ।

ओमिति वै देवं तथेति मानुषम् ॥

शाङ्खायन श्रौतसूत्र में अनेक गाथाओं को उद्धृत करके १५ । २७ ॥ में कहा है—

तदेतच्छौनःशेषमाख्यानं परःशतर्गाथमपरिमितम् ।

.....हिरण्यकशिपावासीनः प्रतिगृणाति ओमित्यृचः प्रति-
गरः । एवं तथेति गाथायाः । ओमिति वै देवं तथेति मानुषम् ॥

कात्यायन श्रौतसूत्र अध्याय १५ में कहा है—

शौनःशेषञ्च प्रेष्यति ॥ १५४ ॥

ओ३मित्यृचां प्रतिगरस्तथेति गाथानाम् ॥ १५६ ॥

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १८ । १९ ॥ में लिखा है—

शौनः शेषमाख्यायते ।

ऋचो गाथामिश्राः परःशताः परःसहस्रा वा ॥ १० ॥

हिरण्यकूर्चयोस्तिष्ठन्नध्वर्युः प्रतिगृणाति ॥ १२ ॥

ओमित्यृचः प्रतिगरः । तथेति गाथायाः ॥ १३ ॥

कहा गया है कि अमुक यज्ञ में बैठ कर गाथा के उत्तर में 'तथा' कहे। यहाँ 'तथा' मानुष है, यह स्वयं ब्राह्मण में स्वीकार किया गया है। ऋचः के प्रतिपक्ष में गाथा का उल्लेख स्पष्ट करता है कि जहाँ ऋचा देवी-ईश्वरीय है, वहाँ गाथा मनुष्योक्त है। शतपथ ब्रा० कहता है कि मनुष्य अनृतरूप है, और काठक संहिता ने कहा है कि गाथा और नाराशंसी भी अनृत हैं, अर्थात् मानवीय हैं।

पृष्ठ ८ पंक्ति ५ में हम ने जो प्रतिज्ञा की थी पूर्वोक्त प्रमाणां से वह सिद्ध हो गई, अर्थात् गाथाएं पौरुषेय हैं। यहाँ पौरुषेय गाथाएं ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर उद्धृत की गई हैं। देखें—

शतपथ १३।५।४।२, ३, ६, ७, ९, १६ ॥ इत्यादि।

ये गाथाएं सर्वथैव लौकिक भाषा में ही हैं। जिन ग्रन्थों में लौकिक भाषा वाली पौरुषेय गाथाएं पाई जावें और पाई ही न जाएं किन्तु उद्धृत की गई हों, वे ग्रन्थ वेद अर्थात् ईश्वरीय नहीं हो सकते। ब्राह्मण-ग्रन्थों में यह पाई जाती है, अतएव ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं। यदि ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद मानागे, तो ब्राह्मणोद्धृत "अनृत" गाथाएं ईश्वरकृत माननी पड़ेंगी। यह ब्राह्मण के ही विरुद्ध है। ब्राह्मण तो गाथाओं को मनुष्यकृत कह रहा है, फिर ब्राह्मण को वेद मानना अपने ही अज्ञान का प्रकाश करना है।

(ड) तैत्तिरीय ब्राह्मण १।३।२।६ ॥ में कहा है—

यद् ब्राह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशंस्यभवत् ।

अर्थ—जो वेद का मल था वह गाथा, नाराशंसी बन गया।

इस हीनोपमा से भी गाथा, नाराशंसी आदि को ब्रह्म अर्थात् वेद के तुल्य नहीं माना गया।

(च) तैत्तिरीयारण्यक २।९ ॥ और आश्वलायनगृह्यसूत्र ३।३।१-३ ॥ में कमशः कहा है—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्यान् गाथा नाराशंसीः ।

यद् ब्राह्मणानि कल्यान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति ॥

यहाँ इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी को ब्राह्मणों का विशेषण माना है। ब्राह्मणपद संज्ञी और इतिहासादि उसकी संज्ञा है। इस वाक्य से यहाँ प्रतीत है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राचीन इतिहासों, पुराणों (जगदुत्पत्ति सम्बन्धी बातों), कल्पों, गाथाओं और नाराशंसी आदि का ही संग्रह है। ये कल्प आदि भी मनुष्य प्रणीत ही थे, अतः ब्राह्मण-ग्रन्थ जो उनका संग्रहमात्र हैं, ईश्वरोक्त नहीं हो सकते।

प्रश्न-निरुक्त अध्याय ४, खण्ड ६ में कहा है—

तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृद्भूमिश्रं गाथामिश्रं भवति ।

यहां कहा है कि वेद में इतिहास और गाथा आदि मिश्रित हैं। इस से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि वेद भी मनुष्य-रचित है, तथा वेद और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं।

उत्तर—नहीं, इस से यह सिद्ध नहीं होता। यहां “तत्र” पद के साथ निरुक्तस्थ पूर्व वाक्य से “सूक्त” पद की अनुवृत्ति आती है। इसका अभिप्राय यह है कि ऋग्वेद के “उस सूक्त (? । १०५ ॥) में ब्रह्म अर्थात् वेद में ही कुछ मन्त्र ऐसे हैं, जो नित्य इतिहास को कहते हैं, और कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिन की पारिभाषिकी संज्ञा गाथा है। गाथा उन्हें इस लिये कहते हैं कि गाथारूप में आलङ्कारिक तौर पर उन में कुछ तथ्यों का वर्णन है।

प्रश्न—या तो गाथाएं लौकिक हो सकती हैं, या वेद की ऋचाओं को ही गाथा कहा जा सकता है। हम गाथा को दोनों प्रकार का कैसे मान सकते हैं।

उत्तर—जैसे श्लोक शब्द साधारण श्लोक के लिये भी प्रयुक्त होता है, और वेद-मन्त्रों के लिये भी प्रयुक्त हो जाता है, वैसे ही गाथा शब्द का भी द्वयर्थक प्रयोग है। शतपथ ब्रा० १४ । ७ । २ । ११, १२, १३ ॥ में निम्नलिखित याजुष मन्त्र को श्लोक कहा गया है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या रताः ॥४०।९॥

और साधारण श्लोकों को भी शतपथ में ही श्लोक कहा गया है, ऐसा हम पृष्ठ ३२ पर लिख चुके हैं।

गाथाएं लौकिक हैं, इसका ब्राह्मणान्तर्गत प्रमाण हम पहले कह आए हैं। अब दूसरे आचार्यों के प्रमाण सुनो। याज्ञवल्क्यस्मृति का टीकाकार आचार्य विश्वरूप १ । ४५ ॥ श्लोक पर लिखता है—

‘नाराशंस्यः पौरुषेय्यो यज्ञगाथाः ।

गाथा आत्मवादश्लोकाः । पुरुषकृत एव गाथा इत्यन्ये ।’

मेधातिथि मनु ९ । ४२ ॥ पर लिखता है—

गाथाशब्दो वृत्तविशेषवचनः । परम्परागताः श्लोकाः ॥

वाल्मीकि रामायण पश्चिमोत्तर शाखा अयोध्याकाण्ड अध्याय २५ में कहा है—

अपि चेयं पुरागीता गाथा सर्वत्र विश्रुता ।

मनुना मानवेन्द्रेण तां श्रुत्वा मे वचः कुरु ॥ ११ ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।

कामचारप्रवृत्तस्य न कार्यं ब्रुवतो वचः ॥ १२ ॥*

इससे स्पष्ट होता है कि पुरुषकृत श्लोकों को गाथा कहते हैं ।

काठक गृह्यसूत्र २५ । २३ ॥ तथा पारस्कर गृह्यसूत्र १ । ७ । २ ॥ से स्पष्ट होता है कि मन्त्रों को भी गाथा कहा गया है । ऐतरेय ब्रा० ६ । ३२ ॥ में आथर्वण २० । १२८ । १२० ॥ आदि कुन्ताप ऋचाओं को गाथा कहा है ।

अतएव हमारा कथन सब प्रमाणों से परिपुष्ट ही है ।

प्रश्न—आश्वलायन श्रौतसूत्र का टीकाकार नारायण तो सब गाथाओं को ऋचा ही मानता है । आश्वलायन श्रौतसूत्र ५ । ६ ॥ में आई हुई एक यज्ञगाथा का वह इस प्रकार अर्थ करता है—

गाथाशब्देन ब्राह्मणगता ऋच उच्यन्ते । यज्ञार्था गाथा यज्ञगाथा ।

आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।३।१॥ पर वृत्ति लिखते समय वह फिर कहता है—

गाथा नाम ऋग्विशेषाः ।

क्या इन प्रकरणों में उसका ऐसा कथन सत्य है ?

उत्तर—जब नारायण टीका लिख रहा था, तो उसके हृदय में हमारे वाला सत्य पक्ष अवश्य उपस्थित हुआ होगा । उसी से भयभीत होकर ही उसने यह लिख दिया । जब ब्राह्मण स्वयं ऐसी गाथाओं को मानवी कहता है तो नारायण के कहने का कौन प्रमाण करेगा । नारायण वाली भूल ही सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक २ । ९ ॥ के भाष्य में की है, जब वह “गाथाः मन्त्रविशेषाः” कहता है । यहाँ तो “यद् ब्राह्मणानि” कह कर शेष इतिहास, गाथा आदि को उनका विशेषण माना है । अतः मानवी गाथा ही अभिप्रेत हैं ।

प्रश्न—इस पूर्वोक्त “यद् ब्राह्मणानि” वाक्य के संज्ञासंज्ञिभाव-युक्त अर्थ करने में क्या प्रमाण है ।

* वङ्गशाखा, अध्याय २२ ॥ पाठान्तर—कामकार० ।

पञ्चतन्त्र, पूर्णभद्र के पाठ में यह श्लोक ऐसे है—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।

उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शासनम् ॥ १ । १६९ ॥

यही श्लोक महाभारत में कुछ पाठान्तर से आया है ।

उत्तर—आश्वलायन गृह्यसूत्र में इससे पूर्व ऋगादि चारों वेदों के साथ 'यद्' शब्द पढ़ा है। वैसे ही "यद्" शब्द "ब्राह्मणानि" पद के साथ भी पढ़ा है। अन्य इतिहास आदि के साथ "यद्" शब्द नहीं पढ़ा। इससे ज्ञात होता है कि सूत्रकार की दृष्टि में इतिहासादि ब्राह्मणान्तर्गत बातों का नाम भी माना जाता था। इस लिये इस स्थान में इतिहासादि को स्वतन्त्र न मानकर उन्हें ब्राह्मणों की संज्ञा बना दिया है।

प्रश्न—ब्राह्मणों की इतिहासादि संज्ञा में क्या कोई और भी प्रमाण है।

उत्तर—हम पहले प्रकरण में लिख चुके हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषियों वा अन्य जनों के नाम लेख पूर्वक उन के इतिहासादि कहे हैं। ब्राह्मणों में उतने ही नहीं, और भी सहस्रों ऐसे ही स्थल हैं। देखो—

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुः ।
मैत्रेयी च कात्यायनी च ।

शतपथ १४ । ७ । ३ । १ ॥

तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ।

तैत्तिरीय ब्रा० ३ । ११ । ८ । १४ ॥

इत्यादि। इन वाक्यों का इतिहास से भिन्न अर्थ हो भी नहीं सकता। और निश्चय ही इन लोगों से पहले ये ग्रन्थ भी न थे। अतएव इतिहासादि युक्त होने से ही इन ब्राह्मणों की भी इतिहासादि संज्ञा अवश्य है।

प्रश्न—अनेक मन्त्रों में भी तो ऐसा ही इतिहास है। पुनः मन्त्रसंहिताओं की इतिहास संज्ञा क्यों नहीं मानते।

उत्तर—मन्त्रों में सामान्य इतिहास है। निरुक्त आदि आर्ष शास्त्रों में जो बहुधा तत्रेतिहासमाचक्षते । २ । १० ॥ इत्यैतिहासिकाः । २ । १६ ॥ ऐसा कहा गया है, तो इसका अभिप्राय भी नित्य सामान्य इतिहास से है। हां, कहीं २ मन्त्रार्थ में तो नहीं, पर मन्त्र के तत्त्व को स्पष्ट करने के लिए लौकिक इतिहास भी कहा गया है। मध्यम-कालीन साधारण भाष्यकारों ने इन लेखों का अभिप्राय न समझ कर वेदार्थ को दूषित किया है। मन्त्रों के पद यौगिक वा योगरूढ हैं। ऐसा ही सब वेदवित् मानते आये हैं। भगवान् जैमिनि कहते हैं—

परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम् । १ । ३१ ॥

अर्थात् मन्त्रान्तर्गत सब नाम सामान्य हैं, परन्तु ब्राह्मणादिकों में ऐसी बात

नहीं है। ब्राह्मणों में तो ऋषियों की वंशावलियां* दी हैं। पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि का इतिहास है।

अतएव ब्राह्मणों की इतिहासादि भी संज्ञा है, और ब्राह्मण वेद नहीं।

(छ) ब्राह्मणों की इतिहासादि संज्ञा में और भी प्रमाण देखो। महर्षि गोतम† कहते हैं—

स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः।

२।१।६४॥

पुराकल्प शब्द पर भाष्यकर्ता वात्स्यायन लिखता है—

ऐतिह्यसमाचरितो विधिः पुराकल्प‡ इति।

**तस्माद्वा एतेन ब्राह्मणा बहिष्पवमानं सामस्तोममस्तौषण्
योनेर्यज्ञं प्रतनवामहा इत्येवमादिः।**

अर्थात् ऐतिह्य अर्थात् इतिहासयुक्त कथन पुराकल्प कहाता है। वात्स्यायन पुराकल्प के उदाहरण में किसी ब्राह्मणपाठ को ही उद्धृत करता है। यहां प्रकृत विषय भी शब्द विशेष परीक्षा प्रकण में ब्राह्मण-वाक्य-विभाग का चल रहा है। अतएव जब वात्स्यायन आदि मुनि ब्राह्मणों में स्वयं इतिहास को मानते हैं तो हम यदि उन को इतिहास भी एक संज्ञा मान लें, तो इस में क्या दोष है।

प्रश्न—जब अनेक ऋषि मुनि मन्त्र ब्राह्मणों को वेद मानते आए हैं, तो फिर तुम ऐसी आपत्तियां उठा के क्या सिद्ध करना चाहते हो। देखो—

* वंश आदि वर्णन पुराण का एक अंग है। यह ब्राह्मणों में प्रायः मिलता है। इसी लिये पुराण शब्द कहीं २ ब्राह्मणों का विशेषण है।

† गोतम साधारण ग्रन्थकार नहीं, प्रत्युत ऋषि है। अतएव महाभारत-काल का वा उस से भी बहुत पहले का है। वात्स्यायन २।१।५७ ॥ सूत्र पर स्वयं कहता है—

तस्येति शब्दविशेषमेवाधिकुरुते भगवानृषिः।

पाश्चात्य लेखक वा उन के कतिपय एतद्देशीय शिष्य जो गोतम-सूत्रों को ईसा की प्रथम शताब्दी के समीप का मानते हैं, तो यह उनकी सरासर भूल है। ईसा से सहस्रों वर्ष पहले तो न्याय भाष्यकार वात्स्यायन ही हो चुका था।

‡ तुलना करो महामाध्य (कील० सं० भाग १ पृ० ५)

पुराकल्प एतदासीत्-संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते।

तुलना करो वाक्यपदीय टीका १।१५६ ॥ श्रूयते हि पुराकल्पे।

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।

आपस्तम्बश्रौत्र सूत्र २४ । १ । ३१ ॥ सत्याषाढ श्रौतसूत्र १ । १ । ७ ॥
कात्यायन परिशिष्टप्रतिज्ञासूत्र । बोधायन गृह्यसूत्र २ । ६ । ३ ॥

तथा—

मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते ।

बोधायनगृह्यसूत्र २ । ६ । २ ॥

पुनः—

आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च ।

कौशिक सूत्र १ । ३ ॥

इत्यादि आर्ष प्रमाणों के हांते हुए कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं ।

उत्तर—श्रौतसूत्रों का जन्मदाता जब ब्राह्मण स्वयं कह चुका है कि वह वेद नहीं, तो कल्पसूत्रों के इन स्मार्त्त प्रमाणों का क्या मूल्य हो सकता है । जैमिनि मुनि मीमांसा दर्शन के स्मृतिपाद* में बलपूर्वक कहते हैं कि कल्पसूत्र स्मार्त्त हैं । उनका उतना ही प्रमाण है, जितना स्मृति का । स्मृति परतः प्रमाण है । उसकी अपेक्षा परतः प्रमाण होते हुए भी ब्राह्मण सहस्रों गुणा अधिक प्रमाण है । नहीं नहीं, वेदव्याख्यान होने से अत्यन्त पूज्य है । वे ऋषि जो इन ब्राह्मणों का प्रवचन कर चुके थे, कदापि इनके विरुद्ध प्रतिज्ञा नहीं कर सकते । इस लिये जब कुछ एक आचार्यों ने मन्त्र ब्राह्मण को वेद कहा है, तो वह औपचारिक भाव से ही है । जैसे आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि वेद ७ हाते हैं, और जैसे तन्त्रों की उक्तियों को भी मन्त्र कहा गया है, पुनः जैसे शतपथ १३ । ४ । ३ । १२, १३ ॥ में—

इतिहासो वेदः । पुराणं वेदः ।

इत्यादि, इन सबको औपचारिक भाव से वेद कहा गया है, वैसे ही आपस्तम्बादि श्रौतसूत्रों में यह औपचारिक लक्षण है । और यह भी तो अभी निश्चय नहीं कि बोधायनादि सूत्रों में यह वाक्य उन्हीं ऋषियों का है अथवा परम्परा में आने वाले उनके शिष्य प्रशिष्यों का ।

प्रश्न—ब्राह्मण तो स्वयं इतिहास और पुराण को अपने से पृथक् मानता है । फिर इतिहास और पुराण ब्राह्मणों की संज्ञा कैसे हो सकती है । देखो वात्स्यायन न्यायभाष्य में क्या कहता है—

* १ । ३ । ११-१४ ॥

प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते । ४ । १ । ६२ ॥

अर्थात् प्रमाणरूप ब्राह्मण से इतिहास और पुराण की प्रामाणिकता ज्ञात होती है ।

• फिर शतपथ ब्रा० १३ । ४ । ३ । १२, १३ ॥ में कहा है—

अथाष्टमेऽहन् । किञ्चिदितिहासमाचक्षीत ।

अथ नवमेऽहन् । तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीत ।

उत्तर—हम ने कब कहा है कि इन ब्राह्मणों से पूर्व कोई इतिहास और पुराण न थे । प्रत्युत हम तो पृ० २९ पर स्वयं अनेक प्रमाणों से इन का अस्तित्व स्वीकार कर चुके हैं । इन्हीं की बहुत सी सामग्री का प्रवचन की भाषा में इन ब्राह्मणों में समावेश किया गया है । इसी कारण इन ब्राह्मणों की इतिहासादि भी संज्ञा है । और इसी कारण पुराण शब्द अनेक स्थलों में विशेषणरूप से ब्राह्मणों का द्योतक बना ।

यास्काचार्य ने निश्च ३ । १८ ॥ में—

पुराणं कस्माद् । पुरा नवं भवति ।

पुराने अथवा पुराण का यह निर्वचन किया है कि—“प्रथम होते समय नया हो ।” ऐसी वार्ताएं ब्राह्मणों में सर्वत्र पाई जाती हैं । इस लिये भी पुराण का लक्षण ब्राह्मण में चरितार्थ हो जाता है । मन्त्रों में सब सामान्य वर्णन है । अतः ब्राह्मण आदि वेद नहीं हो सकते । मन्त्रसंहिताएं ही वेद हैं ।

(ज) भगवान् पाणिनि ने अपने अष्टक में ये मंत्र कहे हैं—

दृष्टं साम । ४ । २ । ७ ॥

तेन प्रोक्तम् । ४ । ३ । १०१ ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु । ४ । ३ । १०५ ॥

उपज्ञाते । ४ । ३ । ११५ ॥

कृते ग्रन्थे । ४ । ३ । ११६ ॥

इनका अभिप्राय यह है कि—

१—मन्त्र दृष्ट हैं ।

२—शाखाएं (मूल वेदों को छोड़ कर), ब्राह्मण और कल्प प्रोक्त हैं ।

३-पाणिनि आदि के ग्रन्थ स्फूर्ति से प्रकट हुए हैं ।

४-साधारण ग्रन्थ कांट छांट के बनाये जाते हैं ।

यहां भी ब्राह्मणों को मन्त्रों जैसा ऊंचा पद नहीं दिया गया । मन्त्र रष्ट्र हैं और ब्राह्मण प्रोक्त हैं । आज तक किसी विद्वान् ने ब्राह्मणों की ऋषि आदि अनुक्रमणी नहीं सुनी । हां संहिताओं की ऋषि अनुक्रमणी तो होती है । और जो संहिताएं शाखा नाम से व्यवहृत होती हैं, तथा जिन में ब्राह्मण भाग सम्मिलित हैं, उन की अनुक्रमणिकाओं में भी ब्राह्मण भागों के ऋषि नहीं दिये । हां प्रजापति को सब ब्राह्मणों का ऋषि तो कहा है, अर्थात् प्रजापति परमात्मा ने ही वेदार्थ सुझाया । तर्निक विचारों जो चारायणीय संहिता का आर्षाध्याय है, उसे मन्त्रार्षाध्याय कहते हैं । उस में ब्राह्मण भाग के एक दो सामान्य ऋषि तो कहे गये हैं, पर वैसे ब्राह्मण भाग के ऋषि नहीं दिये गये । स्थानक १८ से आगे उस में ऐसा पाठ है—

ब्राह्मणाः प्रजापतेः । ब्राह्मणपठितान् मन्त्रानथोदाहरिष्यामः ।

यहां सामान्यरूप से ब्राह्मणों का प्रजापति ऋषि कृकर ब्राह्मणान्तर्गत मन्त्रों के तो ऋषि दिये हैं, पर ब्राह्मणों का कोई ऋषि नहीं दिया । प्रजापति नाम परमात्मा के अतिरिक्त ऋषि विशेष का भी है । वह ब्रह्मा का सर्मापवर्ता ही था । कहीं २ ब्रह्मा का नाम ही प्रजापति है । वही ब्राह्मणों का आदि प्रवचनकर्ता है । ब्राह्मणरूप में वेदव्याख्यान करने से ही उसे कहीं २ ब्राह्मणों का ऋषि कहा गया है । जहां और दो चार स्थलों में ब्राह्मणों के ऋषि कहे गये हैं, वे भी इसी गौण भाव से कहे गये हैं ।

प्रश्न—वात्स्यायनमुनि तो स्पष्ट ही ब्राह्मणों के भी ऋषि मानते हैं । वहां उन्होंने ने गौण मुख्य भाव भी नहीं कहा । फिर तुम्हारा पक्ष कैसे माना जावे । देखो वात्स्यायन का लेख—

**य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहास-
पुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति । ४ । १ । ६२ ॥**

उत्तर—यदि तुम वात्स्यायन भाष्य को आर्ष रीति से पढ़े होत तो कर्मा ऐसा प्रश्न न करते । वात्स्यायन तो स्पष्ट ही हमारा पक्ष कह रहा है । सूत्र २ । २ । ६७ पर वह लिखता है—

य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः ।

अतएव दोनों वाक्यों की तुलना से “ब्राह्मणस्य द्रष्टारः” का अर्थ “वेदार्थानां द्रष्टारः” ही है । हम ब्राह्मणों को वेदव्याख्यान कह ही चुके हैं । हां, उस व्याख्यान

के साथ २ ऋषियों ने इतिहास, पुराणादि का भी प्रवचन कर दिया है। निरुक्त में भी कहा है—

**ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता १०।१०॥१०।४६
इत्याख्यानम् ११।१९ ॥ ११।२५ ॥ ११।३४ ॥**

इस का भी यही अभिप्राय है कि जब वेदार्थ इतिहासादि से संयुक्त कहा जाता है, तो वह प्रिय और रुचिकर लगता है। अस्तु ! यदि ब्राह्मणों को भी वेद मानोगे तो उनका अर्थ किन ग्रन्थों में बताओगे। मन्त्रार्थ तो ब्राह्मण में विद्यमान है, पर ब्राह्मणार्थ कहीं नहीं। अतः मन्त्र ही वेद है, और ब्राह्मण उनका व्याख्यान-माल है।

ऋषियों को वेदार्थ का ज्ञान तो परमात्मा ने ही कराया। तब ऋषियों ने उस अर्थ को आख्यानादि के साथ प्रवचन की भाषा में कहा। वही वेदार्थ ब्राह्मण हुआ। इसी लिये वात्स्यायन ने वेदार्थद्रष्टा कह कर सारी बात को खोल दिया है।

और भी जहाँ कहीं आर्ष ग्रन्थों में ब्राह्मण वाक्यों के साथ “अपश्यत्” आदि क्रिया पद लगा कर उनका देखना कहा है, तो वहाँ भी पूर्वोक्त भाव से ही कहा है। वेदार्थरूप ब्राह्मणों के उन भावों को ही ऋषियों ने मन्त्रों में देखा था। तब प्रवचन की भाषा में ऋषियों ने उन तथ्यों का कहा। ब्राह्मण वाक्य जैसे के तैसे देखे नहीं गये। मूल मन्त्र ही नित्य-आनुपूर्वी* के साथ देखे गये हैं। इसी अभिप्राय से निरुक्त २।११॥ में निम्नलिखित ब्राह्मण वाक्य उद्धृत है—

**तद् यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् ऋषयो
ऽभवंस्तदृषीणामृषित्वम् । इति विज्ञायते ।†**

ब्रह्म नाम वेद अर्थात् मन्त्रों का ही है। इसी ब्रह्म का ब्रह्मा आदि द्वारा व्याख्यान होने से ब्राह्मण नाम पड़ा। अतएव ब्रह्म को तो ऋषियों ने स्पष्ट देखा, ब्राह्मणों को वैसे नहीं। जैसा हम पूर्व कह चुके हैं, ब्राह्मणों का भावमात्र देखा गया था। इस

* यह सोमांसादि सर्व शास्त्रकारों का मत है। ब्राह्मण तो क्या साधारण शाखाओं में नित्य आनुपूर्वी नहीं है। इस लिये ये वेद कैसे हो सकते हैं। शाखा आदिकों में आनुपूर्वी अनित्य है, इसका प्रमाण महाभाष्य ४।३।१०१॥ पर देखो—

यद्यप्यर्थो नित्यो या त्वसां वर्णानुपूर्वी सानित्या ।

तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्यलादकमिति ॥

† तुलना करो तैत्तिरीयारण्यक २ । ९ ॥

में प्रमाण भी है। गोपथ ब्राह्मण पू० १। १२ ॥ में कहा है—

स एतं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत् ।

यहां यज्ञ का देखना कहा है। यज्ञ क्रिया है। इस क्रिया का भाव ऋषियों ने मन्त्रों में देखा। वैसे ही ब्राह्मण वाक्यों का भाव भी उन्होंने ने जाना था। पुनः जैसे महाभाष्य आदि में—

पश्यति त्वाचार्यः । (कील० सं० भाग १ पृ० २४)

सैकड़ों बार ऐसा पाठ श्रद्धा से कहा गया है, वैसे ही कहीं २ अर्थवादारूप से ब्राह्मणों के लिये “दृश” धातु का प्रयोग हुआ है।

प्रश्न—महामांहविद्रावण का कर्ता कहता है—

किञ्च परमर्षिर्गोतमो वेदप्रामाण्यनिरूपणावसरे स्थूणानि खननन्यायेन वेदप्रामाण्यं द्रढयितुमेवाऽऽशशङ्के “तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः ।” तस्य वेदस्याप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः तत्रानृतं यथा “पुत्रकामः पुल्लष्टया यजेत्” अनुष्ठितायामपि चेष्टा न युज्यन्ते पुरुषाः पुल्लैरिति द्रष्टार्थस्यास्य वाक्यस्याऽप्रामाण्ये “अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम” इत्यदृष्टार्थकस्य वाक्यस्य प्रामाण्ये कथमाश्वासः । अत्र हि सूत्रस्थतत्पदेन पराप्रष्टुमिष्टस्य वेदस्याऽप्रामाण्यमाशङ्कमानः “अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम” इति ब्राह्मणस्याप्रामाण्यं दर्शयामास गोतमः । यदि नाम ब्राह्मणं न वेदस्तर्हि वेदप्रामाण्यसाधनावसरे ब्राह्मणस्याप्रामाण्यप्रदर्शनं कर्णस्पर्शे कटिचालनायितं स्यात् । न हि प्रेक्षवान् ‘मैत्रवाक्यं न विश्वसिर्हा’ ति कञ्चन बोधयश्चैत्रवाक्यस्य मिथ्यात्वं प्रसाधयेत् तदवश्यं ब्राह्मणं वेद इति परमर्षिरनुमन्यत इति । नच सूत्रस्थतत्पदेन परमर्षिर्नामिप्रैति निर्दोष्टम् “अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम” इति ब्राह्मणवाक्यम् । अपितु यत्किञ्चिदन्यदेव संहितावाक्यमिति सर्वं सिकताकृपायितमिति वाच्यम् ।*

“तदप्रामाण्यम्” इस न्याय सूत्र से वेद का प्रमाण सिद्ध करने के लिये पूर्व पक्ष किया है। उस पर भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन जी ने ब्राह्मण पुस्तकों के उदाहरण दिए हैं। इससे न्यायकर्ता महर्षि का अभिप्राय प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण पुस्तक भी वेद ही है क्योंकि वेद का प्रमाण सिद्ध करने में अन्य का उदाहरण देना नहीं बन

* ऋषि दयानन्द सरस्वती ने गोतम के प्रमाण से ब्राह्मणों का वेद न होना सिद्ध किया था। उसका यह उत्तर मोहनलाल ने लिखा। इसका उचित, पर पुनरुक्त-दोष-पूर्ण उत्तर भीमसेन ने आर्यासद्धान्त चैत्र संवत् १९४५ भाग १, अङ्क ११, पृ० १६६, १६७ पर दिया। उसी उत्तर को कुछ काट कर, हम ने यहाँ धरा है।

सकता इस पर हम पूछते हैं कि महामोहविषाणवकर्ता जी ! कहिये तो सही न्यायदर्शन में यह कौन प्रकरण है ? क्या आपने इसको वेदप्रामाण्य परीक्षा प्रकरण समझा है ? वा अन्य कोई । यदि वेद परीक्षा प्रकरण समझा है तो कहिये कि वेद परीक्षा प्रकरण के हानि में क्या नियम है ? तत् शब्द से पूर्व प्रतिपादित विषय लेना यह तो सब आर्थों का सिद्धान्त ही है पर आप कहिये कि “ तद् प्रामाण्यम्० ” इस सूत्र से पहिले वेदशब्द किस सूत्र में पढ़ा है ? जो तत् शब्द से लेना चाहिये ।

“... इन लोगों ने विश्वनाथ भट्टाचार्य कृत न्यासूत्र की वृत्ति भी नहीं देखी ? जो प्रकरण का नाम तो मान्य हो जाता । ... विश्वनाथ ने इस प्रकरण का नाम “शब्द-विशेषपरीक्षा” प्रकरण रक्खा है । सो न्यायभान्य के अनुकूल है ।* और भाष्यकार वात्स्यायन ऋषि ने भी लिखा है कि “तस्य शब्दस्य प्रमाणत्वं न सम्भवति” उस पूर्वोक्त शब्द का प्रमाण मानना ठीक नहीं है अर्थात् उक्त सूत्र में तत् शब्द करके शब्दप्रमाण का आकर्षण करना चाहिये, और पूर्व से शब्दपरीक्षा का प्रसङ्ग भी चला ही आता है । यद्यपि शब्द प्रमाणान्तर्गत वेद भी आता है इसी लिये हम यह प्रतिज्ञा नहीं करते कि शब्द विशेष परीक्षा कहने में वेद की परीक्षा न आवेगी परन्तु यह प्रतिज्ञा अवश्य करते हैं कि शब्द विशेष परीक्षा में केवल मूलवेद ही लिये जावें और ब्राह्मणादि न लिये जावें यह कोई सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि शब्द सामान्य में हम लोगों के विश्वास योग्य व्यवहार के शब्द भी आ सकते हैं और शब्द विशेष कहने से श्रुति स्मृति ही ली जावेगी । इस में भी मूल वेद सूर्य के समान स्वतः प्रकाश स्वरूप है उस की परीक्षा करना सर्वाक्ष में ठीक नहीं । जैसे सूर्य को देखने के लिये द्वितीय सूर्य वा दीपकादि की अपेक्षा नहीं होती वैसे किसी अन्य प्रमाण से वेद की परीक्षा करना नहीं बनता । इसी कारण शब्द विशेष परीक्षा में महर्षि वात्स्यायन जी ने विशेष कर ब्राह्मण भागों के उदाहरण दिये हैं । जो कुछ वेद परीक्षा हो सकती है तो वेद से ही हो सकती है । और बड़ा भारी आश्चर्य तो यह है कि महामोहविषाणवकर्ता जिन न्यायकर्ता महर्षि के प्रमाण से अपने पक्ष को सिद्ध करना चाहते हैं उन्हीं ऋषि के उसी प्रमाण से इन का पक्ष खण्डित होता है किन्तु सिद्ध कुछ भी नहीं होता । सूत्रकार और भाष्यकार ऋषियों ने “ तद् प्रामाण्यम्० ” इस सूत्र से पूर्व कहीं भी वेद शब्द का नाम नहीं लिया । इसी से इस सूत्र में तत् शब्द से वेद का परामर्श नहीं किया किन्तु ~~शब्द~~ का परामर्श किया । और ऋषि लोग ऐसा अप्रसङ्ग वर्णन इन लोगों के तुल्य

* वात्स्यायन भान्य के भी अनेक छपे ग्रन्थों में इस प्रकरण को “शब्दविशेष परीक्षा प्रकरण ही लिखा है । म०दत्त ।

क्यों करें ? क्योंकि ऋषियों में पक्षपातादि दोष नहीं होते हैं। ऋषि लोगों ने कहीं २ वेद विचार प्रकरण में ब्राह्मण पुस्तकों के वाक्य भी रक्खे हैं सो व्याख्यान व्याख्येय का तादात्म्य सम्बन्ध मान के “ तदेव सूत्रं विगृहीतं व्याख्यानं भवति ” कहा है अर्थात् व्याख्येय मूल पुस्तक में जो पद हैं उन्हीं को लौट पौट कर वा उपयोगी अन्य पद लगा कर अन्वित कर देना व्याख्यान कहाता है। इस कारण ब्राह्मण वाक्य वेद विचार प्रकरण में लेना अनुचित नहीं अथवा ब्राह्मण वाक्यों को वेद के तुल्य मानकर उदाहरण देना बन सकता है। “छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति” इस के अनुसार जब व्याकरणादि के सूत्रों में वेद के तुल्य कार्य होते हैं तो वेद के अति निकटवर्ती ब्राह्मणों में वेद तुल्य कार्य होंगे तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। यदि वेद में जैसे कार्य होते हैं वैसे ब्राह्मणों में होने से उनको मूल वेद मान लिया जावे और मनुष्य बुद्धिरचित न माना जावे तो सूत्रादि को भी ऋषि रचित न मानना चाहिये क्योंकि वहां भी छन्दोवत् कार्य होते हैं तो उनको भी वेद मान लिया जावे ? जब ऐसा नहीं होता तो ब्राह्मण भी मूल वेद नहीं होसकते और ब्राह्मण का मनुष्यबुद्धिरचित होना उन्हीं के पद वाक्यों की रचना से सिद्ध हो जाता है किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं।” इति।

इसके आगे सूत्र २।१।६१॥ में जो वात्स्यायन का लेख है, उससे भी ब्राह्मण-ग्रन्थों का वेद न होना ही सिद्ध होता है। वात्स्यायन कहता है—

प्रमाणं शब्दः । यथा लोके । विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः ।

अर्थात्—शब्द-प्रमाण मानना ही पड़ेगा। जैसे व्यवहार में शब्द प्रमाण माने बिना काम नहीं चलता, वैसे ही आसों के उपदेश को भी प्रमाण मानना चाहिये। और जैसे व्यवहार में त्रिविध वाक्य विभाग है, वैसे ही ब्राह्मणों में भी हैं। जैसे व्यवहार में पुराकल्प आदि हैं, वैसे ही ब्राह्मणों में भी हैं। परन्तु श्रुति सामान्य है। इसके विपरीत ब्राह्मण में इतिहास है। अतएव इतिहासादि होने से ब्राह्मणों के शब्द मन्त्रों की अपेक्षा लौकिक ही हैं। इस लिये ब्राह्मण वेद नहीं।

प्रश्न—मोहनलाल कहता है पूर्वोक्त वाक्य का भाव ऐसे कहना चाहिये—

“प्रमाणं शब्दो यथा लोके” इति सादृश्यार्थक यथापदघटितं, ब्रूते च तथेति। लोके यथा शब्दप्रमाणं तथा वेदेपीत्यध्याहार्यम्। वेदे ब्राह्मणरूपे ब्राह्मणसंज्ञकानां वाक्यानां विभागस्त्रिविधः इत्यर्थस्य तात्पर्यविषयत्वान्।”

उत्तर—यह भी मोहनलाल की भूल ही है। यहां “लोक” शब्द लौकिक ग्रन्थों के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ। प्रत्युत व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के लिये हुआ है। अतः तथा के साथ वेद पद का अध्याहार निरर्थक ही है। और २।१।६५ ॥ सूत्र पर जो वात्स्यायन लिखता है—

**यथा लौकिके वाक्ये विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वमेवं
वेदवाक्यानामपि विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वं भवितुमर्हतीति ।**

इसका यही अभिप्राय है कि यद्यपि वात्स्यायन ने “वेदवाक्यानाम्” पद के आगे “ब्राह्मण” पद नहीं पढ़ा, तथापि यहां औपचारिक भाव से ही वेद शब्द का प्रयोग हुआ है। औपचारिक भाव से इतना कह देने से ही ब्राह्मण वेद नहीं माने जा सकते।

प्रश्न—तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि यहां वेद शब्द का प्रयोग औपचारिक भाव से है।

उत्तर—वात्स्यायन आदि मुनि जो वेद, ब्राह्मण को जानते थे, वे उनके विरुद्ध नहीं कह सकते थे। हम सिद्ध कर चुके हैं कि ब्राह्मण अपने को वेद से भिन्न वा मनुष्यकृत बताता है। पुनः वात्स्यायन इसके विरुद्ध कैसे समझ सकते थे। अतः उनका प्रयोग औपचारिक ही है। ब्राह्मण-ग्रन्थों के वेद न होने में और भी प्रमाण देखो।

(ज्ञ) शतपथ ब्राह्मण १४।६।१०।६ ॥ में कहा है—

**ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं
विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राप्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि
वाचैव सम्राट् प्रजायन्ते ।**

लग भग ऐसा ही पाठ शतपथ १४।५।४।१० ॥ में भी आता है। यहां सूत्रादिवत् उपनिषदों को स्पष्ट वेदों से पृथक् माना है। जब ब्राह्मणकार स्वयं ब्राह्मण विभागों अर्थात् उपनिषदों को वेद नहीं मानते, तो फिर ब्राह्मण ग्रन्थ वेद कैसे हो सकते हैं।*

* आर्ष ग्रन्थों का तो क्या कहना, उस स्मृति में भी जो याज्ञवल्क्य के नाम मदी जाती हैं, इसी विचार के चिन्ह पाये जाते हैं। देखो अध्याय ३—

यतो वेदाः पुराणं च विद्योपनिषदस्तथा ।

श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यत्किञ्चिद्वाङ्मयं क्वचित् ॥ १८१ ॥

वेचारा विश्वरूप इस आपत्ति को देख कर कइता है—

उपनिषदां पृथग्वचनं वेदभागान्तरस्य तादर्थ्यप्रदर्शनार्थम् ।

प्रश्न—सनातनधर्मोद्धार का कर्ता नकछेदराम खण्ड २ पृ०५३० पर लिखता है—

“जहाँ केवल मन्त्रों को कहना होता है वहाँ केवल ऋक् आदि शब्दों ही का प्रयोग होता है जैसे ‘अहे बुधिय’ इत्यादि मन्त्रों में और जहाँ मन्त्र और ब्राह्मण के समुदाय को कहना होता है वहाँ केवल ऋक् आदि शब्द का प्रयोग नहीं होता किन्तु ऋग्वेद आदि शब्दों ही का प्रयोग होता है जैसे ‘एवं वा अरे०’ इत्यादि पूर्वोक्त ब्राह्मण वाक्य में ।”

क्या यह लेख उचित है ।

उत्तर—ऐसे लेख प्रकट करते हैं कि लेखक वैदिक वाङ्मय से अपरिचित ही है । मध्यम-कालीन मीमांसकों के कुछ प्रमोत्पादक लेख पढ़ कर ही उसने ऐसा लिख दिया है । नकछेदराम ने जो प्रमाण ‘एवं वा अरे’ शतपथ से उद्धृत किया है, उसे ही नहीं देखा । वहाँ भी तो ऋग्वेदादि से उपनिषदों को पृथक् कहा है । काशी के पण्डित ने अपने दिये प्रमाण को ही जब पूरा नहीं विचारा, तो और वह क्या लिखेगा ।

ऋक् पद मन्त्रों के लिये आवे, और ऋग्वेदादि मन्त्र ब्राह्मण के समुदाय के लिये बर्ते जावें, ऐसा कोई नियम नहीं । ये दोनों शब्द मन्त्रसंहिता के लिये ही प्रयुक्त होते रहे हैं । इसमें प्राचीन ब्राह्मणों के प्रमाणों को देखो । शतपथ ब्राह्मण १३ । ४ । ३ ॥ की अनेकों कण्डिकाओं में क्रमशः कहा है—

तानुपदिशति—ऋचो वेदः.....ऋचांश्च सूक्तं व्याचक्षण ॥३ ॥

तानुपदिशति—यजूंषि वेदः.....यजुषामनुवाकं व्याचक्षण ॥६॥

तानुपदिशति—आथर्वणो वेदः...अथर्वणामेकं पर्वं व्याचक्षण ॥७॥

तानुपदिशति—सामानि वेदः...साम्नां दशतं ब्रूयात् ॥ १४ ॥

अब विचारने की वार्ता है, कि यहाँ वेद शब्द केवल ऋगादि के लिये ही प्रयुक्त हुआ है । ऋगादि मन्त्र हैं । और ऋग्वेदीय आदि ब्राह्मणों में सूक्त आदि अवान्तर विभाग है भी नहीं । इस लिये ऋग्वेदादि शब्द भी मन्त्र संहिताओं के लिये ही बर्ते गये हैं, ब्राह्मणों के लिये नहीं, ऐसा मानना ही युक्तियुक्त है ।

शतपथ के इसी प्रकरण की ८, ९, १० कण्डिकाओं में जो अङ्गिरसो वेद, सर्पविद्या वेद, देवजनविद्या वेद, संज्ञाएं हैं, तो यह अथर्ववेद के अवान्तर विभागों के ही नाम हैं । इन सब में ‘पर्व’ विद्यमान हैं । शेष भाषावेद, इतिहासवेद, पुराण वेद, परम्परा से आने वाले संग्रहमात्र हैं । ये पूरे ग्रन्थरूप में नहीं हैं । अथवा इनका अवान्तर विभाग नहीं है । इसी लिये इनके साथ कहा है—

कांचिन्मायां कुर्यात् । ११ ॥ कंचिदितिहासमाचक्षीत् । १२ ॥

किञ्चित् पुराणमाचक्षीत् । १३ ॥

इन तीनों के साथ, जैसा हम पूर्व कह चुके हैं, वेदपद का औपचारिक प्रयोग है । इससे आगे १५वीं कण्डिका में कहा है—

• आचष्टे सर्वान् वेदान् • ।

अर्थात् सब वेद कहे । यहाँ ब्राह्मणों का स्वरूप भी कथन नहीं किया गया, और वास्तविक तथा औपचारिक भाव से वेद भी कह दिये । इस लिये ज्ञात होता है कि याज्ञवल्क्य आदि ऋषि स्वप्न में भी ब्राह्मणों को वेद न मानते थे ।

इसी प्रस्तुत विषय में, हमारे सिद्धान्त को पुष्ट करने वाले और भी प्रमाण देखो । प्रायः सारे ही ब्राह्मणों में प्रजापति अर्थात् परमात्मा से वेद के प्रकाशित होने के सम्बन्ध में कुछ वाक्य आये हैं । कतिपय ब्राह्मणों के वे वाक्य नीचे दिये जाते हैं—

••• स एतानि त्रीणि ज्योतीष्यभ्यतप्यत सो ऽग्नेरेवर्चो
ऽसृजत वायोर्यजूष्यादित्यात् सामानि । स एतां त्रयीं विद्या-
मभ्यतप्यत ।••• अथैतस्या एव त्रयै विद्यायै तेजोरसं प्रावृहत् ।
एतेषामेव वेदानां भिषज्यायै स भूरित्यूचां प्रावृहत् ••• । कौ०
६ । १० ॥

स इमानि त्रीणि ज्योतीष्यभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्वयो
वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥ ३ ॥
स इमांस्त्रीन् वेदानाभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्वोणी शुक्रा-
ष्यजायन्ते भूरित्यूग्वेदात् ••• ॥ ४ ॥ श० ११ । ५ । ८ ॥

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत् । तासां तप्यमानानां
रसान् प्रावृहत् । अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूषि सामान्यादित्यात् ॥ २ ॥
स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत् । तस्यास्तप्यमानाया रसान्
प्रावृहत् । भूरित्यूग्भ्यः ॥ ३ ॥ छान्दोग्य उ० ४ । १७ ॥

इस विषय के और भी ब्राह्मण वाक्य दिये जा सकते हैं, पर इतनों से ही यथेष्ट अभिप्राय निकल पड़ता है । यहाँ ऋचः और ऋग्वेद शब्द पर्यायवाची ही हैं । 'भू' व्याहृति ऋचाओं से उत्पन्न हुई अथवा ऋग्वेद से, इस कहने में कोई भेद

नहीं। ऋक्, यजु और साम, इन तीनों का समूह त्रयी विद्या है। इन्हीं को शतपथ के प्रमाण में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद कहा है। इसी से स्पष्ट है कि ऋक् आदि शब्द ऋग्वेदादि के पर्यायवाची हैं।

प्रश्न—तीनों प्रमाणों को समता में रखना उचित नहीं। शतपथ में मन्त्र ब्राह्मण समुदाय का कथन है और कौषीताक आदि में मन्त्रमात्र का।

उत्तर—ऐसा निर्मूल कल्पना निरर्थक है। जब इस प्रकरण में एक सामान्य विषय का कथन है, और पूर्व प्रदर्शित संगति भी एक ही है, तो तुम्हारी बात को कोई विद्वान् न मानेगा। और ब्राह्मण-ग्रन्थ तो आदि सृष्टि में प्रकट भी नहीं हुए। वे काल, काल पर बनते चले आये हैं। उनका सङ्कलन महाभारत-काल में हुआ है। यह ब्राह्मण-ग्रन्थ समग्ररूप से बहुत पुराने नहीं हैं। अतः आदि सृष्टि के काल के कथन में वेद शब्द से ब्राह्मण का भी अभिप्राय लेना अनुचित ही नहीं, सरासर खेंचतान है। जब इन प्रकरणों में वेद शब्द से ब्राह्मण नहीं लिया गया, तो अन्यत्र भी आर्ष वाङ्मय में ऐसा ही समझना।

प्रश्न—कठ आदि ब्राह्मणों को नवीन नहीं समझना चाहिये। मीमांसा सूत्र १।१।२८ ॥ पर शबर ने ब्राह्मणों के प्रमाण देकर, आगे सूत्र ३०-३२ तक यहाँ सिद्ध किया है कि ब्राह्मणादि भी अपौरुषेय हैं। सूत्र ३० पर वह किसी पुराने शास्त्र का प्रमाण ऐसे धरता है—

**स्मर्यते च-वैशम्पायनः सर्वशाखाध्यायी । कठः पुनरिमां
केवलां शाखामध्यापयां बभूव, इति ।**

अर्थात् कठादि शाखा वा ब्राह्मण कठादि ऋषियों से पहले भी विद्यमान थे।

उत्तर—शबरस्वामि ने मीमांसा, तर्कपाद के इस वेद-अपौरुषेयता अधि-करण में जो अनेक उदाहरण दिये हैं, वे उचित नहीं हैं। शबर तो ब्राह्मणों को वेद मानता था।* अतः उसने ऐसे उदाहरण दे दिये। अन्यथा ऐसे सब उदाहरण मन्त्रों से देने चाहियें थे।

कठशाखा वा ब्राह्मण, वैशम्पायन के समीप भले ही हों, पर व्यास से पहले नहीं थे। आदि सृष्टि में ब्राह्मण तो क्या, शाखायें वा उनका सामग्री भी नहीं थीं तब तो मूल मन्त्र संहिनाएं ही थीं। इस विषय का प्रमाण आगे दिया जाता है। उस

* देवी शबर मीमांसामाष्य मन्त्राश्च ब्राह्मणश्च वेदः ।२।१।३३।

से यह भी सिद्ध होगा कि मन्त्र समूह ही वेद हैं, ब्राह्मण आदि नहीं।*

गोपथ ब्राह्मण पू० १।५॥ में कहा है—

यान् मन्त्रानपश्यत् स आथर्वणो वेदो ऽभवत् ।

क्या इस से बद् के और स्पष्ट प्रमाण की भी आवश्यकता है। यहाँ सारा सिद्धान्त विवाद से ऊपर कर दिया गया है। मन्त्र समूह का ही नाम वेद है, और वही आदि सृष्टि में प्रकाशित हुआ। वही अपौरुषेय है। उसकी आनुपूर्वी नित्य है। शेष शाखायें कृत तो नहीं, पर आनुपूर्वी अनित्य होने से प्रोक्त हैं।

प्रश्न—चरणव्यूह कण्डिका द्वितीय में यह क्या लिखा है कि मन्त्र ब्राह्मण वेद हैं। देखो—

त्रिगुणं पठ्यते यत्र मन्त्रब्राह्मणयोःसह ।

यजुर्वेदः स विज्ञेयः शेषाः शाखान्तराः स्मृताः ॥

उत्तर—साम्प्रतिक दश में चरणव्यूह कोई विश्वसनीय ग्रन्थ नहीं है। इस के आठ नौ भेद तो हम ने ही देखे हैं। वैबर साहब का चरणव्यूह और, काशी का छपा और। हस्तलिखितों के भेद का तो कहना ही क्या। ऐसी अवस्था में कौन कह सकता है कि मूल ग्रन्थ कितना था। और यह श्लोक तो किसी तैत्तिरीय-शाखा-भक्त का मिलाया हुआ प्रतीत होता है।

चरणव्यूह का टीकाकार महिदास इस श्लोक को ऐसे पढ़ता है—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदः त्रिगुणं यत्र पठ्यते ।

यजुर्वेदः स विज्ञेय अन्ये शाखान्तराः स्मृताः ॥

* यद्यपि बौद्ध ग्रन्थों का हम सर्वांग प्रमाण नहीं करते, तो भी महावस्तु में “ब्राह्मणवेदेषु” पद बहुत स्पष्ट है। इससे ज्ञात होता है कि बौद्ध विद्वानों को जो परम्परा विदित थी, तदनुसार ब्राह्मण वेद नहीं थे। देखो—

**तस्य राज्ञो पुरोहितो ब्रह्मायुः नाम त्रयाणां वेदानां पारगो
सनिर्घण्टकैटभानां इतिहासपंचमानां अक्षरपदव्याकरणे अनल्पको ।
सोऽयमाचार्यः कुशलो ब्राह्मणवेदेषु पि शास्त्रेषु दानसंविभाग-
शीलो दश कुशलकर्मपथां समादाय वर्तति ।**

भाग २। पृष्ठ ७७। पंक्ति ८-११। महावस्तु में ऐसा ही प्रयोग कई स्थलों पर आया है।

जहाँ मूल में पूर्वोद्धृत श्लोक छपा है वहाँ उस ने उसकी व्याख्या भी नहीं की। उस से बहुत आगे यह श्लोक स्वयं लिख कर वह टीका करता है। इस से भी मूल पाठ में श्लोक का प्रक्षिप्त होना पाया जाता है। श्लोक का अर्थ करके अन्त में महिदास लिखता है—

एतादृशपठनं शाखाया अध्ययनं [यत्र] स यजुर्वेदः ।

तच्च तैत्तिरीयशाखायामेवास्ति ।

इसी लिये हम ने कहा था कि यह श्लोक किसी तैत्तिरीय-शाखा-भक्त का मिलया हुआ प्रतीत होता है।

(ज) ब्राह्मण ग्रन्थों के ऋषि प्रोक्त होने में और भी प्रमाण है। मीमांसा सूत्र १२ । ३ । १७ ॥ ऐसे पढ़ा गया है—

मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायोपपत्तेर्भाषिकश्रुतिः ।

इसी के भाष्य में शबर कहता है—

भाषास्वरो ब्राह्मणे प्रवृत्तः ।

जब ब्राह्मण का स्वर ही भाषा स्वर अर्थात् लौकिक स्वर है, तो वह ईश्वर प्रोक्त कैसे हो सकता है। यह बात शिक्षा ग्रन्थों वा भाषिक सूत्र से सिद्ध होती है। विस्तर-मय से अधिक नहीं लिखा गया। सत्यव्रत सामश्रमी जी ने त्रयी परिचय में इसे भले प्रकार लिखा है।

(ट) ब्राह्मणादि ग्रन्थों में मन्त्रों की प्रतीकें धर के “इति” कह कर न केवल मन्त्रों का व्याख्यान ही किया है, प्रत्युत उन के ऋषि देवता आदि भी दिये हैं। ब्राह्मणों के प्रमाणों से हम वेदों का आदि सृष्टि में होना कह चुके हैं। मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि उस से बहुत पीछे हुए हैं। उनका उल्लेख करने वाले ग्रन्थ उस से भी पीछे के होंगे। इन मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि विशेषों के नामों का सामान्यार्थ हो भी नहीं सकता। अतः ब्राह्मणादि ग्रन्थ बहुत नये और ऋषि-प्रोक्त ही हैं। इस के उदाहरण काठक संहिता में देखो—

महि त्रीणामवो ऽस्तु । (का० सं० ७ । २ ॥)

इत्येष प्राजापत्यस्त्रिचः । ७ । ९ ॥

**स वामदेव उख्यमग्निमबिमस्तमवैक्षत स एतत् सूक्तमपश्यत्
कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम्, इति । का० सं० १० । ५ ॥**

इत्यादि ।

ऐसे ही अष्टाध्यायी आदि अन्य ग्रन्थों में भी ब्राह्मणों को वेद नहीं माना । इस के उदाहरण हम ने पाणिनीय सूत्रों से पहले दे दिये हैं । पूर्वपक्षियों के अष्टाध्यायीस्थ प्रमाण इतने निर्बल हैं कि विद्वान् स्वयं उन का उत्तर दे सकते हैं ।

इस सारे लेख से यह ज्ञात हो चुका है, कि मन्त्र संहिताएं ही वेद हैं । वही अपौरुषेय हैं । महाभारतोत्तर-काल में एक याज्ञिक काल आया । उस में ब्राह्मणों का अत्यन्त उपयोग होने वा अति मान होने से, ब्राह्मणों को औपचारिक दृष्टि से वेद कहा गया ।* समय के व्यतीत होने पर शबर आदि नवीन आचार्यों ने उस औपचारिक भाव को भुला कर इन्हें वेद ही कहना आरम्भ कर दिया । इस लिये जनसाधारण भी इन्हें वेद समझने लग पड़े । बस यही सारी भूल का कारण था । ऋषि दयानन्द सरस्वती ने यह भूल देखी और इसी लिये अनेक युक्ति प्रमाणों के अनन्तर अपनी ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के “वेदसंज्ञाविचार विषय” में यह लिखा—

**इत्यादि बहुभिः प्रमाणैर्मन्त्राणामेव वेदसंज्ञा न ब्राह्मण-
ग्रन्थानामिति सिद्धम् ।**



* गौतम धर्मसूत्र का टीकाकार मस्करी—

यत्र चाग्रायो विदध्यात् । १ । ५१ ॥

सूत्र पर टीका करते हुए कहता है—

अथवा—आग्रायशब्देन मनुस्मृत्यते ।

अर्थात् आग्राय शब्द से मनुस्मृति का भी ग्रहण हो सकता है । जब आग्राय पद किसी धर्मशास्त्री की दृष्टि में अपने मूल-मनुस्मृति के लिये उपचार से प्रयुक्त हो सकता है, तो याज्ञिकों की दृष्टि में यज्ञक्रियाप्रधान ग्रन्थों के लिये उपचार से वेद शब्द प्रयुक्त होगया, इस में अणुमात्र भी आश्चर्य नहीं ।

(३) ब्राह्मण और वेदार्थ ।

निरुक्त और निघण्टु का आधार ब्राह्मण हैं ।

निरुक्त सब से पुराना ग्रन्थ है, जो इस समय मिलता है, और जिस में वेदार्थ का विस्तृत निदर्शन है । 'यह ऋग्वेदीय लोगों के पठितव्य दश ग्रन्थों में से एक है ।' दाक्षिणात्य ऋग्वेदाध्यायी इस समय भी इस का पाठ करते हैं । इस निरुक्त से पहले भी ऐसे ही अनेक निरुक्त ग्रन्थ थे, पर वे अब लुप्तप्रायः हैं ।* निरुक्त का मूलनिघण्टु है । निरुक्त और निघण्टु दोनों यास्क-प्रणीत हैं ।† निघण्टु प्राचीन वैदिक काषों का नमूना है । इस निघण्टु से पहले और भी अनेकों निघण्टु थे । निरुक्त ७ । १३ ॥ में यास्क स्वयं उनका स्वरूप कथन करता है—

अथोताभिधानैः संयुज्य हविश्चोदयति—इन्द्राय वृत्रघ्ने ।
इन्द्राय वृत्रतुरे । इन्द्रायँहोमुचे, इति । तान्यप्येके समा-
म्रन्ति । भूयांसि तु समाम्नात् । यत्तु संविज्ञानभूतं स्यात् प्राधा-
न्यस्तुति तत् समाप्ने ।

अर्थात्—'कई एक आचार्य ऐसा समाम्नाय करते हैं । जो प्रधान स्तुतिवाला (अग्नि आदि) देवता-नाम है, उसका मैं समाम्नाय करता हूँ ।'

कौत्सव्य प्रणीत निरुक्त-निघण्टु भी जो आथर्वण परिशिष्टों में से एक है, पुराने निघण्टु-ग्रन्थों का ही नमूना मात्र है ।‡

यास्क्रीय निघण्टु और इस आथर्वण निघण्टु के देखने से निश्चय होजाता है कि प्राचीन निघण्टु-ग्रन्थों का आधार प्रधानतया ब्राह्मण ही थे । निघण्टु-पठित अर्थों और ब्राह्मणान्तर्गत अर्थों की निम्नलिखित तुलनात्मक सूची से यह बात बहुत ही स्पष्ट होजायगी ।

पता	निघण्टु	ब्राह्मण	पता
१।१४॥	अत्यः	अश्व	तै० ३।८।१।१॥
३।१७॥	अध्वरः	यज्ञ	श० १।४।१।३८॥

* G. Oppert के सूची पत्र II. 510 पर दक्षिण में किसी घर में उपमन्यु कृत निरुक्त का अस्तित्व बताया गया है ।

† देखो मेरा लेख, मासिक पत्र ज्योति वैशाख सं० १९७७, लाहौर ।

‡ इसका देवनागरी संस्करण आर्ष-ग्रन्थावली, लाहौर में छप चुका है ।

पता	निघण्टु	ब्राह्मण	पता	
१।१२॥	अन्नम्	उदक	अन्नं वा ऽआपः	श० १३।८।१।९॥
१।१०॥	अन्नम्	मेघ	अन्नाद् वृष्टिः	श० ५।३।५।१७॥
२। ७॥	अर्कः	अन्न	अन्नमर्कः	श० १।१।१।४॥
३। ४॥	अस्तम्	गृह	गृहा वाऽस्तम्	श० २।५।२।२९॥
१।१४॥	अर्वा	अश्व	(अश्व त्रं) अर्वाऽसि	ता० १।७।१॥
२।११॥	अदितिः	गौ	अदितिर्हि गौः	श० २।३।४।३४॥
१। १॥	,,	पृथिवी	इयं वै पृथिव्यदितिः	श० १।१।४।५॥
१।११॥	,,	वाक्	वाग्वा अर्दितः	श० ६।५।२।२०॥
१।१०॥	अद्रिः	मेघ	गिरिर्वाऽअद्रिः	श० ७।५।२।१८॥
१। ५॥	अर्माशवः	रश्मि	अर्माशवो वै रश्मयः	श० ५।४।३।१४॥
१।११॥	अनुष्टम्	वाक्	वाग्वा अनुष्टम्	श० १।३।२।१६॥
१। ३॥	अमृतम्	हिरण्य	अमृतं वै हिरण्यम्	श० ९।४।४।५॥
२। ७॥	आयुः	अन्न	अन्नमु वाऽआयुः	श० ९।२।३।१६॥
२। ७॥	इषम्	अन्न	अन्नं वा इषम्	कौ० २।८।५॥
१। १॥	इडा	पृथिवी	इयं (पृथिवी) वा इडा	कौ० ९।२॥
२। ७॥	इडा	अन्न	अन्नं वा इला	ऐ० ८।२६॥
२।११॥	इडा	गौ	गौर्वाऽइडा	श० ३।३।१।४॥
३।३०॥	उर्वी	पृथिवी	यथेयं पृथिव्युर्वी	श० २।१।४।२८॥
२। ७॥	ऊर्क	अन्न	अन्नं वा ऊर्गुदुम्बरः	श० ३।२।१।३३॥
१।११॥	ऋक्	वाक्	वागेवऽर्चः	श० ४।६।७।१॥
३।१०॥	ऋतम्	सत्य	सत्यं वाऽऋतम्	श० ७।३।१।२३॥
२। ९॥	ओजः	बल	ओजः सहः	कौ० ३।५॥
३। ६॥	कम्	सुख	सुखं वै कम्	गो० उ० ६।३॥
१। ७॥	क्षपा	रात्रि	रात्रयः क्षपाः	ऐ० १।१३॥
१। १॥	क्षामा	पृथिवी	इमे वै थावापृथिवी थावाक्षामा	श० ६।७।२।३॥
३। ३॥	गमीरः	महान्	गमीरमिमं महान्तमिमं	श० २।९।४।५॥
१।११॥	गीः	वाक्	वाग्वै गीः	श० ७।२।२।५॥
१। २॥	चन्द्रम्	हिरण्य	चन्द्रं हिरण्यम्	तै० १।७।६।३॥
२। ३॥	जन्तवः	मनुष्य	मनुष्या वै जन्तवः	श० ७।३।१।३२॥

पता	निघण्टु	ब्राह्मण	पता
३। ४॥ दुर्गाः	गृह	गृहा वै दुर्गाः	श० १।१।२।२॥
१।११॥ धिषणा	वाक्	वाग्वै धिषणा	श० ६।५।४।५॥
१।११॥ धेनुः	वाक्	वाग्वै धेनुः	ता० १।८।९।२१॥
२। ७॥ नमः	अन्न	अन्नं नमः	श० ६।३।१।१७॥
२। ३॥ नरः	मनुष्य	मनुष्या वै नरः	श० ७।५।२।३९॥
१। १॥ निर्ऋतिः	पृथिवी	इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिः	श० ५।२।३।३॥
२।१०॥ नृम्भम्	धन	नृम्भानि ... धनानि	श० १।४।२।२।३०॥
१।१२॥ पयः	उदक	आपो हि पयः	कौ० ५।४॥
२। ७॥ पयः	अन्न	पय एवान्नम्	श० २।५।१।६॥
१।१२॥ पवित्रम्	उदक	पवित्रं वा ऽआपः	श० १।१।१।१॥
२। ७॥ पितुः	अन्न	अन्नं वै पितुः	श० १।९।२।२०॥
३। १॥ पुं	बहु	पुरुदस्मः बहुदानः	श० ४।५।२।१२॥
१। १॥ पूष	पृथिवी	इयं वै पृथिवी पूष	श० २।५।४।७॥
२।१७॥ पृतना	संग्राम	युधो वै पृतना	श० ५।२।४।१६॥
१। ३॥ पृथिवी	अन्तरिक्ष	इयं (पृथिवी) अन्तरिक्षम्	ऐ० ३।३१॥
२। २॥ प्रजा	अपत्य	प्रजा वै लोकम्	श० ७।५।२।३९॥
		प्रजा वै सतुः	श० ७।१।१।२७॥
३।१७॥ प्रजापतिः	यज्ञ	यज्ञः प्रजापतिः	श० १।१।६।३।९॥
३।२७॥ प्रलम्	पुराण	प्रलम् ... सनात्नम्	श० ६।४।४।१७॥
२।२०॥ परशुः	वज्र	वज्रो वै परशुः	श० ३।६।४।१०॥
३।१७॥ मखः	यज्ञ	यज्ञो वै मखः	तै० ३।२।८।३॥
३। ६॥ मयः	सुख	यद्वै शिवं तन्मयः	तै० २।२।५।५॥
१। ५॥ मरीचिपाः	रश्मि	ये रश्मयस्ते देवा मरीचिपाः	श० ४।१।१।२५॥
१। १॥ मही	पृथिवी	इयं (पृथिवी) एव मही	जै० उ० ३।४।७॥
२। ७॥ रसः	अन्न	रसेनात्नेन	श० ७।२।२।१०॥
१।२५। रसः	उदक	रसो वाऽआपः	श० ३।३।३।२८॥
१।२५॥ रेतः	उदक	आपो हि रेतः	ता० ८।७।९॥
३।३०॥ रेतसी	धावापृथिवी	धावापृथिवी वै रेतसा	ऐ० २।४।१॥
२। ७॥ वाजः	अन्न	अन्नं वै वाजः	श० ५।१।४।३॥

पता निघण्टु		ब्राह्मण	पता
२। ९॥ वाजः	बल	वायं वे वाजः	श० ३।३।४।७॥
१।१४॥ वाजी	अश्व	वाजिनो ह्यश्वः	श० ५।१।४।१५॥
३।१७॥ विष्णुः	यज्ञ	विष्णुवै यज्ञः	ऐ० १।१५॥
२। ९॥ शवः	बल	बलं वे शवः	श० ७।३।१।२९॥
१।१२॥ शुक्रम्	उदक	शुक्रा ह्यापः	तै० १।७।६।३॥
१।१२॥ सत्यम्	”	आपो हि वे सत्यम्	श० ७।४।१।६॥
१।१४॥ ससिः	अश्व	(अश्व त्वं) ससिरसि	ता० १।७।१॥
१।११॥ सरस्वती	वाक्	वाग्वै सरस्वती	श० २।५।४।६॥
१।१२॥ सर्वम्	उदक	आप एव सर्वम्	गो० पू० ५।१५॥
२। ९॥ सहः	बल	बलं वे सहः	श० ६।६।२।१४॥
१। ६॥ हरितः	दिश	दिशो वे हरितः	श० २।५।१।५॥

इत्यादि । इस छोटी सी भूमिक्रम में विस्तरभय से अधिक शब्दों के अर्थों की तुलना नहीं की जा सकती । हमारे कोष को ध्यानपूर्वक देखने से विद्वज्जन स्वयं सारी तुलना कर सकेंगे । हमने इस सूची में अधिकांश प्रमाण शतपथ से ही दिये हैं । कोष की सहायता से शेष ब्राह्मणों में से भी बहुत से ऐसे ही वाक्य मिल जायेंगे । यदि सैकड़ों ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त न होजाते तो आज भी निघण्टु के प्रायः सारे ही नाम उन में से निकाले जा सकते थे । यही अवस्था निरुक्त की है । निरुक्त में तो यास्क स्वयं

इति ब्राह्मणम् । इति ह विज्ञायते ।

कह कर अपने अर्थ की पुष्टि ब्राह्मण वाक्यों से करता है । इस लिये हम निश्चयात्मक रूप से कह सकते हैं कि यास्कीय निरुक्त, निघण्टु का प्रधानतया मूल ब्राह्मण ग्रन्थ ही है ।

इस कोष में अनेक पदों के वे अर्थ भी हैं, जो कि इस निघण्टु या निरुक्त में नहीं मिलते । हो सकता है, उन्हें और निघण्टुकारों ने एकत्र किया हो । फिर भी जैसा यास्क ने कहा है—

भूयांसि तु समाभ्रनात् ७।१३॥

उन प्राचीनों से भी कई रह गये हों । हमारे इस कोष में उन सब के ही संग्रह का प्रयत्न किया गया है ।

ब्राह्मण-प्रदर्शित इन वैदिक शब्दों के अर्थों का क्या आधार है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों ने इन में से बहुत से अर्थ साक्षात् मन्त्रों से लिये हैं । समाधिस्थ ऋषियों के निष्कलक मनों में बहुत सा अर्थ परमात्मा की कृपा से भी प्राप्त हुआ है । वह भी इन्हीं ब्राह्मणों में बन्द है । ऋषि-प्रोक्त वा परतः प्रमाण होते हुए भी वेदार्थ का परम तत्व इन्हीं ब्राह्मणों से जाना जा सकता है । ऐसा ही आर्यावर्त के सब विद्वान् मानते आये हैं । हाँ, नवीन पाश्चात्य लेखक इस के विपरीत कहते हैं । हम पहले उन्हीं की प्रतिज्ञा का निराकरण करेंगे । बोडन का वयोवृद्ध संस्कृताध्यापक आर्थर एनथान मैकडानल लिखता है*—

The investigation of the Brahmins has shown that, being mainly concerned with speculation on the nature of sacrifice, they were already far removed from the spirit of the composers of the Vedic hymns, and contain very little capable of throwing light on the original sense of those hymns. They only give occasional explanations of the sense of the Mantras and these explanations are often very fanciful. How completely they can misunderstand the meaning intended by the seers appears sufficiently from the following two examples. The Satapatha Brahmana (vii. 4, 1, 9) in referring to the refrain of Rv. X. 121.

कस्मै देवाय हविषा विधेम

‘to what god should we offer worship with oblation. says ‘Ka is Prajapati: to him let us offer oblation. Another Brahmana passage, in explaining the epithet ‘golden-handed’ (हिरण्य-पाणि) as applied to the sun, remarks that the sun had lost his hand and had got instead one of gold. Quite apart from the linguistic evidence, such interpretations show that there was already a considerable gap between the period of the Brahmanas and that of the Mantras.

इस लेख में किसी न किसी प्रकार से जो प्रतिज्ञायें की गई हैं, हम उन्हें पृथक् २ गिनंग ।

- १—पाश्चात्य लेखकों ने ब्राह्मणों में अन्वेषण किया है ।
- २—ब्राह्मणों का प्रधान विषय यज्ञ=sacrifice के स्वरूप की कल्पना करना है ।
- ३—वैदिक-सूक्तों के कर्ताओं के भाव से ब्राह्मण बहुत परे हटे हुए हैं ।
- ४—वेदों के मूलार्थ पर प्रकाश डालने योग्य सामग्री का ब्राह्मणों में अभाव ही है ।
- ५—ब्राह्मणों में कहीं २ ही मन्त्रों के भाव का व्याख्यान है ।
- ६—यह व्याख्यान प्रायः अत्यन्त काल्पनिक होते हैं ।
- ७—ऋषियों को जो अर्थ अभिप्रेत था, ब्राह्मण उन से सर्वथैव उलटा अर्थ समझते हैं । इस के स्पष्ट करने वाले दो उदाहरण निम्नलिखित हैं—
(क) कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

इतना ऋचा का भाग ऋग्वेद १० । १२१ ॥ में वार २ आता है ।
उस का अर्थ है—

‘हम किस देव की हवि से पूजा करें ।’

इसका शतपथ ७ । ४ । १ । ९ ॥ में विचित्र व्याख्यान है, अर्थात् क ही प्रजापति है, उसे हम अपनी हवि दें ।

(ख) एक और ब्राह्मण में हिरण्यपाणि सुवर्ण हाथ वाला शब्द आया है । वहाँ उसे सूर्य पर लगाया गया है, तथा कहा है कि सूर्य का हाथ नष्ट होगया था, उस के स्थान में उसे एक सोने का हाथ मिल गया ।

८—भाषा सम्बन्धी साक्ष्य को पृथक् रखकर भी ऐसे व्याख्यान बताते हैं कि ब्राह्मण-काल से मन्त्र-काल का बड़ा अन्तर हो चुका था ।

अब अध्यापक मैकडानल के कथन की परीक्षा होती है ।

१—मार्टिन हॉग, आफ्फरेखट, लिण्डनर, वैबर, बर्नल, अर्टल, ड्यूक गसटर आदि ने ऐतरेय आदि ब्राह्मणों के अच्छे संस्करण निकाले हैं, इस में कोई सन्देह नहीं । इन के लिये हम उनका धन्यवाद करते हैं । परन्तु उन्होंने या शतपथानुवादक एगालिङ्ग का तैत्तिरीय संहिता अनुवादक बै० क्रीथ ने ब्राह्मणों में कोई सन्तोषजनक अन्वेषण किया है, ऐसा मानना हास्यास्पद बनना है । आधुनिक कैमिस्टरी का विज्ञान नष्ट

होने पर यदि कोई थोड़ी सी आङ्गल भाषा जानने वाला किसी बृहत् कैमिस्ट्री के ग्रन्थ में लैड-चेम्बर-विधि (Lead-chamber-method) से गन्धक के तेजाब के तय्यार होने का वर्णन पढ़े और उस विधि का उस ने कमी देखा सुना न हो। न ही उसने कमी गन्धक वा गन्धकामल देखा हो, तो निःसन्देह वह उस सारे वर्णन को मूर्खों का कथन समझेगा। स्वामिमान में वह अपनी भूल कदापि स्वीकार न करेगा। ऐसे ही बिना यज्ञादि क्रिया के सीखे, और बिना भूमण्डलस्थ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रगण, विद्युत्, आकाश, मेघ, वायु, अग्नि, जल आदि सब स्थूल पदार्थों का ज्ञान किये, जो भी अनधिकारी ब्राह्मणों का पाठ करेगा वह इन्हें मूर्ख लीला समझेगा, प्रमत्तगीत कहेगा। जैसा कि मैक्समूलर अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास पृ० ३८९ पर लिखता है—

The Brahmanas represent no doubt a most interesting phase in the history of the Indian mind, but judged by themselves, as literary productions, they are most disappointing. No one would have supposed that at so early a period, and in so primitive a state of society, there could have risen up a literature which for pedantry and downright absurdity can hardly be matched anywhere. There is no lack of striking thoughts, of bold expressions, of sound reasoning, and curious traditions in these collections. But these are only like the fragments of a *'torso'* like precious gems set in brass and lead. The general character of these works is marked by shallow and insipid grandiloquence, by priestly conceit, and antiquarian pedantry. It is most important to the historian that he should know how soon the fresh and healthy growth of a nation can be blighted by priestcraft and superstition. It is most important that we should know that nations are liable to these epidemics in their youth as well as in their dotage. These works deserve to be studied as the physician studies the twaddle of idiots, and the raving of madmen.*

* मैक्समूलर यहाँ वैसी भाषा का ही प्रकाश करता है, जैसी मतान्ध व्यक्त बर्ती करते हैं।

हम यह नहीं कहते कि हम ब्राह्मणों के समस्त अर्थों को समझ गये हैं, परन्तु हम यह जानते हैं कि जब आर्यावर्तिय सायण प्रकृत भी इन के अर्थ को पूरा नहीं समझे, तो पाश्चात्य लोग भला क्या समझें होंगे। ब्राह्मणों में स्थल स्थल पर रूपकालंकार की कथायें भरी पड़ी हैं। देखो शतपथ १।७।४॥ में कहा है—

प्रजापतिं ह वै स्वां दुहितरमभिदध्याँ । दिवं वोषसं वा मिथु-
न्येनया स्यामिति तां सन्वभूव ॥१॥.....

स वै यज्ञ एव प्रजापतिः ॥४॥ *

इस प्रकरण में प्रजापति नाम सूर्य का है। ब्राह्मणग्रन्थ स्वयं कहते हैं—

यो ह्येव सविता स प्रजापतिः । श० १२।३।५।१॥

प्रजापतिर्वै सविता । ता० १६।५।१७।

प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मानेष सविता । श० १०।२।७।४॥

अर्थात् सविता = सूर्य = आदित्य हा प्रजापति है।

यह प्रजापति हा यज्ञ है। यह बात पूर्वोक्त चतुर्थ कण्डिका में कही है।

अन्यत्र भी ब्राह्मणग्रन्थ ऐसा ही कहते हैं। देखो—

यज्ञ उ वै प्रजापतिः । कौ० १०।१॥

प्रजापतिर्वै यज्ञः । तै० १।३।१०।१०॥

अर्थात् यज्ञ प्रजापति है। यह यज्ञ ही सूर्य है—

यज्ञ एव सविता । गो० पू० १।३३॥

स यः स यज्ञो ऽसौ स आदित्यः । श० १४।१।१।६॥

सविता को यज्ञ इस लिये कहा है कि इसी विष्णु सूर्य में हमारे सौर जगत् के सारे अभिहोत्रादि महाकार्य हो रहे हैं।

इसी सविता = प्रजापति की दिव् = प्रकाश और उषा कन्या समान हैं। यही सविता प्रजापति अन्य देवों का जनक है। क्योंकि—

सविता वै देवानां प्रसविताः । श० १।१।३।६॥

कहा है, कि सविता परमात्मा और यह सूर्य देवों का उत्पादक है। ऐसा

* तुलना करो ऐ० ३।३॥ तां० ८।२।१०॥

† प्रालिङ्ग इस का अर्थ Impeller करता है। यह युक्त अर्थ नहीं।

ही तैत्तिरीय ब्राह्मण २।२।९।५-८॥ में कहा है—

सः (प्रजापतिः) मुखाद्देवानसृजत ।

अर्थात् उस प्रजापति = परमात्मा ने मुख = मुख्य आश्रय परमाणुओं* से देवों को उत्पन्न किया । और आधिदैविक प्रकरण में इसी का यह अर्थ है कि सूर्य के ही प्रभाव से सब आश्रय परमाणु एकत्र हुए और भिन्न २ देवों के रूप में प्रकट हुए ।

निरुक्त ३।८॥ में भी किसी प्राचीन ब्राह्मण का पाठ इसी अभिप्राय से धरा गया है—

‘सोर्देवानसृजत तत् सुराणां सुरत्वम् । असोरसुरानसृजत तदसुराणामसुरत्वम्’ इति विज्ञायते ।

अर्थात् प्रकाशमय परमाणुओं से देवों को रचा और अन्धकार युक्त परमाणुओं से असुरों को रचा ।

काठक संहिता ९।१.१॥ में भी ऐसा ही कहा है—

अह्ना देवानसृजत ते शुक्लं वर्णमपुष्यन् । रात्र्याऽसुराँस्ते कृष्णा अभवन् ।

* शतपथ ११।१।६।७॥ में कहा है—

सः (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत ।

यहां आस्येन तृतीयान्त प्रयोग है । एगलिङ्ग इसका अनुवाद करता है—

By (the breath of) his mouth he created the gods.

यह अनुवाद ठीक नहीं । प्राणों से देवों की उत्पत्ति हमारे देखने में कहीं नहीं आई । प्रत्युत दो चार स्थलों में प्राण स्वयं देव तो कहे गये हैं—

तस्मात् प्राणा देवाः । श० ७।५।१।२१॥

अन्यत्र प्राण असुर ही हैं । प्राणों की उत्पत्ति प्रायः तम के परमाणुओं से कही गई है । यहां हेत्वर्थ में तृतीया का यही अभिप्राय है कि प्रकरणाभिप्रेत देवों की उत्पत्ति में सूक्ष्म अग्नि के परमाणु ही मुख्य कारण हैं । तृतीया के अर्थ के साथ २ पञ्चमी का अर्थ भी ले लेना चाहिये, क्योंकि—

स (प्रजापतिः) अग्निमेव मुखाज्जनयां चक्रे । श० २।२।४।१॥

ऐसे सब स्थलों में पञ्चमी से भी अभिप्राय स्पष्ट होता है ।

अर्थ—उस प्रजापति = परमात्मा ने इस भौतिक अग्नि को मुख्य = प्रकाशमय परमाणुओं से बनाया ।

समान पिता होने से ये दिव और उषा इन देवों की बहन-समान हैं। इसी सारे रहस्य का अन्य गम्भीर आशयों के साथ इन शतपथीय कण्डिकाओं में रूपकालङ्कार* के रूप में वर्णन है।

इस सारी कथा का विशेष वर्णन ऋषि दयानन्द प्रणीत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य विषय में देखो। भट्ट कुमारिलस्वामिकृत तन्त्रवार्तिक १।३।७॥ में भी ऐसा ही भाव लिखा है—

प्रजापतिस्तावत् प्रजापालनाधिकारादादित्य एवोच्यते । स
चारुणोदयवेलायामुषसमुद्यन्नभ्यैत् । सा तदागमनादेवोपजायत
इति तद्दुहितृत्वेन व्यपदिश्यते । तस्यां चारुणाकिरणाख्यबीज-
निक्षेपात् स्त्रीपुरुषयोगवदुपचारः †

*रूपकालङ्कार से जड़ जगत् की जो कथाएं वेद और ब्राह्मणादि ग्रन्थों में वर्णन की गई हैं, उन के सब अंश आर्यजनों में अनुकरणीय नहीं हैं। ये रूपकालङ्कार तो प्रायः आधिदैविक तथ्यों को बताने के लिये ही कहे गये हैं। जैसे देखो शतपथ १।३।१।५॥ आदि में कहा है—

इयं पृथिव्यदितिः सेयं देवानां पत्नी ।

कि यह पृथिवी देवों की पत्नी है। तो क्या अनेक मनुष्यों की एक पत्नी हो सकती है। नहीं, नहीं। ब्राह्मणों में स्वयं कहा है—

नैकस्यै बहवः सहपतयः । ऐ० ३ । २३ ॥

न हैकस्या बहवः सहपतयः । गो० उ० ३ । २० ॥

एक स्त्री के एक काल में अनेक पति नहीं होते। (भिन्न कालों में नियोग के रूप से होसकते हैं।) ऐसे ही प्रजापति का अपनी कन्या के साथ सम्बन्ध जड़ जगत् की वार्ता है, आर्यों की सम्यता का चिह्न नहीं।

†भट्ट कुमारिलस्वामि के ऐसे यथार्थ अर्थ पर मैक्समूलर विस्मित होता है। वह अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास पृ० ५२९ पर कहता है—

Sometimes, however, we feel surprised at the precision with which even such modern writers as Kumarila are able to read the true meaning of their mythology.

मैक्समूलर को यह ज्ञात नहीं कि इस कथा का वास्तविक अर्थ शतपथ ब्राह्मण में ही अन्यत्र खोल दिया गया है—

अब इस प्रकरण के सायणादि एतद्देशीय तथा एगलिङ्गादि विदेशियों के भाष्य वा अनुवाद देखो। किसी स्थान में भी इस रूपकालंकार को यज्ञ = साविता म घटा कर स्पष्ट नहीं किया गया। बिना मर्म वा भाव को समझे समझाये अनुवाद मात्र कर देना पर्याप्त नहीं। और जिस अनुवाद से समझ कुछ न आये, उस में अशुद्धियाँ भी तो कम नहीं हो सकतीं। अतः हमारा यही कहना है कि ब्राह्मणों का अन्वेषण तो अभी आरम्भ भी नहीं हुआ। पाश्चात्य जो यह समझते हैं कि वे इन में अन्वेषण कर चुके हैं, वे भूल से ही ऐसा कहते हैं। यदि सब निष्पक्ष होकर हमारे लेख पर ध्यान देंगे, तो वे स्वयं भी ऐसा मान जायेंगे।

जिस प्रकार पूर्वोक्त शातपथीय प्रकरण की चतुर्थ कण्डिका में प्रजापति का अर्थ खोला गया है, वैसे ही अन्यत्र भी भिन्न २ प्रकरणों के अन्त में कुछ सङ्केत आते हैं। जब तक उन सङ्केतों का पूर्व स्थलों में आकर्षण करके अर्थ न घटाया जावेगा, तब तक अर्थ समझना असम्भव होगा। इस लिये सब पक्षपात छोड़ कर पहले इन ग्रन्थों का अर्थ समझना चाहिये। तदनन्तर कोई सम्मति निर्धारित होसकती है। और जो पश्चिमीय लोग वा सायणानुयायी अभिमान वा भ्रूल से समझ बैठे हैं, कि वे अर्थ जान चुके हैं, उन्हें यह हठ छोड़ना ही पड़ेगा।

२—ब्राह्मणों का प्रधान विषय यज्ञ के स्वरूप की कल्पना करना है।

२—आर्य लोग यज्ञ की sacrifice नहीं समझते*।

यह तो इस शब्द का पौराणिक काल का अत्यन्त संकुचित और भ्रान्तिप्रद अर्थ है। इसे ही पाश्चात्यों ने स्वीकार किया है। अतः इन शब्दों के ऐसे पूर्वकल्पित (preconceived) अर्थों को लेकर जब वे ब्राह्मणों का पाठ करते हैं, तो उन्हें ब्राह्मण समझ ही नहीं आ सकते। किसी ग्रन्थ का क्षुद्र शब्दार्थ वे भले ही कर लें, पर समझना उन से बहुत दूर है। देखो आङ्गलभाषा में एक प्रासद्ध वाक्य है—

स (प्रजापतिः = संवत्सरः = वायुः) आदित्येन दिवं मिथुनं
समभवत् । ६ । १ । २ । ४ ॥

ग्रिफ़िथ का हठ है कि वह अपने ऋग्वेदानुवाद में इस कथा सम्बन्धी मन्त्रों का व्याख्यान उचित स्थल में न करके, उन्हें अश्लिल समझ परिशिष्ट में लैटिन भाषा में उनका अनुवाद करता है। ग्रिफ़िथ का कथन निरर्थक ही है कि—

The whole passage is difficult and obscure.

* देखो गुरुदत्त लेखावली पृ० ८८ (Works of Pt. Guru Datta.)

“I want to answer the call of nature.”

इस का शब्दार्थ होगा—“मैं प्रकृति के बुलावे का उत्तर देना चाहता हूँ ।” परन्तु सब जानते हैं कि शब्दार्थ हांते हुए भी यह अनुवाद भाव से बहुत दूर है । ऐसे ही अनुवाद इन पाश्चात्यों ने वेद, ब्राह्मणादि ग्रन्थों के किये हैं । तदनुसार ही ये यज्ञ को sacrifice समझ बैठे हैं ।

यज्ञ शब्द के अर्थ बड़े विस्तृत हैं । इस कोष में यज्ञ शब्द देखो । उन विस्तृत अर्थों में जो यज्ञ का स्वरूप है, उस का वर्णन करते हुए ही ब्राह्मणों में अद्भुत विज्ञान और सृष्टि-चक्र का वर्णन किया है । उस को न समझ कर ही पाश्चात्य लोग ब्राह्मणों में अपनी पूर्वकल्पित (preconceived) sacrifice ढूँढते रहते हैं ।

३—वेदिक सूक्तों के कर्ताओं के भाव से ब्राह्मण बहुत परे हटे हुए हैं ।

प्रथम तो हम यह कहेंगे, कि वेदिक सूक्तों के कर्ता नहीं हैं । जो इन के कर्ता मानते हैं, उन की युक्तियों का खण्डन हम अपने ऋग्वेद पर व्याख्यान पृ० ४१—७६ पर कर चुके हैं । पूर्वपाक्षियों ने हमारे लेख पर कोई आपत्ति नहीं उठाई । इस लिये अभी इस पर और न लिखेंगे । हाँ, दूसरे पक्ष का उत्तर अवश्य दोगे । ब्राह्मणों का भाव मन्त्रों से बहुत परे हटा हुआ नहीं है, प्रत्युत ब्राह्मण तो मन्त्रा के साक्षान् अर्थ का दर्शन कराते हैं ।

कल्पविद्या और नित्य शब्दार्थसम्बन्ध विद्या से अपरिचित होने के कारण पाश्चात्याके मनमें भय पड़ गया है कि एक शब्द का एक ही अर्थ सर्वत्र लेना चाहिये । अर्थ बने या न बने, वे उसी एक अर्थ से सर्वत्र काम चलाना चाहते हैं । ब्राह्मणों में एक २ शब्द के अनेक अर्थ देखकर वे घबरा जाते हैं । यह सत्य है कि—

बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि । निरुक्त ७ । २ ॥

‘ब्राह्मणग्रन्थ गुणों की सदृशता का बहुविभाग करके अनेक शब्दों को पर्याय बनाते हैं,’ पर स्मरण रहे कि इस गुणों का सदृशता का विभाग किये बिना कर्मा काम चल ही नहीं सकता । वेदभाषा तो क्या, संसारस्थ लौकिक भाषाओं में भी बहुधा गुणों की सदृशता का विभाग करने से ही पर्याय बन है । वेद में स्वयं विशेष्य विशेषण की रीति से इस गुण विभाग के करने का प्रकार आरम्भ किया गया है । देखो—

त्वं महीमवनिम् ।

ऋ० ४।१९।६॥

उर्वो पृथ्वी ।

ऋ० १।१८।५।७।

उर्वी पृथ्वी ।	ऋ० ६।७।१॥
उर्वी पृथ्वीम् ।	ऋ० ७।३।२॥
पृथिवि भूतपुर्वी ।	ऋ० ६।६।४॥
उनात्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां ।	ऋ० ५।८।५।४॥
भूमिं पृथिवीम् ।	अ० १।२।१।७॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार ।	ऋ० १०।६०।९॥
पृथिवीं मातरं महीम् ।	तै०ब्रा० २।४।६।८॥
शुक्राय भानवे ।	ऋ० ७।४।१॥
सूर्यस्य हरितः ।	ऋ० ५।२।९।५॥
इन्द्रं मघवानमेनं ।	ऋ० ७।२।८।५॥
तोकाय तनयाय ।	ऋ० ६।१।१।२॥
अद्भिरकैः ।	ऋ० ६।४।६॥
आ मही रोदसी पृण ।	ऋ० ९।४।१।५॥
मही अपारे रजसी ।	ऋ० ९।६।८।३॥
रोदसी मही ।	ऋ० ९।१।८।५॥
बृहती मही ।	ऋ० ९।५।६॥
अत्यं न वाजिनम् ।	ऋ० १।१।२।९।२॥
अश्वं न वाजिनम् ।	ऋ० ७।७।१॥
अत्यं न सर्पिं ।	” ३।२।२।१॥
तरसे बलाय ।	” ३।१।८।३॥

निघण्टु १।११॥ में वाक् के ५७ नाम आये हैं। उन में धारा, मन्द्रा, सरस्वती, जिह्वा, ऋक्, अनुष्टुप् आदि नाम पढ़े गये हैं। इन में से कुछ माह्वणों में भी इसी अर्थ में मिलते हैं। पहले चार नाम तो विशेष्य-विशेषण भाव से स्पष्ट ही वेद में इन अर्थों में मिल जाते हैं। यथा—

मन्द्रया सोम धारया ।	ऋ० ९।६।१॥
अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुपस्थुः ।	” ७।१।८।३॥

मन्द्रया देव जिह्वया । ,, ५।२६।१॥

यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या । ,, ५।७।५॥

अब रहे ऋक् और श्लोकादि शब्द । इनके विषय में मैकडानल महाशय ने भी स्वसंदेह प्रकट किया है । 'भण्डारकर कमेमोरेसन वाल्यूम' वाले अपने लेख में वे लिखते हैं "Thus among the synonyms of vac 'speech' appear such words as sloka, nivid. re, gatha, anustubh which denote different kinds of verses or compositions and can never have been employed to express the simple meaning of 'speech.'" अर्थात् यह शब्द रचनाविशेष के लिये आ सकते हैं, साधारण वाक् के लिये नहीं । अब हम देखेंगे कि वेद वा शाखा ग्रन्थों में, निघण्टु वा ब्राह्मणों में आये हुए ये शब्द इन अर्थों में मिलते हैं या नहीं ।

ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते । ऋ० ८।२७।५॥

ऋचं वाचं प्रपद्ये । य० ३६।१॥

ऋचो गिरः सुष्टुतयः । ऋ० ९।१।२२॥

ऋचं गाथां ब्रह्म परं जिगांसन् । कौ० सू० १३५७९

इन प्रमाणों में ऋक् शब्द वाक् के विशेषणों में आया है । अतः इसका वागर्थ होना सन्देह से परे है ।

श्लोक शब्द रचना-विशेष के लिये तो आता है, पर वाणी के लिये भी ऋग्वेद में वर्ता गया है, इस में कोई सन्देह नहीं । देखो यजुर्वेद में एक मन्त्र है—

चक्षुर्म.....विभाहि । श्रोत्रम्मे श्लोक्य । १४ । ८ ॥

अर्थात्—मेरे नेत्रों को प्रकाशित और कर्ण को श्रवणयुक्त कर ।

यहां श्लोक्य क्रिया पद स्पष्ट करता है, कि श्लोक शब्द रचनाविशेष के लिये ही नहीं आता, प्रत्युत साधारण वाणी = शब्द = श्रवण के सम्बन्ध में भी आता है ।

पुनः ऋग्वेदीय मन्त्र भी यही स्पष्ट करते हैं—

ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णाः । ४।२३।९॥

अर्थात्—सत्य की वाणी बधिर कानों का नाश करती है ।

मिमीहि श्लोकमास्ये । १।३८।१४॥

प्रैते वदन्तु पृ वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशयः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ॥

१० । ९४ । १ ॥

इस अन्तिम मन्त्र में तो श्लोक और घोष को विशेष्य विशेषण बना कर सारा विवाद मिटा दिया है। अर्थात् श्लोक, घोष अथवा वाणी का पर्याय है। शेष शब्द भी वेद में ही वाणी के अर्थों में मिल जाते हैं।

हमारे इस लेख से यह न समझना चाहिये कि मन्द्रा, धारा, जिह्वा, सरस्वती, और ऋगादि शब्द और अर्थों में नहीं आ सकते। वेदों में शब्दों के यौगिक होने से प्रकरणातुकूल ही अर्थ होता है। वह अर्थ मूलतः धातु सम्बन्ध से ए h वा अनेक प्रकार का है। पर उन सब में वह योगरूढ बनते समय प्रकरणवश कुछ ही अर्थों में रह गया है। वे सब अर्थ भाष्यकर्त्ता के ध्यान में रहने चाहिये। जो जहाँ संगत हो वह उसे वहीं लगावे।

हमारे पूर्वोक्त कथन पर पाश्चात्य लोग कई तर्क करेंगे। अतः उन के सब तर्कोंके उत्तर के लिये हम एक ऐसे शब्द पर विचार करना चाहते हैं। जिस से सारे ऐसे तर्कों का अन्त हो जावे। और वह विचार यह भी सिद्ध कर दें कि ब्राह्मणार्थ वेद का यथार्थ अर्थ है वह वेद से बहुत परे हटा हुआ नहीं, ऐसा शब्द अध्वर है।

निघण्टु ३।१७॥ में अध्वर को यज्ञ का पर्याय कहा गया है। शतपथादि ब्राह्मणों में भी बहुधा ऐसा कथन मिलता है। देखो इस कोष में अध्वर शब्द। ब्राह्मणों ने क्यों यह पर्याय बनाया, इसका कारण वेद के अन्दर ही मिलता है। ऋग्वेद में आया है—

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।१।१।४॥

अर्थात्—हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्, जिस हिंसादि दोष राहत यज्ञ को आप सर्वत्र सर्वोपरि होकर विराजते हो।

यहाँ अध्वर शब्द यज्ञ का विशेषण है। विशेषण होने से यही शब्द अन्यत्र यज्ञवाची बन गया है।

प्रश्न—क्या सारे ही विशेषण पर्याय बन जाते हैं।

उत्तर—नहीं। जिन विशेष्य, विशेषणों के गुण की विशेष समानता होजावे, वे ही पर्याय बनते हैं।

अब देखो पाश्चात्य लोग इसी बात से भयभीत होकर इस मन्त्र के अर्थ में
कैसी कल्पना करते हैं ।

१—हर्मन ओल्डनबर्ग S. B. E. vol. XLVI, Hymns to Agni,
पृ० १ पर लिखता है—

Agni, whatever sacrifice and worship¹ thou encompass-
passest on every side,

Note 1. 'Worship' is a very inadequate translation of
अध्वर, which is nearly a synonym of यज्ञ.....Prof. Max
Muller writes: 'I accept the native explanation अध्वर, with-
out a flaw, perfect whole, holy.'

२—त्रिफिथ अपने वेदानुवाद में लिखता है—

Agni, the perfect sacrifice which thou encompasssest
about.

३—आर्थर एनथनि मैकडानल अपनी Vedic Reader पृ० ६ पर
लिखता है—

O Agni, the worship and sacrifice that thou encom-
passest on every side, यज्ञम् अध्वरम्—again coordination with
च; the former has a wider sense—worship (prayer and
offering); the latter—sacrificial act.

यहां ओल्डनबर्ग और प्रायः उसी की प्रतिध्वनि करने वाला मैकडानल च
का अध्याहार करते हैं । वे दोनों इस स्थान में अध्वर और यज्ञ को विशेष्य विशेष-
षण नहीं मानते ।

त्रिफिथ महाशय भारत में रहे । वे काशीस्थ पण्डितों से सहायता भी लेते
थे । इसी लिये उन्हें पाश्चात्य पद्धति सर्वत्र रुचिकर नहीं लगी । वे अध्वर की यहां
विशेषण ही मानते हैं । मैक्समूलरवत् वे इसका अर्थ perfect = पूर्ण करते हैं ।

त्रिफिथ महाशय के सम्बन्ध में हम इतना ही कहेंगे कि जैसे इस अध्वर
विशेषण को अन्य स्थलों* में वे यज्ञवाची ही मान कर अर्थ करते हैं, वैसे यदि अन्य
विशेष्य विशेषणों में से प्रकरणानुकूल कुछ विशेषणों को उन के विशेष्यों का पर्याय
ही मान लेते, तो इस में क्या आपत्ति थी । यदि हमारी बात जो सर्वथैव युक्तियुक्त है

* क्र० २।१।८॥ २।२४।२१॥ इत्यादि ।

द्वीकार की जांव, तो ब्राह्मणान्तर्गत वेदार्थ की कितनी सत्यता प्रकाशित होती है।
देखो निम्नलिखित स्थल—

अश्मानं चित्स्वर्यं१ पर्वतं गिरिम् । ऋ० ५।५६।४॥

मैक्समूलर*—the rocky mountain (cloud)

ग्रिफिथ—the rocky mountain.

पर्वतो गिरिः । ऋ० १।३७।७॥

मैक्समूलर—the gnarled cloud,

यदद्रयः पर्वताः । ऋ० १०।९४।१॥

शतपथ में कहा है—

गिरिर्वा अद्रिः ।७।५।२।१८॥

तथा ऋग्वेद में कहा है—

वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ १।६।१।७॥

ग्रिफिथ—... the wild boar, shooting through the mountain.

अतः निघण्टु १।१०॥ में भी कहा है—

अद्रिः... पर्वतः† । गिरिः ।...वराहः ।...इति मेघनामानि ।

इस लिये इनको पर्याय मानने में ग्रिफिथ को आपत्ति न माननी चाहिये थी।
तथा य. वे. ऋग्वेद में—

इन्द्रेण वायुना । १ । १४ । १० ॥

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि विच्यते ।९।२।७।२॥

ऐसे मन्त्र आज्ञावें, जिनमें निश्चय ही इन्द्र को वायु का विशेषण बनाया गया है,
तो कई स्थलों में इन्द्र का अर्थ वायु भी होसकता है। ब्राह्मण में भी यही कहा है—

यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः । श० ४।१।३।१९॥

* S. B. E. वैदिक हिम्स पृ० ३३७ ।

† यदि मैकडानल अपनी Vedic Reader १।८५।१०॥ में पर्वतम्
का मूल में ही mountain की अपेक्षा cloud—मेघ अर्थ करता और टिप्पण
में cloud mountain लिखने का कष्ट न उठाता, तो उसका अनुवाद, इस अंश
में युक्त होजाता ।

अयं वा इन्द्रो यो ज्यं पवते । श० १४।२।२।६॥

अब रहे ओल्डनबर्ग और मैकडानल । ये दोनों परस्पर पूर्ण सहमत नहीं । ओल्डनबर्ग यज्ञ का sacrifice और अध्वर का worship अर्थ करता है । इस के विपरीत मैकडानल यज्ञ का worship और अध्वर का sacrifice अर्थ करता है । खिन्नमना ओल्डनबर्ग धीमी स्वर से इन दोनों को पर्याय भी मानता है । यदि वह पर्याय न मानता, तो भारी आपत्ति से बच भी न सकता । इसी लिये आगे चल कर वह अर्थ पलटता है ।

सत्यधर्माणमध्वरे । ऋ० १।१२।७॥

whose ordinances for the sacrifice are true.

अग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति । ऋ० १।१२।८।४॥

Agni watches sacrifice and service.*

यज्ञानामध्वरश्रियम् । ऋ० १।४४।३॥

the beautifier† of sacrifices.

अब रहे, हमारे पूर्वपक्षी मैकडानल महाशय । ये श्रीमान् यज्ञ का worship और अध्वर का sacrifice अर्थ मानते हैं । पर इन का भी इस से काम नहीं चला । देखो

यज्ञस्य देवमृत्विजाम् । १।१।१॥

the divine ministrant of the sacrifice.

यज्ञैः विधेम । ऋ० २ । ३५ । १२ ॥

we offer worship with sacrifices.

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा । ऋ० ८ । ३८ । १ ॥

ye two (Indra-Agni) are ministrants of the sacrifice.‡

इन मन्त्रों में इन्हें यज्ञ का sacrifice ही अर्थ मानना पड़ा ।

अब यदि ब्राह्मण ने

अध्वरो वै यज्ञः । श० १ । २ । ४ । ५ ॥

* यह अनुवाद भावशून्य है ।

† अध्वरश्रियम्, द्वितीयान्तपद है । क्या इसका यह अर्थ पाश्चात्यों की शोभा बढाता है ।

‡ यह मन्त्रभाग मैकडानल ने ऋ० १ । १ । १ ॥ के टिप्पण में उद्धृत किया है ।

कहा, तो ब्राह्मण तो स्वयं वेद के अनुकूल और समीप हैं, न कि दूर ।

बात वस्तुतः यह है कि वेदों के शब्द यौगिक वा योगरूढ हैं । इर्मालिय विशेष्य, विशेषण की रीति से विशेषण धात्वर्थ मात्र ही देता है । वही विशेषण दूसरे स्थान पर स्वयं नाम अर्थात् योगरूढ बन जाता है । ब्राह्मणों में इसी अभि-प्राय से वैदिक शब्दों के अर्थ कहे हैं । अनित्येतिहासप्रिय पाश्चात्यों को यह अच्छा नहीं लगता, अतः उन्होंने विना ब्राह्मणों के समझे उन्हें वेदार्थ से परे हटा हुआ कहा है । उपनिषद् में यथार्थ कहा है—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च । मुण्डक १ । ७ ॥

पहले पाश्चात्यों ने दो, अर्दाई सहस्र वर्ष पुरातन भाषाओं के अधूरे भाषा-विज्ञान को बना लिया, फिर उसे लाखों वर्ष पुरानी ब्राह्मण-भाषा वा नित्य वेद-भाषा से समता में रख कर सब को एक संग तोला । जब उनका स्वप्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ, तो स्वयं ही ब्राह्मणादि ग्रन्थों को स्वल्प मूल्यवान् कह दिया । अहां ! आश्चर्य इस निराधार कल्पना पर । आप ही एक सिद्धान्त बनाया और स्वयं उसे सत्य मान लिया । फिर और सब कुछ तो अशुद्ध होना ही था ।

४—वेदों के मूलार्थ पर प्रकाश डालने योग्य सामग्री का ब्राह्मणों में अभाव ही है ।

५—ब्राह्मणों में कहीं २ ही मन्त्रों के भाव का व्याख्यान है ।

६—यह व्याख्यान प्रायः अत्यन्त काल्पनिक होते हैं ।

४—पश्चिम में रोथ, वैबर, मैक्समूलर, ओल्डनवर्ग, गैलनर, ह्विटने, मैक-डाल प्रभृति ने जो अनुवाद वेदार्थ के नाम से छापे हैं, वे वेदार्थ तो हैं नहीं, उन के अपने मनों की कल्पनाएं अवश्य हैं । जब उनको वेदार्थ का पता ही नहीं लगा, तो वे उसकी तुलना ब्राह्मणान्तर्गत वेदार्थ से कैसे कर सकते हैं ।

अपने 'ऋग्वेद पर व्याख्यान' पृ० ६३ पर हमने सर्वायुक्रमर्णा के आधार पर तीन ऋषि-कुलों के पांच २ नाम वंश-क्रम से लिखे थे । उन में से एक वंशावली यह है—

ब्रह्मा
|
वसिष्ठ
|
शक्ति
|
पराशर
|
व्यास

इन पाँचों में से पहले चार तो अनेक ऋग्वेदीय सूक्तों के द्रष्टा हैं। और अन्तिम व्यास जी सब शाखाओं (चारों वेदों को छोड़ कर) और ब्राह्मणों के प्रधान प्रवक्ता हैं। इन्हीं व्यास जी के समकालीन याज्ञवल्क्य आदि हैं। ये भी ब्राह्मणों के प्रवक्ता हैं। ऐसा हम ब्राह्मणों के सङ्कलन-काल प्रकरण में स्पष्ट कर चुके हैं। इस विषय के और प्रमाण निम्नलिखित हैं—

(क) शतपथ ब्राह्मण ११।६।२।१॥ में कहा है—

जनको ह वै वैदेहो ब्राह्मणैर्धावयद्भिः समाजगाम श्वेत-
केतुनारुणेयेन, सोमशुष्मेण सात्ययज्ञिना याज्ञवल्क्येन । तान्
होवाच-कथं कथमग्निहोत्रं जुहुथ-इति ।

इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि—

(१) जनक ।

(२) श्वेतकेतु आरुणेय ।

(३) सोमशुष्म सात्ययज्ञि* । और

(४) याज्ञवल्क्य समकालीन थे ।

यही परिणाम और प्रकार से भी निकलता है ।

(ख) शतपथ ब्राह्मण १४।९।३।१५-२०॥ में निम्नलिखित वाक्य से आरम्भ करके एक गुरु-शिष्य परम्परा दी है—

तद् ह्यैतद्गृह्णालक आरुणिः वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्ते-
वासिन उक्तवोवाच.....

इस परम्परा का चित्र नीचे दिया जाता है—

१—उद्दालक आरुणि (५)

२—वाजसनेय याज्ञवल्क्य (४)

३—मधुक पैङ्ग्य † (६)

* सम्भवतः इसी सात्ययज्ञि का उल्लेख शतपथ १३।५।३।९॥ में है—

तद्गु होवाच सात्ययज्ञिः ।

† सम्भवतः यहाँ पैङ्ग्य शतपथादि ब्राह्मणों में उद्धृत है। देखो शतपथ १२।

३।१।८॥ तथा मधुक नाम से इसी का उल्लेख कौ० १९।९॥ में है—

पतद् स्म वै तद्विद्वानाह पैङ्ग्यः । यह जानते हुए पैङ्ग्य बोला ।

४—चूड भागवति	(७)
५—जानकि आयस्युण	(८)
६—सत्यकाम जाबाल	(९)
७—अनेक अन्तेवासी	

संख्या (२) का श्वेतकेतु आरुणेय संख्या (५) के उद्दालक आरुणि का पुत्र है। अतः वह याज्ञवल्क्य का गुरु-पुत्र होने से भ्राता* ही है।

(ग) इस में प्रमाण छान्दाग्य उपनिषद् का है—

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस । तं पितोवाच..... । ६ । १ । १ ॥

उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच... । ६ । ८ । १ ॥

(घ) जनक की महती सभा में गुरु उद्दालक† भी शिष्य याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछता है—

अथ हैनमुद्दालक आरुणिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्याशं १४।६।७।१॥

(ङ) संख्या (९) का सत्यकाम जाबाल‡ ही जनक को कुछ उपदेश दे गया था। उसी उपदेश को याज्ञवल्क्य जनक से सुन रहा है—

अब्रवीन्मे सत्यकामो जाबालः । शतपथ १४।६।१०।१४॥

(च) इसी संख्या (९) वाले सत्यकाम जाबाल का एक गुरु—

स (सत्यकामो जाबालः) ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ।

छां० उ० ४।४।३॥

* याज्ञवल्क्य के समान यह भी संन्यासी होगया था। देखो जाबाल उपनिषद्—

परमहंसानाम संवर्तक-आरुणिःश्वेतकेतुः ॥ ६ ॥

† इसी उद्दालक को चित्र गार्गीयाणि ने स्वयम्भार्य वरा था—

चित्रो ह वै गार्गीयाणिर्यक्ष्यमाण आरुणिं वव्रे । स ह पुत्रं श्वेतकेतुं प्रजिगाय याजयेति । कौषीतकि उप० १।१॥

इसी का पिता अरुण औपवाशि था। देखो शतपथ १४।९।४।३३॥ तथा—

ऐतद्ध स्म वा आहारुण औपवेशिः । मै० सं० १।४।१०॥३।६।४॥

‡ इसी का कथन शतपथ १३।५।३।१॥ में किया गया है—

इति ह स्माह सत्यकामो जाबालः ।

(१०) हारिद्रुमत गौतम था ।

(छ) श्वेतकेतु आरण्य ही

(११) पञ्चालाधिपति प्रवाहण जैबलि के समीप गया था—

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानां समितिमेयाय । तं ह प्रवा-
हणो जैबलिरुवाच । छा० उ० ५।३।१॥*

लगभग ऐसा ही पाठ बृहदारण्यक ६।२।१॥ में भी है ।*

(ज) यही श्वेतकेतु जब ब्रह्मचारी था, तब—

(१२) अश्विद्वय ने इसकी चिकित्सा की थी । देखा विश्वरूपाचार्य कृत
बालक्रीडा टीका ९।३२॥ पर चरकों का पाठ—

तथा च चरकाः पठन्ति—

श्वेतकेतुं हारुणेयं ब्रह्मचर्यं चरन्तं किलासो जग्राह । तम-
श्विनावृचतुः । 'मधुमांसौ किल ते भैषज्यम्' इति ।

(झ) संख्या (११) वाले प्रवाहण जैबलि का,

(१३) शिलक शालावत्य, और

(१४) चैकितायन दाल्भ्य[†] से परस्पर संवाद हुआ था । क्योंकि बृहदारण्यक
में निम्नलिखित वाक्य से आरम्भ कर के उन का संवाद कहा है—

त्रयो होद्गोथे कुशला बभूवुः । शिलकः शालावत्यः । चैकि-
तायनो दाल्भ्यः । प्रवाहणो जैबलिः । ६ । २ । ३ ॥

(ज) संख्या (१४) वाले चैकितायन का भ्राता

(१५) बको दाल्भ्य प्रतीत होता है ।

(ट) इस बक दाल्भ्य तथा

(१६) ग्लाव मैत्रेय

उल्लेख छान्दाग्य उपनिषद् में है—

अथात शौव उद्गीथः । तद्ब बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः

स्वाध्यायमुद्ब्राज । १ । १२ । १ ॥

(ठ) इन्हीं (१४) और (१५) संख्या वाले दोनों व्यक्तियों का भ्राता

* तुलना करो छतपथ १४ । ९ । १ । १ ॥

† इसी व्यक्ति का कथन छा० उ० ५।८।१॥ में किया गया है ।

(१७) केशी दाम्भ्य* प्रतीत होता है ।

केशी ह दाम्भ्यो दीक्षितो निषसाद । कौ० ७ । ४ ॥

(ड) इसी केशी दाम्भ्य को

(१८) केशी सात्यकामिः ने उपदेश दिया था ।

(ढ) इसी केशी दाम्भ्य ने

(१९) षण्डिक औद्धारि को परामृत किया था ।

(ण) संख्या (५) वाले उद्दालक आरुणि का विचार—

(२०) शौनक स्वैदायन से हुआ था । देखो—

**उद्दालको हारुणिः..... । हन्तैनं ब्रह्मोद्यमाह्वयामहा इति ।
केन वीरेणेति । स्वैदायनेनेति । शौनको ह स्वैदायन आस ।
शतपथ ११।४।१।१॥**

(त) इसी उद्दालक आरुणि के समीप—

(२१) शौचेय प्राचीनयोग्य आया था—

शौचेयो ह प्राचीनयोग्यः । उद्दालकमारुणिमाजगाम ।

श० ११ । ५ । ३ । १ ॥

(थ) इसी उद्दालक के समीप

(२२) प्रोति कौशाम्बेय कौसुराबिन्दि ने ब्रह्मचर्य वास किया था—

**प्रोतिर्ह कौशाम्बेयः । कौसुरुबिन्दिरुद्दालक आरुणौ ब्रह्मच-
र्यमुवास । श० १२।२।२।१३॥**

(द) इस प्रोति कौसुरुबिन्दि का पिता—

(२३) कुसुरुबिन्द ।

उद्दालक का पुत्र वा शिष्य ही था । क्योंकि तैत्तिरीय संहिता में निम्नलिखित वाक्य मिलता है—

कुसुरुबिन्द औद्दालकिरकामयत । ७ । २ । २ ॥

(घ) इसी उद्दालक आरुणि के समीप—

* दाम्भ्य और दाम्भ्य में कोई भेद नहीं है । देशविशेषों में ग्रन्थों के लिखे जाने के कारण ही यह ल और र का भेद हो गया है ।

(२४) प्राचीनशाल औपमन्यव ।

(२५) सत्ययज्ञ* पौलुषि ।

(२६) इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय ।

(२७) जन शार्कराक्ष्य ।

(२८) बुडिल आश्वतराश्वि †

ये पांच महाश्रोत्रिय गये थे। क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—

**प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्ल-
वेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विः...॥१॥ ते ह संवा-
दयां चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीभमात्मानं
वैश्वानरमध्येति ॥२॥५॥११॥**

(न) इन पांचों को साथ लेकर उद्दालक आरुणि—

(२९)‡ महाराज अश्वपति के समीप गये थे—

**तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः संप्रतीभमात्मानं
वैश्वानरमध्येति । छा० उ० ५।११।४॥**

अब कहां तक लिखें। सैकड़ों और नाम भी लिखे जा सकते हैं। § ये उन्नीस

* संख्या (३) वाला सोमशुभ्रम इसी सत्ययज्ञ का पुत्र प्रतीत होता है ।

† इसी का संख्या (१) वाले जनक से संवाद हुआ था । देखो—

**एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो बुडिलमाश्वतराश्विमुवाच । श०
१४।८।१५।११ ॥**

‡ इन में से कुछ नाम पारजिटर ने अपने ग्रन्थ A.I.H. Tradition
पृ० ३२७ और ३२८ पर दिये हैं ।

§ उदाहरणार्थ

(३०) हिरण्मय शकुन (कौ० ७ । ४ ॥)

(३१) आसोलो वार्ष्णिवृद्ध ”

(३२) इटन् काव्य । ”

(३३) शिल्पण्डी याज्ञसेन । ”

(३४) गौश्र । (कौ० १९ । ९) मधुक से वार्तालाप करने से ।

(३५) उपकोसल कामलायन । छा० उप० ४ । १० । १ ॥ सत्यकाम जाबाल
का शिष्य होने से ।

भृश्रोत्रिय, सत्यव्रता महाशय लगभग समकालीन थे। इन्हीं से दो, चार, छः पीढ़ी पहले अनेक वैदिक ऋषि हो चुके थे। इन ऋषियों द्वारा वेदार्थ का प्रचार निरन्तर होता रहता था। और दो चार पीढ़ियों में वह अर्थ भूल भी नहीं सकता था। विशेषतः जब परम्परा अविच्छिन्न थी। ऐसी अवस्था में जो पाश्चात्य घर बैठे ही मन्त्रोंका अनृत अर्थ करके अपने को वेदज्ञ मानते हैं और ब्राह्मणादि-ग्रन्थों के अर्थ को अनर्थ समझते हैं, वे भ्रम से ही अपने बहुमूल्य जीवनों को यथार्थ वेदार्थ से वञ्चित कर रहे हैं।

हम पहले भी पृ० २८, २९ पर कह चुके हैं कि मौलिक ब्राह्मणों के प्रवृत्ता ही वेदार्थ के द्रष्टा होते रहे हैं। वही मौलिक ब्राह्मण इन ब्राह्मणों में महाभारत-काल* में समाविष्ट किये गये। अतः इन्हीं ब्राह्मणों के अन्दर वेदों के मूलार्थ को प्रकाश करने वाली सामग्री विद्यमान है। इन में कहीं २ ही मन्त्रोंके भावों का व्याख्यान नहीं, प्रत्युत सारा ब्राह्मण-वाङ्मय ही मन्त्रार्थ प्रकाशक है। ब्राह्मणों में अल्पाभ्यास के कारण ही पाश्चात्यों ने इन के ठीक अभिप्राय को नहीं समझा। इतने लेख से ही मैकडानल की तीसरी, चौथी और पांचवीं प्रतिज्ञा का उत्तर समझ लेना।

६-यह व्याख्यान प्रायः काल्पनिक होते हैं।

ब्राह्मणों के व्याख्यान यथार्थ हैं, यह तो ब्राह्मण और वेद के गम्भीरपाठ से ही ज्ञात हो सकता है। हाँ, उदाहरण मात्र हम अश्विन शब्द को लेते हैं।

पूर्वपक्ष

(क) मैकडानल अपनी Vedic Mythology पृ० ५३ (सन् १८९८) पर लिखता है—

“As to the physical basis of the Asvins the language of the Rsis’ is so vague that they themselves do not seem to have understood what phenomenon these deities represented.”

(ख) मैकडानल ने अपनी Vedic Reader पृ० १२८ पर भी ऐसा ही लिखा है। यही महाशय पृ० १२९ पर पुनः लिखते हैं—

“The physical basis of the Asvins has been a puzzle

*एफ० इ० पारजिटर महाशय अपने ग्रन्थ Ancient Indian Historical Tradition (सन् १९२२) में महाभारत-काल को ईसा से लगभग १००० वर्ष पूर्व ही मानते हैं। यह उनकी सरासर खेचतान है। इसका सविस्तर उत्तर हम अन्यत्र देने का विचार रखते हैं।

from the time of the earliest interpreters before Yaska, who offered various explanations, while modern scholars also have suggested several theories. The two most probable are that the Asvins represented either the morning twilight, as half light and half dark, or the morning and the evening star."

(ग) घाटे महाशय अपने Lectures on Rigveda पृ० १७३-१७४ पर लिखते हैं—

"But these theories (dawn and the spring) cannot fully explain all the details connected with these legends."

(घ) वेद में अश्विन् और नासत्य विशेषण भाव से प्रायः एकार्थ वाची आते हैं। यथा १।३।७। में नासत्या..... अश्विना। इसी भाव से जब वेद-मन्त्रों पर देवता लिखे जाते हैं तो कई आचार्य नासत्यौ लिख देते हैं और कोई अश्विनौ देवते। उदाहरणार्थ ऋ० १।१।५। १।१। के देवते बृहद्देवता में नासत्यौ हैं और ऋषि दयानन्द के भाष्य में अश्विनौ।

इसी नासत्य शब्द पर लिखते हुए श्री अरविन्द घोष अपने आर्य के "प्रथम" वर्ष के पृ० ५३१ पर लिखते हैं—

"Nasatya is supposed by some to be a patronymic, the old grammarians ingeniously fabricated for it the sense of "true not false" but I take it from 'nas' to move.They show that the Asvins are twin divine powers whose special function is to perfect the nervous or vital being in man in the sense of action and enjoyment. But they are also powers of truth, of intelligent action, of right enjoyment."

Barth आदि फ्रैञ्च लेखकों ने भी अन्य पश्चिमीय विद्वानों के समान ही लिखा है।

उत्तर पक्ष

मैकडानल ने अपने अज्ञान के छिपाने की अच्छी विधि निकाली है, जब वह कहता है कि वैदिक ऋषि अश्विद्वय के आधिदैविक अर्थों को स्वयं भी न समझे हुए प्रतीत होते हैं। वैदिक ऋषि तो क्या, यास्क प्रभृति शास्त्रकार और उनकी कृपा ने

हम भी अश्विद्वय के वास्तविक आधिदैविक अर्थों को जानते हैं। ऋग्वेद में स्वयं अश्विन शब्द के धातु का निर्देश है—

पूर्वीरश्रन्तावश्विना । ८ । ५ । ३१ ॥

अर्थात्—अश्रन्तौ अश्विनौ व्यापनशील अश्विद्वय । इसी व्युत्पत्ति को ध्यान में रख कर शतपथ में कहा गया है—

अश्विनाविमे हीदꣳ सर्वमाश्रनुवाताम् । ४ । १ । १६ ॥

इस व्युत्पत्ति बताने के अनन्तर हम कहना चाहते हैं कि—अश्विद्वय का जो अर्थ निरुक्त और बृहद्देवता में कहा गया है, वही ब्राह्मणों और शाखाओं में भी मिलता है । निरुक्त में व्युत्पत्ति भी वेद और ब्राह्मण वाली ही कही गई है । देखो—

अश्विनौ यद् व्यश्रनुवाते सर्व रसेनान्यो ज्योतिषान्यः
तत्कावश्विनौ । द्यावापृथिव्यौ, इत्येके । अहोरात्रौ, इत्येके ।
सूर्याचन्द्रमसौ, इत्येके । राजानौ पुण्यकृतौ, इत्यैतिहासिकाः ॥
नि० १२ । १ ॥

नासत्यौ चाश्विनौ । सत्यावेव नासत्यौ, इत्यौर्णवाभः । सत्यस्य
प्रणेतारौ, इत्याग्रायणः । नासिकाप्रभवौ बभूवतुरिति वा ॥
नि० ६ । १३ ॥

और्णवाभो द्वचे त्वस्मिन् अश्विनौ मन्यते स्तुतौ ॥१२५॥

सूर्याचन्द्रमसौ तौ हि प्राणापानौ च तौ स्मृतौ ।

अहोरात्रौ च तावेव स्यातां तावेव रोदसी ॥१२६॥

अश्रनुवाते हि तौ लोकाब्ज् ज्योतिषा च रसने च ।

पृथक्पृथक् च चरतो दक्षिणेनोत्तरेण च ॥ १२७ ॥

बृ० अध्याय ७ ॥

यही पूर्वोक्त भाव ब्राह्मणों और शाखाओं में मिलते हैं ।

द्यावापृथिवी वा अश्विनौ । काठक सं० १३ । ५ ॥

इमे ह वै द्यापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ । शं० ४ । १ । ५ । १६ ॥

अहोरात्रे वा अश्विनौ । मै० सं० ३ । ४ । ४ ॥

तथा ऋग्वेद में कहा है—

ऋता । १ । ४६ । १४ ॥

ऋतावृधा । १ । ४७ । १ ॥

अर्थात् अश्विद्वय = नासत्य, सत्य स्वरूप हैं । वे ही सत्य से बढ़ने वा बढ़ाने वाले भी हैं ।

यास्क ने नासत्यों को नासिकाप्रभव इस लिये लिखा है कि उस का अभिप्राय प्राणापान से है । ये प्राणापान नासिका से ही उत्पन्न होते हैं ।

ब्राह्मणों में अश्विद्वय को अध्वर्यू भी कहा है—

अश्विनावध्वर्यू । श० १ । १ । २ । १७ ॥

और क्योंकि राष्ट्ररूप महायज्ञ के अध्वर्यू सभाध्यक्ष वा सेनाध्यक्ष भी होते हैं, अतः निरुक्त में अश्विद्वय का अर्थ पुण्यशील दो राजे भी कहा है । ऋग्वेद १०।३९।१९॥ में तो स्पष्ट ही राजानौ अश्विद्वय का विशेषण है ।

ये सारे अर्थ एक ही भाव को कह रहे हैं । वह भाव है व्यापनशीलता का । यदि ये सारे अर्थ न माने जावें, तो अनेक मन्त्रों का अर्थ खुलता ही नहीं ।

इस से भले प्रकार ज्ञात होता है कि ब्राह्मणान्तर्गत, मन्त्र, और उनके पदों का व्याख्यान अत्यन्त युक्त है । यास्क ने भी वही व्याख्यान स्वीकार कर लिया है । जो पाश्चात्य यास्क के, और ब्राह्मण के व्याख्यानों को काल्पनिक कहते हैं, उन्हें वेद समझ ही नहीं आया ।

७—ऋषियों को जो अर्थ अभिप्रेत था, ब्राह्मण उन से सर्वथैव उलटा अर्थ समझते हैं । जैसे—

कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

हिरण्यपाणि का अर्थ ब्राह्मणों में विचित्र है ।

७—अब मैकडानल महाशय उदाहरण-विशेषों से ब्राह्मणों के विचित्र अर्थ का प्रदर्शन करते हैं । अतः हम उन के इस कथन की परीक्षा करते हैं ।

कः का प्रजापति अर्थ ब्राह्मणों में ही नहीं किया गया, प्रत्युत मैत्रायणी आदि शाखाओं के ब्राह्मणपाठों में भी किया गया है । जैसे—

कन्त्वाय कायो यद्वै तद्वरुणगृहीताभ्यः कमभवत्तस्मात्कायः।

प्रजापतिर्वै कः । प्रजापतिर्वै ताः प्रजा वरुणेनाग्राहयद्यत्काय
आत्मन एवैना वरुणान्मुञ्चति । मै० सं० १ । १० । १० ॥

कन्त्वाय कायो यद्वा आभ्यस्तद्वरुणगृहीताभ्यः । कमभवत्त-
स्मात्कायः । प्रजापतिर्वै ताः प्रजा वरुणेनाग्राहयत्प्रजापतिः कः।
आत्मनैवैना वरुणान्मुञ्चति । काठक सं० ३६ । ५ ॥

पूर्वोद्धृत वाक्यों में प्रजापति का नाम क इस लिये कहा गया है कि यह
सुखस्वरूप है । क का अर्थ सुख है, ऐसा मानने में किसी पाश्चात्य को भी
सन्देह नहीं होना चाहिये । ऋग्वेद में जो—

नाकः । १० । १२१ । ५ ॥

पद आता है, उस के स्वरूप पर विचार करने से निश्चय होता है कि क का
अर्थ सुख है ।

अब कई एक ऐसा कहते हैं कि यदि कस्मै का अर्थ सुखस्वरूपाय
प्रजापतये किया जाय तो व्याकरण बाधा डालता है । सर्वनामः स्मै ॥ अष्टा०
७ । १ । १७ ॥ स्मै प्रत्यय सर्वनामों के साथ ही लगता है, अतः कस्मै पद सर्व-
नाम है, नाम नहीं ।*

ये महाशय नहीं जानते कि वेद में लौकिक व्याकरण के नियम काम नहीं
देते । देखो विश्व पद सर्वनाम है । परन्तु ऋग्वेद में—

विश्वाय । १ । ५० । १ ॥

विश्वात् । १ । १८९ । ६ ॥

विश्वे । ४ । ५६ । ४ ॥

इसी शब्द के ये तीन रूप नाम-प्रत्ययान्त आये हैं † इतना ही नहीं,
ऋग्वेद में नाम भी सर्वनाम प्रत्ययान्त आये हैं । जैसे ऋ० १।१०८।१०॥

* मैक्समूलर इस विषय में एक लम्बा लेख लिखता है देखो—

Vedic Hymns Part I. 1891. p. 11-13.

† मैकडानल A Vedic Grammar for students, 120b. में यही
स्वीकार करता है । यदि उसे हमारे इस सारे कथन का ध्यान आ गया होता तो
वह अबश्य कोई और कल्पना उपस्थित करता ।

यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।

इस मन्त्र में—परमस्याम् । मध्यमस्याम् । अवमस्याम् । इन नाम-वाची पदों के साथ सर्वनाम प्रत्यय हैं, अतः प्रजापतिवाचक क के साथ यदि स्मै प्रत्यय आ जाय और ब्राह्मणादि उसको नाम मान कर अर्थ करें, तो यह अनुचित नहीं, प्रत्युत उचिततम है । पाश्चात्य वेदार्थ को भ्रष्ट करना चाहते हैं । उन का अभिप्राय यही है कि संसार वेद का गौरवयुक्त अर्थ जान ही न सके । अतः वे वेद का यथासम्भव ऐसा अर्थ चाहते हैं, जिस से यहाँ ज्ञात हो कि आर्यों को वेदमन्त्रों से परब्रह्म का भी ज्ञान नहीं होसका । वे सदा प्रश्न ही करते रहे, कि “हम किस देव की हवि से पूजा करें ।” दो चार अल्पपठित भारतीय उन की बातें सुन कर भले ही यह कह दें कि ब्राह्मणों में कस्मै का अशुद्ध अर्थ किया गया है वरन् आर्य विद्वान् ऐसे आक्षेपों पर हँस छोड़ने की अपेक्षा और क्या कह सकते हैं ।

भाष्यकार पतञ्जलि मुनि—

कस्येत । ४ । २ । २५ ॥

सूत्र पर व्याख्या करते हुए इस आक्षेप का और ही समाधान करते हैं । वह भी देखने योग्य है—

सर्वस्य हि सर्वनाम संज्ञा क्रियते । सर्वश्च प्रजापतिः । प्रजा-पतिश्च कः ।

लिखा तो बहुत कुछ जा सकता है, परन्तु विद्वान् इतने से ही जान सकते हैं कि ब्राह्मणार्थ को दूषित कहने वाले पाश्चात्य जन स्वयमेव वेद विद्या में अल्पश्रुत हैं ।

(ख) इस के अनन्तर मैकडानल महाशय हिरण्यपाणि शब्द और उस के ब्राह्मणान्तर्गत अर्थ पर विचार करते हैं ।

हम कहते हैं, कि उन्होंने ने हिरण्यपाणि शब्द ही क्यों लिया । वे त्रिशिर्ष त्वाष्ट्र, दध्यङ् आथर्वण, रुद्र आदि कोई शब्द भी ले लेते । इन में से प्रत्येक शब्द के साथ ब्राह्मण में कोई न कोई कथा अलङ्काररूप से कही गई है । हम भी इन सारी कथाओं का समुचित अर्थ अभी तक नहीं समझ सके । परन्तु हम यह नहीं कहते कि यत्न करने पर भी इन के अन्दर से कोई गम्भीर आधिदैविक तत्त्व न निकलेगा । अतः हम पूर्ववत् अपने पाश्चात्य मित्रों से यहाँ प्रार्थना करेंगे, कि वे इन ग्रन्थों का अर्थ समझने में हमारा साथ दें, न कि समझने के स्थान में इन की ओर उपेक्षा दृष्टि करें ।

८—भाषा सम्बन्धी साक्ष्य को पृथक् रखकर भी ऐसे व्याख्यान बताते हैं कि ब्राह्मण-काल से मन्त्र काल का बड़ा अन्तर हो चुका था ।

८—चारों वेदों का प्रकाश आदि सृष्टि में ऋषि-जनों के हृदय में हुआ । उन्हीं दिनों से ब्रह्मा आदि महर्षियों ने ब्राह्मणों का प्रवचन आरम्भ कर दिया । वही प्रवचन कुल परम्परा वा गुरुपरम्परा में सुरक्षित रहा । उस के साथ नवीन प्रवचन भी समय २ पर होता रहा । यह सारा प्रवचन महाभारतकाल में इन ब्राह्मणों के रूप में सङ्कलित हुआ । यह सारी परम्परा अनवच्छिन्न थी । अतः काल की दृष्टि से, ब्राह्मणों का कुछ अंश तो मन्त्रों की अपेक्षा नवीन होसकता है, सब नहीं । और जो महाशय भाषा के साक्ष्य पर बहुत बल देते रहते हैं, उन्होंने ब्राह्मणान्तर्गत यज्ञगाथायें नहीं देखीं । यदि देखीं भी हैं, तो उन पर ध्यान नहीं दिया । ये सब गाथायें सर्वथैव लौकिक भाषा में हैं । ऐसा हम पूर्व दिखा भी चुके हैं । वही ऋषि ब्राह्मणों का प्रवचन करते थे, और वही धर्मशास्त्रादि का भी ।* अतः भाषा के साक्ष्य पर कोई बात सिद्ध नहीं की जा सकती । जिन पाश्चात्यों ने सुविस्तृत आर्ष वाङ्मय का दीर्घ अभ्यास नहीं किया, वे अपने कल्पित भाषा-विज्ञान पर निरर्थक बहुत बल देते रहते हैं । इससे वे कुछ निर्णीत नहीं कर सकते । भाषा तो विषयानुसार भी भिन्न २ प्रकार की होसकती है ।† अतः मैकडानल साहेब की आठवाँ प्रतिज्ञा भी निर्मूल है । अधिक लिखने से क्या । हमारे पूर्व लेख में भी इसका अच्छा खण्डन हो चुका है । फलतः हम सुदृढ रूप से कह सकते हैं कि ब्राह्मण प्रदर्शित वेदार्थ ही हमें वेद के यथार्थ तत्त्वों तक पहुंचा सकता है । अतः ब्राह्मण कहता है यथर्कथा ब्राह्मणम् । श० १२।५।२।४॥ एतदर्थं ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने वेदभाष्य के विज्ञापन में कहा था—

“इदं वेदभाष्यमपूर्वं भवति । कुतः । महाविदुषामार्याणां पूर्वजानां यथावद्वेदार्थविदामाप्तानामात्मकामानां धर्मात्मनां सर्वलोकोपकारबुद्धीनां श्रोत्रियाणां ब्रह्मनिष्ठानां परमयोगिनां ब्रह्मादिव्यासपर्य्यतानां मुन्यृषीणामेषां कृतीनां सनातनानां वेदाङ्गानामैतरेयशतपथसामगोपथब्राह्मणपूर्वमीमांसादिशास्त्रोपवेदोपनिषच्छाखान्तरमूलवेदादिसत्यशास्त्राणां वचनप्रमाणसंग्रहलेखयोजनेन प्रत्यक्षादिप्रमाणयुक्त्या च सहैव रच्यते ह्यतः ।”

* विस्तारार्थ D. A. V. College U. Magazine, Feb. 1925 में देखो हमारा लेख—“Classical Sanskrit is as old as the Brahmanas”

† भाषा सम्बन्धी साक्ष्य पर Dr. R. Zimmermann का लेख A Second Selection of Hymns from the Rigveda, 1922 pp. cxxxii-cxxxviii पर देखने योग्य है ।

लुप्त वा अप्रकाशित ब्राह्मण-ग्रन्थ ।

ब्राह्मण ग्रन्थों के पाठ के लिये यह आवश्यक है कि हम इस वाङ्मय के अधिक से अधिक ग्रन्थों का परिचय करें। प्राचीन काल से लेकर बौद्ध-काल तक सहस्रों ब्राह्मण ग्रन्थ विद्यमान थे, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं। इस समय जो पन्द्रह ब्राह्मण-ग्रन्थ छप चुके हैं, उन के नाम हम प्राक्थन में लिख चुके हैं। इन के अतिरिक्त जिन लुप्त ब्राह्मणों का उल्लेख संस्कृत-साहित्य में मिलता है, उन का नाम हम नीचे देते हैं। सम्भव है, इस सूची में से कुछ नाम रह गये हों। जिन विद्वानों को ऐसा पता कहीं मिले, वे कृपया हमें सूचित करें।

वे ब्राह्मण जिन के हस्तलेख मिल चुके हैं।

(१) काण्वीय शतपथ ब्राह्मण (यजुर्वेदीय)। यह अब लाहौर में ही छप रहा है।

(२) जैमिनीय ब्राह्मणम्-तलवकार ब्राह्मणं वा। (सामवेदीय) इस का संस्करण हमारे हाँ पं० वेद व्यास एम० ए० कर रहे हैं।

अप्राप्त परन्तु साहित्य में उद्धृत ब्राह्मण।

(१) चरक ब्राह्मण। (यजुर्वेदीय) विश्वरूपाचार्यकृत बालकांडा टीका में उद्धृत। भाग प्रथम पृ० ४८, ८०। भाग द्वितीय पृ० ८६। भाग २, पृ० ८७ पर लिखा है—

तथा अग्नीषोमीयब्राह्मणे चरकाणाम्।

याजुष चरक शाखा का यह प्रधान ब्राह्मण था। इस के आरण्यक का एक प्राचीन हस्तलेख (सं० १७५) हमारे पुस्तकालय में है। यह आधिकांश में सप्त प्रपाठकात्मक मैच्युपनिषद् से मिलता है।

(२) श्वेताश्वतरब्राह्मण। (यजुर्वेदीय) बालक्रीडा टीका भाग १, पृ० ८ पर उद्धृत। श्वेताश्वतरोपनिषद् इसी के आरण्यक का भाग प्रतीत होता है।

(३) काठक ब्राह्मण। (यजुर्वेदीय) तैत्तिरीय ब्राह्मण के कुछ अन्तिम भागों को भी कठ वा काठक ब्राह्मण कहते हैं। परन्तु यह काठक ब्रा० उस से भिन्न है। यह चरकों के द्वादश अवान्तर विभागों में से एक है। इस के आरण्यक का कुछ भाग हस्तलिखित रूप में योरुप के कुछ पुस्तकालयों में विद्यमान है। श्रीनगर कश्मीर में एक ब्राह्मण ने हम से कहा था कि इसका हस्तलेख मिल सकता है। एफ० ओ० श्रेडर सम्पादित, “माईनर उपनिषद्सु” प्रथम भाग पृ० ३१-४२ तक जो

कठश्रुत्युपनिषत् छपा है, वह इसी ब्राह्मण का कोई अन्तिम भाग अथवा खिल प्रतीत होता है। उस के वचनों की यतिधर्मसंग्रह का कर्ता विश्वेश्वर सरस्वती आनन्दाश्रम पूना के संस्करण (सन् १९०९) के पृ० २२ पं० २६, पृ० ७६ पं० ९ आदि पर काठक-ब्राह्मण के नाम से भी उद्धृत करता है।

(४) मैत्रायणी ब्राह्मण । (यजुर्वेदीय) बौधायन श्रौतसूत्र ३०।८॥ में उद्धृत। नासिक के वृद्ध से वृद्ध मैत्रायणी शाखा अध्येतृ ब्राह्मणों ने कहा था कि उन्हें इस के अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं रहा। उनके कथनानुसार उन की संहिता में ही ब्राह्मण सम्मिलित है। परन्तु पूर्वोक्त बौधायन श्रौत का प्रमाण मुद्रित ग्रन्थ में नहीं मिला। इसलिये ब्राह्मण पृथक् ही रहा होगा। मैत्रायणी उपनिषद् का अस्तित्व भी इस ब्राह्मण का होना बता रहा है। फिर भी पूरा निर्णय होने के लिये मैत्रा० संहिता का पुनः छपना आवश्यक है। बड़ोदा के सूचीपत्र (सन् १९२५) सं० ७९ में कहा गया है कि उनका हस्तलेख मुद्रित मै० सं० से कुछ भिन्न है। बालक्रीडा भाग २ पृ० २७ पं० ३ पर एक श्रुति उद्धृत है। उसी श्रुति को विश्वेश्वर यतिधर्म-संग्रह पृ० ७६ पर मैत्रा० श्रुति के नाम से उद्धृत करता है।

(५) भाल्लवि ब्राह्मण । बृहद्देवता ५ । २३ ॥ माषिक सूत्र ३।१५॥ नारद शिक्षा १ । १३ ॥ महाभाष्य ४ । २ । १०४ ॥ में इस का मत वा नाम कहा है।

(६) जाबाल ब्राह्मण । (यजुर्वेदीय) जाबाल श्रुति का एक लम्बा उद्धरण बालक्रीडा भाग २, पृ० ९४, ९५ पर उद्धृत है। यह सम्भवतः ब्राह्मण का पाठ होगा। बृहज्जाबालोपनिषद् नवीन है, परन्तु जाबाल उप० प्राचीन प्रतीत होता है। इस शाखा का एक गुह्य (जाबालि गुह्य) गौतम धर्मसूत्र के मस्करी भाष्य के पृ० २६७, ३८९ पर उद्धृत है।

(७) पैङ्गी ब्राह्मण । इसका ही दूसरा नाम पैङ्गय ब्रा० वा पैङ्गायनि ब्रा० भी है। यह आपस्तम्बश्रौत ५ । १८ । ८ ॥ ५ । २९ । ४ ॥ में उद्धृत है। आचार्य शङ्करस्वामी भी इसे शारीरिक सूत्र भाष्य में उद्धृत करते हैं। पैङ्गी कल्प का उल्लेख महाभाष्य ४ । २ । ६६ ॥ पर है।

(८) शाट्यायन ब्राह्मण । (सामवेदीय ?) आपस्तम्ब श्रौत १० । १२ । १३, १४ ॥ २१ । १६ । ४, १८ ॥ पुष्पसूत्र ८ । ८ । १८४ ॥ में उद्धृत है। सायण अपने ऋग्वेद भाष्य और ताण्ड्य ब्राह्मण भाष्य में इसे बहुत उद्धृत करता है। इसी का कल्प बालक्रीडा भाग १, पृ० ३८ पर उद्धृत है।

(९) कंकति ब्राह्मण । आपस्तम्ब श्रौत १४ । २० । ४ ॥ पर उद्धृत है । महाभाष्य ४ । २ । ६६ ॥ कीलहार्न सं० पृ० २८६, पं० १२ पर कांकता प्रयोग है । इस से भी कंकति शाखा के अस्तित्व का पता लगता है ।

(१०) सौलभ ब्राह्मण । महाभाष्य ४ । २ । ६६ ॥ ४ । ३ । १०५ ॥ पर इसका उल्लेख है ।

(११) कालबवि ब्राह्मण । (सामवेदीय) आपस्तम्ब श्रौत २०।१।९ ॥ पर उद्धृत है । पुष्पसूत्र प्रपाठक ८ । ८ । १८४ ॥ पर भी यह उद्धृत है ।

(१२) शैलालि ब्राह्मण । आपस्तम्ब श्रौत ६।४।७ ॥ पर उद्धृत है ।

(१३) रौराकि ब्राह्मण । * गोमिलगृह्य सूत्र ३।२।५ ॥ पर उद्धृत है ।

(१४) खाण्डिकेय ब्राह्मण । (यजुर्वेदीय) भाषिकसूत्र ३ । २६ ॥ पर उद्धृत है ।

(१५) औखेय ब्राह्मण । (यजुर्वेदीय) भाषिक सूत्र ३ । २६ ॥ पर उद्धृत है ।

(१६) हारिद्रविक ब्राह्मण ।

(१७) तुम्बरु ब्राह्मण ।

(१८) आरुणेय ब्राह्मण । ये अन्तिम तीनों ब्राह्मण महाभाष्य ४ । ३ । १०४ ॥ पर उल्लिखित हैं ।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि यत्न करने पर इन में से भी कुछ ब्राह्मणों के हस्तलेख अभी प्राप्त होसकते हैं । यदि कहीं से धन मिल जावे, तो उन के खोजने के लिये यत्न किया जा सकता है ।

५—मुद्रित ब्राह्मणों में अष्टपाठ ।

मुद्रित ब्राह्मणों में अष्टपाठ पर्याप्त हैं । गोपथ के योरुपाय संस्कर्ता ने यद्यपि बहुत परिश्रम से लार्डइन संस्करण छापा है तो भी अभी तक उस में अशुद्धियों की कमी नहीं । तुलना करो गोपथ उ० ३ । ३ ॥ से ऐ० ३ । ७ ॥ की इत्यादि ।

ऐ० ३ । ११ ॥ में एक पाठ है—

सौर्या वा एता देवता यन्निविदः ।

यहां देवता के स्थान में देवतया पाठ ब्राह्मण शैली के अधिक समीप है ।

* क्या धर्मस्कन्ध ब्रा०, अन्तर्यामी ब्रा०, दिवाकीर्त्य ब्रा०, धिष्णथ ब्रा०, शिशुमार ब्रा०, आदि के समान यह भी किसी ब्राह्मण का अवान्तर विभाग तो नहीं है ।

कीथ महाशय ने भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया । देखो निम्नलिखित ब्राह्मणपाठ—

ऐन्द्रो वै देवतया क्षत्रियो भवति । ऐ० ७ । १३ ॥

आग्नेयो वै देवतया क्षत्रियो दीक्षितो भवति । ऐ० ७ । २४ ॥

प्राजापत्यो ह्येष देवतया यद् द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । ६ ॥

पुनः ऐतरेय ७ । ११ ॥ में एक पाठ है ।

यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः ।

इसी का दूसरा रूपान्तर कौषीतकि ३ । १ ॥ में ऐसे है—

यां पर्यस्तमयमुत्सर्पेदिति सा स्थितिः ।

इस सम्बन्ध में ऋग्वेदीय ब्राह्मणों के अनुवाद में कीथ का टिप्पण २, पृ० २९७ पर देखने योग्य है । हम अपनी सम्मति अभी नहीं दे सकते । गोपथ और कौषीतकि में समान प्रकरण में क्रमशः एक पाठ है—

अमृतं वै प्रणवः । उ० ३ । ११ ॥

अमृतं वै प्राणः । ११ । ४ ॥

यहां कौषीतकि का पाठ ठीक प्रतीत होता है । ऐसे ही इन दोनों ब्राह्मणों में एक और पाठ है—

अप्सु वै मरुतः शिताः । कौ० ५ । ४ ॥

अप्सु वै मरुतः श्रिताः । गो० उ० १ । २२ ॥

यहां दोनों स्थलों में श्रिताः पाठ युक्त प्रतीत होता है । कीथ महाशय ने यहां कोई टिप्पणी नहीं दी । पुनरपि—

अयस्मयेन चरुणा तृतीयामाहुतिं जुहोति । आयस्यो वै प्रजाः । श० १३ । ३ । ४ । ५ ॥

अयस्मयेन कमण्डलुना तृतीयाम् । आहुतिं जुहोति । आयास्यो वै प्रजाः । तै० ब्रा० ३ । ९ । ११ । ४ ॥

यहां तै० ब्रा० के पाठ में आयास्यः पाठ निश्चय ही चिरकाल से अशुद्ध हो गया है । मट्ट मास्कर और सायण दोनों ही अशुद्ध पाठ को मानकर अर्थ में एक छिष्ट कल्पना करते हैं । अर्थात् अयास्य ऋषि से उत्पन्न की गई प्रजायें हैं । यहां अयास्य ऋषि का कोई प्रकरण ही नहीं । सप्तपथ स्पष्ट करता है कि प्रजायें

(आयस्यः) अर्थात् आयसी = लोह सम्बन्धी हैं। प्रकरण भी दोनों स्थलों में पूर्व पठित अयस्मय पद से लोह विषयक ही है। शतपथ में—

विश एतद्रूपं यदयः । १३ । २ । २ । १९ ॥

से पहले यह कह ही दिया गया है कि विश = प्रजा लोहरूप है। अब न जानें मास्कर, सायण आदिकों ने तुलनात्मक विधि से क्यों लाभ नहीं उठाया, और अष्ट पाठ को ही स्वीकार कर लिया।

हमारे इस कोष से ऐसे और भी स्थल स्पष्ट होंगे। विन्न पाठक उन सब से लाभ उठावें।

ब्राह्मणों में प्रक्षेप।

ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं, ऐसा हम पूर्व सिद्ध कर चुके हैं। जिस प्रकार ब्राह्मणों के अनेक पाठ अष्ट होगये हैं, वैसे ही कुछ पाठ उड़ गये हों, अथवा नये मिल गये हों, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं। परन्तु प्रक्षेपोंके जानने के लिये अभी भारी अनुसन्धान की आवश्यकता है। इसी लिये कई प्रकरणों को वेदानुकूल न मानते हुए भी उनका कोष में समावेश किया गया है।

कोष में अभी कई त्रुटियां रह गई हैं, जिन्हें हम स्वयं जानते हैं। परन्तु समयामाव तथा धनामाव से इस से अच्छा काम नहीं होसकता था। विद्वान् महाशय उन भूलों को ध्यान में न रख कर इस के उपयोगी अंशों से लाभ उठावें, और वैदिक अनुसन्धान में आगे बढ़ें। इन शब्दों के साथ हम कोष के इस प्रथम भाग को विद्वानों की भेंट करते हैं।

कोष के द्वितीय भाग में वेद की तैत्तिरीय, काठक आदि शाखा, जैमिनीय और काण्वीय शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय आदि आरण्यक, आपस्तम्बादि श्रौतसूत्र, यास्क तथा कैात्सव्यकृत निरुक्त और उपनिषदादि वैदिक ग्रन्थों से इसी प्रकार का संग्रह होगा। पाठक उस की प्रतीक्षा करें।

अलमतिविस्तरेण वेदानुसन्धानपरेषु ॥

माघ शुद्धि १० शनि,

वि० सं० १९८२

भगवद्दत्त

संकेत सूची

पेतरेय = ऐ० ।

कौषीतकि = कौ० ।

शतपथ = श० ।

तैत्तिरीय = तै० ।

ताण्ड्य = तां० ।

षड्विंश = ष० ।

जैमिनीय (तलवकार) उपनिषद् ब्रा० = जै० उ०

मंत्र = मं० ।

आर्षेय = आ० ।

(जैमिनीय) आर्षेय = जै० आ० ।

संहितोपनिषद् ब्रा० = सं० ।

वंश = वं० ।

सामविधान = सा० ।

देवताध्याय = दे० ।

गोपथ पूर्वभाग = गो० पू० ।

गोपथ उत्तरभाग = गो० उ० ।

ऋग्वेद = ऋ० ।

यजुर्वेद = यजु० ।



ओ३म्

वैदिककोषः

प्रथमो भागः

(अ)

- अकूधीच्यः प्राणो वा अकूधीच्यः । कौ० ८ । ५ ॥
- अक्षरपङ्क्तयः प्राणापानौ वा अक्षरपङ्क्तयः । कौ० १६ । ८ ॥
- ” पशवो वा अक्षरपङ्क्तयः । कौ० १६ । ८ ॥
- अक्षरपङ्क्तिः सुमत्पद्वग्द (सु, मत्, पद्, वग्, दे) इत्येष वै यज्ञोऽक्षरपङ्क्तिः । ऐ० २ । २४ ॥
- अक्षरपङ्क्तिश्छन्दः (यजुः १५ । ४) असौ वै लोकोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥
- अक्षरम् तद्यदक्षरत्तस्मादक्षरम् । श० ६ । १ । ३ । ६ ॥
- ” यदक्षरदेव तस्मादक्षरम् । जै० उ० १ । २४ । १ ॥
- ” यद्वेवाक्षरं नाक्षीयत तस्मादक्षयम् । अक्षयं ह वै नामैतत् । तदक्षरमिति परोक्षमाचक्षते । जै० उ० १ । २४ । २ ॥
- ” कतमत्तदक्षरमिति । यत्क्षरन्नाऽक्षीयतेति । इन्द्र इति । जै० उ० १ । ४३ । ८ ॥
- ” अक्षरेणैव यज्ञस्य छिद्रमपिदधाति । तां० ८ । ६ । १३ ॥
- ” विराजो वा एतद्रूपं यदक्षरम् । तां० ८ । ६ । १४ ॥
- अक्षर्या अक्षर्यया (स्वर्गं लोकं) ऋषयोनुग्राजानन् । तां० ८ । ५ । ७ ॥
- अक्षि यदेतन्मण्डलं तपति यश्चैष रुक्म इदं तच्छुक्लमक्षत्रथ यदेतदार्चिर्दीप्यते यच्चैतत्पुष्करपर्णमिदं तत्कृष्णमक्षत्रथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषो यश्चैष हिरण्यः पुरुषोऽयमेव स योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषः । श० १० । ५ । २ । ७ ॥

अक्षि स एष एवेन्द्रः । योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषोऽथेयमिन्द्राणी
(योऽयं ऽसव्येऽक्षन्पुरुषः) । श० १० । ५ । २ । ९ ॥

” (योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषः) तस्यैतन्मिथुनं योऽयं ऽसव्येऽक्षन्पुरुषः । श० १० । ५ । २ । ८ ॥

अक्षितिः श्रद्धैव सकृदिष्टस्याक्षितिः स यः श्रद्धधानो यजते तस्येष्टं
न क्षीयते । कौ० ७ । ४ ॥

” पुरुषो वाऽअक्षितिः । श० १४ । ४ । ३ । ७ ॥

” आपोऽक्षितिर्या इमा एषु लोकेषु याश्चेमा अध्यात्मन् ।
कौ० ७ । ४ ॥

अग्नयः चत्वारो ह वाऽअग्नयः । आहित उद्धृतः प्रहृतो विहृतः ।
श० ११ । ८ । २ । १ ॥

” ते वाऽपते प्राणा एव यद् (आहवनीयर्गाहपत्यान्वाहार्य-
पचनाख्याः) अग्नयः । श० २ । २ । २ । १८ ॥

अग्नापूषणौ स आग्नापौष्णमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श०
५ । २ । ५ । ५ ॥

अग्नाविष्णू अग्नाविष्णू वै देवानामन्तभाजौ । कौ० १६ । ८ ॥

” आग्नावैष्णवमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ३ ।
१ । ३ । १ ॥ ५ । २ । ३ । ६ ॥

अग्निः स यदस्य सर्वस्याग्रमसृज्यत तस्मादग्निरग्निर्ह वै तमग्नि-
रित्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ६ । १ । १ । ११ ॥

” तद्वाऽएनमेतदग्रे देवानां (प्रजापतिः) अजनयत । तस्मा-
दग्निरग्निर्ह वै नामेतद्यदग्निरिति । श० २ । २ । ४ । २ ॥

” यद्वेवाह स्वर्णधर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहेत्यस्यैवैतानि (धर्मः,
अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) अग्नेर्नामानि । श० ९ । ४ ।
२ । २५ ॥

” तान्येतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः = शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः,
भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श०
६ । १ । ३ । १८ ॥

” अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि, शर्व इति यथा प्राच्या
आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रोऽग्निरिति ।

अग्निः तान्यस्याशान्तान्येवेतराणि नामान्यग्निरित्येव शान्ततमम् ।
श० १ । ७ । ३ । ८ ॥

” यो वै रुद्रः स्रोऽग्निः । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥

” अग्निर्वाऽअर्कः । श० २ । ५ । १ । ४ ॥ १० । ६ । २ । ५ ॥

” अयं वाऽअग्निर्कः । श० ८ । ६ । २ । १९ ॥ ९ । ४ । २ । १८ ॥

” अग्निर्वा अरुषः । तै० ३ । ९ । ४ । १ ॥

” अग्निर्वै पशूनामीष्टे । श० ४ । ३ । ४ । ११ ॥

” तऽएते सर्वे पशवो यदग्निः । श० ६ । २ । १ । १२ ॥

” अग्निर्होष यत्पशवः । श० ६ । २ । १ । १२ ॥

” पशुरेष यदग्निः श० ६ । ४ । १ । २ ॥ ७ । २ । ४ । ३० ॥ ७ ।
३ । २ । १७ ॥

” अग्निर्हि देवानां पशुः । ऐ० १ । १५ ॥

” ते देवा अब्रुवन्पशुर्वाऽअग्निः । श० ६ । ३ । १ । २२ ॥

” अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः । ऐ० १ । १ ॥

” अग्निर्वै देवानामवराध्यो विष्णुः परार्ध्यः । कौ० ७ । १ ॥

” अग्निर्वै यज्ञस्यावराध्यो विष्णुः परार्ध्यः । श० ३ । १ । ३ ।
१ ॥ ५ । २ । ३ । ६ ॥

” एते वै यज्ञस्यान्त्ये तन्वो यदग्निश्च विष्णुश्च । ऐ० १ । २ ॥

” अग्निर्वै देवानां वसिष्ठः । ऐ० १ । २८ ॥

” शिर एवाग्निः । श० १० । १ । २ । ५ ॥

” शिर एतद्यज्ञस्य यदग्निः । श० ९ । २ । ३ । ३१ ॥

” अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य । श० १ । ५ । २ । ११, १४ ॥ ३ । १ ।
३ । २८ ॥ ११ । १ । २ । २ ॥

” अग्निर्वै यज्ञमुखम् । तै० १ । ६ । १ । ८ ॥

” अग्निः सर्वा देवताः । ऐ० २ । ३ ॥ तै० १ । ४ । ४ । १० ॥

” अग्निर्वै सर्वा देवताः । ऐ० १ । १ ॥ श० १ । ६ । २ । ८ ॥ ३ ।
१ । ३ । १ ॥ तां० ९ । ४ । ५ ॥ १८ । १ । ८ ॥ ष० ३ । ७ ॥ गो०
उ० १ । १२, १६ ॥

” सर्वदेवत्योऽग्निः । श० ६ । १ । २ । २८ ॥

” अग्नेर्वा एताः सर्वास्तन्वो यदेता (वाय्वादयः) देवताः । ऐ० ३ । ४ ॥

” अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा । श० १४ । ३ । २ । ५ ॥

- अग्निः सर्वेषामु ह्येष देवानामात्मा यदग्निः । श० ७ । ४ । १ । २५ ॥ ९ ।
 ५ । १ । ७ ॥
- ” आत्मैवाग्निः । श० ६ । ७ । १ । २० ॥ १० । १ । २ । ४ ॥
- ” आत्मा वाऽअग्निः । श० ७ । ३ । १ । २ ॥
- ” प्रजापतिर्देवताः सृजमानः । अग्निमेव देवतानां प्रथममसृजत ।
 तै० २ । १ । ६ । ४ ॥
- ” सः (प्रजापतिः) अग्निमब्रवीत्स्वं वै मे ज्येष्ठः पुत्राणामसि ।
 त्वम्प्रथमो वृणीष्वेति । सः (अग्निः) अब्रवीन्मन्द्रं साम्नो वृणे
 ऽन्नाद्यमिति । जै० ३० । १ । ५१ । ५-६ ॥
- ” अग्निमुखा वै देवताः । तां २५ । १४ । ४ ॥
- ” अग्निना वै मुखेन देवा असुरानुकथेभ्यो निर्जघ्नुः । ऐ०
 ६ । १४ ॥
- ” तस्माद्देवा अग्निमुखा अन्नमदन्ति । श० ७ । १ । २ । ४ ॥
- ” अग्निर्वै देवानां मुखम् । कौ० ३ । ६ ॥ ५ । ५ ॥ तां० ६ । १ ।
 ६ ॥ गो० ३० । १ । २३ ॥
- ” अग्निर्वै देवानां मुखं सुहृदयतमः । ऐ० ७ । १६ ॥
- ” अग्निर्वै देवतानां मुखं प्रजनयिता स प्रजापतिः । श० ३ ।
 ९ । १ । ६ ॥
- ” अग्निर्वै देवयोनिः । ऐ० १ । २२ ॥ २ । ३ ॥
- ” अग्निर्वै देवानां मृदुहृदयतमः । श० १ । ६ । २ । १० ॥
- ” अग्निर्वै देवानामन्नादः । तै० ३ । १ । ४ । १ ॥
- ” स यो ह्येवमेतमग्निमन्नादं वेदान्नादो ह्येव भवति । श० २ । २ ।
 ४ । १ ॥
- ” अन्नादोऽग्निः । श० २ । १ । ४ । २८ ॥ २ । २ । ४ । १ ॥
- ” (प्रजापतेर्या) अन्नादा (तनूः) तदग्निः । ऐ० ५ । २५ ॥
- ” अग्नौ हि सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहति । श० १ । ६ । २ । ८ ॥
- ” अग्निर्देवानां जठरम् । तै० २ । ७ । १२ । ३ ॥
- ” सर्वं वाऽइदमग्नेरन्नम् । श० १० । १ । ४ । १३ ॥
- ” अग्निर्वै सर्वमाद्यम् । तां० २५ । ९ । ३ ॥
- ” एष उ ह वाव देवानाम्महाशनतमो यदग्निः । जै० ३० । २
 १५ । १ ॥

- अग्निः सर्वतो मुखोऽयमग्निः । यतो ह्येव कुतश्चाग्नावभ्यादधति तत
एव प्रदहति तेनैष सर्वतोमुखस्तेनाग्नादः । श० २ । ६ ।
३ । १५ ॥
- ॥ अग्निरन्नादोऽन्नपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥
- ॥ अन्नदो वा एषोऽन्नपतिर्यदग्निः । ऐ० १ । ८ ॥
- ॥ एष (अग्निः) हि वाजानां पतिः । ऐ० २ । ५ ॥
- ॥ अग्निर्वा अन्नानां शमयिता । कौ० ६ । १४ ॥
- ॥ अग्निः प्रजानां प्रजनयिता । तै० १ । ७ । २ । ३ ॥
- ॥ अग्निर्वै मिथुनस्य कर्त्ता प्रजनयिता । श० ३ । ४ । ३ । ४ ॥
- ॥ अग्निर्वै रेतोधा । तै० २ । १ । २ । ११ ॥ ३ । ७ । ३ । ७ ॥
- ॥ प्रजननं वा अग्निः । तै० १ । ३ । १ । ४ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) ह्याग्निः । श० ६ । १ । २ । १४ ॥ ६ । १ । १ । २६ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) वाऽअग्निः । श० ७ । ३ । १ । २२ ॥
- ॥ अयं वै (पृथिवी-) लोकोऽग्निः । श० १४ । ९ । १ । १४ ॥
- ॥ अयं वा ऽअग्निर्लोकः । श० १ । ९ । २ । १३ ॥
- ॥ संवत्सर एषोऽग्निः । श० ६ । ७ । १ । १८ ॥
- ॥ संवत्सरोऽग्निः । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥
- ॥ संवत्सर एवाग्निः । श० १० । ४ । ५ । २ ॥
- ॥ अग्निर्मे वाचि श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥
- ॥ वागेवाग्निः । श० ३ । २ । २ । १३ ॥
- ॥ सा या सा वागासीत्सोऽग्निरभवत् । जै० उ० २ । २ । १ ॥
- ॥ अग्नेस्तेजसेन्द्रस्येन्द्रियेण सूर्यस्य वर्चसा तां० १ । ३ । ५ ॥
- ॥ तेजो वाऽअग्निः । श० २ । ५ । ४ । ८ ॥ ३ । ९ । १ । १९ ॥
- ॥ तै० ३ । ९ । ५ । २ ॥
- ॥ अग्निर्वै ज्योती रक्षोहा । श० ७ । ४ । १ । ३४ ॥
- ॥ ते (देवाः) ऽविदुः । अयं (अग्निः) वै नो विरक्षस्तमः ।
श० ३ । ४ । ३ । ८ ॥
- ॥ अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता । श० १ । २ । १ । ६, ९ ॥ १ । २ ।
२ । १३ ॥
- ॥ अग्निर्वै रक्षसामपहन्ता । कौ० ८ । ४ ॥ १० । ३ ॥

- अग्निः अग्निरु सर्वेषां पाप्मनामपहन्ता । श० ७ । ३ । २ । १६ ॥
- ” अग्निर्वै पाप्मनोऽपहन्ता । श० २ । ३ । ३ । १३ ॥
- ” तपो वाऽअग्निः । श० ३ । ४ । ३ । २ ॥
- ” तपो मे तेजो मे ऽन्नमे वाङ्मे । तन्मे त्वयि (अग्नौ) ! जै०
उ० ३ । २० । १६ ॥
- ” अग्निरेवैनं गार्हपत्येनावति । तै० १ । ७ । ६ । ६ ॥
- ” अग्निरेवैनं गृहपतीनां सुवते । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥
- ” अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः । श० १ । १ । १ । २ ॥ ३ । २ ।
२ । २२ ॥
- ” अग्निर्वै देवानां यष्टा । ३ । ३ । ७ । ६ ॥
- ” अग्निर्वै देवानां होता । ऐ० १ । २८ ॥ ३ । १४ ॥
- ” अग्निर्होता पञ्चहोतृणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । २ ॥
- ” तस्य (यज्ञस्य) अग्निर्होताऽऽसीत् । गो० पू० १ । १३ ॥
- ” उभयं वाऽपतदग्निर्देवानां होता च दूतश्च । श० १ । ४ ।
५ । ४ ॥
- ” स (अग्निः) हि देवानां दूत आसीत् । श० १ । ४ । १ । ३४ ॥
- ” अग्निरेव देवानां दूत आस । श० ३ । ५ । १ । २१ ॥
- ” अथ योऽग्निर्मृत्युस्सः । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥
- ” सो (अग्निः = मृत्युः) ऽपामन्नम् ॥ श० १४ । ६ । २ । १० ॥
- ” पुरुषोऽग्निः । श० १० । ४ । १ । ६ ॥
- ” पुरुषो वाऽअग्निः । श० १४ । ९ । १ । १५ ॥
- ” योषा वा ऽअग्निः । श० १४ । ९ । १ । १६ ॥
- ” योषा वाऽआपो वृषाग्निः । श० १ । १ । १ । १८ ॥
- ” योषा वाऽआपः । वृषाग्निः । श० २ । १ । १ । ४ ॥
- ” योषा वै वेदिवृषाग्निः । श० १ । २ । ५ । १५ ॥
- ” अग्निरु सर्वे कामाः । श० १० । २ । ४ । १ ॥
- ” मन एवाग्निः । श० १० । १ । २ । ३ ॥
- ” प्राणो वा अग्निः । श० ९ । ५ । १ । ६८ ॥
- ” वीर्यं वा अग्निः । तै० १ । ७ । २ । २ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥
- ” गायत्र्यन्दा ह्यग्निः । तां ७ । ८ । ४ ॥

- अग्निः गायत्रछन्दा अग्निः । तां० १६ । ५ । १९ ॥
- ” अग्निर्वै गायत्री । श० ३ । ४ । १ । १९ ॥
- ” गायत्री वा अग्निः । श० १ । ८ । २ । १३ ।
- ” यो वा अत्राग्निर्गायत्री स निदानेन । श० १ । ८ । २ । १५ ॥
- ” यस्माद्गायत्रमुखः प्रथमः (त्रिरात्रः) तस्माद्बुध्वोऽग्निर्दादाय ।
तां० १० । ५ । २ ॥
- ” अग्निर्ह वाव राजन् गायत्रीमुखम् । जै० उ० ४ । ८ । २ ॥
- ” एष उ ह वाव देवानां नेदिष्ठःमुपचर्यो यदाग्निः । जै० उ० २ ।
१४ । १ ॥
- ” अग्निर्वै देवानां नेदिष्ठः । श० १ । ६ । २ । ११ ॥
- ” अग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञः । श० ३ । २ । २ । ७ ॥
- ” अयं वाऽअग्निर्ब्रह्म च क्षत्रं च । श० ६ । ६ । ३ । १५ ॥
- ” अग्निरेव ब्रह्म । श० १० । ४ । १ । ५ ॥
- ” ब्रह्म वा अग्निः । कौ० ९ । १, ५ ॥ १२ । ८ ॥ श० २ । ५ । ४ ।
८ ॥ ५ । ३ । ५ । ३२ ॥ तै० ३ । ९ । १६ । ३ ॥
- ” ब्रह्माग्निः । श० १ । ३ । ३ । १९ ॥
- ” मुखं ह्येतदग्नेर्यद् ब्रह्म । श० ६ । १ । १ । १० ॥
- ” ब्रह्म वा अग्निः क्षत्रं सोमः । कौ० ९ । ५ ॥
- ” पर्जन्यो वाऽअग्निः । श० १४ । ९ । १ । १३ ॥
- ” अग्निर्वाऽअहः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥
- ” अशिष्टो ह्यग्निस्तस्मादाहाशीतमेति । श० १ । ९ । २ । २० ॥
- ” दिशोऽग्निः । श० ६ । २ । २ । ३४ ॥
- ” अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः । जै० उ० २ । १३ । १ ॥
- ” अग्निर्वै स्वर्गस्य लोकस्याधिपतिः । ऐ० ३ । ४२ ॥
- ” अग्निर्वैवतानां (सत्) । तां० ४ । ८ । १० ॥
- ” आयुर्वाऽअग्निः । श० ६ । ७ । ३ । ७ ॥
- ” विदेदाग्निर्नभोनामाग्ने ऽअङ्गिर आयुना नास्नेहीति । श०
३ । ५ । १ । ३२ ॥
- ” अग्निर्वाऽआयुष्मानायुष ईष्टे । श० १३ । ८ । ४ । ८ ॥
- ” अग्निमतिर्धि जनानाम् । तै० २ । ४ । ३ । ६ ॥

अग्निः सर्वेषां वा एष (अग्निः) भूतानामतिथिः । श० ६ । ७ ।

- ३ । ११ ॥
- ” अग्निर्वै पथोऽतिबोधा । श० १३ । ८ । ४ । ६ ॥
- ” अग्निर्वाव पवित्रम् । तै० ३ । ३ । ७ । १० ॥
- ” अग्निर्वै देवतानामनीकम् । श० ५ । ३ । १ । ११ ॥
- ” अग्निर्वै देवानां गोपाः । ऐ० १ । २८ ॥
- ” अग्निर्वसुभिरुदक्रामत् । ऐ० १ । २४ ॥
- ” त्रिवृदग्निः । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥
- ” त्रिवृद्वा अग्निरङ्गारा अर्चिर्भूम इति । कौ० २८ । ५ ॥
- ” द्यौर्वा अस्य (अग्नेः) परमं जन्म । श० ९ । २ । ३ । ३९ ॥
- ” अग्निर्वै दाता । श० ५ । २ । ५ । २ ॥
- ” अग्निरघ्नाद्यस्य प्रदाता । तां० १७ । ९ । २ ॥
- ” स्वाहाग्नये कव्यवाहनाय । मं० २ । ३ । २ ॥
- ” अग्निर्वै हिमस्य भेषजम् । तै० ३ । ९ । ५ । ४ ॥
- ” अग्निर्वा अश्वमेधस्य योनिरायतनम् । तै० ३ । ९ । २१ । २, ३ ॥
- ” आग्नेयो वा अजः । गो० ३० । ३ । १९ ॥
- ” (प्रजापतिः) आग्नेयमजं (आलिप्तत) । श० ६ । २ । १ । ५ ॥
- ” आग्नेयो वा ऽअनङ्वात् । श० ७ । ३ । २ । १६ । १३ । ८ । ४ । ६ ॥
- ” (हेऽग्ने) चित्रोऽस्तीति सर्वाणि हि चित्राण्यग्निः । श० ६ । १ । ३ । २० ॥
- ” अग्ने महान् असि ब्राह्मण भारत । कौ० ३ । २ ॥ श० १ । ४ । २ । २ ॥ तै० ३ । ५ । ३ । १ ॥
- ” आदित्यो वाऽअस्य (अग्नेः) दिवि वर्चः । श० ७ । १ । १ । २३ ॥
- ” (यजुः० ११ । ३१) असौ वाऽआदित्य एषोऽग्निः । श० ६ । ४ । १ । १ ॥ ६ । ४ । ३ । ९, १० ॥
- ” अग्निर्ह वा अबन्धुः । जै० ३० । ३ । ६ । ७ ॥
- ” अग्निर्वै देवानामद्वातमाम् । श० १ । ६ । २ । ९ ॥
- ” एषा ह वास्य (अग्नेः) सहस्रं भरता यदेनं एकं सन्तं बहुधा विहरन्ति । ऐ० १ । २८ ॥
- ” एष वै देवाननुविद्वान्यदग्निः (अग्ने नय० यजुः० ४० । १६) श० १ । ५ । १ । ६ ॥

- अग्निः अग्नेर्वा एषा तनुः । यदोषधयः । तै० ३ । २ । ५ । ७ ॥
- ” अमृतो ह्यग्निस्तस्मादाहादधायविति । श० १ । ९ । २ । २० ॥
- ” इमे वै लोका एषोऽग्निः । श० ६ । ७ । १ । १६ ॥ ७ । ३ । १ । १३ ॥
- ” आग्नेयं क्रतुमन्वाह तदिमं (भू-)लोकमाप्नोति । कौ० ११ । २ ॥ १८ । २ ॥
- ” अग्ने पृथिवीपते । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥
- ” अयं वाव लोकोऽग्निश्चितः । श० १० । १ । २ । २ ॥
- ” अग्निरासि पृथिव्याऽश्रितः । अन्तरिक्षस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ७ ॥
- ” युनजिम ते पृथिवीमग्निना सह । तां० १ । २ । १ ॥
- ” अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिति तदिमं (भू-)लोकं लोकानामाप्नोति प्रातःसवनं यज्ञस्य । कौ० १४ । १ ॥
- ” अग्नेर्वै प्रातः सवनम् । कौ० १२ । ६ ॥ १४ । ५ ॥ २८ । ५ ॥
- ” ददा इति ह वा अयमग्निर्दीप्यते । जै० ३० । ३ । ६ । २ ॥
- ” कीदायेव ह्यग्निर्वैश्वानरः । तां० १३ । ११ । २३ ॥
- ” तं (अग्निं) नैव हस्ताभ्यां स्पृशेन्न पादाभ्यां न दण्डेन । जै० ३० । २ । १४ । ३ ॥
- ” स (अग्निः) एताः (पवमानपावकशुच्याख्याः) तिस्रः (आत्मीयः) तनूरेषु लोकेषु (= पृथिव्यन्तरिक्षद्युलोकेषु यथाक्रमं) विन्यधत् । श० २ । २ । १ । १४ ॥
- ” अग्निर्देवेभ्यो निलायत । आखूरूपं कृत्वा स पृथिवीं प्राविशत् । तै० १ । १ । ३ । ३ ॥
- ” अग्निर्देवेभ्यो निलायत । अश्वो रूपं कृत्वा सोऽश्वत्ये संवत्सरमतिष्ठत् । तै० १ । १ । ३ । ९ ॥
- ” अग्निर्वा अर्वा । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥
- ” रोहितो हाग्नेरश्वः । श० ६ । ६ । ३ । ४ ॥
- ” तदेभ्यः (देवेभ्योऽग्निः) स्विष्टमकरोत्तस्मात् (अग्नये) स्विष्टकृत ऽइति (क्रियते) । श० १ । ७ । ३ । ९ ॥
- ” आहुतयो वाऽअस्य (अग्नेः) प्रियं धाम । श० २ । ३ । ४ । २४ ॥

[अग्निर्नाचिकेतः (१०)

- अग्निः अग्नेः पूर्वार्वाहुतिः । तै० २ । १ । ७ । १ ॥
- „ त्रयोदशाग्नेश्चितिपुरीषाणि । श० ९ । ३ । ३ । ९ ॥
- „ यद्वै शुष्कं यन्नस्य तदाग्नेयम् । श० ३ । २ । ३ । ९ ॥
- „ मरुतोऽद्भिरग्निमतमयन् । तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दन्
साऽशनिरभवत् । तै० १ । १ । ३ । १२ ॥
- „ तस्मादग्नये सायथ्यं हूयते सूर्याय प्रातः । तै० २ । १ ।
२ । ६ ॥
- „ पञ्चचितिकोऽग्निः । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥ ८ । ६ । ३ । १२ ॥
- „ सप्तचितिकोऽग्निः । श० ६ । ६ । १ । १४ ॥ ९ । १ । १ । २६ ॥
- „ आग्नेय एककपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥
- „ आग्नेयोऽष्टकपालः पुरोडाशो भवति । श० २ । ५ । १ । ८ ॥
- „ तस्मादनूचानमाहुरग्निः कल्प इति । श० ६ । १ । १ । १० ॥
- „ स यद्वैश्वदेवेन यजते । अग्निरेव तर्हि भवत्यग्नेरेव सायुज्यं
सलोकतां जयति । श० २ । ६ । ४ । ८ ॥
- अग्निः कामः अग्निर्वै कामो देवानामीश्वरः । कौ० १९ । २ ॥
- अग्निः पवमानः पशवो वा अग्निः पवमानः । तै० १ । १ । ६ । २ ॥
- अग्निः पावकः आपो वा अग्निः पावकः । तै० १ । १ । ६ । २ ॥
- अग्निः शुचिः असौ वा आदित्योऽग्निः शुचिः । तै० १ । १ । ६ । २ ॥
- अग्निः सुषमिद् वायुर्वा अग्निः सुषमिद्वायुर्हि स्वयमात्मानं समिन्धे
स्वयमिदं सर्वं यदिदं किञ्च । ऐ० २ । ३४ ॥
- अग्निः स्विष्टकृत् रुद्रोऽग्निः स्विष्टकृत् । तै० ३ । ९ । ११ । ३, ४ ॥
- अग्निचित्या सर्वं वा अग्निचित्या । कौ० १९ । ५, ७ ॥
- अग्निरनीकवान् असौ वा आदित्योऽग्निरनीकवान् । तै० १ । ६ ।
६ । २ ॥
- अग्निरपन्नगृहः इयं (पृथिवी) वा अग्निरपन्नगृहः । तै० ३ । ३ ।
९ । ८ ॥
- अग्निर्नाचिकेतः संवत्सरो वा अग्निर्नाचिकेतः । तै० ३ । ११ । १०
। २, ४ ॥
- „ हिरण्यं वा अग्नेर्नाचिकेतस्यायतनं प्रतिष्ठा । तै० ३
। ११ । ७ । ३ ॥

- अग्निर्नाचिकेतः हिरण्यं वा अग्नेर्नाचिकेतस्य शरीरम् । तै० ३ ।
११ । ७ । ३ ॥
- ” अयं वाव यः (वायुः) पवते । सोऽग्निर्नाचिकेतः ।
तै० ३ । ११ । ७ । १ ॥
- अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरः । ऐ० ३ । ४१ ॥
- ” (यजुः १४ । ७) संवत्सरो वाऽअग्निर्वैश्वानरः । श०
६ । ६ । १ । २० ॥ ८ । २ । २ । ८ ॥
- ” इयं वै पृथिव्यग्निर्वैश्वानरः । श० ३ । ८ । ५ । ४ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वा अग्निर्वैश्वानरः । तै० ३ । ८ । ६ ।
२ ॥ ३ । ९ । १७ । ३ ॥
- ” एष वा अग्निर्वैश्वानरः । यद्ब्राह्मणः । तै० २ । १ । ४ । ५ ॥
- ” तद् (हिरण्यं) आत्मन्नेव हृदय्येग्नौ वैश्वानरे
(= “जाठराग्नौ” इति सायणः) प्रास्यात् । तै० ३ । ११ ।
८ । ७ ॥
- अग्निष्टुत् ज्योतिष्टोमेनाग्निष्टुता यज्ञविभ्रष्टो यजेत । तां० १७ । ८ । १ ॥
- ” योऽपूत इव स्यादग्निष्टुता यजेताग्निर्नैवास्य पाप्मानम-
पहत्य त्रिवृता तेजो ब्रह्मवर्चसं दधाति । तां० १७ । ५ । ३ ॥
- ” सप्तदशेनाग्निष्टुतान्नाद्यकामो यजेत । तां० १७ । ९ । १ ॥
- ” तेन (अग्निष्टुता) एनं (इन्द्रं) अयाजयत्तेनास्य
(इन्द्रस्य) अश्लीलां (= पापां) वाचमपाहन् । तां० १७ ।
५ । १ ॥
- अग्निष्टोमः स वा एषोग्निरेव यद्ग्नष्टोमस्तं यदस्तुवस्तस्मादाग्निस्तो-
मस्तमग्निस्तोमं संतमग्निष्टोममित्याचक्षते । ऐ० ३ । ४३ ॥
- ” अग्निर्ग्नष्टोमः । ऐ० ३ । ४१ ॥
- ” अग्निर्वाऽअग्निष्टोमः । श० ३ । ९ । ३ । ३२ ॥
- ” यो वा एष (सूर्यः) तपत्येषोऽग्निष्टोम एष साहः । ऐ०
३ । ४४ ॥
- ” यो ह वा एष (सूर्यः) तपत्येषोऽग्निष्टोम एष साहः । गो०
उ० ४ । १० ॥
- ” कनीनिके अग्निष्टोमौ । तां० १० । ४ । २ ॥
- ” ब्रह्म वा अग्निष्टोमः । कौ० २१ । ५ ॥

- अग्निष्टोमः ब्रह्मवर्चसं वा अग्निष्टोमः । तै० २ । ७ । १ । १ ॥
- ” आत्मा वा अग्निष्टोमः । तां० १९ । ५ । ११ ॥
- ” वीर्यं वा अग्निष्टोमः । तां० ४ । ५ । २१ ॥
- ” प्रतिष्ठा वा अग्निष्टोमः । कौ० २५ । १४ ॥
- ” त्रिवृदाग्निष्टोमः । ष० ३ । ९ ॥
- ” पुरुषसंमितो वाऽअग्निष्टोमः । श० ३ । ९ । ३ । ३२ ॥
- ” ज्योतिर्वा अग्निष्टोमः । कौ० २५ । ९ ॥
- ” ज्योतिर्वा एषोऽग्निष्टोमो ज्योतिष्मन्तं पुण्यं लोकञ्जयति
य एवं विद्वानेतेन यजते । तां० १९ । ११ । ११ ॥
- ” एषा वाव यज्ञस्य मात्रा यदग्निष्टोमः । तां० २० । ११ । ८ ॥
- ” स वा एष संवत्सर एव यदग्निष्टोमश्चतुर्विंशत्यर्थ-
मासो वै संवत्सरश्चतुर्विंशतिरग्निष्टोमस्य स्तुतशस्त्राणि,
तं यथा समुद्रं स्रोत्या एवं सर्वे यज्ञक्रतवोऽपियन्ति ।
ऐ० ३ । ३९ ॥
- ” अग्निष्टोमो वै संवत्सरः । ऐ० ४ । १२ ॥
- ” द्वादशाग्निष्टोमस्य स्तोत्राणि । तै० १ । २ । २ । १ ॥
तां० ४ । २ । १२ ॥
- ” ज्येष्ठयज्ञो वा एष यदग्निष्टोमः । तां० ६ । ३ । ८ ॥
- ” एष वाव यज्ञः (= “मुख्यो यज्ञः” इति सायणः) यदग्नि-
ष्टोमः, एकस्मा अन्यो यज्ञः कामायाहियते सर्व्वेभ्योऽग्नि-
ष्टोमः । तां० ६ । ३ । १-२ ॥
- ” अग्निष्टोमो वै यज्ञानां मुखम् ॥ कौ० १९ । ८ ॥
- ” यज्ञमुखं वा अग्निष्टोमः । तै० १ । ८ । ७ । १ ॥ तां०
१८ । ८ । १ ॥
- ” अग्निष्टोमेन वै देवा इमं लोकं (भूलोकं) अभ्यजयन् ।
तां० ९ । २ । ९ ॥ २० । १ । ३ ॥
- ” इममेव लोकं पशुबन्धेनाभिजयति । अथो अग्निष्टोमेन ।
तै० ३ । १२ । ५ । ६ ॥
- ” एष वै यज्ञः रवर्ग्यो यदग्निष्टोमः । तां० ४ । २ । ११ ॥
- अग्निष्टोमः यजमानो वाऽअग्निष्टोमः । श० ३ । ७ । १ । ३ ॥

- अग्निहोत्रम् (गौः) अग्नेर्हुतादजनीति । तदग्निहोत्रस्याग्निहोत्र-
त्वम् । तै० २ । १ । ६ । ३ ॥
- ” मुखं वाऽएतद्यज्ञानां यदग्निहोत्रम् । श० १४ । ३ । १ । २९ ॥
- ” एतद्वै जरामर्यं ऽ सत्त्रं यदग्निहोत्रं जरया वा ह्येवा-
स्मान्मुच्यन्ते मृत्युना वा । श० १२ । ४ । १ । १ ॥
- ” तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत् । ऐ० ७ । ९ ॥
- ” सायंप्रातर्ह्यग्निहोत्राहुती जुह्वति । श० १० । १ । ५ । २ ॥
- ” (अग्निहोत्रं) पय एवेति ॥ यत्पयो न स्यात् । केन
जुहुया इति व्रीहियवाभ्यामिति यद्व्रीहियवौ न स्यातां
केन जुहुया इति या अन्या ओषधय इति यदन्या ओष-
धयो न स्युः केन जुहुया इति या आरण्या ओषधय इति
यदारण्या ओषधयो न स्युः केन जुहुया इति वानस्पत्ये-
नेति यद्दानस्पत्यं न स्यात्केन जुहुया इत्यङ्गिरिति यदापो
न स्युः केन जुहुया इति ॥ स होवाच । न वाऽइह तर्हि
किं चनासीदथैतदह्वयतैव सत्यं ऽ श्रद्धायामिति । श०
११ । ३ । १ । २-४ ॥
- ” दुग्धेन सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहुयात् । कौ० ४ । १४ ॥
- ” यवाग्वैव सायंप्रातरग्निहोत्रं जुहुयात् । कौ० ४ । १४ ॥
- ” वत्सो वा अग्निहोत्रस्य प्रायणम् । अग्निहोत्रं यज्ञा-
नाम् । तै० २ । १ । ५ । १ ॥
- ” असंस्थितो वा एष यज्ञः । यदग्निहोत्रम् । तै० २ ।
१ । ४ । ९ ॥
- ” गौर्वा अग्निहोत्रम् । तै० २ । १ । ६ । ३ ॥
- ” सर्वार्भ्यो वा एष देवताभ्यो जुहोति योऽग्निहोत्रं जुहो-
ति । तै० २ । १ । ८ । ३ ॥
- ” किन्देवत्यमग्निहोत्रमिति । वैश्वदेवमिति ब्रूयात् । तै० २ ।
१ । ४ । ६ ॥
- ” प्राजापत्यमग्निहोत्रम् । श० १२ । ४ । २ । १ ॥
- ” सूर्यो ह वाऽअग्निहोत्रम् । श० २ । ३ । १ । १ ॥
- ” प्राण एवाग्निहोत्रम् । श० ११ । ३ । १ । ८ ॥

अग्निहोत्रम् रेतो वा एतद्वाजिनमाहिताग्नेः । यदग्निहोत्रम् । तै० ३ ।
७ । ३ । ६ ॥

” इयं (पृथिवी) एवाग्निहोत्रस्थाली । श० १२ । ४ । १ । ११ ॥

” स यो हैवं विद्वानग्निहोत्रं च जुहोति दर्शपूर्णमासाभ्यां
च यजते मासि मासि हैवास्याश्वमेधेनेष्टं भवति । श०
११ । २ । ५ । ५ ॥

” स्वर्ग्यं वाऽएतद्यदग्निहोत्रम् । श० १२ । ४ । २ । ७ ॥

” नौर्हं वाऽएषा स्वर्ग्या । यदग्निहोत्रं तस्याऽएतस्यै नावः
स्वर्ग्या या आहवनीयश्चैव गार्हपत्यश्च नौमण्डे ऽअथैष
एव नावाजो यत्क्षीरहोता । श० २ । ३ । ३ । १५ ॥

अग्निहोत्री (गौः) वाग्धवा ऽएतस्याग्निहोत्रस्याग्निहोत्री । श० ११ ।
३ । १ । १ ॥

” द्यौर्वाऽएतस्याग्निहोत्रस्याग्निहोत्री । श० १२ ।
४ । १ । ११ ॥

” इयं (पृथिवी) वा अग्निहोत्री । तै० १ । ४ । ३ । १ ॥

अग्नीत् यज्ञमुखं वा अग्नीत् । गो० उ० ३ । १८ ॥

” अग्नीत्पत्नीषु रेतो धत्ते । गो० उ० ४ । ५ ॥

अग्नीषोमौ प्राणापानावग्नीषोमौ । ऐ० १ । ८ ॥

” चक्षुषी अग्नीषोमौ । ऐ० १ । ८ ॥

” यच्छुक्लं तदाग्नेयं यत्कृष्णं तत्सौम्यं यदि वेतरथा यदेव
कृष्णं तदाग्नेयं यच्छुक्लं तत्सौम्यं (रूपं) यदेव वीक्षते
तदाग्नेयं ॥ रूपं ॥ शुष्केऽइव हि वीक्षमाणस्याक्षिणी
भवतः शुष्कमिव ह्याग्नेयं यदेव स्वपिति तत्सौम्यं ॥
रूपमाद्रंऽइव हि सुषुपुषो ऽक्षिणी भवत आद्रं इव हि
सोमः । श० १ । ६ । ३ । ४१ ॥

” द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति । आद्रं चैष शुष्कं च यच्छु-
ष्कं तदाग्नेयं यदाद्रं तत्सौम्यम् । श० १ । ६ । ३ । २३ ॥

” सूर्य एवाग्नेयः । चन्द्रमाः सौम्योऽद्वरेवाग्नेयं ॥ रात्रिः
सौम्या य एवापूर्यते ऽर्द्धमासः स आग्नेयो योऽपक्षी-
यते स सौम्यः । श० १ । ६ । ३ । २४ ॥

- अग्नीषोमौ अहोरात्रे वा अग्नीषोमौ । कौ० १० । ३ ॥
- ” अग्नीषोमीयमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । २ । ३ । ७ ॥
- ” अग्नीषोमाभ्यां वा इन्द्रो वृत्रमहन्निति । तै० १ । ६ । १ । ६ ॥
- ” अग्नीषोमौ वै देवानां मुखम् । गो० उ० १ । २० ॥
- ” तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै द्विविनिर्वपन्ति तत्पुरस्तादाज्यभागावग्नीषोमाभ्यां यजन्ति । श० १ । ६ । ३ । १९ ॥
- ” अथ यदग्नीषोमौ प्रथमौ देवतानां यजति दार्शपौर्णमासिके वा एते देवते । कौ० ५ । २ ॥
- अग्नेगुवः (यजु० १ । १२) ताः (आपः) यत् समुद्रं गच्छन्ति तेनाग्नेगुवः (उच्यन्ते) । श० १ । १ । ३ । ७ ॥
- अग्नेपुवः (यजु० १ । १२) ताः (आपः) यत् प्रथमाः सोमस्य राज्ञो भक्षयन्ति तेनाग्नेपुवः (उच्यन्ते) । श० १ । १ । ३ । ७ ॥
- अङ्गाङ्गं छन्दः (यजु० १५ । ५) आपो वाऽअङ्गाङ्गं छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ६
- अङ्कुपं छन्दः (यजु० १५ । ४) आपो वाऽअङ्कुपं छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥
- अङ्गानि न वै सकृदेवाग्ने सर्वैः संभवत्येकैकं वा अङ्गं संभवतः संभवतीति । ऐ० ६ । ३१ ॥
- ” न ह वै सकृदेवाग्ने स्मर्थं सम्भवति, एकैकं वा अङ्गं सम्भवतः सम्भवति । गो० उ० ६ । ९ ॥
- ” अष्टावङ्गानि । श० ९ । २ । २ । ६ ॥
- अङ्गिरसः यंऽगारा आसंस्तंऽगिरसोऽभवन् । ऐ० ३ । ३४ ॥
- ” अङ्गारेभ्योऽङ्गिरसः (सम्भवन्) । श० ४ । ५ । १ । ८ ॥
- ” येऽङ्गिरसः स रसः । गो० पू० ३ । ४ ॥
- ” तस्मादङ्गिरसोऽवीयान ऊर्ध्वस्तिष्ठति । गो० पू० १ । २ ॥
- अङ्गिरसामनुकीः एतेन वा अङ्गिरस आदित्यानाप्नुवन् । तां० १६ । १४ । २ ॥
- अङ्गिराः तं वरुणं मृत्युमभ्यश्राम्यदभ्यतपत्समतपत्तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य संतप्तस्य सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यो रसोऽक्षरत् सोऽङ्गरसोऽभवत्तं

- वा एतमङ्गरसं सन्तमङ्गिरा इत्याचक्षते । परोक्षेण परोक्ष-
प्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः । गो० पू० १ । ७ ॥
- अङ्गिराः (ऋ० ६ । १६ । ११) अङ्गिरा उ ह्यग्निः । श० १ । ४ । १ ।
२५ ॥
- „ (=अग्निः) अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेम इत्यग्निं पशव्य-
मग्निवदच्छेम इत्येतत् । श० ६ । ३ । ३ । ३ ॥
- „ (यजु० ११ । ४५) अङ्गिरा वाऽअग्निः । श० ६ । ४ । ४ । ४ ॥
- „ प्राणो वा अङ्गिराः । श० ६ । १ । २ । २८ ॥ ६ । ५ । २ । ३, ४ ॥
- अच्छावाकः ऐन्द्राग्नोऽच्छावाकः । श० ३ । ६ । २ । १३ ॥
- „ मिथुनं वा अच्छावाक ऐन्द्राग्नो ह्यच्छावाकः । श० ४ ।
३ । १ । ३ ॥
- „ वीर्यवान्वा एष बह्वृचो यदच्छावाकः । गो० उ०
५ । १५ ॥
- „ प्रतिष्ठा वा अच्छावाकः । कौ० ३० । ९ ॥
- „ ऐन्द्रावैष्णवमच्छावाकस्योक्तं भवति । गो० उ० ४ ।
१४ ॥ ५ । १० ॥
- „ रैवतमच्छावाकस्य । कौ० २५ । ११ ॥
- „ भरद्वाजादच्छावाकः (न प्रच्यवते) । गो० उ० ३ । २३ ॥
- अच्छिद्रम् (साम) यद्वा एतस्य (अष्टमस्य) अह्निच्छिद्रमासीत्तद्देवा
अच्छिद्रेणाप्यौहृस्तदच्छिद्रस्याच्छिद्रत्वम् । तां०
१४ । ९ । ३६ ॥
- अच्छिद्रं पवित्रम् (यजु० १ । १२) यो वाऽअयं (वायुः) पवत ऽएषो
ऽच्छिद्रं पवित्रम् । श० १ । १ । ३ । ६ ॥
- „ असौ वा आदित्योऽच्छिद्रं पवित्रम् । तै० ३ । २ ।
५ । २ ॥
- अच्युतः (=अग्निः) ते (देवाः) यदृतूनभिह्वयमाना अथाग्निमायत-
नान्नाच्यावयंस्तस्मादग्निरच्युतः । श० १ । ६ । १ । ६ ॥
- अज एकपात् तं सुूर्यं देवमजमेकपादम् .. । तै० ३ । १ । २ । ८ ॥
- अजः अथ यः कपाले रसो लिप्त आसीत्सो ऽजो ऽभवत् । श० ६ ।
१ । १ । ११ ॥

- अजः अथ यः स कपाले रसो लिप्त आसीदेष सो ऽजः । श० ६ ।
३ । १ । २८ ॥
- „ तस्याक्षिभ्यामेव तेजोऽस्रवत् । सो ऽजः पशुरभवद्धूम्रः । श०
१२ । ७ । १ । २ ॥
- „ (प्रजापतिः) वाचो ऽजम् (निरमिमीत) । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥
- „ वाग्वाऽअजः । श० ७ । ५ । २ । २२ ।
- „ आग्नेयो वाऽअजः । श० ६ । ४ । ४ । १५ ॥ गो० ७० ३ । १९ ॥
- „ ब्रह्म वा ऽअजः । श० ६ । ४ । ४ । १५ ॥
- „ ब्राह्मणं (अनु) अजः । श० ६ । ४ । ४ । १२ ॥
- „ अजोऽग्नीषोमीयः । तां० २२ । १४ । ११ ।
- „ एष एतेषां पशूनां प्रथुकृतमो यदजः । ऐ० २ । ८ ॥
- „ अजेहि सर्वेषां पशूनां रूपम् । श० ६ । ५ । १ । ४ ॥
- अजर्षभः प्रजापतिर्वाऽएष यदजर्षभः । श० ५ । २ । १ । २४ ॥
- अजस्रः (यजुः १२ । १८) अग्निरजस्रः । श० ६ । ७ । ४ । ३ ॥
- अजा अजा ह वै नामैषा यदजैतया ह्येनं (सोमं) अन्तत आजति
तामेतत्परोऽक्षमजेत्याचक्षते । श० ३ । ३ । ३ । ९ ॥
- „ प्रजापतेर्वै शोकादजा (ः) समभवन् । श० ६ । ५ । ४ । १६ ॥
- „ यज्ञस्य शर्षिच्छिन्नस्य शुगुदक्रामत्ततोऽजा समभवत् । श० १४ ।
१ । २ । १३ ॥
- „ तपसो ह वाऽएषा प्रजापतेः सम्भूता यदजा तस्मादाह तप-
सस्तनूरसीति । श० ३ । ३ । ३ । ८ ॥
- „ आग्नेयी वा एषा यदजा । तै० ३ । ७ । ३ । १ ॥
- „ अजा ह सर्वा ओषधीरन्ति । श० ६ । ५ । ४ । १६ ॥
- „ सा (अजा) यत् त्रिः संवत्सरस्य विजायते तेन परमः पशुः
श० ३ । ३ । ३ । ८ ॥
- अजावयः तस्मादेताः (अजावयः) त्रिः संवत्सरस्य विजायमाना
द्वौ त्रीनिति जनयन्ति । श० ४ । ५ । ५ । ६ ॥
- अञ्जयो वाघतः (यजुः ११ । ४२) रश्मयो वाऽएतस्य (आदित्यस्य)
अञ्जयो वाघतः । श० ६ । ४ । ३ । १० ॥
- „ „ छंदांसि वा अञ्जयो वाघतस्तैरेतद्देवान् यजमाना
विह्वयन्ते मम यज्ञमागच्छत मम यज्ञमिति । ऐ० २ । २ ॥

- अञ्जलिः दश वाऽअञ्जलेरंगुलयः । श० ९ । १ । १ । ३९ ॥
 ,, तस्माद् द्वैतद् भीतोऽञ्जलिं करोति । श० ९ । १ । १ । ३९ ॥
 अञ्जस्कीयाः एतेन वै नमी साप्यो वैदेहो राजाञ्जला स्वर्गं लोकमैद-
 असागामति तदञ्जस्कीयानामञ्जस्कीयत्वम् । तां० २५ ।
 १० । १७ ॥
- अतिग्रहाः अष्टावतिग्रहाः (अपानः, रसः, नाम, रूपम्, शब्दः, कामः
 कर्म, स्पर्शः) । श० १४ । ६ । २ । १ ॥
- अतिग्राह्याः (ग्रहाः) ते (अग्नीन्द्रसूर्याः) एतानतिग्राह्यान्दृशु-
 स्तानत्यगृह्णत तद्यदेनानत्यगृह्णत तस्मादतिग्राह्या नाम ।
 श० ४ । ५ । ४ । २ ॥
- ,, (ग्रहाः) देवा वै यदन्यैर्ग्रहैर्यज्ञस्य नावारुन्धत तदति-
 ग्राह्यैरतिगृह्यावारुन्धत । तदतिग्राह्याणामतिग्राह्यत्वम् ।
 तै० १ । ३ । ३ । १ ॥
- अतिच्छन्दः उदरमतिच्छन्दाः पशवो वै छन्दाश्चिस्यन्नं पशव उदरं
 वाऽअन्नमत्युदरश्चि हि वाऽअन्नमत्ति तस्माद्यदोदरमन्नं
 प्राप्नोत्यथ तज्जगधं यातयामरूपं भवति तद्यदेषा पशू-
 च्छन्दाश्चिस्यत्ति तस्मादतिच्छन्दा अत्तिच्छन्दः ह वै
 तामतिच्छन्दा इत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ८ । ६ ।
 २ । १३ ॥
- ,, (ऋक्) अति वा एषा (ऋक्) अन्यानि छन्दाश्चिसि
 यदतिच्छन्दाः । तां० ५ । २ । ११ ॥
- ,, छन्दसां वै यो रसोऽत्यक्षरत्सोऽतिछन्दसमभ्यत्यक्षरत्त-
 दतिछन्दसोऽतिछन्दस्त्वम् । पे० ४ । ३ ॥
- ,, अतिच्छन्दो वै छन्दसामायतनम् । गो० पू० ५ । ४ ॥
- ,, वर्ष्म वा एषा छन्दसां यदतिच्छन्दाः । तै० १ । ७ । ९ । ६ ॥
- ,, एषा वै सर्वाणि छन्दाश्चिसि यदतिच्छन्दाः । श० ३ ।
 ३ । २ । १२ ॥ ४ । ४ । ५ । ७ ॥
- ,, अतिच्छन्दा वै सर्वाणि छन्दाश्चिसि । तै० १ । ७ । ९ । ६ ॥
- ,, इमे वै लोका अतिच्छन्दाः । तां० ४ । ९ । २ ॥
- अतिथिः यथा राज्ञे वा ब्राह्मणाय वा महोक्षे वा महाजं वा पचेत् ।
 (पश्यत-वासिष्ठधर्मसूत्रम् ४ । ८ ॥ याज्ञवल्क्य स्मृ० १ ।
 १०९) श० ३ । ४ । १ । २ ॥

अतिथिः अतिथिर्दुरोणसत् । श० ५ । ४ । ३ । २२ ।

अतिथिर्दुरोणसत् एषं (सूर्यः) वा अतिथिर्दुरोणसत् । ऐ० ४ । २० ॥

अतिपुरुषः य आदित्ये सोऽतिपुरुषः । जै० उ० १ । २७ । २ ॥

अतिमानः तस्मान्नातिमन्येत पराभवस्य हैतन्मुखं यदतिमानः । श०
५ । १ । १ । १ ॥ ११ । १ । ८ । १ ॥

अतिरात्रः भूतं पूर्वोऽतिरात्रो भविष्यदुत्तरः पृथिवी पूर्वोऽतिरात्रो
द्यौरुत्तरोऽग्निः पूर्वोऽतिरात्र आदित्य उत्तरः प्राणः पूर्वो
ऽतिरात्र उदान उत्तरः । तां० १० । ४ । १ ॥

„ चक्षुषी अतिरात्रौ । तां० १० । ४ । २ ॥

„ (यज्ञः) संवत्सरस्य वा एतौ दंष्ट्रौ यदतिरात्रौ तयोर्न
स्वसव्यं संवत्सरस्य दंष्ट्रयोरात्मानभेदपिदधानीति ।
तां० १० । ४ । ३ ॥

„ प्रतिष्ठा वाऽतिरात्रः । श० ५ । ५ । ३ । ५ ॥

„ स्वरतिरात्रेण (अभिजयति) तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

„ (देवाः) अतिरात्रेणामुं (द्युलोकमभ्यजयन्) तां० ९ । २ । ९ ॥

अतिवादः श्रीर्वा अतिवादः । गो० उ० ६ । १३ ॥

„ अतिवादेन वै देवा असुरानत्युद्याथैनानत्यायन् । ऐ० ६ । ३३ ॥

अनूर्तो होता अयं वा अग्निरनूर्तो होतेमं ह न कश्चन तिर्यचं तरति ।
ऐ० २ । ३४ ॥

„ „ न ह्येतं (अग्निं) रक्षांश्चि तरन्ति तस्मादाहानूर्तो
होतेति । श० । १ । ४ । २ । १२ ॥

अत्ता स वै यः सोऽत्ताग्निरेव सः । श० १० । ६ । २ । २ ॥

प्राणो वाऽ अत्ता तस्यान्नमेवाहितयः । श० १० । ६ । २ । ४ ॥

अत्यः (हे ऽश्व त्वं) अत्योसि । तां० १ । ७ । १ ॥

„ (यजुः २२ । १९) तस्मादश्वः पशूनत्येति तस्मादश्वः पशूनां
श्रैष्ठ्यं गच्छति । श० १३ । १ । ६ । १ ॥

„ (= अश्वः) अत्योऽसीत्याह । तस्मादश्वः सर्वान् पशूनत्येति
तस्मादश्वः सर्वेषां पशूनां श्रैष्ठ्यं गच्छति । तै० ३ । ८ । ९ । १ ॥

अत्यायुपात्रम् यदाहात्यायुपात्रमित्यति ह्येतदन्यानि पात्राणि यत्
द्रोणकलशो देवपात्रं द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । ७ ॥

अविः तद्धैतद्देवाः । रेतः (वाचः सकाशात्पतितं गर्भं) चर्मन्वा
यस्मिन्वा बभ्रुस्तद्ध स्म पृच्छन्त्यत्रेव त्या ३ दिति ततोऽग्निः
सम्बभूव श० १ । ४ । ५ । १३ ॥

„ वागेवाग्निर्वाचा ह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै नामैतद्यदन्निरिति ।
श० १४ । ५ । २ । २ ॥

अग्निः अग्निणो वै रक्षाऽसिं । ष० ३ । १ ॥

„ पाप्मानोऽग्निः । ष० ३ । १ ॥

„ रक्षांसि वै पाप्माग्निः । षे० २ । २ ॥

अथानिधनम् (साम) (देवाः) ब्रह्मवर्चसमथनिधनेनावारुन्धत । तां
१० । १२ । ३ ॥

अथर्ववेदः तानथर्वण ऋषीनाथर्वणांश्चार्षेयानभ्यश्राम्यदभ्यतपत्
समतपत् तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यो यान्
मन्त्रानपश्यत्स आथर्वणो वेदोऽभवत् । गो० पू० १ । ५ ॥

„ शन्नो देवीरभिष्टय इत्येवमार्दि कृत्वा अथर्ववेदम-
धीयते । गो० पू० १ । २९ ॥

„ अथर्वणां चन्द्रमा देवतं तदेव ज्योतिः सर्वाणि छन्दां-
स्यापः स्थानम् । गो० पू० १ । २९ ॥

„ येऽथर्वणस्तद्भेषजम् । गो० पू० ३ । ४ ॥

„ अथर्वणामङ्गिरसां प्रतीची (दिक्) । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥

अथर्वा तद्यद्व्रवीदथावर्वाङ्गेनमेतास्वेवाप्स्वन्विच्छेति तदथर्वाऽभवत्
तदथर्वणोऽथर्वत्वम् । गो० पू० १ । ४ ॥

„ (यजुः ११ । ३२)-प्राणो वाऽअथर्वा । श० ६ । ४ । २ । १ ॥

„ प्राणोऽथर्वा । श० ६ । ४ । २ । २ ॥

अथर्वाङ्गिरसः अथर्वणामेकं पर्वण्याचक्ष्ण इवानुद्रवेत् । श० १३ ।
४ । ३ । ७ ॥

„ अङ्गिरसामेकं पर्वण्याचक्ष्ण इवानुद्रवेत् । श० १३ ।
४ । ३ । ८ ॥

„ मेद आहुतयो ह वाऽपता देवानाम् । यदथर्वाङ्गिरसः ।
श० ११ । ५ । ६ । ७ ॥

अदाभ्यः (प्रहः) ते (देवाः) ऊचुः । अदभाम वाऽएनान् (असुरान्)
इति तस्माददाभ्यो न वै (असुराः) नोऽदमन्निति तस्मा-
ददाभ्यो वाग्वाऽअदाभ्यः । श० ११ । ५ । ९ । ५ ॥

अदारसूत्र (साम) दिवोदासं वै भरद्वाजपुरोहितन्नाजनाः पर्ययत-
न्त स उपासीदृषे गातुम्मे विन्देति तस्माएतेन साम्ना
गातुमविन्दद्गातुविद्धा एतत्सामानेन दारे नासृन्मेति तददार-
सूतोऽदारसूत्रं विन्दते गातुन्न दारे धावत्यदारसूता तुष्टु-
वानः तां० १५ । ३ । ७ ॥

„ भरद्वाजस्यादारसूत्रवति । तां० १५ । ३ । ६ ॥

अदितिः सर्वं वाऽअत्तीति तददितेरदितित्वम् । श० १० । ६ । ५ । ५ ॥

„ (यजुः १३ । १८) इयं (पृथिवी) वाऽअदितेरियं॑ ह्रीद-
॑ सर्वं ददते । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥

„ इयं (पृथिवी) वा अदितिः । कौ० ७ । ६ ॥ तै० १ । १ ।
६ । ५ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिः । तै० १ । ४ । ३ । १ ॥

„ इयं (पृथिवी) ह्यदितिः । ऐ० १ । ८ ॥

„ इयं॑ (पृथिवी) ह्येवादितिः । श० ३ । २ । ३ । ६ ॥

„ इयं वै पृथिव्यदितिः । श० १ । १ । ४ । ५ ॥ २ । २ । १ ।
१९ ॥ ३ । ३ । १ । ४ ॥

„ इयं वै पृथिव्यदितिः सेयं देवानां पत्नी । श० ५ । ३ ।
१ । ४ ॥

„ (यजुः ३८ । २) अदितिर्हि गौः । श० १४ । २ । १ । ७ ॥

„ अदितिर्हि गौः । श० २ । ३ । ४ । ३४ ॥

„ मा गामनागामदितिं वधिष्ट । मं० २ । ८ । १५ ॥

„ वाग्वाऽअदितिः । श० ६ । ५ । २ । २० ॥

„ अदितिरस्युः यक्षीर्ष्णी (वाक्) इति । श० ३ । २ । ४ । १६ ॥

„ आदित्या (अदितेरुत्पन्नाः) वा इमाः प्रजाः । तां० १३ ।
९ । ५ ॥ १८ । ८ । १२ ॥

अद्रिः (यजुः २३ । ४२) गिरिर्वाऽअद्रिः । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥

अद्रिजाः एष (सूर्यः) वा अद्रिजाः । ऐ० ४ । २० ॥

अधरौष्ठः अयं वै (भू-) लोकोऽधरौष्ठः । कौ० ३ । ७ ॥

अधिदेवनम् अधिदेवनं वाऽअग्निस्तस्यैतेऽअङ्गारा यदक्षाः । श० ५ ।

३ । १ । १० ॥

अधिपतिः (यजुः १४ । ९) प्रजापतिर्वाऽअधिपतिः । श० ८ । २ । ३ । १२ ॥

अध्यर्द्धेडम् (साम) (देवाः) प्रतिष्ठाध्यर्द्धेडेन व्यजयन्त । तां

१० । १२ । ४ ॥

अध्यर्धः (वायुः) यदयमेक एव पवतेऽथ कथमध्यर्ध इति यदस्मिन्निदं

सर्वमध्याध्नोत्तेनाध्यर्ध इति । श० १४ । ६ । ९ । १० ॥

अधिगुः अधिगुर्वै देवानां शमिता । ऐ० २ । ७ ॥

अध्वरः देवान्ह वै यज्ञेन यजमानान्तसपत्ना असुरा दुधूर्षाञ्चक्रुः

(= हिंसितुमिच्छां कृतवन्तः) ते दुधूर्षन्त एव न शेकुर्धूयितुं

ते परा बभूवुस्तस्माद्यज्ञोऽध्वरो नाम । श० १ । ४ । १ । ४० ॥

” (ऋ० ३ । २७ । ४ ॥) अध्वरो वै यज्ञः । श० १ । ४ । १ । ३८, ३९ ॥

” अध्वरो वै यज्ञः । श० १ । २ । ४ । ५ ॥ १ । ४ । ५ । ३ । २ । ३ । ४ । १० ॥ ३ । ५ । ३ । १७ ॥ ३ । ९ । २ । ११ ॥

” प्राणोऽध्वरः । श० ७ । ३ । १ । ५ ॥

” रसोऽध्वरः । श० ७ । ३ । १ । ६ ॥

अध्वर्युः पूर्वार्धो वै यज्ञस्याध्वर्युर्जघनार्धः पत्नी । श० १ । ९ । २ । ३ ॥

” प्रतिष्ठा वा एषा यज्ञस्य यदध्वर्युः । तै० ३ । ३ । ८ । १० ॥

” वायुर्वा अध्वर्युरधिदैवं प्राणोऽध्यात्मम् । गो० पू० ४ । ५ ॥

” वह्निरध्वर्युः । तै० १ । १ । ६ । १० ॥

” मनोऽध्वर्युः । श० १ । ५ । १ । २१ ॥

” मनो वाऽअध्वर्युः । श० १२ । १ । १ । ५ ॥

” चक्षुरध्वर्युः । कौ० १७ । ७ ॥

” राज्यं वा अध्वर्युः । तै० ३ । ८ । ५ । १ ॥

” प्राणोदानौ वाऽअध्वर्युः । श० ५ । ५ । १ । ११ ॥

अनः भूमा वाऽअनः । श० १ । १ । २ । ६ ॥

” यज्ञो वाऽअनः । श० १ । १ । २ । ७ ॥ ३ । ९ । ३ । ३ ॥

अनङ्गवान् अग्निरेष यदनङ्गवान् । श० ७ । ३ । २ । १ ॥

” आग्नेयो वाऽअनङ्गवान् । श० ७ । ३ । २ । १६ ॥ १३ । ८ । ४ । ६ ॥

” वह्निर्वा अनङ्गवान् । तै० १ । १ । ६ । १० ॥ १ । ८ । २ । ५ ॥

अनद्धा पुरुषः कोऽनद्धा पुरुष इति न देवान्न पितृन् मनुष्यानि ।
ऐ० ७ । ९ ॥

” एष ह वाऽ अनद्धापुरुषो यो न देवानवति न पितृन्
मनुष्यान् । श० ६ । ३ । १ । २४ ॥

अनर्वा अनर्वा प्रेहीति । असपत्नेन प्रेहीत्येवैतदाह । श० ३ । ८ । २ । ३ ॥
अनश्नन्त्सांगमनः अथ य एष सभायामग्निः । एष एवानश्नन्त्सांगम-
नस्तद्यदेतमनशित्वेवोपसंगच्छंते तस्मादेषोऽनश्नन् ।
श० २ । ३ । २ । ३ ॥

अनात्मा अनात्मा हि मर्त्यः । श० २ । २ । २ । ८ ॥

अनाधृष्टं छन्दः (यजुः १४ । ९) विराड्वाऽअनाधृष्टं छन्दः । श० ८ ।
२ । ४ । ४ ॥

अनाधृष्टा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अयं वा अग्निरनाधृष्टः । कौ० २७ । ५ ॥

अनाधृष्ट्या (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अनाधृष्ट्या तदग्निः । ऐ० ५ । २५ ॥

असावादित्योऽनाधृष्ट्याः । कौ० २७ । ५ ॥

अनाप्ता (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अनाप्ता तत्पृथिवी । ऐ० ५ । २५ ॥

इयं वै पृथिव्यनाप्ता । कौ० २७ । ५ ॥

अनाप्या (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अनाप्या तद्योः । ऐ० ५ । २५ ॥

असौ द्यौरनाप्या । कौ० २७ । ५ ॥

अनाशकः (= अनशनम्) एतद्वै सर्वं तपो यदनाशकस्तस्मादुपवसथे
नाश्नीयात् । श० ९ । ५ । १ । ६ ॥

अनिरुक्तम् अनिरुक्तं हि मनोऽनिरुक्तं ह्येतद्यत्तूष्णीम् । श० १ ।

४ । ४ । ५ ॥

” सर्वं वाऽअनिरुक्तम् । श० १ । ३ । ५ । १० ॥ १ । ४ । १ । २१ ॥

२ । २ । १ । ३ ॥ १० । १ । ३ । ११ ॥

” अपरिमितं वाऽअनिरुक्तम् । श० ५ । ४ । ४ । १३ ॥

अनिरुक्तः अनिरुक्तो ह्येष (अन्तरिक्ष-) लोकः । श० १ । ४ । १ । २६ ॥

अनिलया (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अनिलया तद्वायुर्न ह्येष कदाचनेलयति
ऐ० ५ । २५ ॥

अनिलया तद्वायुर्न ह्येष इलयति ।

कौ० २७ । ५ ॥

अनीकम् सेनाया वै सेनानोरनीकम् । श० ५ । ३ । १ । १ ॥

[अनुरूपः (२४)

- अनुख्याता आदित्योऽनुख्याता । तै० ३ । ७ । ५ । ४ ॥
" आदित्यो वा अनुख्याता । गो० ३० २ । १९ ॥ ४ । ९ ॥
अनुपानीयाः एताभिर्वा इन्द्रस्तृतीयसवनमन्वपिबत् तदनुपानीया-
नामनुपानीयात्वम् । ऐ० ३ । ३८ ॥
अनुमतिः इयं (पृथिवी) वाऽअनुमतिः स यस्तत्कर्म शक्नोति कर्तुं
यच्चिर्कीर्षतीयश्च हास्मै तदनुमन्यते । श० ५ । २ । ३ । ४ ॥
" इयं (पृथिवी) वा अनुमतिः । इयमेवास्मै राज्यमनु-
मन्यते । तै० १ । ६ । १ । ४-५ ॥
" इयं (पृथिवी) वा अनुमतिः । तै० १ । ६ । १ । १ ॥
" या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिः । ऐ० ७ । ११ ॥
प० ४ । ६ ॥ गो० ३० १ । १० ॥
" यानुमतिः सा गायत्री । ऐ० ३ । ४७, ४८ ॥
" अनुमत्यै हविरष्टकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ ।
२ । ३ । २ ॥

- अनुम्लोचन्ती (अपसराः) (यजुः १५ । १७) "प्रम्लोचन्ती" शब्दं पश्यत ।
अनुयाजा तद्यत्तासु सर्वास्विष्टासु (देवतासु) अथैतत्पद्मचेवानु-
यजति तस्मादनुयाजाः नाम । श० १ । ८ । २ । ७ ॥
" छन्दाश्चि स्य वाऽअनुयाजाः । श० १ । ८ । २ । ८, १४ ॥
" छन्दाश्चि स्यनुयाजाः । श० ३ । ९ । ३ । ८ ॥
" छन्दाश्चि स्य ह्यनुयाजाः । श० १ । ३ । २ । ९ ॥
" पशवो वाऽअनुयाजाः । श० ३ । ८ । ४ । ८ ॥
" रेतोधेयमनुयाजाः । कौ० १० । ३ ॥
" प्रजानुयाजाः । ऐ० १ । ११ ॥
" ये (प्राणाः) अवाञ्चस्तेऽनुयाजाः । ऐ० १ । १७ ॥
" अपाना अनुयाजाः । कौ० ७ । १ ॥ १० । ३ ॥ श० ११ । २ । ७ । २७ ॥
" अशनिरेव प्रथमोऽनुयाजः । हाडुनिर्द्वितीय उल्कुषी
तृतीयः । श० ११ । २ । ७ । २१ ॥
" न वाऽअत्र देवतास्यनुयाजेषु । श० १ । ८ । २ । १५ ॥
अनुरूपः स योऽयं (पुरुषः) चक्षुष्येषोऽनुरूपो नाम । अन्वङ् ह्येष
सर्वाणि रूपाणि । जै० ३० १ । २७ । ४ ॥
" पूर्वमु चैव तद्रूपमपरेण रूपेणानुवदति यत्पूर्वश्चरूपमपरेण

रूपेणानुवदति तदनुष्टुप्स्यानुष्टुप्त्वमनुष्टुप् एनं पुत्रो
जायते य एषं वेद । तां० १२।१।५ ॥ १२।७।७ ॥
१३।१।९ ॥ १३।७।७ ॥

अनुष्टुप् प्रजा अनुष्टुप् । गो० उ० ३ । २१, २२ ॥

” प्रजा वा अनुष्टुप् । ऐ० ३ । २४ ॥

” प्रजाऽनुष्टुप् । ऐ० ३ । २३ ॥ कौ० १५ । ४ ॥ २२ । ८ ॥
जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

” अग्निरनुष्टुप् । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

अनुवत्सरः वायुरनुवत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥ तै० १ । ४ । १० । १ ॥

अनुवषट्कारः संस्थानुवषट्कारः । कौ० १३ । ५, ८ ॥ १६ । १, २ ॥

गो० उ० ३ । ७ ॥

” संस्था वा एषा यदनुवषट्कारः । ऐ० २ । २८ ॥ ३ । २९ ॥

अनुवाक्या ह्वयति वाऽनुवाक्यया । श० १ । ७ । २ । १७ ॥

” असौ (द्युलोकः) ह्यनुवाक्या । श० १ । ४ । २ । १८ ॥

” असौ (द्यौः) वा अनुवाक्या । श० १ । ७ । २ । ११ ॥

अनुष्टुक् (छन्दः) वाग्वा अनुष्टुक् । तै० ३ । ३ । १० । ३ ॥

” ” प्रतिष्ठा वा अनुष्टुक् । तै० ३ । ३ । ९ । १ ॥

अनुष्टुप् (छन्दः) अनुष्टुबनुस्तोभनात् । दे० ३ । ७ ॥

” अन्वस्तौदिति हि ब्राह्मणम् । दे० ३ । ८ ॥

” यस्याष्टौ ता अनुष्टुभम् । कौ० ९ । २ ॥

” द्वात्रिंशदक्षराऽनुष्टुप् । कौ० २६ । १ ॥ तै० १ । ७ । ५ ।
५ ॥ तां० १० । ३ । १३ ॥

” अनुष्टुभिमत्रस्य पर्त्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

” गायत्री वै सा यानुष्टुप् । कौ० १० । ५ ॥ १४ । २ ॥ २८ । ५ ॥

” वागेवासौ प्रथमानुष्टुप् । कौ० १५ । ३ ॥ १६ । ४ ॥

” वागनुष्टुप् । कौ० ५ । ६ ॥ ७ । ९ ॥ २६ । १ ॥ २७ । ७ ॥

श० १० । ३ । १ । १ ॥ तै० १ । ८ । ८ । २ ॥ तां० ५ । ७ । १ ॥

” (यजुः १५ । ५)-वागनुष्टुप्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

” वागनुष्टुप् सर्वाणि छन्दाश्चिसि । तै० १ । ७ । ५ । ५ ॥

” वाग्ध्यनुष्टुप् । श० ३ । १ । ४ । २ ॥

” वाग्वा अनुष्टुप् । ऐ० १ । २८ ॥ ३ । १९ ॥ ६ । ३६ ॥

श० १ । ३ । २ । १६ ॥ ८ । ७ । २ । ६ ॥ गो० उ० ६ । १६ ॥

- अनुष्टुप् अनुष्टुब्धि छन्दसां योनिः । तां० ११ । ५ । १७ ॥
- „ ज्यैष्ठ्यं वा अनुष्टुप् । तां० ८ । ७ । ३ ॥ ८ । १० । १० ॥
- „ परमं वाऽपतच्छन्दो यदनुष्टुप् । श० १३ । ३ । ३ । १ ॥
- „ अन्तो वा अनुष्टुप् छन्दसाम् । तां० १९ । १२ । ८ ॥
- „ तस्मादानुष्टुभं छन्दाऽसि नानुव्यूहन्ति । तां० ६ । १ । ११ ॥
- „ अनुष्टुप् छन्दसाम् (पतमादित्यमानशे) । तां० ४ । ६ । ७ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वाऽनुष्टुप् । श० १ । ३ । २ । १६ ॥
तां० ८ । ७ । २ ॥
- „ पादावनुष्टुप् । ष० २ । ३ ॥
- „ प्रजापतिर्वा अनुष्टुप् । तां० ४ । ८ । ९ ॥
- „ आनुष्टुभो वै प्रजापतिः । तां० ४ । ५ । ७ ॥
- „ आनुष्टुभः प्रजापतिः । तै० ३ । ३ । २ । १ ॥
- „ यस्य ते (प्रजापतेः) ऽहं (अनुष्टुप्) स्वं छंदोऽस्मि ।
पे० ३ । १३ ॥
- „ अनुष्टुप् सोमस्यच्छन्दः । कौ० १५ । २ ॥ १६ । ३ ॥
- „ विश्वेदेवा अनुष्टुभं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ७ ॥
- „ आनुष्टुभो राजन्यः । तै० १ । ८ । ८ । २ ॥
तां० १८ । ८ । १४ ॥
- „ आनुष्टुभो वाऽअश्वः । श० १३ । २ । २ । १९ ॥
- „ आपो वा अनुष्टुप् । कौ० १४ । ४ ॥
- „ अनुष्टुप् च वै सप्तदशश्च समभवताम् । तां० १० । १ । ४ ॥
- „ आनुष्टुभी वै वृष्टिः । तां० १२ । ८ । ८ ॥
- „ आनुष्टुभी वै रात्रिः । पे० ४ । ६ ॥
- „ अनुष्टुबुदीची (दिक्) । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥
- „ आनुष्टुभेषा (उत्तरा) दिक् । श० १३ । २ । २ । १९ ॥
- „ सत्यानृते वा अनुष्टुप् । तै० १ । ७ । १० । ४ ॥
- „ आनुष्टुभं वै चतुर्थमहः । कौ० २२ । ७, ८ ॥
- „ सक्थ्यावनुष्टुभः । श० ८ । ६ । २ । ९ ॥
- अनूकम् बृहतीछन्दो बृहस्पतिर्देवतानूकम् । श० १० । ३ । २ । ३ ॥
- अनूबन्ध्या चतुर्थमेवैतत्सवनं यदनूबन्ध्या तस्मादच्युता भवति ।
कौ० १८ । ११ ॥

- अनूराधाः (नक्षत्रम्) अन्वेषामरात्समेति । तदनूराधाः । तै०
१।५।२।८ ॥
- ” ” (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) प्रतिष्ठाऽनूराधाः ।
तै० १।५।२।२ ॥
- ” ” मित्रस्यानूराधाः । तै० १।५।१।३ ॥
३।१।२।१ ॥
- अनृतम् अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति । तेन पूतिरन्तरतः ।
श० १।१।१।१ ॥ ३।१।२।१० ॥
- ” अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति । तै० १।७।२।६ ॥
- ” तस्माद्दु हैतद्य आसक्यनृतं वदत्यूष इवैव पिस्वित्याख्य इव
भवति परा ह त्वेवान्ततो भवति । श० ९।५।१।१७ ॥
- ” पतद्वाचदिच्छद्रं यदनृतम् । तां० ८।६।१३ ॥
- ” अनृतं (वा पतत्) यदा तपति वर्षति । तै० १।७।५।३ ॥
- ” सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः । श० १।१।१।४ ॥
१।१।२।१७ ॥ ३।३।२।२ ॥
- अन्तः अन्तो वै क्षयः । कौ० ८।१ ॥
- ” अन्तो वै पर्यासोन्त उर्दकः । गो० उ० ३।१६ ॥ ४।४ ॥ ४।१८ ॥
- अन्तःसदसम् या इमा (पुरुषस्य) अन्तर्देवतास्तेऽन्तःसदसम् ।
कौ० १७।७ ॥
- अन्तकः एष (संवत्सरः) हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुषोऽन्तं गच्छ-
त्यथ म्रियन्ते तस्मादेष एवान्तकः स यो हैतमन्तकं मृत्युं^३
संवत्सरं वेद् । श० १०।४।३।२ ॥
- अन्तरिक्षम् तद्यदस्मिन्निदं सर्वमन्तस्तस्मादन्तर्यक्षम् । अन्तर्यक्षं
ह वै नामैतत् । तदन्तरिक्षमिति परोक्षमाचक्षते । जै०
उ० १।२०।४ ॥
- ” अन्तरेव वा इदमिति तदन्तरिक्षस्यान्तरिक्षत्वम् ।
तां० २०।१४।२ ॥
- ” सह हैवेमावग्रे लोकावासतुस्तयोर्वियतोर्योऽन्तरेणाकाश
आसीत्तदन्तरिक्षमभवदीक्ष^३ हैतन्नाम ततः पुरान्तरा
वाऽइदमीक्षमभूदिति तस्मादन्तरिक्षम् । श० ७।१।
२।२३ ॥
- ” अन्तरिक्षायतना हि प्रजा । तां० ४।८।१३ ॥

- अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षं वै सर्वेषां देवानामायतनम् । श० १४ । ३ । २ । ६ ॥
 ,, वैश्वदेवोऽयमन्तरा लोकः (= अन्तरिक्षम्) । जै० उ०
 १ । ३७ । ४ ॥
 ,, मध्यं वाऽअन्तरिक्षम् । श० ७ । ५ । १ । २६ ॥
 ,, अवलिष्ट (अवरिष्ट इति पाठान्तरम्) इव वा
 अयम्मध्यमो लोकः । तां० ७ । ३ । १८ ॥
 ,, अनिरुक्तो ह्येष (अन्तरिक्ष-) लोकः । श० १ । ४ ।
 १ । २६ ॥
 ,, तस्मादेषां लोकानामन्तरिक्षलोकस्तनिष्ठः । श० ७ ।
 १ । २ । २० ॥
 ,, छिद्रमिवेदमन्तरिक्षम् । तां० ३ । १० । २ ॥ २१ । ७ । ३ ॥
 ,, सन्धिरस्यन्तरिक्षाय त्वांतरिक्षं जिन्व (आकाशः सान्धिः ।
 तं० उप० १ । ३ । १) । तां० १ । ९ । ४ ॥
 ,, एतेन (अन्तरिक्षेण) इमौ लोकौ (= द्यावापृथिव्यौ)
 विश्कन्धौ । जै० उ० १ । २० । ३ ॥
 ,, अन्तरिक्षेण हीमे द्यावापृथिवी विष्टब्धे । श० १ । २ । १६ ॥
 ,, ऊर्ध्वा अन्तरिक्षं (द्यावापृथिव्याख्यौ) स्तनावभितो
 नेन (पृथिवीरूपेण स्तनेन) वा एष देवेभ्यो दुग्धेऽमुना
 (द्युलोकरूपेण स्तनेन) प्रजाभ्यः । तां० २४ । १ । ६ ॥
 ,, अन्तरिक्षेणेदं सर्वं पूर्णम् । तां० १५ । १२ । ५ ॥
 ,, महस्त्रीदमन्तरिक्षम् । कौ० २६ । ११ ॥
 ,, अन्तरिक्षं वाऽअवरं सधस्थम् । श० ९ । २ । ३ । ३९ ॥
 ,, अन्तरिक्षं वाऽअपां सधस्थम् । श० ७ । ५ । २ । ५७ ॥
 ,, (असुराः) रजतां (पुरीं) अन्तरिक्षम् (अकुर्वत) ।
 ऐ० १ । २३ ॥
 ,, (असुराः) रजतां (पुरीं) अन्तरिक्षलोके (अकुर्वत) ।
 कौ० ८ । ८ ॥
 ,, रजता (पुरी) अन्तरिक्षम् । गो० उ० २ । ७ ॥
 ,, अयम्म आकाशः स मे त्वयि (अन्तरिक्षे) । जै० उ०
 ३ । २१ । १४ ॥

अन्तरिक्षम् यान्येव बभ्रूणीव हरीणि (लोमानि) तान्यन्तरिक्षस्य

रूपम् । श० ३ । २ । १ । ३ ॥

” अन्तरिक्षं पृथिव्याम् (प्रतिष्ठितम्) । ऐ० ३ । ६ ॥

गो० उ० ३ । २ ॥

” अन्तरिक्षमस्यग्नौ श्रितम् । वायोः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ ।

१ । ८ ॥

” वायुनान्तरिक्षेण वयोभिस्तेनैष लोकस्त्रिवृद्योऽयमंतरा ।

तां० १० । १ । १ ॥

” य एवायम्पवते (वायुः) एतदेवान्तरिक्षम् । जै० उ०

१ । २० । २ ॥

” अथ यत्कपालमासीत्तदन्तरिक्षमभवत् । श० ६ । १ ।

२ । २ ॥

” (देवाः) अन्तरिक्षं पशुमद्भिः (यज्ञैरभ्यजयन्) । तां० १७ ।

१३ । १८ ॥

” अथ द्वितीययाऽऽ वृतेदमेवाऽन्तरिक्षं जयति यदुचान्त-

रिक्षे । तदेतैश्चैनं छन्दोभिस्समर्द्धयति यान्यभिसम्भ-

वति । एतां चास्मै दक्षिणाम्प्रयच्छति यामभिजायते ।

जै० उ० ३ । ११ । ६ ॥

अन्तर्यामः(ग्रहः) तद्यदस्यैषो (उदानः) ऽन्तरात्मन्यतो यद्वेनेनेमाः

प्रजा यतास्तस्मादन्तर्यामो नाम । श० ४ । १ । २ । २ ॥

” (यज्ञस्य) उदान एवान्तर्यामः । श० ४ । १ । १ । १ ॥

” अन्तर्यामोऽपान एव । कौ० १२ । ४ ॥

” असौ (द्यौः) एवान्तर्यामः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥

” अन्तर्यामपात्रमेवान्ववयः प्रजायन्ते । श० ४ । ५ ।

५ । ३ ॥

अन्तर्यामी वेत्थ नु त्वं काप्य तमन्तर्यामिणं य इमं च लोकं परं च

लोकं १३ सर्वाणि च भूतान्यन्तरो यमयतीति । श० १४ ।

६ । ७ । ३ ॥

अन्धः (-स्) (यजुः १६ । ४७ ॥) अन्धसस्पतऽइति सोमस्यपतऽ-

इत्येतत् । श० ९ । १ । १ । २४ ॥

” अहर्वा अन्धः । तां० १२ । ३ । ३ ॥

” अन्धो रात्रिः । तां० ९ । १ । ७ ॥

अन्धाहिः यत्सेजनं सोऽन्धाहिः । पे० ३ । २६ ॥

अन्नपत्नी (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अन्नपत्नी तदादित्यः । पे० ५ । २५ ॥

” ” असौ (घौः) अन्नपत्नी । कौ० २७ । ५ ॥

अन्नम् अर्को वै देवानामन्नम् । श० १२ । ८ । १ । २ ॥ तै० १ । १ ।
८ । ५ ॥

” अन्नं वै देवा अर्क इति वदन्ति । तां० १५ । ३ । २३ ॥

” अन्नं वा अर्कः । तां० ५ । १ । ९ ॥ १४ । ११ । ९ ॥ १५ ।
३ । ३४ ॥ गो० उ० ४ । २ ॥

” अन्नमर्कः । श० ९ । १ । १ । ४ ॥

” अन्नं वै वाजः । तां० १३ । ९ । १३, २१ ॥ १५ । ११ । १२ ॥
१८ । ६ । ८ ॥

” त्रेधा विहितं ह्यन्नम् । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥

” त्रिवृद्धयन्नम् । श० ३ । २ । १ । १२ ॥ ३ । ७ । १ । २० ॥

” त्रिवृद्धाऽअन्नं ऋषिर्वृष्टिर्बीजम् । श० ८ । ६ । २ । २ ॥

” विरूपं (= नानारूपम्) अन्नम् । तां० १४ । ९ । ८ ॥

” पाङ्क्तं ह्यन्नम् । तां० ५ । २ । ७ ॥

” सप्त वा अन्नानि । तै० १ । ३ । ८ । १ ।

” सर्वम्भवेतदन्नं यद्दधिमधुघृतम् । श० ९ । २ । १ । ११ ॥

” एतद्दु परममन्नं यद्दधिमधुघृतम् । श० ९ । २ । १ । १२ ॥

” यद्दुवाऽआत्मसंमितमन्नं तदवति तन्न हिनस्ति यद्भूयो
हिनस्ति तद्यत्कनीयो न तदवति । श० ७ । ५ । १ । १४ ॥
९ । २ । २ । २ ॥

” अरत्तिमात्राद्ध्यन्नमद्यते । श० ७ । ५ । १ । १३ ॥ १० । २ ।
२ । ७ ॥

” द्विः संबत्सरस्यान्नं पच्यते । श० ६ । ५ । ४ । ९ ॥

” शान्तिर्वा अन्नम् । पे० ५ । २७ ॥ ७ । ३ ॥

” अन्नं वै सर्वेषां भूतानामात्मा । गो० उ० १ । ३ ॥

” वैश्वदेवं वा अन्नम् । तै० १ । ६ । १ । १० ॥

” अन्नं वाऽआयतनम् । श० ६ । २ । १ । १४ ॥

” अन्नजीवनं हृदि सर्वम् । श० ७ । ५ । १ । २० ॥

- अन्नम् अन्नं प्राणमन्नमपानमाहुः । अन्नं मृत्युं तमु जीवातुमाहुः ।
 अन्नं ब्रह्माणो जरसं वदन्ति । अन्नमाहुः प्रजननं प्रजानाम् ।
 तै० २ । ८ । ८ । ३ ॥
- ” अन्नमेव ग्रहः । अन्नेन हीद^१ सर्वं गृहीतम् । श० ४ । ६ ।
 ५ । ४ ॥
- ” तस्मात्प्राणोऽन्नेन गृहीतो यो हेवान्नमत्ति स प्राणिति ।
 श० ७ । ५ । १ । १६ ॥
- ” तस्मात्प्राणेनान्नं गृहीतं यो हेव प्राणिति सोऽन्नमत्ति । श०
 ७ । ५ । १ । १७ ॥
- ” अन्नं प्राणः । तै० ३ । २ । ३ । ४ ॥
- ” अन्न^२हि प्राणः । श० ३ । ८ । ४ । ८ ॥ ४ । ३ । ४ । २५ ॥
- ” ताः (प्रजाः) अन्नादेव सम्भवन्ति तस्माद्द्वन्नमेव प्रजाः ।
 श० २ । ५ । १ । ६ ॥
- ” अन्नं पशवः । ऐ० ५ । १९ ॥
- ” रेतो वा अन्नम् । गो० पू० ३ । २३ ॥
- ” अन्नमु श्रीः । श० ८ । ६ । २ । १ ॥
- ” अन्नं वै ब्रह्मणः पुरोधः । तां० १२ । ८ । ६ ॥ १३ । ९ । २७ ॥
 १४ । ९ । ३८ ॥
- ” अन्नमशीतयः । श० ९ । १ । १ । २१ ॥
- ” अन्नमशीतिः । श० ८ । ५ । २ । १७ ॥
- ” अन्नं वै चन्द्रमाः । तै० ३ । २ । ३ । ४ ॥
- ” अन्नं वाऽअपां पथः । श० ७ । ५ । २ । ६० ॥
- अन्नादः अन्नादोऽग्निः । श० २ । १ । ४ । २८ ॥ २ । २ । ४ । १ ॥
- अन्नादा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अन्न^३न्नादा तदग्निः । ऐ० ५ । २५ ॥
- अन्नादी (प्रजापतेस्तनूविशेषः) इयं (पृथिवी) वा अन्नादी ।
 कौ० २७ । ५ ॥
- अन्वाहार्यः तद्यदेतद्धीनं यन्नस्यान्वाहरति तस्मादन्वाहार्यो नाम ।
 श० ११ । १ । ८ । ६ ॥
- अन्वाहार्यपचनः (अग्निः) पुत्रोऽन्वाहार्यपचनः । ऐ० ८ । २४ ॥
- ” व्यानोऽन्वाहार्यपचनः । श० २ । २ । २ ।
 १८ ॥

[अपां योनिः (३२)

अन्वाहार्यपचनः (अग्निः) दम इत्यन्वाहार्यपचनः । जै० उ० ४ ।
२६ । १५ ॥

” अथैष भ्रातृव्यदेवत्यो यदन्वाहार्यपचनः ।
श० २ । ३ । २ । ६ ॥

” अन्तरिक्षलोको वा अन्वाहार्यपचनः ।
ष० १ । ५ ॥

अन्वितिः (यजुः १५ । ६) अन्नमन्वितिः । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥

अपभया (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अपभया तन्मृत्युः सर्वं ह्येतस्मा-
द्वीमाय । ऐ० ५ । २५ ॥

” अपभया तन्मृत्युर्नेह्येष विभेति । कौ० २७ । ५ ॥

अपभरणीः (नक्षत्रम्) अपभरणीष्वपावहन् । तै० १ । ५ । २ । ९ ॥

” ” यमस्यापभरणीः । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥ ३ ।
१ । २ । ११ ॥

अपरपक्षः प्रस्तुतं विष्टुतं सुतासुन्वतीति । एतावनुवाकावपर-
पक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि । तै० ३ । १० । १ । १० । २ ॥

अपराजिता दिक् ते (देवासुराः) उदीच्यां प्राच्यां दिश्ययतन्त ते
ततो न पराजयन्त सैषा दिगपराजिता । ऐ० १ । १४ ॥

अपराहः भगस्यापराहः । तै० १ । ५ । ३ । ३ ॥

अपरिमितम् अपरिमितं भव्यम् । ऐ० ४ । ६ ॥

अपरोधोऽनपरुद्धः (= प्राणः) एष (प्राणः) ह्यन्यमपरुणद्धि नैतमन्यः ।
जै० उ० २ । ४ । ८ ॥

अपांक्षयः (यजुः १३ । ५३) चक्षुर्वाऽअपां क्षयस्तत्र हि सर्वदैवापः
क्षियन्ति । श० ७ । ५ । २ । ५४ ॥

अपां ज्योतिः (यजुः १३ । ५३) विद्युद्वाऽअपां ज्योतिः । श० ७ । ५ ।
२ । ४९ ॥

अपां पाथः (यजुः १३ । ५३) अन्नं वा अपां पाथः । श० ७ । ५ ।
२ । ६० ॥

अपां पुरीषम् (यजुः १३ । ५३) सिकता वा अपां पुरीषम् । श० ७ ।
५ । २ । ५९ ॥

अपां भस्म (यजुः १३ । ५३) अन्नं वाऽअपां भस्म । श० ७ । ५ । २ । ४८ ॥

अपां योनिः (यजुः १३ । ५३) समुद्रो वाऽअपां योनिः । श० ७ ।
५ । २ । ५८ ॥

- अपां सदनम् (यजु० १३।५३) द्यौर्वाऽअपां सदनं दिवि ह्यापः सन्नाः ।
श० ७।५।२।५६ ॥
- अपां सधस्थम् (यजु० १३।५३) अंतरिक्षं वाऽअपां सधस्थम् ।
श० ७।५।२।५७ ॥
- अपां सधिः श्रोत्रं वा अपां सधिः । श० ७।५।२।५५ ॥
- अपानः अपानो वा एतवान् (आगमनविशिष्टत्वादाकारोपसर्ग-
वानिति सायणः) । श० १।४।३।३ ॥
- ” अन्तर्ह्यपानः । तां ७।६।१४ ॥
- ” अपानेन हि गन्धाञ्जिघ्रति । श० १४।६।२।२ ॥
- ” तस्माद्बहु किंच किंचाऽपानेन जिघ्रति । जै० उ० १।६०।५ ॥
- ” अन्तर्यामोऽपान एव । कौ० १२।४ ॥
- ” अपानेन हि मनुष्या अन्नमदन्ति । श० १०।१।४।१२ ॥
- ” अग्निरपानः । जै० उ० ४।२२।९ ॥
- ” अपाना अनुयाजाः । कौ० ७।१॥१०।३ ॥ श० ११।३।
७।२७ ॥
- ” घोषीव ह्ययमपानः । ष० २।२ ॥
- ” (प्रजापतिः) अपानादन्तरिक्षलोकं (प्रावृहत्) । कौ० ६।१० ॥
- ” (अयास्य आङ्गिरसः) अपानेन मनुष्यान्मनुष्यलोके
(अदधात्) । जै० उ० २।८।३ ॥
- ” चत्वार ऋतुभिरिति (यजन्ति) अपानमेव तद्यजमाने दधति ।
कौ० १३।९ ॥
- ” अपानः प्रत्याश्रावितम् । तै० २।१।५।९ ॥
- ” तं (पशुं संज्ञकं) प्रतीचीदिगपानेत्यनुप्राणदपानमेवास्मिस्त-
ददधात् । श० ११।८।३।६ ॥
- अपापः अपापो (देवानां) निग्रभीता । ऐ० २।७ ॥
- अपामयनम् (यजु० १३।५३) इयं (पृथिवी) वाऽअपामयनमस्यां
ह्यापो यन्ति । श० ७।५।२।५० ॥
- अपामार्गः अपामार्गैरपमृजते । श० १३।८।४।४ ॥
- ” अथापामार्गहोमं जुहोति । अपामार्गैर्वै देवा विश्वु नाष्ट्रा
रक्षांस्वपामृजते ते व्यजयन्त । श० ५।२।४।१४ ॥
- ” यदपामार्गहोमो भवति रक्षसामपहत्यै । तै० १।७।१।८ ॥
- ” प्रतीचीनफलो वाऽअपामार्गः । श० ५।२।४।२० ॥

[अप्सराः

(३४)

अपामेम (यजु० १३ । ५३) वायुर्वाऽअपामेम यदा ह्येवैष इतश्चेतश्च
वात्यथापो यन्ति । श० ७ । ५ । २ । ४६ ॥

अपामोघ (यजु० १३ । ५३) ओषधयो वाऽअपामोघ यत्र ह्याप उन्द-
न्त्यस्तिष्ठन्ति तदोषधयो जायन्ते ।
श० ७ । ५ । २ । ४७ ॥

अपिशर्वराणि (छन्दांसि) अपिशर्वर्या अनुस्मसीत्यब्रुवन्नपिशर्वराणि
खलु वा एतानि छन्दांसीति ह स्माहैतानि
हीन्द्रं रात्रेस्तमसो मृत्योर्बिभ्यतमत्य-
पारयंस्तदपिशर्वराणामपिशर्वरत्वम् । ऐ०
४ । ५ ॥

” तद्यदपिशर्वर्या अपिस्मसीत्यब्रुवंस्तदपि-
शर्वराणामपिशर्वरत्वं शर्वराणि खलु ह वा
अस्यैतानि छन्दांसीति ह स्माहैतानि ह
वा इन्द्रं रात्र्यास्तमसो मृत्योरभिपत्या-
वारयंस्तदपिशर्वराणामपिशर्वरत्वम् ।
गो० उ० ५ । १ ॥

” द्वादशस्तोत्राण्यपिशर्वराणि । ऐ० ४ । ६ ॥

अपूरः इन्द्रियमपूपः । ऐ० २ । २४ ॥

अपूर्वा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अपूर्वा तन्मनः । ऐ० ५ । २५ ॥

कौ० २७ । ५ ॥

अप्तोर्यामः यद् (विष्णुः पशून्) आप्नोत् । तदप्तोर्यामस्याप्तोर्यामत्वम् ।
तै० २ । ७ । १४ । २ ॥

अप्तोर्यामा ताः (प्रजाः) यदाप्त्वायच्छदतो वा अप्तोर्यामा ।
गो० उ० ५ । ९ ॥

” यं कामङ्गामयते तमेतेनाप्नोति । तदप्तोर्यामोऽप्तोर्यामत्वम् ।
तां० २० । ३ । ४-५ ॥

अप्रतिधृष्या (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अप्रतिधृष्या तदादित्यः ।

ऐ० ५ । २५ ॥

अप्सराः गन्ध इत्यप्सरसः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥

” किं नु तेऽस्मासु (अप्सरसु) इति । हसो मे क्रीडा मे
मिथुनम्मे । जै० उ० ३ । २५ । ८ ॥

अप्सराः सोमो वैष्णवो राजेत्याह तस्याप्सरसो विशस्ता इमा
आसत इति युवतयः शोभना उपसमेता भवन्ति ता
उपदिशत्यङ्गिरसो वेदः सोऽयमिति । श० १३ । ४ । ३ । ८ ॥

” (यजु० १८ । ३८) तस्य (अग्नेः) ओषधयोऽप्सरसः ।

श० ९ । ४ । १ । ७ ॥

” (यजु० १८ । ३९) तस्य (सूर्यस्य) मरीचयोऽप्सरसः ।

श० ९ । ४ । १ । ८ ॥

” (यजु० १८ । ४०) तस्य (चन्द्रमसः) नक्षत्राण्यप्सरसः ।

श० ९ । ४ । १ । ९ ॥

” (यजु० १८ । ४१) तस्य (वातस्य) आपोऽप्सरसः ।

श० ९ । ४ । १ । १० ॥

” (यजु० १८ । ४२) तस्य (यक्षस्य) दक्षिणा अप्सरसः ।

श० ९ । ४ । १ । ११ ॥

” (यजु० १८ । ४३) तस्य (मनसः) क्रकसामान्यप्सरसः ।

श० ९ । ४ । १ । १२ ॥

अञ्जाः एष (सूर्यः) वा अञ्जा अद्भ्यो वा एष प्रातरुदेत्यपः
सायं प्रविशति । ऐ० ४ । २० ॥

अभयम् (यजु० १२ । ४८) स्वर्गो वै लोकोऽभयम् । श० १२ । ८ । १ । २२ ॥

अभिचारः नैनश्शतम् । नाभिचरितमागच्छति य एवं वेद ।

तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥

अभिजित् (नक्षत्रम्) देवासुराः संयत्ता आसन् । ते देवास्तस्मिन्न-
क्षत्रेऽभ्यजयन् । यदभ्यजयन् तदभिजितो
ऽभिजिरवम् । तै० १ । ५ । २ । ३-४ ॥

” यस्मिन्ब्रह्माभ्यजयत् सर्वमेतत् । अमुञ्च
लोकमिदम् च सर्वम् । तन्नो नक्षत्रमभिजि-
द्विजित्य श्रियं दधात्वहृणीयमानम् । तै० ३ ।
१ । २ । ५ ॥

” अभिजिन्नाम नक्षत्रमुपरिष्ठादषाढानामवस्ता-
च्छेणायै । तै० १ । ५ । २ । ३ ॥

अभिजित् (यज्ञः) अभिजिता वै देवा अभ्यजयन्निर्मास्त्रील्लोकान् ।
कौ० २४ । १ ॥

- अभिजित् (यज्ञः) अभिजिता वै देवा इमान् लोकानभ्यजयन् ।
तां० २२ । ८ । ४ ॥
- ” अभिजिता वै देवा असुरानिमान् लोकानभ्य-
जयन् । तां० २० । ८ । १ ॥
- ” सो (इन्द्रः) ऽकामयत यन्मेऽनभिजितं तदभि-
जयेयमिति स एतमभिजितमपश्यत्तेनान-
भिजितमभ्यजयत् । तां० १६ । ४ । ६ ॥
- ” यदभिजिद्भवत्यनभिजितस्याभिजित्यै ।
तां० १६ । ४ । ७ ॥
- ” अग्निरेवाभिजिदाग्निर्हीदं सर्वमभ्यजयत् ।
कौ० २४ । १ ॥
- ” अथ यदभिजितमुपयन्ति । अग्निमेव देवतां
यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १२ ॥
- ” स वा अभिजिदभयसामा सर्वस्तोमो भवति ।
कौ० २४ । १ ॥
- ” एकाहो वा अभिजित् । कौ० २४ । २ ॥
- अभितष्टीयम् (सूक्तम्) प्रजापतिर्वा अभितष्टीयम् । कौ० २९ । ७ ॥
- अभितृष्णवत्यः (ऋचः) इन्द्रो वै प्रातःसवने न व्यजयत स एता-
भिरेव माध्यन्दिनं सवनमभ्यतृष्णद्यदभ्यतृष्ण-
त्तस्मादेता अभितृष्णवत्यो भवन्ति ।
ऐ० ६ । ११ ॥
- ” तद्यदेताभिः (इन्द्रः) माध्यन्दिनं सवनमभ्य-
तृष्णत्तस्मादेता अभितृष्णवत्यो भवन्ति ।
गो० उ० २ । २१ ॥
- अभिद्यवः (ऋ० ३ । २७ । १) अर्द्धमासा वाऽऽभिद्यवः । श० १ ।
४ । १ । ९ ॥
- ” मासा देवा अभिद्यवः । गो० पू० ५ । २३ ॥
- अभिनिधनम् (साम) अभिनिधनेन वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्त-
मस्तृष्णुत स्तृष्णुते भ्रातृव्यमभिनिधनेन तुष्टुवा-
नः । तां० १४ । ४ । ५ ॥
- अभिष्टवः (षडहः) (आदित्याः) स्वर्गं लोकमभ्यष्टवन्त यदभ्यष्टवन्त
तस्मादभिष्टवः । गो० पू० ४ । २३ ॥

- अभिप्लवः (षडहः) तऽआदित्याः । चतुर्भिस्तोमैश्चतुर्भिः पृष्टैर्लघुभिः
सामभिः स्वर्गं लोकमभ्यप्लवन्त यदभ्यप्लवन्त
तस्मादभिप्लवाः । श० १२ । २ । २ । १० ॥
- ” यद्वेवैष षडहः पुनः पुनरभिप्लवते तस्मादभिप्लवो
नाम । कौ० २१ । ६ ॥
- ” ते (देवाः) एतेनाभिप्लवेनाभिप्लुत्य मृत्युं पाप्मान-
मपहत्य ब्रह्मणः सलोकतां सायुज्यमापुः ।
कौ० २१ । १ ॥
- ” (= परिप्लवः) तद्यदभिप्लवमुपयन्ति संवत्सरमेव तद्यजमानाः
समारोहन्ति । कौ० २० । १ ॥
- ” इमे वै लोका अभिप्लवाः । श० १२ । २ । २ । १ ॥
- ” पिता वा अभिप्लवः पुत्रः पृष्ठयः । गो० पू० ४ । १७ ॥
- ” श्रीर्वा अभिप्लवाः । कौ० २१ । ५ ॥
- ” पशवो वा अभिप्लवाः । कौ० २१ । ५ ॥
- अभिभूतयः छन्दाश्चिसि वा अभिभूतयः । तां० ९ । ४ । ७ ॥
- अभिमातिः [यजु० ९ । ३७ ॥ ३८ । ८ ॥] सपत्नो वाऽअभिमातिः ।
श० ३ । ९ । ४ । ९ ॥ ५ ।
२ । ४ । १६ ॥ २४ । २ ।
२ । ८ ॥
- अभिमातिषाहूः [बहुवचने] [यजु० १२ । ११३] संवृणान्यभिमातिषाह
इति सश्चरेताश्चिसि पाप्म-
सह इत्येतत् । श० ७ ।
३ । १ । ४६ ॥
- अभिषेकः शर्षितो वाऽअभिषिच्यमानोऽभिषिच्यते । श० ९ । ३ ।
२ । ३ ॥
- अभीत्वरी (यजु० २८ । ६) सेना वा अभीत्वरी । कौ० २८ । ५ ॥
- अभीवर्त्तः (ब्रह्मसाम) अभीवर्त्तेन वै देवाः स्वर्गं लोकमभ्यवर्त्तन्त ।
तां० ४ । ३ । २ ॥
- ” अभीवर्त्तेन वै देवा असुरानभ्यवर्त्तन्त यदभीवर्त्तो
ब्रह्मसाम भवति भ्रातृव्यस्याभिवृत्तैः ।
तां० ८ । २ । ८ ॥

अभीवर्त्तः (ब्रह्मसाम) वृषा वा एष रेतोधा यद्भीवर्त्तः । तां० ४ । ३ । ८ ॥

„ अभीवर्त्तो ब्रह्मसाम भवत्येकाक्षरणिघनः
प्रतिष्ठायै । तां० १५ । १० । ११ ॥

अभीवर्त्तः सविंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाऽअभीवर्त्तः सविंश-
शस्तस्य द्वादशमासा सप्तऽर्तवः
संवत्सर एवाभीवर्तः सविंश-
शस्तयत्तमाहाभीवर्त इति सं-
वत्सरो हि सर्वाणि भूतान्य-
भिवर्तते । श० ८ । ४ । १ । १५ ॥

अभ्रम् अथ यद्यभ्रं स्यादेतद्वा अस्य तद्रूपं येन प्रजा विभर्त्ति ।
कौ० १८ । ४ ॥

„ अग्नेर्वै धूमो जायते धूमाद्भ्रमभ्रावृष्टिः । श० ५ । ३ । ५ । १७ ॥

„ अभ्रं वा अपां भस्म । श० ७ । ५ । २ । ४८ ॥

„ (वसोर्धारायै) अभ्रमूधः । श० ९ । ३ । ३ । १५ ॥

अभ्रातृव्या (प्रजापतेस्तन्विशेषः) अभ्रातृव्या तत्संवत्सरः । ऐ० ५ ।
२५ ॥ कौ० । २७ । ५ ॥

अग्निः वाग्वाऽअग्निः । श० ६ । ४ । १ । ५ ॥

„ वज्रो वाऽअग्निः । श० ३ । ५ । ४ । २ ॥ ६ । ३ । १ । ३९ ॥

अमतिः (ऋ० ३ । ८ । २) अशनाया वै पाप्माऽमतिः । ऐ० २ । २ ॥

„ (यजुः १७ । ५४) अशनाया वाऽअमतिः । श० ९ । २ । ३ । ८ ॥

अमावास्या तं (चन्द्रमसं) देवा इन्द्रज्येष्ठाः सोमपाश्चासोमपाश्च
यथा पितरं पितामहं प्रपितामहं वा वृद्धं प्रलयमुपगच्छ-
मानं व्याधिगतं मरिष्यतीति वा तां रात्रिं वसन्ते तद-
मावास्याया अमावास्यात्वम् । ष० ४ । ६ ॥

„ स यत्रैष (चन्द्रमाः) पतांश्च रात्रिं न पुरस्तात्त पश्चा-
द्दृशे तदिमं लोकमागच्छति स इहैवापश्चापैधीश्च
प्रविशति स वै देवानां वस्वन्नश्च ह्येषां तद्येष पता-
ंश्च रात्रिमिहामा वसति तस्मादमावास्या नाम । श० १ ।
६ । ४ । ५ ॥

„ ते देवा अग्नवन् । अमा (=सह) वै नोऽद्य वसुः
(इन्द्रः) वसति यो नः प्रावात्सीदिति । श० १ । ६ । ४ । ३ ॥

- अमावास्या इन्द्रो वृत्रं हत्वा असुरान् पराभाष्य । सोऽमावास्यां प्र-
त्यागच्छत् । तै० १ । ३ । १० । १ ॥
- ” चन्द्रमा अमावास्यां रात्रिमादित्यम्प्रविशत्यादित्योऽग्निम् ।
जै० उ० १ । ३३ । ६ ॥
- ” तस्य (संवत्सरस्य) एतद्द्वारं यदमावास्या । चन्द्रमा
एव द्वारपिधानः । श० ११ । १ । १ । १ ॥
- ” ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावास्या । कौ० ४ । ८ ॥
- ” कामो वा अमावास्या । तै० ३ । १ । ५ । १५ ॥
- ” ऐन्द्राद्ग ११ ह्यमावास्य ११ हविर्भवति । श० १ । ८ । ३ । ४ ॥
- ” साक्षाद्यभाजना वाऽअमावास्या । श० २ । ४ । ४ । २० ॥
- अमृतम् अमृतान्मृत्युः (निवर्तते) । श० १० । २ । ६ । १९ ॥
- ” एतद्वै मनुष्यस्यामृतत्वं यत्सर्वमायुरेति । श० ९ । ५ । १ । १० ॥
- ” एतद्वाव मनुष्यस्यामृतत्वं यत्सर्वमायुरेति । तां० २२ । १२ ।
२ ॥ २३ । १२ । ३ ॥
- ” य एव शतं वर्षाणि यो वा भूया ११सि जीवति स हैवैतद-
मृतमाप्नोति । श० १० । २ । ६ । ८ ॥
- ” अमृतमु वै प्राणाः । श० ९ । ३ । ३ । १३ ॥
- ” अमृतं वै प्राणाः । गो० उ० १ । १३ ॥
- ” अमृतं वै प्राणः (प्राण इत्यस्य स्थाने “प्रणवः” गो० उ०
३ । ११) । कौ० ११ । ४ ॥ १४ । २ ॥
- ” अमृत ११ हि प्राणः । श० १० । १ । ४ । २ ॥
- ” प्राणो वाऽ अमृतम् । श० १४ । ४ । ४ । ३ ॥
- ” अमृतमापः । गो० उ० । १ । ३ ॥
- ” अमृतत्वं वा आपः । कौ० १२ । १ ॥
- ” अमृता ह्यापः । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥
- ” यद्भेषजं तदमृतं यदमृतं तद्ब्रह्म । गो० पू० ३ । ४ ॥
- ” अमृत ११ ह्येतदमृतेन क्रीणाति यत्सोम ११ हिरण्येन । श०
३ । ३ । ३ । ६ ॥
- ” अमृत ११ हिरण्यम् । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥ १ । ७ । ८ । १ ॥
- ” अमृत ११ हिरण्यममृतमेष (आदित्यः) । श० ६ । ७ । १ । २ ॥
- ” आदित्योऽमृतम् । श० १० । २ । ६ । १६ ॥
- ” आक्षिरमृतम् । श० १० । २ । ६ । १७ ॥

अमृतम् अमृतमेभ्यः (विश्वसृद्भ्यः) उदगायत् । सहस्रं पद्वि-
वत्सरान् । तै० ३ । १२ । ९ । ३ ॥

अमृतः (यजु० ११ । ५) प्रजापतिर्वाऽअमृतः । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

” ” ते (देवाः) होचुः (हे मृत्यो) नातो-
ऽपरः कश्चन सह शरीरेणामृतोऽसद्यदैव त्व-
मेतं भागं हरासाऽ अथ व्यावृत्य शरी-
रेणामृतोऽसद्यो ऽमृतो ऽसद्विद्यया वा कर्मणा
धेति यद्वै तद्भवन्विद्यया वा कर्मणा वेत्येषा
हैव सा विद्या यदग्निरेतदु हैव तत्कर्म यदग्निः ।
श० १० । ४ । ३ । ९ ॥

अमृतस्य पुत्राः (यजुः० ११ । १५) प्रजापतिर्वाऽअमृतस्तस्य विश्वे देव
पुत्राः । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

अमेध्यम् अस्ति वै पुरुषस्यामेध्यं यत्रास्यापो नोपतिष्ठन्ते केशश्म-
श्रौ च वाऽ अस्य नखेषु चापो नोपतिष्ठन्ते तद्यत्केशश्मश्रु च
वपते नखानि च निरुन्तते मेध्यो भूत्वा दीक्षा इति
। श० ३ । १ । २ । २ ॥

” अस्ति वै पत्न्या अमेध्यं यदवाचीनं नाभेः । श० १ । ३ ।
१ । १३ ॥

अमेभिः (यजु० ३८ । १४) अमेन्यस्मे नृम्णानि धारयेत्यक्रुध्यन्नो
धनानि धारयेत्येवैतदाह । श० । १४ ।
२ । २ । ३० ॥

अम्बयः (ऋ० १ । २३ । १६) आपो वा अम्बयः । कौ० १२ । २ ॥

अम्बिका शरद्वा अस्य (रुद्रस्य) अम्बिका स्वसा । तै० १ । ६ ।
१० । ४ ॥

अम्भांसि अयं वै (भू-) लोकोऽम्भांसि । तस्य वसवोऽधिपतयः ।
तै० ३ । ८ । १८ । १ ॥

अया (प्रजापतिः) अश्मनो ऽयः (असृजत्) । श० ६ । १ । ३ । ५ ॥

” दिशो वा अयस्मय्यः (सूच्यः) । तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥

” अस्य वै (भू-) लोकस्य रूपमयस्मय्यः (सूच्यः) । तै० ३ ।
९ । ६ । ५ ॥

” (असुराः) अयस्मयीमेव (पूर्वी) अस्मिहोके (स्वकिरे) । श०
३ । ४ । ४ । ३ ॥

अयः विश एतद् रूपं यदयः । श० १३ । २ । २ । १९ ॥

अयनानि तदाहुः कस्मादयनानीति गमनान्येव भवन्ति कामस्य
कामस्य स्वर्गस्य च लोकस्य । कौ० ६ । १५ ॥

अयवाः (यजुः० १४ । २६) (अपरपक्षा हीद^{२३} सर्वं) अयुवते । श०
८ । ४ । २ । ११ ॥

„ अपरपक्षा अयवाः । श० ८ । ४ । २ । ११ ॥

„ योऽसुराणाम् (अर्धमासः = कृष्णपक्षः) सोऽयवा न हि तेना-
सुरा अयुवत (= “ समसृज्यन्त ” इति सायणः) । श० १ ।
७ । २ । २५ ॥

„ अथोऽइतरथाहुः । य एव देवानाम् (अर्धमासः = शुक्लपक्षः)
आसीत्सो ऽयवा न हि तमसुरा अयुवत । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

अयाद् (यजुः० ३८ । १०) विश्वान्देवानयाडिहेति सर्वान्देवानयाक्षी-
दिहेवैतदाह । श० १४ । २ । २ । १६ ॥

अयास्यः ते (असुराः) ऽअब्रुवन्नयं वा आस्य इति । यद्ब्रुवन्नयं
वा आस्य इति तस्मादयमास्यः । अयमास्यो ह वै नामैषः ।
तमयास्य इति परोक्षमाचक्षते । जै० उ० २ । ८ । ७ ॥

„ स एष एवाऽयास्यः (= अन्नाद्यम्) । आस्ये धीयते । तस्मा-
दयास्यः । यद्वेवा (ऽयम्) आस्ये रमते तस्माद्वेवाऽया-
स्यः । जै० उ० २ । ११ । ८ ॥

„ क नु सोऽभूद्यो न इत्थमसक्तेत्ययमास्ये ऽन्तरिति सोऽया-
स्यः । श० १४ । ४ । १ । ९ ॥

„ स प्राणो वा अयास्यः । जै० उ० २ । ८ । ८ ॥

अयास्य आङ्गिरसः “आङ्गिरसः” शब्दं पश्यत ।

अरणी देवरथो वा अरणी । कौ० २ । ६ ॥

अरण्येऽनूच्यः (पुरोडाशः) वाग्वाऽ अरण्येऽनूच्यः । श० ९ । ३ ।
२ । ४ ॥

अरलिः बाहुर्वा ऽअरलिः । श० ६ । ३ । १ । ३३ ॥ ६ । ७ । १ । १४ ॥
१४ । १ । २ । ६ ॥

अरुः अरुर्ह वै नामासुररक्षसमास तं देवा अस्याः (पृथिव्याः)
अपान्त । श० १ । २ । ४ । १७ ॥

„ भ्रातृव्यो वा अरुः । तै० ३ । २ । ९ । ४ ॥

अरावाणः अरावाणो वा एते येऽनृतमभिशांसन्ति । तां० ६ । १० । ७ ॥

[अर्कः

(४२)

अरिष्टनेमिः (यजुः १५।८) “तार्क्ष्यः” शब्दं पश्यत ।

अरिष्टनेमिः पृतनाज आशुः (ऋ० १०।१७८।१॥) एष (तार्क्ष्यः = वायुः) वा अरिष्टनेमिः पृतनाजिदाशुः । ऐ० ४।२० ॥

अरिष्टम् (साम) अनेन (अरिष्टेन साम्ना) नारिषामेति तदरिष्ट-
स्यारिष्टत्वम् । तां० १२।५।२३ ॥

” देवाश्च वा असुराश्चास्पद्दन्तं यं देवानामघ्नन्न
स समभवद्यमसुराणां ससो ऽभवत्ते देवा-
स्तपो ऽतप्यन्त त एतदरिष्टमपश्यंस्ततो यं
देवानामघ्नत् (अघ्नन् ?) ससो ऽभवद्यमसुरा-
णान्न स समभवत् । तां० १२।५।२३ ॥

अरीः प्रजा वा अरीः । श० ३।९।४।२१ ॥

अरुणदूर्वाः एष वै सोमस्य न्यङ्गी यदरुणदूर्वाः । श० ४।५।१०।५ ॥

अरुषः अग्निर्वा अरुषः । तै० ३।९।४।१ ॥

अर्कः अन्नं वै देवा अर्क इति वदन्ति । तां० १५।३।२३ ॥

” अर्को वै देवानामन्नम् । श० १२।८।१।२ ॥ तै० १।१।
८।५ ॥

” अन्नं वा अर्कः । तां० ५।१।९ ॥ १४।११।९ ॥ १५।३।३४ ॥
गो० उ० ४।२ ॥

” अन्नमर्कः । श० ९।१।१।४ ॥

” आदित्यो वाऽअर्कः । श० १०।६।२।६ ॥

” अश्चक्षुस्तदसौ सूर्यः । तै० १।१।७।२ ॥

” स एष एवार्को य एष (सूर्यः) तपति । श० १०।४।१।२२ ॥

” अयं वा ऽअग्निर्कः । श० ८।६।२।१९ ॥ ९।४।२।१८ ॥

” अग्निर्वाऽअर्कः । श० २।५।१।४ ॥ १०।६।२।५ ॥

” स एषोऽग्निर्को यत्पुरुषः । श० १०।३।४।५ ॥

” आपो वाऽअर्कः । श० १०।६।५।२ ॥

” प्राणो वाऽ अर्कः । श० १०।४।१।२३ ॥ १०।६।२।७ ॥

” प्राणापानौ वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३।९।
२१।३ ॥

” ओजो बलं वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३।९।
२१।३ ॥

” वेत्थार्कमिति पुरुषं हैष तदुवाच । वेत्थार्कपर्णेऽइति कर्णौ

हैव तदुवाच वेत्थार्कपुष्पे ऽइत्यक्षिणी हैव तदुवाच वेत्थार्ककोश्याविति नासिके हैव तदुवाच वेत्थार्कसमुद्रावित्यो-
ष्ठौ हैव तदुवाच वेत्थार्कधाना इति दन्तानहैव तदुवाच
वेत्थार्काष्ट्रीलामिति जिह्वाऽऽ हैव तदुवाच वेत्थार्कमूलमि-
त्यन्नऽऽ हैव तदुवाच । श० १० । ३ । ४ । ५ ॥

अर्कः (सामविशेषः) दीर्घतमसोऽर्को भवति । तां० १५ । ३ । ३४ ॥
अर्कपुष्पम् (साम) अन्नं वै देवा अर्क इति वदन्ति रसमस्य पुष्प-
मिति सरसमेवान्नाद्यमवरुन्धेऽर्कपुष्पेण तुऽदुवानः ।
तां० १५ । ३ । २३ ॥

अर्काश्वमेधौ ओजो बलं वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै०
३ । ९ । २१ । ३ ॥

„ प्राणापानौ वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै०
३ । ९ । २१ । ३ ॥

अर्क्यम् अर्चते वै मे कमभूदिति तदेवाकर्क्यस्यार्कत्वम् । श० १० । ६ । १ । १ ॥

„ स एष एवार्कः । यमेतमत्राग्निमाहरन्ति तस्यैतदन्नं क्यं यो-
ऽयमग्निश्चितस्तदकर्क्यं यजुष्टः । श० १० । ४ । १ । ४ ॥

„ तस्य (अर्कस्य = सूर्यस्य) एतदन्नं क्यमेष चन्द्रमास्तदकर्क्यं
यजुष्टः । श० १० । ४ । १ । २२ ॥

अर्जुनः अर्जुनो ह वै नामेन्द्रः । (पाण्डवः अर्जुनोऽपि इन्द्रपुत्रत्वेन प्र-
सिद्धः—कुम्भघोणस्थमध्वविलासपुस्तकालयाधिपतिना प्र-
काशिते महाभारत आदिपर्वणि अ० ६३ श्लो० ६५) श०
२ । १ । २ । ११ ॥

„ अर्जुनो ह वै नामेन्द्रो यदस्य गुह्यं नाम । श० ५ । ४ । ३ । ७ ॥
अर्जुनानि (पुष्पाणि) (सोमस्य ह्वियमाणस्य) यानि पुष्पाण्यवा-
शीयन्त तान्यर्जुनानि । तां० ८ । ४ । १ ॥

„ „ यदि सोमं न विन्देयुः पूतीकानभिषुणुयुर्य-
दि न पूतीकानर्जुनानि । तां० ९ । ५ । ३ ॥

„ „ इन्द्रो वृत्रमहऽऽ स्तस्य यो नस्तः सोमः सम-
धावत्तानि बभ्रूतूलान्यर्जुनानि । तां० ९ । ५ । ७ ॥

अर्णवः (यजु० १३ । ५३) प्राणो वा ऽअर्णवः । श० ७ । ५ । २ । ५१ ॥

अर्द्धमासाः पवित्रं पवयिष्यन्त्सह्रस्वान्त्सहीयानरुणोऽरुणरजा इति ।
पते ऽनुवाका अर्द्धमासानाञ्च, मासानाञ्च नामधेयानि ।
तै० ३ । १० । १० । ३ ॥

„ किं नु तेऽस्मासु (अर्द्धमासेषु) इति । इमानि क्षुद्राणि
पर्वाणि । जै० उ० ३ । २३ । ४ ॥

„ देवाश्च वाऽअसुराश्च । उभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितु-
र्दायमुपेयुरेतावेवार्द्धमासौ (= शुक्लकृष्णपक्षौ) । श० १ ।
७ । २ । २२ ॥

अर्द्धर्चः प्रतिष्ठा वा अर्द्धर्चः । गो० उ० ५ । १० ॥

अर्बुदम् वाग्वा अर्बुदम् । तै० ३ । ८ । १६ । ३ ॥

अर्य्यमा यज्ञो वा अर्य्यमा । तै० २ । ३ । ५ । ४ ॥

„ अर्य्यमिति तमाहुर्यो ददाति । तै० १ । १ । २ । ४ ॥

„ ततो वै स (अर्य्यमा) पशुमानभवत् । तै० ३ । १ । ४ । ९ ॥

„ एषा वा ऊर्ध्वा बृहस्पतेर्दिकदेश उपरिष्ठादर्य्यम्नः पन्थाः ।
श० ५ । ५ । १ । १२ ॥

अर्वा (= अश्वः) यच्छ्वयदरुरासीत् । तस्मादर्वा नाम । तै० ३ ।
९ । २१ । २ ॥

„ (हेऽश्व त्वं) अर्वासि । तां० १ । ७ । १ ॥ श० १३ । १ । ६ ।
१ ॥ तै० ३ । ८ । ९ । २ ॥

„ अग्निर्वा अर्वा । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥

„ अर्वा (भूत्वा) असुरान् (अवहत्) । श० १० । ६ । ४ । १ ॥

„ पुमाँसो ऽर्वन्तः । श० ३ । ३ । ४ । ७ ॥

अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः इदं तच्छि-
रः । श० १४ । ५ । २ । ५ ॥

अर्वाग्वसुः (= पर्जन्यः, यजु० १५ । १२) अथ यदर्वाग्वसुरित्याहातो (पर्ज-
न्यात्) ह्यर्वाग्वसु वृष्टिरन्नं प्रजाभ्यः प्रदीयते । श० ८ ।
६ । १ । २० ॥

„ अर्वाग्वसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा पराग्वसुरसुराणाम् । गो०
उ० १ । १ ॥

अर्वावसुः अर्वावसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा । कौ० ६ । १३ ॥

„ अर्वावसुर्वै नाम देवानाँ होता । श० १ । ५ । १ । २४ ॥

- अलम्भः (पारिजानतः = परिजानतः पुत्रः) तम् (ऋषयः) अब्रुवन्
कोन्वयं कस्मा अलमित्यलन्नु वै महामिति (सामाब्रवीत्)
तदलम्भस्यालम्भत्वम् । तां० १३ । १० । ८ ॥
- अवकाशाः प्राणा वाऽअवकाशाः । कौ० ८ । ६ ॥ श० १४ । १ । ४ । १ ॥
- „ प्राणा अवकाशाः । श० १४ । २ । २ । ५२ ॥
- अवकाः अथ (आपः) यदभ्रुवन्नवाङ् नः कमगादिति तां अवाक्का
अभवन्नवाक्का ह वै ता अवका इत्याचक्षते परोऽक्षम् ।
श० ९ । १ । २ । २२ ॥
- „ आपो वा अवकाः । श० ७ । ५ । १ । ११ ॥ ८ । ३ । २ ।
५, ६ ॥
- „ तस्मादवका अपामनुपजीवनीयतमा यातयाम्न्यो हि ताः ।
श० ९ । १ । २ । २४ ॥
- अवदानम् स येन देवेभ्य ऋणं जायते । तदेनांस्तदवदयते यद्यज-
तेऽथ यदग्नौ जुहोति तदेनांस्तदवदयते तस्माद्यत्कि-
ञ्चाग्नौ जुहति तदवदानं नाम । श० १ । ७ । २ । ६ ॥
- अवभृथः तद्यदपोऽभ्यवहरन्ति तस्मादवभृथः । श० ४ । ४ । ५ । १ ॥
- „ यो ह वाऽअयमपामावर्तः स हावभृथः स हैष वरुणस्य पुत्रो
वा भ्राता वा । श० १२ । ९ । २ । ४ ॥
- „ वरुण्यो वाऽअवभृथः । श० ४ । ४ । ५ । १० ॥
- „ समुद्रोऽवभृथः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥
- अवरं सधस्थम् (यजु० १७ । ७५) अन्तरिक्षं वाऽअवरं सधस्थम् ।
श० ९ । २ । ३ । ३९ ॥
- अवरोधाः (न्यग्रोधस्य) तेषां चमसानां रसोऽवाङ्ङैतेऽवरोधा अभ-
वन्नथ य ऊर्ध्वस्तानि फलानि । ऐ० ७ । ३१ ॥
- अवसानम् प्रतिष्ठा वा अवसानम् । कौ० ११ । ५ ॥ गो० ३० । ३ । ११ ।
- अवस्युः (यजुः ३८ । ७) अयं वाऽअवस्युरशिभिदो योऽयं (वातः)
पचते । श० १४ । २ । २ । ५ ॥
- अवस्यूर्दुवस्वान् (यजु० १८ । ४१) अयं वै लोकोऽवस्यूर्दुवस्वान् । श०
९ । ४ । २ । ७ ॥
- अवाङ् प्राणः किं छन्दः । का देवता योऽयमवाङ् प्राण इति यज्ञाय
ज्ञियं छन्दो वैदवानरो देवता । श० १० । ३ । २ । ८ ॥
- अवान्तरदिशः सर्वत इव हीमा अवान्तरदिशः । श० २ । ६ । १ । ११ ॥

- वावः इयं (पृथिवी) वाऽ अविरियं^{११} हीमाः सर्वाः प्रजा अवति ।
श० ६ । १ । २ । ३३ ॥
- „ (प्रजापतिः) श्रोत्रादविम् (निरमिमीत) । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥
- „ नालिकाभ्यामेवास्य वीर्यमस्रवत् । सोऽविः पशुरभ्वन्मेषः ।
श० १२ । ७ । १ । ३ ॥
- „ वारुणा च हि त्वाष्ट्री चाविः । श० ७ । ५ । २ । २० ॥
- „ तस्मादेताः (अजावयः) त्रिः संवत्सरस्य विजायमाना द्वौ
त्रीनिति जनयन्ति । श० ४ । ५ । ५ । ६ ॥
- „ अन्तर्यामपात्रमेवान्ववयः प्रजायन्ते । श० ४ । ५ । ५ । ३ ॥
- अव्ययम् सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च स-
र्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् । गो० पू० १ । २६ ॥
- अशनिः मरुतोऽङ्गिरग्निमतमयन् । तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दन्
साऽशनिरभवत् । तै० १ । १ । ३ । १२ ॥
- „ विद्युद्वाऽअशनिः । श० ६ । १ । ३ । १४ ॥
- „ यदशनिरिन्द्रस्तेन । कौ० ६ । ९ ॥
- अशस्तिः पाप्मा वाऽ अशस्तिः । श० ६ । ३ । २ । ७ ॥
- अशिमिदः (यजु० ३८ । ७) अयं वाऽ अवस्युरशिभिदो योऽयं (वातः)
पवते । श० १४ । २ । २ । ५ ॥
- अशीतिः अन्नमशीतिः । श० ८ । ५ । २ । १७ ॥
- „ अन्नमशीतयः । श० ९ । १ । १ । २२ ॥
- अश्मा अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सोऽश्मा पृश्निरभवदश्रुर्ह वै तमश्मे-
त्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ६ । १ । २ । ३ ॥
- „ शर्कराया अश्मानम् (अखृजत) तस्माच्छर्कराश्मैवान्ततो
भवति । श० ६ । १ । ३ । ५ ॥
- „ स्थिरो वाऽ अश्मा । श० ९ । १ । २ । ५ ॥
- अश्मा पृश्निः अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सोऽश्मा पृश्निरभवदश्रुर्ह वै
तमश्मेत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ६ । १ । २ । ३ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्योऽश्मा पृश्निः । श० ९ । २ । ३ । १४ ॥
- अथः प्रजापतेरक्ष्यश्वयत् । तत्परापतत्ततोऽश्वः समभवद्यदश्वयत्तद-
श्वस्याश्वत्वम् । श० १३ । ३ । १ । १ ॥

- अश्वः प्रजापतेरक्ष्यश्वयत् । तत्परापतत् तदश्वोऽभवत् तदश्वस्याश्वत्वम् । तै० १ । १ । ५ । ४ ॥
- ॥ प्रजापतेर्वर्षा अक्ष्यश्वयत्तत्परापतत्तदश्वोऽभवत्तदश्वस्याश्वत्वं तद्देवा अश्वमेधेन प्रत्यद्भुः । तां० २१ । ४ । २ ॥
- ॥ (प्रजापतिः) चक्षुषा ऽश्वम् (निरभिमीत) । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥
- ॥ बरुणो ह वै सोमस्य राज्ञोऽमीवाक्षि प्रतिपिपेष तदश्वयत्ततोऽश्वः समभवत्तद्यच्छ्वयथात्समभवत्तस्मादश्वो नाम । श० ४ । २ । १ । ११ ॥
- ॥ तान् (असुरान्) अश्वा भूत्वा (देवाः) पद्भिरपाघ्नत यदश्वान् भूत्वा पद्भिरपाघ्नत तदश्वानामश्वत्वमश्नुते यद्यत्कामयते य एवं वेद । ऐ० ५ । १ ॥
- ॥ अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सोऽश्रुमवदश्रुर्ह वै तमश्व इत्याचक्षते परोऽश्वम् । श० ६ । १ । १ । ११ ॥
- ॥ यद्वै तदश्रु संक्षरितमासीदेष सोऽश्वः । श० ६ । ३ । १ । २८ ॥
- ॥ अप्सुजा उ वाऽअश्वः । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥
- ॥ अप्सुयोनिर्वा अश्वः । तै० ३ । ८ । ४ । ३ ॥ ३ । ८ । १९ । २ ॥ ३ । ८ । २० । ४ ॥
- ॥ अद्भ्यो ह वाऽअग्नेऽश्वः सम्बभूव सोऽद्भ्यः सम्भवन्नसर्वः समभवदसर्वो हि वै समभवत्तस्मान्न सर्वैः पद्भिः प्रतितिष्ठत्येकैकमेव पादमुदच्य तिष्ठति । श० ५ । १ । ४ । ५ ॥
- ॥ अश्वोऽस्यत्योसि मयोसि हयोसि वाज्यसि सप्तिरस्यर्वांसि वृषांसि । तां० १ । ७ । १ ॥
- ॥ (हे ऽश्व त्वं) अर्वांसि । तां० १ । ७ । १ ॥ श० १३ । १ । ६ । १ ॥ तै० ३ । ८ । ९ । २ ॥
- ॥ अत्योऽसीत्याह । तस्मादश्वः सव्वान् पशूनत्येति । तै० ३ । ८ । ९ । १ ॥
- ॥ तस्मादश्वः सर्वेषां पशूनां श्रेष्ठ्यं गच्छति । तै० ३ । ८ । ९ । १ ॥
- ॥ तस्मादश्वः पशूनां जविष्ठः । ऐ० ५ । १ ॥
- ॥ आशुः सप्तिरित्याह । अश्व एव जवं दधाति । तस्मात्पुराशुरश्वो ऽजायत । तै० ३ । ८ । १३ । २ ॥

[अश्वः

(४८)

- अश्वः अश्वः पशूनां त्विषिमान् हरस्वितमः । तै० ३ । ८ । ७ । ३ ॥
,, अश्वः पशूनामाशुः सारसारितमः । तै० ३ । ८ । ७ । २ ॥
,, तस्मादश्वः पशूनामाशिष्ठः । श० १३ । १ । २ । ७ ॥
,, अश्वः पशूनां यशस्वितमः । श० १३ । १ । २ । ८ ॥ तै० ३ ।
८ । ७ । २ ॥
,, तस्मादु हैतदश्वः पशूनां भगितमः । श० ६ । ३ । ३ । १३ ॥
,, परमोऽश्वः पशूनाम् । श० १३ । ३ । ३ । १ ॥
,, अन्तो वा अश्वः पशूनाम् । तां० २१ । ४ । ६ ॥
,, अश्वः पशूनामपचिततमः । तै० ३ । ८ । ७ । २ ॥
,, तस्मादश्वः पशूनामोजस्वितमः । श० १३ । १ । २ । ६ ॥
,, अश्वः पशूनामोजिष्ठो बलिष्ठः । तै० ३ । ८ । ७ । १ ॥
,, तस्मादश्वः पशूनां वीर्यवत्तमः । श० १३ । १ । २ । ५ ॥
,, अश्वः पशूनामघ्नो वीर्यावत्तमः । तै० ३ । ८ । ७ । १ ॥
,, वीर्यं वा अश्वः । श० २ । १ । ४ । २३, २४ ॥
,, क्षत्रं वा ऽअश्वः । श० ६ । ४ । ४ । १२ ॥
,, क्षत्रं वाऽ अश्वो विडितरे पशवः । श० १३ । २ । २ । १५ ॥
,, यजमानो वा अश्वः । तै० ३ । ९ । १७ । ४, ५ ॥
,, वज्रो वाऽ अश्वः । श० ४ । ३ । ४ । २७ ॥ ६ । ३ । ३ । १२ ॥
,, वज्रोऽश्वः । श० १३ । १ । २ । ९ ॥
,, वज्री वा एषः । यदश्वः । तै० १ । १ । ५ । ५ ॥
,, वज्री वा अश्वः प्राजापत्यः । तै० ३ । ८ । ४ । २ ॥
,, इन्द्रो वा अश्वः । कौ० १५ । ४ ॥
,, असौ वा आदित्योऽश्वः । तै० ३ । ९ । २३ । २ ॥
,, असौ वाऽ आदित्य एषो (शुक्लः) ऽश्वः । श० ७ । ३ । २ । १० ॥
,, तस्मा (आयास्यायोद्गात्रे) अमुमादित्यमश्वं श्वेतं कृत्वा
(आदित्याः) दक्षिणामानयन् । तां० १६ । १२ । ४ ॥
,, तेऽङ्गिरस आदित्येभ्य अमुमादित्यमश्वं श्वेतं भूतं दक्षिणा-
मनयन् । तै० ३ । ९ । २१ । १ ॥
,, ते (आदित्याः) अश्वं श्वेतं दक्षिणां निन्युरेतमेव य एष (सूर्यः)
तपति । कौ० ३० । ६ ॥
,, तस्य (सौर्यस्य हविषः) अश्वः श्वेतो दक्षिणा । तदेतस्य रूपं

क्रियते य एष (सूर्यः) तपति यद्यश्वः श्वेतं न विन्देदपि गौरेव श्वेतः स्यात् । श० २ । ६ । ३ । ९ ॥

अश्वः अथ योऽसौ (सूर्यः) तपतीः ३ एषोऽश्वः श्वेतो रूपं कृत्वाऽश्वामिधान्यपिहितेनात्मना प्रतिचक्राम । ऐ० ६ । ३५ ॥

„ अग्निर्वा अश्वः श्वेतः । श० ३ । ६ । २ । ५ ॥

„ अग्निरेष यदश्वः । श० ६ । ३ । ३ । २२ ॥

„ सोऽग्निरश्वो भूत्वा प्रथमः प्रजिगाय । गो० उ० ४ । ११ ॥

„ अश्वो न देववाहनः (ऋ० ३ । २७ । १४) इति । अश्वो ह वाऽएष (अग्निः) भूत्वा देवेभ्यो यज्ञं वहति । श० १ । ४ । १ । ३० ॥

„ यस्मात्प्रजापतिरालब्धोऽश्वोऽभवत् । तस्मादश्वो नाम । तै० ३ । ९ । २१ । ४ ॥ ३ । ९ । २२ । १, २ ॥

„ प्राजापत्यो वा अश्वः । श० ६ । ५ । ३ । ९ ॥ तै० ३ । ८ । २२ । ३ ॥ ३ । ९ । १६ । १ ॥

„ प्राजापत्योऽश्वः । श० १३ । १ । १ । १ ॥ तै० १ । १ । ५ । ५ ॥ ३ । २ । २ । १ ॥

„ सौर्यो वा अश्वः । गो० उ० ३ । १९ ॥

„ वारुणो हि देवतयाऽश्वः । तै० १ । ७ । २ । ६ ॥

„ वारुणो वा अश्वः । तै० २ । २ । ५ । ३ ॥ ३ । ८ । २० । ३ ॥ ३ । ९ । १६ । १ ॥

„ वारुणो ह्यश्वः । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥

„ वैश्वदेवो वा अश्वः । श० १३ । २ । ५ । ४ ॥ तै० ३ । ९ । २ । ४ ॥ ३ । ९ । ११ । १ ॥

„ अश्वे वै सर्वा देवता अन्वायन्ताः । तै० ३ । ८ । ७ । ३ ॥

„ अश्वश्चतुस्त्रिंशः । तै० २ । ७ । १ । ३ ॥

„ अश्वश्चतुस्त्रिंशो दक्षिणानाम् । तां० १७ । ११ । ३ ॥

„ अश्वो (भूत्वा) मनुष्यान् (अवहत्) । श० १० । ६ । ४ । १ ॥

„ अपूतो वाऽएषोऽमेधो यदश्वः । श० १३ । १ । १ । १ ॥

„ तस्मादश्वस्त्रिभिः (पद्भिः) तिष्ठंस्तिष्ठति । श० १३ । २ । ७ । ६ ॥

„ तस्मादश्वः शुक्र उदुष्टमुख इवाथो ह दुरक्षो भावुकः । श० ७ । ३ । २ । १४ ॥

अश्वः रश्मिना वा अश्वो यत ईश्वरो वा अश्वोऽयतो-ऽधृतोऽप्रति-
ष्ठितः परां परावतं गन्तोः । श० १३ । ३ । ३ । ५ ॥

„ ईश्वरो वा अश्वः प्रमुक्तः परां परावतं गन्तोः । तै० ३ । ८ ।
९ । ३ ॥ ३ । ८ । १२ । २ ॥ ३ । ९ । १३ । २ ॥

अश्वतरी अश्वतरीरथेनाग्निराजिमधावत्तासां प्राजमानो योनिम-
कूस्थत्तस्मात्ता न विजायन्ते । ऐ० ४ । ९ ॥

अश्वत्थः प्रजापतिर्देवेभ्यो निलायत । अश्वो रूपं कृत्वा । सोऽश्वत्थे
संवत्सरमतिष्ठत् । तदश्वत्थस्याश्वत्थत्वम् । तै० ३ । ८ ।
१२ । २ ॥

„ अग्निर्देवेभ्यो निलायत । अश्वो रूपं कृत्वा । सोऽश्वत्थे
संवत्सरमतिष्ठत् । तदश्वत्थस्याश्वत्थत्वम् । तै० १ । १ । ३ । ९ ॥

„ त्वच एवास्यापचितिरस्रवत्सोऽश्वत्थो वनस्पतिरभवत् ।
श० १२ । ७ । १ । ९ ॥

„ तेजसो या एष वनस्पतिरजायत यदश्वत्थः । ऐ० ७ । ३२ ॥

„ साम्राज्यं वा एतद्वनस्पतीनाम् (यदश्वत्थः) । ऐ० ७ ।
३२ ॥ ८ । १६ ॥

„ आश्वत्थं (पात्रं) भवति । तेन वैश्योऽभिषिञ्चति स
यदेवाद्दोऽश्वत्थे तिष्ठत इन्द्रो मरुत उपामन्त्रयत । श० ५ ।
३ । ५ । १४ ॥

„ आश्वत्थेन (पात्रेण) वैश्यः (अभिषिञ्चति) तै० १ । ७ ।
८ । ७ ॥

अश्वमेधः ततोऽश्वः समभवद्यदश्वत्तन्मेध्यमभूदिति तदेवाश्वमेध-

„ स्याश्वमेधत्वम् । श० १० । ६ । ५ । ७ ॥

„ असावादित्योऽश्वमेधः । श० ९ । ४ । २ । १८ ॥

„ असौ वा ऽसादित्य एकविंशः सोऽश्वमेधः । श० १३ ।
५ । १ । ५ ॥

„ एष वाऽअश्वमेधो य एष (सूर्यः) तपति । श० १० । ६ ।
५ । ८ ॥

„ एष एवाश्वमेधो यञ्चन्द्रमाः । श० ११ । २ । ५ । १ ॥

„ राष्ट्रमश्वमेधः । श० १३ । २ । २ । १६ ॥

- अश्वमेधः राष्ट्रं वा अश्वमेधः । श० १३ । १ । ६ । ३ ॥ तै० ३ । ८ । ९ । ४ ॥ ३ । ९ । ४ । ५ ॥
- ” श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः । श० १३ । २ । ९ । २ ॥ तै० ३ । ९ । ७ । १
- ” यजमानो वाऽअश्वमेधः । श० १३ । २ । २ । १ ॥
- ” राजा वाऽएष यज्ञानां यदश्वमेधः । श० १३ । २ । २ । १ ॥
- ” वृषभ एष यज्ञानां यदश्वमेधः । श० १३ । १ । २ । २ ॥
- ” ऋषभ एष यज्ञानाम् । यदश्वमेधः । तै० ३ । ८ । ३ । ३ ।
- ” अश्वमेधे सर्वा देवता अन्वायत्ताः । श० १३ । १ । २ । ९ ॥
- ” प्राणापानौ वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३ । ९ । २१ । ३ ॥
- ” ओजो बलं वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३ । ९ । २१ । ३ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वै ब्रह्मवर्चसी नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । ३ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वै तेजस्वी नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । ३ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वा अतिव्याधी नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । ३ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वा ऊर्जस्वान्नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । १ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वै प्रतिष्ठितो नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । २ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वै ह्रूतो नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । ३ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वै दीर्घो नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । ३ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वै विधृतो नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । २ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वै व्यावृत्तो नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । २ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वै पयस्वान्नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । १ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वै विभूर्नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । १ ॥
- ” एष (अश्वमेधः) वै प्रभूर्नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । १ ॥
- ” प्रजापतिश्च सर्व्वङ्करोति योऽश्वमेधेन यजते । तां २१ । ४ । २ ॥
- ” तरति सर्व्वं पाप्मानं तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते । श० १३ । ३ । १ । १ ॥

अश्वमेधः योऽश्वमेधेन यजते । देवानामेषायनेनैति । तै० ३ । ९ ।
२२ । ३ ॥

” तेजसा वा एष ब्रह्मवर्चसेन व्यृध्यते । योऽश्वमेधेन यजते ।
तै० ३ । ९ । ५ । १ ॥

” स यो हैवं विद्वानग्निद्वोत्रं च जुहोति दर्शपूर्णमासाभ्यां च
यजते मासि मासि हैवास्याश्वमेधेनेष्टं भवति । श० ११ ।
२ । ५ । ५ ॥

” निरायत्याश्वस्य शिश्रं महिष्युपस्थे निधत्ते वृषा वाजी
रेतोधा रेतो दधात्विति । श० १३ । ५ । २ । २ ॥

अश्वयुजौ (नक्षत्रम्) अश्वयुजोरयुञ्जत । तै० १ । ५ । २ । ९ ॥

” अश्विनोरश्वयुजौ । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥

अश्वस्तोमीयम् अश्वस्य वा आलब्धस्य मेध उदक्रामत् । तदश्वस्तो-
मीयमभवत् । तै० ३ । ९ । १२ । १ ॥

” अश्वो वा अश्वस्तोमीयम् । तै० ३ । ९ । १२ । ३ ।

” मेधोऽश्वस्तोमीयम् । तै० ३ । ९ । १२ । १ ॥

अश्ववालाः यज्ञो ह देवेभ्यो ऽपचक्राम सोऽश्वो भूत्वा पराङ्गाववर्त
तस्य देवा अनुहाय वालानभिपेदुस्तानालुलुपुस्ताना-
लुप्य सार्द्धं संन्यासुस्तत एता ओषधयः समभवन्
यदश्ववालाः । श० ३ । ४ । १ । १७ ॥

अश्विनौ इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनाविमे हीदं सर्वमा-
श्नुवातां पुष्करस्रजावित्यग्निरेवास्यै (पृथिव्यै) पुष्करमा-
दित्योऽमुष्यै (दिवे) । श० ४ । १ । ५ । १६ ॥

” श्रोत्रेअश्विनौ । श० १२ । ९ । १ । १३ ॥

” नासिकेअश्विनौ । श० १२ । ९ । १ । १४ ॥

” तद्यौ ह वाऽहमौ पुरुषाविवाक्ष्योः । एतावेवाश्विनौ । श० ११ ।
९ । १ । १२ ॥

” अश्विनावध्वर्युं । ऐ० १ । १८ ॥ श० १ । १ । २ । १७ ॥ ३ ।
९ । ४ । ३ ॥ तै० ३ । २ । २ । १ ॥ गो० उ० २ । ६ ॥

” अश्विनौ वै देवानां भिषजौ । ऐ० १ । १८ ॥ कौ० १८ । १ ॥
ते० १ । ७ । ३ । ५ ॥ गो० उ० २ । ६ ॥ ५ । १० ॥

” मुख्यौ वाऽअश्विनौ (यज्ञस्य) । श० ४ । १ । ५ । १९ ॥

” इयेताविव ह्यश्विनौ । श० ५ । ५ । ४ । १ ॥

- अश्विनौ सयोनी वाऽअश्विनौ । श० ५ । ३ । १ । ८ ॥
- „ अश्विनाविव रूपेण (भूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥
- „ आश्विनं द्विकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । ३ । १ । ८ ॥
- „ आश्विनो द्विकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ।
- „ वसन्तग्रीष्मावेवाश्विनाभ्याम् (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३४ ॥
- „ अश्विभ्याम्यानाः । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥
- „ अथ यदेनं (अग्निं) द्वाभ्यां बाहुभ्यां द्वाभ्यामरणीभ्यां मन्थन्ति द्वौ वा अश्विनौ तदस्याश्विनं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
- „ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे । अश्विनोर्बाहुभ्याम् । तै० २ । ६ । ५ । २ ॥
- „ गर्दभरथेनाश्विना उदजयताम् । ऐ० ४ । ९ ॥
- „ तदश्विना उदजयतां रासभेन । कौ० १८ । १ ॥
- „ इममेव लोकमाश्विनेन (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३२ ॥
- „ आश्विनमन्वाह तदमुं लोकं (दिवं) आप्नोति । कौ० ११ । २ । १८ । २ ॥
- अषाढा (इष्टका) (देवाः) तां (इष्टकां) उपधायासुरान्तसपत्नान्
भ्रातृव्यानस्मात्सर्व्वस्मादसहन्त यदसहन्त तस्मादषाढा ।
श० ७ । ४ । २ । ३३ ॥
- „ तऽपते सर्वे प्राणा यदषाढा । श० ७ । ४ । २ । ३६ ॥
- „ ग्रीवा अषाढा । श० ७ । ५ । १ । ३५ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वाऽअषाढा । श० ६ । ५ । ३ । १ ॥ ७ । ४ । २ । ३२ ॥ ८ । ५ । ४ । २ ॥
- „ वागषाढा । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥ ७ । ५ । १ । ७ ॥
- „ वाग्वाऽअषाढा श० ७ । ४ । २ । ३४ ॥ ८ । ५ । ४ । १ ॥
- अषाढाः (नक्षत्रम्) यन्नासहन्त । तदषाढाः । तै० १ । ५ । २ । ८ ॥
- „ अपां पूर्वाषाढाः । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥ ३ । १ । २ । ३ ॥
- „ विश्वेषां देवानामुत्तराः (अषाढाः) । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥ ३ । १ । २ । ४ ॥
- अष्ट यदष्टाभिः (ऋग्भिः) अवारुन्धताष्टाभिराशुवत तदष्टानामष्ट-
त्वम् । ऐ० १ । १२ ॥

- अष्टका प्राजापत्यमेतदहयदष्टका । श० ६ । २ । २ । २३ ॥
- „ पर्वैतत्संवत्सरस्य यदष्टका । श० ६ । २ । २ । २४ ॥
- अष्टरात्रः अष्टरात्रेण वै देवाः सर्वमाशुवत । तां २२ । ११ । ६ ॥
- अष्टाचत्वारिंशः (स्तोमः) अन्तो वा अष्टाचत्वारिंशः । तां ३ । १२ । २ ॥
- „ “विवर्तोऽष्टाचत्वारिंशः” शब्दं पश्यत ॥
- अष्टादशः (स्तोमः) पश्य “प्रतूर्तिरष्टादशः ।”
- अष्टादर्शनः संवत्सरस्य वा एषा प्रतिमा । यदष्टादशिनः । द्वादश-
मासाः पञ्चर्त्तवः । संवत्सरोऽष्टादशः । तै० ३ । ९ । १ । १-२ ॥
- असत् मृत्युर्वाऽअसत् । श० १४ । ४ । १ । ३१ ॥
- „ तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो वाव तऽग्नेऽसदासीत् ।
श० । ६ । १ । १ । १ ॥
- „ अथ यदसत्सर्कं सा वाक् सोऽपानः । जै० उ० १ । ५३ । २ ॥
- असन्पांसवः अथ यदेतद्भस्मोद्धृत्य परावपन्त्येष एवासन्पांसवः ।
श० २ । ३ । २ । ३ ॥
- असमरथः (यजुः १५ । १७) पश्य “रथप्रोतः ।”
- असितग्रीवः (यजुः २३ । १३) अग्निर्वाऽअसितग्रीवः । श० १३ । २ ।
७ । २ ॥
- असिः वज्रो वाऽअसिः । श० ३ । ८ । २ । १२ ॥
- असुः तस्या एतस्यै वाचः प्राणा एवाऽसुः । एषु हीदिं सर्वमसूतेति ।
जै० उ० १ । ४० । ७ ॥
- „ प्राणो वाऽअसुः । श० ६ । ६ । २ । ६ ॥
- असुरः तेनासुनासुरानसृजत । तदसुराणामसुरत्वम् । तै० २ । ३ ।
८ । २ ॥
- „ त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवः । तै० ३ । ११ । २ । १ ॥
- „ असितो धान्वो राजेत्याह तस्यासुरा विशस्तऽइमऽआसत
ऽइति कुसीदिन उपसमेता भवन्ति तानुपदिशति मायावेदः
सोऽयमिति । श० १३ । ४ । ३ । ११ ॥
- „ दिवा देवानसृजत नक्तमसुरान् यद्दिवा देवानसृजत तद्दे-
वानां देवत्वं यदसूर्यं तदसुराणामसुरत्वम् । ष० ४ । १ ॥
- „ वाश्च वाऽअसुराश्च । उभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितुर्दा-
यगुभ्युरेतावेवार्धमासौ (= शुक्लकृष्णपक्षौ) । श० १ । ७ ।
२ । २२ ॥

- असुरः देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्द्वयाः पुत्रा आसन् । तां० १८ ।
१ । २ ॥
- ” तेऽसुरा भूयाश्चसो बर्लीयाश्चस (प्रजापतेः पुत्राः) आसन् ।
तां० १८ । १ । २ ॥
- ” कनीयस्विन इव वै तर्हि (युद्धसमये) देवा आसन् भूय-
स्विनोऽसुराः । तां० १२ । १३ । ३१ ॥
- ” कनीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः । श० १४ । ४ । १ । १ ॥
- ” (असुराः) स्वेधेवास्येषु जुह्वतश्चेरुः । श० ११ । १ । ८ । १ ॥
- ” मायेत्यसुराः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥
- ” असुरमायया । कौ० २३ । ४ ॥
- ” आसुरी माया स्वधया कृतासीति प्राणो वाऽअसुस्तस्यैषा
माया स्वधया कृता । श० ६ । ६ । २ । ६ ।
- ” (प्रजापतिः) तेभ्यः (असुरेभ्यः) तमश्च मायां च प्रददौ ।
श० । २ । ४ । २ । ५ ॥
- ” अहर्वै देवा अश्रयन्त रात्रीमसुराः । ऐ० ४ । ५ ॥
- ” अहर्वै देवा आश्रयन्त रात्रीमसुराः । गो० उ० ५ । १ ॥
- ” (असुराः प्रजापतिमब्रुवन्) दयध्वमिति न आत्थेति ।
श० १४ । ८ । २ । ४ ॥
- ” योऽवक्षीयते तं (अर्धमासं) असुराः उपायन् । श० १ । ७ ।
२ । २२ ॥
- ” असुरा वा एषु लोकेष्वसिस्तान्देवा ऊर्द्धसन्ननेन (साम्ना)
एभ्यो लोकेभ्यः प्राणुदन्त । तां० ९ । २ । ११ ॥
- ” तन्नोऽसुरा एषु लोकेषु पुरश्चक्रिरेऽयस्मयीमेवास्मिंल्लोके
रजतामन्तरिक्षे हरिणीं (=सुवर्णमयीं) दिवि । श० ३ ।
४ । ४ । ३ ॥
- ” अर्वा (भूत्वा) असुरान् (अवहत्) । श० १० । ६ । ४ । १ ॥
- असुरम् मनो वा असुरम् । तद्दद्यसुषु रमते । जै० उ० ३ । ३५ । ३ ॥
- अस्तम् गृहा वा अस्तम् । श० २ । ५ । २ । २९ ।
- अस्थि न ह्यर्वास्थार्तिकचन वर्षीयोऽस्थ्यस्ति । श० ८ । ७ । २ । १७ ॥
- ” षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतानि पुरुषस्यास्थीनि । श० १० ।
५ । ४ । १२ ॥

[अहुरः

(५६)

अस्थि सप्त च ह वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहानि च रात्र-
यश्चेत्येतावन्त एव पुरुषस्यास्थीनि च मज्जानश्चेत्यत्र तत्स-
मम् । गो० पू० ५ । ५ ॥

„ अस्थि वा पतत् । यत्सामिधः । तै० १ । १ । २ । ४ ॥

अस्मयुः अग्निं भरन्तमस्मयुमित्यग्निं भरन्तमस्मत्प्रेषितमित्येतत् ।
श० ६ । ३ । २ । ३ ॥

अस्त्रीवयः (यजु० १४ । १८) अन्नमस्त्रीवयस्तद्यदेषु लोकेष्वन्नं तद-
स्त्रीवयोऽथो यदेभ्यो लोकेभ्योऽन्नं च वति तदस्त्रीवयः ।
श० ८ । ३ । ३ । ५ ॥

अहः यजमानदेवत्यं वा अहः । भ्रातृव्यदेवत्या रात्रिः । तै० २ । २ ।
६ । ४ ॥

„ ऐन्द्रमहः । तै० १ । १ । ४ । ३ । १ । ५ । ३ । ४ ॥

„ मैत्रं वा अहः । तै० १ । ७ । १० । १ ॥

„ स यदादित्य उदेति । पतामेव तत्सुवर्णां कुशीमनुसमेति ।
तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

„ अहरेव सुवर्णां (कुशी) अभवत् । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

अहल्या (इन्द्र !) अहल्यायै जारेति । श० ३ । ३ । ४ । १८ ॥ ष०
१ । १ ॥ (तैत्तिरीयारण्यके १ । १२ । ४ ॥ लाट्यायनश्रौत-
सूत्रे १ । ३ । १ ॥)

„ अहल्याया ह मैत्रेय्याः (इन्द्रः) जार आस । ष० १ । १ ॥

अहिर्बुध्न्यः एष ह वा अहिर्बुध्न्यो यदाग्निर्गार्हपत्यः । ऐ० ३ । ३६ ॥

„ अग्निर्वा अहिर्बुध्न्यः । कौ० १६ । ७ ॥

अहीनम् सर्वान् लोकानहीनेन (अभिजयति) । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

५ अहीनानि ह वा पतान्यहानि न ह्येषु किञ्चन हीयते । ऐ०
६ । १८ ॥

अहुतादः (देवाः यजुः १७ । १३) अहुतादो हि प्राणाः । श० ९ ।
२ । १ । १४ ॥

„ अथैता (प्रजाः) अहुतादो यद्राजन्यो वैश्यः शूद्रः । ऐ०
७ । १९ ॥

अहुरः अहुर इदं ते परिदामि । मं० १ । ६ । २१ ॥

- अहेडमानः (यजु० १८।४९) अहेडमानो वरुणेह बोधीत्यक्रुध्यन्नो वरु-
णेह बोधीत्येतत् । श० ९ । ४ । २ । १७ ॥
- अहोरात्रे स (प्रजापतिः) एतमतिरात्रमपश्यत्तमाहरत्तेन!होरात्रे
प्राजनयत् । तां० ४ । १ । १४ ॥
- ” अहोरात्रे वा अश्वस्य मेध्यस्य लोमनी । तै० ३ । ९ ।
२३ । १ ॥
- ” एते ह वै संवत्सरस्य चक्रे यदहोरात्रे । ऐ० ५ । ३० ॥
- ” अहोरात्रे परिवेष्टी । श० ११ । २ । ७ । ५ ॥
- ” तमस्मा अक्षितिमहोरात्रे पुनर्दत्तः । जै० उ० ३ । २२ । ८ ॥
- ” मृत्योर्ह वा एतौ प्राजबाहू यदहोरात्रे । कौ० २ । ९ ॥
- ” अहोरात्राणीष्टकाः (संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ४ ॥

(आ)

- आ (=अर्वाक्)—प्रेति (“प्र” इति) वै प्राण एति (‘आ’ इति)
उदानः । श० १ । ४ । १ । ५ ॥
- ” प्रेति पशवो विःतिष्ठन्तऽपति समावसन्ते । श० १ ।
४ । १ । ६ ॥
- ” एत्यपानस्तदसौ (द्यु-) लोकः । जै० उ० २ । ९ । ५ ॥
- ” प्रेति वै रेतः सिचयतऽपति प्रजायत । श० १ । ४ । १ । ६ ॥
- आकाशः—स यस्स आकाश आदित्य एव सः । एतस्मिन् ह्युदिते
सर्वमिदमाकाशते । जै० उ० १ । २५ । २ ॥
- ” स यस्स आकाश इन्द्र एव सः । जै० उ० १ । २८ । २ ॥
१ । ३१ । १ ॥ १ । ३२ । ५ ॥
- आकूपारम् (साम)—आ तू न इन्द्र श्रुमन्तमित्याकूपारम् । तां० ९ ।
२ । १३ ॥
- ” अकूपारो वा एतेन कश्यपो जेमानम्महिमानमगच्छुज्जे-
मानम्महिमानं गच्छत्याकूपारेण तुष्टुवानः । तां० १५ ।
५ । ३० ॥
- ” अकूपाराक्किरस्यासीत्तस्या यथा गोधायास्त्वगेवं त्वगा-
सीत्तामेतेन त्रिः सामेन्द्रः पूत्वा सूर्यत्वचसमकरोत्तद्वाच
सा तर्ह्यकामयत यत्कामा एतेन साम्ना स्तुषते स एभ्यः
कामः ससृष्यते । तां० ९ । २ । १४ ॥

आक्षारम् (साम)—एभ्यो वै लोकेभ्यो रसोऽपाक्रामत्तं प्रजापति-
राक्षारेणाक्षारयद्यदाक्षारयत्तदाक्षारस्याक्षारत्वम् । तां०
११ । ५ । १० ॥

„ तस्माद्यः पुरा पुण्यो भूत्वा पश्चात् पापीयान् स्यादाक्षारं
ब्रह्मसाम कुर्वीतात्मन्येवेन्द्रियं वीर्यं रसमाक्षारयति ।
तां० ११ । ५ । ११ ॥

„ ते देवा असुरान् कामदुघाभ्य आक्षारेणानुदन्त नुदते
भ्रातृव्यं कामदुघाभ्य आक्षारेण तुष्टुवानः । तां० ११ । ५ । १२ ॥

अःखुः आखुस्ते (रुद्रस्य) पशुः । श० २ । ६ । २ । १० ॥ तै०
१ । ६ । १० । २ ॥

आगाः तद्यास्तिस्त्र आगा इम एव ते लोकाः । जै० उ० १ । २० । ७ ॥
आगीतानि अथ यानि त्रीण्यागीतान्यग्निर्वायुरसावादित्य एतान्या-
गीतानि । जै० उ० १ । २० । ८ ॥

आगूः आगूर्वज्रः । ऐ० २ । २८ ॥

आग्नीध्रः आग्नीध्रे ह्यधारयंत यदाग्नीध्रेऽधारयन्त तदाग्नीध्रस्याग्नी-
ध्रत्वम् । ऐ० २ । ३६ ॥

„ द्यावापृथिव्यो वाऽप्य यदाग्नीध्रः । श० १ । ८ । १ । ४१ ॥

आग्नीध्रम् अन्तरिक्षमाग्नीध्रम् । तै० २ । १ । ५ । २ ॥

„ अन्तरिक्षं वाऽआग्नीध्रम् । श० ९ । २ । ३ । १५ ॥

आग्नीधीयः बाहूऽपवास्य (यज्ञस्य) आग्नीधीयश्च मार्जालीयश्च ।
श० ३ । ५ । ३ । ४ ॥

आग्नेयम् (साम) अग्निः सृष्टो नोददीप्यत तं प्रजापतिरेतेन साम्नो-
पाधमत् स उददीप्यत दीप्तिश्च वा एतत्साम ब्रह्मवर्चसञ्च
दीप्तिश्चैवैतेन ब्रह्मवर्चसञ्चावरुन्धे । तां० १३ । ३ । २२ ॥

„ क्षिणिधनमाग्नेयं भवति प्रतिष्ठायै । तां० १३ । ३ । २१ ॥

आग्नेयी (आगा) सा या मन्द्रा साऽऽग्नेयी (आगा) । तथा प्रातस्स-
वनस्योद्नेयम् । जै० उ० १ । ३७ । २ ॥

आग्रयणः यां वाऽअमूं प्रावाणमाददानो वाचं यच्छत्यत्र वै साग्नेऽव-
दत्तद्यत्साग्नेऽवदत्समादाग्रयणो नाम । श० ४ । २ । २ । ६ ॥

„ आत्माग्रयणः । श० ४ । ४ । १ । ५ ॥

„ आत्मा वा आग्रयणः । श० ४ । २ । २ । ५ ॥ ४ । ५ । ४ । ६ ॥

आग्रयणम् अग्रयमिव हीदम् (आग्रयणाख्यं हविः) । श० २ । ४ ।

३ । १३ ॥

” संवत्सराद्वा एतदधिप्रजायते यदाग्रयणम् । गो० उ०
१ । १७ ॥

” आग्रयणेनाग्नाद्यकामो यजेत । कौ० ४ । १२ ॥

” एतेन वै देवाः । यज्ञेनेष्ट्वोभयीनामोषधीनां याश्च मनु-
ष्या उपर्जावन्ति याश्च पशवः कृत्यामिव त्वद्विषमिव
त्वदपजघ्नुस्तत आश्रममनुष्या आलिशन्त पशवः । श०
२ । ४ । ३ । ११ ॥

आग्लागृधः—तं वा एतमाग्लाहृतं संतमाग्लागृध इत्याचक्षते परोक्षेण
परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः । य एष
ब्राह्मणो गायनो वा नर्त्तनो वा भवति तमाग्लागृध इत्या-
चक्षते । गो० पू० २ । २१ ॥

आधारः—शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदाधारः । तै० ३ । ३ । ७ । १० ॥

” प्राण आधारः । तै० ३ । ३ । ७ । ९ ॥

आङ्गिरसः—सोऽयास्य आङ्गिरसः । अङ्गानां हि रसः प्राणो वाऽ
अङ्गानां रसः । श० १४ । ४ । १ । २१ ॥

” आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः । श० १४ । ४ । १ । ९ ॥

” स एष एवाऽऽङ्गिरसः (अग्नाद्यम्) । अतो हीमान्यङ्गानि
रसं लभन्ते । तस्मादाङ्गिरसः । यज्ञेवैषामङ्गानां रसस्त-
स्माद्वेवाऽऽङ्गिरसः । जै० उ० २ । ११ । ९ ॥

आङ्गिरसम् (साम)—चतुर्णिधनमाङ्गिरसं भवति चतुरात्रस्य धृत्यै ।
तां० १२ । ९ । १८ ॥

आङ्गिरसो वेदः—तानङ्गिरस ऋषीनाङ्गिरसांश्चार्षेयानभ्यश्राम्यद्भ्यत-
पत्समतपत्तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यो यान्
मन्त्रानपश्यत्स आङ्गिरसो वेदोऽभवत् । गो० पू०
१ । ८ ॥

आचमनम् तद्विद्वांसः श्रोत्रियाः । अशिष्यन्त आचामन्त्यशित्वा-
चामन्त्येतमेव तदनमनग्नं कुर्वन्तो मन्यन्ते । श० १४ ।
९ । २ । १५ ॥

” तद्यथा भोक्ष्यमाणोऽप एव प्रथममाचामयेदप उपरिष्ठात् ।
गो० पू० २ । ९ ॥

- आचार्य्याः संस्थानाध्यायिन आचार्य्याः पूर्वे बभूवुः श्रवणादेव प्रति-
पद्यन्ते न कारणं पृच्छन्ति । गो० पू० १ । २७ ॥
- आच्छच्छन्दः (यजु० १५ । ४५ ॥) अन्नं वाऽआच्छच्छन्दः । श० ८ ।
५ । २ । ३, ४ ॥
- आजिगम् (साम) आजिगं भवत्याजिजित्यायै । तां० १५ । ९ । ६ ॥
- आजिज्ञामेन्याः (ऋचः) आजिज्ञामेन्याभिर्वै देवा असुरानाज्ञायार्थै-
नानत्यायन् । ऐ० ६ । ३३ ॥
- „ आजिज्ञामेन्याभिर्ह वै देवा असुरानाज्ञायार्थैरानत्या-
यन् । गो० उ० ६ । १३ ॥
- „ अथाजिज्ञामेन्याः शंसतीहेत्थ प्रागपागुदागधरा-
गिति । गो० उ० ६ । १३ ॥
- आज्यदोहानि (सामानि) एतैर्वै सामभिः प्रजापतिरिमान् लोकान्
सर्वान् कामान् दुग्धं यदाच्यादुग्धं तदाच्यादोहाना-
माच्यादोहत्वम् । तां० २१ । २ । ५ ॥
- „ ज्येष्ठसामानि वा एतानि (आज्यदोहानि) श्रेष्ठसा-
मानि प्रजापतिसामानि । तां० २१ । २ । ३ ॥
- आज्यपाः (देवाः) प्रयाजानुयाजा वै देवा आज्यपाः । श० १ । ५ ।
३ । २३ ॥ १ । ९ । १ । १० ॥
- आज्यभागः वायव्य आज्यभागः । तै० ३ । ९ । १७ । ४, ५ ॥
- „ चक्षुषी ह वा एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ । श० १ । ६ ।
३ । ३८ ॥
- „ चक्षुषी वाऽएते यज्ञस्य यदाज्यभागौ । श० ११ । ७ ।
४ । २ ॥ १४ । २ । २ । ५२ ॥
- „ चक्षुर्वा आज्यभागौ । कौ० ३ । ५ ॥
- आज्यम् महिष्यभ्यनक्ति । तेजो वा आज्यम् । तै० ३ । ९ । ४ । ६ ॥
- „ तेजो वा आज्यम् । तां० १२ । १० । १८ ॥
- „ तेज आज्यम् । तै० १ । ६ । ३ । ४ ॥ २ । १ । ५ । ५ ॥ २ ।
७ । १ । ४ ॥
- „ अग्नेर्वा एतद्द्रवम् । यदाज्यम् । तै० ३ । ८ । १४ । २ ॥
- „ देवलोको वा आज्यम् । कौ० १६ । ५ ॥
- „ एतद्वै देवानां प्रियतमं धाम (यजु० १ । ३१) यदाज्यम् ।
श० १ । ३ । २ । १७ ॥

- आज्यम् एतद्वै देवानां प्रियं धाम यदाज्यम् । श० १३ । ३ । ६ । २ ॥
- ” आज्यम् (=विलीनं सर्पिः) वै देवानां सुरभि । ऐ० १ । ३ ॥
- ” एषा हि विश्वेषां देवानां तनूः । यदाज्यम् । तै० ३ । ३ । ४ । ६ ॥
- ” एतद्वै जुष्टं देवानां यदाज्यम् । श० १ । ७ । २ । १० ॥
- ” एतद्वै संवत्सरस्य स्वं पयः यदाज्यम् । श० १ । ५ । ३ । ५ ॥
- ” रस आज्यम् । श० ३ । ७ । १ । १३ ॥
- ” आज्यं ह वाऽअनपोर्द्यावापृथिव्योः प्रत्यक्षं रसः । श० २ । ४ । ३ । १० ॥
- ” पशव आज्यम् । तै० १ । ६ । ३ । ४ ॥
- ” यज्ञो वा आज्यम् । तै० ३ । ३ । ४ । १ ॥
- ” यजमानो वा आज्यम् । तै० ३ । ३ । ४ । ४ ॥
- ” वज्रो ह्याज्यम् । श० १ । ३ । २ । १७ ॥
- ” वज्रो वाऽआज्यं वज्रेणैवैतद्रक्षां सिसि नाष्ट्रा अपहन्ति । श० ७ । ४ । १ । ३४ ॥
- ” वज्रो वा ऽ आज्यं तद्वज्रेणैवैतन्नाष्ट्रा रक्षां स्यवबाधते । श० ३ । ६ । ४ । १५ ॥
- ” वज्रो वा आज्यम् । कौ० १३ । ७ ॥ श० १ । ५ । ३ । ४ ॥ ३ । ३ । १ । ३ ॥ ३ । ४ । ३ । ११ ॥ तै० ३ । ८ । १५ । १ ॥
- ” काम आज्यम् । तै० ३ । १ । ४ । १५ ॥ ३ । १ । ५ । १५ ॥
- ” सत्यमाज्यम् । श० ११ । ३ । १ । १ ॥
- ” प्राणो वा आज्यम् । तै० ३ । ८ । १५ । २-३ ॥
- ” रेतो वाऽआज्यम् । श० १ । ९ । २ । ७ ॥ ३ । ६ । ४ । १५ ॥ ६ । ३ । ३ । १८ ॥
- ” रेत आज्यम् । श० १ । ३ । १ । १८ ॥ १ । ५ । ३ । १६ ॥ तै० ३ । ८ । २ । ३ ॥
- ” छन्दां सिसि वा आज्यम् । तै० ३ । ३ । ५ । ३ ॥
- ” अयातयाम ह्याज्यम् । श० १ । ५ । ३ । २५ ॥
- ” वैष्टुभमयनं भवत्योजस्कामस्याथकारणिधनमाज्येनामुर्मि-
ल्लोक उपतिष्ठते । तां १३ । ४ । १० ॥
- ” ईश्वरो वा एषोऽन्धो भवितोः । यच्चक्षुषाज्यमवेक्षते ।
निमील्यावेक्षेत । तै० ३ । ३ । ५ । २ ॥

- आज्यानि (शस्त्राणि, स्तोत्राणि) आज्येन वै देवाः सर्वान् कामान-
जयन्त्सर्वममृतत्वम् । कौ० १४ । १ ॥
- „ ते वै प्रातराज्यैरेवाजयन्त आयन् यदाज्यैरेवाजयन्त आय-
स्तदाज्यानामाज्यत्वम् । ऐ० २ । ३६ ॥
- „ ते (देवाः) आजिमायन्यदाजिमायन्^३ स्तदाज्यानामा-
ज्यत्वम् । तां० ७ । २ । १ ॥
- „ तद्वा इदं षड्विधमाज्यं तूर्णजिपस्तूर्णशिंसः पुरोरुक्सू-
क्तमुक्थवीर्यं याज्येति । कौ० १४ । १ ॥
- „ आत्मा वै यजमानस्याज्यम् । कौ० १४ । ४ ॥
- „ वागेवाज्यम् । कौ० २८ । ९ ॥
- „ सर्वाणि स्वराण्याज्यानि (स्तोत्राणि) । तां० ७ । २ । ५ ॥
- आञ्जनम् तेजो वा एतदक्षयोर्यदाञ्जनम् । ऐ० १ । ३ ॥
- आतपवर्ष्याः (आपः) तेजश्च ह वै ब्रह्मवर्चसं चाऽऽतपवर्ष्या आपः ।
ऐ० ८ । ८ ।
- आतानः यज्ञो वाऽआतानः । श० ३ । ८ । २ । २ ॥
- आतिथ्यम् शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यम् । ऐ० १ । १७, २५ ॥
कौ० ८ । १ ॥
- „ अथ यदातिथ्येन यजन्ते । विष्णुमेव देवतां यजन्ते । श०
१२ । १ । ३ । ४ ॥
- आतीषादीयम् (साम)—आयुर्वा आतीषादीयमायुषोऽवरुध्यै । तां०
१२ । ११ । १५ ॥
- आत्मा आत्मा हृदये (श्रितः) । तै० ३ । १० । ८ । ९ ॥
- „ आत्मा वै तनूः । श० ६ । ७ । २ । ६ ॥
- „ मध्यतो ह्ययमात्मा । श० ६ । २ । २ । १३ ॥ ८ । १ । ४ । ३ ॥
- „ आत्मनो ह्येवाध्यज्ञानि प्ररोहन्ति । श० ८ । ७ । २ । १५ ॥
- „ आत्मनो वाऽइमानि सर्वाण्यज्ञानि प्रभवन्ति । श० ४ । २ ।
२ । ५ ॥
- „ सप्तपुरुषो ह्ययं पुरुषो यच्चत्वार आत्मा त्रयः पक्षपुच्छानि ।
श० ६ । १ । १ । ६ ॥
- „ चतुर्विधो ह्ययमात्मा । श० ७ । १ । १ । १८ ॥
- „ (=शरीरम्) पाङ्क्त इतर आत्मा लोमत्वङ्मा^३समस्थि
मज्जा । तां० ५ । १ । ४ ॥

- आत्मा षडङ्गोऽयमात्मा षड्विधः । कौ० २० । ३ ॥
- ” स पञ्चविंश आत्मा । श० १० । १ । २ । ८ ॥
- ” तस्मादितर आत्मा मेघति च कृश्यति च । तां० ५ । १ । ७ ॥
- ” आत्माहि प्रथमः सम्भवतः सम्भवति । श० १० । १ । २ । ४ ॥
- ” आत्मा होवाग्रे सम्भवतः सम्भवति । श० ७ । १ । १ । २१ ॥
- ” आत्मा होवाग्रे सम्भवतः सम्भवत्यथ दक्षिणं पक्षमथ पुच्छ-
मथोत्तरम् । श० ८ । ७ । २ । १३ ॥
- ” (= शरीरम्) तस्मादिमान्यन्वञ्चि च तिर्यञ्चि चात्मन्नस्थीनि ।
श० ८ । ७ । २ । १० ॥
- ” भूमोऽरण्योऽङ्गानां यदात्मा । श० ६ । ६ । १ । १० ॥
- ” सर्वं ११ ह्ययमात्मा । श० ४ । २ । २ । १ ॥
- ” (= शरीरम्) तस्मादयं सर्वं एवात्मोष्णस्तद्धैतदेव जी-
विष्यतश्च मरिष्यतश्च विज्ञानमुष्ण एव जीविष्यञ्छीतो
मरिष्यन् । श० ८ । ७ । २ । ११ ॥
- ” (= शरीरम्) तत्सर्वं आत्मा वाचमप्येति वाङ्मयो भवति ।
कौ० २ । ७ ॥
- ” एतन्मयो वाऽभयमात्मा वाङ्मयो मनोमय प्राणमयः । श०
१४ । ४ । ३ । १० ॥
- ” बाह्यो ह्यात्मा । श० ६ । ६ । २ । १६ ॥
- ” आत्मा यजमानः । कौ० १७ । ७ ॥ गो० ३० । ५ । ४ ॥
- ” आत्मैवोखा । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥ ६ । ६ । २ । १५ ॥
- ” अविनाशी वाऽअरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा । श० १४ । ७ ।
३ । १५ ॥
- ” यथा व्रीहिर्वा यवो वा श्यामाको वा श्यामाकतण्डुलो वैव-
मयमन्तरात्मन्पुरुषो हिरण्यमयो यथा ज्योतिरधूममेवं ज्या-
यान्दिवो ज्यायानाकाशाज्ज्यायानस्यै पृथिव्यै ज्यायान्सर्वे-
भ्यो भूतेभ्य स प्राणस्यात्मैष मऽआत्मैतमित आत्मानं
प्रेत्याभिसम्भविष्यामीति यस्य स्यादद्वा न विचिकित्सा-
स्तीति । श० १० । ६ । ३ । २ ॥
- ” अथ यो हैवैतमग्निं ११ सावित्रं वेद । स एवास्माह्लोकात्प्रे-
त्य । आत्मानं वेद । अयमहमस्मीति । तौ ३ । १० । ११ । १ ॥
- ” आत्मनो वाऽअरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं
विदितम् । श० १४ । ५ । ४ । ५ ॥

[आदिः

(६४)

आत्मा यद्वायमध्यात्मः शरीरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमे-
व स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् । श० १४ ।
५ । ५ । १ ॥

आलेयी (= सृतगर्भा रजस्वलेति सायणः) तस्मादप्यालेय्या यो-
षिता (सह सम्भाषणादि कुर्वन् पुरुषः) एनस्वी (भवति) ।
श० १ । ४ । ५ । १३ ॥

आथर्वणम् (साम) आथर्वणं लोककामाय ब्रह्मसाम कुर्व्यात् ।
तां० ८ । २ । ५ ॥

„ आथर्वणो वा एतल्लोककामाः सामापश्यः स्तेनामर्त्यं
लोकमपश्यन् यदेतत्साम भवति स्वर्गस्य लोकस्य प्रजात्यै ।
तां० ८ । २ । ६ ॥

„ चतुर्णिधनमाथर्वणं भवति चतूरात्रस्य धृत्यै । तां० १२ ।
९ । ८ ॥

„ भेषजं वा आथर्वणानि । तां० १२ । ९ । १० ॥

„ भेषजं वै देवानामथर्वणो (अथर्वणा ऋषिणा दृष्टा मन्त्राः)
भेषज्यायैवारिष्ट्यै । तां० १६ । १० । १० ।

आदाराः यत्र वाऽएनं (विष्णुं=यज्ञं) इन्द्र ओजसा पर्य्यगृह्णात्तदस्य
परिगृहीतस्य रसो व्यक्षरत्स पूयन्निवाशेतसोऽब्रवीदादी-
र्यैव बत मऽएष रसोऽस्तौषीदिति तस्मादादारा अथ यत्पू-
यन्निवाशेत तस्मात्पूर्तीकास्तस्मादग्नावाहुतिरिवाभ्याहिता
ज्वलन्ति तस्मादु सुरभयो यज्ञस्य हि रसात्सम्भूताः । श०
१४ । १ । २ । १२ ॥

„ यत्र वै यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यत तस्य यो रसो व्यप्रुष्यत्तत
आदाराः समभवन् । श० ४ । ५ । १० । ४ ॥

„ गायत्रीयः सोममाहरत् तस्य योऽशुः परापतत् त आ-
दारा अभवन् । तै० १ । ४ । ७ । ५-६ ॥

आदिः (साम) इन्द्र आदिः । जै० उ० १ । ५८ । ९ ॥

„ आसंगवमादिः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥

„ इम एव लोका आदिः । जै० उ० १ । १९ । २ ॥

„ (प्रजापतिः) आदिं वयोभ्यः (प्रायच्छत्) । जै० उ० १ ।
११ । ७ ॥

आदिः (साम) अथ यत्प्रतीच्यां दिशि तः सर्वमादिनाप्रोति । जै० उ० १ ।

३१ । ५ ॥

आदित्यः यदसुराणां लोकानादत्त । तस्मादादित्यो नाम । तै० ३ ।
९ । २१ । २ ॥

„ तेषां (नक्षत्राणां) एष (आदित्यः) उद्यन्नेव वीर्यं क्षत्र-
मादत्त तस्मादादित्यो नाम । श० २ । १ । २ । १८ ॥

„ तस्य यद् (प्रजापतेः) रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावा-
दित्योऽभवत् । ऐ० ३ । ३४ ॥

„ तस्य (प्रजापतेः) शोचत आदित्यो मूर्धनोऽसृज्यत । तां०
६ । ५ । १ ॥

„ तन् (छिन्नं विष्णोर्दिशरः) पतित्वासावादित्योऽभवत् ।
श० १४ । १ । १ । १० ॥

„ आदित्यो वा अर्कः । श० १० । ६ । २ । ६ ॥

„ पर्जन्य आदित्यः । गो० पू० ४ । ३ ॥

„ उग्रोतिः शुक्रमसौ (आदित्यः) । ऐ० ७ । १२ ॥

„ (हे आदित्य त्वं) व्युषि सविता भवस्युदेभ्यन् विष्णुरु-
द्यन्पुरुष उदितो बृहस्पतिरभिप्रयन्मघवेन्द्रो वैकुण्ठो माध्य-
न्दिने भगोऽपराह्ण उग्रो देवो लोहितायन्नस्तमिते यमो
भवसि ॥ अन्नसु सोमो राजानिशायाभित्तराजस्वमे मनु-
ष्यान्प्रविशसि पयसा पशून् ॥ विरात्रे भवो भवस्यपर-
रात्रेऽङ्गिरा अग्निहोत्रवेलायाम्भृगुः । जै० उ० ४ । ५ । १-३ ॥

„ स वा एष इन्द्रो वैमृध उद्यन् भवति सषितोदितो मित्रसं-
गवकाल इन्द्रो वैकुण्ठो माध्यन्दिने समावर्त्तमानदशर्ष
उग्रो देवो लोहितायन् प्रजापतिरेव संवेशेऽस्तमितः ।
जै० उ० ४ । १० । १० ॥

„ असौ वाऽआदित्योऽहमा पृश्निः । श० ९ । ३ । ३ । १४ ॥

„ अप्रतिघृष्या (= प्रजापतेस्तनूविशेषः) तदादित्यः ।
ऐ० ५ । २५ ॥

„ एष (आदित्यः) वा अब्जा अद्भ्यो वा एष प्रातरुदत्यपः
सायं प्रविशति । ऐ० ४ । २० ॥

„ असौ वा आदित्य एषोऽअश्वः । श० ६ । ३ । १ । २९ ॥

- आदित्यः आदित्यास्त्रिपात्तस्येमे लोकाः पादाः । गो० पू० २ ।
२ । ८ (९) ॥
- ” अथ यत्तश्चक्षुरासीत् स आदित्योऽभवत् । जै० उ०
२ । २ । ३ ॥
- ” चक्षुरादित्यः । श० ३ । २ । २ । १३ ॥
- ” आदित्यो वा उद्गाताऽभिर्दिवं चक्षुरध्यात्मम् । गो० पू० ४ । ३ ॥
- ” किं नु ते मयि (आदित्ये) इति । ओजो मे बलम् चक्षु-
र्मे । जै० उ० ३ । २७ । ८ ॥
- ” प्राण आदित्यः । तां० १६ । १३ । २ ॥
- ” अथैष वाव यशः य एष (आदित्यः) तपति । श० १४ ।
१ । १ । ३२ ॥
- ” एष (आदित्यः) वै यशः । श० ६ । १ । २ । ३ ॥
- ” आदित्योऽसि दिवि श्रितः । चन्द्रमसः प्रतिष्ठा । तै० ३ ।
११ । १ । ११ ॥
- ” एष (आदित्यः) स्वर्गो लोकः । तै० ३ । ८ । १० । ३ ॥
३ । ८ । १७ । २ ॥ ३ । ८ । २० । २ ॥
(आदित्यलोकं प्रशंसति-) तद्द्वैव्यं क्षत्रम् । सा श्रीः ।
तद्ब्रह्मस्य विष्टपम् । तत्स्वाराज्यमुच्यते । तै० ३ । ८ ।
१० । ३ ॥
- ” देवलोको वा आदित्यः । कौ० ५ । ७ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥
- ” आदित्य एषां भूतानामधिपतिः । ऐ० ७ । २० ॥
- ” असावादित्यः शिरः प्रजानाम् । तै० १ । २ । ३ । ३ ॥
- ” सर्वतोमुखो वा ऽअसावादित्य एष वाऽइदं सर्वं निर्द-
शति यदिदं किञ्च पुष्यति तेनैष सर्वतोमुखस्तेनाज्ञादः ।
श० २ । ६ । ३ । १४ ॥
- ” आदित्यो वा उद्गाता । गो० पू० २ । २४ ॥
- ” आदित्य उद्गीथः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥
- ” आदित्य उदयनीयः । श० ३ । २ । ३ । ६ ॥
- ” असा वा आदित्य एकाकी चरति । तै० ३ । ९ । ५ । ४ ॥
- ” आदित्यस्त्वेव सर्वऽऋतवः । यदैवोदेत्यथ वसन्तो यदा
संगवोऽथ श्रीभो यदा मध्यान्दिनोऽथ वर्षा यदापराहोऽथ
घरषदैवास्तमेत्यथ हेमन्तः । श० २ । २ । ३ । ९ ॥

- आदित्यः त्रिहं वा एष (मघवा = इन्द्रः = आदित्यः) एतस्या मुहूर्त्त-
स्येमास्पृथिर्वा समन्तः पर्येति । जै० उ० १ । ४४ । ९ ॥
- „ एष ह वा अह्नां विचेता योऽसौ (सूर्यः) तपति । गो०
उ० ६ । १४ ॥
- „ एष (आदित्यः) ह वा अह्नां विचेतयिता । ऐ० ६ । ३५ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यः पाप्मनो ऽपहन्ता । श० १३ । ८ ।
१ । ११ ॥
- „ स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमयति नोदयति ।
तद्यदेनं पश्चादस्तमयतीति मन्यन्ते अह्न एव तदन्तं गत्वा-
थात्मानं विपर्यस्यते हरेवाधस्तात्कृणुते रात्रीं परस्तात् ।
गो० उ० ४ । १० ॥
- „ स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति नोदेति तं
यदस्तमेतीति मन्यन्तेऽह्न एव तदन्तमित्वाऽथात्मानं विप-
र्यस्यते रात्रिमेवावस्तात् कुंरुतेऽह्नः परस्तादथ यदेनं प्रात-
रुदेतीति मन्यन्ते रात्ररेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते
ऽहरेवावस्तात्कुरुते रात्रिं परस्तात्स वा एष न कदाचन
निम्नोचति । ऐ० ३ । ४४ ॥
- „ तस्य (अर्कस्य=आदित्यस्य) एतदन्नं क्यमेष चन्द्रमास्त-
दकर्ष्य यजुष्टः । श० १० । ४ । १ । २२ ॥
- „ प्राङ् चार्वाङ् चादित्यस्तपति । तां० १२ । १० । ६ ॥
- „ यस्माद्वायवोत्तमस्तृतीयः (त्रिरात्रूः) तस्मादर्वाङ्गादित्य-
स्तपति । तां० १० । ५ । २ ॥
- „ सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः । जै० उ० १ । ४४ । ५ ॥
- „ स एष (आदित्यः) एकशतविधस्तस्य रश्मयः शतं विधा
एष एवैकशततमो य एष तपति । श० १० । २ । ४ । ३ ॥
- „ षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतान्यादित्यस्य रश्मयः । श०
१० । ५ । ४ । ४ ॥
- „ षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतान्यादित्यं नाव्याः समन्तं परि-
यन्ति । श० १० । ५ । ४ । १४ ॥
- „ शतयोजने ह वा एष (आदित्यः) इतस्तपति । कौ० दा३ ॥
- „ तं (सावित्रमग्निं) स (भरद्वाजः) विदित्वा । अमृतो

भूत्वा । स्वर्गं लोकमियाय । आदित्यस्य सायुज्यम् ।

तै० ३ । १० । ११ । ५ ॥

आदित्यग्रहः सवनततिर्वा आदित्यग्रहः । कौ० १६ । १ ॥

” अथैष सरसो ग्रहो यदादित्यग्रहः । कौ० १६ । १ ॥
३० । १ ॥

आदित्यश्चरुः विडेष आदित्यश्चरुः । श० ६ । ६ । १ । ७ ॥

आदित्यस्य पदम् एतद्वा आदित्यस्य पदं यद्भूमिः । गो० पू० २ । १८ ।

आदित्याः अष्टौ ह वै पुत्रा अदितेः । यांस्त्वेतद्देवा आदित्या इत्या-
चक्षते सप्त ह वै तेऽवेकृतः३ हाष्टमं जनयांचकार मार्त-
ण्डम् । श० ३ । १ । ३ । ३ ॥

” तदभ्यनूक्ता । अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वं परि-
देवाः३ उपप्रैत् सप्तभिः परा मार्तण्डमारयादिति । तां० २४ ।
१२ । ५-६ ॥

” एताभिर्वा आदित्या द्वंद्वमार्धनुवन्मित्रश्च वरुणश्च धाता
चार्यमा चाः३शश्च भगश्चेन्द्रश्च विवस्वाश्च । तां० २४ ।
१२ । ४ ॥

” कतमऽआदित्या इति । द्वादश मासाः संवत्सरस्यैतऽआ-
दित्या एते हीदः३ सर्वमाददाना यन्ति ते यदिदः३ सर्व-
माददाना यन्ति तस्मादादित्या इति । श० ११ । ६ । ३ । ८ ॥

” सप्तादित्याः । तां० २३ । १५ । ३ ॥

” भूमोऽप्य देवानां यदादित्याः । श० ६ । ६ । १ । ८ ॥

” प्राणा वा आदित्याः । प्राणा हीदं सर्वमाददते । जै० उ० ४ ।
२ । ९ ॥

” घृतभाजना ह्यादित्याः । श० ६ । ६ । १ । ११ ॥

” आदित्यास्त्वा जायतेन छन्दसा संमृजन्तु । तां० १ । २ । ७ ॥

” वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतं वैरूपेण विशौ-
जसा । तै० २ । ६ । १९ । १-२ ॥

” सर्वे वाऽआदित्याः । श० ५ । ५ । २ । १० ॥

” आदित्या वै प्रजाः । तै० १ । ८ । ८ । १ ॥

” एते खलु वादित्या यद्वाहणाः । तै० १ । १ । ९ । ८ ॥

” पशव आदित्याः । तां० २३ । १५ । ४ ॥

” सप्या वा आदित्याः । तां० २५ । १५ । ४ ॥

आदित्यो गर्भः (यजु० १३ । ४१) आदित्यो वाऽपष गर्भो यत्पुरुषः ।

श० ७ । ५ । २ । १७ ॥

आधीतयजूषि तद्यदस्यैता आत्मन्देवता आधीता भवन्ति तस्मादा-
धीतयजूषि नाम । श० ३ । १ । ४ । १४ ॥

„ ततो यानि त्रीणि स्रवेण जुहोति । तान्यधीतयजूषि-
षीत्याचक्षते । श० ३ । १ । ४ । २ ॥

आनन्त्यम् प्रजापतिरकामयतानन्त्यमश्नुयेति । गो० पू० ५ । ८ ॥

आनूपम् (साम)— एतेन वै वध्र्यद्व आनूपः पशूनां भूमानमाश्नुत
पशूनां भूमानमश्नुत आनूपेन तुष्टुवानः । तां० १३ । ३ ।
१७ ॥

आन्धीगवम् (साम)— अथैतदान्धीगवमन्धीगुव्वां एतत्पशुकामः सा-
मापश्यत्तेन सहस्रं पशूनसृजत यदेतत्साम भवति पशू-
नां पुष्ट्यै । तां० ८ । ५ । १२ ॥

आपः तद्यदब्रवीत् (ब्रह्म) आभिर्वा अहमिदं सर्वमाप्स्यामि यदिदं
किंचेति तस्मादापोऽभवस्तदपामप्त्वमाप्नोति वै स सर्वान्
कामान् यान् कामयते । गो० पू० १ । २ ॥

„ सेद्वै सर्वमाप्नोद्यदिदं किं च यदाप्नोत्तस्मादापः । श० ६ ।
१ । १ । ९ ॥

„ अङ्गिर्वाऽइदं सर्वमाप्तम् । श० १ । १ । १ । १४ ॥ २ । १ ।
१ । ४ ॥ ४ । ५ । ७ । ७ ॥

„ आपो ह वाऽइदमग्रे सलिलमेवास । ता अकामयन्त कथं नु
प्रजायेमहीति । श० ११ । १ । ६ । १ ॥

„ अश्मनो ह्यापः प्रभवन्ति । श० ९ । १ । १ । ४ ॥

„ तस्मात्पुरुषात्तप्तादापो जायन्ते । श० ६ । १ । ३ । १ ॥

„ ता वाऽरताः (सारस्वतीः, ऊर्मी, स्यन्दमानाः, अपयतीः,
समुद्रियाः, निवेप्याः, स्थावराः, आतपवर्ष्याः, वैशन्तीः, कूप्याः,
प्रुष्वाः, मधव्याः, गोरुल्याः, पयस्याः, घृतात्मिकाः)

सप्तदशापः सम्भरति । श० ५ । ३ । ४ । २२ ॥

„ प्राणा वा आपः । तै० ३ । २ । ५ । २ ॥ तां० ९ । ९ । ४ ॥

„ आपो वै प्राणाः । श० ३ । ८ । २ । ४ ॥

„ प्राणो ह्यापः । जै० उ० ३ । १० । ९ ॥

- आपः तस्मादिमा उभयत्रापः प्राणेषु चात्मंश्च । श० ७ । २ ।
 ४ । १० ॥
- „ अमृतं वाऽआपः । श० १ । ९ । ३ । ७ ॥ ४ । ४ । ३ । १५ ॥
- „ अमृतत्वं वा आपः । कौ० १२ । १ ॥
- „ अमृता ह्यापः । श० ३ । ९ । ४ । १६ ॥
- „ अमृतं वा एतदस्मिन् लोके यदापः । ऐ० ८ । २० ॥
- „ आपो वाऽउत्सः (उत्सः-यजु० १२ । १९) । श० ६ । ७ ।
 ४ । ४ ॥
- „ आपो ऽक्षितिर्या इमा एषु लोकेषु याश्चेमा अध्यात्मन् । कौ०
 ७ । ४ ॥
- „ शान्तिरापः । श० १ । २ । २ । ११ ॥ १ । ७ । ४ । ९, १७ ॥
 १ । ९ । ३ । २, ४ ॥ २ । ६ । २ । १८ ॥ ३ । ३ । १ । ७ ॥
- „ शान्तिर्वा आपः । ऐ० ७ । ५ ॥
- „ आपो हि शान्तिः । तां० ८ । ७ । ८ ॥
- „ शान्तिर्वै भेषजमापः । कौ० ३ । ६, ७, ८, ९ ॥ गो० उ०
 १ । २५ ॥
- „ आपो ह वाऽओषधीनाश्च रसः । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥
- „ रसो वाऽआपः । श० ३ । ३ । ३ । १८ ॥ ३ । ९ । ४ । ७ ॥
- „ आपो वै सर्वस्य शान्तिः प्रतिष्ठा । ष० ३ । १ ॥
- „ आपो वा ऽअस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा । श० ४ । ५ । २ । १४ ॥ ६ ।
 ८ । २ । २ ॥ १२ । ५ । २ । १४ ॥
- „ आपः सत्ये (प्रतिष्ठिताः) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥
- „ श्रद्धा वा आपः । तै० ३ । २ । ४ । १ ॥
- „ मेघ्या वा आपः । श० १ । १ । १ । १ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥
- „ मेघ्या वाऽएता आपो भवन्ति या आतपति वर्षन्ति । श० ५ ।
 ३ । ४ । १३ ।
- „ पवित्रं वाऽआपः । श० १ । १ । १ । १ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥
- „ आपो वै क्षीररसा आसन् । तां० १३ । ४ । ८ ॥
- „ ऊर्वा आपो रसः । कौ० १२ । १ ॥
- „ अन्नं वा ऽआपः । श० २ । १ । १ । ३ ॥ ७ । ४ । २ । ३७ ॥ ८ ।
 २ । ३ । ६ ॥ तै० ३ । ८ । २ । १ ॥ ३ । ८ । १७ । ५ ॥
- „ अन्नमापः । कौ० १२ । ३, ८ ॥

- आपः आपोऽन्नम् । ऐ० ६ । ३० ॥
- „ तद्यास्ता आपोऽन्नं तत् । जै० उ० १ । २५ । ९ ॥
- „ तद्यत्तदन्नमापस्ताः । जै० उ० १ । २९ । ५ ॥
- „ आपो वै रक्षोघ्नीः । तै० ३ । २ । ३ । १२ ॥ ३ । २ । ४ । २ ॥ ३ । २ । ९ । १४ ॥
- „ (इन्द्रः) एताभिः (अङ्घ्रिः) ह्येनं (वृत्तं) अहन् । श० १ । १ । ३ । ८ ॥
- „ वज्रो वाऽआपः । श० १ । १ । १ । १७ ॥ ३ । १ । २ । ६ ॥ ७ । ५ । २ । ४२ ॥ तै० ३ । २ । ४ । २ ॥
- „ वीर्यं वाऽआपः । श० ५ । ३ । ४ । १ ॥
- „ आपो वाऽअर्कः । श० १० । ६ । ५ । २ ॥
- „ तद्यथा भोक्ष्यमाणोऽय एव प्रथममाचामयेदप उपरिष्ठात् । गो० पू० २ । ९ ॥
- „ मरुतोऽङ्घ्रिरग्निमतमयन् । तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दन् साऽशनिरभवत् । तै० १ । १ । ३ । १२ ॥
- „ अप्सुयोनिर्वाऽअश्वः । श० १३ । २ । २ । १९ ॥ तै० ३ । ८ । ४ । ३ ॥ ३ । ८ । १९ । २ ॥ ३ । ८ । २० । ४ ॥
- „ अङ्घ्रयो ह वाऽअग्नेऽश्वः सम्बभूव सोऽद्भ्यः सम्भवन्नसर्वः समभवदसर्वो हि वै समभवत्तस्मान्न सर्वैः पङ्क्तिः प्रतितिष्ठत्येकैकमेव पादमुदच्य तिष्ठति । श० ५ । १ । ५ । ५ ॥
- „ आपो वाऽअवकाः । श० ७ । ५ । १ । ११ ॥ ८ । ३ । २ । ५, ६ ॥
- „ यदापोऽसौ (द्यौः) तत् । श० १४ । १ । २ । ९ ॥
- „ देव्यो ह्यापः । श० १ । १ । ३ । ७ ॥
- „ यज्ञो वा आपः । कौ० १२ । १ ॥ श० १ । १ । १ । १२ ॥ तै० ३ । २ । ४ । १ ॥
- „ आपो वै यज्ञः । ऐ० २ । २० ॥
- „ आपो हि यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । १५ ॥
- „ आपो रेतः । श० ३ । ८ । ४ । ११ ॥ ३ । ८ । ५ । १ ॥
- „ रेतो वा आपः । ऐ० १ । ३ ॥
- „ पशवो वा एते यदापः । ऐ० १ । ८ ॥

- आपः तेजश्च ह वै ब्रह्मवर्चसं चातपवर्ष्या आपः । ऐ० ८ । ८ ॥
 ,, आपो वै सर्वा देवताः । ऐ० २ । १६ ॥ कौ० ११ । ४ ॥ तै० ३ ।
 २ । ४ । ३ ॥ ३ । ३ । ४ । ५ ॥ ३ । ७ । ३ । ४ ॥ ३ । ९ । ७ । ५ ॥
 ,, आपो वै सर्वे कामाः । श० १० । ५ । ४ । १५ ॥
 ,, आपो वै सर्वे देवाः । श० १० । ५ । ४ । १४ ॥
 ,, आपो वै देवानां प्रियं धाम । तै० ३ । २ । ४ । २ ॥
 ,, सौम्या ह्यापः । ऐ० १ । ७ ॥
 ,, तस्मात्प्रतीच्योऽप्यापो बह्व्यः स्यन्दन्ते, सौम्या ह्यापः । ऐ०
 १ । ७, १२ ॥
 ,, वरुणाय वै सुषुवाणस्य भर्गो ऽपाक्रामत्स त्रेधापतद् भृगुस्त-
 तीयमभवच्छ्रायन्तीयं तृतीयमपस्तृतीयं प्राविशत् । तां
 १८ । ९ । १ ॥
 ,, आपो वरुणस्य पत्न्य आसन् । तै० १ । १ । ३ । ८ ॥
 ,, अग्निना वाऽआपः सुपत्न्यः । श० ६ । ८ । २ । ३ ॥
 ,, अस्ति वै चतुर्थो देवलोक आपः । कौ० १८ । २ ॥
 ,, अप्सु पृथिवी (प्रतिष्ठिता) । जै० ७० । १ । १० । २ ॥
 ,, आपः स्थ समुद्रे श्रिताः । पृथिव्याः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ ।
 १ । ५ ॥
 ,, प्रातःसवनरूपा न्वापः । कौ० १२ । ३ ॥
 ,, अथ यद्यपः शूद्राणां स भक्षः । ऐ० ७ । २९ ॥
 ,, योषा वाऽआपो वृषाग्निः । श० १ । १ । १ । १८ ॥ २ । १ । १ । ४ ॥
 आपश्चन्द्राः (यजु० १२ । १०२) मनुष्या वाऽआपश्चन्द्राः । श० ७ ।
 ३ । १ । २० ॥
 आपृणस्व (यजु० १७ । ७९) आपृणस्वेत्याप्रजायस्वेत्येतत् । श० ९ ।
 २ । ३ । ४४ ॥
 आप्त्याः त (आप्त्याः) इन्द्रेण सह चेरुः । श० १ । २ । ३ । २ ॥
 ,, ततः ("निष्ठीवनलक्षणवीर्यधारणात् ताभ्यो ऽङ्गयः
 सकाशात्" इति सायणः) आप्त्याः सम्बभूवुस्त्रितो द्वितः
 एकतः । श० १ । २ । ३ । १ ॥
 आप्त्याय तेऽन्तरेण चात्वालोत्करा उपनिष्कामन्ति तद्धि यद्भवस्य
 तीर्थमामानं नाम । कौ० १८ । ९ ॥

- आप्रियः (ऋवः) तद्यदप्रीणाति तस्मादाप्रियो नाम । कौ० १० । ३ ॥
 „ अप्रीभिराप्युवन् । तदाप्रीणामाप्रित्वम् । तै० २ । २ ।
 ८ । ६ ॥
 „ तद्यदेनं (पशुं) एताभिराप्रीभिराप्रीणात्तस्मादाप्रियो
 नाम । श० ११ । ८ । ३ । ५ ॥
 „ यदेतान्याप्रिय आज्यानि भवन्त्यात्मानमेवैतैराप्रीणाति ।
 तां० १५ । ८ । २ ॥ १६ । ५ । २३ ॥
 „ प्राणा वा आप्रियः । कौ० १८ । १२ ॥
 „ तेजो वै ब्रह्मवर्चसमाप्रियः । ऐ० २ । ४ ॥
 आभीकम् (साम) आभीकं भवत्यभिकान्त्यै । तां० १५ । ९ । ८ ॥
 „ अङ्गिरसस्तपस्तेपानाः शुचमशोचश्चस्त एतत्सामापश्यश्च
 स्तानभीकेऽभ्यवर्षत्तेन शुचमशमयन्त यद्भीके ऽभ्यवर्ष-
 त्तस्मादाभीकम् । तां० १५ । ९ । ९ ॥
 आभूतिः (= प्राणः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशव आमवन्ति । जै०
 ७० २ । ४ । ४ ॥
 आमयावी (= रोगी) एतस्य (यज्ञस्य) एवैकविंशत्तमग्निष्टोम-
 साम कृत्वामयाविनं याजयेत् । तां० १६ । १३ । १ ॥
 „ अप वा एतस्माद्घ्राद्यं कामति य आमयावी । तां० १६ ।
 १३ । ३ ॥
 „ प्राणैरेष व्युध्यते य आमयावी । तां० १६ । १३ । २ ॥
 „ आमयाविनं याजयेत् । प्राणा वा एतमतिपवन्ते य आम-
 यावी यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै । तां०
 १८ । ५ । ११ ॥
 „ अप्रतिष्ठितो वा एष य आमयावी । तां० १६ । १३ । ४ ॥
 आमहीयवम् (साम) ताः (प्रजाः प्रजापतिना) सृष्ट्वा अमहीयन्त
 यद्महीयन्त तस्मादामहीयवम् । तां० ७ । ५ । १ ॥
 „ प्रजापतिरकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति स शोचन्मम-
 हीयमानः (= अपूज्यमान इति सायणः) अतिष्ठत्स
 एतदामहीयवं (साम) अपश्यत्तेनेमाः प्रजा असृजत ।
 तां० ७ । ५ । १ ॥
 „ प्रजानाञ्च वा एषा सृष्टिः पापवसीयसश्च विधृतिर्य-
 दामहीयवम् । तां० ७ । ५ । ४ ॥

- आमहीयवम् (साम) आमहीयवं भवति कलृप्तिश्चान्नाद्यञ्च समानं
वदन्तीषु क्रियत इवमित्थमसदिति । तां० ११ । ११ । ७ ॥
- ” आमहीयवं भवति कलृप्तिश्चान्नाद्यञ्च कलृप्तिञ्चैवैते-
नान्नाद्यञ्चाभ्युत्तिष्ठन्ति । तां० १५ । ९ । ५ ॥
- आमाद् (यजु० १ । १७) अयं (अग्निः) वाऽआमाद्येनेदं मनुष्याः
पक्त्वाश्नन्ति । शं० १ । २ । १ । ४ ॥
- आमिक्षा आण्डस्य वा एतद्रूपं यदामिक्षा । तै० १ । ६ । २ । ४ ॥
- ” वैश्वदेव्यामिक्षा भवति । तै० १ । ६ । २ । ५ ॥ १ । ७ ।
१० । १ ॥
- आयतनम् मनो वाऽआयतनम् । शं० १४ । ९ । २ । ५ ॥
- आयतिः प्राणो वा आयतिः । गो० ३० २ । ३ ॥
- आयास्यम् (साम) — अयास्यो वा आङ्गिरस आदित्यानां दीक्षिता-
नामन्नमाश्नात् स व्यभ्रंशतं स एतान्यायास्यान्यपश्य-
त्तैरात्मानं समश्रीणाद्विभ्रष्टमिव वै सप्तममहर्ष्यदेत-
त्साम भवत्यहरेव तेन सश्रीणाति । तां० १४ । ३ ।
२२ ॥
- ” (आदित्याः) तस्मा (अयास्यायोद्वाले) अमुमादित्यम-
श्वेतं कृत्वा दक्षिणामानयंस्तं प्रतिगृह्य व्यभ्रं-
शतं स एतान्यायास्यान्यपश्यत्तैरात्मानं समश्रीणात् ।
तां० १६ । १२ । ४ ॥
- ” अयास्यो वा आङ्गिरस आदित्यानां दीक्षितानामन्नमा-
श्नात् शुगार्थत्स तपोऽतप्यत स एते आयास्ये अपश्य-
त्ताभ्यां शुचमपाहतापशुचं हत आयास्याभ्यां तुष्टु-
वानः । तां० ११ । ८ । १० ॥
- ” यदायास्यानि भवन्ति भेषजायैव शान्त्यै । तां० १६ ।
१२ । ५ ॥
- ” आयास्यम्भवति तिरश्चीननिधनं प्रतिष्ठायै । तां० १४ ।
३ । २१ ॥
- ” अन्नाद्यं वाव तदेभ्यो लोकेभ्योऽपाक्रामत्तद्वास्य आया-
स्याभ्यामच्यावयत् अवाक्यत्वन्नाद्यमायास्याभ्यां तुष्टु-
वानः । तां० ११ । ८ । १२ ॥

आयास्यम् (साम) एभ्यो वै लोकेभ्यो वृष्टिरपाक्रामत्तामयास्य आयास्या-
भ्यामच्यावयत् च्यावयति वृष्टिमायास्याभ्यां तुष्टुवानः ।

तां० ११ । ८ । ११ ॥

आयुः (एकाहः)—आयुषा वै देवा असुरानायुवतायुते आतृष्यं य
एवं वेद । तां० १६ । ३ । २ ॥

आयुः उर्वशी वाऽअप्सराः पुरुरवः पतिरथ यत्तस्मान्मिथुनादजायत
तदायुः । श० ३ । ४ । १ । २२ ॥

, वरुण एवायुः । श० ४ । १ । ४ । १० ॥

„ (यजु० १२ । ६५) अग्निर्वाऽआयुः । श० ६ । ७ । ३ । ७ ॥ ७ ।
२ । १ । १५ ॥

„ अग्निर्वाऽआयुःमानायुष ईष्टे । श० १३ । ८ । ४ । ८ ॥

„ संवत्सर आयुः । श० ४ । १ । ४ । १० ॥ ४ । २ । ४ । ४ ॥

„ यज्ञो वा आयुः । तां० ६ । ४ । ४ ॥

„ असौ लोक (= गूलोकः) आयुः । ऐ० ४ । १५ ॥

„ असावुत्तमः (लोकः = स्वर्लोकः) आयुः (स्तोमः) । तां० ४ ।
१ । ७ ॥

„ अन्नमु वाऽआयुः । श० ९ । २ । ३ । १६ ॥

„ आयुर्वा उद्गाता । आयुः क्षत्तसंगृहीतारः । तै० ३ । ८ । ५ । ४ ॥

„ प्राणो वा आयुः । ऐ० २ । ३८ ॥

„ यो वै प्राणः स आयुः । श० ५ । २ । ४ । १० ॥

„ आयुर्वा उष्णिक् । ऐ० १ । ५ ॥

„ स यो ह्येवं विद्वान्त्सायम्प्रातराशी भवति सर्वं ह्यैवायुरेति ।
श० २ । ४ । २ । ६ ॥

„ य एवं विद्वान्स्यान्न मृण्मये भुञ्जीत । तथा हास्यायुर्न रिष्येत
तेजश्च । आ० १ । १ ॥

आयुतम् आयुतं (= ईषद्विलीनं सर्पिः) पितॄणाम् (सुरभि) । ऐ०
१ । ३ ॥

आयुवः (अप्सरसः, यजु० १८ । ३९) आयुवाना इव हि मरीचयः
प्लवन्ते । श० ९ । ४ । १ । ८ ॥

आरम्भणीयम् (अहः)—तं चतुर्विंशिनारभन्ते तदारम्भणीयस्यारम्भ-
णीयत्वम् । कौ० १९ । ३ ॥

आरम्भणीयम् (अहः) चतुर्विंशमेतदहंरूपयंत्यारम्भणीयमेतेन वै म्बत्स-
रमारभंत। एतेन स्तोमांसच छन्दांसि चैतेन सर्वा देवता
अनारब्धं वै तच्छंदोऽनारब्धा सा देवता यदेतस्मिन्नह-
नि नारभंते तदारम्भणीयस्यारम्भणीयत्वम् । ऐ० ४।१२॥
,, वागेवारम्भणीयमहर्वाचा ह्यारभन्ते यद्यदारभन्ते । श०
१२।२।४।१॥

आर्त्विज्यम् अमानुष इव वाऽपतद्भवति यदार्त्विज्ये प्रवृत्तः । श० १।
९।१।२९॥

आर्द्रदानुः (यजु० १८।४५)—एष (वायुः) ह्यार्द्रं ददाति । श० ९।
४।२।५॥

आर्द्रा (नक्षत्रविशेषः)—आर्द्रया रुद्रः प्रथमान पाति । तै० ३।१।
१।३॥

आर्भवम् श्रोत्रमार्भवम् । कौ० १६।४॥

आर्षभम् (साम)—अभि त्वा वृषभासुत इत्यर्षभं क्षत्रसाम क्षत्रभ-
वैतेन भवति । तां० ९।२।१५॥

आवपनं महत् अर्थं वै (भू-)लोक आवपनं महत् । तै० ३।९।
५।५॥

आशा आशा वा इदमग्र आसीद्भविष्यदेव । जै० ३०।४।२२।१॥

आशापालाः शतं वै तल्प्या राजपुत्रा आशापालाः । श० १३।१।
६।२॥

,, अथैते दैवाः (आशापालाः) आप्याः साध्या अन्वाध्या
मरुतः । श० १३।४।२।१६॥

आशु (साम)—अहर्वा एतदवलीयत तद्देवा आशुनाभ्यधिन्वथंस्त-
दाशोराशुत्वम् । तां० १४।९।१०॥

,, आशु भार्गवं भवति । तां० १४।९।९॥

आश्रावणम् स यदाश्रावयति । यज्ञमेवैतदनुमन्त्रयत ऽआ नः शृणुष्व
न आवर्त्स्येति । श० १।५।२।७॥

,, यज्ञो वा आश्रावणम् । श० १।५।१।१॥ १।१॥ ३।९॥

आश्रावितम् प्राणो वा अग्निहोत्रस्याऽऽश्रावितम् । तै० २।१।५।९॥

आश्लेषाः (नक्षत्रविशेषः)—सर्पाणमाश्लेषाः । तै० १।५।१।२॥
३।१।१।५॥

- आश्वम् (साम)—अश्वो वै भूत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत स
प्रजायत बहुर्भवत्प्रजायते बहुर्भवत्याश्वेन तुष्टुवानः ।
तां० ११ । ३ । ५ ॥
- आश्वसूक्तम् (साम)—गौषूक्तिश्चाश्वसूक्तिश्च बहुप्रतिगृह्य गरगिराव-
मन्येतां तावेते सामनी अपश्यतां ताभ्यां गरशिरघ्नाताम् ।
तां० १९ । ४ । १० ॥
- आश्विनः (ग्रहः) श्रोत्रमाश्विनः । कौ० १३ । ५ ॥
,, श्रोत्रं चात्मा चाश्विनः । ऐ० २ । २६ ॥
- आश्विनम् (शस्त्रम्) यदाश्विना उदजयतामश्विनावान्नुवातां तस्मा-
देतदाश्विनमित्याचक्षते । ऐ० ४ । ८ ॥
,, तेषां (देवानां) अश्विनौ प्रथमावधावतान्तावन्ववदन् सह
नोऽस्त्विति । तावब्रूताङ्घ्रिभ्यो ततः स्यादिति यत्कामयेथे
इत्यब्रुवथ्स्तावब्रूतामस्मद्देवन्यमिदमुक्थमुच्यता इति
तस्मादाश्विनमुच्यते । तां० ९ । १ । ३६ ॥
,, द्वाभ्यां ह्याश्विनमित्याख्यायते । कौ० १८ । ५ ॥
- आष्कारणिधनम् (साम)—आष्कारणिधनं काष्णं प्रतिष्ठाकामाय ब्रह्म-
साम कुर्यात् । तां० ८ । २ । १ ॥
- आष्टादंष्ट्रे (सामनी)—अष्टादंष्ट्रो वैरूपोऽपुत्रोऽप्रजा अजीर्यत्स
इमान् लोकान्विचिच्छिदिवां अमन्यत स एते जरसि साम-
नी अपश्यत्तयोरप्रयोगादविभेत् सोऽब्रवीदधनवद्योमे सा-
मभ्याथ्स्तवाता इति । तां० ८ । ९ । २१ ॥
,, आष्टादंष्ट्रे ऋद्धिकामाय कुर्यात् । तां० ८ । ९ । २० ॥
- आसञ्जनम् आदित्य आसञ्जनमादित्ये हीमे लोका दिग्भिरासक्ताः ।
श० ६ । ७ । १ । १७ ॥
,, चन्द्रमा आसञ्जनं चन्द्रमसि ह्ययथ् संवत्सर ऋतुभिरा-
सक्तः । श० ६ । ७ । १ । १९ ॥
,, अन्नमासञ्जनमन्ने ह्ययमात्मा प्राणैरासक्तः । श० ६ । ७ ।
१ । २१ ॥
- आसन्दी सैषा (आसन्दी) खादिरी वितृणा भवति । श० ५ । ४ ।
४ । १ ॥

आसन्दी इयं (पृथिवी) वाऽआसन्द्यस्या^{१३} हीद^{१३} सर्वमासन्नम् ।

श० ६ । ७ । १ । १२ ॥

आसितम् (साम)—असितो वा एतेन दैवलस्त्रयाणां लोकानां दृष्टि-
मपश्यत् त्रयाणाङ्गमानामवरुध्या आसितं क्रियते । तां०

१४ । ११ । १९ ॥

आस्कन्नाहुतिः अथ यस्याज्यमनुत्पूत^{१४} स्कन्दत्यसौ वा अस्कन्नाना-
माहुतिः । ष० ४ । १ ॥

आहवनीयः (अग्निः) द्यौराहवनीयः । श० ८ । ६ । ३ । १४ ॥

” यद्वाऽआहवनीयमुपतिष्ठते । दिवं तदुपतिष्ठते । श० २ ।
३ । ४ । ३६ ॥

” एष वै स यज्ञः । येन तद्देवा दिवमुपोदक्रामन्नेष आहव-
नीयोऽथ य इहाहीयत स गार्हपत्यस्तस्मादेतं (आहवनीयं)
गार्हपत्यात्प्राञ्चमुद्धरन्ति । श० १ । ७ । ३ । २२ ॥

” यज्ञो वा आहवनीयः स्वर्गो लोकः । ऐ० ५ । २४, २६ ॥

” स्वर्गो वै लोक आहवनीयः । ष० १ । ५ ॥ तै० १ । ६ ।
३ । ६ ॥

” देवयोनिर्वाऽएष यदाहवनीयः । श० १२ । ९ । ३ । १० ॥

” इन्द्रो ह्याहवनीयः । श० २ । ६ । १ । ३८ ॥

” तस्य (राक्षः) पुरोहित एवाहवनीयो भवति । ऐ० ८ । २४ ॥

” शम इत्याहवनीयः । जै० उ० ४ । २६ । १५ ॥

” प्राणोदानावेवाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च । श० २ । १ ।
२ । १८ ॥

” यज्ञ आहवनीयः । श० १ । ७ । ३ । २६ ॥

” यजमान आहवनीयः । तै० ३ । ३ । ७ । २ ॥

” एतदायतनो यजमानो यदाहवनीयः । तां० १२ । १० । १६ ।

” यजमानदेवत्यो वा आहवनीयः । तै० १ । ६ । ५ । ३ ॥

” यद्वा आहवनीयमुपतिष्ठते । पशूंस्तद्याचते । श० २ । ३ ।
४ । ३२ ॥

” योनिर्वै पशूनामाहवनीयः । कौ० १८ । ६ ॥ गो० उ० ४ । ६ ॥

” आहवनीयो वा आहुतीनां प्रतिष्ठा । श० २ । ४ । ३ । १० ॥

” सामवेदादाहवनीयः (अजायत) । ष० ४ । १ ॥

- आहवनीयः शिरो वै यज्ञस्याहवनीयः पूर्वो ऽश्रौ वै शिरः पूर्वार्धमेवैत-
द्यज्ञस्य कल्पयति । श० १ । ३ । ३ । १२ ॥
- ” आहवनीयो वै यज्ञस्य शिरः । श० ६ । ५ । २ । १ ॥
- ” (पुरुषस्य) मुखमेवाहवनीयः । कौ० १७ । ७ ॥
- ” मुखमेवास्य (यज्ञस्य) आहवनीयः । श० ३ । ५ । ३ । ३ ॥
- आहावः वागाहावः । ऐ० ४ । २१ ॥
- ” ब्रह्म वा आहावः । ऐ० २ । ३३ ॥
- आहिताग्निः देवान्वाऽएष उपावर्त्तते य आहिताग्निर्भवति । श० २ ।
४ । २ । ११ ॥ २ । ६ । १ । ३७ ॥
- आहुतिः तद्यदाह्वयति तस्मादाहुतिर्नाम । श० ११ । २ । २ । ६ ॥
- ” आहुतयो वै नामैता यदाहुतय एताभिर्वै देवान् यजमानो
ह्वयति तदाहुतीनामाहुतिवम् । ऐ० १ । २ ॥
- ” तस्मिन्नग्नौ यत्किञ्चाभ्यादधत्याहितय एवास्य ता आहितयो
ह वै ता आहुतय इत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० १० । ६ । १ । २ ॥
- ” माथ्सानि वा ऽआहुतयः । श० ९ । २ । ३ । ४६ ॥
- ” न ह वै ता आहुतयो देवान्गच्छन्ति या अवषट्कृता वा-
(ऽ) स्वाहाकृता भवन्ति । कौ० १२ । ४ ॥

(इ)

- इद् (यजु० ३८ । १४) वृष्ट्यै तदाह यदाहेषे पिन्वस्वेति । श० १४ ।
२ । २ । २७ ॥
- इडः (बहु व०) — अन्नं वा इडः । ऐ० २ । ४ ॥ ६ । १५ ॥
- ” प्रजा वाऽइडः । श० १ । ५ । ४ । ३ ॥
- ” वर्षा वा इड इति हि वर्षा इडा यदिदं क्षुद्रं सरीसृपं ग्रीष्म-
हेमन्ताभ्यान्नित्यक्तं भवति तद्वर्षा ईडितमिवान्नमिच्छमानं
चरति तस्माद्वर्षा इडः । श० १ । ५ । ३ । ११ ॥
- ” इडा यजति वर्षा एव वर्षाभिर्हीडितमन्नाद्यमुत्तिष्ठति । कौ०
३ । ४ ॥
- इडा इयं (पृथिवी) वा इडा । कौ० ९ । २ ॥
- ” गौर्वाऽइडा । श० ३ । ३ । १ । ४ ॥

- इडा या वा सा (इडा-) सीद्गैर्वै सासीत् । श० १ । ८ । १ । २४ ॥
- „ (यजु० ३८ । २) -इडाहि गौः । श० २ । ३ । ४ । ३४ ॥ १४ । २ । १ । ७ ॥
- „ (यजु० १२ । ५१) पशवो वा इडा । कौ० ३ । ७ ॥ ५ । ७ ॥ २९ । ३ ॥ श० १ । ८ । १ । २२ ॥ ७ । १ । १ । २७ ॥ ष० २ । २ ॥ तां० ७ । ३ । १५ ॥ १४ । ५ । ३१ ॥ गो० ३० १ । २५ ॥ तै० १ । ६ । ६ । ६ ॥ ऐ० २ । ९, १०, ३० ॥
- „ (=पशवः) -अथेडां पशून्त्समवद्यति । श० १ । ७ । ४ । ९ ॥
- „ अन्नं पशव इडा । कौ० १३ । ६ ॥
- „ अन्नं वा इळा । ऐ० ८ । २६ ॥ कौ० ३ । ७ ॥
- „ अद्देडा । श० ११ । २ । ७ । २० ॥
- „ उत मैत्रावरुणी (इडा) इति । यदेव (इडा) मित्रावरुणाभ्या-
ऽऽ समगच्छत । श० १ । ८ । १ । २७ ॥
- „ यदेवास्यै (इडायै) घृतं पदे समतिष्ठत तस्मादाह घृतपदी
(इडा) इति । श० १ । ८ । १ । २६ ॥
- „ इडा वै मानवी यज्ञानूकाशिन्यासीत् । तै० १ । १ । ४ । ४ ॥
- „ सा (मनोर्बुद्धिता) एषा निदानेन यदिडा । श० १ । ८ । १ । ११ ॥
- „ एतद्ध वै मनुर्बिभ्यां वकार । इदं वै मे तनिष्ठं यज्ञस्य यदिय-
मिडा पाकयज्ञिया । श० १ । ८ । १ । १६ ॥
- „ मनुर्ह्येतामग्रेऽजनयत तस्मादाह मानवी (इडा) इति । श० १ । ८ । १ । २६ ॥
- „ सा (इडा) वै पञ्चावसा भवति । श० १ । ८ । १ । १२ ॥
- इडादधः (यज्ञः) -स एष (इडादधः) पशुकामस्यान्नाद्यकामस्य
यज्ञः । कौ० ४ । ५ ॥
- इडानाऽऽ संक्षारः (सामविशेषः) -पशव इडानाऽऽ संक्षारः । तां०
१६ । ११ । ७ ॥
- इण्ड्वे (दि० व०) -इमाऽऽ लोकाविण्ड्वे । श० ६ । ७ । १ । २६ ॥
- „ अहोरात्रेऽइण्ड्वे । श० ६ । ७ । १ । २५ ॥
- इतरा गिरः (ऋ० ६ । १६ । १६) -आसुर्या ह वा इतरा गिरः । ऐ०
३ । ४९ ॥

इदावत्सरः चन्द्रमा इदावत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥

„ चन्द्रमा वा इदावत्सरः । तै० १ । ४ । १० । १ ॥

इध्मः इन्धे ह वा एतदध्वर्युः । इध्मेनाग्निं तस्मादिध्मो नाम । श०
१ । ३ । ५ । १ ॥

„ वनस्पतय इध्माः । ऐ० ५ । २८ ॥

„ वनस्पतय इध्मः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥

„ आत्मा वा इध्मः । तै० ३ । २ । १० । ३ ॥

इन्दुः (यजु० १३ । ४३)—सोमो वाऽइन्दुः । श० २ । १ । ३ । २३ ॥
७ । ५ । २ । १९ ॥

„ सोमो वै राजेन्दुः । ऐ० १ । २९ ॥

इन्द्रः इन्धो वै नामैष योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तं वाऽएतमिन्ध३
सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोऽक्षणेव । श० १४ । ६ । ११ । २ ॥

„ अस्मिन्वा इदमिन्द्रियं प्रत्यस्थादिति । तदिन्द्रस्येन्द्रत्वम् । तै०
२ । २ । १० । ४ ॥

„ तस्य (क्षत्रियस्य) ह दीक्षमाणस्येन्द्र एवेन्द्रियमादत्ते । ऐ०
७ । २३ ॥

„ इन्द्रस्येन्द्रियेणाभिषिञ्चामि । ऐ० ८ । ७ ॥

„ इन्द्रस्येन्द्रियेण (त्वाभिषिञ्चामि) । श० ५ । ४ । २ । २ ॥

„ (देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे) इन्द्रस्येन्द्रियेण । तै० २ । ६ ।
५ । ३ ॥

„ इन्द्रस्येन्द्रियेण । तां० १ । ३ । ५ ॥

„ इन्द्रियं (आत्मन्धत्ते) ऐन्द्रेण (पशुना) । तै० १ । ३ । ४ । ३ ॥

„ इन्द्रमच्छसुता इम इतीन्द्रियस्य वीर्यस्यावरुध्यै । तां० ११ ।
१० । ४ ॥

„ (यजु० ३८ । १६)—मधु हुतमिन्द्रतमेऽगनाविति मधु हुत-
मिन्द्रियतमेऽगनावित्येवैतदाह । श० १४ । २ । २ । ४२ ॥

„ (= इन्द्रियवान्) सखाय इन्द्रमृतयऽइतीन्द्रियवन्तमृतयऽ
इत्येतत् । श० ६ । ३ । २ । ४ ॥

„ इन्द्रः (एवैनं) इन्द्रियेण (अवति) । तै० १ । ७ । ६ । ६ ॥

„ इन्द्रस्य त्वेन्द्रियेण व्रतपते व्रतेनादधामि । तै० १ । १ । ४ । ८ ॥

„ दधात्विन्द्र इन्द्रियम् । तां० १ । ३ । ५ ॥

„ मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधातु । श० १ । ८ । १ । ४२ ॥

- इन्द्रः ('इन्द्रियमिन्द्रलिकमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा' इति पाणिनीयाष्टाध्याय्याम् ५ । २ । ९३ ॥ 'इन्द्र आत्मा' इति काशिकायाम्)
- ॥ युक्ता ह्यस्य (इन्द्रस्य) हरयः शतादशेति । सहस्रं हेत आदित्यस्य रश्मयः (इन्द्रः = आदित्यः) । जै० उ० १ । ४४ । ५ ॥
- ॥ इन्द्र इति होतमाचक्षते य एष (सूर्यः) तपति । श० ४ । ६ । ७ । ११ ॥
- ॥ एष वै शुक्रो य एष (सूर्यः) तपत्येष (सूर्यः) उ एवेन्द्रः । श० ४ । ५ । ५ । ७ ॥ ४ । ५ । ९ । ४ ॥
- ॥ स यस्स इन्द्र एष एव स य एष (सूर्यः) एव तपति । जै० उ० १ । २८ । २ ॥ १ । ३२ । ५ ॥
- ॥ अथ यः स इन्द्रोऽसौ स आदित्यः । श० ८ । ५ । ३ । २ ॥
- ॥ एष वाऽइन्द्रो य एष (सूर्यः) तपति । श० २ । ३ । ४ । १२ ॥ ३ । ४ । २ । १५ ॥
- ॥ एष एवेन्द्रः । य एष (सूर्यः) तपति । श० १ । ६ । ४ । १८ ॥
- ॥ (इन्द्रः सूर्य इति सायणः । तां० १४ । २ । ५ भाष्ये ।)
- ॥ स यस्स आकाश इन्द्र एव सः । जै० उ० १ । २८ । २ ॥ १ । ३१ । १ ॥ १ । ३२ । ५ ॥
- ॥ अथ यत्रैतत्प्रदीप्तो भवति । उच्चैर्धूमः परमया जूत्या बलबलीति तर्हि ह्येष (अग्निः) भवतीन्द्रः । श० २ । ३ । २ । ११ ॥
- ॥ इन्द्रो वागित्यु वाऽआहुः । श० १ । ४ । ५ । ४ ॥
- ॥ तस्मादाहुरिन्द्रो वागिति । श० ११ । १ । ६ । १८ ॥
- ॥ अथ य इन्द्रस्सा वाक् । जै० उ० १ । ३३ । २ ॥
- ॥ वाग्वा इन्द्रः । कौ० २ । ७ ॥ १३ । ९ ॥
- ॥ वागिन्द्रः । श० ८ । ७ । २ । ६ ॥
- ॥ (यजु० ३८ । ८) अयं वाऽइन्द्रो योऽयं (वातः) पवते । श० १४ । २ । २ । ६ ॥
- ॥ यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः । श० ४ । १ । ३ । १९ ॥
- ॥ सर्वे वाऽइदमिन्द्राय तस्थानमास यदिदं किंचापि योऽयं (वायुः) पवते । श० ३ । ९ । ४ । १४ ॥
- ॥ स एष एवेन्द्रः । योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषोऽथेयमिन्द्राणी (योऽयं सव्येऽक्षन्पुरुषः) । श० १० । ५ । २ । ९ ॥

- इन्द्रः योऽयं चक्षुषि पुरुष एष इन्द्रः । जै० उ० १ । ४३ । १० ॥
- ” ततः प्राणोऽजायत स (प्राणः) इन्द्रः । श० १४ । ४ । ३ । १९ ॥
- ” प्राण एवेन्द्रः । श० १२ । ९ । १ । १४ ॥
- ” प्राण इन्द्रः । श० ६ । १ । २ । २८ ॥
- ” स योऽयं मध्ये प्राणः । एष एवेन्द्रस्तानेष प्राणान्मध्यत इन्द्रि-
येणैन्द्र यद्वैन्द्र तस्मादिन्ध इन्धो ह वै तमिन्द्र इत्याचक्षते
परोऽक्षम् । श० ६ । १ । १ । २ ॥
- ” हृदयमेवेन्द्रः । श० १२ । ९ । १ । १५ ॥
- ” यन्मनः स इन्द्रः । गो० उ० ४ । ११ ॥
- ” मन एवेन्द्रः । श० १२ । ९ । १ । १३ ॥
- ” रुक्म एवेन्द्रः । श० १० । ४ । २ । ६ ॥
- ” एष वा एतर्हीन्द्रो यो यजते । तै० १ । ३ । ६ । ३ ॥
- ” इन्द्रो वै यजमानः । श० २ । १ । २ । ११ ॥ ४ । ५ । ४ । ८ ॥
५ । १ । ३ । ४ ॥
- ” एष वाऽअत्नेन्द्रो भवति यद्यजमानः । श० ३ । ३ । ३ । १० ॥
- ” यजमानो वै स्वे यज्ञऽइन्द्रः । श० ८ । ५ । ३ । ८ ॥
- ” इयेन वाऽएष इन्द्रो भवति यच्च क्षत्रियो यदु च यजमानः ।
श० ५ । ३ । ५ । २७ ॥
- ” ऐन्द्रो वै राजन्यः । तै० ३ । ८ । २३ । २ ॥
- ” इन्द्रः क्षत्रम् । श० १० । ४ । १ । ५ ॥
- ” क्षत्रं वा इन्द्रः । कौ० १२ । ८ ॥ तै० ३ । ९ । १६ । ३ ॥ श०
२ । ५ । २ । २७ ॥ २ । ५ । ४ । ८ ॥ ३ । ९ । १ । १६ ॥ ४ ।
३ । ३ । ६ ॥
- ” अश्वरथेनेन्द्र आजिमधावत्तस्मात्स उच्चैर्घोष उपब्दिमान्क्ष-
त्रस्य रूपम् । ऐ० ४ । ९ ॥
- ” अथ या घोषिण्युपब्दिमती सैन्द्री (आगा) । तथा माध्यन्दि-
नस्योद्रेयम् । जै० उ० १ । ३७ । ३ ॥
- ” अथ यदुच्चैर्घोष स्तनयन्बवबा कुर्वन्निव दहति यस्मान्द्रूतानि
विजन्ते तदस्य (अग्नेः) ऐन्द्रं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
- ” यदशनिरिन्द्रस्तेन । कौ० ६ । ९ ॥
- ” स्तनयित्नुरेवेन्द्रः । श० ११ । ६ । ३ । ९ ॥

- इन्द्रः तस्मादाहेन्द्रो ब्रह्मेति । कौ० ६ । १४ ॥
- ” यत्परं भाः प्रजापतिर्वा स इन्द्रो वा । श० २ । ३ । १ । ७ ॥
- ” देवलोको वा इन्द्रः । कौ० १६ । ८ ॥
- ” इन्द्रो बलं बलपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १२ ॥ तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
- ” इन्द्रो मे बले श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ८ ॥
- ” वीर्यं वा इन्द्रः । तां० ९ । ७ । ५, ८ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥
- ” वीर्यमिन्द्रः । तै० १ । ७ । २ । २ ॥
- ” इन्द्रियं वीर्यमिन्द्रः । श० २ । ५ । ४ । ८ ॥
- ” इन्द्रियं वै वीर्यमिन्द्रः । श० ३ । ९ । १ । १५ ॥ ५ । ४ । ३ । १८ ॥
- ” शिश्रमिन्द्रः । श० १२ । ९ । १ । १६ ॥
- ” रेत इन्द्रः । श० १२ । ९ । १ । १७ ॥
- ” वृषा वा इन्द्रः । कौ० २० । ३ ॥
- ” अर्जुनो ह वै नामेन्द्रः (महाभारतस्य कुम्भघोणसंस्करणे 'पाण्डवः' अर्जुनोऽपि इन्द्रपुत्रत्वेन प्रसिद्धः-आदिपर्वणि अ० ६३ श्लो० ६५ ॥) । श० २ । १ । २ । ११ ॥
- ” अर्जुनो ह वै नामेन्द्रो यदस्य गुह्यं नाम । श० ५ । ४ । ३ । ७ ॥
- ” एष एवेन्द्रः । यदाहवनीयः । श० २ । ३ । २ । २ ॥
- ” इन्द्रो ह्याहवनीयः । श० २ । ६ । १ । ३८ ॥
- ” स यस्स इन्द्रस्सामैव तत् । जै० उ० १ । ३१ । १ ॥
- ” ऋचश्च सामानि चेन्द्रः (स्वभागरूपेणाभजत) । श० ४ । ६ । ७ । ३ ॥
- ” सः (इन्द्रः) अब्रवीदुग्रं साम्नो वृणे श्रियमिति । जै० उ० १ । ५१ । ८ ॥
- ” इन्द्र एष यदुद्गाता । जै० उ० १ । २२ । २ ॥
- ” स यः स इन्द्रः । एष सोऽप्रतिरथः । श० ९ । २ । ३ । ५ ॥
- ” इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः । तै० २ । ४ । ८ । ७ ॥
- ” स प्रजापतिरिन्द्रं ज्येष्ठं युत्रमपन्यधत्त नेदेनमसुरा बलीयाश्च-
सोऽहनमिति । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥
- ” ते (देवाः) होचुः । इन्द्रो वै नो वीर्यवत्तमः । श० ४ । ६ । ६ । ३ ॥

- इन्द्रः स (इन्द्रः) एतमिन्द्राय ज्येष्ठायै (= ज्येष्ठानक्षत्राय) पुरोडा-
शमेकादशकपालं निरवपन्महाग्नीहीणां । ततो वै स ज्यैष्ठ्यं
देवानामभ्यजयत् । तै० ३ । १ । ५ । २ ॥
- ” इन्द्रः (एवैनं) ज्येष्ठानां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥
- ” सो (प्रजापतिः) ऽकामयतेन्द्रो मे प्रजायाऽऽ श्रेष्ठः स्यादिति
तामस्मै स्रजं प्रत्यमुञ्चत्ततो वा इन्द्राय प्रजाः श्रेष्ठयायातिष्ठन्त
तच्छिल्पं पश्यन्त्यः । तां० १६ । ४ । ३ ॥
- ” इन्द्रः खलु वै श्रेष्ठो देवतानामुपदेशनात् । तै० २ । ३ । १ । ३ ॥
- ” इन्द्रः सर्वा देवता इन्द्रश्रेष्ठा देवाः । श० ३ । ४ । २ । २ ॥
- ” अथ यदिन्द्रे सर्वे देवास्तस्थानाः । तस्मादाहुरिन्द्रः सर्वा
देवता इन्द्रश्रेष्ठा देवा इति । श० १ । ६ । ३ । २२ ॥
- ” ततो वा इन्द्रो देवानामधिपतिरभवत् । तै० २ । २ । १० । ३ ॥
- ” सो (इन्द्रः) ऽग्रं देवतानां पर्यत् । अगच्छत् स्वाराज्यम् । तै०
१ । ३ । २ । २ ॥
- ” स (इन्द्रः) वै देवानां वसुर्वीरो ह्येषाम् । श० १ । ६ । ४ । २ ॥
- ” इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णु-
तमः । ऐ० ७ । १६ ॥ ८ । १२ ॥
- ” इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः । कौ० ६ । १४ ॥ गो० ३०
१ । ३ ॥
- ” इन्द्रौजसां पते । तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥
- ” इन्द्रो मृधां विहन्ता । कौ० ४ । १ ॥
- ” इन्द्रायाऽऽहोमुचे । तै० १ । ७ । ३ । ७ ॥
- ” इन्द्राय सुत्राम्णे । तै० १ । ७ । ३ । ७ ॥
- ” वृद्धानामिन्द्रः प्रदापयिता । तै० १ । ७ । २ । ३ ॥
- ” ओकः सारी हैषामिन्द्रो भवति यथा गौः प्रज्ञातं गोष्ठम् ।
गो० ३० ६ । ४ ॥
- ” ओकः सारी वा इन्द्रः । ऐ० ६ । १७, २२ ॥ गो० ३० ५ । १५ ॥
- ” इन्द्रो वै त्रिशिरसं त्वाष्ट्रमहन् । तां० १७ । ५ । १ ॥
- ” इन्द्रो वृत्रं हत्वा देवताभिश्चेन्द्रियेण च व्याधत् । तै० १ ।
६ । १ । ७ ॥
- ” इन्द्रो मरुद्भिः (व्यद्रवत्) । श० ३ । ४ । २ । १ ॥
- ” इन्द्रो रुद्रैः (उदक्रामत्) । ऐ० १ । २४ ॥

- इन्द्रः इन्द्रस्य पुरोडाशः । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥
- ” यदिन्द्रोऽपिबच्छचीभिः । तै० १ । ४ । २ । ३ ॥
- ” इन्द्रो यज्ञस्य नेता । श० ४ । १ । २ । १५ ॥
- ” तदाहुः किन्देवत्यो यज्ञ इति । ऐन्द्र इति ब्रूयात् । गो० उ०
३ । २३ ॥
- ” इन्द्रो यज्ञस्यात्मेन्द्रो देवता । श० ९ । ५ । १ । ३३ ॥
- ” ऐन्द्रो वै यज्ञः । ऐ० ६ । ११ ॥
- ” ऐन्द्रो हि यज्ञक्रतुः । कौ० ५ । ५ ॥ २८ । २ । ३ ॥
- ” इन्द्रो यज्ञस्य देवता । ऐ० ५ । ३४ ॥ ६ । ९ ॥ श० २ । १ ।
२ । ११ ॥
- ” इन्द्रो वै यज्ञस्य देवता । श० १ । ४ । १ । ३३ ॥ १ । ४ । ५ ।
४ ॥ २ । ३ । ४ । ३८ ॥
- ” न ह वा इन्द्रः कंचन भ्रातृव्यम्पश्यते । जै० उ० १ । ४५ । ६ ॥
- ” ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी । ऐ० २ । २४ ॥ तै० १ । ६ । ३ । ९ ॥
- ” इन्द्रस्य वै हरी बृहद्रथन्तरे । तां० ९ । ४ । ८ ॥
- ” सेनेन्द्रस्य पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥
- ” यत्साकमेधैर्यजतऽइन्द्र एव तर्हि भवतीन्द्रस्यैव सायुज्यं
सलोकतां जयति । श० २ । ६ । ४ । ८ ॥
- ” ऐन्द्रा वै पशवः । ऐ० ६ । २५ ॥
- ” एतद्वा इन्द्रस्य रूपं यदृषमः । श० २ । ५ । ३ । १८ ॥
- ” (प्रजापतिः) ऐन्द्रमृषभं (आलिप्तत) । श० ६ । २ । १ । ५ ॥
- ” ऐन्द्रमृषभं सेन्द्रत्वाय (आलभते) । तै० १ । ८ । ५ । ६ ॥
- ” स ह्यैन्द्रो यदृषमः । श० ५ । ३ । १ । ३ ॥
- ” इन्द्रो वा अद्वः । कौ० १५ । ४ ॥
- ” ऐन्द्रं माध्यन्दिनम् । गो० उ० १ । २३ ॥
- ” ऐन्द्रो मध्यन्दिनः । कौ० ५ । ५ ॥ २२ । ७ ॥
- ” ऐन्द्रो वै मध्यन्दिनः । ऐ० ६ । ३० ॥
- ” ऐन्द्रो वै माध्यन्दिनः । गो० उ० ६ । ९ ॥
- ” मध्यस्थो वा इन्द्रः । कौ० ५ । ४ ॥
- ” (अन्तरिक्षस्थानः—) इन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रइति तदन्तरिक्ष-
लोकं लोकानमाप्नोति माध्यन्दिनं सवनं यज्ञस्य । कौ० १४ । १ ॥

- इन्द्रः स (इन्द्रः) एतं माहेन्द्रं ब्रह्मब्रत माध्यन्दिनं सवनानां निष्के-
 वल्यमुक्थानां त्रिष्टुभं छन्दसां पृष्ठं सास्त्राम् । ऐ० ३ । २१ ॥
- ” ऋभवो वा इन्द्रस्य प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ५ ॥
- ” ऐन्द्रं वै सुत्यमहः । कौ० ४ । ४ ॥
- ” (प्रजापतिः) अग्निहोत्रेण दर्शपूर्णमासाभ्यामिन्द्रमसृजत ।
 कौ० ६ । १५ ॥
- ” ऐन्द्र एकादशकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥
- ” ऐन्द्रमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । ३ । १ । ३ ॥
- ” हेमन्तशिशिरावैन्द्राभ्याम् (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३४ ॥
- ” दिवमैन्द्रेण (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३२ ॥
- ” अथेन्द्राय ज्येष्ठाय । हायनानां चरुं निर्वपति । श० ५ । ३ । ३ । ६ ॥
- ” यद्वै किञ्चन पीतवत्पदं तदैन्द्रं रूपम् । ऐ० ६ । १० ॥
- ” यत् (अक्ष्योः) शुक्लं तदैन्द्रम् । श० १२ । ९ । १ । १२ ।
- ” इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु । श० ३ । ५ । २ । ४ ॥
- इन्द्रतुरीयम् स इन्द्रस्तुरीयमभवत् । यदिन्द्रस्तुरीयमभवत् । तदिन्द्र-
 तुरीयस्येन्द्रतुरीयत्वम् । तै० १ । ७ । १ । ३ ॥
- इन्द्रनिहवः मन इन्द्रनिहवः । कौ० १५ । ३ ॥
- इन्द्रशत्रुः अथ (त्वष्टा) यदब्रवीदिन्द्रशत्रुर्वर्षस्वेति तस्मादु हैन-
 मिन्द्र एव जघानाथ यद् शश्वदवक्ष्यदिन्द्रस्य शत्रुर्वर्ष-
 स्वेति शश्वदु ह स एवेन्द्रमहनिष्यत् । श० १ । ६ । ३ । १० ॥
- इन्द्रस्तोमः (ऋतुः) एतेन वा इन्द्रोऽत्यन्या देवता अभवदत्यन्याः
 प्रजा भवति य एवं वेद । तां० १९ । १६ । २ ॥
- इन्द्राग्निस्तोमः (ऋतुः) अथैष इन्द्राग्न्योः स्तोम एतेन वा इन्द्राग्नी
 अत्यन्या देवता अभवतामत्यन्याः प्रजा भवति य एवं
 वेद । तां० १९ । १७ । १ ॥
- ” पुरोधो- (= राजपौरोहित्यामिति सायणः) कामो
 (इन्द्राग्निस्तोमेन) यजेत । तां० १९ । १७ । ७ ॥

- इन्द्राग्नी प्राणोदानौ वाऽइन्द्राग्नी । श० २ । ५ । २ । ८ ॥
- ” इन्द्राग्नी हि प्राणोदानौ । श० ४ । ३ । १ । २२ ॥
- ” प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी । गो० २ । १ ॥
- ” प्राणापानौ वा एतौ देवानां यदिन्द्राग्नी । तै० १ । ६ । ४ । ३ ॥
- ” बलं वै तेज इन्द्राग्नी । गो० ७ । १ । २२ ॥
- ” ब्रह्मक्षत्रे वा इन्द्राग्नी । कौ० १२ । ८ ॥
- ” अमृतं इन्द्राग्नी । श० १० । ४ । १ । ६ ॥
- ” इन्द्राग्नी वै देवानामयातयामानौ । तै० १ । १ । ६ । ५ ॥
- १ । २ । ५ । १ ॥
- ” इन्द्राग्नी वै देवानां मुखम् । कौ० ४ । १४ ॥
- ” तस्मादाहुरिन्द्राग्नीऽएव देवानां श्रेष्ठाविति । श० ८ । ३ । १ । ३ ॥
- ” इन्द्राग्नी वै देवानामोजस्वितमौ । श० १३ । १ । २ । ६ ॥
- ” इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ । तां० २४ । १७ । ३ ॥ ष० ३ । ७ ॥
- ” इन्द्राग्नी इव बलेन (भूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥
- ” ओजो बलं वा एतौ देवानां यदिन्द्राग्नी । तै० १ । ६ । ४ । ४ ॥
- ” इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ बलिष्ठौ सहिष्ठौ सत्तमौ पार-
यिष्णुतमौ । ऐ० २ । ३६ ॥
- ” इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ बलिष्ठौ । तै० ३ । ८ । ७ । १ ॥
- ” एताभिर्वा इन्द्राग्नी अत्यन्या देवता अभवताम् । तां० २४ ।
१७ । २ ॥
- ” इन्द्राग्नी वै विश्वेदेवाः । श० १० । ४ । १ । ९ ॥
- ” इन्द्राग्नी वै सर्वे देवाः । कौ० १२ । ६ ॥ १६ । ११ ॥ श०
६ । १ । २ । २८ ॥
- ” इन्द्राग्नी वा इदं सर्वम् । श० ४ । २ । २ । १४ ॥
- ” अस्ति वै छन्दसां देवतेन्द्राग्नी । श० १ । ८ । २ । १६ ॥
- ” प्रतिष्ठे वा इन्द्राग्नी । कौ० ३ । ६ ॥ ५ । ४ ॥
- ” क्षत्रं वा इन्द्राग्नी । श० २ । ४ । २ । ६ ॥
- ” ज्योतिरिन्द्राग्नी । श० १० । ४ । १ । ६ ॥
- ” ऐन्द्राग्नी वै सामतस्तृतीयं सवनम् । कौ० ४ । ४ ॥
- ” तस्मादैन्द्राग्नी द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति । श० १ ।
६ । ४ । ३ ॥
- ” ऐन्द्राग्नी द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति । श० २ । ५ । २ । ८ ॥

इन्द्राग्नी ऐन्द्राग्निानि ह्यक्थानि । श० ४ । २ । ५ । १४ ॥ ४ । ६ । ३ । ३ ॥

” दर्शपूर्णमासयोर्वै देवते स्त इन्द्राग्नीऽपव । श० २ । ४ । ४ । १७ ॥

इन्द्राणी इन्द्राणी ह वाऽ इन्द्रस्य प्रिया पत्नी तस्या उष्णीषो विश्व-
रूपतमः । श० १४ । २ । १ । ८ ॥

” स एष एवेन्द्रः । योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषोऽधेयमिन्द्राणी
(योऽयं^{४३}सन्वेऽक्षन्पुरुषः) । श० १० । ५ । २ । ९ ॥

इन्द्रामस्तौ ऐन्द्रामारुता उक्षाणः । तां० २१ । १४ । १२ ॥

इन्द्राञ्जुनासीरः संवत्सरो वा इन्द्राशुनासीरः । तै० १ । ७ । १ । १ ॥

” इन्द्राय शुनासीराय (शुनो वायुः सीर आदित्य इति
सायणः-तै० २ । ५ । ८ । २ भाष्ये) पुरोडाशं द्वादश-
कपालं निर्वपति । तै० १ । ७ । १ । १ ॥

इन्द्रियं बृहत् (यजु० ३८ । २७) एतद्वाऽइन्द्रियं बृहद्य एष (सूर्यः)
तपति । श० १४ । ३ । १ । ३१ ॥

इन्द्रियावान् वीर्यवानित्येवैतदाह यदाहेन्द्रियावानिति । श० ३ । ९ ।
३ । २५ ॥

” वीर्यवत इत्येवैतदाह यदाहेन्दोरिन्द्रियावत इति । श०
४ । ४ । २ । १२ ॥

इन्द्रो मघवा विरप्ती इयं (पृथिवी) वा इन्द्रो मघवा विरप्शी । ऐ०
३ । ३८ ॥

इन्वकाः (मृगशीर्षसंघगतास्तारकाः) सोमस्येन्वकाः । तै० १ । ५ । १ । १ ॥

हरज्यन् (यजु० १२ । १०९) (= दीप्यमानः) हरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तु-
भिरिति । मनुष्या वै जन्तवो दीप्यमानोऽग्ने प्रथस्व मनुष्यै-
रित्येतत् । श० ७ । ३ । १ । ३२ ॥

इरा इरा पत्नी विश्वसृजाम् । तै० ३ । १२ । ९ । ५ ॥

इलान्दम् (साम) इरान्नं वा एतत् । तां० ५ । ३ । २ ॥

” एतद्वै साक्षादन्नं यदिलान्दम् । तां० ५ । ३ । २ ॥

इलुवर्दः संवत्सरो वा इलुवर्दः । तै० ३ । ८ । २० । ५ ॥

इषः (यजु० २१ । ४७) प्रजा वाऽइषः । श० १ । ७ । ३ । १४ ॥ ४ ।
१ । २ । १५ ॥

इषम् (ऋ० ७ । ६६ । ९) अयं वै लोक इषमिति । ऐ० ६ । ७ ॥

” अन्नं वा इषम् । कौ० २८ । ५ ॥

[इष्टिः

(९०)

इषश्चोर्जश्च पतावेव शारदौ (मासौ) स यच्छरद्यूर्मस ओषधयः
पच्यन्ते तेनो द्वैताविषश्चोर्जश्च । श० ४ । ३ । १ । १७ ॥

इषिरः (यजु० १८ । ४०) इषिर इति । क्षिप्र इत्येतत् । श० ९ ।
४ । १ । १० ॥

इषीकाः अमृतं वा इषीकाः । तै० ३ । ८ । ४ । ३ ॥

„ आयुर्वा इषीकाः । तै० ३ । ८ । ४ । ३ ॥

इषुः वीर्यं वाऽइषुः । श० ६ । ३ । २ । १० ॥

„ रुद्रस्य हीषुः । श० २ । ६ । २ । ३ ॥

„ तस्मादिषुहतो वा दण्डहतो वा दशमीं (रात्रि) नैर्दह्यं
(= दुःखनिवृत्ति) गच्छति । तां० २२ । १४ । ३ ॥

इषोवृधीयम् (साम) मेथी (= गवां बन्धने निखातस्थानं) वा इषोवृ-
धीयम् । तां० १३ । ९ । १७ ॥

„ पशवो वा इषोवृधीयम् । तां० १३ । ९ । ९ ॥

इष्कर्त्ता (यजु० १२ । ११०) इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसमिति । अ-
ध्वरो वै यज्ञः । प्रकल्पयितारं यज्ञस्य प्रचेतसमित्येतत् ।
श० ७ । ३ । १ । ३३ ॥

इष्टका तद्यदिष्टात्समभवंस्तस्मादिष्टकाः । श० ६ । १ । २ । २२ ॥

„ यदिष्ट्वापश्यत्तस्मादिष्टका । श० ६ । ३ । १ । २ ॥

„ तद्यदिष्ट्वा पशुनापश्यत् । तस्मादिष्टकाः । श० ६ । २ ।
१ । १० ॥

„ तद्यदस्माऽइष्टे कमभवत्तस्माद्वेष्टकाः । श० ६ । १ । २ । २३ ॥

„ अस्थीनि वाऽइष्टकाः । श० ८ । ७ । २ । १० ॥

„ अस्थीष्टका । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥ ८ । ७ । ४ । १९ ॥

„ अहोरात्राणि वाऽइष्टकाः । श० ९ । १ । २ । १८ ॥

इष्टर्गः इष्टर्गो वा ऋत्विजामध्वर्युः । तै० १ । ४ । ६ । ४ ॥

इष्टापूर्त्तम् अयजतेत्यद्दादिति ब्राह्मणो गायतीष्टापूर्त्तं वै ब्राह्मणस्य ।
श० १३ । १ । ५ । ६ ॥

इष्टिः यज्ञो वै देवेभ्य उदक्रामत्तमिष्टिभिः प्रैषमैच्छन्त्यदिष्टिभिः प्रैष-
मैच्छंस्तदिष्टीनामिष्टित्वम् । ऐ० १ । २ ॥

„ पृथयो इ वै नाम ता इष्टय इत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया
इष हि देवाः । तै० १ । ५ । ९ । २ ॥ ३ । १२ । २ । १ ॥ ३ ।
१२ । ४ । १ ॥

- इष्टिः (देवाः) तं (इन्द्रं) इष्टिभिरन्वैच्छन् । तमिष्टिभिरन्वविन्द-
न् । तदिष्टीनामिष्टित्वम् । तै० १ । ५ । ९ । २ ॥
- ” तं (स्वर्गं लोकं) इष्टिभिरन्वैच्छत् । तमिष्टिभिरन्वविन्दत् ।
तदिष्टीनामिष्टित्वम् । तै० ३ । १२ । २ । १ ॥ ३ । १२ । ४ । १ ॥
- ” (प्रजापतिः) तं (अश्वमेधं) इष्टिभिरन्वैच्छत् । तमिष्टि-
भिरन्वविन्दत् । तदिष्टीनामिष्टित्वम् । तै० ३ । ९ । १३ । १ ॥
- इहनिधनम् (साम) (देवाः) अस्मिन्नेव लोक इहनिधनेन प्रत्यति-
ष्ठन् । तां० १० । १२ । ३ ॥
- इहेडम् (साम) (देवाः) अस्मिन्नेव लोक इहेडेन प्रत्यतिष्ठन् ।
तां० १० । १२ । ४ ॥
- इहेह अयं वै लोक इहेह । ऐ० ४ । ३० ॥
- ईडेन्यः वाग्धीद^३ सर्वमीद्रे वाचेद^३ सर्वमीडितम् । श० १ । ४ ।
३ । ५ ॥
- ” मनुष्या वाऽईडेन्याः । श० १ । ५ । २ । ३ ॥
- ” (ऋ० ३ । २७ । १३) ईडेन्यो होवः (अग्निः) । श० १ ।
४ । १ । २९ ॥
- ” वाग्वाऽईडेन्या । श० १ । ४ । ३ । ५ ॥
- ईड्यः (यजु० १७ । ५५) ईड्य इति यज्ञिय इत्येतत् । श० ९ । २ ।
३ । ९ ॥
- ईनिधनम् (साम) अन्तरिक्षमीनिधनम् । तां० २१ । २ । ७ ॥
- ” (देवाः) अमृतत्वमीनिधनेनागच्छन् । तां० १० ।
१२ । ३ ॥
- ईशानः आदित्यो वाऽईशान आदित्यो ह्यस्य सर्वस्येष्टे । श० ६ ।
१ । ३ । १७ ॥
- ” एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः = शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः,
भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः ।
श० ६ । १ । ३ । १८ ॥
- ” ईशानो मे मन्यौ श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ९ ॥
- ” स ह स (असुः) ईशानो नाम । स दशधा भवति । स एष
एतस्य (आदित्यस्य) रश्मिरसुर्भूत्वा सर्वास्वासु प्रजासु
प्रत्यवस्थितः । औ० उ० १ । २९ । ३, ४ ॥

ईशानः दक्षिणतो वासीशानो भूतो वासि । जै० उ० ३ । २१ । २ ॥
 ,, यदीशानोऽन्नं तेन । कौ० ६ । ८ ॥

(उ)

- उक्थम् प्राण उऽ एवोक्तस्थानमेव थं तदुक्थमृक्तः । श० १० ।
 ४ । १ । २३ ॥
 ,, एष (अग्निः) उऽ एवोक्तस्यैतदन्नं थं तदुक्थमृक्तः । श०
 १० । ४ । १ । ४ ॥
 ,, अग्निर्वाऽ उक्तस्याहुतय एव थम् । श० १० । ६ । २ । ८ ॥
 ,, आदित्यो वा उक् । तस्य चन्द्रमा एव थम् । श० १० ।
 ६ । २ । ९ ॥
 ,, प्राणो वाऽ उक्तस्यान्नमेव थम् । श० १० । ६ । २ । १० ॥
 ,, (देवाः सोमं) उक्थैरुदस्थापयन् । तदुक्थानामुक्थत्वम् ।
 तै० २ । २ । ८ । ७ ॥
 ,, (वागिति) एतदेषां (नास्त्रां) उक्थमतो हि सर्वाणि
 नामान्युत्तिष्ठन्ति । श० १४ । ४ । ४ । १ ॥
 ,, घागुक्थम् । ष० १ । ५ ॥
 ,, अन्नमुक्थानि । कौ० ११ । ८ ॥ १७ । ७ ॥
 ,, प्रजा वा उक्थानि । तै० १ । ८ । ७ । २ ॥
 ,, पशव उक्थानि । ऐ० ४ । १, १२ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥ तै०
 १ । ८ । ७ । २ ॥
 ,, पशवो वा उक्थानि । कौ० २८ । १० ॥ २९ । ८ ॥ ष० ३ ।
 ११ ॥ तै० १ । २ । २ । २ ॥ तां० ४ । ५ । १८ ॥ १६ । १० ।
 २ ॥ १९ । ६ । ३ ॥
 ,, विडुक्थानि । तां० १८ । ८ । ६ ॥ १९ । १६ । ६ ॥
 ,, ऐन्द्राज्ञानि ह्युक्थानि । श० ४ । २ । ५ । १४ ॥ ४ । ६ । ३३ ॥
 ,, (देवाः) अन्तरिक्षमुक्थेन (अभ्यजयन्) । तां० ९ । २ । ९ ॥
 ,, (देवाः) उक्थैरन्तरिक्षं (लोकमभ्यजयन्) । तां० २० ।
 १ । ३ ॥
 ,, अपच्छिवि वा एतच्चक्रकाण्डं यदुक्थानि । तां० ११ । ११ ।
 २ ॥ १३ । ६ । २ ॥ १४ । ६ । १ ॥

उक्थम् यदुक्थानि भवन्त्यनुसन्तत्या एव । तां० १८ । ८ । ६ ॥

उक्थः (ऋतुः) उक्थः षोडशिमान् भवति । तां० १९ । ६ । ३ ॥

उक्थ्यम् अन्नं वा उक्थ्यम् । गो० पू० ४ । २० ॥

” पशव उक्थ्यानि । कौ० २१ । ५ ॥

” अन्तरिक्षमुक्थ्येन (अभिजयति) । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

उक्थ्यं वचः यन्नियं वै कर्मोक्थ्यं वचः । ऐ० १ । २९ ॥

उक्थ्यः अन्नं वाऽउक्थ्यः । श० १२ । २ । २ । ७ ॥

उक्षा पेन्द्रामारुता उक्षाणः । तां० १ । १४ । १२ ॥

उक्षा एतद्वै देवा एतेन कर्मणैतयावृतेमांल्लोकानुदखनन् यदुदखनं-
स्तस्मादुत्खोत्खा ह वै तामुखेत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ६ ।

७ । १ । २३ ॥

” आत्मैवोखा । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥ ६ । ६ । २ । १५ ॥

” शिर एतद्यज्ञस्य यदुखा । श० ६ । ५ । ३ । ८ ॥ ६ । ५ ।
४ । १५ ॥

” उदरमुखा । श० ७ । ५ । १ । ३८ ॥

” योनिर्वाऽउखा । श० ७ । ५ । २ । २ ॥

” इमे वै लोका उखा । श० ६ । ५ । २ । १७ ॥ ६ । ७ । १ । २२ ॥

७ । ५ । १ । २७ ॥

” प्राजापत्यमेतत्कर्म यदुखा । श० ६ । २ । २ । २३ ॥

” पर्वैतदग्नेर्यदुखा । ६ । २ । २ । २४ ॥

उरुयः (यजु० १४ । १) अर्यं वाऽअग्निरुख्यः । श० ८ । २ । १ । ४ ॥

उग्रं वचः अशनायापिपासे ह वा उग्रं वचः । तै० १ । ५ । ९ । ६ ॥

उग्रः वायुर्वाऽउग्रः । श० ६ । १ । ३ । १३ ॥

” एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः = शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः,
भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नधमः ।

श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

उग्रो देवः यदुग्रो देव ओषधयो वनस्पतयस्तेन । कौ० ६ । ५ ॥

उष्वाटनम् हरितालेन गोहृदयशोणितेन चेत्युत्तरेण सन्नयेद् यं द्वि-
ष्यात्प्रमथ्द्विष्टीयेनास्य शय्यामवकिरेदगारं च भस्मना
नैकग्रामे वसति । सा० २ । ६ । ६ ॥

[उत्सेधः

(९४)

उत् उदिति सोऽसावादित्यः । जै० उ० २ । ९ । ८ ॥

उत्तरं सधस्थम् (यजु० १५ । ५४ ॥ १७ । ७३) द्यौर्वाऽउत्तरं^३सध-
स्थम् । श० ८ । ६ । ३ । २३ ॥ ९ । २ । ३ । ३५ ॥

उत्तरः तेषु हि वा एष एतद्ध्याहितस्तपति स वा एष (सूर्यः)
उत्तरोऽस्मात्सर्वस्माद्भूताद्भूविष्यतः सर्वमेवेदमतिरोचते य-
दिदं किंच । ऐ० ४ । १८ ॥

” (यजु० ३८ । २४) अयं वै (भू-) लोकोऽद्भ्य उत्तरः । श०
१४ । ३ । १ । २८ ॥

उत्तर आघारः शिरो वै यज्ञस्योत्तर आघारः । श० १ । ४ । ५ । ५ ॥

उत्तरनाभिः वाग्वाऽउत्तरनाभिः । श० १४ । ३ । १ । १६ ॥

उत्तरवेदिः नासिका ह वा ऽएषा यज्ञस्य यदुत्तरवेदिः । अथ यदेना-
मुत्तरां वेदेरुपकिरति तस्मादुत्तरवेदिर्नाम । श० ३ । ५ ॥
१ । १२ ॥

” द्यौरुत्तरवेदिः । श० ७ । ३ । १ । २७ ॥

” योनिर्वाऽउत्तरवेदिः । श० ७ । ३ । १ । २८ ॥

” योषा वाऽउत्तरवेदिः । श० ३ । ५ । १ । ३३ ॥

” पशवो वा उत्तरवेदिः । तै० १ । ६ । ४ । ३ ॥

” खल उत्तरवेदिः । तां० १६ । १३ । ७ ॥

उत्तरा देवयज्या यस्य हि प्रजा भवत्यमुं लोकमात्मनैत्यथास्मिलोके
प्रजा यजते तस्मात्प्रजोत्तरा देवयज्या । श० १ । ८ ।
१ । ३१ ॥

उत्तरौष्ठः असौ लोक उत्तरौष्ठः । कौ० ३ । ७ ॥

उत्तान आंगिरसः इयं (पृथिवी) वा उत्तान आङ्गिरसः । तै० २ ।
३ । २ । ५ ॥ २ । ३ । ४ । ६ ॥

उत्थानम् यत्ततो यज्ञस्योद्वचं गत्वोत्तिष्ठन्ति तदुत्थानम् । श०
४ । ६ । ८ । २ ॥

उत्सः (यजु० १२ । १९) आपो वाऽउत्सः । श० ६ । ७ । ४ । ४ ॥

उत्सेधः (सामविशेषः) उत्सेधेन वै देवाः पशूनुदशोधन् । तां० १५ ।
९ । ११ ॥

” उत्सेधनिषेधौ ब्रह्म सामनी भवत उत्सेधेनैवास्मै पशूनुत्सि-
ध्य निषेधेन परिगृह्णाति । तां० १९ । ७ । ४ ॥

- उदयनीयम् अथ यदत्रावभृथादुदेत्य यजते तस्मादेतदुदयनीयम् ।
श० ४ । ५ । १ । २ ॥
- ” वागुदयनीयम् । कौ० ७ । ९ ॥
- ” प्राणोदानावेव यत्प्रायणीयोदयनीये । कौ० ७ । ५ ॥
- उदयनीयः (यागः) आदित्य उदयनीयः । श० ३ । २ । ३ । ६ ॥
- ” उदान उदयनीयः । ऐ० १ । ७ ॥
- उदरम् उदरमेकविंशः । विंशतिर्वा अन्तर्दरे कुन्तापान्युदरमे-
कविंशम् । श० १२ । २ । ४ । १२ ॥
- ” उदरमुखा । श० ७ । ५ । १ । ३८ ॥
- ” उदरं वाऽ उपयमन्युदरेण हीदं सर्वमन्नाद्यमुपयतम् ।
श० १४ । २ । १ । १७ ॥
- उदकः रसो वा उदकः । कौ० ११ । ५ ॥
- उदानः उदानो ह्यन्तर्यामोऽमुं (दिवं) ह्येव लोकमुदनन्नभ्युद-
निति । श० ४ । १ । २ । २७ ॥
- ” (यज्ञस्य) उदान एवान्तर्यामः । श० ४ । १ । १ । १ ॥
- ” तद्यदस्यैषो (उदानः) ऽन्तरात्मन्यतो यद्वेनेनेमाः प्रजा
यतास्तस्मादन्तर्यामो नाम । श० ४ । १ । २ । २ ॥
- ” उदान उदयनीयः । ऐ० १ । ७ ॥
- ” उदस्त इव ह्ययमुदानः । ष० २ । २ ॥
- ” तं (संक्षप्तं पशुं) उदीचीं दिग्दानेत्यनुप्राणदुदानमेवास्मिं-
स्तदध्यात् । श० ११ । ८ । ३ । ६ ॥
- ” चन्द्रमा उदानः । जै० ३० । ४ । २२ । ९ ॥
- ” उदानो वै त्रिककुण्डः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥
- ” उदानो वै नियुतः । श० ६ । २ । २ । ६ ॥
- उदीची दिक् एषा (उदीची) वै मनुष्याणां दिक् । तै० १ । ६ । ९ । ७ ॥
- ” उदीची हि मनुष्याणां दिक् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥ १ ।
७ । १ । १२ ॥
- ” उदीचीमावृत्य दोग्धि मनुष्यलोकेमव तेन जयति । तै०
२ । १ । ८ । १ ॥ ३ । २ । १ । ३ ॥
- ” तस्मान्मानुषऽउदीचीनवशांमेव शालां वा विमितं
वा भिन्वन्ति । श० ३ । १ । १ । ७ ॥

- उदीची दिक् एषा (उदीची) वै देवमनुष्याणां शान्ता दिक् । तै०
२ । १ । ३ । ५ ॥
- ” उत्तरा ह वै सोमो राजा । ऐ० १ । ८ ॥
- ” यदुत्तरतो वासि सोमो राजा भूतो वासि । जै० उ० ३ ।
२१ । २ ॥
- ” उदीचीनदशं वै तत्पाविभ्रं भवति येन तत्सोमं राजान-
ं संपाचयन्ति । श० १ । ७ । १ । १३ ॥
- ” उत्तरार्धे जुहोत्येषा (उदीची) ह्येतस्य देवस्य (रुद्रस्य)
दिक् । श० १ । ७ । ३ । २० ॥
- ” एषा (उदीची) ह्येतस्य देवस्य (रुद्रस्य) दिक् । श०
२ । ६ । २ । ७ ॥
- ” एषा (उदीची) वै रुद्रस्य दिक् । तै० १ । ७ । ८ । ६ ॥
- ” यदुदञ्चः परेत्य त्र्यम्बकैश्चरन्ति रुद्रमेव तत्स्वायां दिशि
प्रीणन्ति । कौ० ५ । ७ ॥
- एषा (उत्तरा = उदीची) द्वि दिक् स्विष्टकृतः । श० २ ।
३ । १ । २३ ॥
- ” एषा (उत्तरा) वै वरुणस्य दिक् । तै० ३ । ८ । २० । ४ ॥
- ” उदीची दिक् । मित्रावरुणौ देवता । तै० ३ । ११ । ५ । २ ॥
- ” मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्व-
स्यारिष्ट्यै (यजु० ११ । ३) । श० १ । ३ । ४ । ४ ॥
- ” नक्षत्राणां वा एषा दिग्युदीची । ष० ३ । १ ॥
- ” साम्नामुदीची महती दिगुच्यते । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥
- ” उदीच्युद्गातुः (दिक्) । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥
- ” अयास्येनाऽऽङ्गिरसेन (उद्गात्रा) मनुष्या उत्तरतः (अपि-
त्वमेषिरे) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥
- ” तस्मादुद्गाता वृत उत्तरतो निवेशनं लिप्सेत । जै० उ०
२ । ८ । २ ॥
- ” उदीचीमेव दिशम् । पथ्यया स्वस्त्या प्राजानन् । श० ३ ।
२ । ३ । १५ ॥
- ” सा (पथ्या स्वस्तिः) उदीचीं दिशं प्राजानात् । कौ०
७ । ६ ॥

- उदीची दिक् उदीचीमारोह । अनुष्टुप्त्वावतु वैराजश्च सामैकविष्णु-
श स्तोमः शरद्वतुः फलं द्रविणाम् । श० ५ । ४ । १ । ६ ॥
- ” मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुत्त्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरास-
द्भ्यः स्वाहा । श० ५ । २ । ४ । ५ ॥
- ” विश्वे त्वा देवा उत्तरतोऽभिषिञ्चन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा ।
तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥
- ” अथैनं (इन्द्रं) उदीच्यां दिशि विश्वे देवा.....अभ्यषि-
ञ्चन्.....वैराज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥
- ” विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पानु । श० ३ । ५ । २ । ७ ॥
- ” तस्मादुत्तरतः पश्चादयं भूयिष्ठं पवमानः (=वायुः)
पवते सवितृप्रसूतो ह्येष एतत्पवते । ऐ० १ । ७ ॥
- ” (वायुः) यदुत्तरतो वाति । सवितैव भूत्वोत्तरतो वाति ।
तै० २ । ३ । ९ । ७ ॥
- ” (हे देवा यूयं) सवित्रोदीचीं (दिशं प्रजानाथ) । ऐ०
१ । ७ ॥
- ” स ह्यग्निरुवाच । (असुराः) उदञ्चो वै नः पलाय्य
मुच्यन्त इति । श० १ । २ । ४ । १० ॥
- ” अथैतस्यामुदि (दी) च्यान्दिशि भूयिष्ठं विद्योतते । ष० २ । ४ ॥
- ” तस्मादेतस्यां (उदीच्यां) दिशि प्रजाः अशनायुकाः ।
श० ७ । ३ । १ । २३ ॥
- ” तस्मादेतस्यां (उदीच्यां) दिश्येतौ पशू (अश्वश्चा-
विश्व) भूयिष्ठौ । श० ७ । ५ । २ । १६ ॥
- ” अथ यदुदीच्यां दिशि तत्सर्वमुद्रीथेनाप्नोति । जै० उ०
१ । ३१ । ६ ॥
- ” उत्तरत आयतनो वै होता । तै० ३ । ९ । ५ । २ ॥
- ” उदीच्येव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- ” शमीमयं (शङ्कुं) उत्तरतः, शं मेऽसदिति । श० १३ । ८ ।
४ । १ ॥
- ” तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं
जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्याथैव तेऽभि-

- विच्यन्ते विराडित्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥
 उदीची दिक् तस्मादुदीच्यां दिशि प्रज्ञातत वागुद्यत उदञ्च उ
 एव यन्ति वाचं शिञ्चितुं यो वा तत आगच्छति तस्य
 वा शुश्रूषन्त इति । कौ० ७ । ६ ॥
- „ उदीचीमेव दिशम् । पथ्यया स्वस्त्या प्राजानंस्तस्माद्-
 त्रोत्तरादि वाग्वदति कुरुपञ्चालत्रा । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥
 उदीची प्राची (दिक्) एतस्याऽऽह (उदीच्यां प्राच्यां) दिशि स्वर्ग-
 स्य लोकस्य द्वारम् । श० ६ । ६ । २ । ४ ॥
- „ एषा होभयेषां देवमनुष्याणां दिग्यदुदीची प्राची ।
 श० ६ । ४ । ४ । २२ ॥
- उदुम्बरीयम् (सूक्तम्) ऋतवो वा उदुम्बरीयम् । कौ० २९ । ६ ॥
- उदुम्बरः स (प्रजापतिः) अब्रवीत् अयं वाव मा सर्वस्मात्पाप्मन उदमा-
 र्णीदिति यदब्रवीदुदमार्षीन्मेति तस्मादुदुम्बर उदुम्बरो ह
 वै तमुदुम्बर इत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ७ । ५ । १ । २२ ॥
- „ अथास्य (प्रजापतेः) इन्द्र ओज आदायोदङ्कुदकामत्स
 उदुम्बरो ऽभवत् । श० ७ । ४ । १ । ३९ ॥
- „ औदुम्बरं (यूपम्) अन्नाद्यकामस्य । ष० ४ । ४ ॥
- „ औदुम्बरेण राजन्यः (अभिषिञ्चति) । ऊर्जमेवास्मिन्नन्नाद्यं
 दधाति । तै० १ । ७ । ८ । ७ ॥
- „ ऊर्वा अन्नाद्यमुदुम्बरः । ऐ० ५ । २४ ॥ ८ । ८, ९ ॥ कौ० २५ ।
 १५ ॥ २७ । ६ ॥
- „ ऊर्वा उदुम्बरः । तै० १ । १ । ३ । १० ॥ तां० ५ । ५ । २ ॥
- „ अन्नं वाऽ ऊर्गुदुम्बरः । श० ३ । २ । १ । ३३ ॥ ३ । ३ । ४ । २७ ॥
- „ ऊर्वा अन्नमुदुम्बरः । तै० १ । २ । ६ । ५ ॥
- „ ऊर्गुदुम्बरः । तां० ६ । ४ । ११ ॥ १६ । ६ । ४ ॥
- „ प्रजापति देवेभ्य ऊर्जं व्यभजत्तत उदुम्बरः समभवत् ।
 तां० ६ । ४ । १ ॥
- „ यद्वैतद्देवा इषमूर्जे व्यभजन्त तत उदुम्बरः समभवत्तस्मान्स्
 त्रिः संवत्सरस्य पच्यते । ऐ० ५ । २४ ॥
- „ ते ह सर्व एव वनस्पतयो ऽसुरानभ्युपेयुरुदुम्बरो ह वै देवान्

जहौ ते देवा असुरान् जित्वा तेषां वनस्पतीनवृञ्जत ।

श० ६ । ६ । ३ । २ ॥

उदुम्बरः गृहपतिरौदुम्बरीं धारयति गृहपतिर्ध्वा ऊर्जो यन्तोर्जमेवै-
भ्यो यच्छति । तां० ४ । ९ । १५ ॥

„ मा०७७सेम्य एवास्योर्गस्रवत्स उदुम्बरोऽभवत् । श०१२।७।१।९॥

„ ऊर्जो वा एषोऽन्नाद्याङ्गनस्पतिरजायत यदुदुम्बरः । ऐ०७।३२॥

„ तद्येषु वनस्पतिभूग्यो रस आसीदुदुम्बरे तमदधुस्तथै-
तदूर्जा सर्वाङ्गनस्पतीन्प्रति पच्यते तस्मात्स सर्वदारुः
सर्वदा क्षीरी तदेतत्सर्वमन्नं यदुदुम्बरः सर्वे वनस्पतयः ।

श० ६ । ६ । ३ । ३ ॥

„ अथो सर्वेऽ एते वनस्पतयो यदुदुम्बरः । श० ७ । ५ । १ । १५ ॥

„ भौज्यं वा एतदङ्गनस्पतीनां (यदुदुम्बरः) । ऐ० ७ । ३२ ॥ ८ । १६ ॥

„ प्राजापत्यो वा उदुम्बरः । तां० ६ । ४ । १ ॥

„ प्राजापत्य उदुम्बरः । श० ४ । ६ । १ । ३ ॥

उद्गाता सूर्य्य उद्गाता । गो० पू० १ । १३ ॥

„ आदित्यो वा उद्गाताऽधिदैवं चक्षुरध्यात्मम् । गो० पू० ४ । ३ ॥

„ सौर्य्य उद्गाता । तां० १८ । ९ । ८ ॥

„ पर्जन्यो वाऽ उद्गाता । श० १२ । १ । १ । ३ ॥

„ वर्षा उद्गाता तस्माद्यदा बलवद्वर्षति सास्र इवोपद्भिः क्रियते ।
श०११।२।७।३२॥

„ प्राण उद्गाता । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

„ ते य एवेमे मुख्याः प्राणा एत एवोद्गातारश्चोपगताश्च ।
जै० उ० १ । २२ । ५ ॥

„ देवानां वै षडुद्गातार आसन् वाक् च मनश्च चक्षुश्च श्रोत्रं
चाऽपानश्च प्राणश्च । जै० उ० २ । १ । १ ॥

„ एतद्वा उद्गातृणा०७७हस्तकार्य्यं यत्पवित्रस्य विग्रहणम् । तां०
६ । ६ । १२ ॥

„ अनभिजिता वा एषोद्गातृणां दिग्भ्यत्प्राची । तां० ६ । ५ । २० ॥

„ तस्मादुद्गाता वृत उत्तरतो निवेशनं लिप्सेत । जै० उ० २ ।
८ । २ ॥

उद्गाता अयास्येनाऽऽङ्गिरसेन (उद्गात्रा दीक्षामहा इति) मनुष्या उत्तरतः
(आगच्छन् । जै० उ० २ । ७ । २ ॥

„ उद्गीच्युद्गातुः (दिक्) । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥

„ एष वै यजमानस्य प्रजापतिर्यदुद्गाता । तां० ७ । १० । १६ ॥

„ प्रजापतिर्वाऽउद्गाता । श० ४ । ३ । २ । ३ ॥

„ प्राजापत्य उद्गाता । तां० ६ । ४ । २ ॥ ६ । ५ । १८ ॥

„ उद्गातैव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

उद्गीथः सोऽसावादित्यस्स एष एव उदग्निरेव गी चन्द्रमा एव थम् ।
सामान्येव उहच एव गी यजूष्येव थमित्यधिदेवतम् ।
अथाध्यात्मम् । प्राण एव उद्वागेव गी मन एव थम् । स एषो
ऽधिदेवतं चाऽध्यात्मं चोद्गीथः । जै० उ० १ । ५७ । ७-८ ॥

„ प्राणो वावोद्वाग्गी स उद्गीथः । जै० उ० ४ । २३ । २ ॥

„ एषः (प्राणः) उ वाऽउद्गीथः । प्राणो वाऽउत्प्राणेन हीदृषु
सर्वमुत्तब्धं वागेव गीथोच्च गीथा चेति स उद्गीथः । श० १४ ।
४ । १ । २५ ॥

„ एष वशी दीप्ताग्र उद्गीथो यत्प्राणः । जै० उ० २ । ४ । १ ॥

„ (प्रजापतिः) प्राणमुद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । ५ ॥

„ आदित्य उद्गीथः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥

„ प्रजापतिरुद्गीथः । तै० ३ । ८ । २२ । ३ ॥

„ (प्रजापतिः) सामान्युद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । ३ ॥

„ ऋतव उद्गीथः । ष० ३ । १ ॥

„ वर्षा उद्गीथः । ष० ३ । १ ॥

„ (प्रजापतिः) वर्षामुद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १२ । ७ ॥

„ (प्रजापतिः) स्तनयित्नुमुद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ ।
१३ । १ ॥

„ माध्यन्दिन उद्गीथः । जै० १ । १२ । ४ ॥

„ सोमवृहस्पती उद्गीथः । जै० उ० १ । ५८ । ९ ॥

„ एष (वायुः) वै सोमस्योद्गीथो यत्पवते । तां० ६ । ६ । १८ ॥

„ पुरुषो होद्गीथः । जै० उ० ४ । ९ । १ ॥

„ पुरुष उद्गीथः । जै० उ० १ । ३३ । ९ ॥

- उद्गीथः मांसमुद्गीथः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥
- „ भ्रम्रा, यज्ञो, दक्षिणा एष उद्गीथः । जै० उ० १ । १९ । २ ॥
- „ (प्रजापतिः) उद्गीथं देवेभ्योऽमृतम् (प्रायच्छत्) । जै० उ० १ । ११ । ८ ॥
- „ अथ यदुदीच्यां दिशि तत्सर्वमुद्गीथेनाप्नोति । जै० उ० १ । ३१ । ६ ॥
- उद्भिद् (ऋतुः) यदुद्भिदा यजते बलमेवास्मै (यजमानाय) विच्यावयति ।
तां० १९ । ७ । ३ ॥
- उदंशीयम् (साम) पृष्ठानि वा असृज्यन्त तेषां यत्तेजो रसो ऽत्यरिच्यत
तद्देवाः समभर००स्तदुद्भ००शीयमभवत् । तां०
८ । ९ । ६ ॥
- „ सर्वेषां वा एतत्पृष्ठानां तेजो यदुद्भ००शीयम् । तां०
८ । ९ । ७ ॥
- उद्भिः अन्तरिक्ष०० ह्येष उद्भिः । श० ६ । ५ । २ । ४ ॥
- उप इयं (पृथिवी) वाऽउप । द्वयेनेयमुप यद्दीदं किंच जायतेऽस्यां
तदुपजायतेऽथ यन्नृच्छत्यस्यामेव तदुपोप्यते । श० २ । ३ । ४ । ९ ॥
- „ उप वै रथन्तरम् (“ उपशब्दसम्बद्धं हि रथन्तरपृष्ठं ज्योतिष्टोमे ”
इति सायणः) । तां० १६ । ५ । १४ ॥
- उपगातारः तस्मादु चतुर एवोपगातॄन् कुर्वीत । जै० उ० १ । २२ । ६ ॥
- „ आर्त्तवा उपगातारः । तै० ३ । १२ । ९ । ४ ॥
- „ त य एवेमे मुख्याः प्राणा एत एवोद्गातारश्चोपगातारश्च ।
जै० उ० १ । २२ । ५ ॥
- उपगुः (सौश्रवसः) उपगुर्वै सौश्रवसः कुत्सस्यौरवस्य पुरोहित आसीत् ।
तां० १४ । ६ । ८ ॥
- उपदीकाः इमा वै वम्रयो यदुपदीकाः । श० १४ । १ । १ । ८ ॥
- उपदेशनवन्तः (स्तोमाः) प्राणो वै त्रिवृदर्द्धमासः पञ्चदशः संघत्सरः
सप्तदश आदित्य एकवि०० एते वै स्तोमा
उपदेशनवन्तः । तां० ६ । २ । २ ॥
- उपद्रवः विश्वे देवा उपद्रवः । जै० उ० १ । ५८ । ९ ॥
- „ (प्रजापतिः) उपद्रवं गन्धर्वाप्सरोभ्यः (प्रायच्छत्) । जै० उ० १ । १२ । १ ॥

- उपद्रवः आपः प्रजा ओषधय एष उपद्रवः । जै० उ० १ । १६ । २ ॥
- „ यदुपास्तमयं लोहितायति स उपद्रवः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥
- „ अथ यदन्तरिक्षे तत्सर्वमुपद्रवेणाप्नोति । जै० उ० १ । ३१ । ८ ॥
- उपद्रष्टा अग्निर्वा उपद्रष्टा । गो० उ० ४ । ९ ॥ तै० ३ । ७ । ५ । ४ ॥
- „ ब्राह्मणो वा उपद्रष्टा । गो० उ० २ । १९ ॥
- उपभृत् अथेदमन्तरिक्षमुपभृत् । श० १ । ३ । २ । ४ ॥
- „ अन्तरिक्षमुपभृत् । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ६ । ११ ॥
- „ भ्रातृव्यदेवत्योपभृत् । तै० ३ । ३ । ५ । ४ ॥ ३ । ३ । ७ । ६ ॥
- ३ । ३ । ९ । ७ ॥
- „ सावित्र्युपभृत् । तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥
- „ उपभृत्सव्यः (हस्तः) । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥
- „ अत्तैव जुहुराय उपभृत् । श० १ । ३ । २ । ११ ॥
- उपयजः यद्यजन्तमुपयजति तस्मादुपयजो नाम । श० ३ । ८ । ४ । १० ॥
- उपयमनी उदरं वाऽउपयमन्युदरेण हीदणु सर्वमन्नाद्यमुपयतम् । श० १४ । २ । १ । १७ ॥
- „ अन्तरिक्षं वाऽउपयमन्यन्तरिक्षेण हीदणु सर्वमुपयतम् । श० १४ । २ । १ । १७ ॥
- उपयाम (ग्रहः) इयं (पृथिवी) वाऽउपयाम इयं वाऽइदमन्नाद्यमुपयच्छति पशुभ्यो मनुष्येभ्यो वनस्पतिभ्यः । श० ४ । १ । २ । ८ ॥
- उपवसथः यदहरस्य इवो ऽग्न्याधेयणु स्यात् । दिवैवाश्रीयान्मनो ह वै देवा मनुष्यस्याजानन्ति तेऽस्यैतच्छ्रुोऽग्न्याधेयं विदुस्तेऽस्य विश्वे देवा गृहानागच्छन्ति तेऽस्य गृहेषूपवसन्ति स उपवसथः । श० २ । १ । ४ । १ ॥
- „ ते (विश्वे देवाः) एतद्धविः प्रविशन्ति तऽपतासु वसतीवरीषूपवसन्ति स उपवसथः । श० ३ । ९ । २ । ७ ॥
- उपवाकाः यच्छ्लेष्मणस्ता उपवाकाः (अभवन्) । श० १२ । ७ । १ । ३ ॥
- उपवेषः उपेव वाऽपनेनैतद्वेष्टि तस्मादुपवेषो नाम । श० १ । २ । १ । ३ ॥
- „ परिवेषो वा एष वनस्पतीनाम् । यदुपवेषः । तै० ३ । ३ । ११ । १ ॥
- „ धृष्टिर्वा उपवेषः । तै० ३ । ३ । ११ । २ ॥
- उपश्रोता वायुर्वा उपश्रोता । गो० उ० २ । १९ ॥ ४ । ९ ॥ तै० ३ । ७ । ५ । ४ ॥

- उपसदः ते (देवाः) एताभिरुपसद्भिर्दुपासीदंस्तस्मादुप-
सदो नाम । श० ३ । ४ । ४ । ४ ॥
- „ ऋतव उपसदः । श० १० । २ । ५ । ७ ॥
- „ मासा उपसदः । श० १० । २ । ५ । ६ ॥
- „ अर्धमासा उपसदः । श० १० । २ । ५ । ५ ॥
- „ अहोरात्राणि वाऽ उपसदः । श० १० । २ । ५ । ४ ॥
- „ इमे लोका उपसदः । श० १० । २ । ५ । ८ ॥
- „ एतदु ह यज्ञे तपः । यदुपसदस्तपो वाऽ उपसदः । श० १० ।
२ । ५ । ३ ॥
- „ तपो ह्युपसदः । श० ३ । ६ । २ । ११ ॥
- „ ग्रीवा वै यज्ञस्योपसदः । श० ३ । ४ । ४ । १ ॥
- „ (यज्ञस्य) ग्रीवा उपसदः । ऐ० १ । २५ ॥
- „ एताभिर्वै देवा उपसद्भिः । पुरः प्राभिन्दन्निमांल्लोकान् प्राज-
यन् । श० ३ । ४ । ४ । ५ ॥
- „ वज्रा वाऽ उपसदः । श० १० । २ । ५ । २ ॥
- „ जितयो वै नमैता यदुपसदः । ऐ० १ । २४ ॥
- „ ता (उपसदः) वाऽ आज्यहविषो भवन्ति । श० ३ । ४ । ४ । ६ ॥
- „ इष्टुं वा एतां देवाः समस्कुर्वन्त यदुपसदस्तस्याः अग्निरनीक-
मासीत् सोमः शल्यो विष्णुस्तेजनं वरुणः पर्मानि । ऐ० १ । २५ ॥
- उपहव्यः (एकाहः) ते देवाः प्रजापतिमुपाधावन् स एतमुपहव्यमपश्यत् ।
तां० १८ । १ । २ ॥
- „ इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला
वागभ्यवदत् स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतमुपहव्यं
प्रायच्छत्तं विश्वे देवा उपाह्वयन्त, यदुपाह्वयन्त तस्मा-
दुपहव्यः । तां० १८ । १ । ९ ॥
- उपहितम् वागुपहितम् । श० ६ । १ । २ । १५ ॥
- „ अङ्गान्युपहितम् । श० ६ । १ । २ । १५ ॥
- उपांशु अनिरुक्तं वाऽ उपांशु । श० १ । ३ । ५ । १० ॥
- „ स यदुपांशु तत्प्राजापत्यं रूपम् । श० १ । ६ । ३ । २७ ॥
- उपांशुः (प्रहः) प्राणो ह वाऽ अस्य (यज्ञस्य) । उपांशुः । श० ४ ।
१ । १ । १ ॥

- उपांशुः (गृहः) अथवा उपांशुः प्राण एव । कौ० । १२ । ४ ॥
- „ यज्ञमुखं वाऽ उपांशुः । श० ५ । २ । ४ । १७ ॥
- „ इयंशु (पृथिवी) ह वाऽउपांशुः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥
- „ उपांशुपात्रमेवान्वजाः प्रजायन्ते । श० ४ । ५ । ५ । २ ॥
- उपांशुयाजः क्षत्रमुपांशुयाजः । श० ११ । २ । ७ । १५ ॥
- उपांशुसवनः आत्मा वा उपांशुसवनः । ऐ० २ । २१ ॥
- „ (यज्ञस्य) आत्मोपांशुसवनः । श० ४ । १ । २ । २५ ॥
- „ (यज्ञस्य) व्यान उपांशु सवनः । श० ४ । १ । १ । १ ॥
- „ व्यानो ह्युपांशुसवनः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥
- „ अन्तरिक्षमेवोपांशुसवनः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥
- उपांश्वन्तर्यामौ (गृहौ) प्राणापाना उपांश्वन्तर्यामौ । ऐ० २ । २१ ॥
- „ प्राणापानौ वा उपांश्वन्तर्यामौ । कौ० ११ । ८ ॥
- १२ ४ ॥
- „ वय इव ह वै यज्ञो विधीयते तस्योपांश्वन्तर्यामावेव पक्षावात्मोपांशुसवनः । श० ४ । १ । २ । २५ ॥
- उरः तस्मा उरुभवत् । तदुरस उरस्त्वम् । जै० उ० ४ । २४ । २ ॥
- „ उरः सप्तदशः (स्तोमः) । अष्टावन्ये जत्रवो ऽष्टावग्यऽ उरः सप्तदशम् । श० १२ । २ । ४ । ११ ॥
- „ उरस्त्रिष्टुप् । ष० २ । ३ ॥
- „ उरस्त्रिष्टुभः । श० ८ । ६ । २ । ७ ॥
- „ उरः सान्तपनीया (इष्टिः) उरसा हि समिव तप्यते । श० ११ । ५ । २ । ४ ॥
- उर्वी यथेयं पृथिव्युर्व्येवमुरुर्भूयासम् । श० २ । १ । ४ । २८ ॥
- उलूखलम् (प्रजापतिरब्रवीत्) उरु मे करदिति तस्मादुरुकरमुरुकरं ह वै तदुलूखलमित्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ७ । ५ । १ । २२ ॥
- „ अन्तरिक्षं वाऽ उलूखलम् । श० ७ । ५ । १ । २६ ॥
- „ योनिरुलूखलम्.....शिश्रं मुसलम् । श० ७ । ५ । १ । ३८ ॥
- उल्बम् उल्बं घृतम् । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥
- „ उल्बं वाऽ ऊषाः । श० ७ । ३ । १ । ११ ॥

- उल्बम् उल्बमूषाः । श० ७ । १ । १ । ८ ॥
- उशन उशन्नुशन्तमिति प्रियः प्रियमित्येवैतदाह । श० ३ । ३ । ३ । ० ॥
- „ वायुर्षा उशन । तां० ७ । ५ । १९ ॥
- उशनाः (काव्यः) उशनसा काव्येन (उद्रात्रा) असुराः पञ्चात् (आ-
गच्छन्) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥
- „ उशना वै काव्यो ऽसुराणां पुरोहित आसीत् तां०
७ । ५ । २० ॥
- उशीनराः तस्मादस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के कुरु-
पञ्चालानां राजानः सवशोशीनराणां राज्यायैव ते ऽभि-
षिच्यन्ते राजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥
- उषाः रात्रिर्वा उषाः । तै० ३ । ८ । १६ । ४ ॥
- „ योषाः सा राका । ऐ० ३ । ४८ ॥
- „ भूतानां पतिर्गृहपतिरासीदुषाः पत्नी । श० ६ । १ । ३ । ७ ॥
- „ तानीमानि भूतानि च भूतानां च पतिः संवत्सरऽ उषसि रेतो
ऽसिञ्चत्स संवत्सरे कुमारो ऽजायत सोऽरोदीत्... यदरोदीत्
तस्माद्दुद्रः । श० ६ । १ । ३ । ८—१० ॥
- „ प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्विवमित्यन्य आहृषसमि-
त्यन्ये । ऐ० ३ । ३३ ॥
- „ प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ । दिवं वोपसं वा मिथुन्ये-
नया स्यामिति तां सम्बभूव । श० १ । ७ । ४ । १ ॥
- „ प्रजापतिरुषसमध्यैत् स्वां दुहितरं तस्य रेतः परापतत्तदस्यां
न्यषिच्यत् तदश्रीणादिदं मे मा दुषदिति तत्सदकरोत् पशूनेव ।
तां० ८ । २ । १० ॥
- „ तान् दीक्षितांस्तेपानान् (अग्निवाय्वादित्यचन्द्रमसः) उषाः प्रा-
जापत्या ऽप्सरोरूपं कृत्वा पुरस्तात्प्रत्युदैत्तस्यामेषां मनः सम-
पतत्ते रेतो ऽसिञ्चन्त ते प्रजापतिं पितरं मत्याब्रुवन्नेतो वा असि-
ञ्चामहा इदं नो मामुया भूदिति । कौ० ६ । १ ॥
- „ गोभिररुणैरुषा आजिमधात् । ऐ० ४ । ९ ॥
- „ उषस्यमन्वाह तदन्तरिक्षलोकमाप्नोति । कौ० ११ । २ ॥ १८२ ॥
- उषासानक्ता अहोरात्रे वा उषासानक्ता । ऐ० २ । ४ ॥

- उष्णिक् छन्दः) उष्णिगुत्सनानात् स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणोऽपि वोष्णी-
 पिणो वेत्यौपमिकम् । दे० ३ । ४ ॥
- ” यस्य सप्त ता उष्णिहम् । कौ० ९ । २ ॥
- ” अष्टाविंशत्यक्षरोष्णिक् । कौ० २६ । १ ॥
- ” औष्णिं वै पुरुषः । ऐ० ४ । ३ ॥
- ” आयुर्वा उष्णिक् । ऐ० १ । ५ ॥
- ” ग्रीवा उष्णिहः । श० ८ । ६ । २ । ११ ॥
- ” चक्षुरुष्णिक् । श० १० । ३ । १ । १ ॥
- ” पशवो वा उष्णिक् । तां० ८ । १० । ४ ॥
- ” अजाविकमेवोष्णिक् । कौ० ११ । २ ॥
- ” यजमानच्छन्दसमेवोष्णिक् । कौ० १७ । २ ॥
- उष्णिक्कुम्भौ प्राणा वा उष्णिक्कुम्भौ । तां० ८ । ५ । ५ ॥
- ” नासिके वा एते यज्ञस्य यदुष्णिक्कुम्भौ । तां० ८ । ५ । ४ ॥
- ” उष्णिक्कुम्भ्यां वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत् ककुभि
 पराक्रमतोष्णिहा प्राहरत् । तां० ८ । ५ । २ ॥

(ऊ)

- ऊतिः ऊतयः खलु वै ता नाम याभिर्देवा यजमानस्य हवन्नायन्ति ।
 ये वै पंथानो याः स्रतयस्ता वा ऊतयस्त उ एवैतत्स्वर्गयाणा
 यजमानस्य भवन्ति । ऐ० १ । २ ॥
- ” ऊनातिरिक्तानि (शरीरस्य) न्यूनाक्षरा छन्द आपो देवतोना-
 तिरिक्तानि । श० १० । ३ । २ । १३ ॥
- ऊमाः ऊमा वै पितरः प्रातःसवन ऊर्वा माध्यन्दिने काव्यारतृतीय-
 सवने (ऊमाः = ऋतुविशेषः, तैत्तिरीयसंहितायाम् ४ । ४ । ७ ।
 २ ॥ ५ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्यमपि द्रष्टव्यम्) । ऐ० ७ । ३४ ॥
- ऊरु अनुष्टुप्छन्दो विश्वे देवा देवतोरु । श० १० । ३ । २ । ६ ॥
- ऊर्क ऊर्जं दधाथामिति रसं दधाथामित्येवैतदाह । श० ३ । ६ । ४ । १८ ॥
- ” ऊर्वै रसः । श० ५ । १ । २ । ८ ॥
- ” रसवतीरित्येवैतदाह यदाहोर्जस्वतीरिति । श० ५ । ३ । ४ । ३ ॥
- ” ऊर्जे त्वेति (यजु० १ । ३० ॥) यो वृष्टादूर्जसो जायते तस्मै
 तदाह । श० १ । २ । २ । ६ ॥

ऊर्क् ऊर्वा आपो रसः । कौ० १२ । १ ॥

„ (यजु० १८ । ४१) आपो वाऽ ऊर्जोऽङ्गयो ह्यूर्जयिन्ते । श० १ ।
४ । १ । १० ॥

„ यद्वैतद्देवा इषमूर्जं व्यभजन्त तत उदुम्बरः समभवत् । ऐ०
५ । २४ ॥

„ प्रजापतिर्देवेभ्य ऊर्जं व्यभजत्तत उदुम्बरः समभवत् । तां०
६ । ४ । १ ॥

„ ऊर्गिति देवाः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥

„ औदुम्बरेण राजन्यः (अभिषिञ्चति) । उर्जमेवास्मिन्नघ्राद्यं
दधाति । तै० १ । ७ । ८ । ७ ॥

„ ऊर्वा उदुम्बरः । तै० १ । १ । ३ । १० ॥ तां० ५ । ५ । २ ॥

„ ऊर्गुदुम्बरः । तां० ६ । ४ । ११ ॥ १६ । ६ । ४ ॥

„ अन्नं वाऽ ऊर्गुदुम्बरः । श० ३ । २ । १ । ३३ ॥ ३ । ३ । ४ । २७ ॥

„ ऊर्वा अन्नमुदुम्बरः । तै० १ । २ । ६ । ५ ॥

„ ऊर्वा अन्नाद्यमुदुम्बरः । ऐ० ५ । २४ ॥ ८ । ८, ६ ॥ कौ० २५ ।
१५ ॥ २७ । ६ ॥

„ ऊर्वा मुञ्जाः । तै० ३ । ८ । १ । १ ॥

„ ऊर्ग्विराट् । तै० १ । २ । २ । २ ॥

ऊर्जम् अन्नमूर्जम् । कौ० २८ । ५ ॥

ऊर्णनाभिः ये (कालकञ्जाख्या असुराः) ऽवाकीर्यन्त । त ऊर्णनाभयो
ऽभवन् (मैत्रायणीसंहिता १ । ६ । ६ ॥ काठकसंहिता ८ ।
१ ॥ इत्यपि द्रष्टव्यम्) । तै० १ । १ । २ । ५ ॥

ऊर्णायुः (यजु० १३ । ५०) इममूर्णायुमित्यूणाविलमित्येतत् । श० ७ । ५ ।
२ । ३५ ॥

ऊर्द्धसद्यन्म् (साम) असुरा वा एषु लोकेष्व्वास ५ स्तान्देवा ऊर्द्धसद्यन्ने-
नैभ्यो लोकेभ्यः प्राणुदन्त । तां० ६ । २ । ११ ॥

ऊर्द्धेडम् (साम) (देवाः) अमुं (स्वर्गं लोकं) ऊर्द्धेडेन (अभ्यजयन्) ।
तां० १० । १२ । ४ ॥

ऊर्ध्वा (दिक्) एषोर्ध्वा बृहस्पतेर्दिगित्येवाहुः । श० ५ । १ । १ । ४ ॥

- ऊर्धा (दिक्) अथैतदन्तरिक्षम् (=ऊर्धा दिक्) एषा हि दिग् बृह-
स्पतेः । श० २ । ३ । ४ । ३६ ॥
- ” एषा वा ऊर्धा बृहस्पतेर्दिकदेश उपरिष्ठादर्यमणः पन्थाः ।
श० ५ । ५ । १ । १२ ॥
- ” ऊर्ध्वा दिक् । बृहस्पतिर्देवता । तै० ३ । ११ । ५ । ३ ॥
- ” बृहस्पतिस्त्वोपरिष्ठादभिषिञ्चतु पांक्तेन छन्दसा । तै०
२ । ७ । १५ । ५ ॥
- ” ऊर्ध्वामारोह । पंक्तिस्त्वावतु शाकररैवते सामनी
त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृत्तु वचो
द्रविणमिति । श० ५ । ४ । १ । ७ ॥
- ” पंक्तिरूर्ध्वा दिक् । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥
- ” यदुपरिष्ठादववासि प्रजापतिर्भूतो ऽववासि । जै० उ०
३ । २१ । २ ॥
- ” सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसृज्यो दुवस्वज्यः स्वाहा ।
श० ५ । २ । ४ । ५ ॥
- ” अथैनं (इन्द्रं) ऊर्धायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः...
.....अभ्यषिञ्चन्.....पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽ
त्रिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८ । १४ ॥
- ” ऊर्ध्वामेव दिशं अदित्या प्राजानन्नियं (पृथिवी) वाऽ
अदितिस्तस्मादस्यामूर्ध्वा ओषधयो जायन्तऽ ऊर्ध्वा
वनस्पतयः । श० ३ । २ । ३ । १६ ॥
- ” सा (अदितिः) ऊर्धा दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥
- ” स्वर्ग्यैवोर्ध्वा दिक् । ऐ० १ । ८ ॥
- ऊर्धाः (पितरः) ऊषा वै पितरः प्रातः सवन ऊर्वा माध्यन्दिने काव्या-
रतृतीयसवने । ऐ० ७ । ३४ ॥
- ऊषाः तस्मात्पशव्यमूर्ध्वम् (स्थानं) इत्याहुः । श० २ । १ । १ । ६ ॥
- ” संज्ञानपुष्टेतत्पशनां यदूषाः । तै० १ । १ । ३ । २ ॥
- ” पशवो वाऽऊषाः । श० ५ । २ । १ । १६ ॥
- ” पशव ऊषाः । श० ७ । १ । १ । ६ ॥ ७ । ३ । १ । ८ ॥
- ” ऊषो हि पोषः । ऐ० ४ । २७ ॥

- ऊषाः पुष्टिर्वा एषा प्रजननं यदूषाः । तै० १ । २ । ३ । १ ॥
 „ रेतो वाऽ ऊषाः प्रजननम् । श० १३ । ८ । १ । १४ ॥
 „ एते हि साक्षादन्नं यदूषाः । तै० १ । ३ । ७ । ६ ॥
 „ उल्बं वाऽ ऊषाः । श० ७ । ३ । १ । ११ ॥
 „ उल्बमूषाः । श० ७ । १ । १ । ८ ॥
 „ ते (ऊषाः) ऽमुतः (द्युलोकात्) आगता अस्यां पृथिव्यां
 प्रतिष्ठितास्तमनयोर्द्यावापृथिव्यो रसं मन्यन्ते । श० २ । १ । १६ ॥

(ऋ)

- ऋक् अथेमानि प्रजापति ऋक्पदानि शरीराणि सञ्चित्या ऽभ्यर्चत् ।
 यदभ्यर्चत्ता एवर्चो ऽभवन् । जै० उ० १ । १५ । ६ ॥
 „ (यजु० १३ । ३६) प्राणो वाऽ ऋक् प्राणेन ह्यर्चति । श० ७ ।
 ५ । २ । १२ ॥
 „ ब्रह्म वा ऋक् । कौ० ७ । १० ॥
 „ वागृक् । जै० उ० ४ । २३ । ४ ॥
 „ वागित्यूक् । जै० उ० १ । ६ । २ ॥
 „ सा या सा वागृक् सा । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥
 „ वागेवऽर्चश्च सामानि च । मन एव यजूंषि । श० ४ । ६ ।
 ७ । ५ ॥
 „ ऋग्रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
 „ अमृतं वा ऋक् । कौ० ७ । १० ॥
 „ अस्थि वा ऋक् । श० ७ । ५ । २ । २५ ॥
 „ अस्थि हृक् । श० १ । ६ । ३ । २६, ३० ॥
 „ ऋक् शतपदी । ष० १ । ४ ॥
 „ तस्य (दक्षिणनेत्रस्य) यच्छुक्लं तदृचां रूपम् । जै० उ० ४ । २४ । १२ ॥
 „ ऋक्सामयोर्हते (शुक्लकृष्णे) रूपे । श० ६ । ७ । १ । ७ ॥
 „ एतावद्वाव साम यावान् स्वरः । ऋग्वा एषर्ते स्वराद्भवतीति ।
 जै० उ० १ । २१ । ६ ॥
 „ ऋचि साम गीयते । श० ८ । १ । ३ । ३ ॥
 „ साम वाऽ ऋचः पतिः । श० ८ । १ । ३ । ५ ॥

- ऋक् पय आहुतयो ह वाऽपता देवानाम् । यदृचः । श० ११।५।६।४॥
- ” ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथाया ओमिति वै दैवं
तथेति मानुषम् । ऐ० ७ । १८ ॥
- ” ऋग्भ्यो जातं वैश्यं वर्णमाहुः । तै० ३ । १२ । ६ । २ ॥
- ” ऋचां प्राची महती दिगुच्यते । ऋग्भिः पूर्वाह्ने दिवि देव
ईयते । तै० ३ । १२ । ६ । १ ॥
- ” ऋग्भ्यो जाताः सर्वशो मूर्त्तिमाहुः । तै० ३ । १२ । ६ । १ ॥
- ” स (प्रजापतिः) ऋचैवाशंसद्यजुषा प्राचरत् साम्नोद्रायत् ।
कौ० ६ । १० ॥
- ” उक्थमिति बहृचाः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥
- ” महदुक्थमृचाम् (समुद्रः) । श० ६ । ५ । २ । १२ ॥
- ” यदेतन्मण्डलं (आदित्यः) तपति । तन्महदुक्थं ता ऋचः स
ऋचां लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥
- ” (आदित्यस्य) मण्डलमेवऽर्चः । श० १० । ५ । १ । ५ ॥
- ” वीर्यं वै देवतऽर्चः । श० १ । ७ । २ । २० ॥
- ” तद्वै माध्यन्दिने च सवने तृतीयसवने च नर्चोऽपराधोऽस्ति ।
जै० ३० । १ । १६ । ५ ॥
- ” अथ यदनुचे देवतः सु प्रातः सधनं गायति तेन स्वर्गं लोकमेति ।
जै० ३० । १ । १६ । ५ ॥
- ऋचाः सप्तऽर्षीनु ह स्म वै पुरऽर्त्ता इत्याचक्षते । श० २ । १ । २ । ४ ॥
- ऋक्सामे ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी । ऐ० २ । २४ ॥ तै० १ । ६ । ३ । ६ ॥
- ” ऋक्सामे वै हरी । श० ४ । ४ । ३ । ६ ॥
- ” ऋक्सामे वै सारस्वतावुत्सौ । तै० १ । ४ । ४ । ६ ॥
- ” ऋक्सामानि वा एष्टयः (अप्सरसः, यजु० १८ । ४३)
ऋक्सामैर्ह्याशासतऽ इति नोऽस्त्वित्थं नोऽस्त्विति । श०
६ । ४ । १ । १२ ॥

ऋग्यजुषी (= अमानुषा वाक्) स (ब्रह्मा) यदि पुरा मानुषी वाचं
व्याहरेत् । तत्रो वैष्णवीमृचं वा यजुर्वा जपेद्यज्ञो वै विष्णु-
स्तद्यज्ञं पुनरारभते तस्यो हैषा प्रायश्चित्तिः । श० १।७।४।२०॥

- ऋग्वेदः अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्यदेवमृत्विजं । होतारं रत्नधातम-
मित्येवमादिं कृत्वा ऋग्वेदमधीयते । गो० पू० १ । २६ ॥
- ” स ऋचो व्यौहत् । द्वादश बृहती सहस्राणि (१२०००×३६
=४३२००० अक्षराणि) पतावत्यो हऽर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः ।
श० १० । ४ । २ । २३ ॥
- ” मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह । तस्य मनुष्या विशः……ऋचो
वेदः……ऋचां सूक्तं व्याचक्षाण इवानुद्वेत् । श० १३ । ४ ।
३ । ३ ॥
- ” वागेवऽर्ग्वेदः । श० १४ । ४ । ३ । १२ ॥
- ” ऋग्वेदाद्गार्हपत्यः (अजायत) । ष० ४ । १ ॥
- ” भूरित्यृग्भ्योक्षरत् सो ऽयं (पृथिवी-) लोको ऽभवत् । ष०
१ । ५ ॥
- ” स (प्रजापतिः) भूरित्येवर्ग्वेदस्य रसमादत्त । सेयं पृथिव्य-
भवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् सो ऽग्निरभवद्रसस्य रसः ।
जै० उ० १ । १ । ३ ॥
- ” ऋचामग्निर्देवतं तदेव ज्योतिर्गायत्रं छन्दः पृथिवी स्थानम् ।
गो० पू० १ । २६ ॥
- ” अग्नेर्ऋग्वेदः (अजायत) । श० ११ । ५ । २ । ३ ॥
- ” अयं (भू-) लोक ऋग्वेदः । ष० १ । ५ ॥
- ” इममेव लोकं (पृथिवीं) ऋचा जयति । श० ४ । ६ । ७ । २ ॥
- ” ऋक्संमिता वा इमे लोका अयं लोकः पूर्वो ऽर्धर्चो ऽसौ लोक
उत्तरो ऽथ यदर्धर्चावन्तरेण तदिदमन्तरिक्षम् । कौ० ११ । १ ॥
- ” ऋग्वेदो वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ६ ॥
- ” ऋग्वेद एव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- ऋजुः (यजु० ३७ । १०) असौ वै लोक ऋजुः सत्यं ह्यजुः सत्यमेष
य एव (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । २ । २२ ॥
- ऋणम् ऋणं ह वै जायते यो ऽस्ति । स जायमान एव देवेभ्य
ऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यः । श० १ । ६ । २ । १ ॥
- ऋतजाः ऋतजा इत्येष (सूर्यः) वै सत्यजाः । ऐ० ४ । २० ॥
- ऋतनिधनम् अयं (भूलोकः) एवर्त्तनिधनम् । तां० २१ । २ । ७ ॥

- ऋतम् (यजु० १२।१०५॥३८२०॥) सत्यं वाऽ ऋतम् । श० ७।३।
१।२३ ॥ १४।३।१।१८ ॥ तै० ३।८।३।४ ॥
- ” (यजु० १२। १४) ऋतमिति सत्यमित्येतत् । श० ६।
७।३।११ ॥
- ” ऋतमित्येष (सूर्यः) वै सत्यम् । ऐ० ४। २० ॥
- ” अग्निर्वा ऋतम् । तै० २। १।११।१ ॥
- ” ऋतमेव परमेष्ठि । तै० १।५।५।१ ॥
- ” चक्षुर्वा ऋतं तस्माद्यतरो चिवदमानयोराहाहमनुष्ठया चक्षु-
षादर्शमिति तस्य श्रद्दधति । ऐ० २।४० ॥
- ” मनो वा ऋतम् । जै० उ० ३। ३६।५ ॥
- ” ब्रह्म वाऽ ऋतम् । श० ४।१।४।१० ॥
- ” ओमित्येतदेवाक्षरमृतम् । जै० उ० ३। ३६।५ ॥
- ” (यजु० ११। ४७) अयवाऽ अग्निर्ऋतमसादादित्यः सत्यं
यदिवासावृतमय० (अग्निः) सत्यमुभयम्बेतदयमग्निः ।
श० ६।४।४।१० ॥
- ” ऋतेनैवैन० स्वर्गं लोकं गमयन्ति । तां० १८। २। ६ ॥
- ऋतवः द्वौ द्वौ हि मासावृतुः । तां० १०। १२। ८ ॥
- ” द्वौ हि मासावृतुः । श० ७।४।२। २९ ॥
- ” (ऋतुः=चतुर्वारो मासाः) विंशति शतं वा ऋतोरहानि । कौ०
११।७ ॥
- ” प्रयो वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य । श० ३।४।४।१७॥११।५।४।११ ॥
- ” पञ्च हृतवः । तां० १२।४।८ ॥ १३। २। ६ ॥
- ” पञ्च वाऽ ऋतवः । श० २। २। ३। ६४ ॥
- ” पञ्चर्त्तवः संवत्सरस्य । श० १।५।२। १६ ॥ ३। १।४।२० ॥
- ” पञ्च वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य । श० ३। १।४।५ ॥
- ” पञ्चर्त्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेन । ऐ० १।१ ॥
- ” षड् वा ऋतवः । गो० उ० १। २४ ॥
- ” षड् वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य । श० १। २।५। १२ ॥
- ” षसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः, ते देवा ऋतवः । शरद्धेमन्त शिशिरस्ते

- पितरः (ऋतवः) । श० २ । १ । ३ । १ ॥
- ऋतवः याष्णङ् विभूतय ऋतवस्ते । जै० उ० १ । २१ । १ ॥
- „ तद्यानि तानि भूतानि ऋतवस्ते । श० ६ । १ । ३ । ८ ॥
- „ सप्तर्षवः । श० ६ । ५ । २ । ८ ॥
- „ सप्त हृतवः । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥
- „ सप्तर्षवः संवत्सरः । श० ६ । ६ । १ । १४ ॥ ७ । ३ । २ । ६ ॥
६ । १ । १ । २६ ॥
- „ तस्मादेकैकस्मिन्नुतौ सर्वेषामृतूनां रूपम् । श० ८ । ७ । १ । ४ ॥
- „ अग्नयो वाऽ ऋतवः । श० ६ । २ । १ । ३६ ॥
- „ ऋतवो हैते यदेताश्चितयः । श० ६ । २ । १ । ३६ ॥
- „ ऋतव उपसदः । श० १० । २ । ५ । ७ ॥
- „ ऋतव उद्गीथः । ष० ३ । १ ॥
- „ ऋतवो वा उदुब्रह्मीयम् (सूक्तम्) । कौ० २९ । ६ ॥
- „ ऋतवो वै देवाः । श० ७ । २ । ४ । २६ ॥
- „ ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथामनुष्यस्य । ऐ० १ । १३ ॥
- „ ऋतवो ह वै प्रयाजाः । तस्मात्पञ्च भवन्ति पञ्च हृतवः ।
श० १ । ५ । ३ । १ ॥
- „ ऋतवो वै प्रयाजाः । कौ० ३ । ४ ॥
- „ ऋतवो हि प्रयाजाः । श० १ । ३ । २ । ८ ॥
- „ ऋतवो वै प्रयाजानुयाजाः । कौ० १ । ४ ॥
- „ ऋतवो वै पृष्ठानि । तै० ३ । ६ । ६ । १ ॥ श० १३ । ३ । २ । १ ॥
- „ ऋतवः पितरः । कौ० ५ । ७ ॥ श० २ । ४ । २ । २४ ॥ २ । ६ ।
१ । ४ ॥ गो० उ० १ । २४ ॥ ६ । १५ ॥
- „ ऋतव एव प्र वो वाजाः । गो० पू० ५ । २३ ॥
- „ ऋतवो वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥
- „ ऋतवो होत्राशंसिनः । कौ० २६ । ८ ॥
- „ सदस्या ऋतवो ऽभवन् । तै० ३ । १२ । ६ । ४ ॥
- „ ऋतवो वै दिशः प्रजननः । गो० उ० ६ । १२ ॥
- „ ऋतवो वै विश्वे देवाः (यजु० १२ । ६१) । श० ७ । १ । १ । ४३ ।
- „ ऋतवो वै बाजिनः । कौ० ५ । २ ॥ श० २ । ४ । ४ । २२ ॥
गो० उ० १ । २० ॥

- ऋतवः ऋतवः शिष्यमृतुभिर्हि संवत्सरः शक्नोति स्थान्तुं यच्छक्नोति
 तस्माच्छिष्यम् । श० ६।७।१।१८ ॥
- ” ऋषभो वा एष ऋतूनाम् । यत्संवत्सरः । तस्य प्रयोदशा मासो
 विष्टपम् । तै० ३।८।३।३ ॥
- ” सेषं वागृतुषु प्रतिष्ठिता वदति । श० ७।४।२।३७ ॥
- ” तस्माद्यथर्त्वादित्यस्तपति । तां० १०।७।५ ॥
- ” तस्माद्यथर्तु वायुः पवते । तां० १०।६।२ ॥
- ” तस्माद्यथर्त्वीषधयः पच्यन्ते । तां० १०।८।१ ॥
- ” ऋतवो वाऽ इदं सर्वमन्नाद्यं पचन्ति । श० ४।३।३।१२ ॥
- ” ऋतवः समिद्धाः प्रजाश्च प्रजनयन्त्योषधीश्च पचन्ति । श० १।
 ३।४।७ ॥
- ” यो वै म्रियतऽ ऋतवो ह तस्मै व्युह्यन्ते । श० ८।७।१।११ ॥
- ” ऋतुसन्धिषु हि व्याधिर्जायते । कौ० ५।१ ॥
- ” ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते । गो० ७० १।१६ ॥
- ” किं नु ते ऽस्मासु (ऋतुषु) इति । इमानि ज्यायांसि पर्वाणि ।
 जै० ७० ३।८।४ ॥
- ” अग्निष्टोम उक्थ्यो ऽग्निर्ऋतुः प्रजापतिः संवत्सर इति । एते
 ऽनुवाका यज्ञकतूनाञ्चर्तूनाञ्च संवत्सरस्य च नामधेयानि । तै०
 ३।१०।१०।४ ॥
- ” मुखं वा एतदृतूनां यद्वसन्तः । तै० १।१।२।६-७ ॥
- ” अन्त ऋतूनां हेमन्तः । श० १।५।३।१३ ॥
- ऋतव्याः (इष्टकाः) ऋतव एते यद्वतव्याः । श० ८।७।१।१ ॥
- ” संवत्सरो वाऽ ऋतव्याः । श० ८।६।१।४ ॥ ८।
 ७।१।१ ॥
- ” क्षत्रं वाऽ ऋतव्या विश इमा इतरा इष्टकाः । श० ८।
 ७।१।२ ॥
- ” इमे वै लोका ऋतव्याः । श० ८।७।१।१२ ॥
- ” ककुदमृतव्ये (इष्टके) । श० ७।५।१।३० ॥
- ऋतसद् (यजु० १२।१४) ऋतसदिति सत्यसदित्येतत् । श० ६।
 ७।३।११ ॥

- ऋतसद् ऋतसदित्येष (सूर्यः) वै सत्यसत् । ऐ० ४ । २० ॥
 ऋतस्य योनिः (यजु० ११ । ६) यज्ञो वाऽ ऋतस्य योनिः । श० १ ।
 ३ । ४ । १६ ॥
- ऋतुपात्रम् ऋतुपात्रमेवान्वेकशफं प्रजायते । श० ४ । ५ । ५ । ८ ॥
 ऋतुप्रैषाः वाग्वा ऋतुप्रैषाः । गो० ३० ६ । १० ॥
 ऋतुयाजाः ऋतवो वा ऋतुयाजाः । गो० ३० ३ । ७ ॥
 " प्राणा वा ऋतुयाजाः । ऐ० २ । २६ ॥ कौ० १३ । ६ ॥
 गो० ३० ३ । ७ ॥
- ऋत्विजः स (प्रजापतिः) आत्मन्वृत्त्वम् (ऋत्वं = ऋतौ ऋतुकाले भव-
 कर्मस्य कारणं बीजमिति सायणः) अपश्यन्त ऋत्विजो
 ऽसृजत यद्वत्वाद्सृजत तद्वत्विजामृत्विक्त्वम् । तां० १० ।
 ३ । १ ॥
 " ऋतव ऋत्विजः । श० ११ । २ । ७ । २ ॥
 " ऋत्विजो हैव देवयजनम् । श० ३ । १ । १ । ५ ॥
 " एतऽ एव सरधो मधुकृतो यद्वत्विजः । श० ३ । ४ । ३ । १४ ॥
 " ऋत्विजो वै महिषाः (यजु० १६ । ३२) । श० १२ । ८ ।
 १ । २ ॥
 " आत्मा वै यज्ञस्य यजमानो ऽङ्गान्यृत्विजः । श० ६ । ५ । २ । १६ ॥
- ऋद्धिः अग्निमुखा हृद्धिः । तै० ३ । ३ । ८ । ६ ॥
 ऋभवः प्रजापतिर्वै पित ऋभून्मर्त्यान्सतो मर्त्यान् कृत्वा तृतीयसवन
 आभजत् । ऐ० ६ । १२ ॥
 " ऋभवो वा इन्द्रस्य प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ५ ॥
 " शारदेनर्तुना देवा एकविंशशे (स्तामे) ऋभवः स्तुतं धैराजेन
 धिया धियम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । २ ॥
 " (ऋभवो रश्मय इति सायणभाष्ये) । तां० १४ । २ । ५ ॥
- ऋषभः ऋषभो वा पशुनामधिपतिः । तां० १६ । १२ । ३ ॥
 " ऋषभो वै पशुनां प्रजापतिः । श० ५ । २ । ५ । १७ ॥
 " ऐन्द्रमृषभं सेन्द्रत्वाय (आलभते) । तै० १ । ८ । ५ । ६ ॥
 " ऋषभमिन्द्राय सुत्राम्ण आलभते । श० ५ । ५ । ४ । १ ॥
 " ६. होन्द्रो यद्वषभः । श० ५ । ३ । १ । ३ ॥

[एकविंशः

(११६)

ऋषभः वृषा (= वर्षणशीलः = रेतःसिक्) वा ऋषभो योषा सुब्रह्मण्या ।
ऐ० ६ । ३ ॥

११ वीर्यं वा ऋषभः । तां० १८ । २ । १४ ॥

ऋषयः ते यत्पुरास्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः भ्रमेण तपसारिषंस्तस्मा-
दृषयः । श० ६ । १ । १ । १ ॥

१२ यो वै ज्ञातो ऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः । श० ४ । ३ । ४ । १६ ॥

१३ एते वै विप्रा यदृषयः । श० ६ । ४ । २ । ७ ॥

१४ अथ यदेवानुब्रवीत् । तेनऽर्षिभ्य ऋणं जायते तद्धचेभ्य एत-
त्करोत्यृषीणांनिधिगोप इति ह्यनूचानमाहुः । श० १ । ७ । २ । ३ ॥

१५ प्राणा ऋषयः । श० ७ । २ । ३ । ५ ॥

१६ प्राणा उ वाऽ ऋषयः । श० ८ । ४ । १ । ५ ॥

१७ (यजु० १५ । १०) प्राणा वाऽ ऋषयः । श० ६ । १ । १ । १ ॥

८ । ६ । १ । ५ ॥ १४ । ५ । २ । ५ ॥ ऐ० २ । २७ ॥

(ए)

एकः प्रजापतिर्वा एकः । तै० ३ । ८ । १६ । १ ॥

एकत्रिकः (यज्ञविंशः) अथैष एकत्रिकः प्रजापतेरुद्भित् । एतेन वै
प्रजापतिरेषां लोकानामुदभिनत् । तां० १६ । १६ ।

१-२ ॥

एकत्रिंशः (स्तोमः) “ क्रतुरेकत्रिंशः ” इत्येतं शब्दं पश्यत ।

एकपातिन्यः (ऋचः) प्राणो ऽपानो व्यान इति तिस्र एकपातिन्यः । कौ०
१५ । ३ ॥ १६ । ४ ॥

एकपाद् वायुरेकपात्तस्याकाशं पाद् । गो० पू० २ । ८ ॥

एकविंशः (स्तोमः) एकविंशो वै चतुष्टोमः स्तोमानां परमः । कौ० ११ ।
६ ॥ १४ । ५ ॥ १६ । ७ ॥

११ प्रतिष्ठैकविंशः । ऐ० ८ । ४ ॥ तां० १६ । १३ । ४ ॥
२० । १० । १ ॥

१२ प्रतिष्ठा वा एकविंशः स्तोमानाम् । तां० ३ । ७ । २ ॥
५ । १ । १७ ॥ ६ । १ । ११ ॥

१३ एकविंशो वै स्तोमानां प्रतिष्ठा । श० १३ । ५ । १ । ७ ॥

- एकविंशः (स्तोमः) एकविंश एव (स्तोमः) सर्वम् । गो० पु० ५ । १५ ॥
- ” एकविंशो वै स्वर्गो लोकः । श० १० । ५ । ४ । ६ ॥
- ” एकविंशो वा इतः स्वर्गो लोकः । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥
- ” एकविंशो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० २५ । १ ॥
- ” एष एवैकविंशो य एष (सूर्यः) तपति । श० ५ । ५ । ३ । ४ ॥
- ” एकविंशो वा भुवनस्यादित्यः । तां० ४ । ६ । ३ ॥
- ” एकविंशो ह्येष (आदित्यः) । श० ६ । ७ । १ । २ ॥
- ” असौ वा आदित्य एकविंशः । तै० १ । ५ । १० । ६ ॥ ३ । १२ । ५ । ८ ॥ तां० ६ । २ । २ ॥
- ” द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य पञ्चर्त्तवस्त्रयो लोकास्तद्विंशतिरेषः एवैकविंशो य एष (सूर्यः) तपति । सैषा गतिरेषा प्रतिष्ठा । श० १ । ३ । ५ । ११ ॥
- ” आदित्य एवैकविंशस्यायतनं द्वादश मासाः पञ्चर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः । तां० १० । १ । १० ॥
- ” द्वादश मासाः पञ्चर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः । तां० ४ । ६ । ४ ॥
- ” एकविंशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पञ्चर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः । पे० १ । ३० ॥
- ” एकविंशो वै पुरुषः । तै० ३ । ३ । ७ । १ ॥
- ” एकविंशो ऽयं पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पाद्या आत्मैकविंशः । पे० १ । १६ ॥
- ” एकविंशो वै पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पाद्या आत्मैकविंशः । श० १३ । ५ । १ । ६ ॥
- ” क्षत्रं वा एकविंशः । तां० १८ । १० । ६ ॥ १६ । १ । ५ ॥
- ” क्षत्रमेकविंशः । तां० २ । १६ । ४ ॥
- ” विड् वा एकविंशः । तै० १ । ८ । ८ । ५ ॥
- ” शौद्रो वर्ण एकविंशः । पे० ८ । ४ ॥

- एकविंशः (स्तोमः) पञ्चदशश्रैकविंशश्च बार्हतौ तौ गौर्भाविध्वान्वसृज्ये-
तां तस्मात्तौ बार्हतं प्राचीनं भास्क्रुतः । तां० १० ।
२ । ६ ॥
- ” तं (एकविंशस्तोमं) उ देवतल्प इत्याहुः । तां० १० ।
१ । १२ ॥
- ” एकविंशो ऽग्निष्टोमः । तां० १६ । १३ । ४ ॥
- ” तान् (पशून्) विष्णुरेकविंशशेन स्तोमेनाप्नोत् । तौ०
२ । ७ । १४ । २ ॥
- ” यदेकविंशो यदेवास्य (यजमानस्य) पदोरष्टीवतोर-
पूतं तत्तेनापयन्ति (? अपहन्ति) । तां० १७ । ५ । ६ ॥
- एकवीरः एको ह तु सन्वीरो वीर्यवान् भवति । जौ० उ० २ । ६ । ६ ॥
- ” एको ह्येवैष वीरो यत्प्राणः । जौ० उ० २ । ५ । १ ॥
- एकशफम् पशवो वा एकशफम् । तौ० ३ । ६ । ११ । ४ ॥
- ” भीर्वा एकशफम् । तौ० ३ । ६ । ८ । २ ॥
- एकस्तोमः यदिममाहुरेकस्तोम इत्ययमेव यो ऽयम्पवते (वायुः) । जौ०
उ० ३ । ४ । १२ ॥
- एकातिथिः एष (सूर्यः) ह वै स एकातिथिः स एष जुह्वत्सु वसति ।
ऐ० ५ । ३० ॥
- एकादशिनी प्रजापति ह्येकादशिनी । श० १३ । ६ । १ । ६ ॥
- ” एष वै सम्प्रति स्वर्गो लोको यदेकादशिनी । श० १३ ।
२ । ५ । २ ॥
- ” एकादशिनी वाऽ इदं सर्वम् । श० १३ । ६ । १ । ६ ॥
- ” प्रजा वै पशव एकादशिनी । श० १३ । २ । ५ । २ ॥ तौ०
३ । ९ । २ । ३ ॥
- एकाष्टका (= 'माघकृष्णाष्टमी' इति सायणः) एषा वै संवत्सरस्य पत्नी
यदेकाष्टका । तां० ५ । ६ । २ ॥
- ” संवत्सरस्य या पत्नी (एकाष्टकारूपा) सा नो अस्तु सुमङ्गली
(अथर्व० ३ । १० । २) । मं० २ । २ । १६ ॥
- ” संवत्सरस्य प्रतिमां यां (एकाष्टकारूपां) त्वा रात्रि यजामहे ।
मं० २ । २ । १८ ॥

एकाहः प्रतिष्ठा वा एकाहः । ऐ० ६ । ८ ॥ कौ० २४ । २ ॥ २५ । ११ ॥
२७ । २ ॥ २६ । ५ ॥

„ ज्वोतिर्वा एकाहः । कौ० २५ । ३ ॥

एनः निरुक्तं वाऽ एनः कनीयो भवति सत्यं हि भवति । श० २ ।
५ । २ । २० ॥

„ तस्मादप्यात्रेय्या (=सुतगर्भया रजस्वलाया) योषिता (सह
सम्भाषणादि कुर्वन् पुरुषः) एनस्वी (भवति) । श० १।४।५।१३॥

एवयामरुत (=एवयामरुदाख्यर्विणा दृष्टं सूक्तम्) प्रतिष्ठा वा एवया-
मरुत् । ऐ० ६ । ३० ॥ गो० ३० ६ । ८, ९ ॥

„ यद्येवयामरुतं (एवयामरुतस्यान्तराये), प्रतिष्ठाया एनं
(यजमानं) च्यावयेद्द्वयै च मानुष्यै च । ऐ० ६ । १५ ॥

एष्टयः (अप्सरसः, यजु० १८ । ४३) ऋक्सामानि वाऽ एष्टय
ऋक्सामैर्ह्याशासतऽ इति नो ऽस्त्वित्थं नो ऽस्त्विति ।
श० ६ । ४ । १ । १२ ॥

एवश्छन्दः (यजु० १५ । ४) अयं वै (पृथिवी-)लोक एवश्छन्दः । श०
८ । ५ । २ । ३ ॥

(ऐ)

ऐकाहिकं सवनम् एते वै शान्ते क्लृप्ते प्रतिष्ठिते सवने यदैकाहिके । ऐ०
८ । १ ॥

ऐकाहिकाः (होत्राः) एता वै शान्ताः क्लृप्ता होत्रा यदैकाहिकाः । ऐ०
८ । ४ ॥

ऐहम् (साम) (देवाः) प्रतिष्ठामिडाभिरैडेनावारुन्धत । तां० १० । १२ । ४॥

ऐहतम् (साम) इहन्वा एतेन काव्यो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य
लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाङ्गोकाभ च्यवते तुष्टुवानः ।
तां० १४ । ६ । १६ ॥

ऐतश्चप्रलापः आयुर्वा ऐतश्चप्रलापः । ऐ० ६ । ३३ ॥

ऐन्द्रवायवः (प्रहः) वाक् च प्राणश्चैन्द्रवायवः । ऐ० २ । २६ ॥

ऐन्द्राग्नम् (आज्यस्तोत्रम्) इयं वामस्य मन्मन इत्यैन्द्राग्नम् । तां० १२ ।

८ । ७ ॥

[ओम्

(१२०)

ऐशिरम् (साम) ऐशिरं भवति प्रजातिर्वा ऐशिराणि प्रजायते बहुर्भव-
त्यैशिरेण तुष्टुवानः । तां० १४ । ११ । २० ॥

(ओ)

ओकः गृहा वा ओकः । ऐ० ८ । २६ ॥

ओजः ओजः सहः सह ओजः । कौ० ३ । ५ ॥

” वज्रो वाऽ ओजः । श० ८ । ४ । १ । २० ॥

” ततो ऽस्मिन् (इन्द्रे) एतदोज आस । श० ४ । ५ । ४ । ४ ॥

ओजस्त्रिणवः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वा ओजस्त्रिणवस्तस्य चतु-
र्विंशतिरर्धमासा द्वे अहोरात्रे संव-
त्सर एवौजस्त्रिणवस्तद्यत्तमाहौज इति
संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानामोजस्वितमः ।
श० ८ । ४ । १ । २० ॥

ओदनः परमेष्ठी वा एषः । यदोदनः । तै० १ । ७ । १० । ६ ॥

” प्रजापतिर्वाऽ ओदनः । श० १३ । ३ । ६ । ७ ॥ तै० ३ । ८ ।
२ । ३ ॥ ३ । ६ । १८ । २ ॥

” रेतो वा ओदनः । श० १३ । १ । १ । ४ ॥ तै० ३ । ८ । २ । ४ ॥

ओम् (ओङ्कारस्य) को धातुरित्यापृधातुरवतिमप्येके रूपसामान्या-
दर्थसामान्यन्नेदीयस्तस्मादापेरोङ्कारः सर्वमाप्नोतीत्यर्थः । गो०
पू० १ । २६ ॥

” को विकारी च्यवते । प्रसारणमाप्नोतेराकारपकारौ विकार्यावा-
दित ओङ्कारो विक्रियते । द्वितीयो मकार एवं द्विवर्ण एकाक्षर
ओमित्योङ्कारो निर्वृत्तः । गो० पू० १ । २६ ॥

” ते (देवाः) ओङ्कारं ब्रह्मणः पुत्रं ज्येष्ठं ददृशुः । गो० पू० १ । २३ ॥

” लातव्यो गोत्रो, ब्रह्मणः पुत्रो, गायत्रं छन्दः, शुक्लो वर्णः, पुंसो
वत्सो रुद्रो देवता ओङ्कारो वेदानाम् । गो० पू० १ । २५ ॥

” तासामभिपीडितानां (व्याहृतीनां) रसः प्राणोदत् । तदेतदक्ष-
रमभवदोमिति यदेतद् । जै० उ० १ । २३ । ७ ॥

” तानि (भूर्भुवः स्वः) शुक्राण्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा
अजायन्ताकार उकारो मकार इति तानेकधा समभरत्तदेतदो-
ऽमिति । ऐ० ५ । ३२ ॥

- ओम् अथैकस्थैवाऽक्षरस्य रसं (प्रजापतिः) नाऽशक्नोदादातुम् ।
ओमित्येतस्थैव । सेयं वागभवत् । ओमेव नामैषा । तस्य उ प्राण
एव रसः । जै० उ० १ । १ । ६, ७ ॥
- .. ओमिति वै साम । जै० उ० १ । ६ । २ ॥
- .. ओमिति मनः । जै० उ० १ । ६ । २ ॥
- .. ओमित्यथर्वणां शुक्रम् । गो० पू० २ । २४ ॥
- .. ओमितीन्द्रः । जै० उ० १ । ६ । २ ॥
- .. ओमित्यसौ यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । ऐ० पू० ५ । ३२ ॥
- .. हन्तेति चन्द्रमा ओमित्यादित्यः । जै० उ० ३ । ६ । २ ॥
- .. ओमिति वै स्वर्गो लोकः । ऐ० पू० ५ । ३२ ॥
- .. ओमित्येतदेवाक्षरमृतम् । जै० उ० ३ । ३६ । ५ ॥
- .. तदेतत्सत्यमक्षरं यदोमिति । तस्मिन्नापः प्रतिष्ठिताः । जै० उ०
१ । १० । २ ॥
- .. तस्मादोऽमित्येव प्रतिगृणीयात्तद्धि सत्यं तद्देवा विदुः । श०
४ । ३ । २ । १३ ॥
- .. ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथाया ओमिति वै दैवं तथेति
मानुषम् । ऐ० ७ । १८ ॥
- .. यद्वै नेत्यृच्योमिति तत् । श० १ । ४ । १ । ३० ॥
- .. एतद्ध वा (ओमिति) अक्षरं वेदानां त्रिविष्टपम् । जै० उ०
३ । १९ । ७ ॥
- .. एतत् (ओमिति) एवाक्षरं त्रयी विद्या । जै० उ० १ । १८ । १० ॥
- .. स (ब्रह्मा) ओमित्येतदक्षरमपश्यद् द्विवर्णंश्चतुर्मात्रं सर्वव्यापि
सर्वविभ्वयातयाम ब्रह्म । गो० पू० १ । १६ ॥
- .. एष ओमित्यक्षरम् उ ह वाव सरसः । जै० उ० १ । ८ । ५, ११ ॥
- .. यथा सूच्या पलाशानि सन्तृणानि स्युरेवमेतेन (ओमिति)
अक्षरेणेमे लोकास्सन्तृणाः । जै० उ० १ । १० । ३ ॥
- .. तदेतक्षरं (ओङ्कारं) ब्राह्मणो यं काममिच्छेत् त्रिरात्रोपोषितः
प्राङ्मुखो वाग्यतो बर्हिष्युपविश्य सहस्रकृत्व आवर्त्तयेत् सिद्ध-
न्त्यस्यार्थाः सर्वकर्माणि च । गो० पू० १ । २२ ॥

ओष एवमेवैवं विद्वान् ओमित्येतदेवाक्षरं समारुह्य यद्वोऽमृतं
तपति तत्प्रपद्य ततो मृत्युना पाप्मना व्यावर्तते । जै० उ० १ ।
१८ । ११ ॥ प्रणवशब्दमपि पश्यत ॥

- ओषधयः (प्रजापतिः) तां (आहुतिम्) व्यौक्षत् (= अग्रावत्यजत्)
ओषं धयेति तत ओषधयः समभवंस्तस्मादोषधयो नाम । श०
२ । २ । ४ । ५ ॥
- ” प्रजापतेर्विस्त्रस्तस्य यानि लोमान्यशीयन्त ता इमाऽ ओषधयो
ऽभवन् । श० ७ । ४ । २ । ११ ॥
- ” द्वय्यो वा ओषधयः पुष्पेभ्यो ऽन्याः फलं गृह्णन्ति । मूलेभ्यो
ऽन्याः । तै० ३ । ८ । १७ । ४ ॥
- ” उभय्यो (ओषधयः) ऽस्मै स्वदिताः पच्यन्ते ऽकृष्टपच्याश्च
कृष्टपच्याश्च । तां० ६ । ६ । ६ ॥
- ” ततोऽसुरा उभयीरोषधीर्याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः
कृत्यदेव त्वद्विषेणैव त्वत्प्रलिलिपुरुतैवं चिद्देवानभिभवेमेति
ततो न मनुष्या आशुर्न पशव आलिलिशिरे ता हेमाः प्रजा
अनाशकेन नोत्पराबभूवुः... ते (देवाः) होचुर्हन्तेदमासाम्
(ओषधीनाम्) अपजिघांसामेति केनेति यज्ञेनैवेति । श०
२ । ४ । ३ । २-३ ॥
- ” एतद्धैतासाऽऽ (ओषधीनां) समृद्धऽऽ रूपं यत्पुष्पवत्यः
। पिप्पलाः । श० ६ । ४ । ४ । १७ ॥
- ” वाग्देवत्यं साम वाचो मनो देवता मनसः पशवः पशूनामो-
षधय ओषधीनामापः । तदेतद्भ्रयो जातं सामाऽप्सु प्रति-
ष्ठितमिति । जै० उ० १ । ५६ । १४ ॥
- ” आपो ह वाऽ ओषधीनाऽऽ रसः । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥
- ” अपामोषधयः (रसः) ओषधीनां पुष्पाणि (रसः) पुष्पाणां
फलानि (रसः) । श० १४ । ६ । ४ । १ ॥
- ” तस्मादोषधयः केवल्यः खादिता न धिन्वन्त्योषधय उ हापाऽऽ
रसस्तस्मादापः पीताः केवल्यो न धिन्वन्ति यदैवोभय्यः
सऽऽसृष्टा भवन्त्यथैव धिन्वन्ति । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥
- ” ओषधय उ हापाऽऽ रसः । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥

- श्रोषधयः एष ह वै सर्वासामोषधीनां रसो यत्पयः । कौ० २ । १ ॥
- ” तस्माद्दक्षिणतो ऽग्र श्रोषधयः पच्यमाना आयन्त्याग्नेय्यो श्रो-
षधयः । ऐ० १ । ७ ॥
- ” अग्नेर्वा एषा तनूः । यदोषधयः । तै० ३ । २ । ५ । ७ ॥
- ” यदुग्रो देव श्रोषधयो वनस्पतयस्तेन । कौ० ६ । ५ ॥
- ” श्रोषधयो वै पशुपतिस्तस्माद्यदा पशव श्रोषधीर्लभन्ते ऽथ
पतीयन्ति । श० ६ । १ । ३ । १२ ॥
- ” श्रोषधयो वै मुदः (अप्सरसः, यजु० १८ । ३८) श्रोषधि-
भिर्हीदं सर्वं मोदते । श० ६ । ४ । १ । ७ ॥
- ” श्रोषधयो बर्हिः । ऐ० ५ । २८ ॥ श० १ । ३ । ३ । ६ ॥ १ ।
८ । २ । ११ ॥ १ । ६ । २ । २६ ॥ तै० २ । १ । ५ । १ ॥
- ” श्रोषधयः खलु वै वाजः । तै० १ । ३ । ७ । १ ॥
- ” श्रोषधयो मधुमतीः । तै० ३ । २ । ८ । २ ॥
- ” रसो वा एष श्रोषधिवनस्पतिषु यन्मधुः । ऐ० ८ । २० ॥
- ” श्रोषधीनां वाऽ एष परमो रसो यन्मधुः । श० ११ । ५ । ४ । १८
- ” सौम्या श्रोषधयः । श० १२ । १ । १ । २ ॥
- ” सोम श्रोषधीनामधिराजः । गो० ३० । १ । १७ ॥
- ” सोमो वै राजौषधीनाम् । कौ० ४ । १२ ॥ तै० ३ । ६ । १७ । १ ॥
- ” या श्रोषधीः सोमराज्ञीः । मं० २ । ८ । ३, ४ ॥
- ” श्रोषधो हि सोमो राजा । ऐ० ३ । ४० ॥
- ” (प्रजापतिः) विष्णोरध्योषधीरसृजत । तै० २ । ३ । २ । ४ ॥
- ” श्रोषधिलोको वै पितरः । श० १३ । ८ । १ । २० ॥
- ” जगत्यः (यजु० १ । २१) श्रोषधयः । श० १ । २ । २ । २ ॥
- ” सप्त ग्राम्या श्रोषधयः सप्तारण्याः । तै० १ । ३ । ८ । १ ॥
- ” वर्षवृद्धा वा श्रोषधयः । तै० ३ । २ । २ । ५ ॥ ३ । २ । ५ । १० ॥
- ” श्रोषधयो वै देवानां पत्न्यः । श० ६ । ५ । ४ । ४ ॥
- ” तस्माच्छ्रद्धमोषधयो ऽभिसंपच्यन्ते । तां० २१ । १५ । ३ ॥
- ” शरदि ह खलु वै भूयिष्ठा श्रोषधयः पच्यन्ते । जै० ३० । १ ।
३५ । ५ ॥

ओषधयः सैनान्यं वा एतदोषधीनां यद्यवाः । ऐ० ८ । १६ ॥

„ साम्राज्यं वा एतदोषधीनां यन्महावीहयः । ऐ० ८ । १६ ॥

ओषधिवनस्पतयः ओषधिवनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः । तै० ३ । १० ।
८ । ७ ॥

(औ)

औक्षोरन्ध्रे (सामनी) उक्षोरन्ध्रो वा एताभ्याङ्गाव्यो ऽञ्जसा स्वर्गं
लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्थानुष्यात्यै स्वर्गा-
ल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः । तां० १३ । ६ । १६ ॥

औदलम् (साम) उदलो वा एतेन वैश्वामित्रः प्रजापतिं भूमानमगच्छत्
प्रजायते बहुर्भवत्यौदलेन तुष्टुवानः । तां० १४ । ११ ।
३३ ॥

औद्ग्रभणानि (हवींषि) औद्ग्रभणैर्वै देवा आत्मानमस्माल्लोकात्स्वर्गं
लोकमभ्युदगृह्णत यदुदगृह्णत तस्मादौद्ग्रभ-
णानि । श० ६ । ६ । १ । १२ ॥

और्णयिवम् (साम) अङ्गिरसो वै सन्नमासत तेषामासतः स्पृतः स्वर्गो
लोक आसीत् पन्थानन्तु देवयानन्न प्राजान्२३स्ते-
षाङ्गल्याण आङ्गिरसो ऽध्यायमुदवजन् स ऊर्णा-
युङ्गन्धर्वमप्सरसाम्मध्ये प्रेङ्खयमाणमुपैत्स ईयामिति
यां यामभ्यदिशत्सैनमकामयत तमभ्यवदत्क-
ल्याणाश् इत्याप्तो वै वः स्पृतः स्वर्गो लोकः
पन्थानन्तु देवयानन्न प्रजानीधेद२३ साम स्वर्ग्यं
तेन स्तुत्वा स्वर्गं लोकमेप्यथ मा तु वोचोहम-
दर्शमिति । तां० १२ । ११ । १० ॥

औशनम् (साम) वायुर्वा उश२३स्तस्यैतदौशनम् । तां० ७ । ५ । १६ ॥

„ उशना वै काव्यो ऽसुराणां पुरोहित आसीत्तं देवाः
कामदुष्ठाभिरुपामन्त्रयन्त तस्मा एतान्बौशनानि प्राथ-
च्छन् । तां० ७ । ५ । २० ॥

„ उशना वै काव्यो ऽकामयत यावानितरेषां कव्यानां
लोवस्तावन्त२३ स्पृणुयामिति स तपो ऽतप्यत स

- एतदौशनमपश्यत्तेन तावन्तं लोकमस्पृणोद्यावानित-
रेषां काव्यानामासीत्तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि
स.मौशनं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १४ । १२ । ५ ॥
 औशनम् (साम) रश्मी वा एतौ यज्ञस्य यदौशनकावे (सामनी) । तां०
 ८ । ५ । १६ ॥
 ,, कामदुघा वा औशनानि । तां० ७ । ५ । २० ॥
 ,, प्राणा वा औशनम् । तां० ७ । ५ । १७ ॥

(क)

- कः स प्रजापतिरब्रवीदथ कोहमिति यदेवैतदवोच इत्यब्रवीत्ततो वै
 को नाम प्रजापतिरभवत्को वै नाम प्रजापतिः । ऐ० ३ । २१ ॥
 ,, को हि प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । ५ ॥
 ,, को वै प्रजापतिः । गो० उ० ६ । ३ ॥
 ,, (यजु० ११ । ३६ ॥ १२ । १०२ ॥) प्रजापतिर्वै कः । ऐ० २ ।
 ३८ ॥ ६ । २१ ॥ कौ० ५ । ४ ॥ २४ । ४, ५, ६ ॥ तां० ७ । ८ । ३ ॥
 श० ६ । ४ । ३ । ४ ॥ ७ । ३ । १ । २० ॥ तै० २ । २ । ५ । ५ ॥
 जै० उ० ३ । २ । १० ॥ गो० उ० १ । २२ ॥
 ,, प्राणो वाव कः । जै० उ० ४ । २३ । ४ ॥
 ,, काय एककपालः पुरोडाशो भवति । श० २ । ५ । २ । १३ ॥
 ककुप् (छन्दः) ककुप् च कुब्जश्च कुजतेर्वोब्जतेर्वा । दे० ३ । ६ ॥
 ,, ककुप् ककुद्रूपिणीत्यौपमिकम् । दे० ३ । ५ ॥
 ,, उष्णिक्कुब्ज्यां वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्ककुभि
 पराक्रमतोष्णिहा प्राहरत् । तां० ८ । ५ । २ ॥
 ,, (यजु० १५ । ४) प्राणो वै ककुब्जुन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥
 ,, कीकसा ककुभः । श० ८ । ६ । २ । १० ॥
 ,, पुरुषो वै ककुप् । तां० ८ । १० । ६ ॥ १३ । ६ । ४ ॥
 १६ । ११ । ७ ॥ १६ । ३ । ४ ॥ २० । ४ । ३ ॥
 कण्वरथन्तरम् (साम) तेजो वा एतद्रथन्तरस्य यत्कण्वरथन्तरम् । तां०
 १४ । ३ । १६ ॥
 ,, पशवो वै कण्वरथन्तरम् तां० १८ । ४ । ६ ॥

- कद्रुः (माया) इयं (पृथिवी) कद्रुः । श० ३ । ६ । २ । २ ॥
- कनीनकः शुष्णो दानवः प्रत्यङ् पतित्वा मनुष्याणामक्षीणि प्रविवेश स
एष कनीनकः कुमारक इव परिभासते । श० ३ । १ । ३ । ११ ॥
- कपिञ्जलः (पक्षिविशेषः) स यत्सोमपानं (विश्वरूपस्य मुखम्) आस ।
ततः कपिञ्जलः समभवत्तस्मात्स बभ्रुक इव
बभ्रुरिव हि सोमो राजा । श० १ । ६ । ३ । ३ ॥
५ । ५ । ४ । ४ ॥
- कम् कं वै प्रजापतिः । श० २ । ५ । २ । १३ ॥
- „ अन्नं वै कम् । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० उ० ६ । ३ ॥
- „ सुखं वै कम् । गो० उ० ६ । ३ ॥
- „ अथो सुखस्यैवैतन्नामधेयं कमिति । कौ० ५ । ४ ॥
- „ अथो सुखस्य वा एतन्नामधेयङ्कमिति । गो० उ० १ । २२ ॥
- कयाशुभीयम् (साम) यत् कयाशुभीयं शस्यते शान्त्या एव । तां० २१ ।
१४ । ६ ॥
- „ अगस्त्यस्य कयाशुभीयं शस्यम् । तां० ६ । ४ । १७ ॥
- करम्बाः (=आज्यमिश्रिताः सक्तवः) विश्वेषां वा एतद्देवानां रूपम् ।
यत्करम्बाः । तै० ३ । २ । १४ । ४ ॥
- करम्भः (=यवपिष्टमाज्यसंयुतमिति सायणः) पूष्णः करम्भः । तै० १ ।
५ । ११ । ३ ॥ श० ४ । २ । ५ । २२ ॥
- „ तस्मादाहुरदन्तकः पूषा करम्भभाग इति । कौ० ६ । १३ ॥
- „ ते देवाः सर्पेभ्य आश्रेषाभ्य आज्ये करंभं निरवपन् । तान्
(असुरान्) एताभिरेव देवताभिरुपानयन् । तै० ३ । १ । ४ । ७ ॥
- करीराणि कं (=सुखं) वै प्रजापतिः प्रजाभ्यः करीरैरकुरुत । श० २ ।
५ । २ । ११ ॥
- „ सौम्यानि वै करीराणि । तै० १ । ६ । ४ । ५ ॥
- करीषम् पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति समानं वै पुरीषं च
करीषं च । श० २ । १ । १ । ७ ॥
- कर्कन्धु यत्स्नेहस्तत्कर्कन्धु । श० १२ । ७ । १ । ४ ॥
- कर्णकाः पशवो वै कर्णकाः । श० ६ । २ । ३ । ४० ॥
- कर्म यद्दो वै कर्म । श० १ । १ । २ । १ ॥

३३ पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति । श० १४ । ६ ।
२ । १४ ॥

„ वीर्यं वै कर्म । श० ११ । ५ । ४ । ५ ॥

„ कर्म्मणि धियः (पश्यत-ऋ० ३ । ६२ । १० सायणभाष्यम्) ।
गो० पू० १ । ३२ ॥

„ अस्मिन्यामे वृषण्वसूऽ (यजु० ११ । १३) इत्यस्मिन्कर्मणि
वृषण्वसूऽ इत्येतत् (यामः=कर्म) । श० ६ । ३ । २ । ३ ॥

„ यो वाव कर्म करोति स एव तस्योपचारं वेद । श० ६ । ५ ।
४ । १७ ॥

▲ कलविङ्कः (पञ्चविशेषः) अथ यत्सुरापाणं (विश्वरूपस्य मुखम्) आस ।
ततः कलविङ्कः समभवत्तस्मात्सोभिमाद्यत्क
इव वदत्यभिमाद्यन्निव हि सुरां पीत्वा वदति ।
श० १ । ६ । ३ । ४ ॥ ५ । ५ । ४ । ५ ॥

कलशः यस्य कलश उपदस्यति कलशमेवास्योपदस्यन्तं प्राणो
ऽनूपदस्यति । तां० ६ । ६ । १ ॥

कलिः (युगम्) कलिः शयानो भवति । पे० ७ । १५ ॥

„ अथ ये पञ्च (स्तोमाः) कलिः सः । तै० १ । ५ । ११ । १ ॥

„ एष वाऽ अयानभिभूर्यत्कलिरेष हि सर्वानयानभिभवति ।
श० ५ । ४ । ४ । ६ ॥

कल्पाः प्राणा वै कल्पाः । श० ६ । ३ । ३ । १२ ॥

कल्याणः (आङ्गिरसः) तेषां (आङ्गिरसां) कल्याण आङ्गिरसोऽध्याय-
मुदन्नजन् स ऊर्णायुङ्गन्धर्वमणसरसाम्मध्ये प्रेङ्ग-
यमाणमुपैत् । तां० १२ । ११ । १० ॥

„ (स्वर्गाङ्गोकात् अहीयत कल्याणोऽनृतं हि
सोऽवदत् । तां० १२ । ११ । ११ ॥

कल्याणी (प्रजापतेस्तनूविशेषः) कल्याणी तत्पशवः । पे० ५ । २५ ॥
कौ० २७ । ५ ॥

कविः ये वा अनूचानास्ते कवयः । पे० २ । २ । ३८ ॥

„ एते वै कवयो यद्वषयः । श० १ । ४ । २ । ८ ॥

„ (ऋ० ३ । ३८ । १) ये वै ते न ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते वै कवयः ।
पे० ६ । २० ॥

- कविः ये ह वा अनेन पूर्वे प्रेतास्ते वै कवयः । गो० उ० ६ । २ ॥
- „ शुश्रुवाँसो वै कवयः । तै० ३ । २ । २ । ३ ॥
- „ (यजु० १२ । ६७) ये विद्वाँसस्ते कवयः । श० ७ । २ । २ । ४ ॥
- „ (यजु० १२ । २) असौ वाऽआदित्यः कविः । श० ६ । ७ । २ । ४ ॥
- काचीवतम् (साम) कक्षीवान्वा एतेनौशिजः प्रजातिं भूमानयगच्छत्
प्रजायते बहुर्भवति काक्षीवतेन तुष्टुवानः । तां०
१४ । ११ । १७ ॥
- काण्वम् (साम) वयमु त्वा तदिदृथा इति काण्वम् । तां० ६ । २ । ५ ॥
- „ एतेन वै काण्व इन्द्रस्य सांविद्यमगच्छत् । तां० ६ । २ । ६ ॥
- कापिवनो द्विरात्रः एतेन वै कपिवनो भौवायन इष्ट्वा ऽरूक्षतामगच्छत् ।
अरूक्षो भवति य एवं विद्वानेतेन यजते । तां० २० । १३ । ४-५ ॥
- कामः कामो हि दाता कामः प्रतिगृहीता । तै० २ । २ । ५ । ६ ॥
- „ समुद्र इव हि कामः । नैव हि कामस्यान्तो ऽस्ति न समुद्रस्य ।
तै० २ । २ । ५ । ६ ॥
- „ श्रद्धां कामस्य मातरं हविषा वद्धयामसि । तै० २ । २ । २ । ८ ॥
- कामधरणम् पशवः कामधरणम् । श० ७ । १ । १ । ८ ॥
- कामप्रम् अमृतं वै कामप्रम् । श० १० । २ । ६ । ४ ॥
- कार्णश्रवसम् (साम) कार्णश्रवा वा एतदाङ्गिरसः पशुकामः साक्षापश्यत्तेन
सहस्रं पशूनसृजत यदेतत्साम भवति पशूनां पुष्ट्यै ।
तां० १३ । ११ । १४ ॥
- „ कार्णश्रवसं भवति शृण्वन्ति तुष्टुवानम् । तां०
१३ । ११ । १३ ॥
- कर्त्तयशम् (साम) अप पाप्मानं हते कार्त्तयशेन तुष्टुवानः । तां० १४ ।
५ । २३ ॥
- कार्ष्णायसम् लोहायसेन कार्ष्णायसम् (संध्यात्) । जै० उ० ३ ।
१७ । ३ ॥
- कार्पमर्यः यत्र वै देवा अत्र पशुमालेभिरे तदुदीचः ऋष्यमाणस्यावाङ्
मेघः पपात स एष वनस्पतिरजाशत तद्यत्कृष्यमाणस्यावाङ्
पतत्समात्कार्पमर्यः । श० ३ । २ । २ । १७ ॥
- „ प्रजापतेर्दिस्रस्तस्याग्निस्तेज आदाय दक्षिणाकर्षत्सो ऽत्रोद-
रमद्यत्कृष्टोदरमत्समात्कार्पमर्यः । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥

कार्प्यः देवा ह वाऽ एतं वनस्पतिषु राक्षोः दृष्टशूर्यत्कार्प्यम्
(=भद्रपर्णीति सायणः) । श० ३ । ४ । १ । ६६ ॥

„ ते (देवाः) एतं रक्षोहणं वनस्पतिमपश्यन्कार्प्यम् । श०
७ । ४ । १ । ३७ ॥

कालकजाः (असुराः) कालकजा वै नामासुरा आसन् । ते सुवर्गाय
लोकायाग्निमचिन्वन्त । पुरुष इष्टकामुपादधात्पुरुष
इष्टकां । स इन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण इष्टकामुपाधत् ।
एषा मे चित्रा नामेति । ते सुवर्गलोकमाप्रारो-
हन् । स इन्द्र इष्टकामावृहत् । ते ऽवाकीर्यन्त ।
ये ऽवाकीर्यन्त । त ऊर्णनाभयो ऽभवन् । द्वावुदप-
ततां तौ दिव्यौ श्वानावभवताम् (कालकाजा वा
असुरा इष्टका अचिन्वन्त दिवमारोक्ष्यामा इति
तानिन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण उपैत्स एतामिष्टकामप्यु-
पाधत्त प्रथमा इव दिवमाक्रमन्ताथ स तामावृहत्ते
ऽसुराः पापीयांसो भवन्तो ऽपान्शन्त या उत्तमा
आस्तां तौ यमश्वा अभवतां ये ऽधरे त ऊर्णावा-
भयः । —मैत्रायणीसंहितायाम् १ । ६ । ६ ॥

कालकाजा वै नामासुरा आसन्त इष्टका अचि-
न्वन्त तदिन्द्र इष्टकामप्युपाधत्त तेषां मिथुनौ
दिवमाक्रमेतां ततस्तामावृहत्ते ऽवाकीर्यन्त ता एतौ
दिव्यौ श्वानौ । —कठसंहितायाम् ८ । १ ॥

[अहभिन्द्रः] पृथिव्यां कालकाजान् [अतृणम्=
हिंसितवान्] ॥ —शङ्करानन्दोपटीकायुतायां कौ-
षीतकिब्राह्मणोपनिषदि ३ । १ ॥) । तै० १ । १ ।

२ । ४—६ ॥

कालेयम् (साम्) (देवाः) तेन (कालेयेन साम्ना) एनान् (असुरान्)
एभ्यो लोकेभ्यो ऽकालयन्त यदकालयन्त तस्मात्का-
लेयम् । तां० ८ । ३ । १ ॥

„ यत्कालेयं भवति तृतीयसवनस्य सन्तःस्यै । तां० ८ ।
३ । ५ ॥

- कालेयम् (राम) कालेयमङ्गावाकसाम भवति । तां० १५ । १०॥ १४ ॥
 ” पशवः कालेयम् । तां० ११ । ४। १० ॥ १५ । १० । १५ ॥
 कवम् (साम) अभिप्रियाणि पशव इति कावं प्राजापत्यं साम ॥ प्रजा
 वै प्रियाणि पशवः प्रियाणि प्रजायामेव पशुषु प्रति-
 तिष्ठिति । तां० ८ । ५ । १४-१५ ॥
 ” रश्मी वा एतौ यज्ञस्य यदौशनकावे । तां० ८ । ५ । १६ ॥
 ” विन्दते लोकं कावेन तुष्टुवानः । तां० ११ । ५ । २५ ॥
 काव्यं छन्दः (यजु० १५ । ४) त्रयी वै विद्या काव्यं छन्दः । श० ८ ।
 ५ । २ । ४ ॥
 काव्याः (पितरः) ऊमा वै पितरः प्रातःसवनऊर्वा माध्यन्दिने काव्या-
 स्तृतीयसवने । ऐ० ७ । ३४ ॥
 काष्ठा सुवर्गो वै लोकः काष्ठा । तै० १ । ३ । ६ । ५ ॥
 किम्पुरुषः अथैनमुत्क्रांतमेधं (पुरुषं देवाः) अत्यार्जन्त स किम्पुरुषः
 (=किन्नरो वानरजातीय इति सायणः) अभवत् । ऐ० २ । ८ ॥
 ” किम्पुरुषो वै मयुः (यजु० १३ । ४७) [अमरकोषे, स्वर्ग-
 वर्गं, श्लो० ७४] । श० ७ । ५ । २ । ३२ ॥
 किरिकाः (यजु० १६ । ४६) नमो वः किरिकेभ्य इति । एते हीदं
 सर्वं कुर्वन्ति । श० ६ । १ । १ । २३ ॥
 किन्विषस्पृत् एष (सोमः) उ एव किल्विषस्पृत् । ऐ० १ । १३ ॥
 कुत्सः (अौरवः) उपगुर्वै सौश्रवसः कुत्सस्यौरवस्य पुरोहित आसीत् ।
 तां० १४ । ६ । ८ ॥
 कुनखी यद्धस्तेन मूलं छिन्द्यात् । कुनखिनीः प्रजाः स्युः । तै० ३ ।
 २ । ६ । १० ॥
 कुन्तापाः कुयं ह वै नाम कुत्सितं भवति तद्यत्तपति तस्मात्कुन्तापाः,
 तत्कुन्तापानां कुन्तापत्वम् । गो० ३० । ६ । १२ ॥
 कुबेरः कुबेरो वैश्रवणो राजेत्याह तस्य रत्नांशिसि विशः । श० १३ ।
 ४ । ३ । १० ॥ (ऐवं—शाङ्खायनश्रौतसूत्रम् १६ । २ । १६—१७)
 कुमारः एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः,
 महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः (कुमारः=
 रुद्रपुत्रो अग्निपुत्रश्च—अमरकोषे १ । १ । ४२—४३ ॥ महभारते,

वनपर्व० २२५ । १५—१६ ॥ कुमारः=अग्निः ऋ० ५ । २ । १ सायणभाष्ये । अस्य सूक्तस्य देवता—अग्निः । ऋषिः--कुमार आत्रेयः ॥ ऋ० १० । १३५ इत्यस्य सूक्तस्य देवता यमः । ऋषिः--कुमारो यामायनः । पश्यत कठोपनिषदि नाचिकेतोपाख्यानम्—यमः कुमाराय [कठ० १ । २] नचिकेतसे नाचिकेताख्यम् “अग्निं” [कठ० १ । १८ ॥ २ । १०] प्रोवाच ॥ तथा तै० ३ । ११ । ८ । १५ ॥ ऋ० ७ । १०१, १०२ इत्यनयोः सूक्तयोर्देवता पर्जन्यः । ऋषिः—कुमार आग्नेयः ॥ वत्सः (=कुमारः ?)=वैद्युताग्निरिति सायणः—ऋ० ७ । १०१ । १ भाष्ये ॥ कुमारः=स्कन्दः=पारमानुरः=कार्तिकेयः—अमरकोषे १ । १ । ४१—४३ ॥ कृत्तिकानक्षत्रस्य देवता--अग्निः, तस्मिन् षट् तारा भवन्ति ॥ षट् कुमाराः=षड् ऋतवः--महाभारते, आदिपर्व० ३ । १४४ ॥ स्कन्दः=बालग्रहविशेषः—सुश्रुते, उत्तरतंत्रे २७ । २--३ ॥ स्कन्दः=सनत्कुमारः--छान्दोग्यापनिषदि ७ । २६ । १ ॥ महाभारते, शल्यपर्व० ४६ । ६८ ॥ ब्रह्मसूत्रस्य शांकरभाष्ये ३३३३२ ॥ पारस्करगृह्यसूत्रे १ । १६ । २४—कुमारस्य शुनकस्य माता सरमा शुनी, पिता सीसरः, भ्रातरौ श्यामशबलौ ॥ स्कन्दस्य माता पूतना—महाभारते वनपर्व० २३० २७ ॥) । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

कुमारः तानीमानि भूतानि (=षडृतवः) च भूतानां च पतिः संवत्सरेऽ उषसि रेतो ऽसिञ्चन्स संवत्सरे कुमारो ऽजायत सो ऽरोदीत् । यदरोदीत् तस्मात् (स कुमारः) रुद्रः । श० ६ । १ । ३ । ८-१० ॥

- १) तस्मात्कुमारं जातं धृतं वैवाग्रे प्रतिलेहयन्ति स्तनं धानुधापयन्ति । श० १४ । ४ । ३ । ४ ॥
- २) कुमारे सद्योजात एनो न (भवति) । तां० १८ । १ । २४ ॥
- ३) संवत्सरेऽ एव कुमार उत्तिष्ठसति । श० ११ । १ । ६ । ५ ॥
- ४) तस्माद्दु संवत्सरेऽ एव कुमारो व्याजिहोर्षति । श० ११ । १ । ६ । ३ ॥

कुमारः तस्मात्संवत्सरवेलायां प्रजाः (=शिशवः) वाचं प्रवदन्ति । श०
७।४।२।३८ ॥

” तस्मादेकाक्षरद्वयक्षराण्येव प्रथमं वदन्कुमारो वदति । श० ११।
१।६।४ ॥

कुमारी कुमारीं रूपं (गच्छति) । गो० पू० २।२ ॥

” एतदु हैवोवाच कुमारी गन्धर्वगृहीता । ऐ० पू० ५।२६ ॥

” एतदेव कुमारी गन्धर्वगृहीतोवाच । कौ० २।६ ॥

” तस्य (पतञ्जलस्य काप्यस्य) आसीद् दुहिता गन्धर्वगृहीता ।
श० १४।६।३।१ ॥

कुम्ब्या (कुम्ब्या ?) (=विध्यर्थवादात्मकं ब्राह्मणवाक्यमिति सायणः)
स्वाध्यायो ऽध्येतव्यस्तस्मादप्यृचं वा यजुर्वा
साम वा गाथां वा कुम्ब्यां वाभिव्याहरेद् व्रतस्या-
व्यवच्छेदाय (सायणकृतैतरेयारण्यकभाष्ये २।
३।६ः—आचारशिखारूपा ‘कुम्ब्या’ । तद्यथा
ब्रह्मचार्यस्यापो ऽशान कर्म कुरु दिवा मा स्वा-
प्सीरित्यादिः) । श० ११।५।७।१० ॥

कुरवः तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा
उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते विरा-
डित्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८।१४ ॥

कुरुक्षेत्रम् ते देवा अभ्युयन्नेतावतो वाव प्रजापतेर्वेदिर्यावत् कुरुक्षे-
त्रमिति । तां० २५।१३।३ ॥

” तस्मादाहुः कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनमिति । श० १४।१।
१।२ ॥

कुरुपञ्चालाः तस्माज्जघ्न्ये नैदात्रे प्रत्यञ्चः कुरुपञ्चाला यन्ति । तै० १।
८।४।२ ॥

” तस्माच्छिशिरे कुरुपञ्चालाः प्राञ्चो यन्ति । तै० १।८।
४।१ ॥

” तस्मादस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च
कुरुपञ्चालां राजानः रुचशोशीतराणां राज्यायैव ते
ऽभिषिच्यन्ते राजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८।१४ ॥

कुरुपञ्चालाः उदीचीमेव दिशम् । पथ्यया स्वस्त्या प्रजानंस्तस्मादत्रा-
त्तराहि वाग्वदति कुरुपञ्चालत्रा । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥

कुलायः (क्रतुः) अथैष इन्द्राग्न्योः कुलायः प्रजाकामो वा पशुकामो
वा यजेत । तां० १६ । १५ । १ ॥

” प्रजा वै कुलायम्पशवः कुलायम् । तां० २ । ३ । २ ॥

” प्रजा वै कुलायं पशवः कुलायं गृहाः कुलायं कुलाय-
मेव भवति । तां० १६ । १५ । १ ॥

कुवलम् यदश्रुभ्यः (तेजो ऽस्रवत्) तत्कुवलम् (अभवत्) । श० १२ ।
७ । १ । २ ॥

कुशाः आपो हि कुशाः । श० १ । ३ । १ । ३ ॥

कुसुरुविन्दो दशरात्रः यः कामयेत बहु स्यां (पुत्रपौत्रद्वारा स्वयमेव
बहुविधः स्यामिति सायणः) इति स एतेन
यजेत । तां० २२ । १५ । २ ॥

” एतेन वै कुसुरुविन्द औद्दालकिरिपुा भूमानमा-
श्नुत । तां० २२ । १५ । १० ॥

कुहः योत्तरा (अमावास्या) सा कुहः । ऐ० ७ । ११ ॥

” योत्तरा अमावास्या सा कुहः । गो० ३० । १ । १० ॥ ष० ४ । ६ ॥

” या कुहः सानुष्टुप् । ऐ० ३ । ४७, ४८ ॥

कूर्मः स यत्कूर्मो नाम । एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत
यदसृजताकरोत्तद्यदकरोत्तस्मात्कूर्मः कश्यपो वै कूर्मस्तस्मा-
दाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति । श० ७ । ५ । १ । ५ ॥

” ताथ (पृथिवीं) संक्लिश्याप्सु प्राविध्यत्तस्यै यः पराङ् रसो
ऽत्यन्तरत्स कूर्मो ऽभवत् । श० ६ । १ । १ । १२ ॥

” यो वै स एषां लोकानामप्सु प्रविद्धानां पराङ् रसो ऽत्यन्तरत्स एष
कूर्मः । श० ७ । ५ । १ । १ ॥

” रसो वै कूर्मः । श० ७ । ५ । १ । १ ॥

” स य स कूर्मो ऽसौ स आदित्यः । श० ६ । ५ । १ । ६ ॥ ७ ।
५ । १ । ६ ॥

” प्राणो वै कूर्मः प्राणो हीमाः सर्वाः प्रजाः करोति । श० ७ । ५ ।
१ । ७ ॥

कूर्मः द्यावापृथिव्यां हि कूर्मः । श० ७ । ५ । १ । १० ॥

” शिरः कूर्मः । श० ७ । ५ । १ । ३५ ॥

कृतम् (युगम्) ये वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत् । तै० १ । ५ । ११ । १ ॥

” कृतं संपद्यते चरन् । ऐ० ७ । १५ ॥

कृत्तिकाः (नक्षत्रम्) मुखं वा एतन्नक्षत्राणां यत्कृत्तिकाः । तै० १ । १ । २ । १ ॥

” एतद्वा अग्नेर्नक्षत्रं यत् कृत्तिकाः । तै० १ । १ । २ । १ ॥ १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । १ ॥

” एता वाऽ अग्निनक्षत्रं यत्कृत्तिकाः । श० २ । १ । २ । १ ॥

” पुर एताः (कृत्तिका उद्यन्ति) । अग्निर्वाऽ एतासां (कृत्तिकानां) मिथुनम् । श० २ । १ । २ । ५ ॥

” अग्नये स्वाहा कृत्तिकाभ्यः स्वाहा । (कृत्तिकेति सप्तानां नक्षत्रमूर्तीनां साधारणं नाम । अम्बादुलादीनि विशेषनामानीति सायणः) अम्बायै स्वाहा दुलायै स्वाहा । नितन्त्यै स्वाहा भ्रयन्त्यै स्वाहा । मेघयन्त्यै स्वाहा वर्षयन्त्यै स्वाहा । चुपुणीकायै स्वाहेति । तै० ३ । १ । ४ । १ ॥

” एकं द्वे त्रीणि । चत्वारीति वाऽ अन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव भूयिष्ठा यत्कृत्तिकाः । श० २ । १ । २ । २ ॥

” एता (कृत्तिकाः) ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते । सर्वाणि ह वाऽ अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते । श० २ । १ । २ । ३ ॥

कृत्यधीवासः अन्तरिक्षस्य (रूपं) कृत्यधीवासः । तै० ३ । ६ । २० । २ ॥

कृत्या यदा वै कृत्यामुत्खनन्त्यथ सालसा मोघा भवति तथोऽप्यवैष एतद्यद्यस्माऽ अत्र कश्चिद् द्विषन् आतृग्यः कृत्यां बलगान्निखनति तानेवैतदुत्किरति । श० ३ । ५ । ४ । ३ ॥

कृमुकः (=“धनुष उपादानभूतः सारवान् वृक्षविशेषः” इति सायणः) तस्मात्स स्वादूरसो हि तस्मादु लोहितो ऽर्चिर्हि स एषो ऽग्निरेष यत्कृमुकः । श० ६ । ६ । २ । ११ ॥

- ऋषिः अन्नं वै ऋषिः । श० ७ । २ । २ । ६ ॥
- „ अष्टौ वा एताः (गायत्रीत्रिष्टुबाद्या इति सायणः) कामदुघा
आस०१०स्तासामेका समशीर्येत सा ऋषिरभवद्दध्यते ऽस्मै कृषौ
य एवं वेद । तां० ११ । ५ । ८ ॥
- „ सर्वदेवत्या वै ऋषिः । श० ७ । २ । २ । १२ ॥
- कृष्णः कृष्णो हैतदाङ्गिरसो ब्राह्मणाच्छंसीयायै तृतीयसवनं ददर्श
(तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्तोवाच... ।
छांदोग्योपनिषदि ३ । १७ । ६ ॥) । कौ० ३० । ९ ॥
- कृष्णः शकुनिः अनृत०१० खो शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत ।
श० १४ । १ । १ । ३१ ॥
- कृष्णम् (रूपम्) आर्तम्बेतद्रूपं यत्कृष्णम् । श० ८ । ७ । २ । १६ ॥
- „ तद्धि वारुणं यत् कृष्णम् । श० ५ । २ । ५ । १७ ॥
- „ अथ यत्कृष्णं तदपां रूपमन्नस्य मनसो यजुषः । जै०
उ० १ । २५ । ६ ॥
- कृष्णविषाणा यो सा योनिः सा कृष्णविषाणा । श० ३ । २ । १ । २८ ॥
- कृष्णाजिनम् ब्रह्म वै कृष्णाजिनम् । कौ० ४ । ११ ॥
- „ ब्रह्मणो वा एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनम् । तै० २ । ७ । १ । ४ ॥
- „ ब्रह्मणो वा एतद्वक्त्रसामयो रूपं यत्कृष्णाजिनम् । तै० २ ।
७ । ३ । ३ ॥
- „ (यजमानः) कृष्णाजिने ऽध्यभिषिच्यत एतद् (कृष्णाजिनं)
वै प्रत्यक्षं ब्रह्मवर्चसम् । तां० १७ । ११ । ८ ॥
- „ स (ब्रह्मचारी) यन्मृगाजिनानि वस्ते तेन तद् ब्रह्मवर्चसम-
वरुन्धे । गो० पू० २ । २ ॥
- „ कृष्णाजिनं वै सुकृतस्य योनिः (यजु० ११ । ३५) । श० ६ ।
४ । २ । ६ ॥
- „ कृष्णाजिनं होतृवदनम् (यजु० ११ । ३६) । श० ६ । ४ ।
२ । ७ ॥
- „ तस्य (अग्नेः) एष स्वां लोको यत्कृष्णाजिनम् । श० ६ ।
४ । २ । ६ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै कृष्णाजिनम् । श० ६ । ४ । १ । ९ ॥

कृष्णाजिनम् यज्ञो वै कृष्णाजिनम् । श० ६।४।१।६ ॥

” यज्ञो हि कृष्णाजिनम् । श० ३।२।१।८ ॥

” यज्ञो हि कृष्णः (मृगः) स यः स यज्ञस्तत्कृष्णाजिनम्
 (“कृष्णासारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः । स ज्ञेयो
 यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः” ॥ मनुस्मृतौ २।
 २३ ॥) । श० ३।२।१।२८ ॥

कृष्णा व्रीहयः स (इन्द्रः) एतं वरुणाय शतभिषजे भेषजेभ्यः पुरोडाशं
 दशकपालं निरवपत् कृष्णानां व्रीहीणाम् । ततो वै स
 ददो ऽशिथिलो ऽभवत् । तै० ३।१।५।६ ॥

कृष्णा शुक्वत्सा (गौः) रात्रिवै कृष्णा शुक्वत्सा तस्या असावादित्यो
 वत्सः । श० ६।२।३।३० ॥

केतः अन्नं केतः । श० ६।३।१।१६ ॥

केशवः न वाऽ एष स्त्री न पुमान् यत्केशवः पुरुषो यदह पुमांस्तेन न
 स्त्री यदु केशवस्तेन (उ) न पुमान् । श० ५।१।२।१४ ॥
 ५।४।१।२ ॥

कोसलाः (=कोसलदेशः) सैषा (सदानीरा नदी) अप्येतर्हि कोसलवि-
 देहानां मर्यादा । श० १।४।१।१७ ॥

कौत्सम् (साम) कुत्सश्च लुशश्चेन्द्रं व्यह्वयेता७७ स इन्द्रः कुत्समुपावर्त्तत
 त७७ शतेन वार्द्धीभिराण्डयोरबध्नात्तं लुशो ऽभ्यवदत्
 प्रमुच्यस्व परि कुत्सादिहागहि किमु त्वावानाण्डयोर्ब-
 द्ध आसाता इति ताः संच्छिद्य प्राद्रवत्स एतत् कुत्सः
 सामापश्यत्तेनैनमन्ववदत्स उपावर्त्तत । तां० ६।२।२३ ॥

” एतेन वै कुत्सो ऽन्धसो थिपानमपश्यत् स ह स्म वै
 सुरादृतिनोपवसथं ध्रावयत्युभयस्यान्नाद्यस्यावरुध्यै कौ-
 त्सं क्रियते । तां० १४।११।२६ ॥

” इन्द्र सुतेषु सोमेष्विति कौत्सम् । तां० ६।२।२१ ॥

” यदेतत्साम भवति सेन्द्रत्वाय । तां० ६।२।२३ ॥

कौलमलवर्हिषम् (साम) कुलमलवर्हिष्वर्वा एतेन प्रजापतिं भूमानमगच्छत्
 प्रजायते बहुर्भवति कौलमलवर्हिषेण तुष्टुवानः ।
 तां० १५।३।२१ ॥

कौशिकः अथ यत्सुवर्णरजताभ्यां कुशीभ्यां परिगृहीत आसीत् । सास्य
(आदित्यरूपस्य चात्वालस्य) कौशिकता । तै० १ । ५ ।

१० । २ ॥

कौषीतकिः एतेन वै (स्तोमेन) शमनीचीमेद्वा अयजन्त तेषां कुषीतकः
सामश्रवसो गृहपतिरासीत्तान् लुशाकपिः खार्गलिरनु-
व्याहरदवाकीर्षत कनीया००सौ स्तोमावुपागुरिति तस्मा-
त्कौषीतकौनाम्न कश्चनातीव जिहीते (अतीवाश्रयो न गच्छ-
तीति सायणः) यज्ञावकीर्णा हि । तां० १७ । ४ । ३ ॥

ऋतुः स यदेव मनसा कामयतऽ इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव
ऋतुः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

॥ (यजु० ४ । ३१ ॥) ऋतुर्मनोजवः । श० ३ । ३ । ४ । ७ ॥

॥ हस्तु ह्ययं ऋतुर्मनोजवः प्रविष्टः । श० ३ । ३ । ४ । ७ ॥

॥ 'ऋतुं दत्तं वरुण संशिश्राधि' (ऋ० ८ । ४२ । ३) इति वीर्यं
प्रज्ञानं वरुण संशिश्राधीति (ऋतुः=वीर्यम्) । ऐ० १ । १३ ॥

॥ मित्र एव ऋतुः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

ऋतुरेकत्रि०शः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव ऋतुरेकत्रि०शस्त-
स्य चतुर्वि०शतिरर्धमासाः षडृतवः
संवत्सर एव ऋतुरेकत्रि०शस्तद्यत्त-
माह ऋतुरिति संवत्सरो हि सर्वाणि
भूतानि करोति । श० ८ । ४ । १ । २१ ॥

ऋतुस्थला (यजु० १५ । १५) " पुञ्जिकस्थला " शब्दं पश्यत् ।

ऋमुकः एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यत् ऋमुकः । तै० १ । ४ । ७ । ३ ॥

ऋयः अथ यत्क्रयेण चरन्ति । सोममेव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ ।
३ । ३ ॥

ऋव्याद् (अग्निः, यजु० १ । १७) अथ येन पुरुषं दहन्ति स ऋव्याद् ।

श० १ । २ । १ । ४ ॥

ऋवयः (बहुवचने) ऋवय इति ह वै पुरा पञ्चालानाचक्षते । श० १३ ।

५ । ४ । ७ ॥

ऋरम् (यजु० १ । २८) सङ्ग्रामो वै ऋरम् । श० १ । २ । ५ । १६ ॥

क्रोधः अथ य एने (श्रद्धाऽश्रद्धे) सो ऽन्तरेण पुरुषः । कृष्णः पिङ्गाक्षो
दसडपाणिरस्थात्क्रोधो वै सो ऽभूत् । श० ११ । ६ । १ । १३ ॥

[क्षत्रम्, क्षत्रियः (१३८)

क्रोधः वराहं क्रोधः (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥

क्रोशम् (साम) एतेन वा इन्द्रः इन्द्रक्रोशे विश्वामित्रजमदग्नी इमा गाव
इत्यक्रोशत् पशूनामवरुध्यै क्रोशं क्रियते । तां० १३ ।
५ । १५ ॥

क्रौञ्चम् (साम) क्रुडेप्यमहरविन्देप्यमिव वै षष्ठमहरहरेवैतेन विन्दन्ति ।
तां० १३ । ६ । ११ ॥ १३ । ११ । २० ॥

” रज्जुः क्रौञ्चम् । तां० १३ । ६ । १७ ॥

” वाग्वै क्रौञ्चम् । तां० ११ । १० । १६ ॥

” स (बृहस्पतिः प्रजापतिं) अब्रवीत्क्रौञ्चं सान्नो वृणे
ब्रह्मवर्चसमिति । जै० ड० १ । ५१ । १२ ॥

क्लोमा क्लोमा वरुणः । श० १२ । ६ । १ । १५ ॥

क्षता प्रसविता वै क्षता । श० ५ । ३ । १ । ७ ॥

क्षत्रम्, क्षत्रियः प्राणो हि वै क्षत्रं त्रायते हैनं प्राणः क्षणितोः प्र क्षत्रमात्र-
माप्नोति क्षत्रस्य सायुज्यं सलोकतां जयति य एवं
वेद । श० १४ । ८ । १४ । ४ ॥

” क्षत्रं राजन्यः । ऐ० ८ । ६ ॥ श० ५ । १ । ५ । ३ ॥ १३ ।
१ । ५ । ३ ॥

” क्षत्रस्य वाऽ एतद्रूपं यद्राजन्यः । श० १३ । १ । ५ । ३ ॥

” ओजः क्षत्रं वीर्यं राजन्यः । ऐ० ८ । २, ३, ४ ॥

” क्षत्रं हि राष्ट्रम् । ऐ० ७ । २२ ॥

” आदित्यो वै दैवं क्षत्रमादित्य एषां भूतानामधिपतिः ।
ऐ० ७ । २० ॥

” क्षत्रं वा एतदारण्यानां पशूनां यद्व्याघ्रः । ऐ० ८ । ६ ॥

” क्षत्रं वा एतद्वनस्पतीनां यन्न्यग्रोधः । ऐ० ७ । ३१ ॥
८ । १६ ॥

” क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद् व्रीहयः । ऐ० ८ । १६ ॥

” क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद् हूर्वा । ऐ० ८ । ८ ॥

” क्षत्रं वै पयः । श० १२ । ७ । ३ । ८ ॥

” क्षत्रस्थैतद्रूपं यद्विरण्यम् । श० १३ । २ । २ । १७ ॥

- क्षत्रम्, क्षत्रियः ब्रह्मणो वै रूपमहः क्षत्रस्य रात्रिः । तै० ३ । ६ ।
 १४ । ३ ॥
- ” क्षत्रस्य वाऽ एतद्रूपं यद्रात्रिः । श० १३ । १ । ५ । ५ ॥
- ” क्षत्रं पञ्चदशः (स्तोमः) । ऐ० ८ । ४ ॥
- ” क्षत्रं हि त्रीन्मः । श० २ । १ । ३ । ५ ॥
- ” अयं वाऽ अग्निर्ब्रह्म च क्षत्रं च । श० ६ । ६ । ३ । १५ ॥
- ” ब्रह्म वा अग्निः क्षत्रं सोमः । कौ० ९ । ५ ॥
- ” क्षत्रं सोमः । ऐ० २ । ३८ ॥ कौ० ७ । १० ॥ १० । ५ ॥
 १२ । ८ ॥
- ” क्षत्रं वै सोमः । श० ३ । ४ । १ । १० ॥ ३ । ६ । ३ । ३,
 ७ ॥ ५ । ३ । ५ । ८ ॥
- ” (यजु० १४ । ६) प्रजापतिर्वै क्षत्रम् । श० ८ । २ ।
 ३ । ११ ॥
- ” मित्रः क्षत्रं क्षत्रपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥ श० ११ ।
 ४ । ३ । ११ ॥
- ” क्षत्रं वरुणः । कौ० ७ । १० ॥ १२ । ८ ॥ श० ४ । १ ।
 ४ । १ ॥ गो० ७० ६ । ७ ॥
- ” क्षत्रं वै वरुणः । श० २ । ५ । २ । ६, ३४ ॥
- ” क्षत्रं वाऽ इन्द्रः । कौ० १२ । ८ ॥ तै० ३ । ६ । १६ ।
 ३ ॥ श० २ । ५ । २ । २७ ॥ २ । ५ । ४ । ८ ॥ ३ । ६ ।
 १ । १६ ॥ ४ । ३ । ३ । ६ ॥
- ” क्षत्रमिन्द्रः क्षत्रियेषु ह पशवो ऽभविष्यन् । श० ४ । ४ ।
 १ । १८ ॥
- ” तस्मादु क्षत्रियो भूयिष्ठं हि पशूनामीष्टे । गो० ७०
 ६ । ७ ॥
- ” क्षत्रं वै वैश्वानरः । श० ६ । ६ । १ । ७ ॥ ६ । ३ ।
 १ । १३ ॥
- ” यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः
 पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति क्षत्रात्परं नास्ति तस्मा-
 द्ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादुपास्ते राजसूये । श० १४ ।
 ४ । २ । २३ ॥

- क्षत्रम्, क्षत्रियः क्षत्रं वै स्वियष्टकृत् । श० १२ । ८ । ३ । १६ ॥
- ” क्षत्रं त्रिष्टुप् । कौ० ३ । ५ ॥ श० ३ । ४ । १ । १० ॥
- ” ब्रह्म हि पूर्वं क्षत्रात् । तां० ११ । १ । २ ॥
- ” सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म । श० १४ । ४ । २ । २३ ॥
- ” ब्रह्मणः क्षत्रं निर्मितम् । तै० २ । ८ । ८ । ६ ॥
- ” तद्यत्र ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदा-
हास्मिन् वीरो जायते । ऐ० ८ । ६ ॥
- ” अभिगन्तैव ब्रह्म कर्ता क्षत्रियः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥
- ” एतद्ध त्वेवानवक्लृप्तं यत्क्षत्रियो ऽब्राह्मणो भवति तस्माद्
क्षत्रियेण कर्म करिष्यमाणेनोपसर्तव्य एव ब्राह्मणः ।
श० ४ । १ । ४ । ६ ॥
- ” क्षत्रं वै होता । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० ३० । ६ । ३ ॥
- ” क्षत्रं माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १६ । ४ ॥
- ” भुव इति (प्रजापतिः) क्षत्रम् (अजनयत) । श० २ ।
१ । ४ । १२ ॥
- ” यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम् । तै० ३ । १२ । ६ । २ ॥
- ” क्षत्रं वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ गो० ३०
५ । ७ ॥
- ” क्षत्रं वै स्तोत्रम् । ष० १ । ४ ॥
- ” क्षत्रं वै लोकम्पृणा (इष्टका) विश इमा इतरा इष्टकाः ।
श० ८ । ७ । २ । २ ॥
- ” क्षत्रं वै लोकम्पृणा (इष्टका) । श० ६ । ४ । ३ । ५ ॥
- ” क्षत्रमुपाशुयाजः । श० ११ । २ । ७ । १५ ॥
- ” क्षत्रं वै प्रस्तरः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥
- ” यस्तान्तवं वस्ते क्षत्रं वर्द्धते न ब्रह्म । गो० ५० । २ । ४ ॥
- ” ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावास्या । कौ० ४ । ८ ॥
- ” एतानि क्षत्रस्यायुधानि यदश्वरथः कवच इषुधन्व ।
ऐ० ७ । १९ ॥
- ” अन्नं वै क्षत्रियस्य विद् । श० ३ । ३ । २ । ८ ॥
- ” तस्मान्न कदा चन ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च वैश्यं च
शूद्रं च पश्चादन्वितः । श० ६ । ४ । ४ । १३ ॥

- क्षत्रम् क्षत्रियः तस्मात्क्षत्रियं प्रथमं यन्तमितरे त्रयो वर्णाः पश्चाद्-
 नुयन्ति । श० ६ । ४ । ४ । १३ ॥
- ” तस्माद्दु क्षत्रियमायन्तमिमाः प्रजा विशः प्रत्यवरो-
 हन्ति तमधस्तादुपासते । श० ३ । ६ । ३ । ७ ॥
- ” क्षत्रियो ऽजनि विश्वस्य भूतस्याधिपतिरजनि विशा-
 मत्ता ऽजन्यमित्राणां हन्ता ऽजनि ब्राह्मणानां गोसा
 ऽजनीति । ऐ० ८ । १७ ॥
- ” एतद्वै परार्ध्यमन्नाद्यं यत्क्षत्रियः । कौ० २५ । १५ ॥
- ” निरुक्तमिव हि क्षत्रम् । श० ६ । ३ । १ । १५ ॥
- ” अपरिमितो वै क्षत्रियः । ऐ० ८ । २० ॥
- ” क्षत्रं बृहत् (साम) । ऐ० ८ । १, २ ॥
- ” यत्सुरा भवति क्षत्ररूपं तदथो अन्नस्य रसः । ऐ० ८ । ८ ॥
- ” अथास्य (क्षत्रियस्य) एष स्वो भक्तो न्यग्रोधस्यावरोधाश्च
 फलानि चोदुम्बराण्याश्वत्थानि मालाण्यभिषुणुयात्तानि
 भक्षयेत्सोऽस्थ स्वो भक्तः । ऐ० ७ । ३० ॥ राजन्यशब्द-
 मपि पश्यत ॥

क्षपा रात्रयः क्षपाः । ऐ० १ । १३ ॥

क्षयः अन्तो वै क्षयः । कौ० ८ । १ ॥

” क्षयो वै देवाः । गो० ७० । २ । १३ ॥

क्षिप्रम् यद्वै क्षिप्रं तत्क्षुत्तम् । श० ६ । ३ । २ । २ ॥

क्षुमा (श्वुः) अथ ययापैव राभ्नोति सा तृतीया सासौ धौः सैषा क्षुमा
 नाम । श० ५ । ३ । ५ । २६ ॥

क्षुरोभ्रजश्छन्दः (यजु० १५ । ४) असौ वाऽ आदित्यः क्षुरो भ्रजश्छन्दः ।
 श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

क्षत्रम् इयं वै क्षेत्रं पृथिवी । कौ० ३० । ११ ॥ गो० ७० । ५ । १० ॥

(ख)

खदिरः खदिरेण ह सोममाचखाद् । तस्मात्खदिरो यदेनेनाखिदत् । श०
 ३ । ६ । २ । १२ ॥

” अस्थिभ्य एवास्य (प्रजापतेः) खदिरः समभवत् । तस्मात्स
 दारुणो बहुसारः । श० १३ । ४ । ४ । ६ ॥

[गन्धर्वाः

(१४२)

- खादिरः खादिरं (यूषं करोति) बलकामस्य । ष० ४ । ४ ॥
" षट् खादिराः (यूषाः) । तेजसो ऽवरुध्यै ॥ तै० ३ । ८ । २० । १ ॥
" खादिरं (यूषं कुर्वीत) स्वर्गकामः । कौ० १० । १ ॥
खम छिद्रं खमित्युक्तम् । गो० उ० २ । ५ ॥
खलः खल उत्तरवेदिः । तां० १६ । १३ । ७ ॥
खादः अन्तौ वै खादः । ऐ० ५ । १२ ॥
खिलम् यद्वा उर्वरयोरसंभिन्नं भवति खिलमिति ('खिल इति' इति
शातपथः पाठः) वै तदाचक्षते । कौ० ३० । ८ ॥ श० ८ । ३ ।
४ । १ ॥
गरुडपदः यानि छावामि ते गरुडपदाः (अभवन्) । ऐ० ३ । २६ ॥
गतनिधनम् (साम) गतनिधनं वाभ्रवं भवति गत्यै । तां० १५ । ३ । १२ ॥
" वभ्रुर्वा एतेन कौम्भ्यो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत्
स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकात्र च्यवते
तुष्टुवानः । तां० १५ । ३ । १३ ॥
गन्धः सोमो गन्धाय । तां० १ । ३ । ६ ॥ सा० ३ । ८ । १ ॥
" सोम इव गन्धेन (भूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥
गन्धर्वाः वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विशस्तऽ इमऽ
आसतऽइति युवानः शोभना उपसमेता भवन्ति तानुप-
दिशत्यथर्वाणो वेदः सो ऽयमिति । (पश्यत—शांखायनश्रौत-
सूत्रम् १६ । २ । ८ ॥ आश्वलायनश्रौतसूत्रम् १० । ७ । ३ ॥) ।
श० १३ । ४ । ३ । ७ ॥
" गन्धो मे मोदो मे प्रमोदो मे । तन्मे युष्मासु (गन्धर्वेषु) । जै०
उ० ३ । २५ । ४ ॥
" गन्धेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरसश्चरन्ति । श० ६ । ४ ।
१ । ४ ॥
" रूपमिति गन्धर्वाः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥
" योषित्कामा वै गन्धर्वाः । श० ३ । २ । ४ । ३ ॥ ३ । ६ ।
३ । २० ॥
" स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः । ऐ० १ । २७ ॥
" त (गन्धर्वाः) उ ह स्त्रीकामाः । कौ० १२ । ३ ॥

गन्धर्वाः तस्य (पतञ्जलस्य काप्यस्य) आसीद्गृहिता गन्धर्वगृहीता ।

श० १४ । ६ । ३ । १ ॥

„ पतदेव कुमारी गन्धर्वगृहीतोवाच । कौ० २ । ६ ॥

„ पतदु हैवोवाच कुमारी गन्धर्वगृहीता । ऐ० ५ । २६ ॥

„ तमेते गन्धर्वाः सोमरक्षा जुगुपुरिमे धिष्या इमा होत्राः ।

श० ३ । ६ । २ । ६ ॥

„ (यजु० १८ । ४१) वातो गन्धर्वः । श० ६ । ४ । १ । १० ॥

„ प्राणो वै गन्धर्वः । जै० उ० ३ । ३६ । ३ ॥

„ (यजु० १८ । ४३) मनो गन्धर्वः । श० ६ । ४ । १ । १२ ॥

„ (यजु० १८ । ४२) यज्ञो गन्धर्वः । श० ९ । ४ । १ । ११ ॥

„ (यजु० १८ । ३८) अग्निर्हु गन्धर्वः । श० ६ । ४ । १ । ७ ॥

„ (यजु० १८ । ४०) चन्द्रमा गन्धर्वः । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥

„ (यजु० १८ । ३६) सूर्यो गन्धर्वः । श० ६ । ४ । १ । ८ ॥

„ असौ वाऽ आदित्यो दिव्यो गन्धर्वः । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

„ (यजु० ६ । ७) गन्धर्वाः सप्तविंशतिः (गन्धर्वाः=मत्स्य-
प्राणि—इति सायणो महीधरश्च) । श० ५ । १ । ४ । ८ ॥

„ (अश्वो) वाजी (भूत्वा) गन्धर्वान् (अवहत्) । श० १० ।
६ । ४ । १ ॥

गन्धर्वाप्सरसः अथो गन्धेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरसश्चरन्ति ।

श० ६ । ४ । १ । ४ ॥

„ (प्रजापतिः) उपद्रवं गन्धर्वाप्सरोभ्यः (प्रायच्छत्) ।

जै० उ० १ । १२ । १ ॥

„ गन्धर्वाप्सरसो वै मनुष्यस्य प्रजाया वा प्रजस्ताया
वेशते । तां० १६ । ३ । २ ॥

गभः (यजु० २३ । २२) विद्धै गभः । श० १३ । २ । ६ । ६ ॥ तै० ३ ।

६ । ७ । ३, ५ ॥

गभस्तिः पाणी वै गभस्ती । श० ४ । १ । १ । ६ ॥

गभीरः (=महान्) गभीरमिममध्वरं कृधीति । अध्वरो वै यज्ञो
महान्तमिमं यज्ञं कृधीत्येवैतदाह । श० ३ । ६ । ४ । ५ ॥

[गर्भः (१४४)

गयः स यदाह गयो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै चन्द्रमा भूत्वा
सर्वाङ्गोकाङ्गच्छति तद्यद्गच्छति तस्माद्गयस्तद्गयस्य गयत्वम् ।
गो० पू० ५ । १४ ॥

„ प्राणा वै गयाः । श० १४ । ८ । १५ । ७ ॥

गयस्फानः प्रतरणः (ऋ० १ । ६१ । १६) गयस्फानः प्रतरणः सुवीर
इति गवां नः स्फावयिता
प्रतारयितैधीत्याह । पे० १ ।
१३ ॥

गर्तः पितृदेवत्यो वै गर्तः । श० ५ । २ । १ । ७ ॥

„ पुरुषो गर्तः । श० ५ । ४ । १ । १५ ॥

गर्दभः तस्मात्स (गर्दभः) द्विरेता वाजी । पे० ४ । ६ ॥

„ अथ यदासाः पाण्डुसव (ः) पर्यशिष्यन्त । ततो गर्दभः सम-
भवत्तस्माद्यत्र पाण्डुमुलं भवति गर्दभस्थानमिव वतेत्याहुः ।
श० ४ । ५ । १ । ६ ॥

गर्भः एष वै गर्भो देवानां (यजु० ३७ । १४ ॥) य एष (सूर्यः) तपत्येष
हीद३ सर्वं गृह्णात्येतेनेद३ सर्वं गृभीतम् । श० १४ । १ । २ ॥

„ (यजु० २३ । १६) प्रजा वै पशवो गर्भः । श० १३ । २ । ८ । ५ ॥
तै० ३ । ६ । ६ । ४ ॥

„ तस्मात्पराञ्चो गर्भाः सम्भवन्ति प्रत्यञ्चः प्रजायन्ते । तां० १६ ।
५ । १६ ॥

„ वायव्या गर्भाः । तै० ३ । ६ । १७ । ५ ॥

„ पुरुष उ गर्भः । जै० उ० ३ । ३६ । ३ ॥

„ इन्द्रियं वै गर्भः । तै० १ । ८ । ३ । ३ ॥

„ विषुरूपा इव हि गर्भाः । श० ४ । ५ । २ । १२ ॥

„ न्यक्ताकुलय इव हि गर्भाः । श० ३ । २ । १ । ६ ॥

„ उत्तानेव वै योनिर्गर्भं बिभर्ति । श० ३ । २ । १ । २६ ॥

„ प्रावृता वै गर्भाः उल्बेनेव जरायुणोऽत्र । श० ३ । २ । १ । १६ ॥

„ यदा वै गर्भः समृद्धो भवति प्रजनेन वै स तर्हि प्रत्यङ्कृति ।

श० ४।५।२।३ ॥

गर्भः यदा वै गर्भः समृद्धो भवत्यथ दशमास्यः । श० ४।५।२।४ ॥

„ परमास्या वाऽऽन्तमा गर्भा जाता जीवन्ति । श० ६।५।
१।६३ ॥

„ गर्भः समित् । श० ६।६।२।१५ ॥

„ संवत्सरो वाव गर्भाः पञ्चविंशः (यजु० १४।२३) तस्य
चतुर्विंशतिरर्धमासाः संवत्सर एव गर्भाः पञ्चविंशस्त-
द्यत्तमाह गर्भा इति संवत्सरो ह त्रयोदशो मासो गर्भो भूत्व-
ऽर्त्तन्प्रविशति । श० ८।४।१।१६ ॥

गवाक्षीः गवाशोज्जगती । तां० १२।१।२ ॥

गवेषुकाः यज्ञस्य शीर्षच्छिन्नस्य रसो व्यक्षरत्त एता ओषधयो
(गवेषुकाः) जङ्गिरे । श० १४।१।२।१६ ॥

„ यत्र वै सा देवता (रुद्रः) विस्त्रस्ताशयत्ततो गवेषुकाः
समभवन्स्त्वेनैवैनम् (रुद्रम्) एतद्भागेन स्वेन रसेन प्रीणाति
(यजमानः) । श० ६।१।१।८ ॥

„ रौद्रो गवेषुकश्चरहः । श० ५।२।४।११, १३ ॥

मातुः गातुं वित्त्वेति यज्ञं वित्त्वेत्येवैतदाह । श० १।६।२।२८ ॥
४।४।४।१३ ॥

गातुविदः गातुविदो हि देवाः । श० ४।४।४।१३ ॥

गाथा यद्गङ्गाणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशंभस्यभवत् । तै० १ ॥
३।२।६ ॥

„ ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथाया ओमिति वै दैवं तथेति
मानुषम् । ऐ० ७।१८ ॥

गानम् तस्माद्गु गायतां नाऽश्रीयात् । मलेन ह्येते जीवन्ति । जै० ३०
१।५७।१ ॥

गायत्रपार्श्वम् (साम) अहर्वा एतद्वलीयत तद्देवा गायत्रपार्श्वेन सम-
तन्वन्स्तस्माद्गायत्रपार्श्वम् । तां० १४।६।
२६ ॥

गायत्रम् (साम) तमेतदेव (गायत्रं) साम गायन्नप्रायत । यद्गायन्नप्रायत
तद्गायत्रस्य गायत्रत्वम् । जै० ३० ३।३८।४ ॥

- गायत्रम् (साम) तस्य (महाव्रतस्य) गायत्रं शिरः । तां० १६ ।
११ । ११ ॥
- „ इमे वै लोका गायत्रम् (साम) । तां० ७ । १ । १ ॥
- गायत्री (छन्दः) सा हैषा (गायत्री) गवांस्तत्रे । प्राणा वै गयास्तप्राणां-
स्तत्रे तद्यद्गवांस्तत्रे तस्माद्गायत्री नाम । श० १४ ।
८ । १५ । ७ ॥
- „ गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः । दे० ३ । २ ॥
- „ गायतो मुखादुदपतदिति ह ब्राह्मणम् । दे० ३ । ३ ॥
- „ सेयं सर्वा कृत्वा मन्यमाना गायद्यदमयत्तस्मा-
दियं (पृथिवी) गायत्री । श० ६ । १ । १ । १५ ॥
- „ या वै सा गायत्र्यासीदियं वै सा पृथिवी । श० १ ।
४ । १ । ३४ ॥
- „ इयमेव (पृथिवी) गायत्री । जै० उ० १ । ५५ । ३ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै गायत्री । तां० ७ । ३ । ११ ॥
१४ । १ । ४ ॥
- „ सा वै गायत्रीयं (पृथिवी) । श० १ । ७ । २ । १५ ॥
- „ गायत्री वाऽइयं (पृथिवी) । श० ४ । ३ । ४ । ६ ॥
५ । २ । ३ । ५ ॥
- „ पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त । गायत्रेण छन्दसा ततो
निर्मक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । श० १ ।
६ । ३ । १० ॥
- „ गायत्रोऽयं (भू-)लोकः । कौ० ८ । ६ ॥
- „ अयमेव (भूलोकः) गायत्री । तां० ७ । ३ । ६ ॥
- „ गायत्रेऽस्मिँल्लोके गायत्रोऽयमग्निरध्यूढः । कौ०
१४ । ३ ॥
- „ प्राणो गायत्री प्रजननम् । तां० १६ । १४ । ५ ॥ १६ ।
१६ । ७ ॥ १९ । ५ । ६ ॥ ६६ । ७ । ७ ॥
- „ प्राणो गायत्रं (साम) । तां० ७ । १ । ६ ॥ ७ । ३ । ७ ॥
- „ तत्प्राणो वै गायत्रम् । जै० उ० १ । ३७ । ७ ॥
- „ प्राणो वै गायत्र्यः । कौ० १५ । २ ॥ १६ । ३ ॥ १७ । २ ॥

- गायत्री (छन्दः) प्राणो वै गायत्री । श० ६ । ४ । २ । ५ ॥ ष० ३ । ७ ॥
 ” प्राणो गायत्री । श० ६ । २ । १ । २४ ॥ ६ । ६ । २ ।
 ७ ॥ १० । ३ । १ । १ ॥ तां० ७ । ३ । ८ ॥ १६ ।
 ३ । ६ ॥
 ” यो वै स प्राण एषा सा गायत्री । श० ७ । ५ ।
 १ । २१ ॥
 ” गायत्री वै प्राणः । श० १ । ३ । ५ । १५ ॥
 ” गायत्र उ वै प्राणः । कौ० ८ । ५ ॥ तै० ३ । ३ ।
 ५ । ३ ॥
 ” गायत्रः प्राणः । तां० २० । १६ । ५ ॥
 ” अग्निर्वै गायत्री । श० ३ । ४ । १ । १६ ॥ ३ । ६ ।
 ४ । १० ॥ ६ । ६ । २ । ७ ॥
 ” गायत्री वाऽ अग्निः । श० १ । ८ । २ । १३ ॥
 ” गायत्रो वा अग्निः । कौ० १ । १ ॥ ३ । २ ॥ ६ । २ ॥
 १६ । ४ ॥ तै० १ । १ । ५ । ३ ॥
 ” अग्निर्गायत्रः । श० १६ । १ । १ । १५ ॥
 ” गायत्रञ्छुन्दा ह्यग्निः । तां० ७ । ८ । ४ ॥
 ” गायत्रमग्नेश्छुन्दः । कौ० १० । ५ ॥ १४ । २ ॥ २८ । ५ ॥
 ” गायत्रं वाऽ अग्नेश्छुन्दः । श० १ । ३ । ५ । ४ ॥
 ” गायत्रञ्छुन्दा अग्निः । तां० १६ । ५ । १६ ॥
 ” यो वा अत्राग्निर्गायत्री स निदानेन । श० १ । ८ ।
 २ । १५ ॥
 ” गायत्रो वै ब्राह्मणः । ऐ० १ । २८ ॥
 ” गायत्रञ्छुन्दा वै ब्राह्मणः । तै० १ । १ । ६ । ६ ॥
 ” ब्रह्म हि गायत्री । तां० ११ । ११ । ६ ॥
 ” ब्रह्म उ गायत्री । जै० उ० १ । १ । ८ ॥
 ” ब्रह्म वै गायत्रो । ऐ० ४ । ११ ॥ कौ० ३ । ५ ॥
 ” ब्रह्म गायत्री । श० १ । ३ । ५ । ४ ॥
 ” ब्रह्म गायत्री क्षत्रं त्रिष्टुप् । श० १ । ३ । ५ । ५ ॥
 ” गायत्री ब्रह्मवर्चसम् । तै० २ । ७ । ३ । ३ । तां०
 ५ । १ । ९ ॥

- गायत्री (छन्दः) तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गायत्री । ऐ० १ । ५, २८ ॥ गो०
उ० ५ । ५ ॥
- ” तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्री । कौ० १७ । २, ६ ॥ तां०
१५ । १ । ८ ॥
- ” तेजो वै गायत्री छन्दसाम् । तां० १५ । १० । ६ ॥
- ” तेजो वै गायत्री । गो० उ० ५ । ३ ॥ तै० ३ । ६ ।
४ । ६ ॥
- ” तेजसा वै गायत्री प्रथमं त्रिरात्रं दाधार पदैर्द्वितीय-
मक्षरैस्तृतीयम् । तां० १० । ५ । ३ ॥
- ” ज्योतिर्वै गायत्री छन्दसाम् । तां० १३ । ७ । २ ॥
- ” ज्योतिर्वै गायत्री । कौ० १७ । ६ ॥
- ” दधिद्युतती वै गायत्री । तां० १२ । १ । २ ॥
- ” गायत्र्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- ” एते वाव छन्दसां वीर्य्यवत्तमे यद्गायत्री च त्रिष्टुप्
च । तां० २० । १६ । ८ ॥
- ” वीर्य्यं वै गायत्री । तां० ७ । ३ । १३ ॥
- ” वीर्यं गायत्री । श० १ । ३ । ५ । ४ ॥ १ । ६ । १ । १७ ॥
- ” यातयामान्यन्यानि छन्दाश्छस्ययातयामा गायत्री ।
तां० १३ । १० । १ ॥
- ” शिरो गायत्री । ष० २ । ३ ॥
- ” शिरो गायत्र्यः । श० ८ । ६ । २ । ३ ॥
- ” गायत्रश्छ हि शिरः । श० ८ । ६ । २ । ६ ॥
- ” गायत्री छन्दो ऽग्निर्देवता शिरः । श० १० । ३ ।
२ । १ ॥
- ” मुखमेव गायत्री । कौ० ११ । २ ॥
- ” मुखं गायत्री । तां० ७ । ३ । ७ ॥ १४ । ५ । २८ ॥
१६ । ११ । ४ ॥
- ” गायत्री छन्दसां (मुखम्) । तां० ६ । १ । ६ ॥
- ” अग्निर्ह वाव राजन् गायत्रीमुखम् । जै० उ० ४ ।
८ । २ ॥

- गायत्री (छन्दः) यस्माद्गायत्रमुखः प्रथमः (त्रिरात्रः) तस्माद्दूर्ध्वो
ऽग्निर्दीदाय । तां० १० । ५ । २ ॥
- „ त्रिपदा गायत्री । तां० १० । ५ । ४ ॥
- „ ता वा एता गायत्र्यो यत्रिपदाः । तां० १६ । ११ ।
१० ॥
- „ त्रिवृद्धै गायत्र्यास्तेजः । तां० १० । ५ । ४ ॥
- „ अष्टाक्षरा गायत्री । ऐ० २ । १७ ॥ ३ । १२ ॥ कौ०
६ । २ ॥ १६ । ४ ॥ तै० १ । १ । ५ । ३ ॥ तां० ६ ।
३ । १३ ॥ जै० उ० १ । १ । ८ ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥
गो० उ० ३ । १० ॥
- „ अष्टाक्षरा वै गायत्री । श० १ । ४ । १ । ३६ ॥
- „ नवाक्षरा वै गायत्र्यष्टौ तानि यान्यन्वाह प्रणवो
नवमः । श० ३ । ४ । १ । १५ ॥
- „ चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री । ऐ० ३ । ३६ ॥ श०
३ । ५ । १ । १० ॥
- „ चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री । कौ० १२ । ३ ॥ जै० उ०
१ । १७ । २ ॥
- „ गायत्री वै प्राची दिक् । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥
- „ प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरं साम त्रिवृ-
त्स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् । श० ५ । ४ ।
१ । ३ ॥
- „ वसवस्त्वा पुरस्तादभिषिञ्चन्तु गायत्रेण छन्दसा ।
तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥
- „ वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसाः संमृजन्तु । तां० १ ।
२ । ७ ॥
- „ वसवो गायत्रीं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ४ ॥
- „ गायत्री वसूनां पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥
- „ गायत्रं साम । जै० उ० १ । १ । ८ ॥
- „ गायत्रं वै रथन्तरम् । तां० ५ । १ । १५ ॥
- „ गायत्रं वै रथन्तरं गायत्रछन्दः । तां० १५ । १० । ६ ॥

- गायत्री (छन्दः) गायत्री वै रथन्तरस्य योनिः । तां० १५ । १० । ५ ॥
- ” या हि का च गायत्री सा रेवती । तां० १६।५।२७ ॥
- ” गायत्री वै रेवती । तां० १६ । ५ । १६ ॥
- ” गायत्रः सप्तदशस्तोमः । तां० ५ । १ । १५ ॥
- ” गायत्रीमात्रो वै स्तोमः । कौ० १६ । ८ ॥
- ” गायत्रो मैत्रावरुणः । तां० ५ । १ । १५ ॥
- ” पूर्वाधो वै यज्ञस्य गायत्री । श० ३ । ५ । १ । १० ॥
३ । ६ । ४ । २० ॥
- ” यज्ञो वै गायत्री । श० ४ । २ । ४ । २० ॥
- ” गायत्रो यज्ञः । गो० पृ० ४ । २४ ॥
- ” गायत्रं वै प्रातःसवनम् । ऐ० ६ । २, ६ ॥ ष० १ ।
४ ॥ तां० ६ । ३ । ११ ॥
- ” गायत्रम्प्रातस्सवनम् । जै० उ० ४ । २ । २ ॥
- ” गायत्रं हि प्रातःसवनम् । गो० उ० ३ । १६ ॥
- ” गायत्रो वै पुरुषः । ऐ० ४ । ३ ॥
- ” गायत्राः पशवः । तै० ३ । २ । १ । १ ॥
- ” एतद्धि (गायत्री-) छन्दः आशिष्ठम् । श० ८ ।
२ । ३ । ६ ॥
- ” इमे वै लोका गायत्री । तां० १५ । १० । ६ ।
- ” गायत्र्या वै देवा इमान् लोकान् व्याप्नुवन् । तां० १६ ।
१४ । ४ ॥
- ” एषा वै गायत्री पत्निणी चक्षुष्मती ज्योतिष्मती
भास्वती यद् द्वादशाहस्तस्य यावभितो ऽतिरात्रौ
तौ पक्षौ यावन्तराग्निष्टोमौ ते चक्षुषी ये ऽष्टौ मध्य
उक्थ्याः स आत्मा । ऐ० ४ । २३ ॥
- ” तद्वै कनिष्ठं छन्दः सद् गायत्रती प्रथमा छन्दसां
युज्यते तदु तद्वीर्यैव यच्छ्येनो भूत्वा दिवः सोम-
माहरत् । श० १ । ८ । २ । १० ॥
- ” यद्गायत्री श्येनो भूत्वा दिवः सोममाहरत्तेन सा
श्येनः । श० ३ । ४ । १ । १२ ॥

- गायत्री (छन्दः) तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत् । तं गायत्र्या-
हृत् । तै० १ । १ । ३ । १० ॥ ३ । २ । १ । १ ॥
- ” सा गायत्री समिद्धान्यानि छन्दाश्चसि समिन्धे ।
श० १ । ३ । ४ । ६ ॥
- ” गायत्री वाव सर्वाणि छन्दाश्चसि । तां० ८ । ४ । ४ ॥
- ” सा गायत्री गाययाऽपुनोता । जै० उ० १ । ५७ । १ ॥
- ” या द्यौः साऽनुमतिः सो एव गायत्री । ऐ० ३ । ४८ ॥
- ” गायत्र्या वै देवाः पाप्मानं शमलमपाघ्नत । ऐ० २ । १७ ॥
- गारम् (साम) इदं वसो सुतमन्ध इति गारमेतेन वै गर इन्द्रमप्रीणा-
त्प्रीत एवास्यैतेनेन्द्रो भवति । तां० ६ । २ । १६ ॥
- गार्हपत्यः (अग्निः) ऋग्वेदाद्गार्हपत्यः (अजायत) । ष० ४ । १ ॥
- ” गृहा वै गार्हपत्यः । श० १ । १ । १ । १६ ॥ १ । ६ ।
३ । १८ ॥ २ । ४ । १ । ७ ॥ ४ । ६ । ६ । २ ॥
- ” जाया गार्हपत्यः । ऐ० ८ । २४ ॥
- ” प्रजापतिवै गार्हपत्यः । कौ० २७ । ४ ॥
- ” अथैव एव गार्हपत्यो यमो राजा । श० २ । ३ ।
२ । २ ॥
- ” अन्नं वै गार्हपत्यः । श० ८ । ६ । ३ । ५ ॥
- ” कर्मति गार्हपत्यः । जै० उ० ४ । २६ । १५ ॥
- ” अयं वै (भू-)लोको गार्हपत्यः । श० ७ । १ । १ ।
६ ॥ ८ । ६ । ३ । १४ ॥ ष० १ । ५ ॥
- ” यद्गार्हपत्यं (उपतिष्ठते) पृथिवीं तद् (उपतिष्ठते) ।
श० २ । ३ । ४ । ३६ ॥
- ” प्राणोदानावेवाहचनोयश्च गार्हपत्यश्च । श० २ । २ ।
२ । १८ ॥
- ” अरणो वै गार्हपत्यः । कौ० २ । १ ॥
- ” यजमानदेवत्यो वै गार्हपत्यः । श० २ । ३ । २ । ६ ॥
- ” यद्गार्हपत्यं (उपतिष्ठते) पुरुषांस्तद्याचते । श० २ ।
३ । ४ । ३२ ॥
- ” य इहाहीयत स गार्हपत्यः । श० १ । ७ । ३ । २२ ॥
- ” गार्हपत्यो वा अग्नेर्योनिः । तै० १ । ४ । ७ । ४ ॥

[गृहपतिः

(१५२)

गार्हपत्या चितिः योनिर्वै गार्हपत्या चितिः । श० ७ । १ । १ । ८ ॥ ८ ।

६ । ३ । ८ ॥

गिरश्छन्दः (यजु० १५ । ५) अन्नं वै गिरश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

गिरिः तस्य (वृत्रस्य) एतच्छुरीरं यद्विरयो यदश्मानः । श० ३ । ४ ।

३ । १३ ॥ ३ । ६ । ४ । २ ॥ ४ । २ । ५ । १५ ॥

गिर्वा इन्द्रो वै गिर्वा । श० ३ । ६ । १ । २४ ॥

गीः (यजु० १२ । ६८) वाग्वै गीः । श० ७ । २ । २ । ५ ॥

„ विशो गिरः । श० ३ । ६ । १ । २४ ॥

गुग्गुलु तस्य (अग्नेः) यन्मा^३समासीत्तद् गुग्गुलुवभवत् । तां०

२४ । १३ । ५ ॥ (“गुल्गुलु” शब्दमपि पश्यत)

गुदः प्राणो वै गुदः । श० ३ । ८ । ४ । ३ ॥

गुन्गुलु मा^३स^३ हैवास्य (अग्नेः) गुल्गुलु । श० ३ । ५ । २ । १६ ॥

(“गुग्गुलु” शब्दमपि पश्यत)

गूर्दः (सामविशेषः) गौपायनानां वै सत्रमासीनानां किरातकुल्यावसुर-

माये अन्तःपरिध्यसून् प्राकिरतान्ते ऽग्ने त्वन्नो

अन्तम इत्यग्निमुपासीद^३स्तेनासून्स्पृश्व^३स्त-

द्वाव ते तर्ह्यकामयन्त कामसनि साम गूर्दः काम-

मेवैतेनावरुन्धे । तां० १३ । १२ । ५ ॥

गृभीतः (यजु० १७ । ५४) गृभीत इति धारित इत्येतत् । श० ६ । २ ।

३ । ६ ॥

गृहपतिः असावेव गृहपतिर्यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष (सूर्यः) हि

गृहाणां पतिस्तस्यर्तव एव गृहाः । कौ० २७ । ५ ॥

„ असौ वै गृहपतिर्यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष (सूर्यः) पतिर्ऋ-

तवो गृहाः । ऐ० ५ । २५ ॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको गृहपतिः । श० १२ । १ । १ । १ ॥

गो० पू० ४ । १ ॥

„ अथ यदग्निं गृहपतिमन्ततो यजति । कौ० ३ । ६ ॥

„ अग्निर्गृहपतिरिति हैक आहुः सो ऽस्य लोकस्य (पृथिव्याः)

गृहपतिः । ऐ० ५ । २५ ॥

„ तप आसीद् गृहपतिः । तै० ३ । १२ । ६ । ३ ॥

- गृहपतिः घायुर्गृहपतिरिति हैक आहुः सोऽन्तरिक्षस्य लोकस्य गृह-
पतिः । ऐ० ५ । २५ ॥
- गृहमेधीयः पुष्टिकर्म वा एतद्यद् गृहमेधीयः । कौ० ५ । ५ ॥
- ” पुष्टिकर्म वै गृहमेधीयः । गो० उ० १ । २३ ॥
- गृहाः गृहा वै प्रतिष्ठा । श० १ । १ । १ । १९ ॥ १ । २ । ३ । १६ ॥ २ ।
४ । १ । ७ ॥
- ” गृहा वै प्रतिष्ठा सूक्तम् । ऐ० ३ । २४ ॥
- ” गृहा वै सूक्तम् । गो० उ० ३ । २१; २२ ॥
- ” गृहाः सूक्तम् । ऐ० ३ । २३ ॥
- ” गृहा वै दुर्याः । ऐ० १ । १३ ॥ श० १ । १ । २ । २२ ॥ ३ । ३ ।
४ । ३० ॥
- ” ऋतवो गृहाः । ऐ० ५ । २५ ॥
- गोऽन्नायुषी (स्तोमौ) अथ यद्गोऽन्नायुषी उपयन्ति । मित्रावरुणाधेव
देवते यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १६ ॥
- ” प्राणापानौ वै गोआयुषी । कौ० २६ । २ ॥
- ” घावापृथिवी वै गोआयुषी । कौ० २६ । २ ॥
- ” अहोरात्रे वै गोआयुषी । कौ० २६ । २ ॥
- ” यदेवेदं द्वितीयमहर्यञ्च तृतीयमेते वा उ गो-
आयुषी । कौ० २६ । २ ॥
- गोजाः एष (सूर्यः) वै गोजाः । ऐ० ४ । २० ॥
- गोधूमाः यत्पद्मभ्यः (तेजोऽस्त्रवत्) ते गोधूमाः (अभवन्) । श०
१२ । ७ । १ । २ ॥
- ” सो ऽयं (पुरुषः) अत्वगोते वै पुरुषस्यौघषीनां नेदिष्ठतमां
यद्गोधूमास्तेषां न त्वगस्ति । श० ५ । २ । १ । ६ ॥
- गोपाः (यजु० ३७ । १७) एष वै गोपा य एष (सूर्यः) तपत्येष द्वीदणु
सर्वं गोपायति । श० १४ । १ । ४ । ६ ॥
- ” प्राणो वै गोपाः । स हीदं सर्वमनिपद्यमानो
गोपायति । जै० उ० ३ । ३७ । २ ॥
- ” (ऋ० १ । ८६ । १ ॥) इन्द्रो वै गोपाः । ऐ०
६ । १० ॥ गो० उ० २ । २० ॥

[गौः

(१५४)

गोपाः (ऋ० २ । ६ । २) अग्निर्वै देवानां गोपाः (= गोप्ता) । ऐ० १ । २८ ॥

गोमृगः पशवो वै गोमृगः । तै० ३ । ६ । ११ । ३ ॥

गोष्टोमातिरात्रः (ऋतुः) गवा (गोष्टोमातिरात्रेण) वै देवा असुरानेभ्यो
लोकेभ्योऽनुदन्त । तां० २० । ७ । १ ॥

गोसवः (ऋतुः) अथैष गोसवः स्वाराज्यो यज्ञः । तां० १६ । १३ । १ ॥

गौः इमे वै लोका गौर्यद्धि किं च गच्छतीमांस्तल्लोकान् गच्छति । श०
६ । १ । २ । ३४ ॥

„ इमे लोका गौः । श० ६ । ५ । २ । १७ ॥

„ अयम्मध्यमो (लोकः = अन्तरिक्षम्) गौः । तां० ४ । १ । ७ ॥

„ अन्तरिक्षं गौः । ऐ० ४ । १५ ॥

„ गावो वा आदित्याः । ऐ० ४ । १७ ॥

„ अन्नमु गौः । श० ७ । ५ । २ । १९ ॥

„ अन्नं वै गौः । तै० ३ । ९ । ८ । ३ ॥

„ अन्नं हि गौः । श० ४ । ३ । ४ । २५ ॥ जै० ३० । ३ । ३ । १३ ॥

„ यज्ञो ह्येवेयं (गौः) नो हृतं गौर्यज्ञस्तायते ऽन्नं ह्येवेयं (गौः)
यद्धि किं चान्नं गौरैव तदिति । श० २ । २ । ४ । १३ ॥

„ यज्ञो वै गौः । तै० ३ । ९ । ८ । ३ ॥

„ (प्रजापतिः) प्राणाद्गाम् (निरमिमीत) । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥

„ प्राणौ हि गौः । श० ४ । ३ । ४ । २५ ॥

„ इन्द्रियं वै वीर्यं गावः । श० ५ । ४ । ३ । १० ॥

„ मुखादेवास्य बलमन्नवत् । स गौः पशुरभवद्वपभः । श० १२ ।
७ । १ । ४ ॥

„ इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते ऽदिति सरस्वति महि विश्रुति ।
पता तेऽअघ्न्ये (देवत्रा) नामानि । श० ४ । ५ । ८ । १० ॥

„ इडा हि गौः । श० २ । ३ । ४ । ३४ ॥ १४ । २ । १ । ७ ॥

„ सरस्वती (यजु० ३८ । २) हि गौः । श० १४ । २ । १ । ७ ॥

„ मह्य इति ह वाऽपतासामेकं नाम यद्गवाम् । श० १ । २ । १ ।
२२ ॥ ३ । १ । ३ । ६ ॥

„ या गौः सा सिनीवाली सो एव जगती । ऐ० ३ । ४८ ॥

„ विराड् (यजु० १३ । ४३) वै गौः । श० ७ । ५ । २ । १६ ॥

- गौः विराजो वा एतद्रूपं यद्वीः । तां० ४ । ६ । ३ ॥
- „ गौर्वै सारपराङ्गी । कौ० २७ । ४ ॥
- „ साहस्रो वाऽ एष शतधार उत्सः (यजु० १३ । ४९) यद्वीः । श० ७ । ५ । २ । ३४ ॥
- „ स ह्येष सोमो ऽजस्रो (यजु० १३ । ४३) यद्वीः । श० ७ । ५ । २ । १९ ॥
- „ गौर्वै क्षुचः । तै० ३ । ३ । ५ । ४ ॥
- „ गौर्हि देवानां मनोता । ऐ० २ । १० ॥
- „ गौर्वै देवानां मनोता । कौ० १० । ६ ॥
- „ वैश्वदेवी वै गौः । गो० उ० ३ । १६ ॥
- „ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ट । मं० २ । ८ । १५ ॥
- „ यद्वीस्तेन रौद्री । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥
- „ रौद्री वै गोः । तै० २ । २ । ५ । २ ॥
- „ आग्नेयो वै गौः । श० ७ । ५ । २ । १६ ॥
- „ गौर्वाऽ इदं सर्वं विभर्ति । श० ३ । १ । २ । १४ ॥
- „ महांस्त्वेव गोर्महिमेत्यध्वर्युः (आह) ॥ गौर्वै प्रतिधुक् । तस्यै
शृतं तस्यै शरस्तस्यै दधि तस्यै मस्तु तस्याऽ आतञ्चनं तस्यै
नवनीतं तस्यै घृतं तस्याऽ आमिक्षा तस्यै षाजिनम् । श० ३ । ३ । ३ । २ ॥
- „ मनुष्याणां होतासु (गोषु क्षीरदध्यादिविषयाः) कामाः
प्रविष्टाः । श० २ । ३ । ४ । ३४ ॥
- „ सर्वस्य वै गावः प्रेमाणं सर्वस्य चारुतां गताः । ऐ० ४ । १७ ॥
- „ अपशवो वा पते । यदजावयश्चारण्याश्च । पते वै सर्वे
पशवः । यद्व्या इति । तै० ३ । ६ । ६ । २ ॥
- „ नैते सर्वे पशवो यदजावयश्चारण्याश्चैते वै सर्वे पशवो यद्व्या
इति । श० १३ । ३ । २ । ३ ॥
- „ तस्मादाहुर्गावः पुरुषस्य रूपमिति । श० १२ । ६ । १ । ४ ॥

- गौः नो हान्ते गर्गन्ः स्यात् । वेद ह गौरहमस्य त्वचं विभर्मीति सा विभ्यती त्रसति त्वचं मऽ आदास्यतऽ इति तस्माद् गौः सु-
वाससमुपैव निश्रयन्ते । श० ३ । १ । २ । १७ ॥
- „ सा या बभ्रूः पिङ्गाक्षी (गौः) । सा सोमक्रयण्यथ या रोहिणी
सा वार्त्रघ्नी यामिदं राजा संग्रामं जित्वोदाकुरुते ऽथ या रो-
हिणी श्येताक्षी सा पितृदेवत्या यामिदं पितृभ्यो घ्नन्ति । श०
३ । ३ । १ । १४ ॥
- „ षट्त्रिंशद्वदाना गौः । गो० पू० ३ । १८ ॥ ४ । १२ ॥
- „ तस्माद् संवत्सरऽ एव स्त्री वा गौर्वा वडवा वा विजायते । श०
११ । १ । ६ । २ ॥
- „ आग्रयणपात्रमुक्थ्यपात्रमादित्यपात्रमेतान्येवानु गावः प्रजा-
यन्ते । श० ४ । ५ । ५ । ८ ॥
- „ गां चाजं च दक्षिणत एतस्यां तद्दिश्येतौ पशू दधाति तस्मादे-
तस्यां दिश्येतौ पशू भूयिष्ठौ । श० ७ । ५ । २ । १६ ॥ (धेनुशब्द-
मपि पश्यत)
- गौः (एकाहः) यद्वै तद्देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्यो गोवयं (गुप्तां-
स्तिरोहितान् कुर्वन्ति सायणः) स्तद्रोगोत्वम् । तां०
१६ । २ । ३ ॥
- „ गवा वै देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्यो ऽनुदन्तैभ्यो लोकेभ्यो
भ्रातृव्यन्नुदते य एवं वेद । तां० १६ । २ । २ ॥
- गौः (साम) अग्निरकामयतान्नादः स्यामिति स तपोऽतप्यत
स एतद्रौक्थ्यमपश्यत्तेनाज्ञादो ऽभवद्यदन्नं वित्वा
(वित्त्वा) गर्हद्यदगङ्गयत्तद्रौक्थ्यस्य गौक्थ्यत्वम् । तां०
१४ । ३ । १६ ॥
- „ अज्ञाद्यस्यावरुध्यै गौक्थ्यं क्रियते । तां० १४ । ३ । १६ ॥
- गौतमम् (साम) स्वर्गाह्नोकाश्च च्यवते (गौतमेन साम्ना) तुष्टुधानः ।
तां० ११ । ५ । २२ ॥
- गौरीवितम् (साम) गौरीवितिः (ऋषिविशेषः) वा एतच्छ्रुक्तयो ब्रह्मणो
ऽतिरिक्तमपश्यत्तद् गौरीवितमभवत् । तां० ११ । ५ ।
१४ ॥ १२ । १३ । १० ॥

- गौरीवितम् (साम) अतिरिक्तं गौरीवितम् । तां० १८ । ६ । १६ ॥
- „ अतिरिक्तं वै गौरिवितम् । तै० १ । ४ । ५ । २ ॥
- „ देवा वै वाचं व्यभजन्त तस्याः (वाचः) यो रसोऽत्य-
रिच्यत तद्गौरीवितमभवत् । तां० ५ । ७ । १ ॥
- „ ब्रह्म यद्देवा व्यकुर्वन्त ततो यदतिरिच्यत तद्गौरीवितम-
भवत् । तां० ६ । २ । ३ ॥
- „ प्र व इन्द्राय मादनमिति गौरीवितम् । तां० ६ । २ । २ ॥
- „ वृषा वा पतद्वाजिसाम (गौरीवितम्) । वृषभो
रेतोधा अद्य स्तुवन्ति श्वः प्रजायते । तां० ११ । ५ । १६ ॥
- „ पतद्वै यक्षस्य श्वस्तनं यद्गौरीवितम् । तां० ५ । ७ । ५ ॥
१५ । ६ । ७ ॥
- „ तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गौरीवितम् । ऐ० ४ । २ ॥
- गौषूक्तम् (साम) गौषूक्तिश्चाश्वसूक्तिश्च बहु प्रतिगृह्य गरगिरावस्येतां
तावेते सामना अपश्यतां ताभ्यां गरभिरघ्नाताम् ।
तां० १६ । ४ । १० ॥
- ग्नाः छन्दाणसि वै ग्नाश्छन्दोभिर्हि स्वर्गं लोकं गच्छन्ति । श० ६ ।
५ । ४ । ७ ॥
- ग्रन्थिः वरुणो वै ग्रन्थिः । श० १ । ३ । १ । १६ ॥
- „ वरुणो हि ग्रन्थिः । श० ५ । २ । ५ । १७ ॥
- ग्रहः यद् गृह्णाति तस्माद्ग्रहः । श० १० । १ । १ । ५ ॥
- „ अथ ग्रहान्गृह्णाति । श० ४ । ५ । ६ । ३ ॥
- „ तं (सोमं) अघ्नन् । तस्य यशो व्यगृह्णात् । ते ग्रहा अभवन् । तद्ग-
हाणां ग्रहत्वम् । तै० २ । २ । ८ । ६ ॥
- „ तद्यदेनं पात्रैर्व्यगृह्णात् तस्माद्ग्रहा नाम । श० ४ । १ । ३ । ५ ॥
- „ (प्रजापतिः) तौ (दर्शपूर्णमासौ) ग्रहेणागृह्णात् । तद्ग्रहस्य ग्रह-
त्वम् । तै० २ । २ । २ । १ ॥
- „ यद्विचं (यक्षं) ग्रहैर्व्यगृह्णात् तद्गहाणां ग्रहत्वम् । ऐ० ३ । ६ ॥
- „ तान् पुरस्तात् पवित्रस्य व्यगृह्णात् ते ग्रहा अभवन् । तद्गहाणां
ग्रहत्वम् । तै० १ । ४ । १ । १ ॥

{ प्रावाणः

(१५८)

- ग्रहः ते (देवाः) सोममन्वविन्दन् । तमग्नन् । तस्य यथाभिज्ञायं त-
नूर्व्यगृह्णत । ते ग्रहा अभवन् । तद्ग्रहानां ग्रहत्वम् । तै० १।३।१२॥
” एष वै ग्रहः । य एष (सूर्यः) तपति येनेमाः सर्वाः प्रजा गृही-
ताः । श० ४ । ६ । ५ । १ ॥
” अष्टौ ग्रहाः (प्राणः, जिह्वा, वाक्, चक्षुः, श्रोत्रम्, मनः, हस्तौ,
त्वक्) । श० १४ । ६ । २ । १ ॥
” प्राणा वै ग्रहाः । श० ४ । २ । ४ । १३ ॥ ४ । ५ । ६ । ३ ॥
” अन्नमेव ग्रहः । अन्नेन हीद० सर्वं गृहीतम् । श० ४ । ६ । ५ । ४ ॥
” नामैव ग्रहः । नाम्ना हीद० सर्वं गृहीतम् । श० ४ । ६ । ५ । ३ ॥
” वागेव ग्रहः । वाचाहीद० सर्वं गृहीतम् । श० ४ । ६ । ५ । २ ॥
” अङ्गानि वै ग्रहाः । श० ४ । ५ । २ । ११ ॥
” साम ग्रहः । श० ४ । २ । ३ । ७ ॥

ग्रामणीः वैश्यो वै ग्रामणीः । श० ५ । ३ । १ । ६ ॥

ग्रावस्तोत्रीया मनो वै ग्रावस्तोत्रीया । षे० ६ । २ ॥

प्रावाणः (यजु० ३८ । १५) प्राणा वै प्रावाणः । श० १४ । २ । २ । ३३ ॥

” वज्रो वै प्रावा । श० ११ । ५ । ६ । ७ ॥

” पशवो वै प्रावाणः । तां० ६ । ६ । १३ ॥

” विद्धि ग्रावानः । तां० ६ । ६ । १ ॥

” विशो प्रावाणः । श० ३ । ६ । ३ । ३ ॥

” जागता वै प्रावाणः । कौ० २६ । १ ॥

” बार्हता प्रावाणः । श० १२ । ८ । २ । १४ ॥

” मारुता (= मरुद्देवत्याः) वै प्रावाणः

तां० ६ । ६ । १४ ॥

” विद्वांसो हि प्रावाणः । श० ३ । ६ ।
३ । १४ ॥

” यदि प्रावाविशीर्यते पशुभिर्दजमानो व्यृ-
ध्यते । तां० ६ । ६ । १३ ॥

” यं द्विष्याद्विमुखान् प्रान्तः कृत्वेदमहम-
मुष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्या विशो
ऽमुष्मादन्नाद्यान्निरुहामीति निरुहेद्विश

एवैनमन्नाद्यन्निरूहति । तां० ६।६।२ ॥

- ग्रीवाः ग्रीवा उष्णहः । श० ८।६।२।११ ॥
 ,, उष्णक् छन्दः सवितः देवता ग्रीवाः । श० १०।३।२।२ ॥
 ,, (यज्ञस्य) ग्रीवा उपसदः । ऐ० १।२५ ॥
 ,, ग्रीवा वै यज्ञस्योपसदः । श० ३।४।४।१ ॥
 ,, ग्रीवाः पञ्चदशः । चतुर्दश वाऽ एतासां करुकराणि धीर्य्यं
 पञ्चदशं तस्मादेताभिरण्वीभिः सतीभिर्गुरुं भारं हरति ।
 श० १२।२।४।१० ॥
 ,, ग्रीवाः पञ्चदशश्चतुर्दश ह्येवैतस्यां करुकराणि भवन्ति वीर्यं
 पञ्चदशम् । तस्मादाभिरण्वीभिः सतीभिर्गुरुं भारं हरति । गो०
 पू० ५।३ ॥
 ग्रीष्मः (ऋतुः) एतौ (शुक्रश्च शुचिश्च) एव ग्रीष्मौ (मासौ) स
 यदेतयोर्बलिष्ठं तपति तेनो हैतौ शुक्रश्च शुचिश्च । श०
 ४।३।१।१५ ॥
 ,, तस्य (वायोः) रथस्वनश्च रथेचित्रश्च (यजु० १५।
 १५) सेनानीग्रामण्याविति ग्रीष्मौ तावृत् । श० ८।
 ६।१।१७ ॥
 ,, अनिरुक्त ऋतूनां ग्रीष्मः । जै० उ० १।३५।३ ॥
 ,, यत्स्तनयति तद् ग्रीष्मस्य (रूपम्) । श० २।२।३० ॥
 ,, ग्रीष्म एव महः । गो० पू० ५।१५ ॥
 ,, ग्रीष्मेण देवा ऋतुना रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् । बृहता
 यशसा बलम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २।६।
 १६।१ ॥
 ,, तस्मात्त्रिभ्यो ग्रीष्मऽ आदधीत क्षत्रं हि ग्रीष्मः ।
 श० २।६।३।५ ॥
 ,, ग्रीष्मो वै राजन्यस्यर्तुः । तै० १।१।२।७ ॥
 ,, (राजन्यस्य) ग्रीष्म ऋतुः । तां० ६।१।८ ॥
 ,, ग्रीष्मः (संवत्सरस्य) दक्षिणः पक्षः । तै० ३।११।
 १०।३ ॥

- धीष्मः ग्रीष्मो ऽध्वर्युस्तप्त इव वै ग्रीष्मस्तप्तमिवाध्वर्युर्निष्कामति । श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥
- „ तनूनपातं यजति ग्रीष्ममेव, ग्रीष्मो हि तन्वं तपति । कौ० ३ । ४ ॥
- „ ग्रीष्मो वै तनूनपाद् ग्रीष्मो ह्यासां प्राजानां तनूस्तपति । श० १ । ५ । ३ । १० ॥
- „ षड्भिरैन्द्रैः (पशुभिः) ग्रीष्मे (यजते) । श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥
- „ (प्रजापतिः) ग्रीष्मप्रस्तावं (अकारोत्) । जै० उ० १ । १२ । ७ ॥
- „ ग्रीष्मः प्रस्तावः । ष० ३ । १ ॥

(घ)

- घर्मः तद्यद् (छिन्नं विष्णोश्शिरः) घृङ्गिडत्यपतत्तस्माद् घर्मः । श० १४ । १ । १ । १० ॥
- „ अस्य (अग्नेः) एवैतानि (घर्मः, अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) नामानि । श० ६ । ४ । २ । २५ ॥
- „ अग्निर्वै घर्मः । श० ११ । ६ । २ । २ ॥
- „ तप्त इव वै घर्मः । श० १४ । ३ । १ । ३३ ॥
- „ आदित्यो वै घर्मः । श० ११ । ६ । २ । २ ॥
- „ (यजु० १८ । ५०) असौ वाऽ आदित्यो घर्मः । श० ६ । ४ । २ । १६ ॥
- „ असौ वै घर्मो यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० २ । १ ॥
- „ एष वै घर्मो य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । ३ । १७ ॥
- „ देवमिथुनं वा एतद् यद् घर्मः । गो० उ० २ । ६ ॥
- „ तदेतद्देवमिथुनं यद् घर्मः स यो घर्मस्तच्छिश्नम् । ऐ० १ । २२ ॥
- घृतम् घृतं (=घनीभूतं सर्पिः) मनुष्याणाम् (सुरभि) । ऐ० १ । ३ ॥
- „ अन्नस्य घृतमेव रसस्तेजः । मं० २ । ६ । ६५ ।
- „ तेजो वा एतत्पशूनां यद् घृतम् । ऐ० ८ । २० ॥
- „ आग्नेयं वै घृतम् । श० ७ । ४ । १ । ४१ ॥ ६ । २ । २ । ३ ॥

घृतम् पतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यद् घृतम् । तौ १ । १ । ६ । ६ ॥ १ ।
४ । ४ । ४ ॥

„ घृतभाजना ह्यादित्याः । श० ६ । ६ । १ । ११ ॥

„ घृतं वै देवानां फाणं मनुष्याणाम् । श० ३ । १ । ३ । ८ ॥

„ घृतं वै देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्नन् । गो० ३० । २ । ४ ॥

„ देवमृतं वै घृतम् । तां० १८ । २ । ६ ॥

„ बहुदेवत्यं वै घृतम् । कौ० २० । ४ ॥

„ सर्वदेवत्यं वै घृतम् । कौ० २१ । ४ ॥

„ (यजु० १७ । ७६), रेतो वै घृतम् । श० ६ । २ । ३ । ४४ ॥

„ रेतःसिक्किवै घृतम् । कौ० १६ । ५ ॥

„ उल्बं घृतम् । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥

„ घृतमन्तरिक्षस्य (रूपम्) । श० ७ । ५ । १ । ३ ॥

„ पतद्गै प्रत्यक्षाद्यङ्गरूपं यद् घृतम् । श० १२ । ८ । २ । १५ ॥

„ तद्गै सुपृतं यं घृतेनापुनन् । श० ३ । १ । २ । ११ ॥

घृतश्च्युतः (बहुवचने) पशवो वै घृतश्च्युतः । तां० ६ । १ । १७ ॥

घृताची (अप्सराः, यजु० १७ । ५६) “विश्वाची” शब्दमपि पश्यत ।

„ (घृतमञ्जति प्राप्नोतीति घृताचीति सायणः) घृताच्यसि जुह्व-
नाम्ना (यजु० ११ । ६ ॥) । श० १ । ३ । ४ । १४ ॥

„ घृताच्यस्युपभृन्नान्ना । श० १ । ३ । ४ । १४ ॥

„ घृताच्यसि भ्रुवा नाम्ना । श० १ । ३ । ४ । १४ ॥

„ (यजु० १५ । १८) स्रुगृताची । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥

„ (यजु० १७ । ५६) स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरिति स्रुचश्चै-
तद्वेदीश्चाह (घृताची=स्रुक्) । श० ६ । २ । ३ । १७ ॥

घोरः (आङ्गिरसः) त आदित्या (अग्निं) ऊञ्चुरथास्माकमद्य सुत्या तेषां
नस्त्वमेव होतासि बृहस्पतिर्ब्रह्मायास्य उद्गाता घोर
आङ्गिरसो ऽध्वर्युरिति (तद्गैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णा-
य देवकीपुत्रायोक्तोवाच.....) ।—छान्दोग्योपनिषदि
३ । १७ । ६ । कौ० ३० । ६ ॥

„ घोर आङ्गिरसो ऽध्वर्युः । (सोमस्य नैष्णवस्य आ-
ङ्गिरसो वेदो वेदः सो ऽयमिति घोरं निगदेत्-शाङ्खायन-

श्रौतसूत्रे १६।२।१२ ॥ तद्यैव-आश्वलायनश्रौतसूत्रे
१०।७।४ ॥)। कौ० ३०।६ ॥

(च)

चक्रम् वज्रो वै चक्रम् । तै० १।४।४।१० ॥

चक्षुः चक्षुर्वा श्रुतं तस्माद्यतरो विवदमानयोराहाहमनुष्ठया चक्षुषा-
दर्शमिति तस्य भ्रह्मति । ऐ० २।४० ॥

„ सत्यं वै चक्षुः सत्यं हि वै चक्षुस्तस्माद्यदिदानीं द्वौ विवद-
मानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एव ब्रूयादहमदर्शमिति
तस्माऽएव भ्रह्म्याम । श० १।३।१।२७ ॥

„ एतद्वै मनुष्येषु सत्यं निहितं यच्चक्षुः । ऐ० १।६ ॥

„ एतद्वै मनुष्येषु सत्यं यच्चक्षुः । गो० उ० २।२३ ॥

„ सत्यं वै चक्षुः । श० ४।२।१।२६ ॥

„ चक्षुर्वै सत्यम् । तै० ३।३।५।२ ॥

„ चक्षुर्निवित् । जै० उ० ३।४।३ ॥

„ तस्मादेकं सच्चक्षुर्द्वेषा । ऐ० २।३२ ॥

„ त्रिवृद्धे चक्षुः शुक्लं कृष्णं लोहितमिति । कौ० ३।५ ॥

„ तस्माद् विरूपं चक्षुः कृष्णमन्यच्छुक्लमन्यत् । ष० २।२ ॥

„ चक्षुर्हृदये (धितम्) । तै० ३।१०।८।५ ॥

„ शश्वद्वै रेतसः सिकस्य चक्षुषीऽएव प्रथमे सम्भवतः । श०
४।२।१।२८ ॥

„ चक्षुः पुरुषस्य प्रथमं सम्भवतः सम्भवति । ऐ० ३।२ ॥

„ चक्षुर्वै रुक् । श० ६।३।३।११ ॥

„ चक्षुर्वै विचक्षणं चक्षुषा हि विपश्यति । कौ० ७।३ ॥

„ चक्षुर्वै विचक्षणं वि ह्यानेन पश्यतीति । ऐ० १।६ ॥

„ यच्चक्षुः स बृहस्पतिः । गो० उ० ४।११ ॥

„ चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः (यजु० १३।५६) यदेनेन जगत्पश्य-
त्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः । श० ८।१।२।३ ॥

„ चक्षुषी वै रौहिणी (पुरोडाशौ) । श० १४।२।१।५ ॥

„ चक्षुर्मैत्रावरुणः । कौ० १३।५ ॥

- चतुः चतुरध्वर्युः । गो० उ० ५ । ४ ॥
 „ चतुर्वै यज्ञस्याध्वर्युः । श० १४ । ६ । १ । ६ ॥
 „ चतुरेवोद्गाता । गो० पू० २ । १० (११) ॥
 „ चतुर्ब्रह्मा । तै० २ । १ । ५ । ९ ॥
 „ चतुर्वै ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । ८ ॥
 „ चतुर्ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥
 „ चतुर्देवः । गो० पू० २ । १० (११) ॥
 „ यद्वै चतुस्तद्विरण्यम् । गो० पू० २ । २१ ॥
 „ सूर्यो मे चतुषि श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ५ ॥
 „ चतुरादित्यः । जै० उ० ३ । २ । ७ ॥
 „ तद्यत्तच्चतुरादित्यस्सः । जै० उ० १ । २८ । ७ ॥
 „ यत्तच्चतुरसौ स आदित्यः । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥
 „ अर्कश्चतुस्तदसौ सूर्यः । तै० १ । १ । ७ । २ ॥
 „ चतुर्वाऽऽ अपां क्षयस्तत्र हि सर्वदैवापः क्षियन्ति । श० ७ ।
 ६ । २ । ५४ ॥
 „ चतुरेव चरणं चतुषा ह्ययमात्मा चरति । श० १० । ३ । ६ । ७ ॥
 „ चतुरुष्णिक् । श० १० । ३ । १ । १ ॥
 „ त्रैष्टुभं चतुः । तां० २० । १६ । ५ ॥
 „ चतुर्वै प्रतिष्ठा । श० १४ । ६ । २ । ३ ॥
 „ चतुर्वाव साम्नो ऽपचितिः । जै० उ० १ । ३६ । ५ ॥
 „ चतुर्यशः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥
 „ चतुरेव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
 चतुःशक्तिः (यजु० ३८ । २०) एष वै चतुःशक्तिर्य एष (सूर्यः) तपति
 दिशो होतस्य शक्तयः । श० १४ । ३ ।
 १ । १७ ॥
 चतुरुत्तराणि छन्दांसि पशवो वै चतुरुत्तराणि छन्दाश्चसि । तां० ४ ।
 ४ । ६ ॥
 चतुर्थम् यद्वै चतुर्थं तत्सुरीयम् । श० ४ । १ । ३ । १४ ॥ ५ । २ । ४ ।
 १३ ॥ १४ । ८ । १५ । ४ ॥

- चतुर्थमहः वैराजं हि चतुर्थमहः । कौ० २६ । ५ ॥
- „ आनुष्टुभमेतदहर्ष्यञ्चतुर्थम् । तां० १२ । ८ । ८ ॥ १२ । ६ । ६ ॥
- „ जनद्वया एतदहर्ष्यञ्चतुर्थमन्नाद्यञ्जनयति विराजञ्जनयत्येकविंशश्चस्तोमञ्जनयति । तां० १२ । ७ । ६ ॥ १२ । ८ । २ ॥
- „ आयतमिव वै चतुर्थमहः । तां० १२ । १० । १ ॥
- चतुर्थी चितिः यज्ञ एव चतुर्थी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १५ ॥
- „ यदूर्ध्वं मध्याद्वाचीनं ग्रीवाभ्यस्तञ्चतुर्थी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥
- चतुर्विंशः (स्तोमः) चतुर्विंश एव स्तोमो भवति तेजसे ब्रह्मवर्षसाय । तां० १५ । ११ । १६ ॥
- „ तेजश्चतुर्विंश स्तोमानाम् । तां० १५ । १० । ६ ॥
- „ चतुर्विंशो वै संवत्सरो ऽन्नं पञ्चविंशम् । तां० ४ । १० । ५ ॥
- „ “ योनिश्चतुर्विंशः ” शब्दमपि पश्यत ।
- चतुर्विंशम् (अहः) चतुर्विंशः स्तोमो भवति तश्चतुर्विंशस्य चतुर्विंशत्वं चतुर्विंशतिर्वा अर्धमासाः । अर्धमासश्च एव तत्संवत्सरमारभन्ते । ऐ० ४ । १२ ॥
- „ मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यश्चतुर्विंशम् । कौ० १६ । ८ ॥
- चतुर्होता तस्मै (ब्रह्मणे) चतुर्थश्च हूतः प्रत्यशृणोत् । स चतुर्हूतो ऽभवत् । चतुर्हूतो ह वै नामैषः । तं वा एतं चतुर्हूतश्च सन्तं चतुर्होतेत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः । तै० २ । ३ । ११ । ४ ॥
- „ यदेवेषु चतुर्धा होतारः । तेन चतुर्होतारः । तस्माच्चतुर्होतार उच्यन्ते । तश्चतुर्होतृणां चतुर्होतृत्वम् । तै० २ । ३ । १ । १ ॥
- „ एतद्वै देवानां परमं गुह्यं ब्रह्म यश्चतुर्होतारः । तै० २ । ३ । १ । ४ ॥ २ । २ । ६ । ३ ॥
- „ ब्रह्म वै चतुर्होतारः । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥
- „ देवानामेव तद्यज्ञियं गुह्यं नाम यश्चतुर्होतारः । ऐ० ५ । २३ ॥
- „ प्रजापतिर्वै चतुर्होता । तै० २ । २ । ३ । ५ ॥
- „ इन्द्रो वै चतुर्होता । तै० २ । ३ । १ । ३ ॥

- चतुर्होता सोमो वै चतुर्होता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥
- ” पृथिवी होता चतुर्होत्याम् । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥
- ” सोमश्चतुर्होतृणां होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥
- ” सोमश्चतुर्होत्रा । तै० २ । २ । ८ । ४ ॥
- ” यशो वै चतुर्होता । तै० २ । २ । ८ । २ ॥
- ” दर्शपूर्णमासौ चतुर्होतुः (निदानम्) । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥
- ” यद्वा इदं किञ्च । तत्सर्वं चतुर्होतारः । २ । ३ । ५ । ५ ॥
- चतुष्टोमः यच्चतुष्टया देवाश्चतुर्भिः स्तोमैरस्तुवंस्तस्माच्चतुःस्तोमस्तं
चतुःस्तोमं संतं चतुष्टोममित्याचक्षते । ऐ० ३ । ४३ ॥
- ” प्रतिष्ठा चतुष्टोमः । श० ८ । १ । ४ । २६ ॥
- ” प्रतिष्ठा वै चतुष्टोमः । तां० ६ । ३ । १६ ॥
- ” परमश्चतुष्टोमः स्तोमानाम् । श० १३ । ३ । ३ । १ ॥
- ” अन्तश्चतुष्टोम स्तोमानाम् । तां० २१ । ४ । ६ ॥
- ” सरघा वा अश्वस्य सक्थ्याबृहत्तद्देवाश्चतुष्टोमेन प्रत्यद्भुर्व्य-
च्चतुष्टोमो भवत्यश्वस्य सर्वत्वाय । तां० २१ । ४ । ४ ॥
- “धर्मं चतुष्टोमः”शब्दमपि पश्यत ।
- चतुष्पथम् एतद्ध वाऽ अश्वस्य (रुद्रस्य) जान्धितं प्रज्ञातमवसानं यच्च-
तुष्पथम् । श० २ । ६ । २ । ७ ॥
- चतुष्पाद् चतुष्पादः पशवः । गो० उ० १ । ४ ॥ ३ । १६ ॥ तै० २ ।
१ । ३ । ५ ॥
- ” चतुष्पादाः पशवः । तां० ३ । ८ । ३ ॥
- ” चतुष्पादा वै पशवः । ऐ० २ । १८ ॥ ३ । ३१ ॥ ५ । ३ ॥
५ । १७ ॥ ५ । १६ ॥
- ” चतुष्टया वै पशवो ऽथो चतुष्पादाः । कौ० १६ । ३ । ११ ॥
२८ । १० ॥ २६ । ८ ॥
- ” तस्माद् द्विपाच्चतुष्पादमसि । तै० २ । १ । ३ । ६ ॥ ३ । ६ ।
१२ । ३ ॥
- चतुस्त्रिंशः (स्तोमः) तस्य चतुस्त्रिंशो ऽग्निष्टोमः प्रजापतिश्चतुस्त्रिं-
शो देवतानाम् । तां० २२ । ७ । ५ ॥
- ” अश्वश्चतुस्त्रिंशो दक्षिणानां प्रजापतिश्चतुस्त्रिं-

ॐ शो देवतनाम् । ता० १७ । ११ । ३ ॥

“ब्रह्मस्य विष्टपं चतुर्भिः” इत्येतं शब्दमपि पश्यत ॥

- चन्द्रः असौ वै चन्द्रः पशुस्तं देवाः पौर्णमास्यामालभन्ते । श० ६ ।
२ । २ । १७ ॥
- „ असौ वै चन्द्रः प्रजापतिः । श० ६ । २ । १ । १६ ॥
- „ चन्द्र एव सधिता । जै० उ० ४ । २७ । १३ ॥
- „ चन्द्रः ॐ हिरण्यम् । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥
- „ चन्द्रः ॐ ह्येतच्चन्द्रेण क्रीणाति यत्सोमः ॐ हिरण्येन (चन्द्रः= सोमः, चन्द्रं=हिरण्यम्) । श० ३ । ३ । ३ । ६ ॥
- „ चन्द्रा ह्यापः । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥
- चन्द्रमाः स (इन्द्रः) चन्द्रं म आहरेति प्रालपत् । तच्चन्द्रमसश्चन्द्रमस्त्वम् ।
तै० २ । २ । १० । ३ ॥
- „ चन्द्रमा वै मा मासः । तस्मान्मेत्याह । भा इति हैतत्परोक्षेणैव
जै० उ० ३ । १२ । ६ ॥
- „ सोमो वै चन्द्रमाः । कौ० १६ । ५ ॥ तै० १ । ४ । १० । ७ ॥
श० १२ । १ । १ । २ ॥
- „ चन्द्रमा उ वै सोमः । श० ६ । ५ । १ । १ ॥
- „ सोमो राजा चन्द्रमाः । श० १० । ४ । २ । १ ॥
- „ असौ वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमाः । कौ० ४ । ४ ॥
७ । १० ॥
- „ पतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमाः । ऐ० ७ । ११ ॥
- „ चन्द्रमा वाऽ अस्य (सोमस्य) दिवि श्रव उत्तमम् (यजु० १२ ।
११३ ॥) । श० ७ । ३ । १ । ४६ ॥
- „ यद्बुद्धश्चन्द्रमास्तेन । कौ० ६ । ७ ॥
- „ (प्रजापतिः) तं (रुद्रं) अभ्रवीन्महान्देवो ऽसीति । तद्यदस्य
तन्नामाकरोश्चन्द्रमास्तद्रूपमभवत्प्रजापतिर्वै चन्द्रमाः प्रजा-
पतिर्वै महान्देवः । श० ६ । १ । ३ । १६ ॥
- „ (इन्द्रः) तं (वृत्रं) द्वेषान्वभिनत्तस्य यत्सौम्यं न्यक्तमास तं चन्द्र-
मसं चकाराथ यदस्यासुर्य्यमास तेनेमाः प्रजा उदरेणाविध्यत् ।
श० १ । ६ । ३ । १७ ॥

- चन्द्रमाः अथैष एव वृत्रो यच्चन्द्रमाः । श० १ । ६ । ४ । १३, १८ ॥
- ” चन्द्रमा एव मन्थी । श० ४ । २ । १ । १ ॥
- ” चन्द्रमा वै वरेण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥
- ” चन्द्रमा द्विपात्तस्य पूर्वपक्षापरपक्षौ पादौ । गो० पू० २ । ८ ॥
- ” चन्द्रमा वै पञ्चदशः । एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्या-
मापूर्यते । तै० १ । ५ । १० । ५ ॥
- ” अथो चन्द्रमा वै भान्तः पञ्चदशः स च पञ्चदशाहान्यापूर्यते
पञ्चदशापक्षीयते तद्यत्तमाह भान्त इति भाति हि चन्द्रमाः ।
श० ८ । ४ । १ । १० ॥
- ” षोडशकलो वै चन्द्रमाः । ष० ४ । ६ ॥
- ” पतङ्गं देवसत्यं यच्चन्द्रमाः । कौ० ३ । १ ॥
- ” चन्द्रमाः पुनरसुः । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥
- ” चन्द्रमा वै जायते पुनः । तै० ३ । ६ । ५ । ४ ॥
- ” मनो मे रेतो मे प्रजा मे पुनस्सम्भूतिर्मै तन्मे त्वयि (चन्द्र-
मसि) । जै० उ० ३ । २७ । १४ ॥
- ” नक्षत्राणि स्थ चन्द्रमसि श्रितानि । संवत्सरस्य प्रतिष्ठा । तै०
३ । ११ । १ । १३ ॥
- ” चन्द्रमा अस्यादित्ये श्रितः । नक्षत्राणां प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ ।
१ । १२ ॥
- ” [सूर्यरश्मिः (यजु० १८ । ४०)=चन्द्रमाः] सूर्यस्येव हि चन्द्र-
मसो रश्मयः । श० ६ । ४ । १ । ९ ॥
- ” चन्द्रमा एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
- ” चन्द्रमा मे मनसि श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ५ ॥
- ” तद्यत्तन्मनश्चन्द्रमास्सः । जै० उ० १ । २८ । ५ ॥
- ” अथ यत्तन्मन आसीत् स चन्द्रमा अभवत् । जै० उ० २ ।
२ । २ ॥
- ” यत्तन्मन एष स चन्द्रमाः । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥
- ” मनश्चन्द्रमाः । जै० उ० ३ । २ । ६ ॥
- ” एष वै (चन्द्रमाः) रेतः । श० ६ । १ । २ । ४ ॥
- ” स (चन्द्रमाः) वै देवानां वस्वन्नश्च होषाम् । श० ११ । १४ । ५ ॥

- चन्द्रमाः अन्नमु चन्द्रमाः । श० ८ । ३ । ३ । ११ ॥
- „ अन्नमु वै चन्द्रमाः । जै० उ० १ । ३ । ४ ॥
- „ तस्य (अर्कस्य=सूर्यस्य) एतदन्नं क्यमेष चन्द्रमास्तद्वर्णं
यजुष्टः । श० १० । ४ । १ । २२ ॥
- „ चन्द्रमा होतस्यान्नं य एष (सूर्यः) तपति । श० ४ । ६ ।
७ । १२ ॥
- „ चन्द्रमा वै प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
- „ असौ वै चन्द्रः प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । १६ ॥
- „ प्रजापतिर्वै चन्द्रमाः । श० ६ । १ । ३ । १६ ॥
- „ चन्द्रमा वै धाता । ष० ४ । ६ ॥
- „ चन्द्रमा एव धाता च विधाता च । गो० उ० १ । १० ॥
- „ चन्द्रमा वै ब्रह्म । ऐ० २ । ४१ ॥
- „ चन्द्रमा वै ब्रह्मा । श० १२ । १ । १ । २ ॥ गो० पू० २ । २४ ॥
- „ चन्द्रमा ब्रह्मा (आसीत्) । गो० पू० १ । १३ ॥
- „ चन्द्रमा वै ब्रह्मा ऽधिदैवं मनो ऽध्यात्मम् । गो० पू० ४ । २ ॥
- „ चन्द्रमा वै ब्रह्मा कृष्णः (यजु० २३ । १३) । श० १३ । २ ।
७ । ७ ॥
- „ यद्वञ्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं धितम् । मं० १ ।
५ । १३ ॥
- „ स यदस्यै पृथिव्याऽऽ अनामृतं देवयजनमासीत्तच्चन्द्रमसि
न्यदधत् तदेतच्चन्द्रमसि कृष्णम् । श० १ । २ । ५ । १८ ॥
- „ यदस्याः (पृथिव्याः) यज्ञीयमासीत्तदमुष्यां (दिवि) अदधात् ।
तद्वञ्चन्द्रमसि कृष्णम् । तै० १ । १ । ३ । ३ ॥
- „ एतद्वा इयम् (भूमिः) अमुष्यां (दिवि) देवयजनमदधाद्यदेतच्च-
न्द्रमसि कृष्णमिव । ऐ० ४ । २७ ॥
- „ चन्द्रमा एव (संवत्सरस्य) द्वारपिधानः । श० ११ । १ ।
१ । १ ॥
- „ रात्रिर्वै चन्द्रमाः । श० १२ । ४ । ४ । ७ ॥
- „ चन्द्रमा उदानः । जै० उ० ४ । २२ । ६ ॥

- चन्द्रमाः अमावास्यायां सः (चन्द्रमाः) अस्य (सूर्यस्य) व्याप्तं
 (= विवृतं मुखमिति सायणः) आपद्यते । (सूर्यः) तं
 (चन्द्रमसं) ग्रसित्वोदेति । स (चन्द्रमाः) न पुरस्तात्
 पश्चाद्दृश्येते । श० १ । ६ । ४ । १८—१९ ॥
- „ चन्द्रमा वा अमावास्यायामादित्यमनुप्रविशति । ऐ० ८ । २८ ॥
- „ अथैष चन्द्रमा वक्षिणेनैति । ष० २ । ४ ॥
- „ तस्मादिमौ सूर्याचन्द्रमसौ प्रत्यञ्चौ यन्तौ सर्व एव पश्यति ।
 श० ४ । २ । १ । १८ ॥
- „ चन्द्रमा मनुष्यलोकः । जै० उ० ३ । १३ । १२ ॥
- „ वाग्ध चन्द्रमा भूत्वोपरिष्ठात्तस्थौ । श० ८ । १ । २ । ७ ॥
- „ वागिति चन्द्रमाः । जै० उ० ३ । १३ । १२ ॥
- „ हन्तेति चन्द्रमा ओमित्यादित्यः । जै० उ० ३ । ६ । २ ॥
- „ चन्द्रमा वै हिङ्गारः । जै० उ० १ । ३ । ४ ॥
- „ चन्द्रमा एव हिङ्गारः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥
- „ चन्द्रमाः प्रतिहारः । जै० उ० १ । ३६ । ९ ॥
- „ चन्द्रमा वै यज्ञायज्ञियं यो हि कश्च यज्ञं संतिष्ठतऽ एतमेव
 तस्याहुतीनां रसो ऽप्येति तद्यदेतं यज्ञो यज्ञो ऽप्येति तस्मा-
 च्चन्द्रमा यज्ञायज्ञियम् । श० ६ । १ । २ । ३६ ॥
- „ चन्द्रमा वै भर्गः । जै० उ० ४ । २८ । २ ॥
- „ वायुरोपश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः । गो० पू० २ । ८ (६) ॥
- „ वृष्टिर्वै वृष्ट्वा चन्द्रमसमनुप्रविशति । ऐ० ८ । २८ ॥
- „ चन्द्रमा एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- चरणम् चक्षुरेव चरणं चक्षुषा ह्ययमात्मा चरति । श० १० । ३ । ५ । ७ ॥
- „ आदित्य एव चरणं यदा होवैष उदेत्यथेदं सर्वं चरति ।
 श० १० । ३ । ५ । ३ ॥
- चरन् वायुर्वै चरन् । तै० ३ । ६ । ४ । १ ॥
- चरुः ओदनो हि चरुः । श० ४ । ४ । २ । १ ॥
- चातुर्मास्यानि भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि तस्मादनुसंधिषु
 प्रयुज्यन्त ऋतुसंधिषु हि व्याधिर्जायते । कौ० ५ । १ ॥
- „ अथो भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि । तस्मादनु-

[चित्पतिः

(१७०)

सन्धिषु प्रयुज्यन्त ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते । गो०
उ० १ । १६ ॥

चातुर्मास्यानि विराजो वा एषा विक्रान्तिर्यञ्चातुर्मास्यानि । तै० १ ।
४ । ६ । ५ ॥

” स वा एष प्रजापतिश्चतुर्विंशो यञ्चातुर्मास्यानि । गो०
उ० १ । २६ ॥

” उत्सन्नयज्ञ इव वाऽ एष यञ्चातुर्मास्यानि । श० २ । ५ ।
२ । ४८ ॥ २ । ६ । २ । १६ ॥

” चातुर्मास्यानि पञ्चहोतुः (निदानम्) । तै० २ । २ । १ । ६ ॥

” एवं चातुर्मास्यानि । गो० उ० १ । २६ ॥

” अज्ञय्य३ ह वै सुकृतं चातुर्मास्ययाजिनो भवति ।
श० २ । ६ । ३ । १ ॥

” स परममेव स्थानं परमां गतिं गच्छति चातुर्मास्ययाजी ।
श० २ । ६ । ४ । ६ ॥

” देवानां वा एष आनीतो यश्चातुर्मास्ययाजी । तै० १ ।
५ । ६ । ७ ॥

चात्वालः अग्निरेष यञ्चात्वालः । श० ७ । १ । १ । ३६ ॥ ६ । १ । ४ । २ ॥

” एष वाव स समुद्रः । यञ्चात्वालः । तै० १ । ५ । १० । १ ॥

चिकित्वा (यजु० ११ । ३५) चिकित्वानिति विद्वानित्येतत् । श० ६ ।
४ । २ । ६ ॥

चितिः यच्च त्रेतयमाना अपश्यंस्तस्माच्चितयः । श० ६ । २ । २ । ६ ॥

” तद्यत्पञ्च चित्तीश्चिनोत्थेताभिरेवैनं तत्तनूभिश्चिनोति यच्चि-
नोति तस्माच्चितयः । श० ६ । १ । २ । १७ ॥

” पञ्च ह्येते ऽग्रयो यदेताश्चितयः । श० ६ । २ । १ । ६६ ॥

” पञ्च तन्वो व्यस्र३सन्त लोम त्वङ् मा३समस्थि मज्जा ता
एवैताः पञ्च चितयः । श० ६ । १ । २ । १७ ॥

” ऋतवो हैते यदेताश्चितयः । श० ६ । २ । १ । ३६ ॥

” सप्तयोनीः (यजु० १७ । ७६) इति चित्तीरेतदाह । श० ६ । २ ।
३ । ४४ ॥

चित्पतिः प्रजापतिर्वै चित्पतिः । श० ३ । १ । ३ । २२ ॥

- चित्यः चेतव्यो ह्यासीत्तस्माच्चित्यः । श० ६ । १ । २ । १६ ॥
- „ चेतव्यो ह्यस्य भवति तस्माद्वेव चित्यः । श० ६ । १ । २ । १६ ॥
- चित्रम् सर्वाणि हि चित्राण्यग्निः । श० ७ । ४ । १ । २४ ॥
- चित्रा (नक्षत्रम्) ते ह देवाः समेत्योऽनुः । चित्रं वाऽ अभूम यऽ इयतः
सपत्नानवधिष्मेति तद्वै चित्रायै चित्रात्वं चित्रं ह
भवति हन्ति सपत्नान्हन्ति द्विषन्तं भ्रातृव्यं य एव
त्रिद्वंश्चित्रायामाधत्ते तस्मादेतत्क्षत्रिय एव नक्षत्र-
मुपेत्यैजिघासतीव ह्येष सपत्नान्वीव जिगीषते ।
श० २ । १ । २ । १७ ॥
- „ चित्रा शिरः (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) । तै० । १ ।
५ । २ । २ ॥
- „ इन्द्रस्य चित्रा (“इन्द्रः=त्वष्टा” इति सायणः—तै०
१ । ५ । १ । ५ भाष्ये) । तै० १ । ५ । १ । ३ ॥
- „ त्वष्टा नक्षत्रमध्येति चित्राम् । तै० ३ । १ । १ । ६ ॥
- „ चक्षुर्वा एतत्संवत्सरस्य यच्चित्रापूर्णमासः । तां०
५ । ६ । ११ ॥
- चित्रावसुः रात्रिवै चित्रावसुः सा हीयं संगृह्येव चित्राणि वसति ।
श० २ । ३ । ४ । २२ ॥
- चूड यदु वाऽ अतिरिक्तं चूडः सः । श० ८ । ६ । १ । १४ ॥
- चक्रितानः (यजु० १५।५१) “ सत्पतिश्चेकितानः ” इत्येतं शब्दं पश्यत ॥
- चैत्ररथो द्वात्रिंशत्पतेन वै चित्ररथं कापेया अयाजयत्स्तमेकाकिनमन्ना-
द्यस्याध्यक्षमकुर्वत्स्तस्माच्चैत्ररथोनामेकः क्षत्रपतिर्जा-
यते जुलम्ब इव द्वितीयः । तां० २० । १२ । ५ ॥
- च्यावनः च्यवनो वै दाधीचो ऽश्विनोः प्रिय आसीत्सो ऽजीर्यैः समेतेन
(वीङ्केन) साम्नाप्सु व्यैङ्कयतान्तं पुनर्युवानमकुरुताम् । तां०
१४ । ६ । १० ॥
- „ सा (सुकन्या) होवाच । हे ऽश्विनौ) पतिं (च्यवनं) तु मे
पुनर्युवाणं कुरुतम् । श० ४ । १ । ५ । ११ ॥
- च्यावनम् (साम) एभ्यो वै लोकेभ्यो वृष्टिरपाक्रामत्तां प्रजापतिश्च्या-
वनेनाच्यावयद्यद्यावयत्तच्यावनस्य च्यावनत्व-

ञ्च्यावयति वृष्टिञ्च्यावनेन तुष्टुवानः । तां० १३ ।

५ । १३ ॥

च्यावनम् (साम) प्रजापतिर्वै च्यावनं प्रजायते बहुर्भवति च्यावनेन

तुष्टुवानः । तां० १३ । ५ । १२ ॥

” प्रजापतिर्वै च्यावनम् । तां० १६ । ३ । ६ ॥

(छ)

छदिश्छन्दः (यजु० १४ । ६) अतिच्छन्दा वै छदिश्छन्दः सा हि

सर्वाणि छन्दाश्छसि छादयति । श० ८ । २ । ४ । ५ ॥

” (यजु० १५ । ५) अन्तरिक्षं वै छदिश्छन्दः । श० ८ । ५ ।

२ । ६ ॥

छन्दस्यम् अन्नं वा एकच्छन्दस्यमन्नश्च ह्येकं भूतेभ्यश्छदयति । मं० २ ।

६ । १३ ॥

छन्दांसि छन्दयतीति वा । दे० ३ । १६ ॥

” तान्यस्मै (प्रजापतये) अच्छदयंस्तानि यदस्माऽ अच्छ-
दयंस्तस्माच्छन्दाश्छसि । श० ८ । ५ । २ । १ ॥

” (देवाः) तं (सोमं) छन्दोभिरसुवन्त तच्छन्दासां छन्द-
स्त्वम् । तै० २ । २ । ८ । ७ ॥

” न वा एकेनाक्षरेण छन्दांसि विद्यन्ति न द्वाभ्याम् । ऐ० १ । ६ ॥
२ । ३७ ॥

” नाक्षराच्छन्दो व्येत्येकस्मान्न द्वाभ्यां न स्तोत्रियया स्तोमः ।
श० १२ । २ । ३ । ३ ॥

” न ह्येकेनाक्षरेणान्यच्छन्दो भवति नो द्वाभ्याम् । कौ० २७ । १ ॥

” छन्दाश्छसि वाऽ अस्य सप्त धाम प्रियाणि (यजु० १७ ।
७६) । श० ६ । २ । ३ । ४४ ॥

” सप्त वै छन्दांसि । कौ० १४ । ५ ॥ १७ । २ ॥

” सप्त छन्दाश्छसि । श० ९ । ५ । २ । ८ ॥

” छन्दाश्छसि वै हारियोजनः (अहः) । श० ४ । ४ । ३ । २ ॥

” छन्दाश्छसि वै संवेश उपवेशः । तै० १ । ४ । ६ । ४ ॥

” छन्दाश्छसि धै ब्रजो गोस्थानः । तै० ३ । २ । ६ । ३ ॥

- छन्दांसि छन्दांश्चसि वै वाजिनः । गो० उ० १ । २० ॥ तै० १ । ६ ।
३ । ६ ॥
- ” पशवो वै छन्दांश्चसि । श० ७ । ५ । २ । ४२ ॥ ऋ । ३ ।
१ । ६२ ॥
- ” पशवश्छन्दांसि । ऐ० ४ । २१ ॥ कौ० ११ । ५ ॥ तां० १६ ।
५ । ११ ॥
- ” पशवो वै देवानां छन्दांश्चसि । श० ४ । ४ । ३ । १ ॥
- ” पशवो वै देवानां छन्दांश्चसि तद्यथेदं पशवो युक्ता मनुष्येभ्यो
वहन्त्येवं छन्दांश्चसि युक्तानि देवेभ्यो यक्षं वहन्ति । श०
१ । ८ । २ । ८ ॥
- ” छन्दांश्चसि वै विशः । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥ ६ । ५ ।
१ । ३६ ॥
- ” रसो वै छन्दांश्चसि । श० ७ । ३ । १ । ३७ ॥
- ” इन्द्रियं वीर्यं छन्दांश्चसि । तां० ६ । ६ । २६ ॥
- ” प्राणा वै छन्दांसि । कौ० ७ । ६ ॥ ११ । ८ ॥ १७ । २ ॥
- ” छन्दांसि वै दैवानि पवित्राणि । तां० ६ । ६ । ६ ॥
- ” छन्दांश्चसि देव्यः । श० ६ । ५ । १ । ३६ ॥
- ” छन्दांसि वै देविकाः । कौ० १६ । ७ ॥
- ” छन्दांसि वै साध्या देवास्ते ऽग्ने ऽग्निनाग्निमयजन्त ते स्वर्गं
लोकमायन् । ऐ० १ । १६ ॥
- ” छन्दांश्चसि वै देवाः प्रातर्यावाणः । श० ३ । ६ । ३ । ८ ॥
- ” छन्दांश्चसि वै देवा वयोनाधाः (यजु० १४ । ७ ॥) छन्दो-
भिर्हीदंश्च सर्वं वयुनं नद्धम् । श० ८ । २ । २ । ८ ॥
- ” छन्दांश्चसि वै ग्राश्छन्दोभिर्हि स्वर्गं लोकं गच्छन्ति । श०
६ । ५ । ४ । ७ ॥
- ” देवा वै छन्दांश्चस्यब्रुवन् युष्माभिः स्वर्गं लोकमयामेति ।
तां० ७ । ४ । २ ॥
- ” सर्वैर्वै छन्दोभिरिष्ट्वा देवाः स्वर्गं लोकमजयन् । ऐ० १ । ६ ॥
- ” यातयामानि वै देवैश्छन्दांश्चसि छन्दोभिर्हि देवाः स्वर्गं
लोकं समाशनुवत । श० ३ । ६ । ३ । १० ॥

- छन्दांसि छन्दोभिर्वै देवा आदित्य०० स्वर्गं लोकमहरन् । तां० १२ ।
१० । ६ ॥
- ” छन्दोभिर्हि स्वर्गं लोकं गच्छन्ति । श० ६ । ५ । ४ । ७ ॥
- ” प्राजापतेर्वा एतान्यंगानि यच्छन्दांसि । ऐ० २ । १८ ॥
- ” यानि जुद्राणि छन्दा००सि तानि मरुताम् । तां० १० ।
१ । ३ ॥
- ” एकाक्षरं वै देवानामवमं छन्द आसीत्सप्ताक्षरं परमन्नवा-
क्षरमसुराणामवमं छन्द आसीत् पञ्चदशाक्षरं परमम् । तां०
१२ । १३ । २७ ॥
- ” छन्दा००सि समिद्धानि देवेभ्यो यन्नं वहन्ति । श० १ । ३ ।
४ । ६ ॥
- ” हिरण्ययीमिति हिरण्ययी ह्येषा वा छन्दोमयी । श० ६ । ३ ।
१ । ४१ ॥
- ” हिरण्यममृतानि छन्दा००सि । श० ६ । ३ । १ । ४२ ॥
- ” छन्दा००सि वै लोमानि । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥ ६ । ७ । १ ।
६ ॥ ६ । ३ । ४ । १० ॥
- ” बृहती वाव छन्दसां स्वराट् । तां० १० । ३ । ८ ॥
- ” स्वाराज्यं छन्दसां बृहती । तां० ५४ । ६ । ३ ॥
- ” श्रीर्वै यशश्छन्दसां बृहती । ऐ० १ । ५ ॥
- ” छन्दांसि सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ७ ॥
- ” पञ्चछन्दांसि रात्रौ शंसत्यनुष्टुभं गायत्रीमुष्णिहं त्रिष्टुभं
जगतीमित्येतानि वै रात्रिच्छन्दांसि । कौ० ३० । ११ ॥
- छन्दोमाः (स्तोमविशेषाः) तद्यच्छन्दोभिर्मितास्तस्माच्छन्दोमाः । कौ०
२६ । ७ ॥
- ” अस्तोमा वा एते य छन्दोमाः । तां० ३ । ६ । ३ ॥
- ” पशवो हि छन्दोमाः । तां० १० । १ । २१ ॥
- ” पशवश्छन्दोमाः । ऐ० ५ । १६, १७, १८, १९ ॥
तां० १४ । ७ । ६ ॥
- ” पशवो वै छन्दोमाः । कौ० २६, ६, १२, १६,
१७ ॥ तां० ३ । ८ । २ ॥

छन्दोमाः (स्तोमविशेषाः) तान् (छन्दोमान्) उ पुष्टिरित्याहुः । तां०

१० । १ । २१ ॥

” अभ्याघ्रात्यसामानो हि छन्दोमाः । तां० १४ ।
६ । ३० ॥

” किञ्छन्दसश्छन्दोमा इति पुरुषश्छन्दस इति
ब्रूयात् । तां० १४ । ५ । २६ ॥ १४ । ११ ।
३५ ॥ १५ । ५ । ३२ ॥

” किञ्छन्दसश्छन्दोमा इत्येतच्छन्दसो यदेता
अक्षरपङ्क्तय इति ब्रूयात् । तां० १४ । ११ ।
५ ॥ १५ । ५ । ५ ॥

” तम इव वा एतान्यहानि यच्छन्दोमास्तेभ्य
एतेन (भासेन) साम्ना विवासयति । तां०
१४ । ११ । १५ ॥

” नाथविन्दून्येतान्यहानि यत् छन्दोमा नाथ-
मेवैतैर्विन्दते । तां० १४ । ११ । २३ ॥

” उग्रगाधमिव वा एतद्यच्छन्दोमास्तद्यथाद
उग्रगाधे व्यतिषज्य गाहन्त एवमेवैतद्रूपे
व्यतिषजति छन्दोमानामसंव्याथाय । तां०
१४ । ८ । ४, ८ ॥ १५ । २ । ६, ६ ॥

” छन्दांस्येव छन्दोमानामायतनम् । तां० १० ।
१ । १६ ॥

” अथ यच्छन्दोमानुपयन्ति । इमानेव लोका-
न्देवता यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १६ ॥

” अयं (भू-) लोकः प्रथमश्छन्दोमो ऽन्तरि-
क्षलोको द्वितीयो ऽसौ (द्यु-) लोक उत्तमः ।
कौ० २६ । ११ ॥

छाया मृत्युर्वै तमश्छाया । पे० ७ । १२ ॥

(ज)

जगत् सर्वं वाऽ इदमात्मा जगत् । श० ४।५।६।८ ॥

जगती (छन्दः) जगती गततमं छन्दोज्जगतिर्भवति क्षिप्रगतिर्ज्जमला

कुर्वन्नसृजतेति हि ब्राह्मणम् । दे० ३। १७ ॥

” तदिदं सर्वं जगदस्यां तेनेयं जगती । श० १।८।
२। ११ ॥

” इयं (पृथिवी) वै जगत्यस्यां हीदं सर्वं जगत् ।
श० ६।२।१। २६ ॥ ६।२।२। ३२ ॥

” इयं (पृथिवी) वै जगती । श० १२।८। २। २० ॥

” जगती हीयम् (पृथिवी) । श० २।२। १। २० ॥

” या सिनीवाली सा जगती । ऐ० ३। ४७ ॥

” या गौः सा सिनीवाली सो एव जगती । ऐ० ३। ४८ ॥

” ब्रह्म ह वै जगती । गो० उ० ५। ५ ॥

” (यजु० १। २१) जगत्यश्चोषधयः । श० १।२।२। २ ॥

” पशवो वै जगतो । गो० उ० ५। ५ ।

” पशवो जगती । कौ० १६। २ ॥ १७।२, ६ ॥ १६। ६ ॥

” ष० २। १ ॥ श० ३। ४। १। १३ ॥ ८। ३। ३। ३ ॥

” तै० ३। २। ८। २ ॥

” जागता वै पशवः । ऐ० १। ५, २१, २८ ॥ ३। १८ ॥

” ४। ३ ॥ ५। ६ ॥

” जागताः पशवः । कौ० ३०। २ ॥ ष० ३। ७ ॥ गो०

उ० ४। १६ ॥

” जगती वै छन्दसां परमं पोषं पुष्टा । तां २१। १०। ६ ॥

” जागतो ऽश्वः प्राजापत्यः । तै० ३। ८। ८। ४ ॥

” जागतो वै वैश्यः । ऐ० १। २८ ॥

” जगतीछन्दा वै वैश्यः । तै० १। १। ६। ७ ॥

” ता वा एता जगत्यो यद् द्वादशाक्षराणि पदानि । तां
१६। ११। १० ॥

” यस्य द्वादश ता जगतोम् । कौ० ६। २ ॥

- जगती (छन्दः) द्वादशाक्षरपदा जगती । ष० २ । १ ॥
- १ द्वादशाक्षरा जगती । तां० ६ । ३ । १३ ॥
- २ द्वादशाक्षरा वै जगती । ऐ० ३ । १२ ॥ गो० उ० ३ । १० ॥ तै० ३ । ८ । १२ । २ ॥ श० ४ । १ । १ । १२ ॥ ६ । २ । १ । २६ ॥
- ३ अष्टाचत्वारिंशदक्षरा वै जगती । श० ६ । २ । २ । ३३ ॥
- ४ अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती । तै० ३ । ८ । ८ । ४ ॥ जै० उ० ४ । २ । ८ ॥
- ५ जगती सर्वाणि छन्दाश्चसि । श० ६ । २ । १ । ३० ॥
- ६ जगती प्रतीची (दिक्) । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥
- ७ प्रतीचीमारोह । जगती त्वावतु वैरूपश्च साम सप्त-दशस्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् । श० ५ । ४ । १ । ५ ॥
- ८ आदित्यास्त्वा पश्चादभिषिञ्चन्तु जागतेन छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥
- ९ आदित्या जगतीं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ६ ॥
- १० जगत्यादित्यानां पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥
- ११ असौ जगती । जै० उ० १ । ५५ । ३ ॥
- १२ जागतो ऽसौ (द्यु-) लोकाः । कौ० ८ । ६ ॥
- १३ साम्नामादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागतच्छन्दो घौः स्थानम् । गो० पू० १ । २६ ॥
- १४ जागते ऽमुष्मिँल्लोके जागतो ऽसवादित्यो ऽध्युढः । कौ० १४ । ३ ॥
- १५ जागतो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० २५ । ४, ७ ॥
- १६ त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः । तां० ४ । ६ । २३ ॥
- १७ जगती छन्द आदित्यो देवता श्रोणी । श० १० । ३ । २ । ६ ॥
- १८ श्रोणी जगत्यः । श० ८ । ६ । २ । ८ ॥

- जगती (छन्दः) अनूकं जगत्यः । श० ८ । ६ । २ । ३ ॥
- „ यो ऽयमवाङ् प्राण एष जगती । श० १० । ३ । १ । १ ॥
- „ गवाशीर्ज्जगती । तां० १२ । १ । २ ॥
- „ मध्यं जगती । ष० २ । ३ ॥
- „ बलं वै धीर्यं जगती । कौ० ११ । २ ॥
- „ बलं धीर्यमुपरिष्ठाज्जगती । कौ० ११ । २ ॥
- „ रैभ्या जगती (अपुनीत) । जै० ३० । १ । ५७ । १ ॥
- „ जागतं श्रोत्रम् । तां० २० । १६ । ५ ॥
- „ जागतमु वै तृतीयसवनम् । गो० ३० । २ । २२ ॥
- „ जागतं वै तृतीयसवनम् । ऐ० ६ । २ । १२ ॥
- „ जागतं हि तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ष० १ । ४ ॥ तां० ६ । ३ । ११ ॥ गो० ३० । ४ । १८ ॥
- „ जागता वै प्रावाणः । कौ० २६ । १ ॥
- „ जगत्येष यशः । गो० ५० । ५ । १५ ॥
- जठरम् (यजु० १२ । ४७) मध्यं वै जठरम् । श० ७ । १ । १ । २२ ॥
- जनकस्याः प्रजा वै जनकरूपाः । ऐ० ६ । ३२ ॥
- जनको वैदेहः जनको ह वैदेहः । अहोरात्रैः समाजगाम । तै० ३ । १० । ६ । ६ ॥
- जनत् तमाङ्गिरसं वेदमभ्यश्राम्यद्भ्यतपत्समतपत्तस्माच्छ्रान्तात्सता-
त्सन्तसाज्जनदिति द्वैतमक्षरं व्यभवत् । गो० ५० । १ । ८ ॥
- „ जनदित्यङ्गिरसाम् (शुकम्) । गो० ५० । २ । २४ ॥
- जनिः (यजु० ११ । ६१) नक्षत्राणि वै जनयो ये हि जनाः पुण्यकृतः
स्वर्गं लोकं यन्ति तेषामेतानि ज्योतीश्छिबि । श० ६ । ५ । ४ । ८ ॥
- „ (यजु० १२ । ३५) आपौ वै जनयो ऽद्भ्यो हीदश्छि सर्वं जायते ।
श० ६ । ८ । २ । ३ ॥
- जनित्रम् (यजु० १४ । २४) विड् वै जनित्रम् । श० ८ । ४ । २ । ५ ॥
- „ वसिष्ठो वा एते (जनित्रे) पुत्रहतः सामनी
अपश्यत् स प्रजया पशुभिः प्राजायत ।
तां० १६ । ३ । ८ ॥

जनित्रम् (साम) वसिष्ठस्य जनित्रं प्रजाकामाय ब्रह्मसाम कुर्व्यात् ।
तां० ८ । २ । ३ ॥

जन्तवः (यजु० १२ । १०६) मनुष्या वै जन्तवः । श० ७ । ३ । १ । ३२ ॥
जन्यानि (ऋ० ४ । ५० । ७) सपत्ना वै द्विषन्तो भ्रातृभ्या जन्यानि ।
ऐ० ८ । २६ ॥

जपः ब्रह्म वै जपः । कौ० ३ । ७ ॥

जमदग्निः (यजु० १३ । ५६) चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदेनेन जगत्पश्य-
त्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः । श० ८ । १ । २ । ३ ॥
" प्रजापतिर्वै जमदग्निः । श० १३ । २ । २ । १४ ॥

जराबोधीयम् (साम) जराबोधीयं भवत्यन्नाद्यस्यावरुध्यै । तां० १४ ।
५ । २७ ॥

" अन्नं वै जराबोधीयम् । तां० १४ । ५ । २८ ॥

जरायु शशा जरायु । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥

जरिता (ऋ० ४ । १७ । २०) यजमानो जरिता । ऐ० ३ । ३८ ॥

जर्तिलाः उभयम्बेतदन्नं यज्जर्तिला यच्च ग्राम्यं यच्चारण्यं यदह तिला-
स्तेन ग्राम्यं यदकृष्टे पच्यन्ते तेनारण्यम् । श० ६ । १ ।
१ । ३ ॥

जर्भुराण्यः (यजु० ११ । २४) नाभिमृशे तन्वा जर्भुराण्य इति न ह्येषो
(अग्निः) ऽभिमृशे तन्वा दीप्यमानो भवति । श० ६ । ३ ।
३ । २० ॥

जवः वीर्यं वै जवः । श० १३ । ४ । २ । २ ॥

जह्वुः जह्वुचोवन्तो (= 'जहोः पुत्रा ऋचीवन्नामकाः' इति सायणः)
आहिसन्त स विभ्वामित्रो जाह्ववो राजैतम् (चतुरात्रम्)
अपश्यत् स राष्ट्रमभवदराष्ट्रमितरे । तां० २१ । १२ । २ ॥

" अधीयत देवरातो रिकथयोरुभयोर्ऋषिः । जहूनां चाऽऽधि-
पत्ये दैवे वेदे च गाधिनाम् । ऐ० ७ । १८ ॥

जागरितम् न्योतिर्वै जागरितम् । कौ० १७ । ६ ॥

जातः कुमारः यथा कुमाराय वा जाताय वत्साय वा स्तनमपिदध्यात् ।
श० २ । २ । १ । १ ॥

जातवेदस्याः (ऋचः) स्वस्वयनं वै जातवेदस्याः । ऐ० ४ । ३० ॥

जातवेदाः सो ऽब्रवीज्जाता वै प्रजा अनेनाविदमिति यद्ब्रवीज्जाता वै प्रजा अनेनाविदमिति तज्जातवेदस्यमभवत्तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वम् । ऐ० ३ । ३६ ॥

„ प्राणो वै जातवेदाः स हि जातानां वेद । ऐ० २ । ३६ ॥

„ तद्यज्जातं जातं विन्दते तस्माज्जातवेदाः । श० ९ । ५ । १ । ६८ ॥

„ वायुर्वै जातवेदा वायुर्हीदं सर्वं करोति यदिदं किञ्च । ऐ० २ । ३४ ॥

जामदग्न्यः (ऋचः) सर्वरूपा वै जामदग्न्यः सर्वसमृद्धाः । ऐ० ४ । २६ ॥

जायमानः शीर्षतो वै मुखतो जायमानो जायते । श० ६ । ५ । २ । २ ॥

जाया पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरं तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः । ऐ० ७ । १३ ॥

„ तद्यद्ब्रवीत् (ब्रह्म) आभिर्वा अहमिदं सर्वं जनयिष्यामि यदिदं किञ्चेति तस्माज्जाया अभवंस्तज्जायानां जायात्वं यस्मात्पुरुषो जायते । गो० पू० १ । २ ॥

„ अर्धो ह वा ऽ एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते ऽसर्वो हि तावद् भवत्यथ यदैव जायां विन्दते ऽथ प्रजायते, तर्हि हि सर्वो भवति सर्वं एतां गतिं गच्छानीति तस्माज्जायामामन्त्रयते । श० ५ । २ । १ । १० ॥

„ य एवं वेद, अभि द्वितीयां जायामश्नुते । तै० १ । ३ । १० । ३ ॥

„ तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति न हैकस्या बहवः सहपतयः । गो० उ० ३ । २० ॥

„ तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सहपतयः । ऐ० ३ । २३ ॥

„ तस्मादप्येकस्य पुंशसो बह्व्यो जाया भवन्ति । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥

„ तस्मादपि स्वया जायया तिर इवैव चिच्चरिषति । श० ६ । ४ । ४ । १६ ॥

जाया तस्माज्जायाया अन्ते नाश्रीयाद्वीर्यवान्हास्माज्जायते वीर्यवन्तमु
ह सा जनयति यस्या अन्ते नाश्राति । श० १०।५।२।६ ॥

„ जाया गार्हपत्यः (अग्निः) । ऐ० ८ । २४ ॥

जितम् अन्तो वै जितम् । ऐ० ५ । १२, २१ ॥

जिन्व (यजु० १६ । ३३) (=प्रीणीहि) जिन्व यजमानं मदेनेति तेन
प्रीणीहि यजमानं मदेनेत्येवैतदाह । श०
१२।८।१।४ ॥

जिह्वा जिह्वा सरस्वती । श० १२।६।१।१४ ॥

„ जिह्वैव शम्या । श० १।२।१।१७ ॥

जीमूतः (प्रजापतिः) जीमूतान् प्रस्तावम् (अकरोत्) । जै० उ० १।
१३।१ ॥

जुम्बकः वरुणो वै जुम्बकः । श० १३।३।६।५ ॥ तै० ३।६।
१५।३ ॥

जुषाणः ब्रह्म वै जुषाणः । कौ० ३।५ ॥

जुहः असौ (द्यौः) वै जुहः । तै० ३।३।१।१ ॥ ३।३।६।११ ॥

„ तस्यासावेव द्यौर्जुहः । श० १।३।२।४ ॥

„ यजमानदेवत्या वै जुहः । तै० ३।३।५।४ ॥ ३।३।७।
६ ॥ ३।३।९।७ ॥

„ अत्तैव जुह्वराद्य उपभृत् । श० १।३।२।११ ॥

„ क्षत्रं वै जुह्वर्विश इतराः स्रुचः । श० १।३।४।१५ ॥

„ जुह्वर्दक्षिणो हस्तः । तै० ३।३।१।५ ॥

„ आग्नेयी वै जुहः । तै० ३।३।७।६ ॥

जूः (यजु० ४।१७) जूरसीत्येतद् वा अस्याः (वाचः) एकं नाम ।
श० ३।२।४।११ ॥

ज्येष्ठमी (ज्येष्ठानक्षत्रम्) ज्येष्ठमेषामवधिष्मेति । तज्ज्येष्ठमी । तै० १।
५।२।८ ॥

ज्येष्ठा (नक्षत्रम्) इन्द्रो ज्येष्ठामनु नक्षत्रमेति । तै० ३।१।२।१ ॥

ज्योतिः (यजु० १८।५०) अयमग्निर्ज्योतिः । श० ६।४।२।२२ ॥

„ अस्य (अग्नेः) एवैतानि (धर्मः, अर्कः,

शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) नामानि । श० ६।
४।२।२५ ॥

ज्योतिः (यजु० १८।५०) सुवर्गो वै लोको ज्योतिः । तै० १।२।
२।२ ॥

” अयमेव (भूलोकः) ज्योतिः । तां० ४।१।७॥
” अयं वै (पृथिवी-) लोको ज्योतिः । ऐ०
४।१५ ॥

” इयं (पृथिवी) वै ज्योतिः । तां० १६।१।७॥
” ज्योतिरेष य एष (सूर्यः) तपति । कौ०
२५।३, ६ ॥

” असौ (सूर्यः) याव ज्योतिस्तेन सूर्यं
नातिशंसति । ऐ० ४।१०, १५ ॥

” अहर्ज्योतिः । श० १०।२।६।१६ ॥

” ज्योतिर्हिरण्यम् । गो० पू० २।२१ ॥

” ज्योतिर्हि हिरण्यम् । श० ४।३।४।२१ ॥

” ज्योतिर्वै हिरण्यम् । तां० ६।६।१० ॥

” १८।७।८ ॥ तै० १।४।४।१ ॥ श०
६।७।१।२ ॥ ७।४।१।१५ ॥ गो०
उ० ५।८ ॥

” ज्योतिर्वै शुक्रं हिरण्यम् । ऐ० ७।१२ ॥

” सं ज्योतिषाभूमेति सं देवैरभूमेत्येवैतदाह ।
श० १।६।३।१४ ॥

” ज्योतिरमृतम् । श० १४।४।१।३२ ॥

” (यजु० १४।१७) प्राणो वै ज्योतिः । श०
८।३।२।१४ ॥

ज्योतिष्टोमः अथ यदेनमूर्ध्वं संतं ज्योतिर्भूतमस्तुवस्तस्माज्ज्योतिः-
स्तोमस्तं ज्योतिःस्तोमं संतं ज्योतिष्टोममित्याचक्षते ।
ऐ० ३।४३ ॥

” किञ्ज्योतिष्टोमस्य ज्योतिष्टोमत्वमित्याहुर्विराजः सः-
स्तुतः सम्पद्यते विराज् वै उन्मसां ज्योतिः । तां० ६।३।६ ॥

- ज्योतिष्टोमः यद्वे तज्ज्योतिरभवत्तत् ज्योतिषो ज्योतिष्टुम् (ज्योतिः= ज्योतिष्टोमः) । तां० १६ । १ । १ ॥
- „ तस्माद्यो विराज७७ स्तोमः सम्पद्यते तं ज्योतिष्टोमो ऽग्निष्टोम इत्याचक्षते । तां० १० । २ । २ ॥
- „ एष वाच प्रथमो यज्ञानां य एतेनानिष्ठाथान्येन यजते कर्त्तृपत्मेव तज्जीयते वा प्र वा मीयते । तां० १६ । १ । २ ॥
- „ स्वर्ग्या वा एते स्तोमा यत् ज्योतिर्भवति (ज्योतिः= ज्योतिष्टोमः) ज्योतिरेवास्मै (यजमानाय) स पुरस्ता-
द्धरति । तां० १६ । ३ । ७ ॥

ज्योतिष्मन्तः पन्थानः देवयाना वै ज्योतिष्मन्तः पन्थानः । ऐ० ३ । ३८ ॥

(त)

तण्डुलाः वसूनां वा एतद्रूपम् । यत्तण्डुलाः । तै० ३ । ८ । १४ । ३ ॥
तत्पुरिः उपहृतेडा तनुरिरिति । तदेनां प्रत्यक्षमुपहृयते तनुरिरिति
सर्व३३ ह्येषा पाप्मानं तरति तस्मादाह तनुरिरिति । श० १ ।
८ । १ । २२ ॥

तथा तथेति वायुः पवते । जै० ३० । ३ । ६ । २ ॥

तनूः (यजु० १२ । १०५ ॥ १३ । ४७ ॥) आत्मा वै तनूः । श० ६ । ७ ।
२ । ६ ॥ ७ । ३ । १ । २३ ॥ ७ । ५ । २ । ३२ ॥

तनूनपाच्छाकरः यो वाऽ अयं (वायुः) पवते एष तनूनपाच्छाकरः सो
ऽयं प्रजानामुपद्रष्टा प्रविष्टस्ताविमौ प्राणोदानौ । श०
३ । ४ । २ । ५ ॥

तनूनपाद् प्राणो वै तनूनपात् स हि तन्वः पाति । ऐ० २ । ४ ॥

„ ग्रीष्मो वै तनूनपाद् ग्रीष्मो ह्यासां प्रजानां तनूस्तपति । श०
१ । ५ । ३ । १० ॥

„ तनूनपातं यजति ग्रीष्ममेव ग्रीष्मो हि तन्वं तपति । कौ०
३ । ४ ॥

„ रेतो वै तनूनपात् । श० १ । ५ । ४ । २ ॥

तनूनप्ता शाकरः यो वाऽ अयं (वायुः) पवतऽ एष तनूनप्ता शाकरः ।
श० ३ । ४ । २ । ११ ॥

[तमः

(१८४)

तन्दुः प्रजा वै तन्दुः । ऐ० ३ । ११, ३८ ॥

तन्त्रायी (यजु० ३८ । १२) एष वै तन्त्रायी य एष (सूर्यः) तपत्येष
हीमाँल्लोकांस्तन्त्रमिवानुसंहरति । श०
१४ । २ । २ । ३२ ॥

तन्द्रं छन्दः (यजु० १४ । ९ ॥ १५ । ५) पंक्तिर्वै तन्द्रं छन्दः । श० ८ । १ ।
४ । ३ ॥ ८ । ५ । २ । ६ ॥

तपः आसौ वाऽ आदित्यस्तपः । श० ८ । ७ । १ । ५ ॥

„ तपः स्विष्टकृत् । श० ११ । २ । ७ । १८ ॥

„ तपो वाऽ अग्निः । श० ३ । ४ । ३ । २ ॥

„ तपो मे तेजो मे ऽन्नमे वाङ् मे । तन्मे त्वयि (अन्नौ) । जै० उ०
३ । २० । १६ ॥

„ तेजो ऽसि तपसि श्रितम् । समुद्रस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ३ ॥

„ ब्रह्म तपसि (प्रतिष्ठितम्) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥

„ तपो ऽसि लोके श्रितम् । तेजसः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । २ ॥

„ तप आसीद् गृहपतिः । तै० ३ । १२ । ६ । ३ ॥

„ एतद्वै तपो यो दीक्षित्वा पयोव्रतोऽसत् । श० ६ । ५ । १ । ८ ॥

„ तपो दीक्षा । श० ३ । ४ । ३ । २ ॥

„ अमाँसाश्रयनुब्रूते तपस्व्यनुब्रवाऽ इति श० १४ । १ । १ । २६ ॥

„ तस्मात्तप्यमानस्य भूयसी कीर्त्तिर्भवति भूयो यशः । जै० उ०
२ । १ । १३ ॥

„ तपसा वै लोकं जयन्ति । श० ३ । ४ । ४ । २७ ॥

तपः, तयस्यः (मासौ) एतौ (तपश्च तपस्यश्च) एव शौशिरौ (मासौ)
स यदेतयोर्बलिष्ठं श्यायति तेनो हैतौ तपश्च
तपस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १६ ॥

तपो नवदशः (यजुः १४ । २३) संवत्सरो वाच तपो नवदशस्तस्य
द्वादश मासाः षडृतवः संवत्सर एव
तपो नवदशस्तद्यत्तमाह तप इति
संवत्सरो हि सर्वाणि तपति । श० ८ ।
४ । १ । १४ ॥

तमः कृष्णमिष हि तमः । तां० ६ । ६ । १० ॥

- तमः कृष्णं वै तमः । श० ५ । ३ । २ । २ ॥
- „ मृत्युर्वै तमः । श० १४ । ४ । १ । ३२ ॥ गो० ७० । ५ । १ ॥
- „ मृत्युर्वै तमश्छाया । ऐ० ७ । १२ ॥
- „ पाप्मा वै तमः । श० १२ । ६ । २ । ८ ॥
- तरः स्तोमो वै तरः । तां० ११ । ४ । ५ ॥ १५ । १० । ४ ॥
- „ स्तोमो वै देवेषु तरो नामासीत् । तां० ८ । ३ । ३ ॥
- तरता (ऋ० १० । १७८ । १) एष (तार्क्ष्यः=वायुः) वै रुहावांस्तर्क्ष्यै
हीमाँल्लोकान्सद्यरतरति । ऐ० ४ । २० ॥
- तल्पः मानवो वै तल्पः । तै० २ । २ । ५ । ३ ॥
- तानूनप्त्रम् ते यद्वरुणस्य राज्ञो गृहे तनूः सन्न्यदधत तत्तानूनप्त्रमभ-
वत्तानूनप्त्रस्य तानूनप्त्रत्वम् । ऐ० १ । २४ ॥
- „ यत्सन्वः समवाद्यन्त तत्तानूनप्त्रस्य तानूनप्त्रत्वम् । गो०
७० । २ । २ ॥
- तारकम् सलिलं वा इदमन्तः (=अन्तरिक्षे) आसीत् । यदतरन्
तत्तारकाणां तारकत्वम् । तै० १ । ५ । २ । ५ ॥
- तार्क्ष्यः वायुर्वै तार्क्ष्यः । कौ० ३० । ५ ॥
- „ अयं वै तार्क्ष्यो यो ऽयं (वायुः) पवते, एष स्वर्गस्य लोक
स्याभिवोढा । ऐ० ४ । २० ॥
- „ (यजु० १५ । १८) तस्य (यज्ञस्य) तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च
सेनानीग्रामण्याविति शारदौ तावृत् । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥
- „ तार्क्ष्यो वैपश्यतो राजेत्याह तस्य वयां००सि विशः.....पुराणं
वेद । श० १३ । ४ । ३ । १३ ॥
- „ स्वस्त्ययनं वै तार्क्ष्यः (=तार्क्ष्यदेवताक्रमः) । ऐ० ४ । २६ ॥
- तार्ष्यम् यज्ञो वै तार्ष्यम् । तै० १ । ३ । ७ । १ ॥ ३ । ६ । २० । १ ॥
- „ अस्य वै (भू-) लोकस्य रूपं तार्ष्यम् । तै० ३ । ६ । २० । १ ॥
- तित्तिरिः अथ यदन्यस्माऽऽशनाय (विश्वरूपस्य मुखम्) आस ।
तद्व्यतिरिः समभवत्तस्मात्स विश्वरूपतम इव, सन्त्येव
धृतस्तोका इव त्वन्मधुस्तोका इव त्वत्पर्णेष्व्वाश्चुतिता एव००
रूपमिव हि स तेन (मुखेन) अशनमावयत् । श० १ । ६ । ३ ।
५ ॥ ५ । ५ । ४ । ६ ॥

तिथिः यां पर्यस्तभियान्दभ्युदियादिति सा तिथिः (? स्थितिः—“ यां पर्यस्तमयमुत्सर्पेदिति सा स्थितिः” इति कौ० ३।१) । ऐ० ७।११ ॥

तिष्यः (नचत्रम्) बृहस्पतेस्तिष्यः । तै० १।५।१।२ ॥ ३।१।१।५ ॥

” स (बृहस्पतिः) एतं बृहस्पतये तिष्याय नैवारं चरुं पयसि निरवपत् । तै० ३।१।४।६ ॥

तिस्त्रो देव्यः प्राणो वा अपानो व्यानस्तिस्त्रो देव्यः । ऐ० २।४ ॥

तीब्रसोमः (एकाहः) छिद्र इव वा एष यथं सोमो ऽतिपवते यत्तीब्र-
सोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै । तां० १८।
५।४ ॥

” विड् वा एतमतिपवते यो राजावरुध्यते यत्तीब्र-
सोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै । तां० १८।
५।६ ॥

” ग्रामो वा एतमतिपवते यो ऽलं ग्रामाय सन्
ग्रामन्न विन्दते यत्तीब्रसोमेन यजते पिहित्या
एवाच्छिद्रतायै । तां० १८।५।८ ॥

” प्रजा वा एतमतिपवते यो ऽलं प्रजायाः सन्
प्रजान्न विन्दते यत्तीब्रसोमेन यजते पिहित्या
एवाच्छिद्रतायै । तां० १८।५।९ ॥

” पशवो वा एतमतिपवन्ते यो ऽलं पशुभ्यः सन्
पशुन्न विन्दते यत्तीब्रसोमेन यजते पिहित्या
एवाच्छिद्रतायै । तां० १८।५।१० ॥

” आमयाविनं याजयेत् प्राणा वा एतमतिपवन्ते य
आमयावी यत्तीब्रसोमेन यजते पिहित्या एवा-
च्छिद्रतायै । तां० १८।५।११ ॥

तीर्थम् तीर्थेन हि प्रतरन्ति तद्यथा समुद्रं तीर्थेन प्रतरेयुः । गो० पू०
५।२ ॥

” तद्यत्प्रायणीयमतिरात्रमुपयन्ति यथा तीर्थेन समुद्रं प्रज्ञायुस्ता-
दकत् । श० १२।२।१।१ ॥

तुयः ब्रह्म वै तुयः । श० ४।३।४।१५ ॥

तुरायण्यज्ञः स एष स्वर्गकामस्य यज्ञः । कौ० ४।११ ॥

तुरीयम् यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयम् । श० ४ । १ । ३ । १४ ॥ ५ । २ । ४ ।
१३ ॥ १४ । ८ । १५ । ४ ॥

तुला तुलायाऽं ह वाऽ अमुष्मिँल्लोकऽ आदधति यतरद्यंस्यति
तदन्वेष्यति यदि साधु वासाधु वेति । श० ११ । २ । ७ । ३३ ॥

तूर्णिः सर्वंऽं ह्येष पाप्मानं तरति तस्मादाह तूर्णिर्हव्यवाडिति ।
श० १ । ४ । २ । १२ ॥

” वायुर्वै तूर्णिर्वायुर्हीदं सर्वं सद्यस्तरति यदिदं किञ्च । ऐ० २ ।
३४ ॥

तूर्तम् यद्वै क्षिप्रं तत्तूर्तम् । श० ६ । ३ । २ । २ ॥

तूर्णीशंसः मूलं वा एतद्यज्ञस्य यत्तूर्णीशंसः । ऐ० २ । ३२ ॥

” चक्षुर्वा एतद्यज्ञस्य यत्तूर्णीशंसः । ऐ० २ । ३२ ॥

” चक्षूषि वा एतानि सवनानां यत्तूर्णीशंसः । ऐ० २ । ३२ ॥

” तूर्णीसारो वा एष यत्तूर्णीशंसः । ऐ० २ । ३१ ॥

तृचः अन्तरिक्षदेवत्यस्तृचो भवति । तां० १२ । १ । ८ ॥

” इमे हि लोकास्तृचः । तां० २ । १ । ४ ॥ २ । २ । २ ॥ २ ।
३ । ५ ॥

तृतीयं रजः (यजु० १२ । २०) धौर्वै तृतीयंऽं रजः । श० ६ । ७ ।
४ । ५ ॥

तृतीयमहः उद्धवा एतदहर्ह्यत्तृतीयम् । तां० १२ । ३ । २ ॥

” उद्धवा एतत् त्रिवदहर्ह्यत् तृतीयम् । तां० १२ । ५ । २ ॥

” बहुदेवत्यं तृतीयमहः । कौ० २० । ४ ॥

” अन्तरिक्षदेवत्यमेतदहर्ह्यत्तृतीयम् । तां० १२ । १ । ८ ॥
१२ । २ । ७ ॥ १२ । ३ । १६ ॥ १२ । ५ । ८ ॥

” जागतमेतदहर्ह्यत्तृतीयम् । तां० १२ । ७ । ३ ॥

” उद्धतमिष वै तृतीयमहः । तां० १२ । ४ । ४ ॥

” अन्तो वै तृतीयमहः । तां० १२ । ५ । ४ ॥

” अन्तस्तृतीयमहः । कौ० २२ । ५ । ६ ॥

तृतीयसवनम् मद्रद्धि तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १, २, ३, ४ ॥ गो०
उ० ४ । १६, १७ ॥

” मद्रद्धे तृतीयसवनम् । ऐ० ४ । ४ ॥

- तृतीयसवनम् मङ्गलै तृतीयसवनस्य रूपम् । ऐ० ३ । २६ ॥
- ” मदवद् वै रसवत्तृतीयसवनम् । तां० ११ । ५ । १ ॥ ११ ।
१० । २ ॥ १२ । ६ । ३ ॥
- ” अथैतन्निर्धीतशुक्रं यत्तृतीयसवनम् । श० ४ । ३ । ३ ।
१६ ॥ ४ । ३ । ५ । १७ ॥
- ” धीतरसं वै तृतीयसवनम् । ऐ० ६ । १२ ॥
- ” धीतरसं वा एतत्सवनं यत्तृतीयसवनम् । कौ० २६ । १ ॥
३० । १ ॥ गो० उ० ४ । १८ ॥
- ” विश्वेषां देवानां तृतीयसवनम् । कौ० १४ । ५ ॥
१६ । १२ ॥
- ” विश्वे देवा द्वादशकपालेन तृतीयसवने (आदित्यमभिष-
ज्यन्) । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥
- ” वैश्वदेवं वै तृतीयसवनम् । ऐ० ६ । १५ ॥ श० १ । ७ ।
३ । १६ ॥ ४ । ४ । १ । ११ ॥ जै० उ० १ । ३७ । ४ ॥
- ” तथा (वैश्वदेव्याऽऽगया) तृतीयसवनस्योद्गमेयम् । जै०
उ० १ । ३७ । ४ ॥
- ” तृतीयसवनं वै स्विष्टकृत् । श० १ । ७ । ३ । १६ ॥
- ” आदित्यं हि तृतीयसवनम् । तां० ६ । ७ । ७ ॥
- ” अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनं^{२३}
रुद्रा माव्यन्दिनं^{२४} सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श०
१४ । १ । १ । १५ ॥
- ” आदित्यानां तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥
श० ४ । ३ । ५ । १ ॥
- ” धीर्वै तृतीयसवनम् । श० १२ । ८ । २ । १० ॥
- ” असौ वै (यु-) लोकस्तृतीयसवनम् । गो० उ० ४ । १८ ॥
- ” विद्मसु वै तृतीयसवनम् । तां० ८ । ३ । ६ ॥
- ” जागतं हि तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ष० १ । ४ ॥
तां० ६ । ३ । ११ ॥ गो० उ० ४ । १८ ॥
- ” विद् तृतीयसवनम् । कौ० १६ । ४ ॥
- ” चित्रवत् तृतीयसवनम् । तां० १८ । ६ । ७ ॥

तृतीयसवनम् अस्तंयन्तं (सूर्य) तृतीयसवनेन (ईप्सन्ति) । कौ०
१८ । ६ ॥

„ काव्याः (पितरः) तृतीयसवने । ऐ० ७ । ३४ ॥

„ (पुरुषस्य) ये ऽवाञ्चः (प्राणाः) तत्तृतीयसवनम् । कौ०
२५ । १२ ॥

„ चतुर्विंशैकविंशौ (स्तोमौ) तृतीयसवनम् (बहूतः) ।
तां० १६ । १० । ५ ॥

तृतीया चितिः मध्यमेव तृतीया चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥

„ द्यौरेव तृतीया चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १४ ॥

तेजः तेजो वाऽ अग्निः । श० २ । ५ । ४ । ८ ॥ ३ । ६ । १ । १६ ॥ तै०
३ । ३ । ४ । ३ ॥ ३ । ६ । ५ । २ ॥

„ तपो मे तेजो मे ऽभस्मे वाङ् मे । तन्मे त्वयि (अग्नौ) । जै० उ०
३ । २० । १६ ॥

„ तेजो ऽसि तपसि श्रितम् । समुद्रस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ ।
१ । ३ ॥

„ समुद्रो ऽसि तेजसि श्रितः । तै० ३ । ११ । १ । ४ ॥

„ तेजो वै वायुः । तै० ३ । २ । ६ । १ ॥

„ तेज एव अग्ना । श० ११ । ३ । १ । १ ॥

„ (यजु० १ । ३१) तेजो ऽसि शुक्रमस्यमृतमसि (आज्य !) । श०
१ । ३ । १ । २८ ॥

„ तेज आज्यम् । तै० ३ । ३ । ४ । ३ ॥ ३ । ३ । ६ । ३ ॥

„ तेजो हिरण्यम् । तै० ३ । १२ । ५ । १२ ॥

„ तेजो वै हिरण्यम् । तै० १ । ८ । ६ । १ ॥

तेजनी (= अश्वरुधिरस्य धारयित्रीति सायणः) पाप्मा वै तेजनी । तै० ३ । ८ ।
१६ । २ ॥

तैरश्वथम् (साम) अङ्गिरसः स्वर्गं लोकं यन्तो रक्षाऽस्यन्वसचन्त
तान्येतेन तिरश्च्याङ्गिरसस्तिर्यङ् पर्यवैद्यसिर्यङ्
पर्यवैत्स्मात्तैरश्च्यं पाप्मा वाष स तानसचत
तन्तैरश्च्येनापाप्मतापपाप्मान् हते तैरश्च्येन
मुष्टुधानः । तां० १२ । ६ । १२ ॥

तोकम् (यजु० १३ । ५२ ॥) प्रजा वै तोकम् । श० ७ । ५ । २ । ३६ ॥
 तौरश्रवसे (सामनी) तुरश्रवसश्च वै पारावतानाञ्च सोमौ स० सुता-
 वास्तान्तत पते तुरश्रवाः सामनी अपश्यत्ताभ्या-
 मस्मा इन्द्रः शल्मलिनां यमुनाया हव्यं निरावह-
 द्यत्तौरश्रवसे भवतो हव्यमेवैषां (यजमानानां
 विद्विषाणामिति सायणः) वृङ्क्ते । तां० ६ ।
 ४ । १० ॥

त्रपु सीसेन त्रपु (सन्दध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥

„ रजतेन त्रपु (सन्दध्यात्) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

„ त्रपुणा लोहायसम् (सन्दध्यात्) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

त्रयस्त्रिंशः (स्तोमः) त्रयस्त्रिंशो वै स्तोमानामधिपतिः । तां० ६ ।
 २ । ७ ॥

„ एष वै समृद्धः स्तोमो यत् त्रयस्त्रिंशः । तां०
 १५ । १२ । ६ ॥

„ ज्योतिर्यस्त्रिंशः स्तोमानाम् । तां० १३ । ७ । २ ॥

„ त्रयस्त्रिंशः स्तोमानां (सत्) । तां० ४ । ८ । १० ॥

„ सत् (= उक्कृष्टमिति सायणः) त्रयस्त्रिंशः
 स्तोमानाम् । तां० १५ । १२ । २ ॥

„ अन्तो वै त्रयस्त्रिंशः परमो वै त्रयस्त्रिंशः
 स्तोमानाम् । तां० ३ । ३ । २ ॥

„ वर्म वै त्रयस्त्रिंशः । तां० १६ । १० । १० ॥

„ तम् (त्रयस्त्रिंशं स्तोमं) उ नाक इत्याहुः । तां०
 १० । १ । १८ ॥

„ देवता एव त्रयस्त्रिंशस्यायतनम् । तां० १० ।
 १ । १६ ॥

„ अनूकं त्रयस्त्रिंशः । द्वात्रिंशद्वाऽ एतस्य कक्क-
 कराण्यनूकं त्रयस्त्रिंशम् । श० १२ । २ । ४ । १४ ॥

„ संवत्सरो वाव ' प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशः ' (यजु०
 १४ । २३) तस्य चतुर्विंशतिरर्धमासाः षडृतवो
 द्वेऽग्रहोरात्रे संवत्सर एव प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशस्त-

द्यत्तमाह प्रतिष्ठेति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानां
प्रतिष्ठा । श० ८ । ४ । १ । २२ ॥

त्रयस्त्रिंशः (स्तोमः) त्रयस्त्रिंश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै । तां०
६५ । १२ । ८ ॥

त्रयी विद्या अथाह । स्तोमश्च यजुश्चऽऽम्बुक् च साम च बृहच्च रथन्तरं
चेति त्रयी हैषा विद्यान्नं वै त्रयी विद्या । श० ६ । ३ ।
३ । १४ ॥

” त्रयी वै विद्या । ऋचो यजूंषि सामानि । श० ४ । ६ ।
७ । १ ॥

” सैषा त्रयी विद्या (=ऋक्सामयजूंषि) यज्ञः । श० १ ।
१ । ४ । ३ ॥

” भूर्भुवस्स्वरिति सा त्रयी विद्या । जै० उ० २ । ९ । ७ ॥

” एषमेवैता (भूर्भुवःस्वरिति) व्याहृतयस्त्रय्यै विद्यायै
संश्लेषिण्यः । कौ० ६ । १२ ॥

” स (प्रजापतिः) भ्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयी-
मेव विद्याम् । श० ६ । १ । १ । ८ ॥

” तद्यत्तत्सत्यम् । त्रयी सा विद्या । श० ६ । ५ । १ । १८ ॥

” त्रयी वै विद्या काव्यं छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

” त्रयी विद्या निर्वपणम् । श० ७ । ५ । २ । ५२ ॥

” तस्य (एकविंशसाम्नः) त्रय्येव विद्या हिङ्कारः । जै० उ०
१ । १६ । २ ॥

” मनसो वै समुद्राद्वाचाभ्रया देवास्त्रयीं विद्यां निरखनन् । श०
७ । ६ । २ । ५२ ॥

” सैषा त्रयी विद्या सौम्ये ऽध्वरे प्रयुज्यते । श० ४ । ६ ।
७ । १ ॥

” त्रय्यां षाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि । श० १० । ४ ।
२ । २२ ॥

” प्रजापतिस्त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत् । श० ६ । ३ ।
१ । १० ॥ ('वेदाः' इत्येतं शब्दमपि पश्यत)

[त्रिरात्रः (ऋतुः) (१६२)

त्रयोविंशः (स्तोमः) “ सम्भरणस्त्रयोविंशः ” इत्येतं शब्दं पश्यत ।

त्रिककुत् (पर्वतः) यत्र वाऽ इन्द्रो वृत्रमहंस्तस्य यदक्ष्यासीत्तं गिरिं
त्रिककुदमकरोत् । श० ३ । १ । ३ । १२ ॥

त्रिककुच्छन्दः (यजु० १५ । ४) उदानो वै त्रिककुच्छन्दः । श० ८ । ५ ।
२ । ४ ॥

त्रिणवः (स्तोमः) वज्रस्त्रिणवः । श० ८ । ४ । १ । २० ॥ प० ३ । ४ ॥

” वज्रो वै त्रिणवः । श० १३ । ४ । ४ । १ ॥ तां० ३ ।
१ । २ ॥

” यत्त्रिणवो (भवति) वज्रं भ्रातृव्याय प्रहरति । तां०
१६ । १८ । ३ ॥

” इमे वै लोकास्त्रिणवः । तां० ६ । २ । ३ ॥ १६ ।
१० । ६ ॥

” पार्श्वे त्रिणवः । त्रयोदशान्याः पार्श्वस्त्रयोदशान्याः
पार्श्वे त्रिणवे । श० १२ । २ । ४ । १३ ॥

” त्रिवृद्धेव त्रिणवस्यायतनम् । तां० १० । १ । २३ ॥

” तं (त्रिणवस्तोमं) पुष्टिरित्याहुस्त्रिवृद्धेवैष पुष्टः ।
तां० १० । १ । १५ ॥

” त्रिवृद्ध त्रिणवश्च राथन्तरौ तावजश्चाश्वश्चान्वसृज्येतां
तस्तात्तौ राथन्तरं प्राचीनं प्रधूनुतः । तां० १० ।
२ । ५ ॥

“ओजस्त्रिणवः” शब्दमपि पश्यत ।

त्रिणिधनम् (साम) एतेन वै माध्यन्दिनं सवनं प्रतिष्ठितं यत्त्रिणिध-
नम् । तां० ७ । ३ । २ ॥

” द्यौस्त्रिणिधनम् । तां० २१ । २ । ७ ॥

त्रिपाद् आदित्यस्त्रिपात्तस्येमे लोकाः पादाः । गो० पू० २ । ८ ॥

त्रिपुरम् तस्माद्दु हैतत्पुरां परमं रूपं यत्त्रिपुरम् । श० ६३ । ३ । २६ ॥

त्रिरात्रः (ऋतुः) इमे लोकास्त्रिरात्रः । तां० १६ । ११ । ४ ॥ २१ । ७ । २ ॥

” मूर्धा वा एष दिवो यस्तृतीयस्त्रिरात्रः । तां० १४ ।
२ । २ ॥

” अन्तस्त्रिरात्रो यज्ञानाम् । तां० २१ । ४ । ६ ॥

त्रिरात्रः (ऋतुः) तस्याः (शबल्याः) त्रिरात्रो घत्सः । तां० २१ ।

३ । १ ॥

„ वाग्वै त्रिरात्रः । तां० २० । १५ । २ ॥

„ तद्यथा अदो मनौ (? मणौ) सूत्रमोतमेवमेषु लोकेषु
त्रिरात्र ओतः, शोभते ऽस्य मुख य एवं वेद । तां०
२० । १६ । ६ ॥

त्रिवृत् (स्तोमः) वायुर्वाऽ आशुस्त्रिवृत्स एषु त्रिषु लोकेषु घर्तते । श०
८ । ४ । १ । ६ ॥

„ तान् (पशून्) अग्निस्त्रिवृता स्तोमेन नामोत् । तै०
२ । ७ । १४ । १ ॥

„ त्रिवृदग्निः । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥

„ अग्निर्वै त्रिवृत् । तै० १ । ५ । १० । ४ ॥

„ त्रिवृद्वा अग्निरङ्गारा अर्चिर्धूम इति । कौ० २८ । ५ ॥

„ तेजो वै त्रिवृत् । तां० २ । १७ । २ ॥

„ तेजो वै स्तोमानां त्रिवृत् । ऐ० ८ । ४ ॥

„ तेजो वै त्रिवृद् ब्रह्मवर्चसम् । तां० १७ । ६ । ३ ॥ २० ।
१० । १ ॥

„ त्रिवृदेव स्तोमो भवति तेजसे ब्रह्मवर्चसाय । तां०
११ । १ । ७ ॥

„ ब्रह्मवर्चसं वै त्रिवृत् । तै० २ । ७ । १ । १ ॥

„ त्रिवृदेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ ब्रह्म वै स्तोमानां त्रिवृत् । ऐ० ८ । ४ ॥

„ ब्रह्म वै त्रिवृत् । तां० २ । १६ । ४ ॥ १६ । १७ । ३ ॥
२३ । ७ । ५ ॥

„ शिर एव त्रिवृत् । गो० पू० ५ । ३ ॥

„ तस्मात् त्रिवृत् स्तोमानां मुखम् । तां० ६ । १ । ६ ॥

„ मुखं वै त्रिवृत्स्तोमानाम् । तां० १७ । ३ । २ ॥

„ यत्त्रिवृद्भवति यदेवास्य (यजमानस्य) मुखतो ऽपूतं
तत्तेनापहन्ति । तां० १७ । ५ । ६ ॥

„ प्राणौ वै त्रिवृत् । तां० ६ । २ । २ ॥ १३ । ४ ॥ १५ ॥

- त्रिवृत् (स्तोमः) प्राणा वै त्रिवृत् । तां० २ । १५ । ३ ॥ ३ । ६ । ३ ॥
- ” प्राणा वै त्रिवृत् स्तोमानां प्रतिष्ठा । तां० ६ । ३ । ४ ॥
- ” एष (त्रिवृत्) हि स्तोमानामाशिष्ठः । श० ८ । ४ । १ । ६ ॥
- ” त्रिवृद्धै स्तोमानां क्षेपिष्ठः । ष० ३ । ८ ॥ तां० १७ । १२ । ३ ॥
- ” वज्रो वै त्रिवृत् । ष० ३ । ३, ४ ॥
- ” त्रिवृद्धर्हिर्भवति । तै० १ । ६ । ३ । १ ॥
- ” वसन्तेनर्तुमा देवा वसवस्त्रिवृता स्तुतम् । रथन्तरेण तेजसा । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १६ । १ ॥
- ” त्रिवृच्च त्रिणवश्च राथन्तरौ तावजश्चाश्वश्चान्वसृज्येतां तस्मात्तौ राथन्तरं प्राचीनं प्रधूनुतः । तां० १० । २ । ५ ॥
- त्रिश्रेणिः (अग्निः) त्रिश्रेणिरितिच्छ्रन्दांस्येव श्रेणीरकुरुत । ऐ० ३ । ३९ ॥
- त्रिषत्याः त्रिषत्या हि देवाः । ष० १ । १ ॥ तै० ३ । २ । ३ । ८ ॥
- त्रिष्टुक् (छन्दः) इन्द्रियं वै त्रिष्टुक् । तै० ३ । ३ । ६ । ८ ॥
- त्रिष्टुप् (छन्दः) त्रिष्टुप् स्तोम इत्युत्तरपदा का तु त्रिता स्यात्तीर्णतमं छन्दो भवति । दे० ३ । १४, १५ ॥
- ” त्रिवृद्धव्रजस्तस्य स्तोममिवेत्यौपमिकम् । दे० ३ । १६ ॥
- ” वज्रस्तेन यत्त्रिष्टुप् । ऐ० २ । १६ ॥
- ” वज्रस्त्रिष्टुप् । कौ० ७ । २ ॥ श० ३ । ६ । ४ । २२ ॥
- ” त्रैष्टुभो वज्रः । गो० ३० १ । १८ ॥
- ” त्रिष्टुबिन्द्रस्य वज्रः । ऐ० २ । २ ॥
- ” त्रैष्टुभ इन्द्रः । कौ० ३ । २ ॥ २२ । ७ ॥
- ” इन्द्रस्त्रिष्टुप् । श० ६ । ६ । २ । ७ ॥
- ” ऐन्द्रं त्रैष्टुभं माथ्यन्दिनं सवनम् । गो० ३० ४ । ४ ॥
- ” ऐन्द्रं हि त्रैष्टुभं माथ्यन्दिनं सवनम् । कौ० २६ । २ ॥
- ” त्रैष्टुभं वै माथ्यन्दिनं सवनम् । ऐ० ६ । ११ ॥
- ” त्रैष्टुभं माथ्यन्दिनं सवनम् । ष० १ । ४ ॥
- ” एते वाव छन्दसां वीर्यवत्तमे यद्वायव्री च त्रिष्टुप् च । तां० २० । १६ । ८ ॥

- त्रिष्टुप् (छन्दः) वीर्यं वै त्रिष्टुप् । ऐ० १ । २१ ॥ ४ । ३, ११ ॥ ६ । १५ ॥
 ष० ३ । ७ ॥
- ” बलं वै वीर्यं त्रिष्टुप् । कौ० ७ । २ ॥ ८ । २ ॥ ११ ।
 २ ॥ १६ । १ ॥ गो० उ० ५ । ५ ॥
- ” बलं वीर्यं पुरस्तात्त्रिष्टुप् । कौ० ११ । २ ॥
- ” ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुप् । ऐ० १ । ५, २८ ॥
 ८ । २ ॥
- ” इन्द्रियं वै वीर्यं त्रिष्टुप् । तै० १ । ७ । ६ । ८ ॥
- ” इन्द्रियं वै त्रिष्टुप् । तै० १ । ७ । ६ । २ ॥
- ” उरस्त्रिष्टुप् । ष० २ । ३ ॥
- ” उरस्त्रिष्टुभः । श० ८ । ६ । २ । ७ ॥
- ” वृषा त्रिष्टुप् । कौ० २० । ३ ॥
- ” त्रिष्टुप्छन्दो वै राजन्यः । तै० १ । १ । ६ । ६ ॥
- ” त्रैष्टुभो वै राजन्यः । ऐ० १ । २८ ॥ ८ । २ ॥
- ” (राजन्यस्य) त्रिष्टुप् छन्दः । तां० ६ । १ । ८ ॥
- ” क्षत्रस्यैवैतच्छन्दो यत्त्रिष्टुप् । कौ० १० । ५ ॥
- ” क्षत्रं वै त्रिष्टुप् । कौ० ७ । १० ॥
- ” ब्रह्म गायत्री क्षत्रं त्रिष्टुप् । श० १ । ३ । ५ । ५ ॥
- ” क्षत्रं त्रिष्टुप् । कौ० ३ । ५ ॥ श० ३ । ४ । १ । १० ॥
- ” अथैतदधीतरसं शुक्रियं छन्दो यत्त्रिष्टुप् । ऐ० ६ । १२ ॥
- ” त्रिष्टुबेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- ” या राका सा त्रिष्टुप् । ऐ० ३ । ४७, ४८ ॥
- ” त्रिष्टुम्भीयम् (पृथिवी) । श० २ । २ । १ । २० ॥
- ” त्रैष्टुभो हि वायुः । श० ८ । ७ । ३ । १२ ॥
- ” त्रैष्टुभे ऽन्तरिक्षलोके त्रैष्टुभो वायुरध्युदः । कौ० १४ । ३ ॥
- ” यजुषां वायुर्देवतं तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दो ऽन्तरिक्षं
 स्थानम् । गो० पू० १ । २६ ॥
- ” त्रैष्टुभो ऽन्तरिक्षलोकः । कौ० ८ । ६ ॥
- ” त्रैष्टुभमन्तरिक्षम् । श० ८ । ३ । ४ । ११ ॥
- ” अन्तरिक्षं त्रिष्टुप् । जै० उ० १ । ५ । ५ । ३ ॥

- त्रिष्टुप् (कंदः) अन्तरिक्षमु वै त्रिष्टुप् । श० १ । ८ । २ । १२ ॥
- ” अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रश्चस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो
निर्भक्तो यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । श० १ ।
६ । ३ । १० ॥
- ” त्रिष्टुबसौ (द्यौः) । श० १ । ७ । २ । १५ ॥
- ” असावु तमः (लोकः=द्युलोकः) त्रिष्टुप् । तां० ७ ।
३ । ६ ॥
- ” त्रैष्टुभो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० २५ । ४ ॥
- ” त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः । तां० ४ । ६ । २३ ॥
- ” त्रैष्टुभाः पशवः । कौ० ८ । १ ॥ १० । २ ॥
- ” अपानस्त्रिष्टुप् । तां० ७ । ३ । ८ ॥
- ” यऽ एषायं प्रजननः प्राण एष त्रिष्टुप् । श० १० । ३ ।
१ । १ ॥
- ” त्रैष्टुभं चक्षुः । तां० २० । १६ । ५ ॥
- ” आत्मा वै त्रिष्टुप् । श० ६ । ४ । २ । ६ ॥
- ” आत्मा त्रिष्टुप् । श० ६ । २ । १ । २४ ॥ ६ । ६ ।
२ । ७ ॥
- ” आत्मा त्रिष्टुभः । श० ८ । ६ । २ । ३ ॥
- ” त्रैष्टुभः पञ्चदशस्तोमः । तां० ५ । १ । १४ ॥
- ” एतद्वै बृहतः स्वमायतनं यत्त्रिष्टुप् । तां० ४ । ४ । १० ॥
- ” त्रैष्टुभं वै बृहत् । तां० ५ । १ । १४ ॥
- ” त्रैष्टुभो ब्राह्मणाच्छ्रुसी । तां० ५ । १ । १४ ॥
- ” नाराशंस्या त्रिष्टुप् (अपुनीत) । जै० उ० १ । ५७ । १ ॥
- ” त्रिष्टुब्दक्षिणा (दिक्) । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥
- ” त्रिष्टुब्रुद्राणां पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥
- ” रुद्रास्त्रिष्टुभं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ५ ॥
- ” यस्यैकादश तास्त्रिष्टुभम् । कौ० ६ । २ ॥
- ” एकादशान्तरा वै त्रिष्टुप् । कौ० ३ । २ ॥ १० । २ ॥
तां० ६ । ३ । १३ ॥ ऐ० ३ । १२ ॥ ८ । २ ॥ श० १ ।
३ । ५ । ५ । तै० ३ । ८ । १२ । १ ॥ गो० उ० १ । १८ ॥ ३ । १० ॥

- त्रिष्टुप् (कंदः) चतुश्चत्वारिंशदक्षरा वै त्रिष्टुप् । श० ८ । ५ ।
१ । ११ ॥
- „ चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् । कौ० १६ । ७ ॥ जै० उ०
४ । २ । ५ ॥
- त्रीणि रोचनानि सवनानि वै त्रीणि रोचनानि । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥
त्रेता (युगम्) उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति । ऐ० ७ । १५ ॥
- त्रैककुभम् (साम) तांस्त्रिककुबधिनिधाया चरत्स एतत्सामापश्य-
द्यत्रिककुबपश्यत्तस्मात्त्रैककुभम् । तां० ८ । १ । ४ ॥
- „ त्रैककुभं पशुकामाय ब्रह्मसाम कुर्यात् “त्वमङ्ग प्रश-
७७सिष” इत्येतासु । तां० ८ । १ । ३ ॥
- „ त्रिवीर्यं वा एतत्साम त्रीन्द्रियमैन्द्रघ ऋच ऐन्द्रं
सामैन्द्रेति निधनमिन्द्रिय एव वीर्यं प्रतिष्ठिति ।
तां० ८ । १ । ७ ॥
- „ ओजस्येव तद्वीर्यं प्रतिष्ठित्योजो वीर्यं त्रैककुभम् ।
तां० १५ । ६ । ५ ॥
- त्रैतम् (साम) नाथविन्दु (त्रैतं) साम विन्दते नाथम् (=याचितफल-
मिति सायणः) । तां० १४ । ११ । २३ ॥
- „ त्रैतं भवति प्रतिष्ठायै । तां० १४ । ११ । २१ ॥
- त्रैशोकम् (साम) त्रैशोकं ज्योगामयाविने ब्रह्मसाम कुर्यात् । तां० ८ ।
१ । ८ ॥
- „ इमे वै लोकाः सहासंस्ते ऽशोचं स्तेषामिन्द्र एतेन
साम्ना शुचमपहन्यत्त्रयाणां शोचतामपाहंस्तस्मा-
त्त्रैशोकम् । तां० ८ । १ । ६ ॥
- „ अप पाप्मानं हते त्रैशोकेन तुष्टुवानः । तां० १२ ।
१० । २२ ॥
- त्र्यनीकः (अग्निः) त्र्यनीक इति सवनान्येवानीकानि । ऐ० ३ । ३६ ॥
- त्र्यम्बकः अम्बिका ह वै नामास्य (रुद्रस्य) स्वसा, तयास्यैष सह भाग-
स्तद्यदस्यैष स्त्रिया सह भागस्तस्मात् त्र्यम्बकाः पुरोडाशाः
नाम श० २ । ६ । २ । ६ ॥
- त्वक् त्वक् प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥

- त्वक् त्वक्सूददोहाः । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥
- त्वष्टा वाग्वै त्वष्टा वाग्धीदं सर्वं ताष्टीव । ऐ० २ । ४ ॥
- „ (अ० १ । १२ । ६) इन्द्रो वै त्वष्टा । ऐ० ६ । १० ॥
- „ त्वष्टा वै पशूनामोष्टे । श० ३ । ७ । ३ । ११ ॥
- „ त्वष्टुर्हि पशवः । श० ३ । ८ । ३ । ११ ॥
- „ त्वष्टा पशूनां मिथुनानां रूपकद्रूपपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
- „ त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां रूपकृत् । तै० ३ । ८ । ११ । २ ॥
- „ त्वष्टा वै पशूनां रूपाणां विकर्ता । तां० ६ । १० । ३ ॥
- „ त्वष्टा हि रूपाणि विकरोति । तै० २ । ७ । २ । १ ॥
- „ त्वाष्ट्राणि वै रूपाणि । श० २ । २ । ३ । ४ ॥
- „ त्वष्टा वै रूपाणामीशे । तै० १ । ४ । ७ । १ ॥
- „ त्वष्टा वै रूपाणामीष्टे । श० ५ । ४ । ५ । ८ ॥
- „ त्वष्टा रूपेण । तै० १ । ८ । १ । २ ॥
- „ त्वष्टा (श्रियः) रूपाणि (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
- „ त्वष्टा वै रेतः सिकुं विकरोति । कौ० ३ । ६ ॥
- „ त्वष्टा वै सिकुं रेतो विकरोति । श० १ । ६ । २ । १० ॥ ३ ।
- ७ । २ । ८ ॥ ४ । ४ । २ । १६ ॥
- „ रेतःसिकिर्वै त्वाष्ट्रः । कौ० १६ । ६ ॥
- „ त्वष्टः समिधां पते । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥
- „ त्वष्टुर्ह वै पुत्रः । त्रिशीर्षा षडक्ष आस तस्य त्रीण्येव मुखान्यासु-
स्तद्यदेव रूप आस तस्माद्विश्वरूपो नाम । श० १ । ६ । ३ ।
- १ ॥ ५ । ६ । ४ । २ ॥
- „ त्वाष्ट्रं दशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । ४ । ५ । ८ ॥
- „ (श्रीः) त्वाष्ट्रं दशकपालं पुरोडाशं (अपश्यत्) । श० ११ । ४ ।
- ३ । ५ ॥
- „ (प्रजापतिः) त्वाष्ट्रमग्निं (आलिप्सत) । श० ६ । २ । १ । ५ ॥
- „ वारुणी च हि त्वाष्ट्रो चाविः । श० ७ । ५ । २ । २० ॥
- „ त्वाष्ट्रं वडवमालभेत प्रजकामः । गो० ३० । २ । १ ॥
- त्वाष्ट्रीसाम इन्द्रं वा अज्यामयिणं भूतानि नास्वापयंस्तमेतेन
त्वाष्ट्रयो ऽस्वापयंस्तद्वाव तास्तर्ह्यकामयन्त ॥ काम-

सनि साम त्वाष्ट्रीसाम काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १२ ।

५ । १६-२० ॥

त्वाष्ट्रीसाम इन्द्रो वृत्राद्विभ्यद्रां प्राविशत्तं त्वाष्ट्रयो ऽब्रूवञ्जनयामेति
तमेतैः समाभिरजनयञ्जायामहा इति वै सत्रमासते
जायन्त एव । तां० १२ । ५ । २१ ॥

त्वेषं वचः एनश्च वैरहत्यश्च त्वेषं वचः । तै० १ । ५ । ६ । ६ ॥

त्वेषः (यजु० १२ । ४८) (=महान्) त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षा
इति महान्स भानुरर्णवो नृचक्षा इत्येतत् ।
श० ७ । १ । १ । २३ ॥

(द)

दक्षः दक्षो ह वै पार्वतिरिरेतेन यज्ञेनेष्ट्वा सर्वान् कामानाप । कौ० ४ । ४ ॥

„ स (प्रजापतिः) वै दक्षो नाम । श० २ । ४ । ४ । २ ॥

„ 'ऋतुं दक्षं वरुण संशिशधि' (ऋ० ८ । ४२ । ३) इति वीर्यं
प्रज्ञानं वरुण संशिशधीति । ऐ० १ । १३ ॥

„ (यजु० १४ । ३) (=वीर्यम्) स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीदेति ।
स्वेन वीर्येणोह सीदेत्येतत् । श० ८ । २ । १ । ६ ॥

„ अथ यदस्मै तत्समृध्यते स दक्षः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

„ वरुणो दक्षः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

दक्षणिधनम् (साम) (प्रजापतिः) तामु (प्रजासु) एतेन (दक्षणिधनेन)
साम्ना दक्षायेत्योजो वीर्यमदधाद्यदेतत्साम भव-
त्योज एव वीर्यमात्मन्धत्ते । तां० १४ । ५ । १३ ॥

दक्षिणः (अर्द्धः) दक्षिणो वा अर्द्ध आत्मनो (=शरीरस्य) वीर्यवत्तरः ।
तां० ५ । १ । १३ ॥

दक्षिणा तं (यज्ञं) देवा दक्षिणाभिरदक्षयंस्तद्यदेनं (यज्ञं) दक्षिणा-
भिरदक्षयंस्तस्माद्दक्षिणा नाम । श० २ । २ । २ । २ ॥

४ । ३ । ४ । २ ॥

„ तद्यद्दक्षिणाभिर्यज्ञं दक्षयति तस्माद्दक्षिणा नाम ।

कौ० १५ । १ ॥

„ दक्षिणा वै यज्ञानां पुरोगवी । ऐ० ६ । ३५ ॥

- दक्षिणा एषा ह वै यज्ञस्य पुरोगवी यहक्षिणा । गो० उ०
६ । १४ ॥
- ” शुभो वा एता यज्ञस्य यहक्षिणाः । तां० १६ । १ । १४ ॥
- ” श्लेष्म वा एतद्यज्ञस्य यहक्षिणा । तां० १६ । १ । १३ ॥
- ” यज्ञो ऽदक्षिणो रिष्यति तस्मादाहुर्दातव्यैव यज्ञे
दक्षिणा भवत्यल्पिकापि । ऐ० ६ । ३५ ॥
- ” तस्मान्नादक्षिणेन हविषा यजेत । श० १ । २ । ३ । ४ ॥
- ” नादक्षिण^{२३} हविः स्यादिति ह्याहुः । श० ११ । १ ।
३ । ७ ॥ ११ । १ । ४ । ४ ॥
- ” तस्मादृत्विग्भ्य एव दक्षिणा दद्यान्नानुत्विग्भ्यः ।
श० ४ । ३ । ४ । ५ ॥
- ” अर्धा ह स्म वै पुरा ब्रह्मणे दक्षिणा नयन्तीति ।
अर्धा इतरेभ्य ऋत्विग्भ्यः । जै० उ० ३ । १७ । ५ ॥
- ” तस्मादात्रेयाय प्रथमदक्षिणा यज्ञे दीयन्ते । गो०
पू० २ । १७ ॥
- ” चतस्रो वै दक्षिणाः । हिरण्यं गौर्वासो ऽश्वः । श०
४ । ३ । ४ । ७ ॥
- ” अन्नं दक्षिणा । ऐ० ६ । ३ ॥
- ” दक्षिणा वै स्तावाः (अप्सरसः, यजु० १८ । ४२)
दक्षिणाभिर्हि यज्ञ स्तूयते ऽथो यो वै कश्च दक्षिणां
ददाति स्तूयतऽ एव सः । श० ६ । ४ । १ । ११ ॥
- ” दक्षिणाः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥
- ” दक्षिणासु त्वेव न संवदित^{२४} संवादेनैव^{२५} त्विजो
ऽलोका इति । श० ६ । ५ । २ । १६ ॥
- ” यन्माध्यन्दिने सवने दक्षिणा नीयन्ते स्वर्ग एतेन
लोके हिरण्यं हस्ते भवति । गो० उ० ३ । १७ ॥
- दक्षिणा दिक् पितृणां वा एषा दिग्यहक्षिणा । ष० ३ । १ ॥
- ” एषा वै (दक्षिणा) दिक् पितृणाम् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥
- ” दक्षिणासंस्थो वै पितृयज्ञः । कौ० ५ । ७ ॥ गो० उ० १ ।
२५ ॥

- दक्षिणा दिक् दक्षिणत उषसृजति । पितृलोकमेव तेन जयति । तै०
२ । १ । ८ । १ ॥
- „ मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु । श० ३।५।२।६॥
- „ बभ्वेनऽऽजद्विषेण (उद्रात्रा दीक्षामहा इति) पितरो
दक्षिणतः (आगच्छन्) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥
- „ घोरा वा एषा दिग्दक्षिणा शान्ता इतराः । गो० पू०
२ । १६ ॥
- „ किंदेवतो ऽस्या दक्षिणाया दिश्यसीति । यमदेवत इति ।
श० १४ । ६ । ६ । २२ ॥
- „ यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्गणः स्वाहा । श० ५ । २ ।
४ । ५ ॥
- „ अथैनं (इन्द्रं) दक्षिणस्यां दिशि रुद्रा देवाः.....अभ्य-
षिञ्चन्.....भौज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥
- „ रुद्रास्त्वा दक्षिणतो ऽभिषिञ्चन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा । तै०
२ । ७ । १५ । ५ ॥
- „ (वायुः) यहदक्षिणतो वाति । मातरिश्चैव भूत्वा दक्षिणतो
वाति । तै० २ । ३ । ६ । ५ ॥
- „ तस्मादेष (वायुः) दक्षिणैव भूयिष्ठं वाति । श० ८ ।
१ । १ । ७ ॥ ८ । ६ । १ । १७ ॥
- „ दक्षिणतो वासीशानो भूतो वासि । जै० उ० ३ । २१ । २ ॥
- „ तं (संज्ञतं पशुं) दक्षिणा दिग्ब्यानेत्यनुप्राणद्वयानमे-
वास्मिँस्तदधात् । श० ११ । ८ । ३ । ६ ॥
- „ दक्षिणा दिक् । इन्द्रो देवता । तै० ३ । ११ । ५ । १ ॥
- „ अथ दक्षिणं परिदधाति । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो
विश्वस्यारिष्टच (यजु० ११ । ३) । श० १ । ३ । ४ । ३ ॥
- „ अतो हीन्द्रस्तिष्ठन्दक्षिणतो नाष्ट्रा रक्षाऽस्यपाहन ।
श० १ । ४ । ५ । ३ ॥
- „ एतद्वै देवा अबिभयुर्यद्वै नो यज्ञं दक्षिणतो रक्षाऽसि
नाष्ट्रा न हन्युरिति । श० ७ । ४ । १ । ३७ ॥
- „ वृत्रशङ्कुं दक्षिणतो ऽघस्यैवानत्ययाय । श० १३।८।४।१॥

- दक्षिणा दिक् दक्षिणामेव दिशश्च सोमेन प्राजानन् । श० ३२।३।१७
 ,, स (सोमः) दक्षिणां दिशं प्राजानात् । कौ० ७।६ ॥
 ,, (हे देवा यूयं) अग्निना दक्षिणां (दिशं प्रजानाथ) । ऐ०
 १।७ ॥
 ,, दक्षिणा (दिक्) ब्रह्मणः । श० १३।५।४।२४ ॥
 ,, दक्षिणामारोह त्रिष्टुप्त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो
 ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् । श० ५।४।१।४ ॥
 ,, दक्षिणामाहुर्यजुषामपाराम् । तै० ३।१२।६।१ ॥
 ,, त्रिष्टुब्दक्षिणा (दिक्) । श० ८।३।१।१२ ॥
 ,, तस्मादेतस्यां (दक्षिणस्यां) दिश्येतौ पशू (गौश्चाजश्च)
 भूयिष्ठौ । श० ७।५।२।१६ ॥
 ,, दक्षिणैव (दिक्) सर्वम् । गो० पू० ५।१५ ॥
 ,, तस्मादेतस्यां दक्षिणस्यां दिशि ये केच सत्त्वतां राजानो
 भौज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते भोजेत्येनानभिषिक्तानाच-
 क्षते । ऐ० ८।१४ ॥
- दक्षिणाग्निः यजुर्वेदादक्षिणाग्निः (अजायत) । ष० ४।१ ॥
 ,, भ्रातृव्यदेवत्यो दक्षिणः (अग्निः) । तै० १।६।५।४ ॥
 दण्डः (दण्डः) मुखसंमितो भवति । श० ३।२।१।३४ ॥
 ,, वज्रो वै दण्डो विरक्तस्तायै । श० ३।२।१।३२ ॥
 ,, तस्मादिषुहतो वा दण्डहतो वा दशर्मा (रात्रि) नैर्दश्यं
 (=दुःखनिवृत्ति) गच्छति । तां० २२।१४।३ ॥
- दधि (इन्द्रः) यद्ब्रवीद्विनोति मेति तस्माद्दधि । श० १।६।४।८ ॥
 ,, ऐन्द्रं वै दधि । श० ७।४।१।४२ ॥
 ,, अथ यद्वनडुह्यै वहलायाऽ ऐन्द्रं दधि भवति स इन्द्रस्य चतुर्थो
 भागः । श० ५।२।४।१३ ॥
 ,, इन्द्रियं वै दधि । तै० २।१।५।६ ॥
 ,, इन्द्रियं वा एतदस्मिन् लोके यद्दधि । ऐ० ८।१६ ॥
 ,, दधि हैवास्य लोकस्य रूपम् । श० ७।५।१।३ ॥
 ,, अथ यदि दधि (आहरेत्) वैश्यानां स भक्षः । ऐ० ७।२६ ॥
 ,, ऊर्वा अन्नाद्यं दधि । तै० २।७।२।२ ॥

दधि सोमो वै दधि । कौ० ८ । ६ ॥

„ सरस्वत्यै दधि । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥

दधिक्रा (ऋक्) देवपवित्रं वै दधिक्रा । ऐ० ६ । ३६ ॥

„ अन्नं वै दधिक्रा । गो० ७० । ६ । १६ ॥

दध्यङ्ः इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कृतः । जघान नवतीर्नव ।
तै० १ । ५ । ८ । १ ॥

„ दध्यङ् वा अङ्गिरसो देवानां पुरोधानीय आसीत् । तां० १२ ।
८ । ६ ॥

„ (यजु० ११ । ३३) वाग्वै दध्यङ्ङाथर्वणः । श० ६ । ४ । २ । ३ ॥

दनायुः, दनुः अथ (वृत्रः) यदपात्समभवत्तस्मादहिस्तं दनुश्च दनायुश्च
मातेव च पितेव च परिजगृहतुस्तस्माद्दानव इत्याहुः ।
श० १ । ६ । ३ । ६ ॥

दन्ताः यस्मादधरे (दन्ताः) एवाग्रे जायन्ते ऽथोत्तरे यस्मादशीयांश्च-
स एवाधरे प्रथीयांश्च उत्तरे यस्माद्दृष्ट्रा वर्षीयांश्चो
यस्मात्समा एव जम्भ्याः । श० ११ । ४ । १ । ५ ॥

दन्दशुकाः नैते क्रिमयो नाक्रिमयो यद्दन्दशुकाः । श० ५ । ४ । १ । २ ॥

„ लोहिता इव हि दन्दशुकाः । श० ५ । ४ । १ । २ ॥

दर्भस्तम्बः अग्निवान् वै दर्भस्तम्बः । तै० २ । २ । १ । ५ ॥ ३ । ७ । ३ । ३ ॥

दर्माः उभयम्बेतदन्नं यद्दर्मा आपश्च होता ओषधयश्च या वै वृत्राद् बी-
भत्समाना आपो धन्व दृभन्त्य उदायंस्ते दर्मा अभवन्यदृभन्त्य-
उदायंस्तस्माद्दर्मास्ता हैताः शुद्धा मेध्या आपो वृत्राभिप्रक्षरिता
यद्दर्मा यद्दु दर्मास्तेनौषधयः । श० ७ । २ । ३ । २ ॥

„ ते (दर्माः) हि शुद्धा मेध्याः । श० ७ । ३ । २ । ३ ॥ ६ । २ ।
१ । १२ ॥

„ मेध्या वै दर्माः । श० ३ । १ । ३ । १८ ॥ ५ । २ । १ । ८ ॥

„ आपो दर्माः । श० २ । २ । ३ । ११ ॥

„ आपो वै दर्माः । तै० ३ । ३ । २ । १ ॥

„ अपां वा एतच्छेजो वर्चः । दद्दर्माः । तै० २ । ७ । ६ । ५ ॥

„ पवित्रं वै दर्माः । श० ३ । १ । ३ । १८ ॥ तै० १ । ३ । ७ । १ ॥
३ । ८ । २ । ३ ॥

दर्शपूर्णमासौ एष वै पूर्णमाः । य एष (सूर्यः) तपत्यहरहर्होवैष पूर्णो
ऽथैष एव दर्शो यच्चन्द्रमा ददश इव ह्येषः । अथोऽइत-
रथाहुः । एष एव पूर्णमा यच्चन्द्रमा एतस्य ह्यनु पूर्णं
पौर्णमासीत्याचक्षते ऽथैष एव दर्शो य एष (सूर्यः)
तपति ददश इव ह्येषः । श० ११ । २ । ४ । १-२ ॥

” सवृत(? समृत-)यज्ञो वा एष यद्दर्शपूर्णमासौ । गो०
उ० २ । २४ ॥

” दर्शपूर्णमासौ वा अश्वस्य मेध्यस्य पदे । तै० ३ । ९ ।
२३ । १ ॥

” स यो हैवं विद्वानग्निहोत्रं च जुहोति दर्शपूर्णमासान्यां
च यजते मासिं मासि हैवास्याश्वमेधेनेष्टं भवति । श०
११ । २ । ५ । ५ ॥

दविद्युतती दविद्युतती वै गायत्री । तां० १२ । १ । २ ॥

दशपेयः अथ यद्दशमे ऽह्नप्रसूतो भवति तस्माद्दशपेयो ऽथो यद्दश दशै-
कैकं चमसमनु प्रसूता भवन्ति तस्माद्धेव दशपेयः । श० ५ ।
४ । ५ । ३ ॥

दशममहः अथ यद्दशममहरुपयन्ति । संवत्सरमेव देवतां यजन्ते । श०
१२ । १ । ३ । २० ॥

” श्रीर्वै दशममहः । ऐ० ५ । २२ ॥

” मितमेतद्देवकर्म यद्दशममहः । कौ० २७ । १ ॥

” प्रतिष्ठा दशममहः । कौ० २७ । २ ॥ २६ । ५ ॥

” अन्तो वा एष यज्ञस्य यद्दशममहः । तै० २ । २ । ६ । १ ॥

दशरात्रः अथ यद्दशरात्रमुपयन्ति । विश्वानेव देवान्देवतां यजन्ते । श०
१२ । १ । ३ । १७ ॥

दश वीराः (यजु० १६ । ४८ ॥) प्राणा वै दश वीराः । श० १२ । ६ ।
१ । २२ ॥

दशहोता तस्मै (ब्रह्मणे) दशमं हृतः प्रत्यशृणोत् । स दशहृतो ऽभवत् ।
दशहृतो ह वै नामैषः । तं वा एतं दशहृतं सन्तं दशहोते-
त्याचक्षते परोक्षेण, परोक्षप्रिया इव हि देवाः । तै० २ । ३ ।
११ । १ ॥

- दशहोता वाचस्पतिर्होता दशहोतृणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥
- „ प्रजापतिर्वै दशहोतृणां होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥
- „ प्रजापतिर्वै दशहोता । तै० २ । २ । १ । १ ॥ २ । २ । ३ । २ ॥ २ । २ । ८ । ५ ॥ २ । २ । ६ । ३ ॥
- „ यज्ञो वै दशहोता । तै० २ । २ । १ । ६ ॥
- „ अग्निहोत्रं वै दशहोतुर्निदानम् । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥
- दशाहानि विराड् वा एषा समृद्धा यद्दशाहानि । तां० ४ । ८ । ६ ॥
- दस्युः त एते ऽन्धाः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मृतिबा इत्युदन्त्या बहवो
वैश्वामित्रा दस्यूनां भृगिष्ठाः । ऐ० ७ । १८ ॥
- दाक्षायण्यज्ञः (इष्टिः) दक्षो ह वै पार्वतिरेतेन यज्ञेनेष्ठा सर्वान् कामा-
नाप । कौ० ४ । ४ ॥
- „ स (प्रजापतिः) वै दक्षो नाम । तद्यदेनेन सो
ऽग्ने ऽयजत तस्माद्दाक्षायण्यज्ञो नामोतैमभेके
वसिष्ठयज्ञ इत्याचक्षते । श० २ । ४ । ४ । २ ॥
- दाता अग्निर्वै दाता स एवास्मै यज्ञं ददाति । कौ० ४ । २ ॥
- दारु कार्णायसेन दारु (संदध्यात्) । जै० ३० । ३ । १७ । ३ ॥
- „ दारु च चर्म च श्लेष्मणा (संदध्यात्) । जै० ३० । ३ । १७ । ३ ॥
- दारुपात्रम् अग्निवद्वै दारुपात्रम् । तै० ३ । २ । ३ । ८ ॥
- दावसुनिधनम् (साम) आशिषमेवास्मा एतेनाशास्ते । तां० १५ । ५ । १३ ॥
- दाशस्पत्यम् (साम) यां वै गां प्रश० सन्ति दशस्पत्येति तां प्रश०-
सन्त्वहरेवैतेन प्रश० सन्ति । तां० १३ । ५ । २७ ॥
- दाश्वान् (यजु० । १२ । १०६ ॥ १३ । ५२ ॥) यजमानो वै दाश्वान् ।
श० २ । ३ । ४ । ३८, ४० ॥
७ । ३ । १ । २६ ॥ ७ ।
५ । २ । ३६ ॥
- दिङ्निधनम् (देवाः) अन्तरिक्षं दिङ्निधनेन (अभ्यजयन्) । तां०
१० । १२ । ३ ॥
- दिद्यवः इषवो वै दिद्यवः । श० ५ । ४ । २ । २ ॥
- दिव ऊधः (यजु० १२ । २०) आपो दिव ऊधः । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥
- दिवा व्युष्टिर्वै दिवा, व्येवास्मै वासयति । तां० ८ । १ । १३ ॥

दिशः]

(२०६)

दिवाकीर्त्यम् (अहः) शिरो वै दिवाकीर्त्यम् । तां० २४।१४।४॥२५।१॥
दिवाकीर्त्यानि (सामानि) रश्मयो वै दिवाकीर्त्यानि । ऐ० ४ । १६ ॥ तै०

१ । २ । ४ । २ ॥

” रश्मयो वा एत आदित्यस्य यद्विवाकीर्त्यानि ।
तां० ४ । ६ । १३ ॥

” स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसाविध्यत्तस्य
देवा दिवाकीर्त्यैस्तमोपाग्नन् । तां० ४ । ६ । १३ ॥

दिवि श्रव उत्तमम् (यजु० १२ । ११३) चन्द्रमा वाऽ अस्य (सोमस्य)
दिवि श्रव उत्तमम् । श० ७ ।

३ । १ । ४६ ॥

दिवोऽर्णः (यजु० १२ । ४६) आपो वाऽ अस्य (अग्नेः) दिवोऽर्णः ।
श० ७ । १ । १ । २४ ॥

दिव्यं नभः आपो वै दिव्यं नभः । श० ३ । ८ । ५ । ३ ॥

दिव्यं रोचनम् असौ वाऽ आदित्यो दिव्यं रोचनम् । श० ६ । २ ।
१ । २६ ॥

दिव्यानि धामानि (यजु० ११ । ५) इमे वै लोका दिव्यानि धामानि ।
श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

दिव्यो गन्धर्वः (यजु० ११ । ७) असौ वाऽ आदित्यो दिव्यो गन्धर्वः ।
श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

दिव्यौ श्वानौ (कालकञ्जाख्यानामसुराणांमध्ये) द्वावुदपततां । तौ
दिव्यौ श्वानावभवताम् । (पश्यत-मैत्रायणीसंहितां १ ।
६ । ६ ॥ काठकसंहितां ८ । १ ॥) । तै० १ । १ । २ । ५-६ ॥

दिशः पञ्च वै दिशः । श० ५ । ४ । ४ । ६ ॥

” पञ्च वा इमा दिशश्चतस्रस्तिरश्च एकोर्ध्वा । ऐ० ६ । ३२ ॥

” तथा अमुष्मादादित्यादर्वाच्यः पञ्च दिशस्ता नाकसदः । श० ८ ।
६ । १ । १४ ॥

” याः (अमुष्मादादित्यात्) पराच्यः (पञ्च दिशः) ताः पञ्च
चूडाः । श० ८ । ६ । १ । १४ ॥

” सप्त दिशः । श० ६ । ५ । २ । ८ ॥

” दिशः सप्तहोत्राः (यजु० १३ । ५) । श० ७ । ४ । १ । २० ॥

- दिशः नव दिशः । श० ६ । ३ । १ । २१ ॥ ६ । ८ । २ । १० ॥
- „ दश दिशः । श० ६ । ३ । १ । २१ ॥ ८ । ४ । २ । १३ ॥
- „ दिशो वै स नाकः स्वर्गो लोकः । श० ८ । ६ । १ । ४ ॥
- „ स्वर्गो हि लोको दिशः । श० ८ । १ । २ । ४ ॥
- „ ता वाऽ एता देव्यः । दिशो ह्येताः । श० ९ । ५ । १ । ३६ ॥
- „ दिशो ऽग्निः । श० ६ । २ । २ । ३४ ॥ ६ । ३ । १ । २१ ॥ ६ । ८ । २ । १० ॥
- „ ' विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत्
(ध्रुवासि दिशो ऽसि ' - यजु० ११ । ५८) इति दिशो हैतद्यजु-
रेतद्वै विश्वे देवा वैश्वानरा एषु लोकेषु खायामेतेन चतुर्थेन
यजुषा दिशो ऽदधुः । श० ६ । ५ । २ । ६ ॥
- „ ता (दिशः) उ एव विश्वे देवाः । जै० उ० २ । २ । ४ ॥ २ । ११ । ५ ॥
- „ स (प्रजापतिः) विश्वान्देवानसृजत तान्दिक्षुपादधात् । श० ६ । १ । २ । ६ ॥
- „ वायुर्दिशां यथा गर्भः । श० १४ । ६ । ४ । २१ ॥
- „ दिशो लोकेष्टकाः । श० ७ । ३ । १ । १३, २७ ॥
- „ दिशो वै हरितः । श० २ । ५ । १ । ५ ॥
- „ दिशः शिष्यं दिग्भिर्हीमे लोकाः शक्नुवन्ति स्थातुं यच्छक्नु-
वन्ति तस्माच्छिष्यम् । श० ६ । ७ । १ । १६ ॥
- „ ऋतवो वै दिशः प्रजननः । गो० उ० ६ । १२ ॥
- „ दिशो मे श्रोत्रे श्रिताः । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥
- „ अथ यत्तच्छ्रोत्रमालीत्ता इमा दिशो ऽभवन् । जै० उ० २ । २ । ४ ॥
- „ तद्यत्तच्छ्रोत्रं दिशस्ताः । जै० उ० १ । २८ । ६ ॥
- „ यत्तच्छ्रोत्रं दिश एव तत् । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥
- „ श्रोत्रं दिशः । जै० उ० ३ । २ । ८ ॥
- „ दिशो वै श्रोत्रं दिशः परं रजः । श० ७ । ५ । २ । २० ॥
- „ दिशो वै लोहमय्यः (सूच्यः) । श० १३ । २ । १० । ३ ॥
- „ दिशो वा अयस्मय्यः (सूच्यः) । तै० ३ । ६ । ६ । ५ ॥

- दिशः अवान्तरदिशो रजताः (सूच्यः) । श० १३ । २ । १० । ३ ॥
- „ अवान्तरदिशा रजताः (सूच्यः) । तै० ३ । ६ । ६ । ५ ।
- „ दिशो वाऽ अस्य (सूर्यस्य) बुज्या उपमा विष्टाः (यजु० १३ । ३) । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥
- „ छन्दाऽऽसि वै दिशः । श० ८३ । १ । १२ ॥ ६ । ५ । १ । ३ ॥
- „ दिशो वै विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः (यजु० १५ । ४) ॥ श० ८ । ५ । २ । ४ ॥
- „ दिशो वै परिभूश्छन्दः (यजु० १५ । ४ ॥) । श० ८ । ५ । २ । ३ ॥
- „ दिशः परिधयः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥ ऐ० ५ । २८ ॥
- „ दिशः परिधानीया । जै० ३० । ३ । ४ । २ ॥
- „ दिशो वै प्राणः । जै० ३० । ४ । २२ । ११ ॥
- „ दिशः समानः । जै० ३० । ४ । २२ । ६ ॥
- „ दिशां वा पतत्साम यद्वैरूपम् । तां० १२ । ४ । ७ ॥
- „ अपरिमिता हि दिशः । श० ६ । ५ । २ । ७ ॥
- „ एतद्वे देवा इमाँल्लोकानुखां कृत्वा दिग्भिरदऽहन्दिग्भिः पर्य-
तन्वन् । श० ६ । ५ । २ । ११ ॥
- दीक्षा फाल्गुने दीक्षेरन् । तां० ५ । ६ । ७ ॥
- „ या वै दीक्षा सा निषत् । तत्सत्रं तस्मादेनानासदित्याहुः । श०
४ । ६ । ८ । १ ॥
- „ प्राणा दीक्षा । श० १३ । १ । ७ । २ ॥ तै० ३ । ८ । १० । २ ॥
- „ वाग्दीक्षा । तथा प्राणो दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ । ७ ॥
- „ वाग्दीक्षा । कौ० ७ । १ ॥
- „ आपो दीक्षा । तथा वरुणो राजा दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ ।
७ । ७ । ६ ॥
- „ दिशो दीक्षा । तथा चन्द्रमा दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ ।
७ । ६ ॥
- „ पृथिवी दीक्षा । तथाग्निर्दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ ।
४-५ ॥
- „ अन्तरिक्षं दीक्षा । तथा वायुर्दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ । ५ ॥

- दीक्षा धौर्दीक्षा । तथादित्यो दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ । ५ ॥
- „ ओषधयो दीक्षा । तथा सोमो राजा दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ । ६-७ ॥
- „ श्रुतं वाव दीक्षा सत्यं दीक्षा । ऐ० १ । ६ ॥
- „ सत्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठिता भवति । श० १४ । ६ । ६ । २४ ॥
- „ एतद्दीक्षायै (रूपं) यच्छ्रद्धा । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥
- „ तपो दीक्षा । श० ३ । ४ । ३ । २ ॥
- „ प्रजापतिरकामयताश्वमेधेन यजेयेति । स तपो ऽतप्यत । तस्य तेपानस्य । सत्तामनो देवता उदक्रामन् । सा दीक्षाभवत् । तै० ३ । ८ । १० । १ ॥
- „ दीक्षा सोमस्य राज्ञः पत्नी । गो० ३० । २ । ६ ॥
- दीक्षितः स वै धीक्षते । वाचे हि धीक्षते यज्ञाय हि धीक्षते यज्ञो हि वाग् धीक्षितो ह वै नामैतद्यद्दीक्षित इति । श० ३ । २ । २ । ३० ॥
- „ कस्य स्विक्षे तोर्दीक्षित इत्याचक्षते श्रेष्ठां धियं क्षियतीति । गो० पू० ३ । १६ ॥
- „ न ह वै दीक्षितो ऽग्निहोत्रं जुहुयान्न पौर्णमासेन यज्ञेन यजेत ... न मिथुनं चरेत्... कृष्णाजिनं वसीत कुरीरं धारयेन्मुष्टी कुर्यादकुष्ठप्रभृतयस्तिस्त्र उच्छ्रयेन्मृगशृङ्गं गृह्णीयात्तेन कषेत । गो० पू० ३ । २१ ॥
- „ अथ न दीक्षितः काष्ठेन वा नखेन वा कण्डूयेत । श० ३ । २ । १ । ३१ ॥
- „ तस्माद्दीक्षितः कृष्णविषाणयैव कण्डूयेत नान्येन कृष्णविषाणायाः । श० ३ । २ । १ । ३१ ॥
- „ नैनं (दीक्षितं) अन्यत्र चरन्तमभ्यस्तमियात् । न स्वपन्तमभ्युदियात् । श० ३ । २ । २ । २७ ॥
- „ अथ यद्दीक्षितः । अमृत्यं वा व्याहरति क्रुध्यति वा तन्मिथ्याकरोति । श० ३ । २ । २ । २४ ॥
- „ स यः सत्यं वदति स दीक्षितः । कौ० ७ । ३ ॥

- दीक्षितः अथ य एतमेतद्दीक्षयन्ति तद् द्वितीयस्मिन्प्रयते । वषन्ति
 केशशमश्रूणि । निकृन्तन्ति नखान् । प्रत्यञ्जन्यङ्गानि । प्रत्य-
 चत्यङ्गुलीः । अपवृतो ऽपवेष्टित आस्ते । न जुहोति । न
 यजते । न योषितं चरति । अमानुषीं वाचं वदति मृतस्य
 वावैष तदा रूपमभवति । जै० उ० ३ । ६ । ४ ॥
- ” यज्ञादु ह वा एष पुनर्जायते यो दीक्षते । ऐ० ७ । २२ ॥
- ” एवं वाऽ एष यज्ञं सम्भरति यो दीक्षते । श० ३ । २ ।
 २ । ३ ॥
- ” यदह दीक्षते तद्विष्णुर्भवति । श० ३ । २ । १ । १७ ॥
- ” उभयं वाऽ एषो ऽत्र भवति यो दीक्षते विष्णुश्च यजमानश्च ।
 श० ३ । २ । १ । १७ ॥
- ” यद्वै दीक्षन्ते । अग्नाविष्णु एव देवते यजन्ते । श० १२ । १ ।
 ३ । १ ॥
- ” अग्नीषोमौ वाऽ एतमन्तर्जम्भऽ आदधाते यो दीक्षते । श०
 ३ । ३ । ४ । २१ ॥ ३ । ६ । ३ । १६ ॥
- ” हविर्वाऽ एष देवानां यो दीक्षते तदेनमन्तर्जम्भऽ आदधाते
 तत्पशुनात्मानं निष्क्रीणीते । श० ३ । ३ । ४ । २१ ॥
- ” उद्रृष्णीते वाऽ एषो ऽस्माहोकादेवलोकमभि यो दीक्षते ।
 श० ३ । १ । ४ । १ ॥
- ” देवान्वाऽ एष उपोत्क्रामति यो दीक्षते । श० ३ । १ । १ । १ ॥
- ” देवान्वाऽ एष उपायर्तते यो दीक्षते स देवानामेको भवति ।
 श० ३ । १ । १ । ८, ९ ॥
- ” देवगर्भो वा एष यद्दीक्षितः । कौ० ७ । २ ॥
- ” गर्भो वा एष भवति यो दीक्षते छन्दांसि प्रविशति
 तस्मान्न्यक्राङ्गुलिरिव भवति । श० ३ । २ । १ । ६ ॥
- ” गर्भो (यज्ञस्य) दीक्षितः । श० ३ । १ । ३ । २८ ॥
- ” स (क्षत्रियः) ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणतामभ्युपैति । ऐ०
 ७ । २३ ॥
- ” तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव
 ब्रूयाद् ब्राह्मणो हि जायते वो यज्ञाज्जायते । श० ३ । १ । ४ ॥

दीक्षितः सिषासवो (=“लुब्धकामाः फलार्थिनः” इति सायणः) वा
एते यद्दीक्षिताः । ऐ० ६ । ७ ॥

„ दीक्षितस्यैव प्राचीनवत्शा (शाला) नादीक्षितस्य । श०
३ । १ । १ । ७ ॥

„ (अथर्व० ११ । ५ । ६ ॥) एष (आदित्यः) दीक्षितः । गो०
पू० २ । १ ॥

„ यो वै दीक्षितानां पापं कीर्त्तयति तृतीयं (अंशम्) एषां
स पाप्मनो हरत्यन्नादस्तृतीयं पिपीलिकास्तृतीयम् । तां०
५ । ६ । १० ॥

दीप्यमानः (अ० ३ । २७ । १५) चक्षुर्वै दीप्येव । श० १ । ४ । ३ । ७ ॥
दीप्यमानः “वि पाजसा पृथुना शोशुचानः” (यजु० ११ । ४६) इति ।

वि पाजसा पृथुना दीप्यमान इत्येतत् (शोशुचानः=दीप्य-
मानः) । श० ६ । ४ । ४ । २२ ॥

दीर्घम् (साम) आयुर्वै दीर्घम् । तां० १३ । ११ । १२ ॥

दीर्घमशुः (अथर्व० ११ । ५ । ६) एष (आदित्यः) दीर्घमशुः । गो०
पू० २ । १ ॥

दुन्दुभिः परमा वा एषा वाग्या दुन्दुभौ । तै० १ । ३ । ६ । २-३ ॥

„ एषा वै परमा वाग्या सप्तदशानां दुन्दुभीनाम् । श० ५ । १ ।
५ । ६ ॥

दुरः वृष्टिर्वै दुरः । ऐ० २ । ४ ॥

दुराध्यः ये वै स्तेना रिपवस्ते दुराध्यः । तां० ४ । ७ । ५ ॥

दुरोणसत् (यजु० १२ । १४) दुरोणसदिति विषमसदित्येतत् । श०
६ । ७ । ३ । ११ ॥

दुर्याः गृहा वै दुर्याः । ऐ० १ । १३ ॥ श० १ । १ । २ । २२ ॥ ३ । ३ ।
४ । ३० ॥

दुवस्यत (यजु० १२ । ३०) समिधाग्निं दुवस्यतेति । समिधाग्निं नम-
स्यतेत्येतत् । श० ६ । ८ । १ । ६ ॥

दुश्चरितम् वृजिनमनृतं दुश्चरितम् । तै० ३ । ३ । ७ । १० ॥

दुष्टरः दुष्टरस्तरन्नरातीरिति दुस्तरौ ह्येष रत्नोभिर्नाष्ट्राभिः । श० ५ ।
२ । ४ । १६ ॥

[देवता

(२१२)

दूरोहः असौ वै दूरोहो यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । ऐ० ४ । २० ॥

दूरोहणम् (यजु० १५ । ५) असौ वाऽ आदित्यो दूरोहणं छन्दः । श०

८ । ५ । २ । ६ ॥

„ स्वर्गो वै लोको दूरोहणम् । ऐ० ४ ।

२०, २१ ॥

दूर्वा स (प्रजापतिः) अब्रवीत् । अयं (प्राणः) याव माधूर्वीदिति यद्-
ब्रवीदधूर्वीन्मेति तस्माद् धूर्वा, धूर्वा ह वै तां दूर्वेत्याचक्षते
परोऽक्षम् । श० ७ । ४ । २ । १२ ॥

„ क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद् दूर्वा । ऐ० ८ । ८ ॥

„ तदेतत्क्षत्रं प्राणो ह्येष रसो (यद् दूर्वा) लोमान्यन्या ओषधयः,
पतां (दूर्वा) उपदधत्सर्वा ओषधीरुपदधाति । श० ७ । ४ ।
२ । १२ ॥

दूर्वेष्टका प्राणो दूर्वेष्टका । श० ७ । ४ । २ । २० ॥

„ पशवो वै दूर्वेष्टका । श० ७ । ४ । २ । १०, १६ ॥

दृवा (इषुः) स यया प्रथमया (इष्वा) समर्पणेन पराभिनन्ति सैका सेयं
पृथिवी सैषा दृवा नाम । श० ५ । ३ । ५ । २६ ॥

दृशानः (यजु० ११ । २३) व्यच्छिष्टमन्नैरभसं दृशानमित्यवकाशवन्त-
मन्नैरन्नादं दीप्यमानमित्येतत् । श० ६ ।
३ । ३ । १६ ॥

दृषदुपले हनू एव दृषदुपले । श० १ । २ । १ । १७ ॥

देवक्षेत्रम् देवक्षेत्रं वा एते ऽभ्यारोहन्ति ये स्वर्गिधनमुपयन्ति । तां०
५ । ७ । ८ ॥

देवता यां वै देवतामृगभ्यनूक्ता यां यजुः सैव देवता सक्सो देवता
तद्यजुः । श० ६ । ५ । १ । २ ॥ ७ । ५ । १ । ४ ॥

„ त्रयस्त्रिंशद् देवताः । तां० ४ । ४ । १२ ॥

„ अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या
देवताः । ऐ० १ । १ ॥

„ आपो वै सर्वा देवताः । ऐ० २ । १६ ॥ कौ० ११ । ४ ॥ तै०
३ । २ । ४ । ३ ॥ ३ । ३ । ४ । ५ ॥ ३ । ७ । ३ । ४ ॥ ३ । ६ ।
७ । ५ ॥

देवता अथो खल्व्वाहुर्ग्रस्यै वाव कस्यै च देवतायै पशुरालभ्यते सैव मेधपतिरिति । ऐ० २ । ६ ॥

„ देवतैव मेधपतिरिति । कौ० १० । ४ ॥ “देवाः” शब्दमपि पश्यत ।

देवपात्रम् देवपात्रं वाऽ एष यदग्निः । श० १ । ४ । २ । १३ ॥

„ देवपात्रं द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । ७ ॥

„ देवपात्रं वै वषट्कारः । गो० उ० ३ । १ ॥

„ देवपात्रं वा एतद्यज्ञवषट्कारः । ऐ० ३ । ५ ॥

„ देवपात्रं वाऽ एष यद्वषट्कारः । श० १ । ७ । २ । १३ ॥

देवयजनम् भौमं देवयजनम् । गो० पू० २ । १४ ॥

„ देवयजनं वै वरं पृथिव्यै । ऐ० १ । १३ ॥

„ ऋत्विजो देवयजनम् । गो० पू० २ । १४ ॥

„ श्रद्धा देवयजनम् । गो० पू० २ । १४ ॥

„ आत्मा देवयजनम् । गो० पू० २ । १४ ॥

देवयानः देवयाना वै ज्योतिष्मन्तः पन्थानः । ऐ० ३ । ३८ ॥

„ त्रयो वै देवयाना पन्थानः । गो० उ० १ । १ ॥

„ ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा चावापृथिवी वियन्ति । मं० २ । १ । १० ॥

„ यमाहुर्ग्रस्यैः पन्था इत्येष वाव देवयानः पन्थाः । तां० २५ । १२ । ३ ॥

देवयोनिः अग्निर्वै देवयोनिः । ऐ० १ । २२ । २ । ३ ॥

देवरथः इयं (पृथिवी) वै देवरथः । तां० ७ । ७ । १४ ॥

„ देवरथो वै रथन्तरम् । तां० ७ । ७ । १३ ॥

„ देवरथो वा एष यद्यज्ञः । कौ० ७ । ७ ॥ ऐ० २ । ३७ ॥

„ देवरथो वा अग्नयः । कौ० ६ । १० ॥

देवरातः (=शुनःशेषः) नेति होवाच विश्वामित्रो देवा वा इमं महाम-
रासतेति स ह देवरातो वैश्वामित्र आस । ऐ०
७ । १७ ॥

देवलोकः त्रयो वै देवलोकाः । गो० उ० १ । १ ॥

„ सप्त वै देवलोकाः । ऐ० २ । १७ ॥

„ सप्त देवलोकाः । श० ६ । ५ । २ । ८ ॥

देवलोकः चतस्रो दिशश्चय इमे लोका एते वै सप्त देवलोकाः । श०
१० । २ । ४ । ४ ।

” एकविंशतिर्वै देवलोकाः । द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवः । अथ
इमे लोकाः । असावदित्य एकविंशः । तै० ३ । ८ । १० ।
३ ॥ ३ । ८ । ७ । २ ॥ ३ । ८ । २० । २ ॥

” वेदिवै देवलोकः । श० ८ । ६ । ३ । ६ ॥

” देवलोको वा एष यद्विषुवान् । तां० ४ । ६ । २ ॥

” उत्तरो वै देवलोकः । श० १२ । ७ । ३ । ७ ॥

” देवलोको वा इन्द्रः । कौ० १६ । ८ ॥

” देवलोको वा आदित्यः । कौ० ५ । ७ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

” आदित्य एव देवलोकः । जै० उ० ३ । १३ । १२ ॥

” विद्यया देवलोकः (जय्यः) । श० १४ । ४ । ३ । २४ ॥

देववर्मं देववर्मं वा एतद्यत्प्रयाजाश्चानुयाजाश्च । ऐ० १ । २६ ॥

देववाहनः (ऋ० ३ । २७ । १४) मनो वै देववाहनं मनो हीदं मनस्विनं
भूयिष्ठं वनोवाहते । श० १ । ४ । ३ । ६ ॥

देवविशः मरुतो ह वै देवविशोऽन्तरिक्षभाजना ईश्वराः । कौ० ७ । ४ ॥

देवसत्यम् एतद्वै देवसत्यं यच्चन्द्रमाः । कौ० ३ । १ ॥

देवसंस्फानः आदित्यो वै देवसंस्फानः । गो० उ० ४ । ६ ॥

देवसवः यो वै सोमेन सूयते । स देवसवः । यः पशुना सूयते स
देवसवः । तै० २ । ७ । ५ । १ ॥

देवसुरभीणि अग्निर्वै देवानां हौत्रमुपैष्यन्शरीरमधूनुत तस्य यन्मा-
समासीत्तद् गुग्गुल्वभवद्यत् क्षाव तत्सुगन्धितेजनं (=मृण
विशेष इति सायणः) यदस्थि तत् पोतुदावैतानि वै
देवसुरभीणि । तां० २४ । १३ । ५ ॥

देवसूः एता ह वै देवताः सवस्येशते । तस्माद्देवस्वो नाम तदेनमेता
एष देवताः सुवते ताभिः सूतः श्वः सूयते । श० ५ । ३ ।
३ । १३ ॥

देवसोमम् एतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमाः । ऐ० ७ । ११ ॥

देवस्थानम् (साम) षरुणाय देवता राज्याय नातिष्ठन्त स एतद्देवस्था-
नमपश्यत्ततो वै तास्तस्मै । राज्यायातिष्ठन्त तिष्ठन्ते

- ऽस्मै समानाः श्रैष्ठ्याय । क्षत्रस्येवास्य प्रकाशो
भवति य एवं वेद । तां० १५ । ३ । ३०-३१ ॥
- देवस्थानम् (साम) देवस्थानेन वै देवाः स्वर्गे लोके प्रत्यतिष्ठन् । तां०
१५ । ३ । २६ ॥
- „ देवस्थानं भवति प्रतिष्ठायै । तां० १५ । ३ । २८ ॥
- देवा अपाव्याः प्राणा वै देवा अपाव्याः । तै० ३ । ८ । १७ । ५ ॥
- देवा अभिधवः मासा देवा अभिधवः । गो० पू० ५ । २३ ॥
- देवा आज्यपाः प्रयाजानुयाजा वै देवा आज्यपाः । श० १ । ४ । २ ।
१७ ॥ १ । ७ । ३ । ११ ॥
- देवा आशापालाः शतं वै तल्प्या राजपुत्रा देवा आशापालाः । तै० ३ ।
८ । ६ । ३ ॥
- देवाः दिवा वै नोऽभूदिति । तद् देवानां देवत्वम् । तै० २ । २ । ६ । ६ ॥
- „ दिवा देवानसृजत नक्तमसुरान् यद्दिवा देवानसृजत तद् देवानां
देवत्वम् । ष० ४ । १ ॥
- „ तस्मै मनुष्यान्ससृजानाय (प्रजापतये) दिवा (=दिवसः)
देवत्रा (=द्योतनशील इति सायणः) अभवत् । तदनु देवान-
सृजत । तद् देवानां देवत्वम् । तै० २ । ३ । ८ । ३ ॥
- „ तद् देवानां देवत्वं यद् दिवमभिपद्यासृज्यन्त । श० ११ । १ ।
६ । ७ ॥
- „ तद्वेव देवानां देवत्वं यदस्मै ससृजानाय दिवेवास । श० ११ ।
१ । ६ । ७ ॥
- „ मर्त्या ह वाऽअग्रे देवा आसुः । स यदैव ते संवत्सरमापुरथा-
मृता आसुः । श० ११ । १ । २ । १२ ॥
- „ मर्त्या ह वाऽअग्रे देवा आसुः । स यदैव ते ब्रह्मणापुरथामृता
आसुः । श० ११ । २ । ३ । ६ ॥
- „ (यथा वै मनुष्या एवं देवा अग्र आसन्.....त एतं चतुर्विंश-
शतिराग्रमपश्यन्त आहरन्तेनायजन्त ततो वै तेऽवर्तिं पाप्मानं
मृत्युमपहत्य दैवींश्च स०सदमगच्छन्—तैत्तिरीयसंहितायाम्
७ । ४ । २ । १ ॥)
- „ पतेन वै (अष्टरात्रेण) देवा देवत्वमगच्छन् । देवत्वं गच्छति य
एवं वेद । तां० ६२ । ११ । २-३ ॥

[देवाः

(२१६)

- देवाः उभये ह वाऽ इदमग्रे सहासुर्देवाश्च मनुष्याश्च । श० २ । ३ ।
४ । ४ ॥
- „ उभयम्बैतत् प्रजापतिर्यश्च देवा यश्च मनुष्याः । श० ६ । ८ ।
१ । ४ ॥
- „ प्राचीनप्रजनना वै देवाः प्रतीचीनप्रजनना मनुष्याः । श० ७ ।
४ । २ । ४० ॥
- „ प्राची हि देवानां दिक् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥
- „ देवानां वा एषा दिग्यत्प्राची । ष० ३ । १ ॥
- „ यद्वै मनुष्याणां प्रत्यक्षन्तद् देवानां परोक्षमथ यन्मनुष्याणां
परोक्षन्तद् देवानां प्रत्यक्षम् । तां २२ । १० । ३ ॥
- „ तस्मै (चन्द्रमसे) ह स्म पूर्वाह्णे देवा अशनममिहरन्ति मध्य-
न्दिने मनुष्याऽ अपराह्णे पितरः । श० १ । ६ । ३ । १२ ॥
- „ द्राघीयो हि देवायुषश्च हसीयां मनुष्यायुषम् । श० ७ । ३ ।
१ । १० ॥
- „ देवानां वै विधामनु मनुष्याः । श० ६ । ७ । ४ । ६ ॥ ९ । १ ।
१ । १६ ॥
- „ स (सूर्यः) यत्रोदङ्ङावर्त्तते । देवेषु तर्हि भवति देवांस्तर्ह्यभि-
गोपायत्यथ यत्र दक्षिणावर्त्तते पितृषु तर्हि भवति पितृंस्तर्ह्य-
भिगोपायति । श० २ । १ । ३ । ३ ॥
- „ देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्द्वयाः पुत्रा आसन् । तां १८ ।
१ । २ ॥
- „ उभये वा एते प्रजापतेरध्यसृजन्त । देवाश्चासुराश्च । तै० ६ ।
४ । १ । १ ॥
- „ सः (प्रजापतिः).....अकामयत प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत ।
सोऽन्तर्वानभवत् । स जघनादसुरानसृजत.....स मुखाद्देवान-
सृजत । तै० २ । २ । ६ । ५-८ ॥
- „ सः (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत.....तस्मै ससृजानाय
दिवेवास । अथ योऽयमवाङ् प्राणः, तेनासुरानसृजत ।
.....तस्मै ससृजानाय तम इवास । श० ११ । १ । ६ । ७-८ ॥
- „ (प्रजापतेः) कनीयाष्पसः (पुत्राः) देवाः । तां १८ । १ । २ ॥

- देवाः कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः । श० १४ । ४ ।
१ । १ ॥
- „ कनीयस्विन इव वै तर्हि (युद्धसमये) देवा आसन् भूयस्विनो
ऽसुराः । तां० १२ । १३ । ३१ ॥
- „ ते देवाश्चक्रमचरञ्छालम् (=चक्रव्यतिरिक्तं साधनमिति सायणः,
तत्साधनाः) असुरा आसन् । श० ६ । ८ । १ । १ ॥
- „ एकाक्षरं वै देवानामवमं छन्द आसीत्सप्ताक्षरं परमन्त्रवाक्षरम
सुराणामवमं छन्द आसीत् पञ्चदशाक्षरं परमम् । तां० १२ ।
१३ । ३७ ॥
- „ उत्तरावर्तो वै देवा आहुतिमजुहवुः । अवाचोमसुराः । तै० २ ।
१ । ४ । १ ॥
- „ देवानां वै यज्ञश्चरत्ता ३ स्यजिघांसन् । तां० १४।१२।७ ॥
- „ त्रया वै देवाः । वसवो रुद्रा आदित्याः । श० ४ । ३ । ५ । १ ॥
- „ एते वै त्रया देवा यद्वसवो रुद्रा आदित्याः । श० १ । ३ । ४ ।
१२ ॥ १ । ५ । १ । १७ ॥ १ । ८ । ३ । ८ ॥
- „ कतमे ते त्रयो देवा इति । इमऽ एव त्रयो लोका एषु हीमे
सर्वे देवा इति कतमौ ष द्वौ देवावित्यन्नं चैव प्राणश्चेति
कतमो ऽध्यर्ध इति यो ऽयं पवत इति कतम एको देव इति
प्राण इति । श० ११ । ६ । ३ । १० ॥
- „ (=देवताः) त्रयस्त्रिंशद् देवताः । तां० ४ । ४ । ११ ॥
- „ त्रयस्त्रिंशद्देवताः । तै० १ । २ । २ । ५ ॥ १ । ८ । ७ ।
१ ॥ २ । ७ । १ । ३-४ ॥
- „ त्रयस्त्रिंशद्दे सर्वा देवताः । कौ० ८ । ६ ॥
- „ त्रयस्त्रिंशद्दे देवाः प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशः । श० १२।६।१३७ ॥
- „ त्रयस्त्रिंशद् देवताः प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशः । तां० १० । १ ।
१६ ॥ १२ । १३ । २४ ॥
- „ अष्टौ वसवः । एकादश रुद्रा द्वादशादित्या इमेऽ एव द्यावा-
पृथिवी त्र्यस्त्रिंशद्यौ त्रयस्त्रिंशद्दे देवाः प्रजापतिश्चतु-
स्त्रिंशः । श० ४ । ५ । ७ । २ ॥
- „ देवता द्वाव त्रयस्त्रिंशो ऽष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशा-

- दित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च । तां० ६ । १ । ५ ॥
- देवाः (त्रयस्त्रिंशत्—) अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्याः
प्रजापतिश्च वषट्कारश्च । ऐ० २ । १८, ३७ ॥ ३ । २२ ॥
- „ अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या वाग्नात्रिंशी स्वरस्त्रय-
स्त्रिंशस्त्रयस्त्रिंशद् देवाः । गो० उ० २ । १३ ॥
- „ त्रयस्त्रिंशद्वै देवाः सोमपास्त्रयस्त्रिंशदसोमपा अष्टौ वसव एका-
दश रुद्रा द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्चैते देवाः
सोमपा एकादश प्रयाजा एकादशानुयाजा एकादशोपयाजा एते
ऽसोमपाः पशुभाजनाः । ऐ० २ । १८ ॥
- „ त्रयस्त्रिंशद्वै सोमपा देवता याः सोमाहुतीरन्वायत्ता अष्टौ वसव
एकादश रुद्रा द्वादशादित्या इन्द्रो द्वात्रिंशः प्रजापतिस्त्रयस्त्रि-
शस्त्रयस्त्रिंशत्पशुभाजनाः । कौ० १२ । ६ ॥
- „ कतमे ते (देवाः) त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा
द्वादशादित्यास्तऽ एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च । श०
११ । ६ । ३ । ५ ॥
- „ कतमे ते (देवाः) त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रेति ॥
स (याज्ञवल्क्यः) होवाच । महिमान एवैषां (देवानां) एते
त्रयस्त्रिंशत्स्वेव देवा इति । श० ११ । ६ । ३ । ४-५ ॥
- „ पञ्चधा वै देवा व्युत्क्रामन् अग्निर्वैसुभिः, सोमो रुद्रैः, इन्द्रो
मरुद्भिः, वरुण आदित्यैः, बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः । गो० उ० २ । २१ ॥
- „ तस्य वाऽ एतस्य वाससः । अग्नेः पर्यासो भवति वायोरनुष्ठादो
नीविः पितृणां सर्पाणां प्रघातो विश्वेषां देवानां तन्तव
आरोका नक्षत्राणामेव हि वाऽ एतत्सर्वे देवा अन्वायत्ताः ।
श० ३ । १ । २ । १८ ॥
- „ अग्निर्वायुरादित्य एतानि ह तानि देवानां हृदयानि (यजु०
१६ । ४६) । श० ६ । १ । १ । २३ ॥
- „ अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तेरण सर्वा अन्या
देवताः । ऐ० १ । १ ॥
- „ तद्यदेतस्मिन्नाके स्वर्गे लोके देवा असीदंस्तस्माद्देवा नाकसदः ।
श० ८ । ६ । १ । १ ॥

- देवाः द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम् । श० १४ । ३ । २ । ८ ॥
- ” पृथिवी वै सर्वेषां देवानामायतनम् । श० १४ । ३ । २ । ४ ॥
- ” देवगृहा वै नक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ६ ॥
- ” नरो वै देवानां ग्रामः । तां० ६ । ६ । २ ॥
- ” स यदेव यजेत । तेन देवेभ्य ऋणं जायते तद्धयेभ्य एतत्करोति
यदेनान्यजते यदेभ्यो जुहोति । श० १ । ७ । २ । २ ॥
- ” देवा यज्ञियाः । श० १ । ५ । २ । ३ ॥
- ” दिवं तृतीयं देवान्यज्ञो ऽगात् । ऐ० ७ । ५ ॥
- ” यज्ञ उ देवानामात्मा । श० ८ । ६ । १ । १० ॥
- ” यज्ञो वै देवानामात्मा । श० ६ । ३ । २ । ७ ॥
- ” सर्वेषां वाऽएष भूतानां सर्वेषां देवानामात्मा यद्यज्ञः । श०
१४ । ३ । २ । १ ॥
- ” एतद्वै देवानामपराजितमायतनं यद्यज्ञः । तै० ३ । ३ । ७ । ७ ॥
- ” यज्ञ उ देवानामन्नम् । श० ८ । १ । २ । १० ॥
- ” ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदन्
(प्रजापतिः) तान् (देवान्) अब्रवीद् यज्ञो वो ऽन्नममृतत्वं
व ऊर्ध्वः सूर्यो वो ज्योतिरिति । श० २ । ४ । २ । १ ॥
- ” किं नु ते ऽस्मासु (देवेषु) इति । अमृतमिति । जै० उ० ३ ।
२६ । ८ ॥
- ” ऊर्गिति देवाः (उपासते) । श० १० । ६ । २ । २० ॥
- ” साम देवानामन्नम् । तां० ६ । ४ । १३ ॥
- ” एतद्वै देवानां परममन्नं यत्सोमः । एतन्मनुष्याणां यत्सुरा ।
तै० १ । ३ । ३ । २-३ ॥
- ” एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चद्रमाः । श० १ । ६ । ४ ।
५ ॥ २ । ४ । २ । ७ ॥ ११ । १ । ४ । ४ ॥
- ” हविर्वै देवानां सोमः । श० ३ । ५ । ३ । २ ॥
- ” एतद्वै देवानां परममन्नं यन्नीवाराः । तै० १ । ३ । ६ । ८ ॥
- ” इतः (हविः-) प्रदानाद्धि देवा उपजीवन्ति । श० १ । २ ।
५ । २४ ॥
- ” उभये देवमनुष्याः पशुनपजीवन्ति । श० ६ । ४ । ४ । २२ ॥

देवाः]

(२१०)

- देवाः तस्यै (वाचे) द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च
वषट्कारं च । श० १४ । ८ । ६ । १ ॥
- १० जीवं वै देवानां हविरमृतममृतानाम् । श० १ । २ । १ । २० ॥
- ११ एकं वा एतद्देवानामहः यत्संवत्सरः । तै० ३ । ६ । २२ । १ ॥
- १२ संवत्सरो वै देवानां गृहपतिः । तां० १० । ३ । ६ ॥
- १३ संवत्सरो वै देवानां जन्म । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥
- १४ संवत्सरः खलु वै देवानां पूः । तै० १ । ७ । ७ । ५ ॥
- १५ स (अयास्य आङ्गिरसः) प्राणेन देवान् देवलोके ऽदधात् ।
जै० ३० । २ । ८ । ३ ॥
- १६ प्राणेन वै देवा अभ्रमदन्ति । अभ्रिर्देवानां प्राणः । श० १० ।
१ । ४ । १२ ॥
- १७ न ह वा अनार्षेयस्य देवा हविरभ्रन्ति । कौ० ३ । २ ॥
- १८ न हि देवा अहुतस्याभ्रन्ति । तै० १ । ६ । ६ । ४ ॥
- १९ न ह वा अव्रतस्य देवा हविरभ्रन्ति । ऐ० ७ । ११ ॥ कौ०
३ । १ ॥
- २० सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा । श० १४ । ३ । २ । ६ ॥
- २१ यज्ञो वै स्वः (यजु० १ । ११) अहर्देवाः सूर्यः । श० १ । १ ।
२ । २१ ॥
- २२ देवा वै स्वः । श० १ । ६ । ३ । १४ ॥
- २३ अहरेव देवाः । श० २ । १ । ३ । १ ॥
- २४ अहर्वै देवा अश्रयन्त रात्रीमसुराः । ऐ० ४ । ५ ॥
- २५ अहर्वै देवा अश्रयन्त रात्रीमसुराः । गो० ३० । ५ । १ ॥
- २६ देवा वै नृचक्षसः (यजु० १४ । २४ ॥) । श० ८ । ४ । २ । ५ ॥
- २७ गातुविदो हि देवाः । श० ४ । ४ । ४ । १३ ॥
- २८ देवानां वा एतद्यज्ञियं गुह्यं नाम यच्चतुर्होतारः । ऐ० ५ । २३ ॥
- २९ युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस इति युञ्जन्तु त्वा देवा इत्येवैतदाह
(मरुतः=देवाः-अमरकोषे ३ । ३ । ५८) । श० ५ । १ । ४ । ६ ॥
- ३० देवा महिमानः (यजु० ३१ । १६) । श० १० । २ । २ । २ ॥
- ३१ अमृता देवाः । श० २ । १ । ३ । ४ ॥
- ३२ देवा वै मृत्योरविभयुस्ते प्रजापतिमुपाधाव्स्तेभ्य एतेन

- नवरात्रेणामृतत्वं प्रायच्छत् । तां० २२ । १२ । १ ॥
- देवाः देवा वै सर्पाः । तेषामियं (पृथिवी) राक्षी । तै० २ । २ । ६ । २ ॥
- „ विप्रा विप्रस्य (यजु० ११ । ४) इति प्रजापतिर्वै विप्रो देवा विप्राः । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥
- „ स ह स न मनुष्यो य एवंविदेवानां ह वै स एकः । श० १० । ३ । ५ । १३ ॥
- „ अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणाः । ष० १ । १ ॥
- „ एते वै देवा अहुतादो यद् ब्राह्मणाः । गो० उ० १ । ६ ॥
- „ ब्राह्मणो वै सर्वा देवताः । तै० १ । ४ । ४ । २, ४ ॥
- „ आहुतिभिरेव देवान्प्रीणाति दक्षिणाभिर्मनुष्यदेवान्ब्राह्मणांस्तु-
श्रुवुषो ऽनूचानान् । श० २ । २ । २ । ६ ॥
- „ इया वै देवाः । अहैव देवा अथ ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसो
ऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः । श० २ । २ । २ । ६ ॥ ४ । ३ । ४ । ४ ॥
- „ विद्वांसो हि देवाः (देवः=सुरः=विबुधः-अमरकोषे १ । १ ।
७ ॥ विबुधः=पण्डितः-वैजयन्तीकोषे त्रयक्षरकाण्डे पुंलिङ्गाध्याये
श्लो० ६६ ॥ मेदिनीकोषे धान्तवर्गे श्लो० ३६ ॥) । श० ३ । ७ ।
३ । १० ॥
- „ धर्म इन्द्रो राजेत्याह तस्य देवा विशस्तऽ इमऽ आसत इति
श्रोत्रिया अप्रतिग्राहका उपसमेता भवन्ति तानुपदिशति
सामानि वेदः सो ऽयमिति (अयमेव भावः-शाङ्खायनश्रौतसूत्रे
१६ । २ । २८-३० ॥ आश्वलायनश्रौतसूत्रे १० । ७ । ६ ॥) । श०
१३ । ४ । ३ । १४ ॥
- „ (यजु० १२ । ७५) ऋतवो वै देवाः । श० ७ । २ । ४ । २६ ॥
- „ वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः । ते देवा ऋतवः । श० २ । १ । ३ । १ ॥
- „ तस्मात्प्राणा देवाः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥
- „ प्राणा देवाः । श० ६ । ३ । १ । १५ ॥
- „ चक्षुर्देवः । गो० पू० २ । १० (११) ॥
- „ मनो देवः । गो० पू० २ । १० ॥
- „ मनो वै देववाहनं मनो हीदं मनस्विनं भूथिष्ठं वनीवाहते ।
श० १ । ४ । ३ । ६

[देवाः

(२२२)

- देवाः वाक् च वै मनश्च देवानां मिथुनम् । ऐ० ५ । २३ ॥
- ॥ वागेव देवाः । श० १४ । ४ । ३ । १३ ॥
- ॥ वाग्देवः । गो० पू० २ । १० ॥
- ॥ वाग्वै देवानां पुरात्रमास । तै० १ । ३ । ५ । १ ॥
- ॥ वागिति सर्वे देवाः । जै० उ० १ । ६ । २ ॥
- ॥ वायुर्वै देवः । जै० उ० ३ । ४ । ८ ॥
- ॥ सा या पूर्वाहुतिः । ते देवाः । श० २ । ३ । २ । १६ ॥
- ॥ अहः पूर्वाह्नि देवाः । श० २ । १ । ३ । १ ॥
- ॥ तस्मै (वृत्राय) ह स्म पूर्वाह्नि देवाः । अशनमभिहरन्ति । श० १ । ६ । ३ । १२ ॥
- ॥ य एवापूर्यते ऽर्धमासः स देवाः । श० २ । १ । ३ । १ ॥
- ॥ य एवापूर्यते तं (अर्धमासं) देवा उपायन् । श० १ । ७ । २ । २२ ॥
- ॥ अर्धमासे देवा इज्यन्ते । तै० १ । ४ । ६ । १ ॥
- ॥ देवाश्च वाऽऽसुराश्च । उभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितुर्दाय-
मुपेयुरेतावेवार्धमासौ (शुक्रकृष्णपक्षौ) । श० १ । ७ । २ । २२ ॥
- ॥ यशो देवाः । श० २ । १ । ४ । ६ ॥
- ॥ तस्माद् (देवाः) यशः । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥
- ॥ देवा वै यशस्कामाः सत्रमासत । तां ७ । ५ । ६ ॥
- ॥ ते (देवाः) आसत । श्रियं गच्छेम यशः स्यामान्नादाः
स्यामेति । श० १४ । १ । १ । ३ ॥
- ॥ श्रीर्देवाः । श० २ । १ । ४ । ६ ॥
- ॥ सर्वे वै देवास्त्वधिमन्तो हरस्विनः । तै० ३ । ८ । ७ । ३ ॥
- ॥ तिर इव वै देवा मनुष्येभ्यः । श० ३ । १ । १ । ८ ॥ ३ । ३ ।
४ । ६ ॥
- ॥ परोऽक्षं वै देवाः । श० ३ । १ । ३ । २५ ॥
- ॥ परोऽक्षकामा हि देवाः । श० ६ । १ । १ । २ ॥ ७ । ४ । १ । १० ॥
- ॥ परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः । गो० पू० २ । २१ ॥
- ॥ यदु ह किं च देवाः कुर्वते स्तोमेनैव तत्कुर्वते यद्वा वै स्तोमो
यद्मेनैव तत्कुर्वते । श० ८ । ४ । ३ । २ ॥

- देवाः मनो ह वै देवा मनुष्यस्याजानन्ति । श० २ । १ । ४ । १ ॥ २ ।
४ । १ । ११ ॥
- „ मनो देवा मनुष्यस्याजानन्ति । श० ३ । ४ । २ । ६ ॥
- „ (देवाः प्रजापतिमब्रुवन्) शम्भतेति न आत्येति । श० १४ ।
८ । २ । २ ॥
- „ जाग्रति देवाः । श० २ । १ । ४ । ७ ॥
- „ न वै देवाः स्वपन्ति । श० ३ । २ । २ । २२ ॥
- „ यो वै देवानां पथैति स अतस्य पथैति । श० ४ । ३ । ४ । १६ ॥
- „ एकः ह वै देवा व्रतं चरन्ति सत्यमेव । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥
- „ एकः ह वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्माद् सत्यमेव वदेत् ।
श० १४ । १ । १ । ३३ ॥
- „ सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः । श० १ । १ । १ । ४ ॥ १ । १ ।
२ । १७ ॥ ३ । ३ । २ । २ ॥ ३ । ६ । ४ । १ ॥
- „ सत्यसंहिता वै देवाः । ऐ० १ । ६ ॥
- „ सत्यमया उ देवाः । कौ० २ । ८ ॥
- „ शैशिरेणर्त्तुना देवाः । त्रयस्त्रिंशोऽमृतं स्तुतं सत्येन रेवतीः
क्षत्रम् । हविरिन्द्रं वयो दधुः । तै० २ । ६ । १६ । २ ॥
- „ त्रिषत्या हि देवाः । ष० १ । १ ॥ तै० ३ । २ । ३ । ८ ॥
- „ अपहतपाप्मानो देवाः । श० २ । १ । ३ । ४ ॥
- „ अथ देवाः । अन्योऽन्यस्मिन्नेव जुह्वतश्चेरुस्तेभ्यः प्रजापति-
रात्मानं प्रददौ । श० ५ । १ । १ । २ ॥ ११ । १ । ८ । २ ॥
- „ ते देवाः प्रजापतिमेवाभ्ययजन्त । अन्योऽन्यस्यासन्नसुरा अजु-
ह्वुः । प्रजापतिर्देवानुपावर्तत । गो० उ० १ । ७ ॥
- „ अथ देवा ऊर्ध्वं पृष्ठेभ्योऽपश्यन् । त उपपत्तावप्रेऽवपन्त ।
अथ श्मश्रूणि । अथ केशान् । ततस्तेऽभवन् । सुवर्गं लोकमा-
यन् । यस्यैवं वपन्ति । भवत्यात्मना । अथो सुवर्गं लोकमेति ।
तै० १ । ५ । ६ । २ ॥
- „ देवा वै छन्दाः स्यब्रुवन् युष्माभिः स्वर्गं लोकमयामेति । तां०
७ । ४ । २ ॥

- देवाः छन्दोभिर्हि देवाः स्वर्गं लोकं समाश्नुवत । श० ३।९।३।१० ॥
- „ सर्वे वै छन्दोभिरिष्टा देवाः स्वर्गं लोकमजयन् । ऐ० १।६ ॥
- „ यज्ञेन वै देवा दिवमुपोदक्रामन् । श० १।७।३।१ ॥
- „ (यज्ञेन वै देवाः सुवर्गं लोकमायन् । तैत्तिरीयसंहितायाम् ६।३।४।७ ॥ पशुना वै देवाः सुवर्गं लोकमायन् । तै० सं० ६।३।१०।२ ॥)
- „ यज्ञेन वै तद्देवा यज्ञमयजन्त यदग्निना ऽग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन् । ऐ० १।१६ ॥
- „ तं (अग्निं) देवा रोहिण्यामादधत ततो वै ते सर्वात्रोहानरोहन् । तै० १।१।२।२ ॥
- „ आनन्दात्मानो हैव सर्वे देवाः । श० १०।३।५।१३ ॥
- „ इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः । कौ० ६।१४ ॥ गो० उ० १।३ ॥
- „ इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ । तां० २४।१७।३ ॥ ष० ३।७ ॥
- „ इन्द्राग्नी वै सर्वे देवाः । कौ० १२।६ ॥ १६।११ ॥ श० ६।१।२।२८ ॥
- „ हव्यवाहनो वै (अग्निः) देवानाम् । श० २।६।१।३० ॥
- „ अग्निर्वै देवानां होता । ऐ० १।२८ ॥ ३।१४ ॥
- „ अग्निरेव देवानां दूत आस । श० ३।५।१।२१ ॥
- „ वरुणो वै देवानां ॐ राजा । श० १२।८।३।१० ॥
- „ तस्मादाहुर्विष्णुर्देवानां ॐ श्रेष्ठ इति । श० १४।१।१।५ ॥
- „ रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम् । कौ० २५।१३ ॥
- „ विश्वे वै देवा देवानां यशस्वितमाः । तै० ३।८।७।२ ॥ श० १३।१।२।८ ॥
- „ इयं पृथिव्यदितिः सेयं देवानां पत्नी । श० १।३।१।१५, १७ ॥ ५।३।१।४ ॥
- „ आषधयो वै देवानां पत्न्यः । श० ६।५।४।४ ॥
- „ देवाननु वया ॐ ऋषोषधयो वनस्पतयः । श० १।५।२।४ ॥
- „ अर्वावसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा । कौ० ६।१३ ॥
- „ अर्वावसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा परावसुरसुराणाम् । गो० उ० १।१ ॥

- देवाः बृहस्पतिर्वै देवानां ब्रह्मा । कौ० ६ । १३ ॥
- „ बृहस्पतिर्वै देवानां ब्रह्मा । श० १ । ७ । ४ । २१ ॥ ४ । ६ । ६ । ७ ॥
- „ बृहस्पतिर्वा आङ्गिरसो देवानां ब्रह्मा । गो० उ० १ । १ ॥
- „ बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहितः । ऐ० ८ । २६ ॥
- „ बृहस्पतिर्वै देवानामुद्राता । तां० ६ । ५ । ५ ॥
- „ तं (शर्यातं [? शर्याति] मानवं) देवा बृहस्पतिनोद्रात्रा दीक्षामहा इति पुरस्तादागच्छन् । जै० उ० २ । ७ । २ ॥
- „ मरुतो वै देवानां विशः । ऐ० १ । ६ ॥ तां० ६ । १० । १० ॥ १८ । १ । १४ ॥
- „ अग्निगुभ्रापापश्च । उभौ देवानां शमितारौ । तै० ३ । ६ । ६ । ४ ॥
- „ घृतं वै देवानां फाण्टं मनुष्याणाम् । श० ३ । १ । ३ । ८ ॥
- „ घृतं वै देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्नन् । गो० उ० २ । ४ ॥
- „ देवव्रतं वै घृतम् । तां० १८ । २ । ६ ॥
- „ (गुग्गुलु, सुगन्धितेजनम्, पीतुदारु चेति) एतानि वै देव-सुरभीणि । तां० २४ । १३ । ५ ॥
- „ देवानां वाऽ एतद्रूपं यत्सकवः । श० १३ । २ । १ । ३ ॥
- „ देवानां वाऽ एतद्रूपं यद्विरण्यम् । श० १२ । ८ । १ । १५ ॥
- „ तद्धि देवानां यच्छृतम् । श० ३ । ८ । ३ । ७ ॥
- „ शृतकामा इव हि देवाः । तै० ३ । २ । ८ । १२ ॥
- „ शृतं वै देवानां हविर्नाशृतम् । श० ३ । २ । २ । १० ॥
- „ कृत्तिकाः प्रथमं । विशाखे उत्तमे । तानि देवनक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ७ ॥
- „ देवक्षेत्रं वा एतद्यत्षष्ठमहः । ऐ० ५ । ६ ॥
- „ देवक्षेत्रं वै षष्ठमहः । गो० उ० ६ । १० ॥
- „ सर्वदेवत्यं षष्ठमहः । कौ० २१ । ४ ॥
- „ देवायतनं वै षष्ठमहः । कौ० २३ । ५ ॥
- „ गृहा वै देवानां द्वादशाहः । तां० १० । ५ । १६ ॥
- „ ह्यो भूत्वा देवानवहत् । श० १० । ६ । ४ । १ ॥
- „ ऋषतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति खिद्यन्त्यन्मीलन्ति निमीलन्ति । ष० ५ । १० ॥

देवाः प्रातर्यावाणः एते वाव देवा प्रातर्यावाणो यद्भिरुषा अभिनौ ।
ऐ० २ । १५ ॥

„ छन्दाँसि वै देवाः प्रातर्यावाणः । श० ३ । ९ । ३ ॥
देवा द्रविणोदाः (यजु० १२ । २) प्राणा वै देवा द्रविणोदाः । श० ६ ।
७ । १ । ३ ॥

देवा धिष्ण्याः (यजु० १२ । ४६) प्राणा वै देवा धिष्ण्यास्ते हि सर्वा
धिय इष्णन्ति । श० ७ । १ । १ । २४ ॥

देवा मरीचिपाः तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते देवा मरीचिपाः । श०
४ । १ । १ । २५ ॥

देवा वयोनाधाः (यजु० १४ । ७) प्राणा वै देवा वयोनाधाः प्राणैर्हीदँ
सर्वं वयुनं नद्धमथो छन्दाँसि वै
देवा वयोनाधाश्छन्दोभिर्हीदँ सर्वं
वयुनं नद्धम् । श० ८ । २ । २ । ८ ॥

देवाव्यम् (यजु० ११ । ८) देवाव्यमिति यो देवानदित्येतत् । श० ६ ।
३ । १ । २० ॥

देविका प्राणो वा अपानो व्यानस्तिस्रो देव्यः । ऐ० २ । ४ ॥

„ अथैष कः प्रजापतिस्तद्यदेव्यश्च कश्च तस्मादेविकाः, पञ्च
भवन्ति पञ्च हि दिशः । श० ६ । ५ । १ । ३९ ॥

„ ता वाऽ एता देव्यः । दिशो ह्येता (देव्यः = दश दिशः—हरि-
वंशपुराणे २५ । ६ ॥) । श० ६ । ५ । १ । ३९ ॥

„ छन्दाँसि वै देविकाः । कौ० १९ । ७ ॥

„ छन्दाँसि देव्यः । श० ९ । ५ । १ । ३९ ॥

„ अन्तरिक्षं देवी । जै० ७० ३ । ४ । ८ ॥

देवी “ देविकाः ” शब्दं पश्यत ।

दैर्घश्रवसम् (साम) दैर्घश्रवा वै राजन्य ऋषिर्ज्योगपरुद्धो ऽशनायँ-
श्चरन् स एतद्दैर्घश्रवसमपश्यत्तन सर्वाभ्यो दिग्भ्यो
ऽन्नाद्यमवारुन्ध सर्वाभ्यो दिग्भ्यो ऽन्नाद्यमवारुन्ध
दैर्घश्रवसेन तुष्टुवानः । तां० १५ । ३ । २५ ॥

देवातिथम् (साम) देवातिथिः सपुत्रो ऽशनायँश्चरन्नरण्य उर्वा-
रुण्यविन्दत्तान्येतेन साज्ञोपालीदत्ता अस्मै गावः

पृथनयो भूत्वोदतिष्ठन् यदेतत्साम भवति पशूनां
पुष्ट्यै । तां० ९ । २ । १९ ॥

देवातिथम् (साम) आ त्वेता निषीदतेति देवातिथम् । तां० ९ । २ । १८ ॥

देवानि पवित्राणि छन्दांसि वै देवानि पवित्राणि । तां० ६ । ६ । ६ ॥

देवी सभा तं वागेव भूत्वा ऽग्निः प्राविशन्मनो भूत्वा चन्द्रमाश्चर्षुभूत्वा-
ऽऽदित्यश्चोन्नमूत्वा दिशः प्राणो भूत्वा वायुः ॥ एषा वै
देवी परिवैदेवी सभा देवी संसत् । जै० उ० २ । ११ ।
१२-१३ ॥

देवोदासम् (साम) अयन्त इन्द्र सोम इति देवोदासम् । तां० ९ ।
२ । ८ ॥

देव्या अश्वर्य्यवः वत्सा वै देव्या अश्वर्य्यवः । श० १ । ८ । १ । २७ ॥

देव्यो होतारः देव्या वाऽ एते होतारो यत्परिधयो ऽग्नयो हि । श० १ ।
८ । ३ । १०, २१ ॥

प्राणापानौ वै देव्या होतारा (= होतारौ) । ऐ० २ । ४ ॥
देव्यो विशः देव्यो वाऽ एता विशो यत्पशवः । श० ३ । ७ । ३ । ९ ॥
दोहः “ सुददोहाः ” शब्दं पश्यत ।

धावाक्षामा (यजु० १२ । ०) इमे वै द्यावापृथिवी द्यावाक्षामा । श०
६ । ७ । २ । ३ ॥

धावापृथिवीयम् (सूक्तम्) चक्षुषी द्यावापृथिवीयम् । कौ० १६ । ४ ॥

धावापृथिव्यौ इमे वै द्यावापृथिवी रोदसी (यजु० ११ । ४३ ॥ १२ ।
१०७ ॥) । श० ६ । ४ । ४ । २ ॥ ६ । ७ । ३ । २ ॥ ७ ।
३ । १ । ३० ॥

इमे (द्यावापृथिव्यौ) ह वाव रोदसी । जै० उ० १ ।
३२ । ४ ॥

द्यावापृथिवी वै रोदसी । ऐ० २ । ४१ ॥

(= रोदसी) यदरोदीत् (प्रजापतिः) तदनयोः (द्यावा-
पृथिव्योः) रोदस्त्वम् । तै० २ । २ । ९ । ४ ॥

(वायोः) मेनका च सहजन्या (यजु० १५ । १६)
चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहि-
त्थिरिमे तु ते द्यावापृथिवी । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥

- द्यावा पृथिव्यौ इमौ वै लोकौ (= द्यावापृथिव्यौ) रौहिणौ (पुरोडाशौ) ।
 श० १४ । २ । १ । ४ ॥
- ” इमे (“द्यावापृथिव्यौ” इति सायणः) वै हरी विपक्षसा
 (यजु० २३ । ६) । तै० ३ । ९ । ४ । २ ॥
- ” इमे वै द्यावापृथिवी परीशासौ । श० १४ । २ । १ । १६ ॥
- ” द्यावापृथिवी वै गोआयुवी । कौ० २६ । २ ॥
- ” इमे वै द्यावापृथिवी द्यावाक्षामा (यजु० १२ । २ ॥) ।
 श० ६ । ७ । २ । ३ ॥
- ” उपहृते द्यावापृथिवी पूर्वजेऽऋतावरी देवी देवपुत्रे
 ऽइति । तदिमे द्यावापृथिवीऽऽपह्यते ययोरिदं
 सर्वमधि । श० १ । ८ । १ । २६ ॥
- ” इमौ वै लोकौ रेतःसिचाविमौ ह्येव लोकौ रेतः सिञ्चत
 इतो वाऽअयं (लोकः) ऊर्ध्वं रेतः सिञ्चति धूमं
 सामुत्र वृष्टिर्भवति तामसावमुतो वृष्टिं तदिमा अन्तरेण
 प्रजायन्ते । श० ७ । ४ । २ । २२ ॥
- ” यदा वै द्यावापृथिवी सञ्जानाथेऽथ वर्षति । श० १ ।
 ८ । ३ । १२ ॥
- ” (यजु० ३८ । १५) प्राणोदानौ वै द्यावापृथिवी । श०
 १४ । २ । २ । ३६ ॥
- ” इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ । श० ४ । ३ । १ । २२ ॥
- ” द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम । तां १४ ।
 २ । ४ ॥
- ” द्यावापृथिवी वै देवानां हविर्धाने आस्ताम । ऐ० १ । २६ ॥
- ” द्यावापृथिवी वै सस्यसाधयिष्यौ । कौ० ४ । १४ ॥
- ” द्यावापृथिव्योर्वा एष गर्भो यत्सोमो राजा । ऐ० १ । २६ ॥
- ” द्यावापृथिवी वै प्रतिष्ठे । ऐ० ४ । १० ॥
- ” प्रतिष्ठे वै द्यावापृथिवी । कौ० ३ । ८ ॥ ५ । २ ॥ ८ । १ ॥
 १६ । ३ ॥
- ” प्रतिष्ठे वै द्यावापृथिव्यौ । गो० ३० १ । २० ॥
- ” द्यावापृथिव्य एककपालः पुरोडाशो भवति । श० २ ।
 ५ । १ । १७ ॥

- द्युतानो मारुतः यो वाऽ अयं (वायुः) पवतऽ एष द्युतानो मारुतः । श०
३ । ६ । १ । १६ ॥
- „ द्युतानो मारुतस्तेषां (देवानां व्रात्यानामिति सायणः)
गृहपतिरासीत् । तां० १७ । १ । ७ ॥
- द्युमत्तमा (यजु० २७ । ११) द्युमत्तमेति वीर्यवत्तमेत्येतत् । श० ६ । २ ।
१ । ३२ ॥
- श्रीः अद्युतदिववा अद् इति तद्विवो दिवत्वम् । तां० २० । १४ । २ ॥
- „ अथ यत्कपालमासीत्सा द्यौरभवत् । श० ६ । १ । २ । ३ ॥
- „ (प्रजापतिः) व्यानादमुं (द्यु--) लोकम् (प्रावृहत्) । कौ०
६ । १० ॥
- „ (असुराः) हरिणीं (पुरं) हादो दिवि चक्रिरे । कौ० ८ । ८ ॥
- „ (असुराः) हरिणीं (पुरीम्) दिवि (चक्रिरे) । श० ३ । ४ ।
४ । ३ ॥
- „ (असुराः) हरिणीं दिवम् (अकुर्वत्) । ऐ० १ । २३ ॥
- „ हरिणी (= सुवर्णमयी) द्यौः । गो० ३० । २ । ७ ॥
- „ हरिणीव हि द्यौः । श० १४ । १ । ३ । २९ ॥
- „ असौ (द्यौः) हरिणी । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥
- „ दिवो (रूपं) हरिण्यः (सूच्यः) । तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥
- „ दिवो (रूपं) हिरण्यकशिपु । तै० ३ । ९ । २० । २ ॥
- „ (यजु० १२ । १८) प्राणो वै दिवः । श० ६ । ७ । ४ । ३ ॥
- „ प्राणो ऽसौ (द्यु-) लोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥
- „ असौ (द्यौः) जगती । जै० ३० । १ । ५५ । ३ ॥
- „ जागतो ऽसौ (द्यु-) लोकः । कौ० ८ । ९ ॥
- „ दिवि विष्णुर्व्यक्र०७स्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो यो ऽस्मान्-
न्देष्टि यं च वयं श्लिष्मः । श० १ । ९ । ३ । १० ॥
- „ असौ वै (द्यु-) लोको ऽक्षरङ्क्तिद्वन्द्वः (यजु० १५ । ४) । श०
८ । ५ । २ । ४ ॥
- „ असौ वै (द्यु-) लोको विष्णुर्वाह्व्यः (यजु० १५ । ५) । श०
८ । ५ । २ । ६ ॥

[द्यौः

(२३०)

- द्यौः द्यौर्वै शम्भुश्छन्दः (यजु० १५ । ४ ॥) । श० ८ । ५ । २ । ३ ॥
- „ त्रिष्टुबसौ (द्यौः) । श० १ । ७ । २ । १५ ॥
- „ असावुत्तमः (लोकः=द्युलोकः) त्रिष्टुप् । तां० ७ । ३ । ९ ॥
- „ या द्यौः सा ऽनुमतिः सो एव गायत्री । ऐ० ३ । ४८ ॥
- „ असौ वै (द्यु-) लोको बृहच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥
- „ उपहृत बृहत्सह दिवा । तै० ३ । ५ । ८ । १ ॥ श० १ । ८ । १ । १६ ॥
- „ द्यौर्बृहत् । तां० १६ । १० । ८ ॥
- „ द्यौर्वै बृहद् । श० ६ । १ । २ । ३७ ॥
- „ बृहद्भ्यसौ (द्यौः) । श० १ । ७ । २ । १७ ॥
- „ असौ (द्यु-) लोको बृहत् । ऐ० ८ । २ ॥
- „ भ्यसौ (द्यौः) बृहत् । कौ० ३ । ५ ॥ तै० १ । ४ । ६ । २ ॥ तां० ७ । ६ । १७ ॥
- „ असौ (द्यौः) एवान्तर्यामः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥
- „ असौ (द्यौः) विश्वकर्म्म । तै० ३ । २ । ३ । ७ ॥
- „ अयं वै (पृथिवी-) लोको मित्रो ऽसौ (द्युलोकः) वरुणः । श० १२ । ६ । २ । १२ ॥
- „ द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ४ ॥
- „ एष वाऽअतिष्ठा वैश्वानरः (यद् द्यौः) । श० १० । ६ । १ । ६ ॥
- „ असौ वै (द्यु-) लोकोः समुद्रो नभस्वान् (यजु० १८ । ४५) । श० ६ । ४ । २ । ५ ॥
- „ अदो वै ब्रह्मस्य विष्टपं (ऋ० ८ । ६६ । ७) यत्र (दिवि) असौ (सूर्यः) तपति । कौ० १७ । ३ ॥
- „ वागिति द्यौः । जै० ३० । ४ । २२ । ११ ॥
- „ मूर्धा त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यद् द्यौः) । श० १० । ६ । १ । ६ ॥
- „ द्यौर्महदुक्थम् । श० १० । १ । २ । २ ॥
- „ यत् (अग्नेः) शुचि (रूपं) तद्विदि (न्यघत्त) । श० २ । २ । १ । १४ ॥

- घौः यानि शुक्लानि (लोमानि) तानि दिवो रूपम् । श० ३।१।१३ ॥
- „ (यदि वेतरथा) यान्येव कृष्णानि (लोमानि) तानि दिवो रूपम् । श० ३।२।१।३ ॥
- „ घौर्वा अस्य (अग्नेः) परमं जन्म । श० ६।२।३।३६ ॥
- „ घौः सावित्री । गो० पू० १।३३ ॥ जै० उ० ४।२७।११ ॥
- „ असौ वै (घु-) लोकः स्वराट् (यजुः १३।२४) । श० ७।४।२।२३ ॥
- „ स सुवरिति व्याहरत् । स दिवमसृजत् । अग्निष्टोममुख्यमतिरात्रमृचः । तै० २।२।४।३ ॥
- „ स्वरित्यसौ (घु-) लोकः । श० ८।७।४।६ ॥
- „ असौ (घु-) लोकः स्वः । ऐ० ६।७ ॥
- „ (प्रजापतिः) स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त । सो ऽसौ घौरभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत्त स आदित्योऽमवद्द्रसस्य रसः । जै० उ० १।१।५ ॥
- „ (सूर्यो घुस्थानः-) सूर्यो ज्योतिष्योतिः सूर्य इति तदमुं लोकं (= घुलोकं) लोकानामाप्नोति तृतीयसवनं यज्ञस्य । कौ० १४।१ ॥
- „ घौर्वै तृतीयसवनम् । श० १२।८।२।१० ॥
- „ असौ वै (घु-) लोकस्तृतीयसवनम् । गो० उ० ४।१८ ॥
- „ साम्नामादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागतच्छन्दो घौः स्थानम् । गो० पू० १।२६ ॥
- „ आदित्येन दिवा नक्षत्रैस्तेनासौ लोकस्त्रिवृत् । तां० १०।१।१ ॥
- „ घौरसि वायौ श्रिता । आदित्यस्य प्रतिष्ठा । तै० ३।११।१।६० ॥
- „ वायुरस्यन्तरिक्षे श्रितः । दिवः प्रतिष्ठा । तै० ३।११।१।६ ॥
- „ घौरन्तरिक्षे प्रतिष्ठिता । ऐ० ३।६ ॥ गो० उ० ३।२ ॥
- „ यानि पुण्डरीकाणि तानि दिवो रूपम् । श० ५।४।६।१४ ॥
- „ साम वा असौ (घु-) लोकः । ऋगयम् (मूलोकः) । तां० ४।३।५ ॥
- „ दिवमेव साम्ना (जयति) । श० ४।६।७।२ ॥
- „ असौ (घौः) वै जुह्वः । तै० ३।३।१।१ ॥ ३।३।६।११ ॥
- „ असौ (घु-) लोक उत्तरौष्ठः । कौ० ३।७ ॥
- „ घौर्वाऽ उत्तरणु सधस्यम् (यजुः १६।५४ ॥ १७।७३ ॥) । श० ८।६।३।२३ ॥ ६।२।३।३५ ॥

[द्यौः

(२३२)

द्यौं द्यौरुत्तस्वेदिः । श०७ । ३ । १ । २७ ॥

„ द्यौरिव तृतीया चित्तिः । श० ८ । ७ । ४ । १४ ॥

„ द्यौरिव तृतीयपुं रजः (यजु० १२ । २० ॥) । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

„ भय तृतीययाऽऽवृताऽऽमुमेव लोकं (दिवं) जयति यदुवाऽऽमुष्मि-
लोके । तदेतया चैनं श्रद्धया समधयति ययैवैनमेतच्छ्रद्धयाऽऽना-
वभ्यादधति समयमितो भविष्यतीति । एतं चास्मै लोकमप्रच्छ-
ति यमभिजायते । जै० उ० ३ । ११ । ७ ॥

„ द्यौरिर्विधानम् । तै० २ । १ । ५ । १ ॥

„ द्यौस्सूक्तम् । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

„ द्यौरांऽ अपापुं सदनं दिवि ह्याषः सन्नाः । श०७ । ५ । २ । ५६ ॥

„ यदापो ऽसौ (द्यौः) तत्र । श० १४ । १ । २ । ९ ॥

„ आपो वै द्यौः । श० ६ । ४ । १ । ९ ॥

„ द्यौरिव वृष्टिः पूर्वचित्तिः । श० १३ । २ । ६ । १४ ॥ तै० ३ । ९ । ५ । २ ॥

„ वृष्टिर्वै द्यौः । तै० ३ । २ । ६ । ३ ॥ ३ । ३ । ९ । ४ ॥ ३ । ६ । ५ । २-३ ॥

„ वर्षतु ते द्यौरिति (यजु० १ । २५) । श० १ । २ । ४ । १६ ॥

„ तस्यै वाऽ एतस्यै वसोर्धारयि । द्यौरिवात्मा । श० ९ । ३ । ३ । १५ ॥

„ किं नु ते मयि (दिवि) इति । तृप्तिरिति । जै० उ० ३ । २६ । ४ ॥

„ तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तै० २ । ७ । १६ । ३ ॥ २ । ८ ।

६ । ५ ॥ ३ । ७ । ५ । ४-५ ॥ ३ । ७ । ६ । १५ ॥

„ असौ (द्यौः) पिता । तै० ३ । ८ । ९ । १ ॥ श० १३ । १ । ६ । १ ॥

„ उपहृतो द्यौषिता । श० १ । ८ । १ । ४१ ॥

„ द्यौर्यशः । श० १२ । ३ । ४ । ७ ॥

„ द्यौरिव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ द्यौरिव सर्वेषां देवानामायतनम् । श० १४ । ३ । २ । ८ ॥

„ ऐन्द्रो ऽसौ (द्यु-)लोकः । जै० उ० १ । ३७ । ३ ॥

„ द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी । श० १४ । ६ । ४ । २१ ॥

„ ऐन्द्री द्यौः । तां० १५ । ४ । ८ ॥

„ द्यौरिर्ब्रह्मणी । जै० उ० ३ । ४ । ६ ॥

„ प्रजापतिर्वै स्वां बुधितरमभ्यध्यायद्विवमित्यन्य आङ्कुरुषसमित्यन्यो
ये० ३ । ३३ ॥

- षीः प्रजापतिर्ह वै स्वां बुहितरमभिदध्यौ । दिवं घोषसं वा मिथुन्य-
नया स्यामिति तां७ सम्बभूव । श० १ । ७ । ४ । १ ॥
- „ असौ (द्युलोकः) भविष्यत् । तै० ३ । ८ । १८ । ६ ॥
- „ सर्वेणात्मनार्त्तिमारिष्यसि क्षिप्रे ऽमुं लोकं (=द्युलोकं) एष्यसीति
(द्युलोकगमनम्=मरणम्) । श० १ । ४ । ३ । २१ ॥
- „ अप्रतिष्ठितो दरिद्रः क्षिप्रे ऽमुं (द्यु-)लोकमेष्यसि । श० १ । ६ ।
१ । १८ ॥
- „ (देवाः) अमुं (द्युलोकं) बहिर्णिधनेन (अभ्यजयन्) । तां० १० ।
१२ । ३ ॥
- „ द्यौर्लोकं७ द्युलोकं शस्यया (जयति) । श० १४ । ६ । १ । ९ ॥
- द्यौतानम् (साम) द्युतानो माहृतस्तेषां (देवानां) ब्रात्यानामिति सायणः)
गृहपतिरासीत्त एतेन स्तोत्रेनायजन्त ते सर्वे
आर्धुवन् यदेतत्साम भवत्युध्या एव । ता० १७ ।
१ । ७ ॥
- द्रप्सः (यजु० १३ । ५) असौ वाऽआदित्यो द्रप्सः । श० ७ । ४ ।
१ । २० ॥
- „ स्तोको वै द्रप्सः । गो० उ० २ । १२ ॥
- द्रवदिङ्म् (साम) इमं वाव देवा लोकं द्रवदिडेनाभ्यजयन् । तां० १० ।
१२ । ४ ॥
- द्रविणोदाः (यजु० ११ । २१) द्रविणोदा इति द्रविणो३ होभ्यो वृदाति ।
श० ६ । ३ । ३ । १३ ॥
- द्रष्टा अग्निर्वै द्रष्टा । गो० उ० २ । १९ ॥
- हु धमस्पतयो वै हु । तै० १ । ३ । ९ । १ ॥
- द्रोणकलशः देवपात्रं द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । ७ ॥
- „ प्राजापत्यो होष देवतया यद् द्रोणकलशः । तां० ६ ।
५ । ६ ॥
- „ प्राजापत्यो द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । १८ ॥
- „ प्रजापतिर्वै द्रोणकलशः । श० ४ । ३ । १ । ६ ॥ ४ । ५ ।
५ । ११ ॥
- „ यज्ञो वै द्रोणकलशः । श० ४ । ५ । ८ । ५ ॥

- द्रोणकलशः राष्ट्रं द्रोणकलशः । तां० ६ । ६ । १ ॥
- „ प्राणा वै द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । १५ ॥
- „ यस्य कामयेदसुर्यमस्य यज्ञं कुर्यां वाचं वृञ्जीयेति
द्रोणकलशं प्रोहन्बाहुभ्यामक्षमुपस्पृशेत् । तां० ६ । ५ । १५ ॥
- द्वंद्वम् द्वंद्वं वै वीर्यम् । कौ० ८ । ७ ॥ श० १४ । १ । ३ । १ ॥
- द्वादश रात्रयः संवत्सरस्य प्रतिमा वै द्वादश रात्रयः । तै० १ । १ । ६ ।
७ ॥ १ । १ । ९ । १० ॥
- द्वादशाहः तन्त्रं वा एतद्विनायते यदेष द्वादशाहस्तस्यैते मयूखा यद्वाय-
त्र्यसंब्याथाय । तां० १० । ५ । ६ ॥
- „ ओको वै देवानां द्वादशाहो यथा वै मनुष्या इमं लोकमा-
विष्टा एवं देवता द्वादशाहमाविष्टा देवतावताह वा एतेन
यजते य एवं विद्वान् द्वादशाहेन यजते । तां० १० । ५ । १५ ॥
- „ वाग् द्वादशाहः । तां० ११ । १० । १९ ॥ १२ । ५ । १३ ॥
- „ गृहा वै देवानां द्वादशाहः । तां० १० । ५ । १६ ॥
- „ षट्त्रिंशद्दहो वा एष यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २४ ॥
- „ बृहत्या वा एतदयनं यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २४ ॥
- „ ज्येष्ठयज्ञो वा एष यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २५ ॥
- „ प्रजापतियज्ञो वा एष यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २५ ॥
- द्वापरः (युगम्) संजिहानस्तु द्वापरः । ऐ० ७ । १५ ॥
- द्वाविंशः (स्तोमः) “ वचो द्वाविंशः ” शब्दं पश्यत
- द्वितीयः द्वितीयवान् हि वीर्यवान् । श० ३ । ७ । ३ । ८ ॥
- द्वितीयमहः क्षत्रं द्वितीयम् (अहः) । तां० ११ । ११ । ९ ॥
- „ वृषण्वद्वा एतदैन्द्रं त्रैण्डुभमहर्ष्यत् द्वितीयम् । तां० ११ । ६
३ ॥ ११ । ८ । ५ ॥
- „ वर्ष्म द्वितीयमहः । तां० ११ । ६ । ४ ॥
- द्वितीया चित्तिः यदूर्ध्वं प्रतिष्ठायाऽ अवाचीनं मध्यात् । तद् द्वितीया-
चित्तिः । श० ८ । ७ । ४ । २० ॥
- „ अन्तरिक्षमेव द्वितीया चित्तिः । श० ८ । ७ । ४ । १३ ॥
- द्विदेवत्याः (प्रहाः) (यजमानस्य) प्राणाः द्विदेवत्याः । कौ० १३ । ५ । ६ ॥
- „ प्राणा वै द्विदेवत्याः । ऐ० २ । २८ ॥

- द्विपदाः (ऋचः) पुरुषो द्विपदाः । तै० ३ । ६ । १२ । ३ ॥
- द्विपदा द्विपाद्वाऽ अयं पुरुषः । श० २ । ३ । ४ । ३३ ॥
- ” द्विपाद्वै पुरुषः । ऐ० ४ । ३ ॥ ५ । १७, १६, २१ ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥
- गो० उ० ६ । १२ ॥ तै० ३ । ६ । १२ । ३ ॥
- ” द्विपाद्यजमानः । कौ० १६ । ११ ॥ तां० ४ । ४ । ११ ॥ तै० । १ । ७ । ४ । ४ ॥
- ” चन्द्रमा द्विपात्तस्य पूर्वपक्षापरपक्षौ पादौ । गो० पू० २ । ८ ॥
- ” तस्माद् द्विपाच्चतुष्पादमस्ति । तै० २ । १ । ३ । ९ ॥
- द्विप्रतिष्ठः द्विप्रतिष्ठः पुरुषः । गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० ६ । १२ ॥
- ” द्विप्रतिष्ठः (पुरुषः) । तै० ३ । ९ । १२ । ३ ॥
- ” द्विप्रतिष्ठो वै पुरुषः । ऐ० २ । १८ ॥ २ । ३१ ॥ ५ । ३ । ६ । २ ॥
- द्वियजुः (इष्टका) श्रोणी द्वियजुः । श० ७ । ५ । १ । ३५ ॥
- ” यजमानो वै द्वियजुः । श० ७ । ४ । २ । १६, २४ ॥
- द्विरात्रः व्युष्टिर्वा एष द्विरात्रः । तै० १ । ८ । १० । ३ ॥
- द्वैगतम् (साम) द्विगद्वा एतेन भांगवो द्विः स्वर्गं लोकमगच्छदागत्य पुनरगच्छद् द्वयोः कामयोरवदध्वै द्वैगतं क्रियते । तां० १४ । ९ । ३२ ॥
- द्व्युदासम् (साम) द्व्युदासं भवति स्वर्गस्य वा एतौ लोकस्यावसानदेशौ पूर्वैणैव पूर्वमहः स^०स्थापयन्त्युत्तरेणोत्तरमहरभ्यतिवदन्ति । तां० ५ । ७ । ४ ॥

(ध)

- धनम् अग्नेन्यस्मे नृम्णानि धारयेत्यक्रुध्यन्नो धनानि धारयेत्येवैतदाह । (नृम्णानि=धनानि) । श० १४ । २ । २ । ३० ॥
- ” ‘ इहैव रातयः सन्तु ’ (यजु० ३८ । १३) इतीहैव नो धनानि सन्त्वित्येवैतदाह (रातयः=धनानि) । श० १४ । २ । २ । २६ ॥
- ” राष्ट्रानि वै धनानि । ऐ० ८ । २६ ॥
- ” तस्माद्धिरण्यं कनिष्ठं धनानाम् । तै० ३ । ११ । ८ । ७ ॥
- धनुः वार्ध्नं वै धनुः । श० ५ । ३ । ५ । २७ ॥
- धरुणः धरुणो मातरं धयन्नित्यग्निमेवैतत्पृथिर्वी धयन्तमाह । श० ४ । ६ । ६ ॥

- धरुणः (यजु० १४।२३) असावेवादित्यो धरुण एकविंशस्तद्य-
त्तमाह धरुण इति यदा होवैषो ऽस्तमेत्यथेदं सर्वं भ्रियते ।
श० ८।४।१।१२ ॥
- धरुणा (यजु० १३।१६) प्रतिष्ठा वै धरुणम् । श० ७।४।२।५ ॥
- धर्मम् (यजु० १४।२३) वायुर्वाव धर्मं चतुष्टोमः स आभिधतसु-
भिर्दिग्भिः स्तुते । श० ८।४।१।२६ ॥
- ॥ प्रतिष्ठा वै धर्मम् । श० ८।४।१।२६ ॥
- धर्मं धर्मं (साम) भवति धर्मस्य धृत्यै । तां० १४।११।३४ ॥
- ॥ धरुणः (एवैनं) धर्मपतीनाम् (सुवते) । तै० १।७।४।२॥
- ॥ धरुण धर्मणां पते । तै० ३।११।४।१ ॥
- धर्मः (यजु० ३८।१४) एष धर्मो य एष (सूर्यः) तपत्येष हीदं सर्वं
धारयत्येतेनेदं सर्वं धृतम् । श० १४।२।२।२६ ॥
- ॥ यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति
धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति । श० १४।४।२।२६ ॥
- ॥ तस्माद्धर्मात्परं नास्ति । श० १४।४।२।२३ ॥
- ॥ धर्मो हैनं (ब्रह्मचारिणं) गुप्तो गोपायति (धर्मो रक्षति रक्षितः-
मनुस्मृतौ ८।१५ ॥) । गो० पू० २।४ ॥
- ॥ धर्मो वा अधिपतिः । तै० ३।६।१६।२ ॥
- ॥ धर्मो मनुष्यः । गो० उ० २।१३ ॥
- ॥ धर्मो ह्यापः । श० ११।१।६।२४ ॥
- धवित्राणि प्राणा वै धवित्राणि । १४।३।१।२१ ॥
- धाता यत् (प्रजापतिर्दिक्षु प्रतिष्ठायेदं सर्वं) दधद्विदधदंतिष्ठत्त-
स्माद्धाता । श० ६।५।१।३५ ॥
- ॥ प्रजापतिर्धाता । श० ६।५।१।३८ ॥
- ॥ स यः स धातासौ स आदित्यः । श० ६।५।१।३७ ॥
- ॥ यः सूर्यः स धाता स उ एष षष्कारः । ऐ० ३।४८ ॥
- ॥ यो धाता स षष्कारः । ऐ० ३।४७ ॥
- ॥ अग्निर्वै धाता । तै० ३।३।१०।२ ॥
- ॥ मृत्युस्तदभवद्धाता । तै० ३।१२।६।६ ॥
- ॥ चन्द्रमा वै धाता । ष० ४।९ ॥

- धाता चन्द्रमा एव धाता च विधाता च । गो० उ० १ । १० ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै धाता । तै० ३ । ८ । २३ । ३ ॥
- „ संवत्सरो वै धाता । तै० १ । ७ । २ । १ ॥
- „ धाता षड्ढोतृणां होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥
- „ धाता षड्ढोता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥
- „ धाता षड्ढोत्रा । तै० २ । २ । ८ । ४ ॥
- „ धात्रः षट्कपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥
- धानाः नक्षत्राणां वा एतद्रूपम् । यद्धानाः । तै० ३ । ८ । १४ । ५ ॥
- „ अहोरात्राणां वाऽ एतद्रूपं यद्धानाः । श० १३ । २ । १ । ४ ॥
- „ पशवो वै धानाः । कौ० १८ । ६ ॥ गो० उ० ४ । ६ ॥
- „ हर्योर्धानाः । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥
- धान्यम् धान्यमसि धिनुहि देवानिति (यजु० १ । २०) धान्यं हि देवान्धिनवद्विगु हि हविर्गृह्यते । श० १ । २ । १ । १८ ॥
- „ दश ग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति । ब्रीहियवास्तिलमाषा अणुप्रियंगवो गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्च । श० १४ । ६ । ३ । २२ ॥
- धामच्छद् धामधामच्छद् । श० १० । १ । ३ । १० ॥
- धाट्या (ऋक्) यत्र यत्र वै देवा यज्ञस्य छिद्रं निरजानंस्तद्वाय्याभिर-
पिदधुस्तद्वाय्यानां धाय्यात्वम् । ऐ० ३ । १८ ॥
- „ धाय्याभिर्वै प्रजापतिरिमौल्लोकानधयद्यं यं कामसकाम-
यत । ऐ० ३ । १८ ॥
- „ पत्नी धाय्या । ऐ० ३ । २३ ॥ गो० उ० ३ । २१, २२ ॥
- „ पत्नी वै धाय्या । ऐ० ३ । २४ ॥
- „ महिषी धाय्या । कौ० १५ । ४ ॥
- „ प्राणो वै धाय्या । कौ० १५ । ४ ॥
- „ प्राणो धाय्या । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥
- „ वायुर्धाय्या । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥
- „ तद्धैके । पुरस्ताद् धाय्ये दधत्यन्नं धाय्ये, मुखत इदम-
न्नाद्यं दध्म इति वदन्तस्तदु तथा न कुर्यात् । श० १ ।
४ । १ । ३७ ॥
- „ स्यूमहैतद्यज्ञस्य यद्वाय्याः । ऐ० ३ । १८ ॥

[धूमः

(२३८)

धारका धारका ह वै नामैषैतया ह वै प्रजापतिः प्रजा धारयाञ्चकार ।
श० ११ । ६ । २ । १० ॥

धारा तद्यदब्रवीत् (ब्रह्म) आभिर्वा अहमिदं सर्वं धारयिष्यामि
यदिदं किञ्चेति तस्मात् धारा अभवंस्तद्धारणां धारात्वं यच्चासु
ध्रियते । गो० पू० १ । २ ॥

धियः प्राणा धियः । श० ६ । ३ । १ । १३ ॥

,, कम्मीणि धियः (ऋ० ३ । ६२ । १० सायणभाष्यं पश्यत) ।
गो० पू० १ । ३२ ॥

धिषणा (यजु० ११ । ६१) धाग्वै धिषणा । श० ६ । ५ । ४ । ५ ॥

,, धिषा वै धिषणा । तै० ३ । २ । १ । २ ॥

,, अन्तो वै धिषणा । ऐ० ५ । २ ॥

धिष्यायाः एतानि (स्वानः, भ्राजः, अङ्घारिः, बम्भारिः, हस्तः,
सुहस्तः, कृशानुः) वै धिष्यायानां नामानि । श० ३ । ३ ।
३ । ११ ॥

धूः तेन पुरुषेणासुरानधूर्वन् यदधूर्वञ्छस्तद्दुरां धूस्त्वम् । ष० २ । ३ ॥

,, प्राणा वै धुरः । तां० १४ । ६ । १८ ॥

,, (प्रजापतिः तेभ्यः (देवेभ्यः) एतान् धुरः प्राणान्प्रायच्छन्मनः
प्रथममथ प्राणमथ चक्षुरथ श्रोत्रमथ वाचं ताभ्यः पञ्चभ्यो धूर्भ्यः
पुरुषञ्च पशुञ्च निरमिमोत । ष० २ । ३ ॥

,, अग्निर्हि वै धूः । श० १ । १ । २ । ६ ॥

,, (यजु० १ । ८) एष वै धुर्यो ऽग्निः । तै० ३ । २ । ४ । ३ ॥

,, अग्निर्वाऽ एष धुर्यः (= युगस्य धुरि भव इति सायणः) । श० १ ।
१ । २ । १० ॥

धूमः " दिव्यञ्छ सुपर्णं वयसा बृहन्तम् " (यजु० १८ । ५१) इति
दिव्यो वाऽ एष (अग्निः) सुपर्णो वयसो बृहन्धूमेन (वयः = धूमः) ।
श० ६ । ४ । ४ । ३ ॥

,, " पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तम् " (यजु० ११ । २३) इति
पृथुर्वाऽ एष (अग्निः) तिर्यङ् वयसो बृहन्धूमेन वयः = धूमः ।
श० ६ । ३ । ३ । १६ ॥

,, धूमो वाऽ अस्य (अग्नेः) ध्रुवो वयः (यजु० १२ । १०६) स
ह्येनममुर्षिर्ल्लोके (ध्रावयति) । श० ७ । ३ । १ । २६ ॥

धृतवतः एष (राजा) च श्रोत्रियश्चैतौ ह वै द्वौ मनुष्येषु धृतवतौ ।

श० ५ । ४ । ४ । ५ ॥

धृतिः क्षेमो वै धृतिः । श० १३ । १ । ४ । ३ ॥

धेना (यजु० १३ । ३८) अन्नं वै धेनाः । श० ७ । ५ । २ । ११ ॥

„ धेना बृहस्पतेः पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥

धेनुः आपो वै धेनव आपो हीदं सर्वं हिन्वन्ति । कौ० १२ । १ ॥

„ माता धेनुः । श० २ । २ । १ । २१ ॥ ५ । ३ । १ । ४ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै धेनुः । श० १२ । ६ । २ । ११ ॥

„ वाग्वै धेनुः । तां० १८ । ६ । २१ ॥ गो० पू० २ । २१ ॥

„ वाचमेव तद्देवा धेनुमकुर्वत । श० ६ । १ । २ । १७ ॥

„ वाचं धेनुमुपासीत । श० १४ । ८ । ६ । १ ॥

„ स धेन्वै चानडुहश्च (मांसं ?) नाश्रीयाद्धेन्वनडुहौ वाऽ इदं
सर्वं विभृतः । श० ३ । १ । २ । २१ ॥

„ तदुहोवाच याज्ञवल्क्यो ऽश्राम्येवाहं (धेन्वनडुहोर्मांसम् ?)
अथ सलं चेद्भवतीति (पश्यत—का० श्रौ० सू० ७ । ५३ ॥
अस्योपरि याज्ञिकदेवकृता टीकाऽपि द्रष्टव्या ॥ इदं ब्राह्मणवाक्यं
धर्मविदुश्चम् । अथवा केनचिदत्र प्रक्षिप्तं स्यात्) । श० ३ ।
१ । २ । २१ ॥

“ गौः ” शब्दमपि पश्यत ॥

ध्रुवः (प्रहः) तद्यदेतं (असुराः) न शेकुदुश्चन्तुं तस्माद् ध्रुवो नाम ।
श० ४ । २ । ४ । १६ ॥

ध्रुवम् यद्वै स्थिरं यत्प्रतिष्ठितं तद् ध्रुवम् । श० ८ । २ । १ । ४ ॥

„ ध्रुवा सीदेति स्थिरा सीदेत्येतत् । श० ६ । १ । २ । २८ ॥

ध्रुवा यच्चतुर्ध्रुवायां गृह्णात्यनुष्टुभे तद् गृह्णाति.....इयं (पृथिवी)
वाऽ अनुष्टुबस्यै वाऽ इदं सर्वं प्रभवति तस्माद् ध्रुवाया एव
सर्वो यज्ञः प्रभवति । (ध्रुवा=पृथिवी—यादवप्रकाशकृते वैज-
यन्तीकोषे द्व्यक्षरकाण्डे नानालिङ्गध्याये श्लो० ४४) । श० १ ।
३ । २ । १६ ॥

„ इयं (पृथिवी) एव ध्रुवा (ध्रुवा=स्थिरा=अचला=पृथिवी ॥
अमरकोषे २ । १ । २ ॥) । श० १ । ३ । २ । ४ ॥

- ध्रुवा पृथिवी ध्रुवा । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ६ । ११ ॥
- „ यजमानो वै ध्रुवा । श० १ । ८ । १ । ३९ ॥
- „ आत्मा ध्रुवा । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥ ३ । ३ । ७ । १० ॥
- „ आत्मैव ध्रुवा (यज्ञस्य) । श० १ । ४ । ५ । ५ ॥
- „ आत्मैव ध्रुवा तद्वाऽ आत्मन एवेमानि सर्वाण्यङ्गानि प्रभवन्ति
तस्माद् ध्रुवाया एव सर्वो यज्ञः प्रभवति । श० १ । ३ । २ । २ ॥
- ध्रुवा दिक् (=“ मध्यदेशः ” इति सायणः) अथैनं (इन्द्रं) अस्यां ध्रुवायां
मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि साध्यश्चाऽऽप्त्याश्च देवाः...
...अभ्यविञ्चन्राज्याय (सायणकृते ऽथर्ववेदभाष्ये
३ । २७ । ५—ध्रुवा दिक् = अधो दिक्) । ऐ० ८ । १४ ॥
- „ तस्मादस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरु-
पञ्चालानां राजानः सवशोशोनराणां राज्यायैव ते ऽभिषिच्य-
न्ते राजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥
- „ इयं दिक् (ध्रुवा दिक् = “अधरा दिक्” इति सायणः) ।
अदितिः (= “भूमिः” इति सायणः) देवता । तै० ३ ।
११ । ५ । ३ ॥
- „ किंदेवतो ऽस्यां ध्रुवायां दिश्यसीति । अग्निदेवत इति । श०
१४ । ६ । ६ । २५ ॥

(न)

- न (=इव) वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्गा इति (यजु० १२ । ३४) वि-
यत्सूर्य इव रोचते बृहद्गा इत्येतत् । श० ६ । ८ । १ । १४ ॥
- „ (ऋ० १ । ३६ । १३) “ऊर्ध्व ऊषुण ऊतये तिष्ठा देवो न सविते”ति यद्वै
देवानां नेति तदेषामोऽमिति तिष्ठ देव इव सवितेत्येव । ऐ० २ । २ ॥
- „ यद्वै नेत्युच्योमिति तत् । श० १ । ४ । १ । ३० ॥
- नक्तोषासा (यजु० १२ । २) अहोरात्रे वै नक्तोषासा । श० ६ । ७ । २ । ३ ॥
- नक्षत्राणि नवा इमानि क्षत्राण्यभूवन्निति । तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम् ।
तै० २ । ७ । १८ । ३ ॥
- „ ते ह देवा ऊजुः । यानि वै तानि क्षत्राण्यभूवन्न वै तानि
क्षत्राण्यभूवन्निति । तद्वै नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम् । श० १ । २ ।
२ । १६ ॥

- नक्षत्राणि यो वा इह यजते । अमुष्णं स लोकं नक्षते । तन्नक्षत्राणां नक्ष-
त्रत्वम् । तै० १ । ५ । २ । ५ ॥
- „ तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वं यन्न क्षियन्ति । गो० उ० १ । ८ ॥
- „ (ऋभेकुरथो ऽपतरसः । यजु० १८ । ४०) भाकुरथो ह नामैते
भा० हि नक्षत्राणि कुर्वन्ति । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥
- „ नक्षत्राणि वै जनयो ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति
तेषामेतानि ज्योती०षि । श० ६ । ५ । ४ । ८ ॥
- „ नक्षत्राणि वै रोचना दिवि (यजु० २३ । ५) । तै० ३ । ६ । ४ । २ ॥
- „ अथ यन्नक्षत्राणीत्याख्यायते तल्लोकमृणा (इष्टका) । श० १० ।
५ । ४ । ५ ॥
- „ नक्षत्राणां वाऽ एतद्रूपं यल्लाजाः । श० १३ । २ । १ । ५ ॥
- „ नक्षत्राणां वा एतद्रूपम् । दानाः । तै० ३ । ८ । १४ । ५ ॥
- „ तानि (पुण्डरीकाणि) नक्षत्राणां रूपम् । श० ५ । ४ । ५ । १४ ॥
- „ देवगृहा वै नक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ६ ॥
- „ यानि वा पृथिव्याश्चिन्नाणि तानि नक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ६ ॥
- „ यथैवासौ सूर्य्य एवम् (नक्षत्रम्), तेषाम् (नक्षत्राणाम्)
एव (सूर्य्यः) उद्यन्नेव वीर्य्यं क्षत्रमादत्त । श० २ । १ । २ । १८ ॥
- „ ज्योतिर्वै नक्षत्राणि । कौ० २७ । ६ ॥
- „ सप्तविंश शतिर्नक्षत्राणि । तां० २३ । २३ । ३ ॥
- „ तानि वाऽ एतानि सप्तविंशतिर्नक्षत्राणि सप्तविंशतिः
सप्तविंशतिर्होपनक्षत्राण्येकैकं नक्षत्रमनूपतिष्ठन्ते । श०
१० । ५ । ४ । ५ ॥
- „ ब्राह्मणो वा अष्टाविंशी नक्षत्राणाम् । तै० १ । ५ । ३ । ४ ॥
- „ यावन्त्येतानि नक्षत्राणि तावन्तो लोमगर्ता यावन्तो लोम-
गर्तास्तावन्तः सहस्रसंवत्सरस्य मुहूर्ताः । श० १० । ४ । ४ । २ ॥
- „ कृत्तिकाः प्रथमं । विशाखे उत्तमं । तानि देवनक्षत्राणि । तै०
१ । ५ । २ । ७ ॥
- „ यानि देवनक्षत्राणि तानि दक्षिणेन परियन्ति । तै० १ । ५ । २ । ७ ॥

नक्षत्राणि एकं द्वे त्रीणि । चत्वारितीति वाऽ अन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव
भूयिष्ठा यत्कृत्तिकाः । श० २ । १ । २ । २ ॥

„ अनूराधाः प्रथमम् । अपभरणीरुत्तमम् । तानि यमनक्षत्राणि ।
तै० १ । ५ । २ । ७ ॥

„ यानि यमनक्षत्राणि तान्युत्तरेण (परियन्ति) । तै० १ । ५ ।
२ । ७-८ ॥

„ तस्मात्सोमो राजा सर्वाणि नक्षत्राण्युपैति । ष० ३ । १२ ॥

„ नक्षत्राणि स्थ चन्द्रमसि श्रितानि । संवत्सरस्य प्रतिष्ठा ।
तै० ३ । ११ । १ । १३ ॥

„ संवत्सरो ऽसि नक्षत्रेषु श्रितः । ऋतूनां प्रतिष्ठा । तै० ३ ।
११ । १ । १४ ॥

„ (नक्षत्राणि) संवत्सरस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १३ ॥

„ नक्षत्राणां वा एषा दिग्बहुदोची । ष० ३ । १ ॥

„ यान्येव देवनक्षत्राणि । तेषु कुर्वीत यत्कारी स्यात् । पुण्याह
एव कुरुते । तै० १ । ५ । २ । ६ ॥

„ यत् पुण्यं नक्षत्रं । तद्बधत्कुर्वीतोपव्युषं । यदा वै सूर्य उदेति ।
अथ नक्षत्रं नैति । यावति तत्र सूर्यो गच्छेत् । यत्र जघन्यं
पश्येत् । तावति कुर्वीत । यत्कारी स्यात् । पुण्याह एव
कुरुते । तै० १ । ५ । २ । १ ॥

नचिकेताः उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्वधेदसन्ददौ । तस्य ह नचिकेता
नाम पुत्र आस । तै० ३ । ११ । ८ । १ ॥ (काठकोपनिषदि १ ।
१ । १ ॥ महाभारते, अनुशासनपर्वणि, अ० ७१ ॥)

नडः (=नक्षत्रः) अथैष एव नडो नैषिधो (? नैषधो) यदन्वाहार्यपचनः ।
श० २ । ३ । २ । २ ॥

नदी तस्माद्यऽ एतासां नदीनां पिबन्ति रिप्रतरा शपनतरा आहनस्य-
वादितरा भवन्ति । श० ६ । ३ । १ । २४ ॥

नदीपतिः अपां वाऽ एष पतिर्यज्ञदीपतिः । श० ५ । ३ । ४ । १० ॥

नपुंसकम् यद्विद्युता तेन नपुंसकम् । ष० १ । २ ॥

नमः, नभस्यः (यजु० ७ । ३० ॥ १४ । १५ ॥) एतौ (नभश्च नभस्यश्च)
एव वार्षिकौ (मासौ) अमुतो वै दिवो वर्षति तेनो हैतो
नभश्च नभस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १६ ॥

नमः, नभस्यः विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽ अक्रि र आयुना नाम्नेहि (यजु०
५।९॥) इति । श० ३।५।१।३२ ॥

” अन्तरिक्षं वै नभाश्चसि । तस्य रुद्रा अधिपतयः । तै०
३।८।१८।१ ॥

नभसस्पतिः वायुर्वै नभसस्पतिः । गो० उ० ४।६ ॥

” अग्निर्वै नभसस्पतिः । गो० उ० ४।६ ॥

नमः (यजु० ११।५) अन्नं नमः । श० ६।३।१।१७ ॥

” यज्ञो वै नमः । श० २।४।२।२४ ॥ श० १। ६। १। ४२ ॥
६।१।१।१६ ॥

” (यजु० १३।८) यज्ञो वै नमः । श० ७।४। १। ३० ॥

” तस्माद्दु ह नायज्ञियं ब्रूयान्नमस्तः इति यथा हैनं (अयज्ञियं)
ब्रूयाद्यज्ञस्त इति तादृक्त । श० ७।४।१। ३० ॥

नमस्यः (ऋ० ३। २०। १३) नमस्यो ह्येषः (अग्निः) । श० १।४।
१।२६ ॥

” पितरो नमस्याः । श० १।५।२। ३ ॥

नमुचिः (असुरः) ‘ अर्पां फेनेन नमुचे (ः) शिर इन्द्रोदधर्तयः, विश्वा
यदजयः(ः) स्पृधः ’ (ऋ० ८। १४।१३) इति
पाप्मा वै नमुचिः । श० १२।७। ३। ४ ॥

” इन्द्रस्येन्द्रियमन्नस्य रसश्च सोमस्य भक्षश्च सुरया-
सुरो नमुचिरहरत्सो (इन्द्रः) ऽश्विनौ च सरस्वतीं
ओपाधावच्छेपानो ऽस्मि नमुचये न त्वा दिवा न
नक्तश्च हनानि न दण्डेन धन्वना न पृथेन न मुष्टिना न
शुष्केण नार्द्रेणाथ मऽ इदमहार्षीदिदिं मऽ आजिही-
र्षथेति ॥ ते (अश्विनौ सरस्वती च) अन्नबन् ।
अस्तु नो ऽन्नाप्यथाहरामेति सह न पतदथाहरते-
त्यब्रवीदिति ॥ तावश्विनौ च सरस्वती च । अर्पां
फेनं वज्रमसिञ्चन्न शुष्को नार्द्र इति तेनेन्द्रो नमुचे-
रासुरस्य व्युष्टायाश्च रात्रावनुदितऽ आदित्ये न
दिवा न नक्तमिति शिर उदधासयत् । श० १२।७।
३। १—३ ॥

- नमुचिः (असुरः) युवः॒ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपि-
पाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् (ऋ० १० ।
१३१ । ४ ॥ यजु० १० । ३३ ॥) इत्याश्राव्याहाश्विनौ
सरस्वतीमिन्द्रः॒ सुत्रामाणं यजेति । श० ५ । ५ ।
४ । २५ ॥
- ” “ यमश्विना नमुचेरासुरादधि ” (यजु० १६ । ३४)
इत्यश्विनौ ह्येतं (सोमं) नमुचेरध्याहरताः॒ “सर-
स्वत्यसुनोदिन्द्रियाय” इति... । श० १२ । ८ । १ । ३ ॥
- ” (नमुचिः) तस्य (इन्द्रस्य) एतयैव सुरयेन्द्रियं
धीर्यं॒ सोमपीथमन्नाद्यमहरत्स ह न्यर्णः शिश्ये ।
श० १२ । ७ । १ । १० ॥
- ” तस्य (नमुचेः) शीर्षश्लिष्ने लोहितमिध्रः सोमो
ऽतिष्ठत् । श० १२ । ७ । ३ । ४ ॥
- ” (नमुचिरुवाच—) न मा शुष्केण नाद्रंण हनः । न
दिषा न नक्तमिति । स एतमपां फेनमसिञ्चत् । न
षा एष शुष्को नाद्रौ व्युष्टासीत् । अनुदितः सूर्यः ।
न षा एतद्दिषा । न नक्तं । तस्य (नमुचेः) एत-
स्मिँल्लोके । अपां फेनेन शिर उद्वर्षयत् । तै० १ ।
७ । १ । ६—७ ॥
- ” इन्द्रश्च वै नमुचिश्चासुरः समदधातान्न नौ नक्तान्न
दिषाहमन्नाद्रंण न शुष्केणेति तस्य व्युष्टायामनुदित
आदित्ये ऽपां फेनेन शिरो ऽञ्जिनत् । तां० १२ ।
६ । ८ ॥
- ” नमुचिर्ह वै नामासुर आस तमिन्द्रो निविश्याध
तस्य पदा शिरो ऽभितष्ठौ स यद्भिष्ठित उदवाधत्
स उच्चुक्कस्तस्य पदा शिरः प्रविच्छेद् ततो रक्षः
समभवत् । श० ५ । ४ । १ । ६ ॥
- नरः (यजु० १३ । ५२) मनुष्या वै नरः । श० ७ । ५ । २ । ३६ ॥
- ” मनुष्या नरः । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥
- ” पुमांसो वै नरः स्त्रियो नार्थः । ऐ० ३ । ३४ ॥

नरः प्रजा वै नरः । ऐ० २ । ४ ॥ ६ । २७, ३२ ॥ श० १ । ५ । १ । २० ॥
१ । ८ । २ । १२ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

„ नरो वै देवानां ग्रामः । तां० ६ । ६ । ३ ॥

नरकः दश पुरुषे स्वर्गनरकाणि तान्धेनं स्वर्गं गतानि स्वर्गं गमयन्ति
नरकं गतानि नरकं गमयन्ति । जै० उ० ४ । २५ । ६ ॥

„ मनो नरको वाङ् नरकः प्राणो नरकश्चक्षुर्नरकश्श्रोत्रं नरकस्त्वङ्
नरको हस्तौ नरको गुदं नरकश्शिशुं नरकः पादौ नरकः । जै०
उ० ४ । २६ । १ ॥

नराशंसः मनुष्या वै नराशंसः । तै० २ । ७ । ५ । २ ॥

„ प्रजा वै नरो वाक् शंसः । ऐ० २ । ४ । ६ । २७, ३२ ॥ गो०
उ० ६ । ८ ॥

„ प्रजा वै नरस्ता अन्तरिक्षमनु वावद्यमानाः प्रजाश्चरन्ति यद्वै
वदति शंसतीति वै तदाहस्तस्मादन्तरिक्षं नराशंसः ।
श० १ । ८ । २ । १२ ॥

„ अन्तरिक्षं वै नराशंसः । श० १ । ८ । २ । १२ ॥

नराशंसपङ्क्तिः द्विनाराशंसं प्रातःसवनं द्विनाराशंसं माध्यन्दिनं सवनं
सकृन्नाराशंसं तृतीयसवनमेष वै यज्ञो नराशंसप-
ङ्क्तिः । ऐ० २ । २४ ॥

नलः “ नडः ” शब्दं पश्यत ।

नवदशः (स्तोमः) “ तपो नवदशः ” शब्दं पश्यत ।

„ यज्ञवदशः प्रजननं तेन (अवरुन्धे) । तां० १६ ।
१८ । ३ ॥

मवनीतम् मवनीतं गर्भाणाम् (सुरभि) । ऐ० १ । ३ ॥

नवरात्रः (प्रजापतिः) तेभ्यः (वेषेभ्यः) एतेन नवरात्रेणामृतत्वं प्राय-
च्छत् । तां० २२ । १२ । १ ॥

नवाहः नवाहो वै संवत्सरस्य प्रतिमा । ष० ३ । १२ ॥

नाकः तम् (त्रयस्त्रिंशं स्तोमं) उ नाक इत्याहुर्न हि प्रजापतिः कस्मै
चनाकम् (अकम् = दुःखहेतुरिति सायणः) । तां० १० । १ । १८ ॥

„ न हि तत्र गताय कस्मै चनाकं भवति । श० ८ । ४ । १ । २४ ॥

„ न वै तत्र जग्मुषे किञ्चनाकम् । तां० २१ । ८ । ४ ॥

[नाभिः

(२४६)

नाकः नाकः॑ रोहति स्वर्गमेव तल्लोकः॑ रोहति । तां० १८ । ७ । १० ॥

” (यजु० १२ । २ ॥) स्वर्गो वै लोको नाकः । श० ६ । ३ । ३ ।
१४ ॥ ६ । ७ । २ । ४ ॥

नाकः षट्त्रिंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव नाकः षट्त्रिंशस्त-
स्य चतुर्विंशतिरर्धमासा द्वादश मासास्तद्यत्तमाह
नाक इति न हि तत्र गताय कस्मै चनाकं भवति । श०
८ । ४ । १ । २४ ॥

नाकः स्वर्गो लोकः दिशो वै स नाकः स्वर्गो लोकः । श० ८ । ६ । १४ ॥

नाकसदः (इष्टकाः) तद्यदेतस्मिन्नाके स्वर्गे लोके देवा असीदंस्तस्माद्दे-
वा नाकसदः । श० ८ । ६ । १ । १ ॥

” आत्मा वै नाकसदः । श० ८ । ६ । १ । १२, १३ ॥

” यऽ इमे चत्वारः श्रुत्वित्थिजो गृहपतिपञ्चमास्ते नाक-
सदः । श० ८ । ६ । १ । ११ ॥

” तथा अमुष्मादादित्यादर्वाच्यः पञ्च दिशस्ता नाक-
सदः । श० ८ । ६ । १ । १४ ॥

नानदम् (साम) सो (वृत्र इन्द्रेण) ऽभिहतो व्यनदद्यद् व्यनदत्तन्नानद-
सामाऽभवत्तन्नानदस्य नानदत्वम् । ऐ० ४ । २ ॥

” इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावद् वृत्रः॑ हनानीति तस्मा एताम-
नुष्टुभमपहरसं प्रायच्छत्तया नास्तृणुत यद्वस्तृतो व्यन-
दत्तन्नानदस्य नानदत्वम् । तां० १२ । १३ । ४ ॥

” अभ्रातृव्यं वा एतद् भ्रातृव्यहा साम यन्नानदम् । ऐ०
४ । २ ॥

नाभानेदिष्टः रेतो वै नाभानेदिष्टः । ऐ० ६ । २७ ॥ गो० ३०६ । ८ ॥

नाभानेदिष्टम् (सूक्तम्) स एष सहस्रसन्निर्मत्रो यन्नाभानेदिष्टम् । ऐ०
५ । १४ ॥

” यदि नाभानेदिष्टं रेतो ऽस्यांतरियाद् । ऐ० ५ । १५ ॥

” रेतो हि नाभानेदिष्टीयम् । तां० २० । ६ । २ ॥

नाभिः प्राणो वा अयं सन्नाभेरिति तस्मान्नाभिस्तन्नाभेर्नाभित्वम् । ऐ०
१ । २० ॥

” नव प्राणाः.....(नाभिः) दशमी प्राणानाम् । तां० ६ ।
८ । ३ ॥

- नाभिः नाभिदघ्ना (आसन्दी) भवति । अत्र (नाभिप्रदेशे) वाऽऽन्नं प्रतितिष्ठति.....अत्रोऽप्य रेतस आशयः । श० ३ । ३ । ४२८ ॥
- ” एवंपुं हैव गुदः प्राणः समन्तं नाभिं पर्यक्नः । श० ८ । १ । ३ । १० ॥
- ” मध्यं वै नाभिर्मध्यमभयम् । श० १ । १ । २ । २३ ॥
- ” एतद्वै पशोर्मध्यतरं यदुपरिनाभि पुरीषस्य^२हिततरं यदवाङ् नाभेः । श० ६ । ७ । १ । १० ॥
- ” यद्वै प्राणस्यामृतमूर्ध्वं तन्नाभेरूर्ध्वैः प्राणैरुच्चरत्यथ यन्मृत्यं पराकन्नाभिमत्येति । श० ६ । ७ । १ । ११ ॥
- नाम तस्यात्पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्पाप्मानमेवास्य तदपहत्यपि द्वितीयमपि तृतीयमभिपूर्वमेवास्य तत्पाप्मानमपहन्ति । श० ६ । १ । ३ । ६ ॥
- ” राध्नोति हैव य एवं विद्वान्द्वितीयं नाम कुरुते । श० ३ । ६ । २ । २४ ॥
- नारायणः पुरुषो ह नारायणो ऽकामयत । अतितिष्ठेय^२ सर्वाणि भू-
तान्यहमेवेदंपुं सर्वंपुं स्यामिति स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं
यज्ञक्रतुमपश्यत्तमाहरत्तेनायजत तेनेष्ट्यात्यतिष्ठत्सर्वाणि भू-
तानीद^२ सर्वमभवदतितिष्ठति सर्वाणि भूतानीद^२ सर्वं
भवति य एवं विद्वान् पुरुषमेधेन यजते यो वैतदेधं वेद ।
(पञ्चरात्रम्=वैष्णवग्रन्थविशेषः ॥ विष्णुः=नारायणः-अमर-
कोषे १ । १ । १८ ॥) । श० १३ । ६ । १ । १ ॥
- ” पुरुषं ह वै नारायणं प्रजापतिरुवाच । गो० पू० ५ । १६ ॥
श० १२ । ३ । ४ । १ ॥
- नाराशंसम् अथैतन्मृद्विव छन्दः शिथिरं यन्नाराशंसम् । ऐ० ६ । १६ ॥
- ” विकृतिर्वै नाराशंसं किमिव च वै किमिव च रेतो वि-
क्रियते तसदा विकृतं प्रजातं भवति । ऐ० ६ । १६ ॥
- नाराशंसी यद्ब्रह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशंपुंस्यभवत् । तै०
१ । ३ । २ । ६ ॥
- नारी पुमांसो वै नरः स्त्रियो नार्यः । ऐ० ३ । ३४ ॥

नामैधसम् (साम) नृमेधसमाङ्गिरस० सत्रमासीन० श्वभिरभ्याह्वयन्
सो ऽग्निमुपाधावत्पाहि नो अग्न एकयेति तं वैश्वा-
नरः पर्युदतिष्ठत्ततो वै स प्रत्यतिष्ठत्ततो गातुम-
चिन्दत । तां० ८ । ८ । २२ ॥

नासिका नासिकेऽउ वै प्राणस्य पन्थाः । श० १२ । ६ । १ । १४ ॥

„ मध्यमेतप्राणानां यन्नासिके । श० १३ । ४ । ४ । ६ ॥

„ नासिके वा एते यज्ञस्य यदुष्णिककुभौ । तां० ८ । ५ । ४ ॥

निकायश्छन्दः (यजु० १५ । ५) वायुर्वै निकायश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

निगदः ऊर्ग्वै रसो निगदः । कौ० १२ । १ ॥

निप्राभ्याः तद्यदेना उरसि इन्द्रः) न्यगृह्णात तस्मान्निप्राभ्या नाम । श०
३ । ६ । ४ । १५ ॥

निचाप्य (=दृष्ट्वा) अग्नेज्योतिर्निचाप्येत्यग्नेज्योतिर्दृष्टेत्येतत् । श० ६ ।
३ । १ । १३, ४१ ॥

निचृत (छन्दः) निचृन्निपूर्वस्य चृतेः । दे० ३ । २० ॥

निदाघः निदाघे वा नि नो ऽघं धीयाताऽइति । श० १३ । ८ । १ । ४ ॥

निधनकामम् (साम) अथैतन्निधनकामम् ३३ र्वेषां कामानामवरुध्यै ।
तां० १२ । ९ । १२ ॥

निधनम् (साम) अनायतनं वा एतत्साम यदनिधनम् । तां० ५ । २ । ५ ॥

„ अथ यदस्यां दिशि (=पृथिव्यां) या देवता ये मनुष्या
ये पशवो यदन्नाद्यं तत्सर्वं निधनेनाप्नोति । जै० उ० १
३१ । ६ ॥

„ अस्तमितः (आदित्यः) एव निधनम् । जै० उ० १
१२ । ४ ॥

„ चन्द्रमा नक्षत्राणि पितर एतन्निधनम् । जै० उ० १ ।
१६ । २ ॥

„ (प्रजापतिः) निधनम्पितृभ्यः (प्रायच्छत्) । जै० उ०
१ । १२ । २ ॥

„ अमावास्या निधनम् । ष० ३ । १ ॥

„ प्रजापतिरेव निधनम् । जै० उ० १ । ५ । ६ ॥

„ (प्रजापतिः) हेमन्तं निधनं (अकरोत्) । जै० उ० १ ।
१२ । ७ ॥

निधनम् (साम) हेमन्तो निधनम् । ष० ३ । १ ॥

१) (प्रजापतिः) छन्दो निधनम् (अकरोत्) । जै० उ० १ ।

१३ । ३ ॥

२) (प्रजापतिः) श्रोत्रं निधनम् (अकरोत्) । जै० उ० १ ।

१३ । ५ ॥

३) (प्रजापतिः) वृष्टिं निधनम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । १ ॥

४) दिश एष निधनम् । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥

५) मज्जा निधनम् । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥

६) वीर्यं वै निधनम् । तां० ७ । ३ । १३ ॥

७) प्रतिष्ठा वै निधनम् । कौ० २७ । ६ ॥ २६ । ३ ॥

निधा पाशा वै निधा । ऐ० ३ । १६ ॥

निधिः पृथिवी ह्येष निधिः । श० ६ । ५ । २ । ३ ॥

निनर्दः बलं निनर्दः । गो० उ० ६ । १२ ॥

निमेषः निमेषो वषट्कारः । तै० २ । १ । ५ । ६ ॥

नियुतः पशवो वै नियुतः । तां० ४ । ६ । ११ ॥ श० ४ । ४ । १ । १७ ॥

१) उदानो वै नियुतः । श० ६ । २ । २ । ६ ॥

निरुक्तम् (गानम्) एतद्वै गायत्रस्य क्रूरं यन्निरुक्तम् (गानम्) । तां० ७ । १ । २ ॥

२) उच्चैर्निरुक्तमनुब्रूयादेतद्ध वा एकं वाचो ऽनन्ववसितं पाप्मना यन्निरुक्तं तस्मान्निरुक्तमनुब्रूयाद्यजमानस्यैव पाप्मनो ऽपहत्यै । कौ० ११ । १ ॥

३) परिमितं वै निरुक्तम् ॥ श० ५ । ४ । ४ । १३ ॥

४) निरुक्ता हि वाङ् निरुक्तो हि मन्त्रः । श० १ । ४ । ४ । ६ ॥

निर्ऋतिः इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिरियं वै तं निरर्पयति यो निर्ऋच्छ्यति । श० ७ । २ । १ । ११ ॥

५) इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिः । श० ५ । २ । ३ । ३ ॥

६) इयं (पृथिवी) निर्ऋतिः । तै० १ । ६ । १ । १ ॥

७) निर्ऋत्यै मूलवर्हणी (=मूलनक्षत्रमिति सायणः) । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥ (३ । १ । २ । ३ ॥)

८) पाप्मा वै निर्ऋतिः । श० ७ । २ । १ । १ ॥

- निर्ऋतिः घोरा वै निर्ऋतिः । श० ७ । २ । १ । ११ ॥
 ,, तिग्मतेजा वै निर्ऋतिः । श० ७ । २ । १ । १० ॥
 ,, कृष्णा वै निर्ऋतिः । श० ७ । २ । १ । ७ ॥
 ,, नैर्ऋतो वै पाशः । श० ७ । २ । १ । १५ ॥
 ,, नैर्ऋता वै तुषाः । श० ७ । २ । १ । ७ ॥
 ,, निर्ऋतेर्वा पतन्मुखं यद्वयांसि यच्छकुनयः । ऐ० २ । १५ ॥
 ,, या वाऽ अपुत्रा पत्नी सा निर्ऋतिगृहीता । श० ५ । ३ । १ । ३ ॥
 निविदः निविद्भिर्न्यवेदयन्तन्निविदां निविद्वम् । तै० २ । २ । ८ । ५ ॥
 ,, (देवाः) निविद्भिर्न्यवेदवन् । श० ३ । ६ । ३ । २८ ॥
 ,, तं (यज्ञं) विद्वान् निविद्भिर्न्यवेदयन्त्यद्विद्वान् निविद्भिर्न्यवेद-
 यन्तन्निविदां निविद्वम् । ऐ० ३ । ६ ॥
 ,, अथो अन्नं निविद इत्याहुः । कौ० १५ । ३, ४ ॥
 ,, प्राणा वै निविदः । कौ० १५ । ३, ४ ॥
 ,, स्वर्गस्य ह्येष लोकस्य रोहो यन्निविद् । ऐ० ३ । १६ ॥
 ,, सौर्या वा पता देवता यन्निविदः । ऐ० ३ । ११ ॥
 ,, आदित्यां निविद । जै० ३० । ३ । ४ । २ ॥
 ,, अथ वै निविदसावेव यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष हीदं सर्वं
 निवेदयेन्नति । कौ० १४ । १ ॥
 ,, चक्षुर्निविद । जै० ३० । ३ । ४ । ३ ॥
 ,, यदन्तरात्मंस्तन्निविद । कौ० १५ । ३ ॥ गो० ३० । ३ । २१-२२ ॥
 ,, गर्भा वा पत उक्थानां यन्निविदः । ऐ० ३ । १० ॥
 ,, पेशा वा पत उक्थानां यन्निविदः । ऐ० ३ । १० ॥
 ,, क्षत्रं निविद । ऐ० २ । ३३ ॥ ३ । १६ ॥
 निषधः (सामविशेषः) निषधेन (वै दवाः पशून्) पर्यगृहणन् । तां० १५ ।
 ९ । ११ ॥
 ,, उत्सेधनिषेधौ ब्रह्मसामनी भवत उत्सेधेनवासैः
 पशून्नुत्सिध्य निषेधेन परिगृह्णाति । तां० १९ ।
 ७ । ४ ॥
 निष्केवल्यम् (शास्त्रम्) निष्केवल्यं बह्वचो देवताः प्राच्यः शरयःते बह्व्य
 ऊर्ध्वाः, अथैतदिन्द्रस्यैव निष्केवल्यं तन्निष्केवल्य-
 स्य निष्केवल्यत्वम् । कौ० १५ । ४ ॥

निष्केवल्यम्(शस्त्रम्)अत्मा यजमानस्य निष्केवल्यम् । ऐ० ८ । २ ॥
निष्च्या (नक्षत्रम्) निष्च्या हृदयम् (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) । तै० १ ।

५ । २ । २ ॥

„ (=“स्वातिः” इति सायणः) वायोर्निष्ठ्या । तै० १ ।
६ । १ । ३ ॥ ३ । १ । १ । १० ॥

„ यां कामयेत दुहितरं प्रिया स्यादिति । तान्निष्ठ्या-
यां दद्यात् । (पत्युः) प्रियैव भवति । नैव तु (पितुर्गृ-
हं) पुनरागच्छति । तै० १ । ५ । २ । ३ ॥

निहवः (सामविशेषः) ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षन्नापश्यन् स वसिष्ठो ऽका-
मयत् कथमिन्द्रं प्रत्यक्षं पश्येयमिति स एतन्नि-
हवमपश्यत्ततो वै स इन्द्रं प्रत्यक्षमपश्यत् । तां०
१५ । ५ । २४ ॥

„ सेन्द्रं वा एतत्साम यदेतत्साम भवति सेन्द्र-
त्वाय । तां० १५ । ५ । २४ ॥

„ निहवो भवत्यन्नाद्यस्यावरुष्यै । तां० १५ । ५ । २२ ॥

निहवानं छन्दः एतद्वै निहवानं छन्दो यन्न शंसिषमिति । तां० ८ । ६ । १२ ॥

नीवाराः स (बृहस्पतिः) नीवाराभिरवृणीत् । तन्नीवाराणां नीवारत्वम् ।
तै० १ । ३ । ६ । ७ ॥

„ अथ बृहस्पतये वाचे । नैवारं चरुं निर्वपति । श० ५ । ३ ।
३ । ५ ॥

„ स (बृहस्पतिः) एतं बृहस्पतये तिष्याय नैवारं चरुं पयसि
निरवपत् । तै० ३ । १ । ४ । ६ ॥

„ एतद्वै देवानां परममन्नं यन्नीवाराः । तै० १ । ३ । ६ । ८ ॥

„ एते ब्रह्मणा पच्यन्ते यन्नीवाराः । श० ५ । १ । ४ । १४ ॥

„ एते वै ब्रह्मणा पच्यन्ते यन्नीवाराः । श० ५ । ३ । ३ । ५ ॥

नृचक्षाः (यजु० १२ । २०) प्रजापतिर्वै नृचक्षाः । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

„ (यजु० १४ । २४) देवा वै नृचक्षसः । श० ८ । ४ । २ । ५ ॥

नृम्णम् (यजु० ३८ । १४) अमेन्यस्मे नृम्णानि धारयेत्यङ्गुध्यन्नो धनानि
धारयेत्येवैतदाह । (नृम्णानि=धनानि) । श० १४ । २ । ३० ॥

„ अन्नं वै नृम्णम् । कौ० २७ । ४ ॥

नृमणा (यजु० १२।१८) प्रजापतिर्वै नृमणा । श० ६।७।४।३, ५ ॥
नृवाहसा (यजु० २३।६) अहोरात्रे वै नृवाहसा (नृवाहसौ) । तै० ३।
९।४।३ ॥

नृषद् (यजु० १२।१४) प्राणो वै नृषन्मनुष्या नरस्तद्यो ऽयं मनुष्येषु
प्राणो ऽग्निस्तमेतदाह । श० ६।७।३।११ ॥

„ (यजु० १७।१२) प्राणो वै नृषद् । श० ९।२।१।८ ॥

„ एष (सूर्यः) वै नृषत् । ऐ० ४।२० ॥

नेष्टा पत्नीभाजनं वै नेष्टा । ऐ० ६।३ ॥ गो० ३०४।५ ॥

„ अग्निर्हि देवानां पात्नीवतो नेष्ट्विजाम् । कौ० २८।३ ॥

नैपातिथम् (ब्रह्मसाम) सामार्षेयवत् स्वर्गाय युज्यते स्वर्गाह्युक्तान् व्य-
वते तुष्टुवानः । तां० १४।१०।५ ॥

नैमिशीयाः एतेन (द्वादशसंवत्सराख्येन सत्रेण) वै नैमिशीयाः सर्वा-
मृद्धिमाधुर्वन् । तां० २५।६।४ ॥

नैषादः एतद्वा अवराध्यमन्नाद्यं यज्ञैषाद् । कौ० २५।१५ ॥

नौधसम् (साम) देवा वै ब्रह्म व्यभजन्त तान्नोधाः काक्षीवत आगच्छसे
ऽब्रुवन्नुषिर्न आगच्छस्तस्मै ब्रह्म ददामेति तस्मा
एतत्साम प्रायच्छन्यन्नोधसे प्रायच्छत्स्तरमान्नौध-
सम् । तां० ७।१०।१० ॥

„ बृहद्ध्येतत्परोक्षं यन्नौधसम् । तां० ७।१०।८ ॥

„ ब्रह्म वै नौधसम् । तां० ७।१०।१० ॥ ११।४।९ ॥

„ ब्रह्मवर्षसकाम एतेन (नौधसेन) स्तुधीत । तां० ७।
१०।११ ॥

न्यग्रोधः ते यन्न्यञ्जो ऽरोहंस्तस्मान्न्यङ्कं रोहति न्यग्रोहो न्यग्रोहो वै
नाम तन्नग्रोहं सन्नं न्यग्रोध इत्याचक्षते । ऐ० ७।३० ॥

„ न्यञ्जो न्यग्रोधा रोहन्ति । श० १३।२।७।३ ॥

„ अधि देवा यज्ञेनेष्टा स्वर्गे लोकमायंस्तत्रेतांश्चमसान्युष्जंस्तं
न्यग्रोधा अभवन् न्युञ्जा इति द्वाप्येनानेतद्वाचक्षते कुरुक्षेत्रे
ते ह प्रथमजा न्यग्रोधानां तेभ्यो हान्ये ऽधिजाताः । ऐ०
७।३० ॥

„ अस्थिभ्य एवास्थं स्वधाक्षवत्सं न्यग्रोधो ऽभवत् । श० १२।
७।१।९ ॥

न्यग्रोधः तेषां चमसानां रसो ऽवडैत्ते (न्यग्रोधस्य) ऽवरोधा अम-
 वन्नथ य ऊर्ध्वस्तानि फलानि ऐ० ७।३१ ॥
 ” परोक्षमिव ह वा एष सोमो राजा यन्न्यग्रोधः । ऐ० ७।३१ ॥
 ” क्षत्रं वा एतद्धनस्पतीनां यन्न्यग्रोधः । ऐ० ७।३१ ॥ ८।१६ ॥
 ” नैयग्रोधेन जन्यः (अभिषिञ्चति) । मित्राण्येवास्मै कल्पयति ।
 तै० १।७।८।७ ॥

न्यर्बुदम् यो वै वाचो भूमा । तन्न्यर्बुदम् । तै० ३।८।१६।३ ॥
 न्युब्जः “न्यग्रोधः” शब्दं पश्यत ।

न्यूखः अक्षं न्यूखः । कौ० २२।६, ८ ॥ २५।१३ ॥ ३०।५ ॥

” अक्ष वै न्यूखः । ऐ० ५।३ ॥ ६।२९, ३०, ३६ ॥ गो० ३०
 ६।८, १२ ॥

(प)

पक्षिणः ये वै विद्वाण्यसस्ते पक्षिणो ये ऽविद्वाण्यसस्ते ऽपक्षास्त्रि-
 वृत्पञ्चदशाधेव स्तोमौ पक्षौ कृत्वा स्वर्गं लोकं प्रयन्ति । तां०
 १४।१।१३ ॥

पक्षौ बृहद्द्रथन्तरे छन्दो घावापृथिवी देवते पक्षौ । श० १०।३ ।
 २।४ ॥

पङ्क्तिः (छन्दः) पङ्क्तिः पचिनी पञ्चपदा । ऐ० ३।१३ ॥

” पञ्चपदा पङ्क्तिः । ऐ० ५।१८, १६, २१ ॥ ६।२० ॥

कौ० १।३, ४ ॥ ११।२ ॥ १३।२ ॥ श० ९।२।

३।४१ ॥ तां० १२।१।६ ॥ गो० पू० ४।२४ ॥

गो० ३० ४।४ ॥

” अथ यः पङ्क्तिः पञ्चपदां सप्तदशाक्षरां सर्वैर्यज्ञैर्यजमानं
 स्वर्गं लोकमभिवहन्तीं विधात... । गो० पू० ३।८ ॥

” पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः । तै० २।७।१०।२ ॥

” यस्य दश ताः पङ्क्तिम् । कौ० ६।२ ॥

” चत्वारिंशदक्षरा पङ्क्तिः । कौ० १७।३ ॥

” पंक्तिविष्णोः पक्षी । गो० ३० २।६ ॥

” पङ्क्तिश्छन्दो मरुतो देवता ष्ठीवन्तौ । श० १०।३ ।
 ३।१० ॥

- पङ्क्तिः (छन्दः) पङ्क्तिर्वै तन्द्रं छन्दः । श० ८ । २ । ४ । ३ ॥ ८ । ५ ।
२ । ६ ॥
- ” पृथुरिव वै पङ्क्तिः । श० १२ । २ । ४ । ६ ॥ गो० पू०
५ । ४ ॥
- ” पक्षौ पङ्क्तयः । श० ८ । ६ । २ । ३, १२ ॥
- ” श्रोत्रं पङ्क्तिः । श० १० । ३ । १ । १ ॥
- ” पङ्क्तिरूर्ध्वा (दिक्) । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥
- ” पाङ्क्त्यु ह्यन्नम (अह्यं खाद्यं चोष्यं लेह्यं पेयमिति
सायणः) । तां० ५ । २ । ७ ॥
- ” पाङ्क्तमन्नम । तां० १२ । १ । ६ ॥
- ” पङ्क्तिर्वा अन्नम । ऐ० ६ । २० ॥
- ” अन्नं वै पङ्क्तिः । गो० उ० ६ । २ ॥
- ” प्रतिष्ठा वै पङ्क्तिः । कौ० ११ । ३ ॥ १७ । ३ ॥
- ” पाङ्क्त इतर आत्मा लोम त्वङ्क् माणुसमस्थि मज्जा ।
तां० ५ । १ । ४ ॥
- ” पाङ्क्तो ऽयं पुरुषः पंचधा विहितो लोमानि त्वङ्क्
मांसमस्थि मज्जा । ऐ० २ । १४ ॥ ६ । २९ ॥
- ” पाङ्क्तः पुरुषः । कौ० १३ । २ ॥ तां० २ । ४ । २ ॥
गो० उ० ४ । ७ ॥
- ” यजमानच्छन्दसं पङ्क्तिः । कौ० १७ । २ ॥
- ” पाङ्क्तः पशुः । श० १ । ५ । २ । १६ ॥
- ” पाङ्क्ताः पशवः । ऐ० ३ । २३ ॥ ४ । ३ ॥ ५ । ४, ६,
१८, १९ ॥ कौ० १३ । २ ॥ तै० १ । ६ । ३ । २ ॥
तां० २ । ४ । २ ॥ गो० उ० ३ । २० ॥ ४ । ७ ॥
- ” पांक्तो यज्ञः । श० १ । ५ । २ । १६ ॥ गो० पू० ४ ।
२४ ॥ गो० उ० २ । ३ ॥ ३ । २० ॥ ४ । ४, ७ ॥
- ” पाङ्क्तो वै यज्ञः । ऐ० १ । ५ ॥ ३ । २३ ॥ ५ । ४,
१८, १९ ॥ कौ० १ । ३, ४ ॥ २ । १ ॥ १३ । २ ॥
तै० १ । ३ । ३ । १ ॥ तां० ६ । ७ । १२ ॥
- ” पाङ्क्तं हि पञ्चममहः । कौ० २६ । ५ ॥

- पञ्च चूडाः (इष्टकाः) होत्राः पञ्च चूडाः । श० ८ । ६ । १ । ११ ॥
- „ याः (अमुष्मादादित्यात्) पराच्यः (पञ्च दिशः)
ताः पञ्च चूडाः । श० ८ । ६ । १ । १४ ॥
- „ मिथुनं पञ्च चूडाः । श० ८ । ६ । १ । १२ ॥
- „ प्रजा पञ्च चूडाः । श० ८ । ६ । १ । १३ ॥
- पञ्च जनाः देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितृणां चैतेषां
वा एतत्पञ्चजनानामुक्थम् (यद्वैश्वदेवम्) । ऐ० ३ । ३१ ॥
- „ विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना इति । ये देवा असुरेभ्यः पूर्वं
पञ्च जना आसन् य एवासावादित्ये पुरुषो यश्चन्द्रमसि यो
विद्युति यो ऽप्सु यो ऽयमक्षन्तरेष एव ते । तदेषा
(अदितिः) एव । जै० उ० १ । ४१ । ७ ॥
- पञ्चदशः (स्तोमः) क्षत्रं वा एतदहरभिर्निर्वदति यत्पञ्चदशम् । तां०
११ । ११ । ८ ॥
- „ क्षत्रं पञ्चदशः । ऐ० ८ । ४ ॥ तां० १६ । १७ । ३ ॥
- „ तस्माद्राजन्यस्य पञ्चदश स्तोमः । तां० ६ । १ । ८ ॥
- „ तान् (पशून्) इन्द्रः पञ्चदशेन स्तोमेन नामोत् ।
तै० २ । ७ । १४ । २ ॥
- „ ग्रीष्मेण देवा ऋतुना रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् । बृहता
यशसा बलम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ ।
१९ । १ ॥
- „ ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं पञ्चदशः । ऐ० ८ । ३, ४ ॥
- „ ओजो वीर्यं पञ्चदशः । तां० ११ । ६ । ११ ॥ ११ ।
११ । १४ ॥ २० । १० । १ ॥
- „ तं (पञ्चदशं स्तोमं) वोजो बलमित्याहुः । तां० १० ।
१ । ६ ॥
- „ वीर्यं पञ्चदशः । ऐ० ८ । ४ ॥
- „ त्रैष्टुभः पञ्चदशस्तोमः । तां० ५ । १ । १४ ॥
- „ पञ्चदशो वै वज्रः । कौ० ७ । २ ॥ १५ । ४ ॥ ष० ३ ।
४ ॥ तै० २ । २ । ७ । २ ॥ तां० २ । ४ । २ ॥ श० १ ।
३ । ५ । ७ ॥ ३ । ६ । ४ । २५ ॥

- पञ्चदशः (स्तोमः) पञ्चदशो हि वज्रः । श० ४ । ३ । ३ । ४ ॥
 „ वज्रो वै पञ्चदशः । तां० १६ । २ । ५ ॥
 „ पञ्चदश एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
 „ चन्द्रमा वै पञ्चदशः । एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते
 पञ्चदश्यामापूर्यते । तै० १ । ५ । १० । ५ ॥
 „ अर्द्धमासः पञ्चदशः । तां० ६ । २ । २ ॥
 „ अर्द्धमास एव पञ्चदशस्यायतनम् । तां० १० ।
 १ । ४ ॥
 „ यत्पञ्चदशो यदेवास्य (यजमानस्य) उरस्तो बाह्वो-
 रपूतं तत्तेनापहन्ति । तां० १७ । ५ । ६ ॥
 „ ग्रीवाः पञ्चदशश्चतुर्दश ह्येवैतस्यां करूकराणि
 भवन्ति वीर्यं पञ्चदशम् । गो० पू० ५ । ३ ॥
 „ प्राणो वै त्रिवृदात्मा पञ्चदशः । तां० १६ । ११ । ३ ॥
 „ पञ्चदशश्चैकविंशश्च बर्हातौ तौ गौश्चाविश्चान्व-
 सुज्येतां तस्मात्तौ बर्हतं प्राचीनं भास्करुतः । तां०
 १० । २ । ६ ॥

पञ्चबिलः तद्यत्पञ्च हवींषि भवन्ति तेषां पञ्च बिलानि तरमाचरुः
 पञ्चबिलो नाम । श० ५ । ५ । १ । १ ॥

पञ्चममहः पाङ्कं हि पञ्चममहः । कौ० २९ । ५ ॥

„ पशवः पञ्चममहः । कौ० २३ । ४ ॥

„ विषुवान्वे पञ्चममहः । तां० १३ । ४ । १६ ॥ १३ । ५ । १० ॥

पञ्चमी चित्तिः यजमान एव पञ्चमी चित्तिः । श० ८ । ७ । ४ । १६ ॥

„ ग्रीवा एव पञ्चमी चित्तिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥

पञ्चविंशः (स्तोमः) एतेन वै गौराङ्गिरसः सर्वं पाप्मानमतत्सर्वं पाप्म-
 नन्तरत्येतेन स्तोमेन तुष्टुवानः । तां० ६६ । ७ । ७ ॥

„ चतुर्विंशो वै संवत्सरो ऽन्नं पञ्चविंशम् ।
 तां० ४ । १० । ५ ॥

„ “ गर्भाः पञ्चविंशः ” शब्दमपि पश्यत ।

पञ्च व्याहृतयः तां प्रा एताः पञ्च व्याहृतयो भवन्त्यो श्रावयास्तु औष-
 ङ्गज ये यजामहे वीषडिति । श० १ । ५ । २ । १६ ॥

पञ्चव्याहृतयः ओ श्रावयेति वै देवाः । विराजमभ्याजुदुखुरस्तु भौष-
डिति वत्समुपावासृजन् यजेत्युदजयन्ते यजामहऽ इत्यु-
पासीदन्वषट्कारेणैव विराजमदुहतेयं (पृथिवी) वै
विराडस्यै वाऽ एष दोहः । श० १ । ५ । २ । २० ॥

” ओ श्रावयेति वै देवाः । पुरोवात० ससृजिरे ऽस्तु
भौषडित्यभ्राणि समप्लावयन्त्यजेति विद्युतं ये यजामह
इति स्तनयित्तुं वषट्कारेणैव प्रावर्षयन् । श० १ । ५ ।
२ । १८ ॥

पञ्चहोता तस्मै (ब्रह्मणे) पञ्चम० हृतः प्रत्यशृणोत् । स पञ्चहृतो
ऽभवत् पञ्चहृतो ह वै नभिषः । तं वा एतं पञ्चहृत० सन्तं
पञ्चहोतेत्याचक्षते परोक्षप्रिया इव हि देवाः । तं० २ । ३ ।
११ । ३-४ ॥

” संवत्सरो वै पञ्चहोता । तै० २ । २ । ३ । ६ ॥

” अग्निः पञ्चहोत्रा । तै० २ । २ । ८ । ४ ॥

” अग्निः पञ्चहोता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥

” अग्निः पञ्चहोतृणां होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥

” सुवर्ग्यो वै पञ्चहोता । तै० २ । २ । ८ । २ ॥

” चातुर्मास्यानि पञ्चहोतुः (निदानम्) । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥

पञ्चाक्षाः क्रिवय इति ह वै पुरा पञ्चालानाचक्षते । श० १३ । ५ ।
४ । ७ ॥

” तस्मादस्यां भ्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां द्विशि ये कं च
कुरुपञ्चालानां राजानः सवशोशीनराणां राज्यायैव ते
ऽभिषिच्यन्ते राजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

पतङ्गः पतञ्जिव ह्येष्वङ्गेष्वति रथमुदीरते । पतङ्ग इत्याचक्षते । जै०
३० ३ । ३५ । २ ॥

” (ऋ० १० । १७७ । १) प्राणो वै पतङ्गः । कौ० ८ । ४ । जै०
३० ३ । ३५ । २ ॥ ३ । ३६ । २ ॥

पतिः तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सहपतयः ।
ऐ० ३ । २३ ॥

” तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति न हैकस्या बहवः सहपतयः ।
गो० ३० ३ । २० ॥

- पत्नी श्रियै वाऽ एतद्रूपं यत्पत्न्यः । श० १३ । २ । ६ । ७ ॥
- „ श्रिया वा एतद्रूपम् । यत्पत्न्यः । तै० ३ । ६ । ४ । ७—८ ॥
- „ गृहा वै पत्न्यै प्रतिष्ठा । श० ३ । ३ । १ । १० ॥
- „ गार्हपत्यभाजो वै पत्न्यः । कौ० ३ । ६ ॥
- „ अयन्नो वा एषः । योऽपत्नीकः । तै० २ । २ । २ । ६ ॥
- „ तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत् । ऐ० ७ । ६ ॥
- „ अथो अर्द्धो वा एष आत्मनः । यत्पत्नी । तै० ३ । ३ । ३ । ५ ॥
- „ जघनार्धो वाऽ एष यज्ञस्य यत्पत्नी । श० १ । ३ । १ । १२ ॥ २ । ५ । २ । २६ ॥ ३ । ८ । २ । २ ॥
- „ पूर्वार्धो वै यज्ञस्याध्वर्युर्जघनार्धः पत्नी । श० १ । ९ । २ । ३ ॥
- „ पत्नी धारया । गो० उ० ३ । २१, २२ ॥ ऐ० ३ । २३ ॥
- „ पत्नी स्थाली । तै० २ । १ । ३ । १ ॥
- „ पत्नीभाजनं वै नेष्टा । ऐ० ६ । ३ ॥ गो० उ० ४ । ५ ॥
- „ मन्तभाजो वै पत्न्यः । कौ० १६ । ७ ॥
- „ चतस्रो जायाः (=पत्न्यः) उपङ्कृता भवन्ति । महिषी वावाता परिवृक्ता पालागली । श० १३ । ४ । १ । ८ ॥
- „ सा (सुकन्या) होवाच यस्मै मां पिताऽदानैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति । श० ४ । १ । ५ । ९ ॥
- (“जाया,” “योषा,” “स्त्री” इत्येतानपि शब्दान् पश्यत)
- पथिकृत अग्निर्वै पथिकृत । कौ० ४ । ३ ॥
- „ अग्निर्वै पथः कर्ता । श० ११ । १ । ५ । ६ ॥
- पथ्या स्वस्तिः वाग्वै पथ्या स्वस्तिः । कौ० ७ । ६ ॥ श० ३ । २ । ३ । ८ ॥ ४ । ५ । १ । ४ ॥
- „ वाग्ध्येषा (पथ्या स्वस्तिः) निदानेन । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥
- „ सा (पथ्या स्वस्तिः) उदीचीं दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥
- „ उदीचीमेव दिशम् । पथ्यया स्वस्त्या प्राजानंस्तस्माद्भ्रो-
त्तराहि वाग्वदति कुरुपञ्चालम् । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥
- „ (हे देवा! यूयं) स्र्यैव (पथ्यया) प्रार्चीं दिशं प्राजानाथ ।
ऐ० १ । ७ ॥

पथ्या स्वस्तिः यत्पथ्यां (=अदितिं) यजति तस्मादसौ (आदित्यः) पुर
उदेति पश्चाऽस्तमेति पथ्यां होषो ऽनुसंचरति । ऐ०
१ । ७ ॥

” पथ्या पूष्णः पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥
पदनिधनम् (साम) इमं वाव देवा लोकं पदनिधनेनाभ्यजयन् । तां०
१० । १२ । ३ ॥

पदपङ्क्तिशब्दः (यजु० १५ । ४) अयं वै लोकः पदपङ्क्तिश्छन्दः । श०
८ । ५ । २ । ४ ॥

पदम् आत्मा वै पदम् । कौ० २३ । ६ ॥

पदस्तोमः (सामविशेषः) पदोरुत्तममपश्यत्तत्पदस्तोमस्य पदस्तोमत्वम् ।
तां० १३ । ५ । २४ ॥

” इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्तं षोडशभिर्भोगैः
पर्यभुजत्स एतं पदस्तोममपश्यत्तेनापावेष्टयद-
पवेष्टयन्निव गायेत् पाप्मनो ऽपहत्यै । तां० १३ ।
५ । २२ ॥

पथा (विराट्) पथ्या वै देवाः स्वर्गे लोकमायन् । तां० ८ । ५ । ७ ॥

पयः यत्पयस्तद्रेतः । गो० उ० २ । ६ ॥

” पयो हि रेतः । श० ६ । ५ । १ । ५६ ॥

” रेतः पयः । शं० १२ । ४ । १ । ७ ॥

” (अग्निः) तां (गां) सम्बभूव तस्याऽऽ (गवि) रेतः प्रासिञ्च-
त्तपयो ऽभवत् । श० २ । २ । ४ । १५ ॥

” तस्मात्प्रथमदुग्धं (पयः) उष्णं भवत्यग्नेर्हि रेतः । श० २ । २ ।
४ । १६ ॥

” समानजन्म वै पयश्च हिरण्यञ्चोभयऽऽ ह्यग्निरेतसम् । श० ३ ।
२ । ४ । ५ ॥

” क्षत्रं वै पयः । श० १२ । ७ । ३ । ८ ॥

” (यज्ञस्य) प्राणः पयः । श० ६ । ५ । ४ । १५ ॥ ६ । २ । ३ । ३१ ॥

” अन्तर्हितमिव वा एतद्यत्पयः । तां० ६ । ६ । ३ ॥

” (यजु० १२ । ११३ ॥) रसो वै पयः । श० ४ । ४ । ४ । ६ ॥ ७ ।
३ । १ । ४६ ॥

- पयाः आपो हि पयः । कौ० ५ । ४ ॥ गो० उ० १ । २२ ॥
- „ अपामेष ओषधीनां रसो यत्पयः । श० १२ । ८ । २ । १३ ॥
- „ एष ह वै सर्वासामोषधीनां रसो यत्पयः । कौ० २ । १ ॥
- „ पयो वा ओषधयः । तै० ३ । ७ । १ । ५, ६, ७, ८ ॥
- „ सोमः पयः । श० १२ । ७ । ३ । १३ ॥
- „ सौर्य्यं पयः । तै० ३ । ९ । १७ । ४ ॥
- „ जागतमयनं भवति पशुकामस्येडानिधनं पयसामुष्मिँल्लोक
उपतिष्ठते । तां० १३ । ४ । १० ॥
- „ पेन्द्रं पयः । गो० उ० १ । २२ ॥
- „ तद्यदेवात्र पयस्तन्मित्रस्य, सोम एव वरुणस्य । श० ४ । १ ।
४ । ६ ॥
- „ वैश्वदेवं हि पयः । गो० उ० १ । १७ ॥
- „ पितृदेवत्यं पयः । कौ० १० । ६ ॥
- „ वायव्यं पयो भवति । श० २ । ६ । ३ । ६ ॥
- „ स (वनस्पतिः) उ वै पयोभाजनः । कौ० १० । ६ ॥
- पयसा यदस्मात् (प्रजापतेः) तद्रेतः परापतदेषा सा पयस्या मैत्रा-
वरुणी । श० ६ । ५ । १ । ५६ ॥
- „ मैत्रावरुणी पयस्या । श० २ । ४ । ४ । १४ ॥
- „ मैत्रावरुणि पयस्या भवति । श० ५ । ५ । १ । १ ॥
- „ मित्रावरुणयोः पयस्या । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥
- „ एतद्वै मित्रावरुणयोः स्वं हविर्यत्पयस्या । कौ० १८ । १२ ॥
- „ संस्थितायां चोदवसानीयायां मैत्रावरुण्या पयस्यया यजेत
तस्या उक्तं ब्राह्मणं नैतयानिष्ठाग्निचिन्मैथुनं चरेतेति । कौ०
१९ । ७ ॥
- „ योषा पयस्या रेतो वाजिनम् । श० २ । ४ । ४ । २१ ॥ २ । ५ ।
१ । १६ ॥
- परं रजः (यजु० १३ । ४४) ओत्रं वै परं रजो दिशो वै ओत्रं, दिशः
परं रजः । श० ७ । ५ । २ । २० ॥
- परमं व्योम (यजु० १३ । ४२, ४४) इमे वै लोकाः परमं व्योम । श०
७ । ५ । २ । १८, २० ॥

परमपुरुषः यो विद्युति स परमपुरुषः । जै० उ० १ । २७ । २ ॥

परमम अन्तो वै परमम् । ऐ० ५ । २१ ॥

परमा परावत् अनुष्टुब् वै परमा परावत् । ऐ० ३ । १५ ॥

परमेष्ठी (यजु० १४ । ९) आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठी ता हि परमे स्थाने
तिष्ठन्ति । श० ८ । २ । ३ । १३ ॥

” तत एतं परमेष्ठी प्राजापत्यो यज्ञमपश्यद्यद्दर्शपूर्णमासौ ताभ्या-
मयजत.....स आपो ऽभवत्..... परमाद्वाऽ एतत्स्थानाद्वर्षति
यद्विवस्तस्मात्परमेष्ठी नाम । श० ११ । १ । ६ । १६ ॥

” अयं वा इदं परमो ऽभूदिति । तत्परमेष्ठिनः परमेष्ठित्वम् ।
तै० २ । २ । १० । ५ ॥

” परमेष्ठी वा एषः । यदोदनः । तै० १ । ७ । १० । ६ ॥

” ऋतमेव परमेष्ठी । तै० १ । ५ । ५ । १ ॥

” परमेष्ठी स्वाराज्यम् । परमेष्ठितां गच्छति य एवं वेद । तां०
१९ । १३ । ३, ४ ॥ २२ । १८ । ४, ५ ॥

” प्रजापतिं विध्वस्तं देवता आदाय व्युदकामंस्तस्य (प्रजापतेः)
परमेष्ठी शिर आदायोत्कम्यातिष्ठत् । श० ८ । ७ । ३ । १५ ॥

परशुः वज्रो वै परशुः । श० ३ । ६ । ४ । १० ॥

पराकः (त्रिरात्रः) यद्वा एतस्याकन्तदस्य पराक् तत् पराक्तस्य परा-
कत्वम् । तां० २१ । ८ । ३ ॥

” पराङ्घ्रैतेन स्वर्गं लोकमाक्रमते । तां० २१ । ८ । २ ॥

” पराकेण वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् । स्वर्गकामो
यजेत । तां० २१ । ८ । २ ॥

पराग्वसुः अर्वाग्वसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा पराग्वसुरसुराणाम् । गो० उ०
१ । १ ॥

(“ पराग्वसुः ” शब्दमपि पश्यत)

पराधि (परःसामाख्यान्यहानि) परैर्वै देवा आदित्यं सुवर्गं लोकमपारयन्
यदपारयन् तत् पराणां परत्वम् । तै०
१ । २ । ४ । ३ ॥

” परैर्वै देवा आदित्यं स्वर्गं लोकमपार-
यन् यदपारयंस्तत्पराणां परत्वम् ।

[परिमादः

(२६२)

("स्पराणि" शब्दमपि पश्यत) । तां०

४ । ५ । ३ ॥

परावतः (ऋ० १० । ६३ । १) अन्तो वै परावतः । ऐ० ५ । २ ॥ कौ०
२२ । ५ ॥ २३ । ७ ॥

परावसुः परावसुर्ह वै नामासुराणां^{११} होता । श० १ । ५ । १ । २३ ॥

("परावसुः" शब्दमपि पश्यत)

परिचित् अग्निर्हीमाः प्रजा परिक्षेत्यग्निं हीमाः प्रजाः परिक्षियन्ति । ऐ०
६ । ३२ ॥

„ अग्निर्वै परिचित् । ऐ० ६ । ३२ ॥ गो० उ० ६ । १२ ॥

„ संवत्सरो वै परिचित् संवत्सरो हीदं सर्वं परिक्षियतीति ।
गो० उ० ६ । १२ ॥

„ संवत्सरो वै परिचित् । ऐ० ६ । ३२ ॥

परिचरा यजमानः परिचरा । तां० ३ । १ । ३ ॥ ३ । ३ । २ ॥ ३ । ८ ।
३ ॥ ३ । १२ । ३ ॥

परितस्थुषः इमे वै लोकाः परितस्थुषः । तै० ३ । ९ । ४ । २ ॥

परिधयः परिधीन् परिदधाति । श० १ । ३ । ३ । १३ ॥

„ दिशः परिधयः । ऐ० ५ । २८ ॥ तै० २ । १ । ५ । २ ॥

„ इमे वै लोकाः परिधयः । तै० ३ । ८ । १८ । ४ ॥

„ गुप्त्यै वाऽ अभितः परिधयो भवन्ति । श० १ । ३ । ४ । ८ ॥

परिधानीया दिशः परिधानीया । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

„ श्रोत्रम्परिधानीया । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

„ प्रतिष्ठा परिधानीया । कौ० १५ । ३ ॥ १६ । ४ ॥

„ प्रतिष्ठा वै परिधानीया । गो० उ० ३ । २१, २२ ॥

परिपतिः मनो वै परिपतिः । गो० उ० २ । ३ ॥

परिप्लवम् देवचक्रं वा एतत्परिप्लवम् । कौ० २० । १ ॥

परिभूश्छन्दः (यजु० १५ । ४) दिशो वै परिभूश्छन्दः । श० ८ । ५ ।
२ । ३ ॥

परिभरः यो ह वै ब्रह्मणः परिभरं वेद पर्येनं द्विषन्तो भ्रातृव्याः परि
सपत्ना म्रियन्ते । ऐ० ८ । २८ ॥

परिमादः (बहुवचने) त्वक् च वा एतल्लोम च महाव्रतस्य यत्परिमादः ।
तां० ५ । ६ । ११ ॥

- परिवत्सरः सूर्यः परिवत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥
- „ आदित्यः परिवत्सरः । तै० १ । ४ । १० । १ ॥
- „ परिवत्सरो बलिवर्दः । तै० ३ । ८ । २० । ५ ॥
- परिवापः (= लाजा इति सायणः) भारत्यै परिवापः । तै० १ । ५ । ११ । २ ॥
- „ अन्नमेव परिवापः । ऐ० २ । २४ ॥
- परिवृत्ती (= परिवृक्ता) या वा अपुत्रा पत्नी सा परिवृत्ती (परिवृक्ती) । श० ५ । ३ । १ । १३ ॥
- „ सुवरिति परिवृक्ती । तै० ३ । ९ । ४ । ५ ॥
- परिश्रित् योनिर्वै परिश्रितः । श० ७ । १ । १ । १२ ॥
- „ परिश्रिद्धिरेवास्य रात्रीरामोति । श० १० । ४ । ३ । १२ ॥
- „ परिश्रित एव श्रीस्तद्धि रात्रीणां रूपम् । श० १० । २ । ६ । १७ ॥
- „ अस्थीन्येव श्रीस्तद्धि परिश्रितां रूपम् । श० १० । २ । ६ । १८ ॥
- „ अस्थीनि वै परिश्रितः । श० ७ । १ । १ । १५ ॥
- „ लोमानि वै परिश्रितः । श० ६ । १ । १ । १० ॥
- „ तस्य (अस्य लोकस्य) आप एव परिश्रितः । श० १० । ५ । ४ । १ ॥
- „ आपः परिश्रितः । श० ७ । १ । १ । १३ ॥ ६ । २ । १ । २० ॥
- „ आपो वै परिश्रितः । श० ६ । ४ । ३ । ६ ॥
- परिष्टुब्धेडम् (साम) (देवाः) अन्तरिक्षं परिष्टुब्धेडेन (अभ्यजयन्) । तां० १० । १२ । ४ ॥
- परिष्टोमन्ती परिष्टोमन्ती त्रिष्टुप् । तां० १२ । १ । २ ॥
- परिसारकम् तस्माद्धाप्येतर्हि परिसारकमित्याचक्षते यदेन सरस्वती समंतं परिसार । ऐ० २ । १६ ॥
- परिक्षुत् शिश्नादेवास्य रसो ऽन्नवत्सा परिक्षुदभवत् । श० १२ । ७ । १ । ७ ॥
- „ नैव सोमो न सुरा यत् परिक्षुत् । श० ५ । १ । २ । १४ ॥
- परीशासौ इमे वै घावापृथिवी परीशासौ । श० १४ । २ । १ । १६ ॥

[पर्णः

(२६४)

परुच्छेपः असुरीन्द्रं प्रत्यक्रमत पर्वन्पर्वन्मुष्कान्कृत्वा तामिन्द्रः प्रतिजि-
गीषन्पर्वन्पर्वच्छेपांस्यकुहृत । कौ० २३ । ४ ॥

„ इन्द्र उ वै परुच्छेपः । कौ० २३ । ४ ॥

परो रजाः एष वाव स परो रजा इति होवाच । य एष (सूर्यः) तपति ।
तै० ३ । १० । ९ । ४ ॥

पर्जन्यः (अर्वाग्वसुः=पर्जन्यः, यजु० १५ । १९) अथ यदर्वाग्वसुरि-
त्याहातो (पर्जन्यात्) ह्यर्वाग्वसु वृष्टिरन्नं प्रजाभ्यः प्रदीयते ।
श० ८ । ६ । १ । २० ॥

„ पर्जन्यो मे मूर्द्धिन्न श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ८ ॥

„ पर्जन्यो वा उद्गाता । श० १२ । १ । १ । ३ ॥

„ क्रन्दतीव हि पर्जन्यः । श० ६ । ७ । ३ । २ ॥

„ पर्जन्यः सदस्यः । गो० पू० १ । १३ ॥

„ पर्जन्यः (संवत्सरस्य) वसोर्धारा । तै० ३ । ११ । १० । ३ ॥

„ तान् (देवान्) आदित्यः पर्जन्यः पुरोबलाको भूत्वा
ऽभिप्रैत्तान् वृष्ट्या ऽशन्या विद्युता ऽहन् । ष० १ । २ ॥

„ पर्जन्यो वै भवः पर्जन्याद्धीदृग् सर्वं भवति । श० ६ । १ ।
३ । १५ ॥

„ पर्जन्यो वा अग्निः । श० १४ । ६ । १ । १३ ॥

„ षड्भिः पार्जन्यैर्वा मारुतैर्वा (पशुभिः) वर्षासु (यजते) ।
श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥

„ तौ (अनड्वाहौ) यदि कृष्णौ स्यातामन्यतरो वा कृष्णस्तत्र
विद्याद्वर्षिष्यत्यैष्मः पर्जन्यो वृष्टिमान् भविष्यतीति । श० ३ ।
३ । ४ । ११ ॥

पर्णः (=पलाशः) तस्य (सोमस्य) पर्णमच्छिद्यत तत्पर्णोभवत् तत्प-
र्णस्य पर्णत्वम् । तै० १ । १ । ३ । १० ॥ ३ । २ । १ । १ ॥

„ तृतीयस्यामितो द्विषि सोम आसीत् । तं गायत्र्या-
हरत् । तस्य पर्णमच्छिद्यत । तत्पर्णो ऽभवत् ।
तत्पर्णस्य पर्णत्वम् । तै० १ । १ । ३ । १० ॥ ३ ।
२ । १ । १ ॥

- पणः (=पलाशः) यत्र वै गायत्री सोममच्छापतत्तदस्याऽ आहरन्त्याऽ
अपादस्ताभ्यायत्य पर्णं प्रचिच्छेद गायत्र्यै वा सोम-
स्य वा ब्रह्मस्तत्पतित्वा पर्णो ऽभवत्तस्मात्पर्णो नाम ।
श० १ । ७ । १ । १ ॥
- ” गायत्रो वै पर्णः । तै० ३ । २ । १ । १ ॥
- ” सोमो वै पर्णः । श० ६ । ५ । १ । १ ॥
- ” ब्रह्म वै पर्णः । तै० १ । ७ । १ । ६ ॥ ३ । २ । १ । १ ॥
- ” देवा वै ब्रह्मन्नवदन्त । तत्पर्णं उपाश्रणोत् । सुश्रवा
वै नाम । तै० १ । १ । ३ । ११ ॥
- ” देवानां ब्रह्मवादं वदतां यत् । उपाश्रणोः सुश्रवा वै
श्रुतो ऽसि । ततो मामाविशतु ब्रह्मवर्चसम् । तै० १ ।
२ । १ । ६ ॥
- ” पर्णमयेनाध्वर्युरभिषिञ्चति । तै० १ । ७ । ८ । ७ ॥
(“पलाशः” शब्दमपि पश्यत)
- पर्यायः यत्पर्यायैः पर्यायमनुदन्त तत्पर्यायाणां पर्यायत्वम् । ऐ०
४ । ५ ॥
- ” यत्पर्यायैः पर्यायमनुदन्त तस्मात्पर्यायाः तत्पर्यायाणां
पर्यायत्वम् । गो० ३० । ५ । १ ॥
- ” (देवाः) तान् (असुरान्) समन्तं पर्यायं प्राणुदन्त यत्प-
र्यायं प्राणुदन्त तत्पर्यायाणां पर्यायत्वम् । तां० ६ । १ । ३ ॥
- पर्यासः प्रतिष्ठा वै पर्यासाः । कौ० २५ । १५ ॥
- पर्शवः (बहुवचने) तस्मादिमा उभयत्र पर्शवो बद्धाः कीकसासु च
जत्रुषु च । श० ८ । ६ । २ । १० ॥
- ” पर्शव उ ह वै बद्धक्रयः । कौ० १० । ४ ॥
- ” पर्शवो बृहत्यः । श० ८ । ६ । २ । १० ॥
- पलाशः माण्डसेभ्य एवास्य (प्रजापतेः) पलाशः समभवत् तस्मात्स
बहुरस लोहितरसः । श० १३ । ४ । ४ । १० ॥
- ” सर्वेषां वा एष वनस्पतीनां योनिर्यत्पलाशः । ऐ० २ । १ ॥
- ” तेजो वै ब्रह्मवर्चसं वनस्पतीनां पलाशः । ऐ० २ । १ ॥
- ” पालाशं (यूपं कुर्वीत) ब्रह्मवर्चसकामः । कौ० १० । १ ॥
- ” ब्रह्म वै पलाशस्य पलाशम् (=पर्णम्) । श० २ । ६ । २ । ८ ॥

[पशवः

(२६६)

पलाशः ब्रह्म वै पलाशः । श० १ । ३ । ३ । १६ ॥ ५ । २ । ४ । १८ ॥
६ । ६ । ३ । ७ ॥

” पालाशं (शङ्कुं) पुरस्ताद्, ब्रह्म वै पलाशः । श० १३ । ८ ।
४ । १ ॥

” सोमो वै पलाशः । कौ० २ । २ ॥ श० ६ । ६ । ३ । ७ ॥

” पालाशं (यूषं) पुष्टिकामस्य (करोति) । ष० ४ । ४ ॥

(“पर्णः” शब्दमपि पश्यत)

पवमानः यो वा अग्निः स पवमानस्तदप्येतदृष्टिणोक्तमग्निर्ऋषिः पवमान
इति । ऐ० २ । ३७ ॥

” प्राणो वै पवमानः । श० २ । २ । १ । ६ ॥

” अयं वायुः पवमानः । श० २ । ५ । १ । ५ ॥

” (वायुः) यत्पश्चाद्वाति । पवमान एव भूत्वा पश्चाद्वाति । तै०
२ । ३ । ६ । ६ ॥

” तस्मादुत्तरतः पश्चादयं (वायुः) भूयिष्ठं पवते सवितृप्रसूतो
ह्येष एतत्पवते । ऐ० १ । ७ ॥

” आत्मा वै यज्ञस्य पवमानः । तां० ७ । ३ । ७ ॥

” सोमो वै पवमानः । श० २ । २ । ३ । २२ ॥

” माध्यन्दिनस्य पवमानः (स्वर्ग्यः) । तां० ७ । ४ । १ ॥

” पवमानोक्तं वा एतद्यद्वैश्वदेवम् (शल्लम्) । कौ० १६ । ३ ॥

पवित्रम् पवित्रं वै दर्भाः । श० ३ । १ । ३ । १८ ॥ तै० १ । ३ । ७ ।
१ ॥ ३ । ८ । २ । ३ ॥

” पवित्रं वाऽ आपः । श० १ । १ । १ । १ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥

” अग्निर्वाव पवित्रम् । तै० ३ । ३ । ७ । १० ॥

” (यजु० १ । १२) अयं वै पवित्रं योऽयं (वायुः) पवते ।
श० १ । १ । ३ । २ ॥ १ । ७ । १ । १२ ॥

” पवित्रं वै वायु । तै० ३ । २ । ५ । ११ ॥

” प्राणापानौ पवित्रे । तै० ३ । ३ । ४ । ४ ॥ ३ । ३ । ६ । ७ ॥

” प्राणोदानौ पवित्रे । श० १ । ८ । १ । ४४ ॥

पशवः (अग्निः) एतान्पञ्च पशूनपश्यत् । पुरुषमश्वं गामविमजं

यदपश्यत्तस्मादेते पशवः । श० ६ । २ । १ । २ ॥

” (प्रजापतिः) तेषु (पशुषु) एतं (अग्निं) अपश्यत्तस्माद्वैते
पशवः । श० ६ । २ । १ । ४ ॥

- पशवः अग्निर्वै पशुनामीष्टे । श० ४ । ३ । ४ । ११ ॥
- ” तऽपते सर्वे पशवो यदग्निः । श० ६ । २ । १ । १२ ॥
- ” आग्नेयो वाव सर्वः पशुः । ऐ० २ । ६ ॥
- ” आग्नेयाः पशवः । तै० १ । १ । ४ । ३ ॥
- ” अग्निर्ह्येष यत्पशवः । श० ६ । २ । १ । १२ ॥
- ” अग्निरेष यत्पशवः । श० ६ । ३ । २ । ६ ॥
- ” पशुरेष यदग्निः । श० ६ । ४ । १ । २ ॥ ७ । २ । ४ । ३० ॥ ७ ।
३ । २ । १७ ॥
- ” ते देवा अद्भुवन्पशुर्वाऽग्निः । श० ६ । ३ । १ । २२ ॥
- ” अग्निर्हि देवानां पशुः । ऐ० १ । १५ ॥
- ” योनिर्वै पशुनामाहवनीयः (अग्निः) । कौ० १८ । ६ ॥ गो० उ०
४ । ६ ॥
- ” रौद्रा वै पशवः । श० ६ । ३ । २ । ७ ॥
- ” रुद्रः (एवैनं राजानं) पशुनां (सुषते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥
- ” रुद्र ! पशुनां पते । तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥
- ” रुद्रश्च हि नाति पशवः । श० ३ । २ । ४ । २० ॥
- ” ततो वै स (अर्य्यमा) पशुमानभवत् । तै० ३ । १ । ४ । ६ ॥
- ” एताभिः (एकोनविंशतिभि रग्निभिः) वायुरारण्यानां पशुनामा-
धिपत्यमाश्नुत । तां० २३ । १३ । २ ॥
- ” ते (पशवः) अद्भुवन्वायुर्वा अस्माकमीशे । जै० उ० १ । ५२ । ४ ॥
- ” वायुप्रणेत्रा वै पशवः । श० ४ । ४ । १ । १५ ॥
- ” ते वायुश्च पशवश्चाद्भुवन्निरुक्तं साज्ञो वृणीमहे पशव्यमिति । जै०
उ० १ । ५२ । ४ ॥
- ” त्वष्टा वै पशुनामीष्टे । श० ३ । ७ । ३ । ११ ॥
- ” त्वष्टा पशुनां मिथुनानां रूपकद्रूपपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
- ” त्वष्टुर्हि पशवः । श० ३ । ८ । ३ । ११ ॥
- ” पशवो वै सविता । श० ३ । २ । ३ । ११ ॥
- ” अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः । तै० ३ । २ । १ । ३ ॥
- ” पशवो वै वैश्वदेवम् (शकम्) । कौ० १६ । ३ ॥
- ” दैव्यो वाऽपता विशो यत्पशवः । श० ३ । ७ । ३ । ६

- पशवः सप्त ग्राम्याः पशवः सप्तारण्याः । श० ३ । ८ । ४ । १६ ॥ ६ ।
 ५ । २ । ८ ॥
- ” अस्मै वै लोकाय ग्राम्याः पशव आलभ्यन्ते । अमुष्वा आरण्याः ।
 तै० ३ । ६ । ३ । १ ॥
- ” नानारूपा ग्राम्याः पशवः । तां० ६ । ८ । १२ ॥
- ” विश्वरूपं वै पशूनां रूपम् । तां० ५ । ४ । ६ ॥
- ” सप्त ग्राम्याः पशवः । तां० २ । ७ । ८ ॥ २ । १४ । २ ॥ ३ । ३ । २ ॥
- ” सप्त हि ग्राम्याः पशवः । श० ६ । ३ । १ । २० ॥
- ” सप्त वै ग्राम्याः पशवः (अजा ऽश्वो गौर्महिषी वराहो हस्त्य-
 श्वतरी च ॥ अथवा—अजःविकं गवाश्वं च गर्दभोष्ट्रनरस्तथा) ।
 ऐ० २ । १७ ॥
- ” एकरूपा आरण्याः पशवः (गोमायुर्गोमृगो गवय उष्ट्रः शरभो
 हस्ती मर्कट इति सप्त संख्याका इति सायणः) । तां० ६ ।
 ८ । ८ ॥
- ” अपशवो वा एते । यदजावयश्चारण्याश्च । एते वै सर्वे पशवः ।
 यद्व्या इति । तै० ३ । ६ । ६ । २ ॥
- ” अपशवो वा एते । यदारण्याः । तै० ३ । ६ । १ । ३ ॥
- ” त्रयो ह त्वाव (?) पशवो ऽमेभ्याः । दुर्वराह षेडकः श्वा । श०
 १२ । ४ । १ । ४ ॥
- ” तस्मादश्वः पशूनां यशस्वितमः । श० १३ । १ । २ । ८ ॥ तै०
 ३ । ८ । ७ । २ ॥
- ” पशवो वै घृतश्च्युतः । तां० ६ । १ । १७ ॥
- ” पशवो वै हविष्मन्तः (श्रु० ३ । २७ । १) । श० १ । ४ । १ । ६ ॥
- ” पशवो वै हविष्पङ्क्तिः । कौ० १३ । २ ॥
- ” हविर्हि पशवः । ऐ० ५ । ६ ॥
- ” सर्वासां हि देवतानां हविः पशुः । श० ३ । ८ । ३ । १४ ॥
- ” पशवः सोमो राजा । तै० १ । ४ । ७ । ६ ॥
- ” पशवो हि सोम इति । श० १२ । ७ । २ । २ ॥
- ” पशुषु प्रत्यक्षं सोमः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥
- ” सोम एष प्रत्यक्षं यत्पशुः । कौ० १२ । ६ ॥

- पशवः पशवो वै हरिश्चियः । तां० १५ । ३ । १० ॥
- „ श्रीर्वै पशवः । तां० १३ । २ । २ ॥
- „ श्रीर्हि पशवः । श० १ । ८ । १ । ३६ ॥
- „ पशवो यशः । श० १२ । ८ । ३ । १ ॥ गो० उ० ५ । ६ ॥
- „ एष वाव सुवीरो यस्य पशवः । तां० १३ । १ । ४ ॥
- „ तस्माद्यस्य पशवो भवन्त्यपैव स पाप्मानश्च हते । श० ८ । २ । ३ । १४ ॥
- „ पशवो वै महस्तस्माद्यस्यैते बहवो भवन्ति भूयिष्ठमस्य कुले महीयन्ते । श० ११ । ८ । १ । ३ ॥
- „ यो वै पशूनां भूमानङ्गच्छति स स्वाराज्यं गच्छति । तां० २४ । ६ । ३ ॥
- „ शान्तिः पशवः । तां० ४ । ५ । १८ ॥ ४ । ६ । ११ ॥ ५ । ३ । १२ ॥
- „ इन्द्रियं वै वीर्यं रसः पशवः । तां० १३ । ७ । ४ ॥
- „ पशवो वै वसु । तां० ७ । १० । १७ ॥ १३ । ११ । २ ॥
- „ पशवो वसु । श० ३ । ७ । ३ । ११, १३ ॥
- „ पशवो वै रयिः । तै० १ । ४ । ४ । ९ ॥
- „ पशवो वै रायः । श० ३ । ३ । १ । ८ ॥ ४ । १ । २ । १५ ॥
- „ पशवो वै रायस्पोषः । श० ३ । ४ । १ । १३ ॥
- „ पुष्टिः पशवः । श० ३ । १ । ४ । ६ ॥
- „ पौष्णाः पशवः । श० ५ । २ । ५ । ६ ॥
- „ पूषा वै पशूनामीष्टे । श० १३ । ३ । ८ । २ ॥
- „ पूषा पशुभि (अवति) । तै० १ । ७ । ६ । ६ ॥ ३ । १ । ५ । १२ ॥
- „ पशवो वै पूषा । श० ३ । १ । ४ । ९ ॥ ३ । ६ । १ । १० ॥ ५ । ३ । ५ । ८, ३५ ॥ तै० ३ । ८ । ११ । २ ॥ तां० १८ । १ । १६ ॥
- „ पशवो वै पूषा (यजु० २२ । २०) । श० १३ । १ । ८ । ६ ॥
- „ पशवो हि पूषा । श० ५ । २ । ५ । ८ ॥
- „ पशवः पूषा । ऐ० २ । २४ ॥ तां० २३ । १६ । ५ ॥
- „ साहस्राः पशवः । कौ० २१ । ५ ॥
- „ पशवः सहस्रम् । तां० १६ । १० । १२ ॥
- „ कल्याणी (प्रजापतेस्तनूः) तत्पशवः । ऐ० ५ । २५ ॥ कौ० २७ । ५ ॥

[पशवः

(२७०)

- पशवः एषा वै प्रजापतेः पशुष्टा तनूर्यच्छिपिविष्टः । तां० १८ । ६ । २६ ॥
,, पशव शिपिः । तै० १ । ३ । ८ । ५ ॥
,, पशवो वै मरुतः । ऐ० ३ । १९ ॥
,, पशुर्वै मेघः । ऐ० २ । ६ ॥
,, वाजो वै पशवः । ऐ० ५ । ८ ॥
,, पशवो वै वाजिनम् । तै० १ । ६ । ३ । १० ॥
,, अन्नं पशवः । श० ६ । २ । १ । १५ ॥ ७ । ५ । २ । ४२ ॥
,, अन्नं वै पशवः । श० ६ । ८ । २ । ७ ॥
,, पशुर्वाऽ अन्नम् । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥
,, पशवो वाऽ अन्नम् । श० ४ । ६ । ९ । १ ॥
,, पशवो ह्यन्नम् । श० ३ । २ । १ । १२ ॥
,, अन्नमु पशोर्मांश्रितम् । श० ७ । ५ । २ । ४२ ॥
,, पशवो वै धानाः । गो० उ० ४ । ६ ॥ कौ० १८ । ६ ॥
,, पशवो वा इडा । कौ० ३ । ७ ॥ ५ । ७ ॥ २९ । ३ ॥ श० १ । ८ ।
१ । २२ ॥ ७ । १ । १ । २७ ॥ ष० २ । २ ॥ तां० ७ । ३ । १५ ॥
१४ । ५ । ३१ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥ तै० १ । ६ । ६ । ६ ॥ ऐ०
२ । ९, १०, ३० ॥
,, तस्मादाहुः प्राणाः पशवः । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥
,, प्राणाः पशवः । तै० ३ । २ । ८ । ६ ॥
,, स (प्रजापतिः) प्राणोभ्य एवाधि पशुन्निरमिमीत । श० ७ ।
५ । २ । ६ ॥
,, गृहा हि पशवः । श० १ । ८ । २ । १४ ॥
,, पशवो वा उत्तरवेदिः । तै० १ । ६ । ४ । ३ ॥
,, पशवो वै चतुरुत्तराणि छन्दांश्रिति । तां० ४ । ४ । ६ ॥
,, हविर्वाऽ एष देवानां यो दीक्षते तदेनमन्तजंभऽ आदधाते तत्
(अग्नीषोमीयेण) पशुनात्मानं निष्क्रीणाति । श० ३ । ३ । ४ । २१ ॥
,, आत्मा वै पशुः । कौ० १२ । ७ ॥
,, यजमानः पशुः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥ २ । २ । ८ । २ ॥
,, वज्रो वै पशवः । श० ६ । ४ । ४ । ६ ॥ ८ । २ । ३ । १४ ॥
,, पशवो वै प्रावाणः । तां० ६ । ९ । १३ ॥

- पशवः पशवो वा उक्थानि । कौ० २८ । १० ॥ २९ । ८ ॥ तै० १ । २ ।
 २ । २ ॥ ष० ३ । ११ ॥ तां० ४ । ५ । १८ ॥ १९ । ६ । ३ ॥
- „ पशवो वा उक्थानि पशवो विश्वं ज्योतिः । तां० १६ । १० । २ ॥
- „ पशव उक्थानि । ऐ० ४ । १, १२ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥ तै० १ ।
 ८ । ७ । २ ॥ कौ० २१ । ५ ॥
- „ पशव ऊषाः । श० ७ । १ । १ । ६ ॥ ७ । ३ । १ । ८ ॥
- „ पशवो वा ऊषाः । श० ५ । २ । १ । १६ ॥
- „ संज्ञान^३ ह्येतत्पशूनां यदूषाः । तै० १ । १ । ३ । २ ॥
- „ पशवो वै नियुतः । तां० ४ । ६ । ११ ॥ श० ४ । ४ । १ । १७ ॥
- „ प्रजा पशवः सूक्तम् । कौ० १४ । ४ ॥
- „ स्तोमो हि पशुः । तां० ५ । १० । ८ ॥
- „ पशवो वै सप्तदशः । तां० १६ । १० । ७ ॥
- „ पशवो वै समीषन्ती (विष्टुतिः) । तां० ३ । ११ । ४ ॥
- „ (प्रजापतिः) स्वरिति पशून् (अजनयत) । श० २ । १ । ४ । १३ ॥
- „ संवत्सरं पशवो ऽनु प्रजायन्ते । तां० १८ । ४ । ११ ॥
- „ न ह वा अनृषभाः पशवः प्रजायन्ते । तां० १३ । ५ । १८ ॥ १३ ।
 १० । ११ ॥ १५ । ३ । १७ ॥
- „ तस्मात् पशोर्जायमानादापः पुरस्ताद्यन्ति । तै० २ । २ । ९ । ३ ॥
- „ तस्माज्जातं पुत्रं पशवो ऽभिहिङ्कुर्वन्ति । तां० १२ । १० । १४ ॥
- „ (पशुभ्यः प्रजापतिः) हिङ्कुरम्प्रायच्छत् । जै० उ० १ । ११ । ५ ॥
- „ (प्रजापतिः) प्रतिक्षरमारण्येभ्यः पशुभ्यः (प्रायच्छत्) । जै०
 उ० १ । ११ । ९ ॥
- „ पशवो वै प्रतिहर्त्ता । तां० ६ । ७ । १५ ॥
- „ हुम्बो इति पशुकामस्य । वो इति ह पशवो वाद्यन्ते । जै० उ०
 ३ । १३ । २ ॥
- „ पशवः स्वरः । गो० उ० ३ । २२ ॥ ४ । २ ॥
- „ पशवो वै स्वरः । ऐ० ३ । २४ ॥
- „ पशवो वै बृहद्रथन्तरे । तां० ७ । ७ । १ ॥
- „ पशवो वै श्यैतम् (साम) । तां० ७ । १० । १३ ॥
- „ पशुकाम एतेन (श्यैतेन साम्ना) स्तुवीत । तां० ७ । १० । १४ ॥

- पशवः पशवो वै वामदेव्यम् (साम) । तां० ४ । ८ । १५ ॥ ७ । ६ ।
 ६ ॥ ११ । ४ । ८ ॥ १४ । ६ । २४ ॥
- „ वामं हि पशवः । ऐ० ५ । ६ ॥
- „ पशवो वै वारवन्तीयम् (साम) । तां० ५ । ३ । १२ ॥
- „ (विष्णुः पशून्) वारवन्तीयेन (साम्ना) अवारयत् । तै० २ ।
 ७ । १४ । २ ॥
- „ पशवो वै वैरूपम् (साम) । तां० १४ । ६ । ८ ॥
- „ पशवो वै लोम (साम) । तां० १३ । ११ । ११ ॥
- „ पशवो वै रौरवम् (साम) । तां० ७ । ५ । ८ ॥
- „ पशवो ऽन्नाद्यं यज्ञायज्ञीयम् (साम) । तां० १५ । ९ । १२ ॥
- „ पशवो वै यण्वम् (साम) । तां० १३ । ३ । ६ ॥
- „ पशवो वै श्रुद्धयं (साम) पशूनामवर्द्धये । तां० १५ । ५ । ३४ ॥
- „ पशवः सदोविशीयम् (ब्रह्मसाम) । तां० १८ । ४ । ६ ॥
- „ पशवो वै सुरूपं (साम) पशूनामवर्द्धये । तां० १४ । ११ । ११ ॥
- „ पशवः कालियम् (साम) । तां० ११ । ४ । १० ॥ १५ । १० । १५ ॥
- „ पशून् महामित्यब्रवीत् (इन्द्रं) रायोवाजस्तस्मा एतेन रायोवा-
 जीयेन (साम्ना) पशून् प्रायच्छत् पशुकाम एतेन स्तुवीत् पशुमान्
 भवति । तां० १३ । ४ । १७ ॥
- „ पशवो वै रयिष्ठम् (साम) । तां० १४ । ११ । ३१ ॥
- „ पशवः शक्यर्यः । तां० १३ । १ । ३ ॥
- „ पशवो वै शक्यर्यः । तां० १३ । ४ । १३ ॥ १३ । ५ । १८ ॥
- „ पशवो वै शकरीः । तै० १ । ७ । ५ । ४ ॥
- „ पशवः शकरी । तां० १६ । ७ । ६ ॥
- „ पशवो वै रेवत्यो मधुप्रियम् । तां० १३ । ७ । ३ ॥
- „ पशवो वै रेवत्यः । तां० १३ । १० । ११ ॥
- „ पशवो वै रेवत्यः । तां० १३ । ७ । ३ ॥ १३ । ६ । २५ ॥
- „ रेवन्तो हि पशवः । श० २ । ३ । ४ । २६ ॥
- „ रेवन्तां हि पशवस्तस्मादाह रेवती रमध्वम् (यजु० ६ । ८)
 इति । श० ३ । ७ । ३ । १३ ॥
- „ कतमो यज्ञ इति पशव इति । श० ११ । ६ । ३ । ६ ॥
- „ पशवो हि यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । ६ ॥

- पशवः पशवो यज्ञः । श० ३ । २ । ३ । ११ ॥
- „ पशवो वै बर्हिः । ऐ० २ । ४ ॥
- „ पशवो वै यूपमुच्छ्रयन्ति । श० ३ । ७ । २ । ४ ॥
- „ पशवश्छन्दोमाः । ऐ० ५ । १६, १७, १८, १९ ॥ तां० १४ । ७ । ६ ॥
- „ पशवो वै छन्दाँसि । श० ७ । ५ । २ । ४२ ॥ ८ । ३ । १ । १२ ॥
- „ पशवश्छन्दाँसि । ऐ० ४ । २१ ॥ कौ० ११ । ५ ॥ तां० १६ । ५ । ११ ॥
- „ पाङ्क्ता वै पशवः । श० १ । ८ । १ । १२ ॥
- „ पाङ्काः पशवः । ऐ० ३ । २३ ॥ ४ । ३ ॥ ५ । ४, ६, १८, १९ ॥
कौ० १३ । २ ॥ तै० १ । ६ । ३ । २ ॥ तां० २ । ४ । २ ॥ गो०
उ० ३ । २० ॥ ४ । ७ ॥
- „ पाङ्कः पशुः । श० १ । ५ । २ । १६ ॥ ३ । १ । ४ । २० ॥
- „ गायत्राः पशवः । तै० ३ । २ । १ । १ ॥
- „ त्रेष्टुमाः पशवः । कौ० ८ । १ ॥ १० । २ ॥
- „ पशवो जगती । कौ० १६ । २ ॥ १७ । २, ६ ॥ १६ । ६ ॥ २ ।
१ ॥ श० ३ । ४ । १ । १३ ॥ ८ । ३ । ३ ॥ तै० ३ । २ । ८ । २ ॥
- „ जागताः पशवः । कौ० ३० । २ ॥ ष० ३ । ७ ॥ गो० उ० ४ । १६ ॥
- „ पशवो बृहती । कौ० १७ । २ ॥ २९ । ३ ॥ ष० ३ । १० ॥
- „ पशवो वै बृहती । तां० १६ । १२ । ६ ॥
- „ बार्हताः पशवः । ऐ० ४ । ३ ॥ ५ । ६ ॥ कौ० २३ । १ ॥ २६ । ३ ॥
तै० १ । ४ । ५ । ५ ॥ श० १३ । ४ । ३ । १५ ॥
- „ पशवो वा उष्णिक् । तां० ८ । १० । ४ ॥
- „ पशवो वालखिल्याः । तां० २० । ६ । २ ॥
- „ पशवो वा अक्षरपङ्कयः । कौ० १६ । ८ ॥
- „ पशवः पृष्ण्यानि । कौ० २२ । ५ ॥
- „ पशवः प्रगाथः । ऐ० ३ । १९, २३, २४ ॥ ६ । २४ ॥ गो० उ० ३ ।
२१, २२ ॥ ४ । २ ॥
- „ पशवो वै प्रगाथः । कौ० १५ । ४ ॥ १८ । २ ॥
- „ पशवो वै प्रयाजाः । कौ० ३ । ४ ॥
- „ पशवः परिमाद् । श० १० । १ । २ । ८ ॥

- पशवः अथ यत्स्त्रुचि परिशिनष्टि ते पशवः । श० २ । ३ । २ । १६ ॥
- ” पशवो वै पुरीषम् (यजु० १३ । ३१ ॥) । श० १ । २ । ५ । १७ ॥ ६ । ३ । १ । ३८ ॥ ७ । ५ । १ । ९ ॥
- ” पशवः पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १२ ॥
- ” पशवो वै वयाँसि । श० ९ । ३ । ३ । ७ ॥
- ” वपुर्हि पशवः । ऐ० ५ । ६ ॥
- ” तस्मादुपश्रुद्राः पशवः । तां० १३ । ४ । ५ ॥
- ” अष्टाशफाः पशवः । तां० १५ । १ । ८ ॥
- ” तस्माद् द्वयोपशाः (=द्विशृङ्गा इति सायणः) पशवः । तां० १३ । ४ । ३ ॥
- ” षोडशकला वै पशवः । श० १२ । ८ । ३ । १३ ॥ १३ । ३ । ६ । ५ ॥
- ” षोडशकलाः पशवः (शिरो ग्रीवा मध्यदेहः पुच्छमिति चत्वार्यङ्गानि च चत्वारः पादाः अष्टौ शफा इत्येवं षोडशसंख्याका इति सायणः) । तां० ३ । १२ । २ ॥ १९ । ६ । २ ॥
- ” तस्मादसंश्लिष्टाः (=स्वेच्छाचारिण इति सायणः) पशवः । तां० १३ । ४ । ६ ॥
- ” एतद्वै पशूनां भूयिष्ठं रूपं यद्रोहितम् । तां० १६ । ६ । २ ॥
- ” तस्मादुभयतः प्राणाः पशवः । तां० ७ । ३ । २८ ॥
- ” त्रिरह्वः पशवः प्रेरते । प्रातः संगवे सायम् । तै० १ । ४ । ६ । २ ॥
- ” त्रिवृद्वै पशुः पिता माता पुत्रो ऽथो गर्भे उल्वं जरायु । श० ८ । ६ । २ । २ ॥
- ” तस्माद्यदा वर्षस्यथ पशवः प्रतितिष्ठन्ति । श० ८ । २ । ३ । ८ ॥
- ” (सः) चक्षुरेव पशूनामादत्त । तस्मादेते चाकश्यमाना इवैव न जानन्स्यथ यदैषोपजिघ्रन्स्यथ जानन्ति । श० ११ । ८ । ३ । १० ॥
- ” वाचा पशून्दाधार तस्माद्वाचा सिद्धा वाचाहृता आयन्ति तस्मादु नाम जानते । तां० १० । ३ । १३ ॥
- ” मनुष्याननु पशवः । श० १ । ५ । २ । ४ ॥
- ” वाग्नेवत्यं साम वाचो मनो देवता मनसः पशवः पशूनामोषधय ओषधीनामापः । तदतः ऋथो जातं सामाऽन्नु प्रतिष्ठितमिति । जै० उ० १ । ५६ । १४ ॥

पशवः तं (पशुं) देवा अभुवन्नेहि स्वर्गे वै त्वा लोकं नमयिष्यामः ।
ऐ० २ । ६ ॥

„ प्रातः पशुमालभन्ते तस्य वपया प्रचरन्ति । तां० ५ । १० । ६ ॥

„ प्रातर्वै पशूनालभन्ते । श० ३ । ७ । २ । ४ ॥

„ अथैतत्पशुं घ्नन्ति यत्संज्ञपयन्ति । श० ३ । ८ । २ । ४ ॥

„ यत्पशुं संज्ञपयन्ति विशासति तत्तं घ्नन्ति । श० २ । २ । २ ।
१ ॥ ११ । १ । २ । १ ॥

„ षड्विंशतिरस्य (पशोः) वङ्कयः । तै० ३ । ६ । ६ । ३ ॥

„ स्नादिषा वै देवेषु पशव आसन् मदिषा असुरेषु । तां० ८ ।
४ । ६ ॥

„ तस्मादन्नमानाः पच्यमानाः पशवो न क्षीयन्ते । श० ७ । ५ ।
२ । २ ॥

„ तस्माद्भुभये देवमनुष्याः पशूनुपजीवन्ति । श० ६ । ४ । ४ । २३ ॥

„ पुरुषः पशूनाम् (अधिपतिः) । तां० ६ । २ । ७ ॥

„ तद्यथा ह वा अस्मिंल्लोके मनुष्याः पशून्भ्रन्ति यथेभिर्भुञ्जते
एवमेवासुष्मिंल्लोके पशवो मनुष्यान्भ्रन्त्येवमेभिर्भुञ्जते । कौ०
११ । ३ ॥

„ सर्व्वं पशुभिर्विन्दते । तां० १३ । १ । ३ ॥

„ विश्वं हि पशुभिर्विन्दते । तां० १३ । १ । ७ ॥

पशुपतिः ओषधयो वै पशुपतिस्तस्माद्यदा पशव ओषधीर्लभन्ते ऽथ
पत्नीयन्ति । श० ६ । १ । ३ । १२ ॥

„ एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः,
महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६ ।
१ । ३ । १८ ॥

„ अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि, शर्व इति यथा प्राच्या
आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पत्नी रुद्रो अग्नि-
रिति । श० १ । ७ । ३ । ८ ॥

„ अग्निर्वै पशूनामीष्टे । श० ४ । ३ । ४ । ११ ॥

„ देवं वा एतं (पशुपतिं) मृगयुरिति वदन्ति (“मृगव्याधः”
शब्दमपि पश्यत) । तां० १४ । ६ । १२ ॥

„ यत्पशुपतिर्वायुस्तेन । कौ० ६ । ४ ॥

- पशुबन्धः इममेव (भू-)लोकं पशुबन्धेनाभिजयति । अथो अभिष्टो-
मेन । तै० ३ । १२ । ५ । ६ ॥
- „ स यत्पशुबन्धेन यजते । आत्मानमेवैतन्निष्क्रीणीते । श० ११ ।
७ । १ । ३ ॥
- „ पशुबन्धः षड्ढोलुः (निदानम्) । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥
- „ षट्सु षट्सु (मासेषु) पशुबन्धयाजी (अश्नाति) । श०
१० । १ । ५ । ४ ॥
- „ उभयपु सौत्रामणीष्टिश्च पशुबन्धश्च । ऋ० १२ । ७ । २ । २१ ॥
- „ अथैवाज्याहुतिर्यद्द्विविर्यज्ञो यत्पशुः (=पशुयज्ञः) । श० १ ।
७ । २ । १० ॥
- पशुमान् (=पशुपतिः) स (रुद्रः) एतमेव वरमवृणीत पशूनामाधिपत्यं
तदस्यैतत्पशुमन्नाम । ऐ० ३ । ३३ ॥
- पश्यतः असौ वा आदित्यः पश्यतः । एष एव तदजायत । एतेन हि
पश्यति । जै० ७० । १ । ५६ । ६ ॥
- पसः (यजु० २३ । २२) राष्ट्रं पसः । श० १३ । २ । ६ । ६ ॥ तै० ३ । १ । ७ । ४ ॥
- पस्याः विशो वै पस्याः । श० ५ । ३ । ५ । १६ ॥ श० ६ । ४ । ४ । ५ ॥
- पाकयज्ञः सायंप्रातर्होमौ स्वाधीपाको नवश्च यः । बलिश्च पितृयज्ञ-
श्चाष्टका सप्तमः पशुरित्येते पाकयज्ञाः । गो० पू० ५ । २३ ॥
- „ पशव्यो हि पाकयज्ञः । श० २ । ३ । १ । ११ ॥
- पात्रजन्यः (यजु० १८ । ६७) (ये ऽग्नयः पात्रजन्याः =) ये केचाग्नयः
पञ्चचित्तिकाः । श० ९ । ५ । १ । ५३ ॥
- पाणिः पाणी वै गभस्ती । श० ४ । १ । १ । ६ ॥
- पातु (यजु० ५ । ११) इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पात्वित्तीन्द्रघो-
षस्त्वा वसुभिः पुरस्ताद्रोपायत्वित्येवैतदाह । श० ३ । ५ । २ । ४ ॥
- पालीवतः (ग्रहः) रेतःसिक्किर्वै पालीवतग्रहः । कौ० १६ । ६ ॥
- „ रेतो वै पालीवतः । गो० ७० । ४ । ५ ॥ ऐ० ६ । ३ ॥
- „ अग्निर्हि देवानां पालीवतो नेष्ट्विजाम् । कौ० २८ । ३ ॥
- पात्राणि कति पात्राणि यज्ञं वहन्तीति त्रयोदशेति ब्रूयात्....., (प्रजा-
पतिः) प्राणापानाभ्यामेवोपापुश्वन्तर्यामौ निरमिमीत ।
व्यानाहुपापुशुसवनं । वाच ऐन्द्रवायवं । दक्षक्रतुभ्यां

मन्त्रावरुणां । श्रोत्रादाश्विनं । चक्षुषः शुक्रामन्थिनौ । आत्मन
आग्रयणां । अङ्गेभ्य उक्थ्यं । आयुषो ध्रुवं । प्रतिष्ठाया ऋतु-
पात्रे । तै० १ । ५ । ४ । १, २ ॥

पात्राणि द्वंद्वं पात्राण्युदाहरति शूर्पं चाग्निहोत्रहवर्णां च स्फचं च
कपालानि च शर्म्यां च कृष्णाजिनं चोल्खलमुसले ह्यदुपले
तद्दश । श० १ । १ । १ । २३ ॥

पाथ्यो वृषा (यजु० ११ । ३४) मनो वै पाथ्यो वृषा । श० ६ । ४ ।
२ । ४ ॥

पादः प्रतिष्ठा वै पादः । श० १३ । ८ । ३ । ८ ॥

पान्तम् (ऋ० ८ । ६२ । १ ॥) अहर्धे पान्तम् । तां० ६ । १ । ७ ॥

पापम् (कर्म) तद्यथा श्वः प्रैष्यन् पापात्कर्मणो जुगुप्सेतैवमेवाहरहः
पापात्कर्मणो जुगुप्सेताकालात् । जै० उ० ४ । २५ । ४ ॥

पाप्मा पाप्मा वाऽ अशस्तिः (यजु० ११ । १५) । श० ६ । ३ । २ । ७ ॥

„ पाप्मा वै सपत्नः । श० ८ । ५ । १ । ६ ॥

„ पाप्मा वै वृत्रः । श० ११ । १ । ५ । ७ ॥ १३ । ४ । १ । १३ ॥

„ वृत्रहणं पुरंदरमिति (यजु० ११ । ३३) पाप्मा वै वृत्रः पाप्म-
हनं पुरंदरमिति (वृत्रः=पाप्मा) । श० ६ । ४ । २ । ३ ॥

„ तथैवैतद्यजमानः पौर्णमासेनैव वृत्रं पाप्मानं हत्वापहतपाप्मै-
तत्कर्मारभते (वृत्रः=पाप्मा) । श० ६ । २ । २ । १६ ॥

„ अग्ने त्वं तरा मृधः (यजु० ११ । ७२) इत्यग्ने त्वं तर सर्वान्पा-
प्मन इत्येतत् । श० ६ । ६ । ३ । ४ ॥

„ पाप्मा वै मृधः (यजु० ११ । १८) । श० ६ । ३ । ३ । ८ ॥

„ वरुणो वाऽ एतं गृह्णाति यः पाप्मना गृहीतो भवति । श० १२ ।
७ । २ । १७ ॥

„ अङ्गे अङ्गे वै पुरुषस्य पाप्मोपस्त्रिष्टः । तै० ३ । ८ । १७ । ४ ॥

„ श्रमो वै पाप्मा । श० ६ । ३ । ३ । ७ ॥

„ दिवेव (दिवसा इव पुण्यरूपेण तेजसा युक्ता इति सायणः)
ह्यपहतपाप्मानः । तम इव ह्यनपहतपाप्मानः । ऐ० ४ । २५ ॥

„ श्रियं पाप्मा (निवर्तते) । श० १० । २ । ६ । १६ ॥

„ स यथाहिरत्वज्ञो निर्मुच्येतैव स सर्वस्मात्पाप्मनो निर्मुच्यते ।
श० ४ । ४ । ५ । २३ ॥ (प्रश्नोपनिषदि ५ । ५ ॥)

[पावकः

(२७८)

पाप्मा तं देवा यथेषीकां मुञ्जाद्विबृहेदेव७७ सर्वस्मात्पामनो व्यवृहन् ।
श० ४ । ३ । ३ । १६ ॥ (कठोपनिषदि २ । ३ । १७)

„ तद्यथाहिर्जीर्णायास्त्वचो निर्मुच्येत इषीका वा मुञ्जात् । एवं
हैवैते सर्वस्मात्पाप्मनः सम्प्रमुच्यन्ते ये शाकलां जुह्वति । गो०
उ० ४ । ६ ॥

पारमेष्ठ्यम् अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः...
अभ्यषिञ्चन्.....पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय
स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८ । १४ ॥

पारिप्लवम् (आख्यानम्) तद्यत्पुनः पुनः (संवत्सरं) परिप्लवते तस्मा-
त्पारिप्लवम् । श० १३ । ४ । ३ । १५ ॥

पारुच्छेपम् रोहितं वै नामैतच्छन्दो यत्पारुच्छेपम् । गो० उ० ६ । १० ॥
„ एतेन (पारुच्छेपेन) ह वा इन्द्रः सप्त स्वर्गलोकानारोहत् ।
गो० उ० ६ । १० ॥

पार्थम् (साम) एतेन वै पृथी (श० ५ । ३ । ५ । ४ ॥ पृथुः ?) वैन्य
उभयेषां पशूनामाधिपत्यमाश्रुतोभयेषां पशूनामाधि-
पत्यमश्रुते पार्थेनस्तुष्टुवानः । तां० १३ । ५ । २० ॥

पार्थानि (हवींषि) संवत्सरो वै पार्थानि । श० ६ । ३ । ४ । १८ ॥

पार्थुरश्मम् (साम) क्षत्रम्महामित्यब्रवीत् (इन्द्रं) पृथुरश्मस्तस्मा एतेन
पार्थुरश्मेन क्षत्रं प्रायच्छत्, क्षत्रकाम एतेन स्तुवीत्
क्षत्रस्येवास्य प्रकाशो भवति । तां० १३ । ४ । १७ ॥
„ पार्थुरश्म७७ राजन्याय ब्रह्मसाम कुर्यात् । तां०
१३ । ४ । १८ ॥

पालागलः (= दूतः) प्रहेयो वै पालागलो ऽन्वानं वै प्रहित पति । श०
५ । ३ । १ । ११ ॥

पावकः (यजु० १७ । ९) यद्वै शिव७७ शान्तं तत्पावकम् । श० ६ ।
१ । २ । ३० ॥

„ यत् (अग्नेः) पावकं (रूपम्) तदन्तरिक्षे (न्यधत्) । श०
२ । २ । १ । १४ ॥

पावमान्यः (ऋचः) पवित्रं वै पावमान्यः । कौ० ८ । ५ ॥ ३० । ८ ॥
गो० उ० ६ । १६ ॥

पावीरवी वाग्वै सरस्वती पावीरवी । ऐ० ३ । ३७ ॥

पाशः वारुणो वै पाशः । तै० ३ । ३ । १० । १ ॥ श० ६ । ७ । ३ । ८ ॥
,, नैऋतो वै पाशः । श० ७ । २ । १ । १५ ॥

पाष्ठौहम् (साम) पष्ठवाङ् वा एतेनाङ्गैरसश्चतुर्थस्याहो वाचं वदन्ती-
मुपाशृणोत्स होवागिति निधनमुपैत्तदस्याभ्युदितं
तदहरवसत् । तां० १२ । ५ । ११ ॥

पितरः सो (प्रजापतिः) ऽसुरान् सृष्ट्वा पितेषामन्यत । तदनु पितृनसृ-
जत । तत्पितृणां पितृत्वम् । तै० २ । ३ । ८ । २ ॥

,, अग्निमुखा एव तत्पितृलोकाज्जीवलोकमभ्यायन्ति । श० १३ ।
८ । ४ । ६ ॥

,, मनुष्या वै जागरितं पितरः सुप्तम् । श० १२ । ६ । २ । २ ॥

,, रात्रिः पितरः । श० २ । १ । ३ । १ ॥

,, तत्तमसः पितृलोकादादित्यं ज्योतिरभ्यायन्ति । श० १३ । ८ ।
४ । ७ ॥

,, तिर इव वै पितरो मनुष्येभ्यः । श० २ । ४ । २ । २१ ॥

,, तिर इव वै पितरः । श० २ । ६ । १ । १९ ॥ १३ । ८ । ३ । २ ॥

,, अन्तर्हितो हि पितृलोको मनुष्यलोकात् । तै० १ । ६ । ८ । ६ ॥

,, अध इव हि पितृलोकः । श० १४ । ६ । १ । १० ॥

,, अवान्तरदिशो वै पितरः । श० १ । ८ । १ । ४० ॥ २ । ६ ।
१ । १०, ११ ॥

,, उभे दिशावन्तरेण विदधाति प्राचीं च दक्षिणां चैतस्थाणु ह
दिशि पितृलोकस्य द्वारम् । श० १३ । ८ । १ । ५ ॥

,, दक्षिणावृद्धिं पितृणाम् । तै० १ । ६ । ८ । ५ ॥

,, पितृणां वा एषा दिग्यदक्षिणा । ष० ३ । १ ॥

,, बभ्येनाऽऽजद्विषेण (उग्रात्रा दीक्षामहा इति) पितरो दक्षिणतः
(आगच्छन्) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥

,, दक्षिणांस्तस्थो वै पितृयज्ञः । कौ० ५ । ७ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

[पितरः

(२८०)

- पितरः स (सूर्यः) यत्रोदङ्ङावर्त्तते । देवेषु तर्हि भवति देवांस्तर्ह्यभि-
गोपायत्यथ यत्र दक्षिणावर्त्तते पितृषु तर्हि भवति पितृस्तर्ह्यभिगो-
पायति । श० २ । १ । ३ । ३ ॥
- ” मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु । श० ३ । ५ । २ । ६ ॥
- ” अथैनं (प्रजापति) पितरः । प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वा-
च्योपासीदंस्तान् (प्रजापतिः) अब्रवीन्मासि वो ऽशनः
स्वधा वो मनोजवो वश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति । श० २ । ४ ।
२ । २ ॥
- ” मासि पितृभ्यः क्रियते । तै० १ । ४ । ६ । १ ॥
- ” तृतीये हि लोके पितरः । तां० ९ । ८ । ५ ॥
- ” तृतीये वा इतो लोके पितरः । तै० १ । ३ । १० । ५ ॥ १ । ६ ।
८ । ७ ॥
- ” अन्तरिक्षं तृतीयं पितृन्यङ्गो ऽगात् । ऐ० ७ । ५ ॥
- ” पितरो नमस्याः । श० १ । ५ । २ । ३ ॥
- ” यानग्निरेव दहन्स्वदयति ते पितरो ऽग्निष्वात्ताः । श० २ । ६ ।
१ । ७ ॥
- ” ये वा अयज्वानो गृहमेधिनः । ते पितरो ऽग्निष्वात्ताः । तै० १ ।
६ । ९ । ६ ॥
- ” अर्द्धमासा वै पितरो ऽग्निष्वात्ताः । तै० १ । ६ । ८ । ३ ॥
- ” अथ पितृभ्यो ऽग्निष्वात्तेभ्यः । निवान्यायै दुग्धे सकृदुपमाथत
पकशलाकया मन्थो भवति । श० २ । ६ । १ । ६ ॥
- ” अथ ये दत्तेन पक्केन लोकं जयन्ति ते पितरो बर्हिषदः । श० २ ।
६ । १ । ७ ॥
- ” ये वै यज्वानः । ते पितरो बर्हिषदः । तै० १ । ६ । ९ । ६ ॥
- ” मासा वै पितरो बर्हिषदः । तै० १ । ६ । ८ । ३ ॥ ३ । ३ ।
६ । ४ ॥
- ” पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यः । अन्वाहार्यपचने धानाः कुर्वन्ति ततो ऽर्घाः
पिपृषन्त्यर्घा इत्येव धाना अपिष्टा भवन्ति ता धानाः पितृभ्यो
बर्हिषद्भ्यः । श० २ । ६ । १ । ५ ॥

- पितरः तद्ये सोमेनेजानाः । ते पितरः सोमवन्तः । श० २ । ६ । १ । ७ ॥
- „ स पितृभ्यः सोमवद्भ्यः । षट्कपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० २ । ६ । १ । ४ ॥
- „ सोमप्रयाजा हि पितरः । तै० १ । ६ । ६ । ५ ॥
- „ इन्द्रव इव हि पितरः । मन इव । तां० ६ । ६ । १६-२० ॥
- „ पितृदेवत्यः सोमः । श० ३ । २ । ३ । १७ ॥
- „ पितृलोकः सोमः । कौ० १६ । ५ ॥
- „ पितृदेवत्यो वै सोमः । श० २ । ४ । २ । १२ ॥ ४ । ४ । २ । २ ॥
- „ स्वाहा सोमाय पितृमते । मं० २ । ३ । १ ॥
- „ सोमाय वा पितृमते (षट्कपालं पुरोडाशं निर्वपति) । श० २ । ६ । १ । ४ ॥
- „ संवत्सरो वै सोमः पितृमान् । तै० १ । ६ । ८ । २ ॥ १ । ६ । ६ । ५ ॥
- „ भोषधिलोको वै पितरः । श० १३ । ८ । १ । २० ॥
- „ षड् वाऽ ऋतवः पितरः । श० ६ । ४ । ३ । ८ ॥
- „ ऋतवः पितरः । कौ० ५ । ७ ॥ श० २ । ४ । २ । २४ ॥ २ । ६ । १ । ४ ॥ गो० उ० १ । २४ ॥ ६ । १५ ॥
- „ ऋतवो वै पितरः । श० २ । ६ । १ । ३२ ॥
- „ यद्वसवः पितरः प्रजापतिं पितरं पितृयज्ञेनायजन्त तत्पितृयज्ञस्य पितृयज्ञत्वम् । तै० १ । ४ । १० । ८ ॥
- „ शरञ्जेमन्तः शिशिरस्ते (ऋतवः) पितरः । श० २ । १ । ३ । १ ॥
- „ ऋतवः खलु वै देवाः पितरः । ऋतूनेव देवान् पितृन् प्रीणाति । तान् प्रीतान् । मनुष्याः पितरो ऽनु प्रपिपते । तै० १ । ३ । १० । ५ ॥
- „ यमो वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विशस्तऽ इमऽ आसतऽ इति स्थाविरा उपसमेता भवन्ति तानुपदिशति यजूंषि षेदः सो ऽयमिति (आश्वलायनधौतसूत्रे १० । ७ । २ ॥ शाङ्खायन-धौतसूत्रे १६ । २ । ४-६ ॥) । श० १३ । ४ । ३ । ६ ॥
- „ क्षत्रं वै यमो विशः पितरः । श० ७ । १ । १ । ४ ॥

[पितरः

(२२२)

पितरः पितृलोको यमः । कौ० १६ । ८ ॥

„ (प्रजापतिः) निधनम्पितृभ्यः (प्रायच्छत्) तस्मादु ते निध-
नसंस्थाः । जै० उ० १ । १२ । २ ॥

„ यानिवैषां तस्मिन्संग्रामे ऽघ्नंस्तान्पितृत्यज्ञेन समैरयन्त पितरो
वै तऽ आसंस्तस्मात्पितृत्यज्ञो नाम । श० २ । ६ । १ । १ ॥

„ यः (अर्धमासः) अपत्नीयते स पितरः । श० २ । १ । ३ । १ ॥

„ अपत्न्यभाजो वै पितरः । कौ० ५ । ६ ॥

„ अपराहः पितरः । श० २ । १ । ३ । १ ॥

„ तस्मै (चन्द्रमसे) ह स्म पूर्वाह्णे देवा अशनमभिहरन्ति मध्य-
न्दिने मनुष्याऽ अपराह्णे पितरः । श० १ । ६ । ३ । १२ ॥

„ अपराह्णभाजो वै पितरस्तस्मादपराह्णे पितृत्यज्ञेन चरन्ति । गो०
उ० १ । २४ ॥

„ अन्तभाजो वै पितरः । कौ० १६ । ८ ॥

„ यदि नाश्नाति पितृदेवत्यो भवति । श० ११ । १ । ७ । २ ॥

„ मर्त्याः पितरः । श० २ । १ । ३ । ४ ॥

„ अनपहतपाप्मानः पितरः । श० २ । १ । ३ । ४ ॥

„ पितृलोकः पितरः । कौ० ६ । ७ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

„ पितृदेवत्यो वै कूपः खातः । श० ३ । ६ । १ । १३ ॥ ३ । ७ ।
१ । ६ ॥

„ पितृदेवत्या वै नीविः । श० २ । ४ । २ । २४ ॥ २ । ६ । १ । ४२ ॥

„ अथ या रोहिणी श्येताक्षी (गौः) सा पितृदेवत्या यामिदं
पितृभ्यो घ्नन्ति । श० ३ । ३ । १ । १४ ॥

„ अथ यद्ध्वर्युः पितृभ्यो निपृणाति, जीवानेव तत् पितृनु
मनुष्याः पितरो ऽनुपवहन्ति । गो० उ० १ । २५ ॥

„ पितृणां मघाः (नक्षत्रम्) । तै० १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ ।
१ । ६ ॥

„ पितरः प्रजापतिः । गो० उ० ६ । १५ ॥

„ मनः पितरः । श० १४ । ४ । ३ । १३ ॥

„ गृहाणाणु ह पितर ईशते । श० २ । ४ । २ । २४ ॥

„ गृहाणाथि हि पितर ईशते । श० २ । ६ । १ । ४२ ॥

पितरः सर्वतः पितरः । श० २ । ६ । १ । ११ ॥

” सकृदु होव पराञ्चः पितरः । श० २ । ४ । २ । ६ ॥ ४ । ४ । २ । ३ ॥

” सकृदिव वै पितरः । कौ० ५ । ६ ॥ १० । ४ ॥

” पराञ्च उ वै पितरः । कौ० ५ । ६ ॥

” ह्रीका हि पितरः । तै० १ । ३ । १० । ६ ॥ १ । ६ । ९ । ७ ॥

” हरणाभागा हि पितरः । तै० १ । ३ । १० । ७ ॥

” ऊष्मभागा हि पितरः । तै० १ । ३ । १० । ६ ॥

” देवा वा एते पितरः । कौ० ५ । ६ ॥

” देवा वा एते पितरः । गो० उ० १ । २४ ॥

” स्विष्टकृतो वै पितरः । गो० उ० १ । २५ ॥

” त्रया वै पितरः (सोमवन्तः, बर्हिषदः, अग्निष्यात्ताः) । श० ५ ।

५ । ४ । २८ ॥ १४ । १ । ३ । २४ ॥

” ऊमा वै पितरः प्रातःसवन ऊर्वा माध्यन्दिने काव्यास्तृतीय-

सवने (ऊमाः=ऋतुविशेषः, तैत्तिरीयसंहितायाम् ४ । ४ । ७ ।

२ ॥ ६ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्ये ऽपि) । ऐ० ७ । ३४ ॥

” एतद्भव वै पितरां मनुष्यलोकाऽ आमक्ता भवन्ति यदेषां प्रजा

भवति । श० १३ । ८ । १ । ६ ॥

” (अथास्य आङ्गिरसः) व्यानेन पितॄन् पितृलोके (अदधात्) ।

जै० उ० २ । ८ । ३ ॥

” कथ्यवाहनः (वाऽ अग्निः) पितृणाम् । श० २ । ६ । १ । ३० ॥

” अथ यदेव प्रजामिच्छेत् । तेन पितृभ्यऽ ऋणं जायते तद्भवैभ्यऽ

एतत्करोति यदेषां सन्तताव्यर्वाच्छन्ना प्रजा भवति । श० १ ।

७ । १ । ४ ॥

” यत्पीतृत्वं तद्विपृणाम् । ष० ४ । १ ॥

” स्वधाकारो हि पितृणाम् । तै० १ । ६ । ९ । ५ ॥ ३ । ३ । ६ । ४ ॥

” स्वधो वै पितृणामन्नम् । श० १३ । ८ । १ । ४ ॥

” स्वधाकारं पितरः (उपजीवन्ति) । श० १४ । ८ । ६ । १ ॥

” कर्मणा पितृलोकः (जय्यः) । श० १४ । ४ । ३ । २४ ॥

पितरा युवाना (यजु० १५ । ५३) बाक् च वै मनश्च पितरा युवाना ।

श० ८ । ६ । ३ । २२ ॥

[पिपृताम् (२८४)

पिता प्राणो वै पिता । ऐ० २ । ३८ ॥

„ (यजु० ३७ । २०) एष वै पिता य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । ४ । १५ ॥

„ सा (सुकन्या) होवाच यस्मै मां पितादात्रैवाहं तं (पतिं) जीवन्तः हास्यामीति । श० ४ । १ । ५ । ६ ॥

पिता वैश्वानरः संवत्सरो वै पिता वैश्वानरः प्रजापतिः । श० १ । ५ । १ । १६ ॥

पितुः (यजु० २ । २० ॥ १२ । ६५ ॥) अन्नं वै पितुः । श० १ । ९ । २ । २० ॥ ७ । २ । १ । १५ ॥

„ अर्थं वै पितुं मे गोपायेत्याह । अन्नमेवैतेन स्पृणोति । तै० १ । १ । १० । ४ ॥

„ अन्नं वै पितुः । ऐ० १ । १३ ॥

„ दक्षिणा वै पितुः । ऐ० १ । १३ ॥

पितुषण्डिः पितुषण्डिरित्यन्नं वै पितु दक्षिणा वै पितु तामेनेन (सोमेन) सनोत्यन्नसनिमैवेनं (सोमं) तत्करोति । ऐ० १ । १३ ॥

पितृमान्पैतृमत्यः यो वै ज्ञातो ज्ञातकुलीनः स पितृमान्पैतृमत्यः । श० ४ । ३ । ४ । १६ ॥

पिन्वन्त्यपीया (ऋक्) तद्यदेव वृत्रं हतमापो व्यायन् यत्रापिन्वन्तस्मा-
त्पिन्वन्त्यपीया । कौ० १५ । ३ ॥

„ पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानव इति पिन्वन्त्यपीयापो
वै पिन्वन्त्यपीया । कौ० १५ । ३ ॥

पिपीलिकमध्या (अतुष्टुप्) इन्द्रो वृत्रं हत्वा नास्तृषीति मन्यमानां परां
परावतमगच्छत् स एतां (पिपीलिकमध्यां)
अनुष्टुभं व्यौहृत्तमध्ये व्यवासर्पदिग्द्रगृहे वा
एषोभये यजते ऽभय उत्तिष्ठति य एवं विद्वा-
नेतासु (पिपीलिकमध्यासु) स्तुते । तां०
१५ । ११ । ६ ॥

„ पिपीलिकामध्येत्यौपमिकम् । ऐ० ३ । १० ॥

पिपीलिका पिपीलिका पेलतेर्गतिकर्मणः । ऐ० ३ । ९ ॥

पिपृताम् (यजु० १३ । ३१) पिपृतां नो भरीमभिरिति विभृतां नो

भरीमभिरित्येतत् । श० ७ । ५ । १ । १० ॥

पिशाङ्गिणा श्रीर्वे पिशाङ्गिणा । तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥ श० १३ । २ ।
६ । १६ ॥

पिशाङ्गिणा रात्रिर्वे पिशाङ्गिणा । तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥

„ अहोरात्रे वे पिशाङ्गिणे । श० १३ । २ । ६ । १७ ॥

पिशाचः अथ यः कामयेत पिशाचान् गुणीभूतान् पश्येयमिति..... ।
सा० वि० ३ । ७ । ३ ॥

पीतुदारु (=“उदुम्बर इति केचिद्देवदारुन्ये” इति सायणः) (अग्नेः)
यदस्थि तत्पीतुदारु । तां० २४ । १३ । ५ ॥

„ शरीरं वैवास्य (अग्नेः) पीतुदारु । श० ३ । ५ । २ । १५ ॥

„ अथ (प्रजापतेः) यदापोमयं तेज आसीत् । यो गन्धः स सार्धं
समवद्गन्धं चक्षुष्ट उद्भिनत्स एष वनस्पतिरभवत्पीतुदा-
रुस्तस्मात्स सुरभिर्गन्धाद्धि समभवत्तस्माद् ज्वलनस्तोजसो
हि समभवत् । श० १३ । ४ । ४ । ७ ॥

पुञ्जिकस्थला (यजु० १५ । १५) (अग्नेः) पुञ्जिकस्थला च क्रतु-
स्थला चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह
माहित्थिः सेना च तु ते समतिश्च । श० ५ । ६ । १ । १६ ॥

पुण्डरीकम् अङ्गिरसः सुवर्गं लोकं यन्तः । अप्सु दीक्षातपसी प्रावेश-
यन् । तत्पुण्डरीकम्भवत् । तै० १ । ८ । २ । १ ॥

„ यानि पुण्डरीकाणि तानि दिवो रूपम् । तानि नक्षत्राणां
रूपम् । श० ५ । ४ । ५ । १४ ॥

„ “पुष्करम्” शब्दमपि पश्यत ।

पुण्यं कर्म पुण्यं कर्म सुकृतस्य लोकः । तै० ३ । ३ । १० । २ ॥

„ ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति तेषामेतानि (नक्षत्राणि)
ज्योतींषि । श० ६ । ५ । ४ । ८ ॥

पुत्रः पुन्नाम नक्षत्रनेकशततारं तस्मात् प्राति पुत्रस्तत्पुत्रस्य पुत्र-
त्वम् । गो० पू० १ । २ ॥

„ पुत्रो वै वीरः (यजु० ४ । २३) । श० ३ । ३ । १ । १२ ॥

„ आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम् । मं० १ । ५ । १८ ॥

„ पुत्रो हि हृदयम् । तै० २ । २ । ७ । ४ ॥

- पुत्रः नापुत्रस्य लोको ऽस्ति । ऐ० ७ । १३ ॥
 ,, तस्मादुत्तरवयसे पुत्रान्पितोपजीवत्युप ह वाऽ एनं पूर्ववयसे
 पुत्रा जीवन्ति । श० १२ । २ । ३ । ४ ॥
 ,, उप ह वा एनं पूर्वं वयसि पुत्राः पितरमुपजीवन्त्युपोत्तमे वयसि
 पुत्रान् पितोपजीवति । गो० पू० ४ । १७ ॥
 ,, अनुरूप एनं पुत्रो जायते य एवं वेद् । तां० ११ । ६ । ५ ॥
 ,, प्रतिरूपो हैवास्य (यजमानस्य) प्रजायामाजायते नाप्रतिरूप-
 स्तस्मात्प्रतिरूपमनुरूपं कुर्वन्ति । गो० उ० ३ । २२ ॥

पुनःपदम् प्राणाः पुनःपदम् । कौ० २३ । ६ ॥

पुनःस्तोमः (ऋतुः) यो बहु प्रतिगृह्य गरगीरिव मन्यते स एतेन (पुनः-
 स्तोमेन) यजेत । तां० १६ । ४ । २ ॥

पुनर्जन्म ते यऽ एवमेतद्विदुः । ये वैतर्कर्म कुर्वन्ते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति
 ते सम्भवन्त एवामृतत्वमभिसम्भवन्त्यथ यऽ एवं न विदुर्ये
 वैतर्कर्म न कुर्वन्ते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति त एतस्य (मृत्योः)
 एवाश्रं पुनः पुनर्भवन्ति । श० १० । ४ । ३ । १० ॥

पुनर्वसू (नचत्रविशेषः) अदित्यै पुनर्वसू । तै० १ । ५ । १ । १ ॥

,, एवा न देव्यदितिरनर्वा । विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा ।
 पुनर्वसू हविषा वर्धयन्ती । तै० ३ । १ । १ । ४ ॥

पुनश्चितिः तद्यच्चित्तं सन्तं पुनश्चिनोति तस्मात्पुनश्चितिः । श० ८ ।
 ६ । ३ । १३ ॥

पुमान् धीर्य्यं पुमान् । श० २ । ५ । २ । ३६ ॥

पुरः (यजु० १३ । ५४ ॥) अग्निर्वै पुरस्तद्यत्तमाह पुर इति प्राञ्च
 ह्यग्निमुद्धरन्ति प्राञ्चमुपचरन्ति । श० ८ । १ । १ । ४ ॥

,, अग्निरेव पुरः । श० १० । ३ । ५ । ३ ॥

,, मन एव पुरः । मनो हि प्रथमं प्राणानाम् । श० १० । ३ । ५ । ७ ॥

पुरन्धियोषा (यजु० २२ । २२) पुरन्धियोषेति । योषित्वेव रूपं दधाति
 तस्माद्रूपिणी युवतिः प्रिया भालुका । श० १३ । १ । ६ । ६ ॥

पुरश्चरणम् "पुरः" "चरणम्" चेत्येतौ शब्दात्रपि पश्यत ।

,, अथैतं धिष्णुं यक्षम् । एतैर्यजुर्भिः पुर इवैव विभ्रति तस्मा-
 त्पुरश्चरणं नाम । श० ४ । ६ । ७ । ४ ॥

पुरश्चरणम् तद्वाऽपतदेव पुरश्चरणम् । य एष (सूर्यः) तपति । श० ४ ।
६ । ७ । २१ ॥

पुरीषम् अन्नं पुरीषम् । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥ ८ । ७ । ३ । २ ॥

„ अन्नं वै पुरीषम् । श० ८ । ६ । ४ । ४ ॥ ८ । ६ । १ । २१ ॥
१४ । ३ । १ । २३ ॥

„ मा०सं पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १६ ॥

„ मा०सं वै पुरीषम् । श० ८ । ६ । २ । १४ ॥ ८ । ७ । ३ । १ ॥

„ पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति समानं वै पुरीषं च
करीषं च । श० २ । १ । १ । ७ ॥

„ स एष प्राण एव यत्पुरीषम् । श० ८ । ७ । ३ । ६ ॥

„ पुरीषं वाऽ इयम् (पृथिवी) । श० १२ । ५ । २ । ५ ॥

„ ऐन्द्रं हि पुरीषम् । श० ८ । ७ । ३ । ७ ॥

„ अथ यत्पुरीषं स इन्द्रः । श० १० । ४ । १ । ७ ॥

„ दक्षिणाः पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १५ ॥

„ देवाः पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १७ ॥

„ नक्षत्राणि पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १४ ॥

„ वया०सि पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १३ ॥

„ प्रजा पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १६ ॥

„ प्रजा पशवः पुरीषम् । तै० ३ । २ । ८ ॥ ३ । २ । ६ । १२ ॥

„ (यजु० १३ । ३१) पशवो वै पुरीषम् । श० ७ । ५ । १ । ६ ॥
१ । २ । ५ । १७ ॥ ६ । ३ । १ । ३८ ॥

„ पशवः पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १२ ॥

„ गोष्ठः पुरीषम् । तां० १३ । ४ । १३ ॥

„ पुरीषत्पुरीषम् । श० ८ । ५ । ४ । ६ ॥

पुरीष्यः पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति । श० २ । १ । १ । ७ ॥

पुरुदस्मः बहुदान इति हैतद्यदाह पुरुदस्म इति । श० ४ । ५ । २ । १२ ॥

पुरुषः स वाऽ अयं पुरुषः सर्वासु पूर्णं पुरिशयः । श० १४ । ५ ।
५ । १८ ॥

„ इमे वै लोका पूरयमेव पुरुषो यो ऽयं (वायुः) पवते सो ऽस्यां
पुरि शेते तस्मात्पुरुषः । श० १३ । ६ । २ । १ ॥

[पुरुषः

(२८८)

- पुरुषः प्राण एष स पुरि शेते सं पुरि शेत इति पुरिशयं सन्तं प्राणं
पुरुष इत्याचक्षते । गो० पू० १ । ३६ ॥
- ” स यत् पूर्वो ऽस्मात् । सर्वस्मात्सर्वान्पाम्न श्रीषत्तस्मात्पुरुषः ।
श० १४ । ४ । २ । २ ॥
- ” अथ यः पुरुषस्स प्राणास्तत्साम तद्ब्रह्म तदमृतम् । जै० उ० १ ।
२५ । १० ॥
- ” पुरुषो वाऽ अक्षितिः । श० १४ । ४ । ३ । ७ ॥
- ” पुरुषो वै सहस्रस्य प्रतिमा (यजु० १३ । ४१) । श० ७ । ५ ।
२ । १७ ॥
- ” (प्रजापतिः) मनसः पुरुषम् (निरमिमीत) । श० ७ । ५ ।
२ । ६ ॥
- ” प्राजापत्यो वै पुरुषः । तै० २ । २ । ५ । ३ ॥
- ” पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्टम् । श० ४ । ३ । ४ । ३ ॥
- ” पुरुषः प्रजापतिः । श० ६ । २ । १ । २३ ॥ ७ । १ । १ । ३७ ॥
- ” पुरुषो हि प्रजापतिः । श० ७ । ४ । १ । १५ ॥
- ” वैष्णवाः पुरुषाः । श० ५ । २ । ६ । २ ॥
- ” (प्रजापतिः) वैश्वकर्मणं पुरुषं (आलिप्सत) । श० ६ । २ ।
१ । ५ ॥
- ” सौम्यो वै देवतया पुरुषः । तै० १ । ७ । ८ । ३ ॥
- ” पुरुषं प्रथममालभते । पुरुषो हि प्रथमः पशूनाम् । श० ६ । २ ।
१ । १८ ॥
- ” पुरुषः पशूनाम् (अधिपतिः) । तां० ६ । २ । ७ ॥
- ” पशवः पुरुषः । तै० ३ । ३ । ८ । २ ॥
- ” पुरुषस्तेन यज्ञो यदेनं पुरुषस्तनुत एष वै तायमानो यावानेष
पुरुषस्तावान् विधीयते तस्मात् पुरुषो यज्ञः । श० १ । ३ ।
२ । १ ॥
- ” पुरुषो यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । २३ ॥
- ” पुरुषो वै यज्ञः । कौ० १७ । ७ ॥ २५ । १२ ॥ २८ । ६ ॥ श० १ ।
३ । २ । १ ॥ ३ । ५ । ३ । १ ॥ तै० ३ । ८ । २३ । १ ॥ गो०
पू० ४ । २४ ॥ गा० उ० ६ । १२ ॥

- पुरुषः पुरुषो वै यज्ञः । तस्य यानि चतुर्विंशतिवर्षाणि तत्प्रातःसवनम् ।...अथ यानि चतुश्चत्वारिंशतं वर्षाणि तन्माध्यन्दिनं सवनम्...अथ यान्यष्टाचत्वारिंशतं वर्षाणि तत्तृतीयसवनम् ।...स (महिदास पेत्रेयः) षोडशशतं (२४+४४+४८=११६) वर्षाणि जिजीव । (एवं छांदोग्योपनिषदि ३ । १६ । १-७) ।
 जै० उ० ४ । २ । १-११ ॥
- ” पुरुषो वै यज्ञस्तेनेदं सर्वं मितम् (तैत्तिरीयसंहितायाम् ५ । २ । ६ । १ः—यज्ञेन वै पुरुषः सम्मितः ॥) । श० १० । २ । १ । २ ॥
- ” पुरुषसम्मितो यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । २३ ॥
- ” अपाङ्गर्भः पुरुषः स यज्ञः । गो० पू० १ । ३६ ॥
- ” पुरुष उद्गीथः । जै० उ० १ । ३३ । ६ ॥
- ” पुरुषो होद्गीथः । जै० उ० ४ । ६ । १ ॥
- ” पुरुषो ऽग्निः । श० १० । ४ । १ । ६ ॥
- ” पुरुषो वाऽग्निः । श० १४ । २ । १ । १५ ॥
- ” पुरुषो वै समुद्रः । जै० उ० ३ । ३५ । ५ ॥
- ” पुरुषः सुपर्णः (यजु० १३ । १६) । श० ७ । ४ । २ । ५ ॥
- ” पुरुषो वाव संवत्सरः । गो० पू० ५ । ३, ५ ॥
- ” पुरुषो वै संवत्सरः । श० १२ । २ । ४ । १ ॥
- ” पुरुष एव सविता । जै० उ० ४ । २७ । १७ ॥
- ” पुरुषो वाव होता । गो० उ० । ६ । ६ ॥
- ” पुरुष एव षष्ठमहः । कौ० २३ । ४ ॥
- ” अथैष एव पुरुषो यो ऽयं चक्षुषि । जै० उ० १ । २७ । २ ॥
- ” पुरुषं ह वै नारायणं प्रजापतिरुवाच । गो० पू० ५ । ११ ॥ श० १२ । ३ । ४ । १ ॥
- ” षोडशकलो वै पुरुषः । तै० १ । ७ । ५ । ५ ॥ श० ११ । १ । ६ । ३६ ॥ जै० उ० ३ । ३६ । १ ॥
- ” सप्तदशो वै पुरुषो दश प्राणाश्चत्वार्यङ्गान्यात्मा पञ्चदशो ग्रीवाः षोडशयः शिरः सप्तदशम् । श० ६ । २ । २ । ६ ॥
- ” अङ्गो ह्ययं पुरुषः । श० १४ । ७ । १ । १७ ॥
- ” काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तथाकतुर्भवति

यथाक्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते । श०
१४।७।२।७ ॥

- पुरुषः अथ खलु क्रतुमयो ऽयं पुरुषः स यावत्क्रतुरथमस्माल्लोकात्प्रैत्ये-
वंक्रतुर्हामुं लोकं प्रेत्याभिसम्भवति । श० १०।६।३।१ ॥
- ” व्याममात्रो वै पुरुषः । श० ७।१।१।३७ ॥
- ” द्विप्रतिष्टो वै पुरुषः । ऐ० २।१८ ॥ ३।३१ ॥ ५।३ ॥ ६।२ ॥
- ” द्विप्रतिष्ठः पुरुषः । गो० पू० ४।२४ ॥ गो० उ० ६।१२ ॥
- ” द्विप्रतिष्ठः (पुरुषः) । तै० ३।६।१२।३ ॥
- ” त्रिपात्रे पुरुषः । ऐ० ४।३ ॥ ५।१७, १६, २१ ॥ गो० पू० ४।
२३ ॥ गो० उ० ६।१२ ॥ तै० ३।६।१२।३ ॥
- ” पुरुषो वै ककुप् । तां० ८।१०।६ ॥ १३।६।४ ॥ १६।११।
७ ॥ १६।३।४ ॥ २०।४।३ ॥
- ” वैताजो वै पुरुषः । तां० २।७।८ ॥ १६।४।५ ॥ तै० ३।६।
८।२ ॥
- ” गात्रो वै पुरुषः । ऐ० ४।३ ॥
- ” औष्णिहो वै पुरुषः । ऐ० ४।३ ॥
- ” पांशुः पुरुषः । कौ० १३।२ ॥ तां० २।४।२ ॥ गो० उ० ४।७ ॥
- ” पाङ्गो ऽयं पुरुषः पञ्चधा विहितो लोमानि त्वङ् मांसमस्थि
मज्जा । ऐ० २।१४ ॥ ६।२६ ॥
- ” पाङ्गो ह्ययं पुरुषः पञ्चधा विहितो लोमानि त्वगस्थि मज्जा
मस्तिष्कम् । गा० उ० ६।६।८ ॥
- ” पाङ्गो वै पुरुषो लोम त्वङ् मांसमस्थि मज्जा । श० १०।२।
३।५ ॥
- ” त्वङ् मांसमस्थि मज्जा । एतमेव तत्पञ्चधा विहित-
मात्मानं वरुणपाशान्मुञ्चति (यजमानः=पुरुषः) । तै० १।
५।६।७ ॥
- ” षड्विधो वै पुरुषः षडङ्गः । ऐ० २।३६ ॥
- ” सप्तपुरुषो ह्ययं पुरुषो यच्चत्वार आत्मा त्रयः पक्षपुच्छानि । श०
६।१।१।६ ॥
- ” एतावन्तः (७२०) एष पुरुषस्यास्थीनि च मज्जानश्च.....,

- एतावन्तः (१४४०) एव पुरुषस्य स्थुरामांसाणि....., एतावन्तः
 (२८८०) एव स्नावा बन्ध्याः....., एतावन्तः (१०८००) एव
 पुरुषस्य पेशशमराः । गो० पू० ५ । ५ ॥
- पुरुषः अवलितो ह वै पुरुषः । तस्मादस्य यत्रैव कच कुशो वा यद्वा
 विक्रन्तति तत एव लोहितमुत्पतति तस्मिन्नेतां त्वचमदधुर्वास
 एव तस्मान्नान्यः पुरुषाद्वासो विभर्त्येतां ॐ ह्यस्मिंस्त्वचमदधु-
 स्तस्माद् सुवासा एव बुभूषेत्स्वया त्वचा समृध्याऽ इति
 तस्मादप्यश्रील० सुवाससं दिदृक्षन्ते स्वया हि त्वचा समृद्धो
 भवति । श० ३ । १ । २ । १६ ॥
- ” द्वे वै पुरुषकपाले । कौ० ३० । ४ ॥
- ” विदलसंहित इव वै पुरुषस्तद्धापि स्यूमेव मध्ये शीष्णो
 विज्ञायते । ऐ० ४ । २२ ॥
- ” वि०शो वै पुरुषो दश हि हस्त्या अङ्गुल्यो दश पाद्याः । तां०
 २३ । १४ । ५ ॥
- ” चतुर्विंशो वै पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुल्यो दश पाद्याश्चत्वार्य-
 ज्ञानि । श० ६ । २ । १ । २३ ॥
- ” एतावान्पुरुषो यदात्मा प्रजा जाया । तां० ३ । ४ । ३ ॥ ३ ।
 १३ । ३ ॥
- ” शतायुर्वै पुरुषः । कौ० ११ । ७ ॥
- ” शतायुर्वै पुरुषः शतपर्वा शतवीर्य्यः शतेन्द्रिय उप य एकशततमः
 स आत्मा । कौ० १८ । १० ॥
- ” शतायुर्वै पुरुषः शतपर्वा शतवीर्य्यः शतेन्द्रिय उप यैकशततमी
 (ऋक्) स यजमानलोकः । कौ० २५ । ७ ॥
- ” शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्य्यः । तै० ३ । ८ । १५ । ३ ॥ ३ । ८ ।
 १६ । २ ॥ तां० ५ । ६ । १३ ॥
- ” शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्य्यः । आत्मैकशतः । तै० १ । ७ । ६ । ४ ।
- ” शतायुः पुरुषः शतेन्द्रियः । तै० १ । ३ । ७ । ७ ॥ १ । ७ । ६ ।
 २ ॥ १ । ७ । ८ । २ ॥ १ । ७ । १० । ६ ॥
- ” शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्य्यः शतेन्द्रियः । ऐ० २ । १७ ॥ ४ । १९ ॥
 ६ । २ ॥

पुरुषः सो ऽय१७ (पुरुषः) शतायुः शततेजाः शतवीर्यः । श० ४ ।
३ । ४ । ३ ॥

„ शतायुर्वाऽअयं पुरुषः शततेजाः शतवीर्यैः । श० ५ । ४ ।
१ । १३ ॥

„ अपि हि भूया१७सि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति । श० १ ।
९ । ३ । १६ ॥

„ यद्वै पुरुषवान्कर्म चिकीर्षति शक्नोति वै तत्कर्तुम् । श० ५ ।
२ । ५ । ४ ॥

„ “ अनद्धा पुरुषः ” शब्दमपि पश्यत ।

पुरुषमेधः तस्य (पुरुषस्य वायोः) यदेषु लोकेष्वन्नं तदस्यान्नं मेघ-
स्तद्यदस्यैतदन्नं मेघस्तस्मात्पुरुषमेधो ऽथो यदस्मिन्मेघान्पुरुषा-
नालभते तस्माद्वै पुरुषमेधः (शाङ्खायनश्रौतसूत्रे १६ ।
१० । ६ ॥ १६ । १२ । १७, २१ ॥ वैतानसूत्रे ३७ । १५, १६,
१८, १९, २३—२६ ॥) । श० १३ । ६ । २ । १ ॥

„ अश्वमेधात्पुरुषमेधः । गो० पू० ५ । ७ ॥

„ इमे वै लोकाः पुरुषमेधः । श० १३ । ६ । १ । ६ ॥

„ सर्वं पुरुषमेधः । श० १३ । ६ । १ । ६ ॥

„ पुरुषं वै देवाः पशुमालभन्त तस्मादालब्धान्मेध उदक्रामत्सो
ऽभ्रं प्राविशत् । ऐ० २ । ८ ॥

„ सः (प्रजापतिः) पुरुषमेधेनेष्ट्वा विराडिति नामाद्यत्त । गो०
पू० ५ । ८ ॥

„ पुरुषो ह नारायणो ऽकामयत् । अतितिष्ठेय१७ सर्वाणि भूता-
न्यहमेवेद१७ सर्व१७ स्यामिति स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं
यज्ञकर्तुमपद्यत्तमाहः त्तेनायजत तेनेष्ट्यतिष्ठत्सर्वाणि भूता-
नीद१७ सर्वमभवदतितिष्ठति सर्वाणि भूतानीद१७ सर्वं
भवति य एवं विद्वान् पुरुषमेधेन यजते यो वैतदेवं वेद ।
श० १३ । ६ । १ । १ ॥

पुरोडाशः सः (कूर्मरूपेणाच्छन्नः पुरोडाशः) वा एभ्यः (मनुष्येभ्यः)
तत्पुरो ऽदशयत् । य एभ्यो यज्ञं प्रारोचयत्तस्मात्पुरोदाशः
पुरोदाशो ह वै नामैतद्यत्पुरोडाश इति । श० १ । ६ । २ । ५ ॥

- पुरोडाशः पुरो वा एतान्देवा अक्रत यत्पुरोडाशस्तत्पुरोडाशानां पुरो-
डाशत्वम् । ऐ० २ । २३ ॥
- „ यजमानो वै पुरोडाशः । तै० ३ । २ । ८ । ६ ॥ ३ । ३ । ८ । ७ ॥
- „ आत्मा वै यजमानस्य पुरोडाशः । कौ० १३ । ५, ६ ॥
- „ पशोर्वै प्रतिमा पुरोडाशः । तै० ३ । २ । ८ । ८ ॥
- „ पशुर्ह वाऽ एष आलभ्यते यत्पुरोडाशः । श० १ । २ । ३ । ५ ॥
- „ स वा एष पशुरेवालभ्यते यत्पुरोडाशस्तस्य यानि किंशा-
रुणि तानि रोमाणि ये तुषाः सा त्वग्ये फलीकरणास्तदसू-
ग्यतिपष्टं किन्नलास्तन्मांसं यत्किञ्चित्कं सारं तदस्थि सर्वेषां
षा एष पशूनां मेधेन यजते यः पुरोडाशेन यजते । ऐ०
२ । ६ ॥
- „ पशवो वै पुरोडाशः । तां० २१ । १० । १० ॥ तै० १ । ८ ।
६ । ३ ॥
- „ मेधो वा एष पशूनां यत्पुरोडाशः । कौ० १० । ५ ॥
- „ ततिर्वै यज्ञस्य पुरोडाशः । कौ० १० । ५ ॥
- „ शिरो ह वाऽ एतद्यज्ञस्य यत्पुरोडाशः । श० १ । १ । १ । २ ॥
- „ तस्य (यज्ञस्य) एतच्छिरः । यत्पुरोडाशः । तै० ३ । २ ।
८ । ३ ॥
- „ मस्तिष्को वै पुरोडाशः । तै० ३ । २ । ८ । ७ ॥
- „ विदुत्तरः पुरोडाशः । श० ११ । २ । ७ । १६ ॥
- „ आग्नेयः पुरोडाशो भवति । श० २ । ४ । ४ । १२ ॥
- „ इन्द्रस्य पुरोडाशः । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥
- पुरोधाता पृथिवी पुरोधाता । ऐ० ८ । २७ ॥
- „ अन्तरिक्षं पुरोधाता । ऐ० ८ । २७ ॥
- „ द्यौः पुरोधाता । ऐ० ८ । २७ ॥
- पुरोऽनुवाक्या (ऋक्) प्राण एव पुरोऽनुवाक्या । श० १४ । ६ ।
१ । १२ ॥
- „ पृथिवीलोकमेव पुरोऽनुवाक्यया (जयति) ।
श० १४ । ६ । १ । ६ ॥
- पुरोरुक् (देवाः) पुरोरुग्भिः प्रारोचयन् । श० ३ । ९ । ३ । २८ ॥

- पुरोरुक् तं (यज्ञं) पुरोरुग्भिः प्रारोचयन्त्यपुरोरुग्भिः प्रारोचयस्तत्पु-
 रोरुचां पुरोरुक्तम् । ऐ० ३ । ६ ॥
- ” अथ वै पुरोरुगसावेव यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष हि पुरस्ता-
 द्रोचते । कौ० १४ । ४ ॥
- ” अथ वै पुरोरुगात्मैव । कौ० १४ । ४ ॥
- ” अथ व पुरोरुक् प्राण एव । कौ० १४ । ४ ॥
- ” वीर्यं वै पुरोरुक् । श० ४ । ४ । २ । ११ ॥
- ” पुरोरुग्वै वाक् ॥ कौ० १४ । ५ ॥
- पुरोवातः सः (प्रजापतिः) पुरोवातमेव हिङ्गारमकरोत् । जै० ४० । १ ।
 १२ । ६ ॥
- पुरोहितः न ह वा अपुरोहितस्य राज्ञो देवा अन्नमदन्ति तस्माद्राजा
 यक्ष्यमाणो ब्राह्मणं पुरो दधीत् । ऐ० ८ । २४ ॥
- ” आदित्यो वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥
- ” वायुर्वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥
- ” अग्निर्वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥
- ” अग्निर्वा एष वैश्वानरः पञ्चमेनिर्यत्पुरोहितः । ऐ० ८ । २५ ॥
- ” अग्निर्वा एष वैश्वानरः पञ्चमेनिर्यत्पुरोहितस्तस्य वाच्येवैका
 मेनिर्भवति पादयोरेका त्वच्येका हृदय एकोपस्थ एका
 ताभिर्ज्वलन्तीभिर्दीप्यमानाभिरुपोदेति राजानम् । ऐ० ८ । २४ ॥
- ” अथ यदस्य (राज्ञः) अनिरुद्धो वेदमसु (पुरोहितः) वसति
 तेनास्य तां शमयति या ऽस्योपस्थे मेनिर्भवति । ऐ० ८ । २४ ॥
- ” अर्धात्मो ह वा एष क्षत्रियस्य यत्पुरोहितः । ऐ० ७ । २६ ॥
- पुष्करपर्णम् आपः पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥ १० । ५ ।
 २ । ६ ॥
- ” आपो वै पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । २ । २ ॥ ७ । ३ । १ ।
 ९ ॥ ७ । ४ । १ । ८ ॥
- ” द्यौः पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । १ । ९ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै पुष्करपर्णम् । श० ७ । ४ । १ । १२ ॥
- ” प्रतिष्ठा वै पुष्करपर्णम् । श० ७ । ४ । १ । १२ ॥
- ” वाक् पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । १ । ७ ॥

पुष्करपर्णम् योनिर्वै पुष्करपर्णम् । श० ६।४।१।७ ॥ ६।४।३।

६ ॥ ८।६।३।७ ॥

पुष्करम् इन्द्रो वृत्रं हत्वा नास्तृषीति मन्यमानो ऽपः प्राविशत्ता
अब्रवीद्विभेमि वै पुरं मे कुरुतेति स यो ऽपां रस आसीत्त-
मूर्ध्वं समुदौहंस्तामस्मै पुरमकुर्वंस्तद्यदस्मै पुरमकुर्वंस्तस्मा-
त्पुष्करं पुष्करं ह वै तत्पुष्करमित्याचक्षते परोऽक्षम् । श०
७।४।१।१३ ॥

„ ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे । गो० पू० १।१६ ॥

„ (=पुण्डरीकम्) इन्द्रो वृत्रमहंस्तस्येयं (पृथिवी) चित्राण्यु-
पैद्रूपाण्यसौ (द्यौः) नक्षत्राणामवकाशेन पुण्डरीकजायते यत्
पुष्करस्रजं प्रतिमुञ्चते वृत्रस्यैव तद्रूपं क्षत्रम् प्रतिमुञ्चते
(Compare वैदिकनिघंटु १।३-पुष्करम्=अन्तरिक्षम्) ।
तां० १८।६।६ ॥

„ आपो वै पुष्करम् । श० ६।४।२।२ ॥ ७।४।१।८ ॥

पुष्टिः सरस्वती पुष्टिः पुष्टिपत्नी । तां० २।५।७।४ ॥

„ सरस्वती पुष्टिं (पुष्टिः) पुष्टिपतिः । श० ११।४।३।१६ ॥

पूः आत्मा (=शरीरं) वै पूः । श० ७।५।१।२१ ॥

„ लेखा हि पुरः । श० ६।३।३।२५ ॥

„ ते देवाः प्रतिबुध्याग्निमयीः पुरस्त्रिपुरं पर्यास्यन्त । ऐ० २।११ ॥

पूतभृत् वैश्वदेवो वै पूतभृत् । श० ४।४।१।१२ ॥

पूतीकाः गायत्री सोममहरत्तस्या अनुविस्तृत्य सोममरक्षिः पर्णमच्छि-
नत्तस्य योऽंशुः परापतत्स पूतीको ऽभवत्तस्मिन् देवा
ऊतिमविन्दन्पूतीको वा पृष यत्पूतीकानभिषुण्वन्त्यूतिमेवास्यै
विन्दन्ति । तां० ६।५।४ ॥

„ तस्य (सोमस्य) ये ह्वियमाणस्यांशवः परापतंस्ते
पूतीका अभवन् । तां० ८।४।१ ॥

„ यदि सोमं न विन्देयुः पूतीकानभिषुण्युर्यदि न पूतीकानज्जु-
नानि । तां० ६।५।३ ॥

„ “आदाराः” शब्दमपि पश्यत ।

पूर्णम् सर्वं वै पूर्णम् । श० ४।२।२।२ ॥ ५।२।३।१ ॥

[पूषा

(२६६)

पूर्णम सर्वं वै तद्यत्पूर्णम् । श० ४ । २ । ३ । २ ॥

„ सर्वमेतद्यत्पूर्णम् । श० ९ । २ । ३ । ४३ ॥

पूर्णाहुतिः इयं (पृथिवी) वै पूर्णाहुतिः । श० १३ । १ । ८ । ८ ॥ तै०
३ । ८ । १० । ५ ॥

„ सर्व्वे वै पूर्णाहुतिः । तै० ३ । ८ । १० । ५ ॥

पूर्वचित्तिः द्यौर्वै वृष्टिः पूर्वचित्तिः । तै० ३ । ६ । ५ । २ ॥ श० १३ ।
२ । ६ । १४ ॥

पूर्वपक्षः सञ्ज्ञानं विज्ञानं दर्शादष्टेति । एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्याहोत्राणां
नामधेयानि । तै० ३ । १० । १० । २ ॥

पूर्वमहः ब्रह्म वै पूर्वमहः । तां० ११ । ११ । ९ ॥

पूर्ववाद् न्याहवनीयो गार्हपत्यमकामयत् । नि गार्हपत्य आहवनीयं ।
तौ विभाजं नाशक्तोत् । सो ऽध्वः पूर्ववाद् भूत्वा । प्राञ्चं
पूर्वमुदवहत् । तत्पूर्ववाहः पूर्ववाद्त्वम् । तै० १ । १ ।
५ । ६ ॥

पूर्वाहुतिः अग्नेः पूर्वाहुतिः । तै० २ । १ । ७ । १ ॥

„ एष वा अभिहोत्रस्य स्थाणुः । यत्पूर्वाहुतिः । तै० २ । १ ।
४ । ३ ॥

पूषा स शौद्रं वर्णमसृजत् पूषणमियं (पृथिवी) वै पूषेयश्च हीदश्च
सर्वं पुष्यति यदिदं किं च । श० १४ । ४ । २ । २५ ॥

„ इयं वै पृथिवी पूषा । श० २ । ५ । ४ । ७ ॥ ३ । २ । ४ । १६ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै पूषा । श० ६ । ३ । २ । ८ ॥ १३ । २ । २ । ६ ॥
१३ । ४ । १ । १४ ॥ तै० १ । ७ । २ । ५ ॥

„ (यजु० ३८ । ३, १५) अयं वै पूषा यो ऽयं (वातः) पवत् ऽ एष
हीदश्च सर्वं पुष्यति । श० १४ । २ । १ । ६ ॥ १४ । २ । २ । ३३ ॥

„ पूषाः पोषेण मह्यं दीर्घायुत्वाय शतशारदाय शतश्च शरदूम्य
आयुषे वर्चसे । तै० १ । २ । १ । १९ ॥

„ पूषा ऽपोषयत् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥

„ पुष्टिर्वै पूषा । तै० २ । ७ । २ । १ ॥ श० ३ । १ । ४ । ९ ॥

„ असौ वै पूषा यो ऽसो (सूर्यः) तपति । कौ० ५ । २ ॥ गो० ३०
१ । २० ॥

- पूषा (अग्ने !) त्वं पूषा विधतः पाप्सि नु त्मना । तै० ३ । ११ । २ । १ ॥
- ॥ अन्नं वै पूषा । कौ० ११ । ८ ॥ तै० १ । ७ । ३ । ६ ॥ ३ । ८ । २३ । २ ॥
- ॥ पशवः पूषा । ऐ० २ । २४ ॥ तां० २३ । १६ । ५ ॥
- ॥ पशवो हि पूषा । श० ५ । २ । ५ । ८ ॥
- ॥ (यजु० २१ । २०) पशवो वै पूषा । श० १३ । १ । ८ । ६ ॥
- ॥ पशवो वै पूषा । श० ३ । १ । ४ । ६ ॥ ३ । ९ । १ । १० ॥ ५ । ३ । ५ । ८, ३५ ॥ तै० ३ । ८ । ११ । २ ॥ तां० १८ । १ । १६ ॥
- ॥ पौष्णाः पशवः । श० ५ । २ । ५ । ६ ॥
- ॥ पूषा वै णक्षुनामीष्टे । श० १३ । ३ । ८ । २ ॥
- ॥ पूषा पशुभिः (अघति) । तै० १ । ७ । ६ । ६ ॥ ३ । १ । ५ । १२ ॥
- ॥ पूषा रो खती (तक्षत्रम्) । गावः परस्ताद्भ्रता भवस्तात् । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥
- ॥ पूषा देवत्यन्वेति पन्याम् । तै० ३ । १ । २ । ९ ॥
- ॥ पूषा विशां विदपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
- ॥ प्रजननं वै पूषा । श० ५ । २ । ५ । ८ ॥
- ॥ पूषा वै पथीनामधिपतिः । श० १३ । ४ । १ । १४ ॥
- ॥ पूषा वै ऋण्यस्य (= त्वग्दोषस्येति सायणः) भिषक् । तै० ३ । ६ । १७ । २ ॥
- ॥ पूषा (श्रियः) भगम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
- ॥ पूषा भर्गं भगपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १५ ॥
- ॥ पथ्या पूष्णाः पत्नी । गो० ३० २ । ६ ॥
- ॥ योषा वै सरस्वती वृषा पूषा । श० २ । ५ । १ । ११ ॥
- ॥ पूषा भागदुधो ऽशनं पाणिभ्यामुपनिधाता । श० १ । १ । २ । १७ ॥
- ॥ पूषा वै देवानां भागदुधः । श० ५ । ३ । १ । ९ ॥
- ॥ पूषा भागदुधः । श० ३ । ६ । ४ । ३ ॥
- ॥ (देवस्य त्वा सवितः प्रसवे) पूष्णो हस्ताभ्याम् । तै० २ । ६ । ५ । २ ॥
- ॥ तस्य (पूष्णः) दन्तान्परोक्षाय तस्मादाद्दुरदन्तकः पूषा करम्भ-
भाग इति । कौ० ६ । १३ ॥

- पूषा तस्मादाहुरदन्तकः पूषेति । श० १ । ७ । ४ । ७ ॥
- „ तस्मादाहुरदन्तकः पूषा पिष्टमाजन इति । गो० उ० १ । २ ॥
- „ तस्माद्यं पूष्णे चरं कुर्वन्ति प्रपिष्टानामेव कुर्वन्ति यथादन्तकायै-
वम् । श० १ । ७ । ४ । ७ ॥
- „ पूष्णः करम्भः (=यवपिष्टमाज्यसंयुतमिति सायणः) । तै० १ ।
५ । ११ । ३ ॥ श० ४ । २ । ५ । २२ ॥
- „ स हि पौष्णो यच्छ्यामः (गौः) । श० ५ । २ । ५ । ८ ॥
- „ अग्रापौष्णमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । २ ।
५ । ५ ।
- पृतना युधो वै पृतनाः । श० ५ । २ । ४ । १६ ॥
- पृतन्युः (=पाप्सा, यजु० १५ । ५१) अधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यव
इत्यधस्पदं कुरुतां सर्वाऽन्पाप्मन इत्येतत् । श० ८ । ६ ।
३ । २० ॥
- पृथिवी तां (भूमि) अप्रथयत्सा पृथिव्यभवत् । श० ६ । १ । १ । १५ ॥
६ । १ । ३ । ७ ॥
- „ स (प्रजापतिः) वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत् । स पृथिवीमध
आच्छत् तस्या उपहस्योदमज्जत् तत्पुष्करपर्णे प्रथयत् तत्पृथिव्यै
पृथिवित्वम् । तै० १ । १ । ३ । ६-७ ॥
- „ इयती ह वाऽ इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री तामेभूष इति
वराह उज्जघान सो ऽस्याः (पृथिव्याः) पतिः प्रजापतिः । श०
१४ । १ । २ । ११ ॥
- „ भव्या ह वाऽ इयं (पृथिवी) भूत्वा मनुमुवाह सो ऽस्याः पतिः
प्रजापतिः । श० १४ । १ । ३ । २५ ॥
- „ प्राजापत्यो वा अयं (भू-) लोकः । तै० १ । ३ । ७ । ५ ॥
- „ इयं (पृथिवी) यमी । श० ७ । २ । १ । १० ॥ गो० उ० ४ । ८ ॥
- „ यमो ह वाऽ अस्याः (पृथिव्याः) अवसानस्येष्टे । श० ७ । १ ॥
१ । ३ ॥
- „ आग्नेयी पृथिवी । तां० १५ । ४ । ८ ॥
- „ पृथिव्यग्नीः पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥
- „ सेयं (पृथिवी) देवानां पत्नी । श० १ । ३ । १ । १५. १७ ॥

- पृथिवी इयं (पृथिवी) ह्यग्निः । श० ६ । १ । १ । १४ ॥ ६ । १ । २ । २६ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वाऽ अग्निः । श० ७ । ३ । १ । २२ ॥
- ” अयं वाऽ अग्निर्लोकः । श० १ । ६ । २ । १३ ॥
- ” अयं वै (पृथिवी-) लोकोऽग्निः । श० १४ । ६ । १ । १४ ॥
- ” आग्नेयोऽयं (पृथिवी-) लोकः । जै० उ० १ । ३७ । २ ॥
- ” आग्निगर्भा पृथिवी । श० १४ । ९ । ४ । २२ ॥
- ” सा (अदितिः=पृथिवी) अग्निं गर्भं विभर्तु । श० ६ । ५ । १ । ११ ॥
- ” इयं वै पृथिव्यदितिः । श० २ । २ । १ । १६ ॥ ३ । ३ । १ । ४ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वा अदितिः । गो० उ० १ । २५ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वाऽ अदितिर्मही (यजु० ११ । ५६) । श० ६ । ५ । १ । १० ॥
- ” इयं (पृथिवी) एव मही । जै० उ० ३ । ४ । ७ ॥
- ” पृथिवीं मातरं महीम् । तै० २ । ४ । ६ । ८ ॥
- ” उपहृता पृथिवी माता । श० १ । ८ । १ । ४१ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै माता । तै० ३ । ८ । ९ । १ ॥ श० १३ । १ । ६ । १ ॥
- ” “ नमो मात्रे पृथिव्यै ” (यजु० ६ । २२) । श० ५ । २ । १ । १८ ॥
- ” तन्माता पृथिवी तरिपता द्यौः । तै० २ । ७ । १६ । ३ ॥ २ । ८ । ६ । ५ ॥ ३ । ७ । ५ । ४-५ ॥ ३ । ७ । ६ । १६ ॥
- ” मातेव वा इयं (पृथिवी) मनुष्यान्विभर्ति । श० ५ । ३ । १ । ४ ॥
- ” धेनुर्दिव वाऽ इयं (पृथिवी) मनुष्येभ्यः सर्वान्कामान्बुधे माता । धेनुर्मातेव वाऽ इयं (पृथिवी) मनुष्यान्विभर्ति । श० २ । २ । १ । २१ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै धेनुः । श० १२ । ६ । २ । ११ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै विश्वायुः । तै० ३ । २ । ३ । ७ ॥
- ” (=विश्ववायाः) अस्याऽऽ (पृथिव्यां) द्वीदऽऽ सर्वऽऽ हितम् । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥

- पृथिवी इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिर्विश्वरूपी । तै० १ । ७ । ६ । ७ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै पृथिवी । तै० १ । ४ । १ । ५ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै वशा पृथिवी । श० १ । ८ । ३ । १५ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै वशा पृथिवीर्धदिदमस्यां मूलि चामूलं चाप्राथं प्रतिष्ठितं तेनेयं वशा पृथिवी । श० ५ । १ । ३ । ३ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वा अग्निहोत्री (गौः) । तै० १ । ४ । ३ । १ ॥
- ” महिषी हीयम् (पृथिवी) । श० ६ । ५ । ३ । १ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वाऽ अविर्दिष्टी हीमाः सर्वाः प्रजा अवति । श० ६ । १ । २ । ३३ ॥
- ” इयं वै पृथिवी देवी देवयजनी । श० ३ । २ । २ । २० ॥
- ” पृथिवी वै सर्वेषां देवानामायतनम् । श० १४ । ३ । २ । ४ ॥
- ” भूरिति वाऽ अयं (पृथिवी-) लोकः । श० ८ । ७ । ४ । ५ ॥
- ” भूः (यजु० १३ । १८) हीयम् (पृथिवी) । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥
- ” स भूरिति ध्याहरत् । स भूमिमसृजत् । अग्निहोत्रं दशपूर्णमासौ यजूंषि । तै० २ । २ । ४ । २ ॥
- ” स (प्रजापतिः) भूरित्येवर्षेदस्य रसमादत्त । सेयं पृथिव्य-
भवत् । तस्य यो, रसः प्राणेदत्त सोऽग्निरभवद्रसस्य रसः ।
जै० उ० १ । १ । ३ ॥
- ” अयं (भू-) लोक ऋग्वेदः । ष० १ । ५ ॥
- ” भूरित्यृग्न्यो क्षरत् सोऽयं (पृथिवी-) लोकोऽभवत् । ष० १ । ५ ॥
- ” भूमिः (यजु० १३ । १८) हीयम् (पृथिवी) । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै भूमिरस्यां वै स भवति यो भवति । श० ७ । २ । १ । ११ ॥
- ” अयं वै (पृथिवी-) लोको भूतम् । तै० ३ । ८ । १८ । ५ ॥
- ” इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा (यजु० ३७ । ४) । श० १४ । १ । २ । १० ॥
- ” इयं (पृथिवी) उ वाऽ एषां लोकानां प्रथमासृज्यत् । श० ६ । ५ । ३ । १ ॥

- पृथिवी इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिः । श० ५ । २ । ३ । ३ ॥ तै० १ ।
६ । १ । १ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) कद्रुः । श० ३ । ६ । २ । २ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी । कौ० २७ । ४ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञी । तां० ४ । ९ । ६ ॥
- ॥ इयं वै पृथिवी सर्पराज्ञी । श० २ । १ । ४ । ३० ॥ ४ । ६ ।
६ । १७ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी । ऐ० ५ । २३ ॥
तै० १ । ४ । ६ । ६ ॥
- ॥ देवा वै सर्पाः । तेषामियं (पृथिवी) राज्ञी । तै० २ । २ । ६ । २ ॥
- ॥ अयं वै (पृथिवी-) लोकः सुक्षितिः (यजु० ३७ । १०)
अस्मिन्हि लोके सर्वाणि भूतानि क्षियन्ति । श० ६४ । १ ।
२ । २४ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) वै सरघा । तै० ३ । १० । १० । १ ॥
- ॥ अयं वै (पृथिवी-) लोको मित्रो ऽसौ (द्युलोकः) वरुणः ।
श० १२ । ६ । २ । १२ ॥
- ॥ द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ४ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) वामभृत् । श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) वै वरिष्ठा संवत् (यजु० ११ । १२) । श० ६ ।
३ । २ । २ ॥
- ॥ अयं वै पृथिवी-) लोको ऽवस्यूर्ध्वस्वान् । श० ९ । ४ । २ । ७ ॥
- ॥ अयं वै (पृथिवी-) लोको भद्रः । ऐ० १ । १३ ॥
- ॥ अयं लोको बर्हिः (ऋ० ६ । १६ । १०) । श० १ । ४ । १ । २४ ॥
- ॥ अयं वै (पृथिवी-) लोको बर्हिः । श० १ । ८ । २ । ११ ॥ १ ।
६ । २ । २९ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) वै सत्या अर्षणीधृदन्वा (ऋ० ४ । १७ । २०) ।
ऐ० ३ । ३८ ॥
- ॥ इयं (पृथिवी) एव सत्यमियं (होवेषां लोकानामद्वातमाम् ।
श० ७ । ४ । १ । ८ ॥
- ॥ अयं वै (पृथिवी-) लोको विशालं उन्दः (यजु० १५ । ५) ।
श० ८ । ५ । २ । ६ ॥

- पृथिवी अयं वै (पृथिवी-) लोको रथन्तरं छन्दः (यजु० १५।५) ।
 श० ८।५।२।५ ॥
- ” इयं वै पृथिवी रथन्तरम् । ऐ० ८।१ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै रथन्तरम् । कौ० ३।५ ॥ ष० २।२ ॥ तै०
 १।४।६।२ ॥ तां० ६।८।१५ ॥ १५।१०।१५ ॥ श० ५।
 ५।३।५ ॥ २।१।२।३६ ॥
- ” अयं वै (पृथिवी-) लोको रथन्तरम् । ऐ० ८।२ ॥
- ” रथन्तरं हीयम् (पृथिवी) । श० १।७।२।१७ ॥
- ” उपहृतं रथन्तरं सह पृथिव्या । श० १।८।१।१६ ॥ तै०
 ३।५।८।१ ॥
- ” राथन्तरो वा अयं (पृथिवी-) लोकः । तै० १।१।८।१ ॥
- ” अयं वै (पृथिवी-) लोक एवदछन्दः (यजु० १५।४) । श०
 ८।५।२।३ ॥
- ” अयं वै (पृथिवी-) लोको विराट् (यजु० १३।२४) । श०
 ७।४।२।२३ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै विराट् । श० १२।६।१।४० ॥ गो० उ०
 ६।२ ॥
- ” विराट् हीयम् (पृथिवी) । श० २।२।१।२० ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै धाता । तै० ३।८।२३।३ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै सविता । श० १३।१।४।२ ॥ तै० ३।
 ६।१३।२ ॥
- ” पृथिवी सावित्री । जै० उ० ४।२७।१ ॥ गो० पू० १।३३ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै मादिनम् (ऋ० ४।१७।२०) । ऐ० ३।३८ ॥
- ” एष वै प्रतिष्ठा वैश्वानरः (यत्पृथिवी) । श० १०।६।१।४ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै वैश्वानरः । श० १३।३।८।३ ॥
- ” पादौ त्वाऽपतौ वैश्वानरस्य (यत्पृथिवी) । श० १०।६।
 १।४ ॥
- ” पृथिवी वेदिः । ऐ० ५।२८ ॥ तै० ३।३।६।२८ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै वेदिः । श० ७।३।१।१५ ॥ ७।५।२।३१ ॥
- ” एतावती वै पृथिवी । यावती वेदिः । तै० ३।२।९।१२ ॥

- पृथिवी तस्मादाहुर्यावती वेदिस्तावती पृथिवीति । श० १ । २ । ५ । ७ ॥
- „ यावती वै वेदिस्तावती पृथिवी । श० ३ । ७ । २ । १ ॥
- „ यावती वै वेदिस्तावतीयम्पृथिवी । जै० उ० १ । ५ । ५ ॥
- „ वेदिर्वै परो ऽन्तः पृथिव्याः । तै० ३ । ६ । ५ । ५ ॥
- „ तस्याः (पृथिव्याः) एतत्परिमितं रूपं यदन्तर्वेद्यथैष भूमा-
ऽपरिमितो यो बहिर्वेदि । ऐ० ८ । ५ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै स्वयमातृण्णा (इष्टका) । श० ७ । ४ ।
२ । १ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै श्रीः । ऐ० ८ । ५ ॥
- „ श्रीर्वाऽ इयं (पृथिवी) तस्माद्यो ऽस्यै भूयिष्ठं विन्दते स एव
श्रेष्ठो भवति । श० ११ । १ । ६ । २३ ॥
- „ तस्माद्यो ऽस्यै (पृथिव्यै) भूयिष्ठं लभते स एव श्रेष्ठो भवति ।
श० १२ । ६ । १ । ४० ॥
- „ तस्य पृथिवी सद्ः । तै० २ । १ । ५ । १ ॥
- „ यन्मृदियं (पृथिवी) तत् । श० १४ । १ । २ । ६ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै वरुमीकवपा । श० ६ । ३ । ३ । ५ ॥
- „ श्रोत्रं होतृपृथिव्या यद्वल्मीकः । तै० १ । १ । ३ । ४ ॥
- „ इयं (पृथिवी) याज्या । श० १ । ७ । २ । ११ ॥
- „ इयं (पृथिवी) हि याज्या । श० १ । ४ । २ । १६ ॥
- „ वागिति पृथिवी । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै वाक् । श० ४ । ६ । ६ । १६ ॥
- „ वागेवायं (पृथिवी-) लोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै वागदो (अन्तरिक्षम्) मनः । ऐ० ५ । ३३ ॥
- „ पृथिवी ध्रुवा (ध्रुवा=स्थिरा=अचला=पृथिवी ॥ अमरकोषे
२ । १ । २) । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ६ । ११ ॥
- „ इयं (पृथिवी) एव ध्रुवा । (ध्रुवा=पृथिवी-वैजयन्तीकोषे
द्वयक्षरकांडे नानालिङ्गाध्याये श्लो० ४४ ॥) । श० १ । ३ ।
२ । ४ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै जगत्यस्याऽऽक्षीदऽऽ सर्वं जगत् । श० ६ ।
२ । १ । २६ ॥ ६ । २ । २ । ३२ ॥

- पृथिवी जगती हीयम् (पृथिवी) । श० २ । २ । १ । २० ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै गायत्री । तां० ७ । ३ । ११ ॥ १४ । १ । ४ ॥
- „ गायत्री ऽयं (भू-) लोकः । कौ० ८ । ६ ॥
- „ गायत्री वाऽ इयं पृथिवी । श० ४ । ३ । ४ । ६ ॥ ५ । २ । ३ । ५ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वा अनुष्टुप् । श० १ । ३ । २ । १६ ॥ तां० ८ । ७ । २ ॥
- „ या पृथिवी सा कुहः सो एवानुष्टुप् । ऐ० ३ । ४ ८ ॥
- „ त्रिष्टुभ्ययम् (पृथिवी) । श० २ । २ । १ । २० ॥
- „ इयं (पृथिवी) वाऽ अनुमतिः । श० ५ । २ । ३ । ४ ॥ तै० १ । ६ । १ । १, ४ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वा उत्तान आङ्गीरसः । तै० २ । ३ । २ । ५ ॥ २ । ३ । ४ । ६ ॥
- „ स यया प्रथमया (इष्वा) समर्पणेन परामिनत्ति सैका सेयं पृथिवी सैवा हवा नाम । श० ५ । ३ । ५ । २६ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वाऽ अषाढा । श० ६ । ५ । ३ । १ ॥ ७ । ४ । २ । ३२ ॥ ८ । ५ । ४ । २ ॥
- „ यथेयं पृथिव्युर्व्येवमुहूर्मासम् । श० २ । १ । ४ । २८ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै पूषा । तै० १ । ७ । २ । ५ ॥ श० ६ । ३ । २ । ८ ॥ १३ । २ । २ । ६ ॥ १३ । ४ । १ । १४ ॥
- „ अयं (भूलोकः) एवर्त्तनिधनम् । तां० २१ । २ । ७ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वाऽ उपशाम इयं वाऽ इदमन्नाद्यमुपयच्छति पशुभ्यो मनुष्येभ्यो वनस्पतिभ्यः । श० ४ । १ । २ । ८ ॥
- „ इयं (पृथिवी) ह वाऽ उपांशुः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥
- „ इयं (पृथिवी) एव स्तत्रियः । जै० ३० । ३ । ४ । २ ॥
- „ इयं वै क्षेत्रं पृथिवी । कौ० ३० । ११ ॥ गो० ३० । ५ । १० ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै देवरथः । तां० ७ । ७ । १४ ॥
- „ अयमेव (भू-) लोको ज्योतिः । ऐ० ४ । १५ ॥
- „ इयं वै (पृथिवी) ज्योतिः । तां० १६ । १ । ७ ॥
- „ अयं वै (पृथिवी-) लोको भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ७ ॥
- „ पथिव्येव भर्गः । गो० ५० । ५ । १५ ॥

- पृथिवी अयं वै (पृथिवी-) लोको गृहपतिः । श० १२ । १ । १ । १ ॥
 गो० पू० ४ । १ ॥
- .. अयं वै (भू-) लोको गार्हपत्यः । श० ७ । १ । १ । ६ ॥ ८ ।
 ६ । ३ । १४ ॥ ष० १ । ५ ॥
- .. इयं (पृथिवी) वै पूर्णाहुतिः । तै० ३ । ८ । १० । ५ ॥ श० १३ ।
 १ । ८ । ८ ॥
- .. सर्वं वा इयम् (पृथिवी) । श० ४ । २ । २ । १ ॥
- .. इयं वै पृथिवी प्रतिष्ठा । श० १ । ९ । १ । २६ ॥ १ । ९ । ३ । ११ ॥
- .. इयं (पृथिवी) वाऽ अस्त्य सर्वस्य प्रतिष्ठा । श० ४ । ५ ।
 २ । १५ ॥
- .. प्रतिष्ठा वा अयं लोकः । कौ० ६ । ४ ॥ १४ । ३ ॥
- .. इयं (पृथिवी) खलु वै प्रतिष्ठा । ऐ० ८ । १ ॥
- .. सेयं (पृथिवी) प्रतिष्ठा । श० २ । २ । १ । १६ ॥
- .. पृथिव्यामिमे लोकाः (प्रतिष्ठिताः) । जै० उ० १ । १० । २ ॥
- .. इयं (पृथिवी) वै स्वर्गस्य लोकस्य प्रतिष्ठा । गो० उ० ६ । २ ॥
- .. अन्तरिक्षं पृथिव्यां (प्रतिष्ठितम्) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥
- .. इयं (पृथिवी) अन्तरिक्षम् (पृथिवी=अन्तरिक्षम्-वैदिकनि-
 घण्टौ १ । ३) । ऐ० ३ । ३१ ॥
- .. त्रिवृद्धोयम् (पृथिवी) । श० ६ । ५ । ३ । २ ॥
- .. अग्निना पृथिव्यौषधिभिस्तेनायं (पृथिवी-) लोकल्लिवृत् ।
 तां० १० । १ । १ ॥
- .. प्रजातिर्वा अयं लोकः । कौ० १४ । ३ ॥
- .. योनिर्वाऽ इयम् (पृथिवी) । श० १२ । ४ । १ । ७ ॥
- .. इयं वै प्रतिष्ठा जनूरासां प्रजानाम् । श० ३ । ६ । ३ । २ ॥
- .. नाम मे शरीरम्मे प्रतिष्ठा मे । तन्मे त्वयि (पृथिव्याम्) । जै०
 उ० ३ । २० । ८ ॥
- .. पृथिवी मे शरीरे श्रिता । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥
- .. पृथिवी वा अन्नानां शमयित्रो । कौ० ६ । १४ ॥
- .. अयं (पृथिवी) वा (प्रजापतेः) अन्नादो (तनूः) । कौ०
 २७ । ५ ॥

- पृथिवी पृथिवी श्लेष निधिः । श० ६।५।२।३ ॥
- ” अयं वै लोको दक्षिणं हविर्धानम् । कौ० ६।४ ॥
- ” अयं वै (पृथिवी-) लोकः प्रातःसवनम् । श० १२।८।२।
८ ॥ गो० ३० ३।१६ ॥
- ” अयमेव (भू-) लोकः प्रथमा चितिः । श० ८।७।४।१२ ॥
- ” (असुराः) अयस्मयीं (पुरं) अस्मिन् (पृथिवीलोके ऽकुर्वत) ।
कौ० ८।८ ॥
- ” ते (असुराः) वा अयस्मयीमेवेमां (पृथिवीं) अकुर्वत । पे०
१।२३ ॥
- ” अयस्मयो पृथिवी । गो० ३० २।७ ॥
- ” अस्य वै (भू-) लोकस्य रूपमयस्मय्यः (सूच्यः) । तै० ३।
९।६।५ ॥
- ” रजतैव हीयं पृथिवी । श० १४।१।३।१४ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै रजता । तै० १।८।६।१ ॥
- ” पृथिवी होता चतुर्होतृणाम् । तै० ३।१२।५।१ ॥
- ” यानि कृष्णानि (लोमानि) तान्यस्यै (पृथिव्यै रूपम्) । श०
३।२।१।३ ॥
- ” (यदि धेतस्था) यानि शुक्लानि (लोमानि) तान्यस्यै (पृथिव्यै
रूपम्) । श० ३।२।१।३ ॥
- ” यानि बिसानि तान्यस्यै पृथिव्यै रूपम् । श० ५।४।५।१४ ॥
- ” दधि ह्रैवास्य (भू-) लोकस्य रूपम् । श० ७।५।१।३ ॥
- ” इयं (पृथिवी) उ वै यज्ञो ऽस्याऽऽ हि यज्ञस्तायते । श० ६।
४।१।६ ॥
- ” हविर्व्यज्ञैर्वै देवा इमं (पृथिवी-) लोकमभ्यजयन् । तां०
१७।१३।१८ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वाऽ उप । द्वयेनेयमुप यज्ञीदं किं च जायते
ऽस्यां तदुपजायते ऽथ यन्न्यृञ्जत्यस्यामेव तदुपोष्यते । श० २।
३।४।६ ॥
- ” परिमण्डलः (= गोलाकारः) उ वाऽ अयं (पृथिवी-) लोकः ।
श० ७।१।१।३७ ॥

- पृथिवी अथ यत्कपालमासीत्सा पृथिव्यभवत् । श० ६ । १ । १ । ११ ॥
- ” समुद्रो हीमां (पृथिवीं) अभितः पिन्वते । श० ७ । ४ । १ । ६ ॥
- ” पृथिव्यप्सु (प्रतिष्ठिता) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० ७० ३ । २ ॥
- ” पृथिव्यस्यप्सु श्रिता । अग्नेः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ६ ॥
- ” तस्य प्रथमयाऽऽकृतेममेव लोकं जयति यदु चास्मिँल्लोके ।
तदेतेन चैनम्प्राणेन समर्थयति यमभिसम्भवत्येतां चाऽऽत्मा
आशाऽप्रयच्छति यामभिजायते । जै० ७० ३ । ११ । ५ ॥
- ” असुराणां वा इयं (पृथिवी) अग्र आसीत् । तै० ३ । २ । ६ । ६ ॥
- ” तिस्रो वाऽऽत्माः पृथिव्य इयमहैका द्वेऽऽत्माः परे । श० ५ ।
१ । ५ । २१ ॥
- पृथी, पृथिः, पृथुः पृथिव्यैः । अभ्यविच्यत । तै० १ । ७ । ७ । ४ ॥
- ” पृथुर्ह वै वैन्यो मनुष्यणां प्रथमो ऽभिषिबिबे । श० ५ ।
३ । ५ । ४ ॥
- ” एतेन (पार्थेन सास्त्रा) वै पृथी वैन्य उभयेषां पशुनाः
माधिपत्यमाश्नुत । तां० १३ । ५ । २० ॥
- ” तद् पृथुर्वैन्यो दिव्यान् व्रात्यान् पमच्छ । जै० ७० १ ।
१० । ९ ॥ १ । ३४ । ६ ॥ १ । ४५ । १ ॥
- पृथु (ऋ० ६ । १६ । १२) अदो (द्युस्थानं=द्युलोकः) वै पृथु यस्मि-
न्देवाः । श० १ । ४ । १ । २७ ॥
- पृथुकाः रुद्राणां वा एतद्रूपम् । यत्पृथुकाः । तै० ३ । ८ । १४ । ३ ॥
- पृथु श्रवाण्यम् (ऋ० ६ । १६ । १२) भोजं वै पृथु भवाण्यम् । भोजेण
हीदमरु पृथु श्रुणोति । श० १ । ४ । ३ । ४ ॥
- पृश्नि अन्नं वै देवा पृश्नीति वदन्ति । तां० १२ । १० । २४ ॥
- ” अन्नं वै पृश्नि । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥ तै० २ । २ । ६ । १ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै पृश्निः । तै० १ । ४ । १ । ५ ॥
- पृषदाज्यम् अन्नं हि पृषदाज्यम् । श० ३ । ८ । ४ । ८ ॥
- ” प्राणो हि पृषदाज्यम् । श० ३ । ८ । ४ । ८ ॥
- ” प्राणः पृषदाज्यम् । श० ३ । ८ । ३ । ८ ॥
- ” पयः पृषदाज्यम् । श० ३ । ८ । ४ । ८ ॥
- ” पशवो वै पृषदाज्यम् । तै० १ । ६ । ३ । २ ॥

- पृथयः पृथयो वै रेतःसिचौ । श० ७ । ५ । १ । १३ ॥ ८ । ६ । २ । ७ ॥
- ” उरो वै प्रति पृथयः । श० ८ । ६ । २ । ७ ॥
- पृष्ठानि पृष्ठैर्वै देवाः स्वर्गं लोकमस्पृक्षन् । कौ० २४ । ८ ॥
- ” पृष्ठानि वा असृज्यन्त तैर्देवाः स्वर्गं लोकमायन् । तां० ७ । ७ । १७ ॥
- ” स्वर्गो लोकः पृष्ठानि । तां० १६ । १५ । ६ ॥
- ” तदाहुर्माना लोकाणि पृष्ठानि । तां० १६ । १५ । ६ ॥
- ” पतानि खलु वै सामानि यत्पृष्ठानि । तै० १ । ८ । ८ । ३ ॥
- ” स्वराणि पृष्ठानि भवन्ति । कौ० २४ । ८ ॥
- ” सर्वाणि हि पृष्ठानीन्द्रस्य निष्केवल्यानि । तां० ७ । ८ । ५ ॥
- ” पिता वै वामदेव्यं पुत्राः पृष्ठानि । तां० ७ । ६ । १ ॥
- ” आत्मा वै पृष्ठानि । कौ० २५ । १२ ॥ तां० २२ । ६ । ४ ॥
- ” ऋतवो वै पृष्ठानि । श० १३ । ३ । २ । १ ॥ तै० ३ । ६ । ६ । १ ॥
- ” सप्त पृष्ठानि । श० ६ । ५ । २ । ८ ॥
- ” अन्नं पशवः पृष्ठानि । तां० १६ । १५ । ८ ॥
- ” अन्नं पृष्ठानि । तां० १६ । ६ । ४ ॥
- ” वीर्यं वै पृष्ठानि । तां० ४ । ८ । ७ ॥ १८ । ८ । ८ ॥
- ” तेजो ब्रह्मवर्चसं पृष्ठानि । तां० १६ । १५ । ७ ॥
- ” श्रौर्वै पृष्ठानि । ऐ० ६ । ५ ॥ गो० ३० । ५ । ११ ॥
- पृष्ठयः अन्वञ्च इवाङ्गिरसः । सर्वे स्तोमैः सर्वैः पृष्ठैर्गुरुभिः सामभिः
स्वर्गं लोकमस्पृशन् यदस्पृशंस्तस्मात्पृष्ठयः । श० १२ । २ । २ । ११ ॥
- ” (आङ्गिरसाः) सर्वैः पृष्ठ्यैः स्वर्गं लोकमभ्यस्पृशन्त यदभ्यस्पृ-
शन्त तस्मात्स्पृश्यस्तं वा एतं स्पृश्यं सन्तं पृष्ठ्य इत्याचक्षते
परोक्षेण । गो० पू० ४ । २३ ॥
- ” पिता वा अभिसवः पुत्रः पृष्ठ्यः । गो० पू० ४ । १७ ॥
- पृष्ठ्यानि श्रीः पृष्ठ्यानि । कौ० २१ । ६ ॥
- ” पशवः पृष्ठ्यानि । कौ० २१ । ५ ॥
- पौरुमद्रम् (साम) देवाश्च वासुराश्चास्पृक्षन्त ते देवा असुराणां
पौरुमद्रेण पुरो ऽमज्जयन्त्यत् पुरो ऽमज्जयन्त्यस्त-
स्मात्पौरुमद्रम् । तां० १२ । ३ । १४ ॥

- पौरुमद्रम् (साम) अहर्वा एतद्वलीयमानं तद्रक्षाण्यस्यसचन्त तस्मा-
द्देवाः पौरुमद्रेण रक्षाण्यस्यपाद्मन्नप पाप्मानण्य हते
पौरुमद्रेण तुष्टुवानः । तां० १२ । ३ । १३ ॥
- पौरुहन्मनम् (साम) पुरुहन्मा वा एतेन वैखानसो ऽञ्जसा स्वर्गं लोक-
मपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न
व्यवते तुष्टुवानः । तां० १४ । ६ । २६ ॥
- पौर्णमासम् (हविः) सवृत (? समृत-) यज्ञो वा एष यदर्शपूर्णमासौ ।
गो० उ० २ । २४ ॥
- „ घात्रं वै पौर्णमासं (हविः) । इन्द्रो ह्येतेन
वृत्रमहन् । श० १ । ६ । ४ । १२ ॥
- „ तथैवैतद्यजमानः पौर्णमासेनैव वृत्रं पाप्मानं
हत्वापहतपाप्मैतत्कर्माभते । श० ६ । २ । २ । १६ ॥
- „ अग्नीषोमीयण्य हि पौर्णमासण्य हविर्भवति । श०
१ । ८ । ३ । २ ॥
- „ अथैष क्लृप्तः प्रतिष्ठितो यज्ञो यत्पौर्णमासम् । श०
२ । ५ । २ । ४८ ॥ २ । ६ । २ । १६ ॥
- „ प्रतिष्ठा वै पौर्णमासम् । कौ० ५ । ८ ॥ १८ । १४ ॥
गो० उ० १ । २६ ॥
- „ पौर्णमासः सरस्वान् । गो० उ० १ । १२ ॥
- पौर्णमासी (रात्रिः) असौ वै चन्द्रः पशुरतं देवाः पौर्णमास्यामालभन्ते ।
श० ६ । २ । २ । १७ ॥
- „ ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रमेमावास्या । कौ० ४ । ८ ॥
- „ कामो वै पौर्णमासी । तै० ३ । १ । ४ । १५ ॥
- „ पौर्णमास्यः प्रतिहारः । य० ३ । १ ॥
- पौष्कलम् (साम) अथैतत्पौष्कलमेतेन वै प्रजापतिः पुष्कलान्पशून्-
सृजत तेषु रूपमदधाद्यदेतत्साम भवति पशुष्वेव
रूपं दधाति । तां० ८ । ५ । ६ ॥
- प्र (=पराक्) प्रेति वै प्राण एति ('आ' इति) उदानः । श० १ । ४ ।
१ । ५ ॥
- „ प्राणो वै प्र प्राणं हीमानि सर्वाणि भूतान्यनुप्रयंति । ऐ०
२ । ४० ॥

[प्रचेताः

(३१०)

प्र (=पराक्) तद्यत्प्रेति तःप्राणस्तदयं (भू-) लोकः । जै० उ० २ । ६ । ४ ॥

” प्राणो वै प्रवान् । श० १ । ४ । ३ । ३ ॥

” प्रेति पशवो वितिष्ठन्तऽ एति समावर्तन्ते । श० १ । ४ । १ । ६ ॥

” प्रेति वै रेतः सच्यतऽ एति प्रजायते । श० १ । ४ । १ । ६ ॥

” अन्तरिक्षं वै प्रांतरिक्षं हीमानि सर्वाणि भूतान्यनुप्रयंति ।
पे० २ । ४७ ॥

” प्रवद्वै प्रथमस्याहो रूपम् । कौ० २० । २ ॥

प्रउगम् (उक्थम्) ता अमुतो ऽर्वाच्यो देवतास्तृतीयसवनात्प्रातः-
सवनमभिप्रायुञ्जत तद्यदभिप्रायुञ्जत तत्प्रउगस्य
प्रउगत्वम् । कौ० १४ । ५ ॥

” प्रहोक्थं वा एतद्यत्प्रउगम् । पे० ३ । १ ॥

” तदेतत्पवमानोक्थमेव यत्प्रउगम् । कौ० १४ । ४ ॥

” प्राणानां वा एतदुक्थं यत्प्रउगम् । पे० ३ । ३ ॥

” प्राणाः प्रउगम् । कौ० १४ । ४ ॥ २८ । ६ ॥

” तस्माद् बह्व्यो देवताः प्रउगे शस्यन्ते । कौ० १४ ।
५ ॥ २८ । ६ ॥

” आतिच्छन्दसः प्रउगः । कौ० २३ । ६ ॥

प्रगाः ये दश प्रगा इम एव ते दश प्राणाः । जै० उ० १ । २१ । ३ ॥

प्रगाथः प्राणापानौ वै बार्हतः प्रगाथः । कौ० १५ । ४ ॥ १८ । २ ॥

” पशवो वै प्रगाथः । कौ० १५ । ४ ॥ १८ । २ ॥

” पशवः प्रगाथः । पे० ३ । १६, २३, २४ ॥ ६ । २४ ॥ गो० उ०
३ । २१, २२ ॥ ४ । २ ॥

” अन्तरिक्षम्प्रगाथः । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

” म्नः प्रगाथः । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

प्र च एतद्वै सर्वं स्वस्त्ययनं यत्प्र च च । पे० ३ । २६ ॥

प्रचेताः प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु । श० ३ । ५ । २ । ५ ॥

” प्रच्छच्छन्दः (यजु० १५ । ५) अन्नं प्रच्छच्छन्दः । श० ८ ।
५ । २ । ४ ॥

प्रजननः प्राणः किं छन्दः । का देवता यस्मादिदं प्राणाद्रेतः सिच्यतऽ
इत्यतिच्छन्दाश्छन्दः प्रजापतिर्देवता । श० १० । ३ ।
२ । ७ ॥

प्रजननम् संवत्सरो वै प्रजननम् । गो० पू० २ । १५ ॥

„ अग्निः प्रजननम् । गो० पू० २ । १५ ॥

प्रजाः यज्ञाद्दे प्रजाः प्रजायन्ते । श० ४ । ४ । २ । ६ ॥

„ यज्ञं वाऽ अनु प्रजाः । श० १ । ८ । ३ । २७ ॥

„ प्रजा वै लोकम् (यजु० १३ । ५२ ॥) । श० ७ । ५ । २ । ३६ ॥

„ प्रजा वै स्रुतः (यजु० १२ । ५१) । श० ७ । १ । १ । २७ ॥

„ प्रजा वै तन्तुः । ऐ० ३ । ११, ३८ ॥

„ प्रजा वा अप्सुरित्याहुः । गो० उ० ५ । ६ ॥

„ प्रजा वै विश्वज्योतिः । श० ६ । ५ । ३ । ५ ॥ ७ । ४ । २ । २६ ॥
८ । ३ । २ । २ ॥

„ प्रजा वाऽ अरिः (यजु० ६ । ३६) । श० ३ । ६ । ४ । २१ ॥

„ प्रजा वाऽ इषः । श० १ । ७ । ३ । १४ ॥ ४ । १ । २ । १५ ॥

„ प्रजा वै भूतानि । श० २ । ४ । २ । १ ॥ ३ । ५ । २ । १३ ॥ ४ ।
५ । ३ । १ ॥

„ प्रजा वै बर्हिः । कौ० ५ । ७ ॥ १८ । १० ॥ तै० १ । ६ । ३ । १० ॥
श० १ । ५ । ३ । १६ ॥ २ । ६ । १ । २३, ४४ ॥ ४ । ४ । ५ ।
१४ ॥ गो० उ० १ । २४ ॥

„ प्रजानुरूपः । ऐ० ३ । २३ ॥ कौ० १५ । ४ ॥ २२ । ८ ॥ जै० उ०
३ । ४ । ३ ॥

„ प्रजा शस्त्रम् । श० ५ । २ । २ । २० ॥

„ प्रजा पशवः सूक्तम् । कौ० १४ । ४ ॥

„ प्रजा वा उक्थानि । तै० १ । ८ । ७ । २ ॥

„ प्रजाः सतो बृहती । गो० उ० ६ । ८ ॥

„ तस्मात्पश्चाद्द्वितीयसः प्रजननादिमाः प्रजाः प्रजायन्ते । श० ३ ।
५ । १ । ११ ॥

„ न्यूनाद्वाऽ इमाः प्रजाः प्रजायन्ते । श० ११ । १ । २ । ४ ॥

„ तस्मात्प्रजा दशमासो गर्भं भृत्वैकादशमनु प्रजायन्ते तस्माद्

द्वादशघ्नाभ्यतिहरन्ति द्वादशेन हि परिगृहीताः । तां० ६ ।
१ । ३ ॥

प्रजाः संवत्सरं हि प्रजाः पशवो ऽनु प्रजायन्ते । तां० १० । १ । ६ ॥

„ एष वै प्रजनयिता यन्मुष्करः । श० ३ । ७ । २ । ८ ॥

„ अर्द्धमासशो हि प्रजाः पशव ओजो बलं पुष्यन्ति । तां० १० ।
१ । ६ ॥

„ यस्य हि प्रजा भवत्येक आत्मना भवत्यथोत् दशधा प्रजया
हविष्क्रियते । श० १ । ८ । १ । ३४ ॥

„ यस्य हि प्रजा भवत्यमुं लोकमात्मनैत्यथास्मि लोके प्रजा यजते
तस्मात्प्रजोत्तरा देवयज्याः । श० १ । ८ । १ । ३१ ॥

„ आदित्या (= अदितेरुत्पन्नाः) वा इमाः प्रजाः । तां० १८ ।
८ । १२ ॥

„ द्वय्यो ह वाऽ इदमग्रे प्रजा आयुः । आदित्याश्चैवाङ्गिरसश्च ।
श० ३ । ५ । १ । १३ ॥

„ वैश्वदेव्यो वै प्रजाः । तै० १ । ६ । २ । ५ ॥ १ । ७ । १० । २ ॥

„ आयस्यो वै प्रजाः । श० १३ । ३ । ४ । ५ ॥

„ आयास्यो (? आयस्यः) वै प्रजाः । तै० ३ । ६ । ११ । ४ ॥

„ आद्या हीमाः प्रजा विशः । श० ४ । २ । १ । १७ ॥

प्रजातिः रेतो वै प्रजातिः । श० १४ । ६ । २ । ६ ॥

„ त्रिवृद्धि प्रजातिः पिता माता पुत्रो ऽथो गर्भं उल्बं जरायु ।
श० ६ । ५ । ३ । ५ ॥

प्रजापतिः तद्यद्ब्रवीत् (ब्रह्मा)—प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पालयस्वेति
तस्मात्प्रजापतिरभवत् तत्प्रजापतेः प्रजापतित्वम् । गो० प०
१ । ४ ॥

„ एष वै प्रजापतिः । यद्भिः । तै० १ । १ । ५ । ५ ॥

„ प्रजापतिरेषो ऽग्निः । श० ६ । ५ । ३ । ७ ॥ ६ । ८ । १ । ४ ॥

„ प्रजापतिर्वाऽ अग्निः । श० २ । ३ । ३ । १८ ॥

„ प्रजापतिरग्निः । श० ६ । २ । १ । २३, ३० ॥ ६ । ५ । ३ ।
६ ॥ ७ । २ । २ । १७ ॥

„ अग्निर्वै देवतानां मुखं प्रजनयिता स प्रजापतिः । श० २ ।
५ । १ । ८ ॥ ३ । ६ । १ । ६ ॥

- प्रजापतिः स यः स प्रजापतिर्व्यस्रत्सत । अयमेव स यो ऽयमग्निश्ची-
यते ऽथ या अस्मात्ताः प्रजा मध्यत उदक्रामन्नेतास्ता वैश्व-
देव्य इष्टकाः । श० ८ । २ । २ । ६ ॥
- ” यो ह खलु वाव प्रजापतिः स उ वेवेन्द्रः । तै० १ । २ । २ । ५ ॥
- ” एष प्रजापतिर्यद्दुदयम् । श० १४ । ८ । ४ । १ ॥
- ” यः प्रजापतिस्तन्मनः । जै० उ० १ । ३३ । २ ॥
- ” प्रजापतिर्वै मनः । कौ० १० । १ ॥ २६ । ३ ॥ सा० १ । १ । १ ॥
- ” तै० ३ । ७ । १ । २ ॥ श० ४ । १ । १ । २२ ॥
- ” प्रजापतिर्वै मनश्छन्दः (यजु० १५ । ४) । श० ८ । ५ । २ । २ ॥
- ” मन इव हि प्रजापतिः । तै० २ । २ । १ । २ ॥
- ” अपूर्वा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) तन्मनः । ऐ० ५ । २५ ॥
- ” कौ० २७ । ५ ॥
- ” वाग्वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । ६ ॥ १३ । ४ । १ । १५ ॥
- ” वाग्धि प्रजापतिः । श० १ । ६ । ३ । २७ ॥
- ” प्रजापतिर्हि वाक् । तै० १ । ३ । ४ । ५ ॥
- ” वाग्वाऽ अस्य (प्रजापतेः) स्वो महिमा । श० २ । २ । ४ ।
- ” ४ ॥ १ । ४ । २ । १७ (अग्नेः ?) ॥
- ” प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत्तस्य वागेव स्वमासीद्वाग् द्वितीया
स पेक्षतेमामेव वाचं विसृजा इयं वा इदं सर्वं विभवन्त्ये-
ष्यतीति स वाचं व्यसृजत (काठकसंहितायाम् १२ । ५ ॥
- ” २७ । १ :—प्रजापतिर्वा इदमासीत्तस्य वाग् द्वितीयासीत्ता-
म्मिथुनं समभवत्सा गर्भमधत्त सास्मादपाक्रामत्सेमाः प्रजा
असृजत सा प्रजापतिमेव पुनः प्राविशत्) । तां० २० ।
- ” १४ । २ ॥
- ” (प्रजापतिः) वाचमयच्छुःस संवत्सरस्य परस्ताद्व्याहरद्
द्वादशकृत्वः । ऐ० २ । ३३ ॥
- ” स (प्रजापतिः) संवत्सरे व्याजिहीर्षत् । श० ११ । १ । ६ । ३ ॥
- ” प्रजापतिर्वै वाक्पतिः (यजु० ४ । ४) । श० ३ । १ । ३ । २२ ॥
- ” प्रजापतिर्वै वाचस्पतिः । श० ५ । १ । १ । १६ ॥
- ” स (प्रजापतिः) हैवं षोडशधा ऽऽत्मानं विकृत्य सार्धं समैत् ।
- ” जै० उ० १ । ४८ । ७ ॥

- प्रजापतिः तद्वै लोमेति द्वेऽ अक्षरे । त्वगिति द्वे ऽसृगिति द्वे मेद इति
द्वे मा३समिति द्वे छावेति द्वेऽ अस्थीति द्वे मज्जेति द्वे ताः
षोडश कला अथ य एतदन्तरे प्राणः सञ्चरति स एव सप्त-
दशः प्रजापतिः । श० १० । ४ । १ । १७ ॥
- ” तस्माऽ एतस्मै सप्तदशाय प्रजापतये । एतत्सप्तदशमन्नं
समस्कुर्वन्व्य एष सौम्योध्वरो ऽथ या अस्य ताः षोडश कला
एते ते षोडशत्विजः । श० १० । ४ । १ । १६ ॥
- ” षोडशकलः प्रजापतिः । श० ७ । २ । २ । १७ ॥
- ” स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः । श० १४ । ४ ।
३ । २२ ॥
- ” प्रजापतिर्वै सप्तदशः । तां० २ । १० । ५ ॥ १७ । ६ । ४ ॥ गो०
उ० २ । १३ ॥ ५ । ८ ॥ तै० १ । ५ । १० । ६ ॥
- ” सप्तदशो वै प्रजापतिः । ऐ० १ । १६ ॥ ४ । २६ ॥ कौ० ८ ।
२ ॥ १० । ६ ॥ १६ । ४ ॥ श० १ । ५ । २ । १७ ॥ ५ । १
२ । ११ ॥ गो० उ० १ । १६ ॥
- ” सप्तदशः प्रजापतिः । तै० १ । ३ । ३ । २ ॥
- ” द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य पञ्चर्तव एष एव प्रजापतिः
सप्तदशः । श० १ । ३ । ५ । १० ॥
- ” सप्तदशै वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पञ्चर्तवो हेमन्तशिशिरयोः
समासेन तावान्तसंवत्सरः संवत्सरः प्रजापतिः । ऐ० १ । १॥
- ” संवत्सरो वै प्रजापतिरेकशतविधः । तस्याहोरात्राण्यर्धमासा
मासा ऋतव षष्टिर्मासस्याहोरात्राणि मासि वै संवत्सरस्या-
होरात्राण्यप्यन्ते चतुर्विंशतिरर्धमासस्त्रयोदश मासास्त्रय
ऋतवस्ताः शतविधाः संवत्सर एवैकशततमी विधा । श०
१० । २ । ६ । १ ॥
- ” प्रजापतेर्ह वै प्रजाः ससृजानस्य पर्वाणि विसृञ्चुः स वै
संवत्सर एष प्रजापतिस्तस्यैतानि पर्वाण्यहोरात्रयोः सन्धी
पौर्णमासी चामावास्या च ऽसुमुखानि । स विस्त्रस्तैः । न
शशाक स३हातुं तमेतैहविर्यं हर्द्धेवा अभिषज्यन्नग्निहोत्रेणै-
वाहोरात्रयोः सन्धी तत्पर्वाभिषज्यंस्तत्समद्भुः पौर्णमास्येन

चैवामावास्येन च पूर्णमासीं चामावास्यां च तत्पर्वाभिष-
ज्यंस्तत्समदधुश्चतुर्मास्यैरेवऽर्त्तुमुखानि तत्पर्वाभिषज्यंस्तस-
त्समदधुः । श० १ । ६ । ३ । ३५, ३६ ॥

- प्रजापतिः (प्रजापतिः) प्रजाः सृष्ट्वा सर्वमाजिमित्वा व्यस्रंसत ।
श० ६ । १ । २ । १२ ॥
- ” प्रजापतिं विस्त्रस्तं देवता आदाय व्युदक्रामंस्तस्य (प्रजापतेः)
परमेष्ठी शिर आदायोत्क्रम्यातिष्ठत् । श० ८ । ७ । ३ । १५ ॥
- ” तत एतं परमेष्ठी प्राजापत्यो (=आपः) यज्ञमपश्यद्यदर्शपू-
र्णमासौ । श० ११ । १ । ६ । १६ ॥
- ” संवत्सरो वै पिता वैश्वानरः प्रजापतिः । श० १ । ५ । १ । १६ ॥
- ” स (संवत्सरः) एव प्रजापतिस्तस्य मासा एव सहदीक्षिणः ।
तां० १० । ३ । ६ ॥
- ” संवत्सरो वै प्रजापतिः । श० २ । ३ । ३ । १८ ॥ ३ । २ । २ ।
४ ॥ ५ । १ । २ । ९ ॥
- ” संवत्सरः प्रजापतिः । ऐ० २ । १७ ॥ तां० १६ । ४ । १२ ॥
गो० उ० ३ । ८ ॥
- ” प्रजापतिः संवत्सरः । ऐ० ४ । २५ ॥
- ” स एष प्रजापतिरेव संवत्सरः । कौ० ६ । १५ ॥
- ” संवत्सरो यज्ञः प्रजापतिः । श० २ । २ । २ । ४ ॥
- ” एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः । श० ४ । ३ । ४ । ३ ॥
- ” स वै यज्ञ एव प्रजापतिः । श० १ । ७ । ४ । ४ ॥
- ” यज्ञ उ द्वै प्रजापतिः । कौ० १० । १ ॥ १३ । १ ॥ २५ । ११ ॥
२६ । ३ ॥ तै० ३ । ३ । ७ । ३ ॥
- ” यज्ञः प्रजापतिः । श० ११ । ६ । ३ । ६ ॥
- ” प्रजापतिर्यज्ञः । ऐ० २ । १७ ॥ ४ । २६ ॥ श० १ । १ । १ ।
१३ ॥ १ । ५ । २ । १७ ॥ ३ । २ । २ । ४ ॥ तै० ३ । २ । ३ ।
१ ॥ गो० उ० ३ । ८ ॥ ४ । १२ ॥ ६ । १ ॥
- ” प्रजापतिर्वै यज्ञः । गो० उ० २ । १८ ॥ तै० १ । ३ । १० । १० ॥
- ” प्राजापत्यो यज्ञः । तै० ३ । ७ । १ । २ ॥
- ” प्रजापतिरश्वमेधः । श० १३ । २ । २ । १३ ॥ १३ । ४ ।
१ । १५ ॥

- प्रजापतिः एष ह प्रजानां प्रजापतिर्यद्विश्वजित् । गो० पू० ५ । १० ॥
- „ प्रजापतिर्विश्वजित् । कौ० २५ । १४, १२, १५ ॥
- „ यो ह्येव सविता स प्रजापतिः । श० १२ । ३ । ५ । १ ॥ गो०
पू० ५ । २२ ॥
- „ प्रजापतिर्वै सविता । तां० १६ । ५ । १७ ॥
- „ प्रजापतिः सविता भूत्वा प्रजा असृजत । तै० १ । ६ । ४ । १ ॥
- „ प्राणो हि प्रजापतिः प्रजापतिश्च ह्येवेदश्च सर्वमनु (प्रजायते) ।
श० ४ । ५ । ५ । १३ ॥
- „ अथ यस्स प्राण आसीत्स प्रजापतिरभवत् । जै० उ० २ ।
२ । ६ ॥
- „ प्राणा उ वै प्रजापतिः । श० ८ । ४ । १ । ४ ॥
- „ प्राणः प्रजापतिः । श० ६ । ३ । १ । ९ ॥
- „ अथ य एतदन्तरेण प्राणः संचरति स एव सप्तदशः प्रजा-
पतिः । श० १० । ४ । १ । १७ ॥
- „ तस्माद्बु प्रजापतिः प्राणः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥
- „ प्राजापत्यः प्राणः । तै० ३ । ३ । ७ । २ ॥
- „ अन्न वाऽअयं प्रजापतिः । श० ७ । १ । २ । ४ ॥
- „ अन्नं वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥
- „ वायुर्ह्येव प्रजापतिस्तदुक्तमृषिणा पवमानः प्रजापतिरिति ।
ऐ० ४ । २६ ॥
- „ स यो ज्यं (वायुः) पवते स एष एव प्रजापतिः । जै० उ०
१ । ३४ । ३ ॥
- „ अर्धश्च ह प्रजापतेर्वायुरर्धं प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । ११ ॥
- „ एतद्वै प्रजापतेः प्रत्यक्षं रूपं यद्वायुः । कौ० १६ । २ ॥
- „ स एष वायुः प्रजापतिरस्मिन्स्यैष्टुभे ऽन्तरिक्षे समन्तं पर्यङ्कः ।
श० ८ । ३ । ४ । १५ ॥
- „ प्रजापतिः प्रणेता । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥
- „ प्रजापतिर्धै भूतः । तै० २ । १ । ६ । ३ ॥
- „ प्रजापतिर्बन्धुः । तै० ३ । ७ । ५ । ५ ॥
- „ प्रजापतिरूनातिरिक्तयोः प्रतिष्ठा । ऐ० ५ । ३४ ॥

- प्रजापतिः एकविंशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पंचतैवस्त्रय इम लोका
असावादित्य एकविंशः । ऐ० १ । ३० ॥
- ” रूपमेव तत्प्रजापतिर्हिरण्यमन्तत आत्मनो ऽकुरुत...तस्मादा-
हुर्हिरण्यमयः प्रजापतिरिति । श० १० । १ । ४ । ६ ॥
- ” प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः । श० ६ । २ । २ । ५ ॥
- ” प्रजापतिर्वै ब्रह्मा । गो० उ० ५ । ८ ॥
- ” प्राजापत्यो वै ब्रह्मा । गो० उ० ३ । १८ ॥
- ” प्राजापत्यां ब्रह्मा । तै० ३ । ३ । ८ । ६ ॥
- ” ब्रह्म वै प्रजापतिर्ब्राह्मो हि प्रजापतिः । श० १३ । ६ । २ । ८ ॥
- ” प्रजापतिर्वै चन्द्रमाः । श० ६ । १ । ३ । १६ ॥
- ” असो वै चन्द्रः प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । १६ ॥
- ” सोमो हि प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । २६ ॥
- ” सोमो वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥
- ” स (प्रजापतिः) वै दक्षो नाम । श० २ । ४ । ४ । २ ॥
- ” प्रजापतिर्वाव महान् । तां० ४ । १० । २ ॥
- ” प्रजापतिर्वै महान्देवः । श० ६ । १ । ३ । १६ ॥
- ” अश्वा ह वाऽइयं (पृथिवी) भूत्वा मनुमुवाह सो ऽस्याः
पतिः प्रजापतिः । श० १४ । १ । ३ । २५ ॥
- ” प्रजापतिर्वै मनुः स हीदृश्च सर्वममनुत । श० ६ । ६ । १ । १६ ॥
- ” एष (प्रजापतिः) वै वसिष्ठः (ऋसर्वश्रेष्ठ इति सायणः) ।
श० २ । ४ । ४ । २ ॥
- ” प्रजापतिर्वै वसिष्ठः । कौ० २५ । २ ॥ २६ । १५ ॥
- ” तां (प्रादेशमार्त्रीं पृथिवीं) एमूष इति वराह उज्ज्वान सो
ऽस्याः (पृथिव्याः) पतिः प्रजापतिः । श० १४ । १ । २ । ११ ॥
- ” स (प्रजापतिः) वै वराही रूपं कृत्वा उपन्यमजत् । स
पृथिवीमघ आच्छत् । तस्या उपहत्योदमजत् । तै० १ । १ ।
३ । ६ ॥
- ” प्रजापतिर्वै विश्वकर्मा (यजु० १३ । १६ ॥ १४ । ५, ६) ।
श० ७ । ४ । २ । ५ ॥ ८ । २ । १ । १० ॥ ८ । २ । ३ । १३ ॥
- ” प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा विश्वकर्मा ऽभवत् । ऐ० ४ । २२ ॥

[प्रजापतिः (३१८)

- प्रजापतिः प्रजापतिर्वै व्योमा (यजु० १४ । २३) । श० ८ । ४ । १ । ११ ॥
- ” प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मान् (ऋ० १० । १४९ । ३) । श० १० । २ । २ । ४ ॥
- ” प्रजापतिर्वै मूर्धा (यजु० १४ । ६) । श० ८ । २ । ३ । १० ॥
- ” वयुनाविदित्येष (प्रजापतिः) हीदं वयुनमविन्दत् । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥
- ” प्रजापतिव युञ्जानः (यजु० ११ । १) स मन एतस्म किमेण्य ऽयुङ्क्त । श० ६ । ३ । १ । १२ ॥
- ” प्रजापतिर्वै विष्टम्भः (यजु० १४ । ६) । श० ८ । २ । ३ । १२ ॥
- ” प्रजापतिर्वा ओदनः । श० १३ । ३ । ६ । ७ ॥ तै० ३ । ८ । २ । ३ ॥ ३ । ६ । १८ । २ ॥
- ” प्रजापतेर्वा एतद्रूपम् । यत्सक्तवः । तै० ३ । ८ । १४ । ६ ॥
- ” प्रजापतिः स्वरः । ष० ३ । ७ ॥
- ” प्रजापतिः स्वरसामानः । कौ० २४ । ४, ५, ६ ॥
- ” प्रजापत्यं वै वामदेव्यम् । तां० ४ । ८ । १५ ॥ ११ । ४ । ८ ॥
- ” प्रजननं वै वामदेव्यम् (साम) । श० ५ । १ । ३ । १२ ॥
- ” प्रजापतिर्वै वामदेव्यम् (साम) । श० १३ । ३ । ३ । ४ ॥
- ” यच्छ्रुतेन (साम्ना) हिङ्करोति प्रजापतिरेव भूत्वा प्रजा अभिजिघ्रति । तां० ७ । १० । १६ ॥
- ” प्रजापतिर्वै हिङ्कारः । तां० ६ । ८ । ५ ॥
- ” सर्वाणि छन्दांसि प्रजापतिः । श० ६ । २ । १ । ३० ॥
- ” प्रजापतेर्वा एतान्यङ्गानि यच्छन्दांसि । ऐ० २ । १८ ॥
- ” पाङ्कः प्रजापतिः । श० १० । ४ । २ । २३ ॥
- ” आनुष्टुभः प्रजापतिः । तै० ३ । ३ । २ । १ ॥
- ” अतिच्छन्दा वै प्रजापतिः । कौ० २३ । ४, ८ ॥
- ” प्रजापतेर्वा एतदुक्तं यत्प्रातरनुवाकः । ऐ० २ । १७ ॥
- ” प्रजापतिर्वै प्रातरनुवाकः । कौ० ११ । ७ ॥ २५ । १० ॥
- ” प्रजापत्यं वै षष्ठमहः । कौ० २३ । ८ ॥ २५ । ११, १५ ॥
- ” प्रजापतियज्ञो वा एष यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २५ ॥
- ” अथास्य (प्रजापतेः) इन्द्र ओज आदायोदङ्कुदकामस्त उदुम्बरो ऽभवत् । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥

- प्रजापतिः प्राजापत्यो वा उदुम्बरः । तां० ६ । ४ । १ ॥
- „ प्राजापत्य उदुम्बरः । श० ४ । ६ । १ । ३ ॥
- „ प्राजापत्यो ऽश्वः । श० १३ । १ । १ । १ ॥ तै० १ । १ । ५ ।
५ ॥ ३ । २ । २ । १ ॥
- „ प्राजापत्यो वाऽऽश्वः । श० ६ । ५ । ३ । ९ ॥ तै० ३ । ८ ।
२२ । ३ ॥ ३ । ६ । १६ । १ ॥
- „ प्रजापतिरालब्धो ऽश्वो ऽभवत् । तै० ३ । ९ । २१ । १ ॥ ३ ।
६ । २२ । १, २ ॥
- „ प्रजापतेरुत्तरा (आहुतिः) । तै० २ । १ । ७ । १ ॥
- „ प्राजापत्यमेतत्कर्म यदुखा । श० ६ । २ । २ । २३ ॥
- „ निष्ट्या (नक्षत्रं) हृदयम् (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) । तै०
१ । ५ । २ । २ ॥
- „ स यदुपाशु तत्प्राजापत्यं रूपम् । श० १ । ६ । ३ । २७ ॥
- „ तस्मात् षट्क्रियं प्राजापत्यं यज्ञे क्रियतऽ उपाशुष्वेव तत्क्रियत
ऽहव्यवाङ्मि धाक् प्रजापतयऽ आसीत् । श० १ । ४ ।
५ । १२ ॥
- „ स (प्रजापतिः) तूर्णान् मनसा ध्यायत्तस्य यन्मनस्यासीत्तद्
बृहत्समभवत् । तां० ७ । ६ । १ ॥
- „ (प्रजापतिः) श्रोत्रादविम् (निरमिमीत) । श० ७ । ५ ।
२ । ६ ॥
- „ (यो ऽयं चक्षुषि पुरुषः) एष प्रजापतिः । जै० ७० । १ । ४३ ।
१० ॥ ४ । २४ । १३ ॥
- „ प्रजापतिः सदस्यः । गो० ७० । ५ । ४ ॥
- „ प्रजापतिर्वाऽऽ उद्गाता । श० ४ । ३ । २ । ३ ॥
- „ एष वै यजमानस्य प्रजापतिर्यदुद्गाता । तां० ७ । १० । १६ ॥
- „ प्राजापत्य उद्गाता । तां० ६ । ४ । १ ॥ ६ । ५ । १८ ॥
- „ प्रजापतिरुद्गीथः । तै० ३ । ८ । २२ । ३ ॥
- „ अथर्वा वै प्रजापतिः । गो० पू० १ । ४ ॥
- „ एष वै प्रजापतेः प्रत्यक्षतमां यद्राजन्यस्तस्मादेकः सन्बृहन्नामीष्टे
यज्ञेव चतुरक्षरः प्रजापतिश्चतुरक्षरो राजन्यः । श० ५ । १ ।
५ । १४ ॥

प्रजापतिः सत्यं हि प्रजापतिः । श० ४ । २ । १ । २६ ॥

” प्रजापतिर्वै गार्हपत्यः । कौ० २७ । ४ ॥

” प्रजापतेर्वा एतौ स्तनौ यद् घृतश्च्युन्निधनञ्च (साम) मधु-
श्च्युन्निधनञ्च (साम), यज्ञो वै प्रजापतिस्तमेताभ्यां दुग्धे
यङ्गामङ्गमयेते तन्दुग्धे । तां० १३ । ११ । १८ ॥

” घृतञ्च वै मधु च प्रजापतिरासीत् । तै० ३ । ३ । ४ । १ ॥

” प्रजापतिर्ह्यात्मा । श० ६ । २ । २ । १२ ॥

” आत्मा ह्ययं प्रजापतिः । श० ४ । ६ । १ । १ ॥ ११ । ५ ।
९ । १ ॥

” आत्मा वै प्रजापतिः । श० ४ । ५ । ९ । २ ॥

” पुरुषः प्रजापतिः । श० ६ । २ । १ । २३ ॥ ७ । १ । १ । ३७ ॥

” पुरुषो हि प्रजापतिः । श० ७ । ४ । १ । १५ ॥

” प्राजापत्यो वै पुरुषः । तै० २ । २ । ५ । ३ ॥

” पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम् । श० ४ । ३ । ४ । ३ ॥ ५ । १ ।
३ । ८ ॥

” एष उ एव प्रजापतिर्यो यजते । ऐ० २ । १८ ॥

” यजमानो ह्येव स्वे यज्ञे प्रजापतिः । श० १ । ६ । १ । २० ॥

” पितरः प्रजापतिः । गो० उ० ६ । १५ ॥

” अंशुर्वै नाम ग्रहः स प्रजापतिः । श० ४ । १ । १ । २ ॥

” प्रजापतिर्वाऽ एष यदंशुः (ग्रहः) । श० ४ । ६ । १ । १ ॥

” प्रजापतिर्ह वाऽ एष यदंशुः (ग्रहः) । श० ११ । ५ ।
६ । १ ॥

” ऋषभो वै पशूनां प्रजापतिः । श० ५ । २ । ५ । १७ ॥

” प्रजननं प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । १० ॥

” स प्रजापतिरब्रवीद्रथ कोहमिति यदेवैतद्वोच इत्यब्रवीत्ततो
वै को नाम प्रजापतिरभवत्को वै नाम प्रजापतिः । ऐ०
३ । २१ ॥

” को हि प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । ५ ॥

” को वै प्रजापतिः । गो० उ० ६ । ३ ॥

” प्रजापतिर्वै कः । ऐ० २ । ३८ ॥ ६ । २१ ॥ कौ० ५ । ४ ॥

२४।४, ५, ९ ॥ तां० ७।८।३ ॥ श० ६।४।३।४ ॥
 ७।३।१।२० ॥ तै० २।२।५।५ ॥ जै० ७।३।२।
 १० ॥ गो० ७।१।२२ ॥

- प्रजापतिः कं वै प्रजापतिः । श० २।५।२।१३ ॥
- „ प्रजापतिर्वै भरतः (यजु० १२ । ३४) स हीद॑ सर्वं
 विभर्ति । श० ५।८।१।१४ ॥
- „ स (प्रजापतिः) उ वाव भुवनस्य गोपाः । जै० ७।३।
 २।११ ॥
- „ प्रजापतिर्वै बृहदुक्षः । श० ४।४।१।१४ ॥
- „ प्रजापतिर्वै बृहन्विश्वित् (यजु० ११।४) । श० ६।३।
 १।१६ ॥
- „ विप्रा विप्रस्य (यजु० ११।४) इति प्रजापतिर्वै विप्रो देवा
 विप्राः । श० ६।३।१।१६ ॥
- „ प्रजापतिर्वै नृमणा (यजु० १२।१८ ॥) । श० ६।७।
 ४।३, ५ ॥
- „ प्रजापतिर्वै नृचक्षाः (यजु० १२।२० ॥) । श० ६।७।
 ४।५ ॥
- „ प्रजापतिर्धाता । श० ६।५।१।३८ ॥
- „ प्रजापतिर्वै जमदग्निः । श० १३।२।२।१४ ॥
- „ भूतो वै प्रजापतिः । तै० ३।७।१।३ ॥ ३।७।२।१ ॥
- „ प्रजापतिर्वै चतुर्होता । तै० २।२।३।५ ॥
- „ प्रजापतिर्वै दशहोता । तै० २।२।१।१ ॥ २।२।३।२ ॥
 २।२।८।५ ॥ २।२।६।३ ॥
- „ प्रजापतिर्वै दशहोतृणां होता । तै० २।३।५।६ ॥
- „ प्रजापतिर्वै द्रोणकलशः । श० ४।३।१।६ ॥ ४।५।
 ५।११ ॥
- „ प्राजापत्यो ह्येष देवतया यद् द्रोणकलशः । तां० ६।५।६ ॥
- „ प्रजापतिरेव निधनम् । जै० ७।३।५।६ ॥
- „ प्रजापतिर्वै क्षत्रम् । श० ८।२।३।११ ॥
- „ प्रजापतिर्वै चित्पतिः । श० ३।१।३।२२ ॥

- प्रजापतिः इमे लोकाः प्रजापतिः । श० ७ । ५ । १ । २७ ॥
- ” प्रजापतिर्वाऽ भ्रतीमान् (त्रीन्) लोकांश्चतुर्थः । श० ४ । ६ । १ । ४ ॥
- ” द्यावापृथिवी हि प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । २६ ॥
- ” प्राजापत्यो वाऽ अयं (भू-) लोकः । तै० १ । ३ । ७ । ५ ॥
- ” प्रजापतिर्वै पृथिव्यै जनिता । श० ७ । ३ । १ । २० ॥
- ” सप्तविधो वाऽ अत्रे प्रजापतिरसृज्यत । श० १० । २ । ३ । १८ ॥
- ” स एव पुरुषो प्रजापतिरभवत् । सप्तपुरुषो ह्ययं पुरुषः (प्रजापतिः) यच्चत्वार आत्मा त्रयः पक्षपुच्छानि । श० ६ । १ । १ । ५—६ ॥
- ” यान्त्रै तान्सप्त पुरुषान् । एकं पुरुषमकुर्वन्त्स प्रजापतिरभवत् । श० १० । २ । २ । १ ॥
- ” एक उ वै प्रजापतिः । कौ० २९ । ७ ॥
- ” प्रजापतिर्वा एकः । तै० ३ । ८ । १६ । १ ॥
- ” एको वै प्रजापतिः । तां० १६ । १६ । ४ ॥
- ” प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत् । तां० १६ । १ । १ ॥
- ” प्रजापतिर्ह वा इदमग्र एक एवास । श० २ । २ । ४ । १ ॥
- ” प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीदेक एव । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥
- ” प्रजापतिर्वा इदमेक एवाग्र आस । सो ऽकामयत प्रजायेय भूयान्त्स्यामिति । ऐ० २ । ३३ ॥
- ” प्रजापतिर्वा इदमेक असीत् सोकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति । तां० ४ । १ । ४ ॥
- ” प्रजापतिर्वावेदमग्र आसीत् । सो ऽकामयत बहुस्यामप्रजायेय भूमानं गच्छेयमिति । जै० ३० । १ । ४६ । १ ॥
- ” प्रजापतिरकामयत बहु स्याम प्रजायेयेति । तां० ६ । १ । १ ॥ ६ । ५ । १ ॥ ७ । ५ । १ ॥ ७ । ६ । १ ॥ १० । ३ । १ ॥
- ” स (प्रजापतिः) तूर्णान् मनसाध्यायत्तस्य यन्मनस्यासीत्तद् बृहत्समभवत् । स आदीधीत गर्भो वै मे ऽग्रमन्तर्हितस्तं वाचा प्रजनया इति । स वाचं व्यसृजत (मैत्रायणीसंहितायाम् ४ । २ । १ः—स मनसात्मानमध्यायत् सो ऽन्तर्वाणभवत्) । तां० ७ । ६ । १—३ ॥

- प्रजापतिः सः (प्रजापतिः) अकामयत प्रजायेयेति । स तपो
 ऽतप्यत । सो ऽन्तर्वानभधत् । स जघनादसुरानसृजत.....
 स मुखाद्देवानसृजत । तै० २ । २ । ९ । ५—८ ॥
- ” स (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत..... तस्मै ससृ-
 जानाय दिवेवास । अथ यो ऽयमवाङ् प्राणः, तेना-
 सुरानसृजत । तस्मै ससृजानाय तम इवास । श०
 ११ । १ । ६ । ७—८ ॥
- ” उभये वा एते प्रजापतेरध्वसृजन्त । देवाश्चासुराश्च । तै०
 १ । ४ । १ । १ ॥
- ” देवाश्च वाऽ असुराश्च । उभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितु-
 र्दायमुपेयुरेताधेवाधमासौ (=शुक्लकृष्णपक्षौ) । श० १ ।
 ७ । २ । २२ ॥
- ” देवाश्च वाऽ असुराश्च । उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे । श०
 १ । ५ । ४ । ६ ॥
- ” तस्य (प्रजापतेः) विश्वे देवाः पुत्राः । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥
- ” प्रजापतिः सर्वा देवताः । तै० ३ । ३ । ७ । ३ ॥
- ” प्रजापतिमु वाऽ अनु सर्वे देवाः । श० १३ । ५ । ३ । ३ ॥
- ” उभयभ्वेतत्प्रजापतिर्यश्च देवा यश्च मनुष्याः । श० ६ । ८ ।
 १ । ४ ॥
- ” प्रजापते त्वं निधिपाः पुराणः । देवानां पिता जनिता प्रजा-
 नाम् । पतिर्विश्वस्य जगतः परस्पाः । तै० २ । ८ । १ । ३ ॥
- ” स एष (प्रजापतिः) पिता पुत्रः । यदधो (प्रजापतिः)
 ऽग्निमसृजत तेनेषो ऽग्नेः पिता यदेतमग्निः समदधात्तेनैत-
 स्याग्निः पिता यदेष देवानसृजत तेनेष देवानां पिता यदेतं
 देवाः समदधुस्तेनैतस्य देवाः पितरः । श० ६ । १ । २ । २६ ॥
- ” सः (प्रजापतिः) अग्निमब्रवीत्त्वं वै मे ज्येष्ठः पुत्रायामसि ।
 जै० उ० १ । ५१ । ५ ॥
- ” मातेव च पितेव च प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । २६ ॥
- ” रूपं वै प्रजापतिः... नाम वै प्रजापतिः । तै० २ । २ । ७ । १ ॥
- ” सर्वमु ह्येवं प्रजापतिः । श० ५ । १ । १ । ४ ॥

- प्रजापतिः सर्वमु हीदं प्रजापतिः । श० १० । २ । ३ । १८ ॥
- „ सर्वं हि प्रजापतिः । श० १३ । ६ । १ । ६ ॥
- „ सर्वं वै प्रजापतिः । श० १ । ३ । ५ । १० ॥ ४ । ५ । ७ ।
२ ॥ गो० उ० १ । २६ ॥ कौ० ६ । १५ ॥ २५ । १२ ॥
- „ प्रजापतिरेव सर्वम् । कौ० ६ । १५ ॥ २५ । १२ ॥
- „ अपरिमितो वै प्रजापतिः । ऐ० २ । १७ ॥ ६ । २ ॥
- „ अपरिमित उ वै प्रजापतिः । कौ० ११ । ७ ॥
- „ अपरिमितो हि प्रजापतिः । गो० उ० १ । ७ ॥
- „ उभयम्बेतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमि-
तश्च तथा यजुष्कृतायै करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमित-
७७ रूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ या अयजुष्कृतायै यदेवास्या-
निरुक्तमपरिमितं रूपं तदस्य तेन संस्करोति । श० ६ ।
५ । ३ । ७ ॥
- „ सः (प्रजापतिः) अब्रवीदनिरुक्तं सान्नो वृणे स्वर्ग्यमिति ।
जै० उ० १ । ५२ । ६ ॥
- „ सः (प्रजापतिः) ऐक्षत यन्निरुक्तमाहरिष्याम्यसुरा मे यन्न
हनिष्यन्तीति सोऽनिरुक्तम् (=परोक्षम्) आहरत् । तां०
१८ । १ । ३ ॥
- „ अनिरुक्तो वै प्रजापतिः । ऐ० ६ । २० ॥ तै० १ । ३ । ८ । ५ ॥
श० १ । १ । १ । १३ ॥ ६ । २ । २ । २१ ॥ तां० १८ । ६ । ८ ॥
- „ अनिरुक्त उ वै प्रजापतिः । कौ० २३ । २, ६ ॥ २६ । ७ ॥ तां०
७ । ८ । ३ ॥
- „ तदाहुः । किन्देवत्यान्याज्यानीति प्राजापत्यानीति ह ब्रूयाद-
निरुक्तो वै प्रजापतिरनिरुक्तान्याज्यानि । श० १ । ६ । १ । २० ॥
- „ प्रजापतिर्वै देवानामन्नाद्दो वीर्यवान् । तै० ३ । ८ । ७ । १ ॥
- „ प्रजापतिर्वै देवानां वीर्यवत्तमः । श० १३ । १ । २ । ५ ॥
- „ अथ यत्परं भाः (सूर्यस्य) प्रजापतिर्वा सः । श० १ । ६ ।
३ । १० ॥
- „ यत्परं भाः प्रजापतिर्वा स इन्द्रो वा । श० २ । ३ । १ । ७ ॥
- „ प्रजापतिर्वा अमृतः । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

- प्रजापतिः यावान्धै प्रजापतिरुर्ध्वरतावाऽस्तिर्यङ् । तां १८ ।
६ । २ ॥
- ” प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशो देवतानाम् । तां १७ । ११ । ३ ॥
२२ । ७ । ६ ॥
- ” त्रयस्त्रिंशद्वै देवताः । प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशः । तै १ ।
” ८ । ७ । १ ॥ २ । ७ । १ । ३—४ ॥
- ” पूर्ण इव द्वि प्रजापतिः । तै ० २ । २ । १ । २ ॥
- ” प्रजापतिर्हि स्वाराज्यम् । तां १९ । १३ । ३ ॥ २२ । १८ । ४ ॥
- ” अन्तो वै प्रजापतिः । श ० ५ । १ । ३ । १३ ॥
- ” प्राजापत्यो वै बल्मीकः । तै ० ३ । ७ । २ । १ ॥
- ” तदेता वाऽ अस्य (प्रजापतेः) ताः पञ्च मर्त्यास्तन्व आसं-
ल्लोम त्वङ् मांसमस्थि मज्जाथैता अमृता मनो वाक् प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रम् । श ० १० । १ । ३ । ४ ॥
- ” (प्रजापतेर्नक्षत्रियस्य) ऊरू विशाखे (= नक्षत्रविशेषः) ।
तै ० १ । ५ । २ । २ ॥
- ” हस्तः (नक्षत्रम्) एवास्य (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) हस्तः ।
तै ० १ । ६ । २ । २ ॥
- ” प्रजापतेर्वा एतदुदरं यत्सदः । तां ० ६ । ४ । ११ ॥
- ” प्रजापतेर्वा एतानि श्मश्रूणि यद्वेदः । तै ० ३ । ३ । ६ । ११ ॥
- ” प्राजापत्यो वेदः (= दर्भमुष्टिः) । तै ० ३ । ३ । २ । १ ॥
- ” प्राजापत्यो वै वेदः । तै ० ३ । ३ । ७ । १ ॥ ३ । ३ । ८ । ६ ॥
- ” तस्य (प्रजापतेः) यः श्लेष्मासीत्स सार्धं समबहुत्य
मध्यतो नस्त उदभिनत्स एष वनस्पतिरभवद्रज्जुदाहस्तस्मा-
त्स श्लेष्मणः श्लेष्मणो द्वि समभवत् । श ० १३ । ४ । ४ । ६ ॥
- ” प्रजापतेर्वाऽ पतेऽ अन्धसी यत्सोमश्च सुरा च । श ० ५ । १ ।
२ । १० ॥
- ” स (प्रजापतिः) सर्वाणि भूतानि सृष्ट्वा रिरिचान इव मेने
स मृत्योर्बिभयांचकार । श ० १० । ४ । २ । २ ॥
- ” तदभ्यमृशदस्त्वित्यस्तु भूयो ऽस्तु इत्येव तदब्रवीत् (प्रजापतिः)
ततो ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रय्येव विद्या । श ० ६ । १ ।
१ । १० ॥

- प्रजापतिः प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मै श्रेष्ठ्याय नातिष्ठन्त स
 आसान्दिशां प्रजानाञ्च रसं प्रबृह्य क्त्वा प्रत्यमुञ्चत
 ततो ऽस्मै प्रजाः श्रेष्ठ्यायातिष्ठन्त । तां० १६ । ४ । १ ॥
- ” ताः (प्रजाः) अस्मात् (प्रजापतेः) सृष्टा अपाक्राम^{२३}-
 स्तासान्दिविसद्भूम्यादद् इति प्राणानादत्त ता एनं प्राणेष्ववा-
 च्छेषु पुनरुपावर्त्तन्त । तां० ७ । ५ । २ ॥
- ” प्रजापतिः पशूनसृजत ते ऽस्मात्सृष्टा अपाक्राम^{२३}स्तानेतेन
 (श्यैतेन) साम्नाभिव्याहरत्ते ऽस्मा अतिष्ठन्त । तां० ७ ।
 १० । १३ ॥
- ” (रुद्रः) तं (प्रजापतिम्) अभ्यायत्याविध्यत् । ऐ० ३ । ३३ ॥
- ” त^{२३} (प्रजापतिं) रुद्रो ऽभ्यायत्य विव्याध । श० १ । ७ ।
 ४ । ३ ॥
- ” प्रजापते रोहिणी (नक्षत्रम्) । तै० १ । ५ । १ । १ ॥
- ” या (प्रजापतेर्दुहिता) रोहित्वा (=रक्तवर्णा मृगी) सा
 रोहिणी (अभूत्) । ऐ० ३ । ३३ ॥
- ” रोहिणी देव्युदगात् पुरस्तात्.....वर्द्धयन्ती । तै० ३ । १ । २ ॥
- ” विराट् सृष्टा प्रजापतेः । ऊर्ध्वारोद्रोहिणी । योनिरघ्नः अति-
 ष्ठितिः । तै० १ । २ । २ । २७ ॥
- ” स (प्रजापती रुद्रेण) विद्धः ऊर्ध्व उदप्रपतत्तमेतं मृगः
 (=मृगशीर्षनक्षत्रम्) इत्याचक्षते । ऐ० ३ । ३३ ॥
- ” एतद्वै प्रजापतेः शिरो यन्मृगशीर्षम् । श० २ । १ । २ । ८ ॥
- ” स (प्रजापतिः) पुरुषमेधेनेष्ट्वा विराडिति नामाधत्त । गो०
 पू० ५ । ८ ॥
- ” प्रजापतिर्वैराजम् (साम) । तां० १६ । ५ । १७ ॥
- ” वाजपेययाजी वाच प्रजापतिमाप्नोति तां १८ । ६ । ४ ॥
- ” प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्विवमित्यन्य आहुरुषसमि-
 त्यन्ये । ऐ० ३ । ३३ ॥
- ” प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिद्ध्यौ । दिवं वोषसं वा मिथु-
 न्येनया स्यामिति तां^{२३} सम्बभूव । श० १ । ७ । ४ । १ ॥

- प्रजापतिः प्रजापतिरुषसमध्येत् स्वां दुहितरं, तस्य रेतः परापतत्तदस्यां
न्यषिच्यत तदश्रीणादिदं मे मादुषदिति तत्सदकरोत्पशूनेव ।
तां० = १२ । १० ॥
- „ यदस्मात् (प्रजापतेः) तद्रेतः परापतद्देवा पयस्या मैत्राव-
रुणी । श० ६ । ५ । १ । ५६ ॥
- „ तान् (अग्निवाय्वादित्यचन्द्रमसः) दीक्षितांस्तेपानानुषाः
प्राजापत्या ऽप्सरोरूपं कृत्वा पुरस्तात्प्रत्युदैत्तस्यामेषां मनः
समपतत्ते रेतो ऽसिञ्चन्त ते प्रजापतिं पितरमेत्याब्रुवन् रेतो
वा असिञ्चामहा इदं नो मामुया भूदिति । कौ० ६ । १ ॥
- „ सा (सीता सावित्री) ह पितरं प्रजापतिमुपससार । त०
होवाच । नमस्ते अस्तु भगवः । तै० २ । ३ । १० । १ ॥
- „ प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत्सूर्या सावित्रीम् ।
ऐ० ४ । ७ ॥
- प्रणवः प्रणवेनैव साम्नो रूपमुपगच्छत्योश्म ओश्मित्येतनो हास्येष सर्वं
एव ससामा यज्ञो भवति । श० १ । ४ । १ । १ ॥
- „ यच्छुद्धं प्रणवं कुर्वन्ति तदस्य (भू-) लोकस्य रूपं यन्मका-
रान्तं तदमुष्य (द्युलोकस्य) । कौ० १४ । ३ ॥
- „ अमृतं वै प्रणवः । गो० उ० ३ । ११ ॥ (“ प्रणवः ” इत्यस्य
स्थाने “ प्राणः ” इति-कौ० ११ । ४ ॥)
- „ ब्रह्म वै प्रणवः । कौ० ११ । ४ ॥
- „ ब्रह्म ह वै प्रणवः । गो० उ० ३ । ११ ॥ (“ ओम् ” शब्दमपि
पश्यत)
- प्रणीताः (आपः) यदापः प्राणयंस्तस्मादापः प्रणीतास्तत्प्रणीतानां
प्रणीतात्वम् । श० १२ । ६ । ३ । ८ ॥
- प्रथीर्यज्ञानाम् वायुर्वै प्रथीर्यज्ञानां यदा हि प्राणित्यथ यज्ञो ऽथाग्निहो-
त्रम् । ऐ० २ । ३४ ॥
- प्रतरणः (ऋ० १ । ६१ । १६) (प्रतरणः=) प्रतारयिता । ऐ० १ । १३ ॥
- प्रतिगरः गृणाति ह वा ऽ एतद्धोना यच्छब्दसति । तस्मा एतद् गृणते
प्रत्यवाध्वर्युरागृणाति तस्मात्प्रतिगरो नाम । श० ४ । ३ ।
२ । १ ॥

[प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशः (३२८)

प्रतिगरः मद्रो वै प्रतिगरः । श० ४ । ३ । २ । ५ ॥

प्रतिग्रहः यो बहु प्रतिगृह्य गरगीरिव मन्यते स एतेन (पुनःस्तोमेन)
यजेत । तां० १६ । ४ । २ ॥

प्रतिप्रस्थाता कृतानुकर एव प्रतिप्रस्थाता । श० २ । ५ । २ । ३४ ॥

प्रतिमा (यजु० १४ । १८) असौ वै लोकः प्रतिमैष ह्यन्तरिक्षलोके
प्रतिमित इव । श० ८ । ३ । ३ । ५ ॥

प्रतिरवाः (यजु० ३८ । १५) प्राणा वै प्रतिरवाः प्राणान्हीदथ सर्वं
प्रतिरतम् । श० १४ । २ । २ । ३४ ॥

प्रतिराधः प्रतिराधेन वै देवा असुरान्प्रतिराध्याथैनानत्यायन् । ऐ०
६ । ३३ ॥

” ता वै प्रतिराधैः प्रत्यराध्नुवन् तद्यत्प्रतिराधैः प्रत्यराध्नुवन्
तस्मात्प्रतिराधास्तत्प्रतिराधानां प्रतिराधत्वम् । गो० उ०
६ । १३ ॥

प्रतिरूपः य आदित्ये (पुरुषः) स प्रतिरूपः । प्रत्यङ् ह्येष सर्वाणि
रूपाणि । जै० उ० १ । २७ । ५ ॥

प्रतिष्ठा (=पादः) द्विपदो छन्दो विष्णुर्देवता प्रतिष्ठे (=पादौ) ।
श० १० । ३ । २ । ११ ॥

” इयं वै पृथिवी प्रतिष्ठा । श० १ । ६ । १ । २६ ॥ १ । ६ ।
३ । ११ ॥

” गृहा वै प्रतिष्ठा । श० १ । ९ । ३ । १८ ॥

” आश्चतस्रः प्रतिष्ठा इमा एव ताश्चतस्रो दिशः । जै० उ०
१ । २१ । २ ॥

” चक्षुर्वै प्रतिष्ठा । श० १४ । ६ । २ । ३ ॥

” प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत् । कौ० ३ । ८ ॥ ऐ० २ । १० ॥

” प्रतिष्ठा वै स्वाहाकृतयः । ऐ० २ । ४ ॥

” प्रतिष्ठा वा अवसानम् । कौ० ११ । ५ ॥ गो० उ० ३ । ११ ॥

प्रतिष्ठा चरित्रम् (यजु० १४ । १२ ॥ १५ । ६४ ॥) इमऽ उ लोकाः
प्रतिष्ठा चरित्रम् । श० ८ । ३ । १ । १० ॥ ८ । ७ । ३ । १९ ॥

प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाच प्रतिष्ठा त्रयस्त्रि-
ंशस्तस्य चक्षुर्विशतिरर्धमासाः षडृतवो वेऽ

अहोरात्रे संवत्सर एव प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशत्संस्त-
त्तमाह प्रतिष्ठेति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा ।
श० ८ । ४ । १ । २२ ॥

प्रतिसराः (यजु० १३ । ९-१३ एते पञ्च मंत्राः प्रतिसराख्याः) राक्षोग्ना
वै प्रतिसराः । श० ७ । ४ । १ । ३३ ॥

प्रतिहर्ता व्यानः प्रतिहर्ता । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

„ पशवो वै प्रतिहर्ता । तां० ६ । ७ । १५ ॥

„ रौद्रो वै प्रतिहर्ता । गो० उ० ३ । १६ ॥

„ भविष्यत्प्रति चाहरत् (=प्रतिहर्ता ऽऽसीत्) । तै० ३ । १२ ।
६ । ३ ॥

प्रतिहारः अश्विनौ प्रतिहारः । जै० उ० १ । ५८ । ६ ॥

„ चन्द्रमाः प्रतिहारः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥

„ (प्रजापतिः) शरदम्प्रतिहारम् (अकरोत्) । जै० उ० १ ।
१२ । ७ ॥

„ शरत्प्रतिहारः । ष० ३ । १ ॥

„ पौष्णमास्यः प्रतिहारः । ष० ३ । १ ॥

„ (प्रजापतिः) विद्युत्प्रतिहारम् (अकरोत्) । जै० उ० १ ।
१३ । १ ॥

„ अपराहः प्रतिहारः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥

„ (प्रजापतिः) स्तोमम्प्रतिहारम् (अकरोत्) । जै० उ० १ ।
१३ । ३ ॥

„ (प्रजापतिः) चक्षुः प्रतिहारं (अकरोत्) । जै० उ० १ ।
१३ । ५ ॥

„ अस्थि प्रतिहारः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥

„ (प्रजापतिः) प्रतिहारमारण्येभ्यः पशुभ्यः (प्रायच्छत्) ।
जै० उ० १ । ११ । ६ ॥

„ दिशो ऽवान्तरदिश आकाश एष प्रतिहारः । जै० उ० १ ।
१६ । ३ ॥

„ अथ यदमुष्यां दिशि (दिवि) तत्सर्वम्प्रतिहारेणामोति ।
जै० उ० १ । ३१ । ७ ॥

प्रतीकम् मुखं प्रतीकम् । श० १४ । ४ । ३ । ७ ॥

प्रतीची दिक् मनुष्याणां वा एषा दिग्यत्प्रतीची । ष० ३ । १ ॥

” प्रतीच्यध्वर्योः (दिक्) । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥

” यत्पश्चाद्वासि वरुणो राजा भूतो वासि (प्रतीची दिग् वरुणो ऽधिपतिः पृदाकुः (=सर्पविशेषः) रक्षिता-अथर्व-वेदे ३ । २७ । ३ ॥) । जै० उ० ३ । २१ । २ ॥

” या प्रतीची (दिक्) सा सर्पाणाम् । श० ३ । १ । १ । ७ ॥

” प्रतीची दिक् । सोमो देवता । तै० ३ । ११ । ५ । २ ॥

” (हे देवा यूयं) सोमेन प्रतीचीं (दिशं प्रजानाथ) । ऐ० १ । ७ ॥

” (वायुः) यत्पश्चाद्वाति पवमान एव भूत्वा पश्चाद्वाति । तै० २ । ३ । ९ । ६ ॥

” स (सविता) प्रतीचीं दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥

” प्रतीचीमेव दिशश्च सवित्रा प्राजानात् । श० ३ । २ । ३ । १८ ॥

” तस्मादुत्तरतः पश्चादयं भूयिष्ठं पवमानः (=वायुः) पवते सवितृप्रसूता ह्येष एतत्पवते । ऐ० १ । ७ ॥

” अथैनं (इन्द्रं) प्रतीच्यां दिश्यादित्या देवाः...अभ्यविञ्चन् ...स्वाराज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

” आदित्यास्त्वा पश्चादभिषिञ्चन्तु जागतेन छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

” जगती प्रतीची दिक् । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥

” प्रतीचीमारोह । जगती त्वावतु वैरूपश्च साम सप्तदश-स्तोमो वर्षा ऋतुर्विद् द्रविणम् । श० ५ । ४ । १ । ५ ॥

” विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा । श० ५ । २ । ४ । ५ ॥

” अथर्वणामङ्गिरसां प्रतीची (दिक्) । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥

” उशनसा काश्येन (उद्गात्रा क्षीक्षामहा इति) असुराः

- पश्चात् (आगच्छन्) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥
- प्रतीची दिक् तस्मात्तु ह न प्रतीचीनशिराः शयीत । नेहेवानभिप्रसार्य शयाऽ इति । श० ३ । १ । १ । ७ ॥
- ” वारणं (शङ्कुं) पश्चादग्रं मे वारयाताऽ इति । श० १३ । ८ । ४ । १ ॥
- ” प्रतीच्येव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- ” तस्माद्धेदं प्रत्यञ्चि दीर्घारण्यानि भवन्ति । ऐ० ३ । ४४ ॥ गो० उ० ४ । १० ॥
- ” तस्मादेतस्यां प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजानो ये ऽपाच्यानां स्वाराज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते स्वराडित्ये- नानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥
- प्रतीचीनेडम् (साम) पराचीभिर्वा अन्याभिरिडाभीरेतो दधदेत्यथैत- त्प्रतीचीनेडङ्गुशीतं प्रजात्यै । तां० १५ । ५ । १६ ॥
- प्रतूर्तम् (यजु० ११ । १२) यद्वै क्षिप्रं तत्तूर्तमथ यत्क्षिप्रत्क्षेपीयस्त- त्प्रतूर्तम् । श० ६ । ३ । २ । २ ॥
- प्रतूर्तिरष्टादशः (यजु० १४ । २ । ३) संवत्सरो वाव प्रतूर्तिरष्टादशस्तस्य द्वादश मासाः पञ्चऽतवः संवत्सर एव प्रतूर्तिरष्टादशस्त- द्यत्तमाह प्रतूर्तिरिति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि प्रतिरति । श० ८ । ४ । १ । १३ ॥
- प्रतूर्वन् (यजु० ११ । १५) (=त्वरमाणः) प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्तीरिति पाप्मा वाऽ अशस्तिस्त्वरमाण एह्यवक्रामन् पाप्मानमित्येत् । श० ६ । ३ । २ । ७ ॥
- प्रतन्म् (यजु० ११ । ४८) (=सनातनम्) अयं वो गर्भं ऋत्विजः प्रत्नं सधस्थमासददित्ययं वो गर्भं ऋत्विजः सनातनं सध- स्थमासददित्येत् । श० ६ । ४ । ४ । १७ ॥
- प्रत्यक्षम् प्रत्यक्षं वै तद्यत्पश्यति । श० ६ । २ । १ । ६ ॥
- प्रत्याश्रावणम् अथ यत्प्रत्याश्रावयति यज्ञऽ एवैतदुपावर्त्तते ऽस्तु तथेति । श० १ । ५ । २ । ७ ॥
- प्रत्याश्रावितम् अपानः प्रत्याश्रावितम् । तै० २ । १ । ५ । ६ ॥
- प्रथमा चितिः अयमेव (भू-) लोकः प्रथमा चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १२ ॥

[प्रयाजाः

(३३२)

प्रथमा चितिः यैवेयं प्रतिष्ठा यश्चायमवाङ् प्राणस्तत्प्रथमा चितिः । श०
८ । ७ । ४ । १६ ॥

प्रदरः प्रहादो वै कायाधवः । विरोचनं खं पुत्रमुदास्यत् । स प्रदरो
ऽभवत् । तस्मात्प्रदरादुदकं ना ऽऽचामेत् । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

प्रदाता इन्द्रो वै प्रदाता स एवास्मै यज्ञं प्रयच्छति । कौ० ४ । २ ॥

प्रदाव्यः एष ह वा अग्निर्वैश्वानरो यत्प्रदाव्यः । गो० उ० ४ । ८ ॥

प्रप्रोथाः (सोमस्य ह्रियमाणस्य) यत्प्रप्रोथत्ते प्रप्रोथाः । तां० ८ ।
४ । १ ॥

प्रभूतिः (=प्राणः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशवः प्रभवन्ति । जै० उ० २ ।
४ । ६ ॥

प्रमंहिष्ठीयम् (साम) प्रम^७हिष्ठीयेन वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्रावर्त्तयत्तमस्तु-
णुत् । तां० १२ । ६ । ६ ॥

प्रमा (यजु० १४ । १८) अन्तरिक्षलोको वै प्रमान्तरिक्षलोको ह्यस्मा-
ल्लोकात्प्रमित इव । श० ८ । ३ । ३ । ५ ॥

प्रमायुकः एष ह वै प्रमायुको यो ऽन्धो वा बधिरो वा । श० १२ । २ ।
२ । ४ ॥ गो० पू० ४ । २० ॥

प्रम्लोचन्ती (यजु० १५ । १७) (आदित्यस्य) प्रम्लोचन्ती चानुम्लो-
चन्ती चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहि-
त्थिरहोरात्रे तु ते, ते हि प्र च म्लोचतो ऽनु च म्लोचतः ।
श० ८ । ६ । १ । १८ ॥

प्रयाजाः ततो देवाः । अर्चन्तः श्राम्यन्तश्चेरुस्तऽपतान्प्रयाजान् ददृशु-
स्तैरयजन्त तैर्ऋतून्त्संवत्सरं प्राजयन्तुभ्यः संवत्सरात्सप-
त्नानन्तरायँस्तस्मात्प्रजयाः, प्रजया ह वै नामैतद्यत्प्रयाजा इति ।
श० १ । ५ । ३ । ३ ॥

” ते (प्रयाजाः) वाऽऽप्यहविषो भवन्ति । श० १ । ५ ।
३ । ४ ॥

” ऋतवो ह वै प्रयाजाः । तस्मात्पञ्च (प्रयाजाः) भवन्ति पञ्च
ऋतवः । ० १ । ५ । ३ । १ ॥

” ऋतवो हि प्रयाजाः । श० १ । ३ । २ । ८ ॥

” ऋतवो वै प्रयाजाः । कौ० ३ । ४ ॥

प्रयाजाः प्रयाजाः प्राञ्चो ह्यन्ते तद्धि प्राणरूपम् । श० ११ । २ ।

७ । २७ ॥

„ य इमे शीर्षन्प्राणास्ते प्रयाजाः । ऐ० १ । १७ ॥

„ प्राणा वै प्रयाजाः । ऐ० १ । ११ ॥ कौ० ७ । १ ॥ १० । ३ ॥
श० ११ । २ । ७ । २७ ॥

„ रेतःसिच्यं वै प्रयाजाः । कौ० १० । ३ ॥

„ पशवो वै प्रयाजाः । कौ० ३ । ४ ॥

प्रयाजानुयाजः प्राणा वै प्रयाजानुयाजाः । श० १४ । २ । २ । ५१ ॥

„ ऋतवो वै प्रयाजानुयाजाः । कौ० १ । ४ ॥

„ प्रयाजानुयाजा वै देवा आज्यपाः । श० १ । ४ । २ । १७ ॥
१ । ७ । ३ । ११ ॥

प्रवतः शश्वतीरपः संवत्सरो वै प्रवतः शश्वतीरपः । तां० ४ । ७ । ६ ॥

प्रवर्ग्यः अथ यत् प्रावृज्यत तस्मात्प्रवर्ग्यः । श० १४ । १ । १ । १० ॥

„ तं न सर्वस्माऽ इव प्रवृज्यात् । सर्वं वै प्रवर्ग्यः । श० १४ ।
२ । २ । ४६ ॥

„ तस्य (मखस्य=विष्णोः) धनुरास्त्रिरुद्धा पतित्वा शिरो
ऽङ्घ्रिनत्स प्रवर्ग्योऽभवत् । तां० ७ । ५ । ६ ॥

„ इमे वै लोकाः प्रवर्ग्यः । श० १४ । ३ । २ । २३ ॥

„ अग्निर्वायुरादित्यस्तदेते प्रवर्ग्याः । श० ९ । २ । १ । २१ ॥

„ पता वै देवताः प्रवर्ग्यः । अग्निर्वायुरादित्यः । श० १४ । ३ ।
२ । २४ ॥

„ एष (आदित्यः) उ प्रवर्ग्यः । श० १४ । १ । १ । २७ ॥

„ आदित्यः प्रवर्ग्यः । श० १० । २ । ५ । ४ ॥

„ अथ यत्प्रवर्ग्येण यजन्ते । आदित्यमेव देवतां यजन्ते । श० १२ ।
१ । ३ । ५ ॥

„ एष (वायुः) उ प्रवर्ग्यः । श० १४ । २ । १ । ६ ॥

„ संवत्सरो वै प्रवर्ग्यः । श० १४ । ३ । २ । २२ ॥

„ अग्निहोत्रं वै प्रवर्ग्यः । श० १४ । ३ । २ । २६ ॥

„ यजमानो वै प्रवर्ग्यः । श० १४ । ३ । २ । २५ ॥

„ शिरः प्रवर्ग्यः । श० ३ । ४ । ४ । १ ॥ १४ । २ । १ । ५ ॥ १४ ।
३ । १ । १६ ॥

[प्रस्तावः (३३४)

- प्रवर्ग्यः शिर एतद्यज्ञस्य यत्प्रवर्ग्यः । श० ६ । २ । १ । २२ ॥
” शिरो ह वा एतद्यज्ञस्य यत्प्रवर्ग्यः । गो० उ० २ । ६ ॥
” सन्नाट् प्रवर्ग्यः । श० १४ । १ । ३ । १२ ॥
(‘घर्मः’ शब्दमपि पश्यत)
- प्रवहिकाः (ऋचः) प्रवहिकाभिर्वै देवा असुरान्प्रवह्याथैनानत्यायन् ।
पे० ६ । ३३ ॥
” तद्यथाभिर्ह वै देवा असुराणां रसान् प्रववृहुस्त-
स्मात्प्रवहिकाः । तत्प्रवहिकानां प्रवहिकात्वम् ।
गो० उ० ६ । १३ ॥
- प्र वो वाजाः ऋतव एव प्र वो वाजाः । गो० पू० ५ । २३ ॥
प्रष्टिवाही प्रष्टिवाही वै दैवरथः । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥ १ । ७ । ६ । १ ॥
प्रस्तरः अयं वै स्तुपः (= ऊर्ध्वबद्धकेशसंघातात्मक इति सायणः)
प्रस्तरः । श० १ । ३ । ३ । ७, १२ ॥ १ । ३ । ४ । १० ॥
” यज्ञो वै प्रस्तरः । श० ३ । ४ । ३ । १६ ॥
” यजमानो वै प्रस्तरः । पे० २ । ३ ॥ श० १ । ८ । १ । ४४ ॥ १ ।
८ । ३ । ११, १४, १६ ॥ तै० ३ । ३ । ६ । ७, ८ ॥ ३ । ३ । ६ ।
२, ३ ॥ तां० ६ । ७ । १७ ॥
” क्षत्रं वै प्रस्तरः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥
- प्रस्तावः मुखं हि साम्नः प्रस्तावः । तां० १२ । १० । ७ ॥
” अग्निर्वायुरसावादित्य एष प्रस्तावः । जै० उ० १ । १६ । २ ॥
” अधोदितः (आदित्यः) प्रस्तावः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥
” अग्निः प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥
” ग्रीष्मः प्रस्तावः । ष० ३ । १ ॥
” (प्रजापतिः) ग्रीष्मः प्रस्तावम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १२ । ७ ॥
” अर्द्धमासाः प्रस्तावः । ष० ३ । १ ॥
” (प्रजापतिः) जीमूतान् प्रस्तावम् (अकरोत्) । जै० उ० १ ।
१३ । १ ॥
” त्वक् प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥
” (चक्षुषः) कृष्णं प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३४ । १ ॥
” मण्डलम् प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३३ । ९ ॥

- प्रस्तावः अनेरुक्तो वै प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३५ । ३ ॥
- ” (प्रजापतिः) ऋचः प्रस्तावम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । ३ ॥
- ” (प्रजापतिः) वाचं प्रस्तावम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । ५ ॥
- ” (प्रजापतिः) प्रस्तावमनुष्येभ्यः (प्रायच्छत्) । जै० उ० १ । ११ । ६ ॥
- ” यहदिक्षणायां दिशि तत्सर्वं प्रस्तावेनाप्रोति । जै० उ० १ । ३१ । ४ ॥
- प्रस्तोता अपानः प्रस्तोता । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥
- प्रहादः प्रहादो वै कायाधवः । विरोचनं स्वं पुत्रमुदास्यत् । स प्रदरो ऽभवत् । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥
- ” प्रहादो ह वै कायाधवो विरोचनं स्वं पुत्रमपन्यधत् । नेदेन देवा अहनन्निति । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥
- प्राची दिक् प्राचीमेव दिशम् । अग्निना प्राजानन् । श० ३ । २ । ३ । १६ ॥
- ” स (अग्निः) प्राचीं दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥
- ” प्राची हि दिग्गन्नेः । श० ६ । ३ । ३ । २ ॥
- ” प्राची दिक् । अग्निर्देवता । तै० ३ । ११ । ५ । १ ॥
- ” अग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा । श० ५ । २ । ४ । ५ ॥
- ” यत्पुरस्ताद्वासीन्द्रो राजा भूतो वासि । जै० उ० ३ । ११ । २ ॥
- ” (हे देवा ! यूयं) मयैव (पथ्यया) प्राचीं दिशं प्रजानाथ । ऐ० १ । ७ ॥
- ” यत्पथ्यां (=अदितिं) यजति तस्मादसौ (आदित्यः) पुर उदेति पश्चा ऽस्तमेति पथ्यां ह्येषो ऽनुसंचरति । ऐ० १ । ७ ॥
- ” प्राचीमावत्तयति । देवलोकमेव तेन जयति । तै० २ । १ । ८ । १ ॥ ३ । २ । १ । ३ ॥
- ” पुरस्ताद्वै देवाः प्रत्यञ्चो मनुष्यानभ्युपावृत्तास्तस्मात्तेभ्यः प्राङ् तिष्ठन्नुहोति । श० २ । ६ । १ । ११ ॥
- ” प्राची हि देवानां दिक् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥
- ” देवानां वा एषा दिग्यत्प्राची । ष० ३ । १ ॥

[प्राची दिक् (३३६)

- प्राची दिक् अथैनं (इन्द्रं) प्राच्यां दिशि वसवो देवाः...अभ्यषिञ्चन्...
साम्राज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥
- ” वसवस्त्वा पुरस्तादभिषिञ्चन्तु गायत्रेण छन्दसा । तै० २ ।
७ । १५ । ५ ॥
- ” प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरं॑ साम त्रिवृत्स्तोमो
वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् । श० ५ । ४ । १ । ३ ॥
- ” गायत्री वै प्राची दिक् । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥
- ” स (वायुः) युत्पुरस्ताद्वाति । प्राण एव भूत्वा पुरस्ताद्वाति ।
तस्मात्पुरस्ताद्धान्तं सर्वाः प्रजाः प्रतिनन्दन्ति । तै० २ । ३ ।
६ । ४-५ ॥
- ” अनभिजिता वा एषोद्गातृणां दिग्यत् प्राची । तां० ६ । ५ । २० ॥
- ” तं (शर्यातं [? शर्याति] मानवं) देवो बृहस्पतिनोद्गात्रा
दीक्षामहा इति पुरस्तादागच्छन् । जै० उ० २ । ७ । २ ॥
- ” तस्य सास्र इयमेव प्राची दिग्घड्गुणरः । जै० उ० १ । ३१ । ३ ॥
- ” प्राची दिग्घोतुः । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥
- ” ऋचां प्राची महती दिगुच्यते । तै० ३ । १२ । ६ । १ ॥
- ” प्राञ्चो ऽन्य ऋत्विज आर्त्विज्यं कुर्वन्ति तस्मादेषा दिशां
धीर्यवत्तमैतां॑ हि भूयिष्ठाः प्रीणन्ति । तां० ६ । ४ । १४ ॥
- ” तेजो वै ब्रह्मवचंसं प्राची दिक् । ऐ० १ । ८ ॥
- ” पालाशं (शङ्कुः) पुरस्ताद्, ब्रह्म वै पलाशः । श० १३ । ८ ।
४ । १ ॥
- ” तस्मादिमाः प्रजाः प्राच्यः सर्पन्ति । श० ११ । १ । ६ । २१ ॥
- ” दीक्षितस्यैव प्राचीनव॑शा (शाला) नादीक्षितस्य । श० ३ ।
१ । १ । ७ ॥
- ” प्राच्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- ” तस्माद्धेदं प्राच्यो ग्रामता बहुलाविष्टाः । ऐ० ३ । ४४ ॥ गो०
उ० ४ । १० ॥
- ” तस्मादेतस्यां प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः साम्रा-
ज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते सम्राडित्येनानभिषिक्तानाचक्षते ।
ऐ० ८ । १४ ॥

प्राजापत्यो यज्ञः प्राजापत्येनैव यज्ञेन यजते कामप्रेण । अपुनर्मरं (=पुन-
र्मरणरहितामवस्थाम्) एव गच्छति । तै० ३।६ ॥
२२।४ ॥

प्राणः यद्वै प्राणेनात्मन्प्रणयते तःप्राणस्य प्राणत्वम् । श० १२।
६।१।१४ ॥

” प्रेति (' प्र ' इति) वै प्राण एति (' आ ' इति) उदानः । श०
१।४।१।५ ॥

” उद्यन्तु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्रणयति तस्मादेनं
प्राण इत्याचक्षते । ऐ० ५।३१ ॥

” तदसौ वा आदित्यः प्राणः । जै० उ० ४।२२।९ ॥

” आदित्यो वै प्राणः । जै० उ० ४।२२।११ ॥

” उद्यत इव ह्ययं प्राणः । ष० २।२ ॥

” प्राणो वाऽ अर्कः । श० १०।४।१।२३ ॥ १०।६।२।७ ॥

” प्राणो वै सविता । ऐ० १।१६ ॥

” प्राणो ह वाऽ अस्य सविता । श० ४।४।१।५ ॥

” प्राण एव सविता । श० १२।९।१।१६ ॥ गो० पू० १।३३ ॥

” प्राणो वै सावित्रग्रहः । कौ० १६।२ ॥

” प्राणः सोमः । श० ७।३।१।२ ॥

” प्राणः (यज्ञस्य) सोमः । कौ० ६।६ ॥

” प्राणो हि सोमः । तां० ९।६।१, ५ ॥

” प्राणो वै सोमः । श० ७।३।१।४५ ॥

” चन्द्रमा वै प्राणः । जै० उ० ४।२२।११ ॥

” प्राणो वाऽ अग्निः । श० २।२।२।१५ ॥ ६।५।१।६८ ॥

” तद्भिर्वै प्राणः । जै० उ० ४।२२।११ ॥

” प्राणा अग्निः । श० ६।३।१।२१ ॥ ६।८।२।१० ॥

” ते वाऽ एते प्राणा एव यद् (आहवनीयगार्हपत्यान्वाहार्यपचना-
ख्याः) अग्नयः । श० २।२।२।१८ ॥

” प्राणो ऽमृतं तद्भक्षणे रूपम् । श० १०।२।६।१८ ॥

” अमृतमु वै प्राणाः । श० ६।१।२।३२ ॥

” प्राणो वै जानन्नेयाः स हि जानानां वेद् । ऐ० २।३९ ॥

- प्राणः वायुर्वै प्राणः । कौ० ८ । ४ ॥ जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
- ” वायुर्हि प्राणः । ऐ० २ । २६ ॥ ३ । २ ॥
- ” प्राणो हि वायुः । तां० ४ । ६ । ८ ॥
- ” प्राणो वै वायुः । कौ० ५ । ८ ॥ १३ । ५ ॥ ३० । ५ ॥ श० ४ । ४ । १ । १५ ॥ ६ । २ । २ । ६ ॥ गो० उ० १ । २६ ॥
- ” प्राणा उ वा वायुः । श० ८ । ४ । १ । ८ ॥
- ” यः स प्राणो ऽयमेव स वायुर्यो ऽयं पवते । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥
- ” यस्स प्राणो वायुस्सः । जै० उ० १ । २६ । १ ॥
- ” सः ऽयं (वायुः) पुरुषे ऽन्तः प्रविष्टस्त्रेवा विहितः प्राण उदानो व्यान इति । श० ३ । १ । २ । २० ॥
- ” स (वायुः) यत्पुरस्ताद्वाति प्राण एव भूत्वा पुरस्ताद्वाति । तै० २ । ३ । ९ । ४—५ ॥
- ” वायुर्मे प्राणे श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥
- ” प्राणापानौ मे श्रुतम्मे । तन्मे त्वयि (वायौ) । जै० उ० ३ । २१ । १० ॥
- ” विच्छन्दाश्छन्दां वायुर्देवता प्राणाः । श० १० । ३ । २ । १२ ॥
- ” यो वै प्राणः स वातः । श० ५ । २ । ४ । ९ ॥
- ” प्राणो वै वातः । श० १ । १ । २ । १४ ॥
- ” प्राणा वै वातहोमाः । श० ९ । ४ । २ । १० ॥
- ” प्राणो मातरिश्वा । ऐ० २ । ३८ ॥
- ” प्राणा वै मारुताः । श० ९ । ३ । १ । ७ ॥
- ” प्राणो वै मरुतः स्वापयः । ऐ० ३ । १६ ॥
- ” प्राणो वनस्पतिः । कौ० १२ । ७ ॥
- ” प्राणो वै वनस्पतिः । ऐ० २ । ४, १० ॥
- ” यः प्राणः स वरुणः । गो० उ० ४ । ११ ॥
- ” कतमे रुद्रा इति । दशमे पुरुषे प्राणा आत्मिकादशः । श० ११ । ६ । ३ । ७ ॥
- ” प्राणा वै रुद्राः । प्राणा हीदं सर्वे रोदयन्ति । जै० उ० ४ । २ । ६ ॥
- ” प्राणा वै वसवः । तै० ३ । २ । ३ । ३ ॥ ३ । २ । ५ । २ ॥

- प्राणः प्राणा वै वसवः । प्राणः हीदं सर्वं वस्वाददते । जै० उ० ४ ।
२ । ३ ॥
- ॥ प्राणो वै मित्रः (यजु० ११ । ५३ ॥ १४ । २४) । श० ६ । ५ । १ ।
५ ॥ ८ । ४ । २ । ६ ॥ १२ । ६ । २ । १२ ॥
- ॥ प्राणो वै हरिः स हि ह्वरति । कौ० १७ । १ ॥
- ॥ प्राणा व साध्या देवाः (यजु० ३१ । १६) तऽ एतं (प्रजापतिं)
अग्रऽ एषमसाधयन् । श० १० । २ । २ । ३ ॥
- ॥ प्राणा वै देवा द्रविणोदाः (यजु० १२ । २ ॥) । श० ६ । ७
२ । ३ ॥
- ॥ प्राणा वै देवा धिष्ण्यास्ते हि सर्वा धिय इष्णन्ति । श० ७
१ । १ । २४ ॥
- ॥ प्राणा धियः । श० ६ । ३ । १ । १३ ॥
- ॥ प्राणा वै देवा वयोनाधाः (यजु० १४ । ७ ॥) प्राणैर्हीदं^{२४}
सर्वं वयुनं नद्धम् । श० ८ । २ । २ । ८ ॥
- ॥ प्राणा वै देवा अपाव्याः । तै० ३ । ८ । १७ । ५ ॥
- ॥ तस्मात्प्राणा देवाः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥
- ॥ प्राणा देवाः । श० ६ । ३ । १ । १५ ॥
- ॥ प्राण वै विश्वे देवाः (यजु० ३८ । १५) । श० १४ । २ ।
२ । ३७ ॥
- ॥ प्राणा वा ऋषयः (यजु० १५ । १० ॥) । ऐ० २ । २७ ॥ श०
६ । १ । १ । १ ॥ ८ । ६ । १ । ५ ॥ १४ । ५ । २ । ५ ॥
- ॥ प्राणा उ वाऽ ऋषयः । श० ८ । ४ । १ । ५ ॥
- ॥ प्राणा ऋषयः । श० ७ । २ । ३ । ५ ॥
- ॥ प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः (यजु० १३ । ५४) । श० ८ । १
१ । ६ ॥
- ॥ तदन्नं वै विश्वम्प्राणो मित्रम् । जै० उ० ३ । ३ । ६ ॥
- ॥ प्राणा वालखिल्याः । कौ० ३० । ८ ॥ ऐ० ६ । २६ ॥
- ॥ प्राणा वै वालखिल्याः । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥
- ॥ यदि वालखिल्याः (ऋचः) प्राणानस्यांतरियात् । ऐ० ५ । १५ ॥
- ॥ वाऽमात्रादु हेमे प्राणा असम्मिन्नास्ते यद्वालमात्रादसम्मिन्ना-
स्तस्माद्वालखिल्याः । श० ८ । ३ । ४ । १ ॥

- प्राणः बालमात्रा उ हेमे प्राणा असंभिन्नास्तद्यदसभिन्नास्तस्माद्बाल-
खिल्याः । कौ० ३० । ८ ॥
- „ प्राणो वाऽ ऋक् प्राणेन ह्यर्चति । श० ७ । ५ । २ । १२ ॥
- „ प्राण एव यजुः । श० १० । ३ । ५ । ४ ॥
- „ प्राणो वै यजुः प्राणे ह्यिमानि सर्वाणि भूतानि युज्यन्ते । श०
१४ । ८ । १४ । २ ॥
- „ प्राणा वै गयाः । श० १४ । ८ । १५ । ७ ॥
- „ प्राणा रश्मयः । तै० ३ । २ । ५ । २ ॥
- „ प्राणा वै सुरभयः । तै० ३ । ६ । ७ । ५ ॥
- „ प्राणो वै वयः (ऋ० ३ । २९ । ८) ऐ० १ । २८ ॥
- „ प्राणापानौ वा अक्षरपङ्क्तयः । कौ० १६ । ८ ॥
- „ प्राणो वै हितं प्राणो हि सर्वेभ्यो भूतभ्यो हितः । श० ६ । १
२ । १४ ॥
- „ प्राणो वै होता । ऐ० ६ । ८, १४ ॥ गो० ३० ५ । १४ ॥
- „ अथ वै हविष्पङ्क्तिः प्राण एव । कौ० १३ । २ ॥
- „ प्राणा एव सप्तमी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥
- „ प्राणा वै सत्यम् । श० १४ । ५ । १ । २३ ॥
- „ प्राणो महाव्रतम् । श० १० । १ । २ । ३ ॥
- „ प्राणा वै महिषाः (यजु० १२ । २०) । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥
- „ प्राण एव महान् । श० १० । ४ । १ । २३ ॥
- „ प्राणा एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ प्राणो महः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥
- „ प्राणो वै संवत्सरः । तां० ५ । १० । ३ ॥
- „ प्राणा वै सजाताः प्राणैर्हि सह जायते । श० १ । ६ । १ । १५ ॥
- „ प्राणा वै सीताः । श० ७ । २ । ३ । ३ ॥
- „ प्राणो वै सिन्धुइन्द्रः (यजु० १५ । ४) । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥
- „ एष (यो ऽयं दक्षिणे ऽक्षन्पुरुषो मृत्युनामा सः) उ एव प्राणः ।
एष हीमाः सर्वाः प्रजाः प्रणयति तस्यैते प्राणाः स्वाः स यदा
स्वपित्यथैनमेते प्राणाः स्वा अपियन्ति तस्मात्स्वाप्ययः स्वाप्ययो
ह वै तथै स्वप्न इत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० १० । ५ । १ । १४ ॥

- प्राणः सर्वे ह वाऽ एते स्वपतो ऽपक्रामन्ति प्राण एव न । श० ३ । २ ।
२ । २३ ॥
- „ तदाहुः को ऽस्वप्नुमर्हति यद्वाव प्राणो जागार तदेव जागरित-
मिति । तां० १० । ४ । ४ ॥
- „ प्राणो वै स्वयमातृणा (इष्टका) प्राणो ह्यैतत्स्वयमात्मन
आतृन्ते । श० ७ । ४ । २ । २ ॥
- „ प्राणो वै स्वयमातृणा (इष्टका) । श० ८ । ७ । २ । ११ ॥
- „ प्राणा वै स्वाशिरः । तां० १४ । ११ । ९ ॥
- „ प्राणा वै वामम् । श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥
- „ प्राणो वाऽ अस्य (यजमानस्य) सा रम्या तनूः । श० ७ । ४ ।
१ । १६ ॥
- „ प्राणो वै युवा सुवासाः (ऋ० ३ । ८ । ४) । ऐ० २ । २ ॥
- „ यो ऽयमनिरुक्तः प्राणः स सुरुपकृतनुः । कौ० १६ । ४ ॥
- „ प्राणो वै सुसन्दक् । तै० १ । ६ । ६ । ६ ॥
- „ प्राणो वै सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः । श० ४ । ४ । १ । १४ ॥
- „ प्राणो वै सूददोहाः । श० ७ । १ । १ । २६ ॥
- „ प्राणः सूददोहाः । श० ७ । १ । १ । १५ ॥ ७ । ३ । १ । ४६ ॥
- „ प्राणः स्रुवः । श० । ६ । ३ । १ । ८ ॥
- „ प्राणो वै स्रुवः । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥
- „ प्राण एव स्रुवः सो ऽयं प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यनुसञ्चरति । तस्माद्
स्रुवः सर्वा अनु स्रुवः सञ्चरति । श० १ । ३ । २ । ३ ॥
- „ प्राणाः शिष्यं प्राणैर्ह्ययमात्मा शक्नोति स्थातुं यच्छक्नोति तस्मा-
च्छिष्यम् । श० ६ । ७ । १ । २० ॥
- „ प्राणा वै शाकलाः । श० १४ । २ । २ । ३१ ॥
- „ प्राणाः शाकलाः । श० १४ । २ । २ । ५१ ॥
- „ प्राणाः शिल्पानि । कौ० २६ । १२, १३ ॥
- „ प्राणो वै मधु (यजु० ३७ । १३) । श० १४ । १ । ३ । ३० ॥
- „ प्राणो वै रं प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि रतानि । श० १४ ।
८ । १३ । ३ ॥

[प्राणः

(३४२)

प्राणः प्राणा वै दश वीराः (यजु० १६।४८॥) । श० १२।८।
१।२२ ॥

„ प्राणो वै दिवः । श० ६।७।४।३ ॥

„ प्राणा वै ग्रहाः । श० ४।२।४।१३ ॥ ४।५।९।३ ॥

„ प्राणो वै ज्योतिः (यजु० १४।१७) । श० ८।३।२।१४ ॥

„ प्राणो वै विश्वज्योतिः (इष्टका) । श० ७।४।२।२८ ॥ ८।
३।२।४ ॥ ८।७।१।२२ ॥

„ प्राणो वै हिरण्यम् । श० ७।५।२।८ ॥

„ प्राणो वै रुक् (यजु० १३।३९) प्राणेन हि रोचते । श० ७।
५।२।१२ ॥

„ प्राणो वाव कः । जै० ७० ४।२३।४ ॥

„ प्राणो हि प्रजापतिः । श० ४।५।५।१३ ॥

„ प्राणा उ वै प्रजापतिः । श० ८।४।१।४ ॥

„ प्राणः प्रजापतिः । श० ६।३।१।९ ॥

„ तस्माद् प्रजापतिः प्राणः । श० ७।५।१।२१ ॥

„ अथ यस्स प्राण आसीत्स प्रजापतिरभवत् । जै० ७० २।२।६ ॥

„ अथ य एतदन्तरेण प्राणः संचरति स एव सप्तदशः प्रजापतिः ।
श० १०।४।१।१७ ॥

„ प्राजापत्यः प्राणः । तै० ३।३।७।२ ॥

„ प्राणो वै कूर्मः प्राणो हीमाः सर्वाः प्रजाः करोति । श० ७।
५।१।७ ॥

„ प्राणो हि वै क्षत्रं त्रायते हैनं प्राण क्षणितोः । श० १४।८।
१४।४ ॥

„ प्राणो वै तनूनपात् स हि तन्वं पति । ऐ० २।४ ॥

„ प्राणो वै गोपाः । स हीदं सर्वमनिपद्यमानो गोपायति । जै०
७० ३।३७।२ ॥

„ प्राणो वै पिता । ऐ० २।३८ ॥

„ प्राणो वै नृषद् (यजु० १२।१४ ॥ १७।१२ ॥) । श० ६।७।
३।११ ॥ ९।२।१।८ ॥

„ तस्या एतस्यै वाचः प्राणा एवाऽऽसुः । जै० ७० १।४०।७ ॥

- प्राणो वाऽअसुः । श० ६।६।२।६ ॥
- „ प्राणो वाऽअङ्गिराः । श० ६।५।२।३, ४ ॥
- „ प्राणा इन्द्रियाणि । तां० २।१४।२॥ २२।४।३ ॥
- „ (=मुखाद्यवयवाः) ; स (सोमः) अस्य (इन्द्रस्य) विष्वङ्ङेव प्राणेभ्यो दुद्राव मुखाद्धैवास्य न दुद्रावाथ सर्वेभ्यो ऽन्येभ्यः प्राणेभ्यो ऽद्रवत् । श० १।६।३।७ ॥
- „ प्राणो वै समञ्चनप्रसारणं यस्मिन्वाऽअङ्गे प्राणो भवति तत्सं चाञ्चति प्र च सारयति । श० ८।१।४।१० ॥
- „ प्राणो वाऽअर्णवः (यजु० १३।५३ ॥) । श० ७।५।२।२१ ॥
- „ अन्नं हि प्राणाः । श० ४।३।४।२५ ॥
- „ अन्नं हि प्राणः । श० २।२।१।६ ॥
- „ अन्नं प्राणः । कौ० २५।१३ ॥
- „ प्राणो वै भक्षः । श० ४।२।१।२९ ॥
- „ प्राणो वै सखा भक्षः । श० १।८।१।३३ ॥
- „ प्राण एष स पुरि शेते सं पुरि शेत् इति पुरिशयं सन्तं प्राणं पुरुष इत्याचक्षते । गो० पू० १।३६ ॥
- „ प्राणो वै पतङ्गः (ऋ० १०।१७७।१ ॥) । कौ० ८।४ ॥ जै० उ० ३।३६।२ ॥ ३।३६।२ ॥
- „ प्राणां वै प्रतिरवाः (यजु० ३८।१५) प्राणान्हीदं सर्वं प्रतिरतम् । श० १४।२।२।३४ ॥
- „ (प्रजापतिः) प्राणमुद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १।१३।५ ॥
- „ एष वशी दीताम्र उद्गीथो यत्प्राणः । जै० उ० २।४।१ ॥
- „ प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता । श० १४।६।१।८ ॥
- „ प्राण उद्गाता । कौ० १७।७ ॥ गो० उ० ५।४ ॥
- „ ते य एवेमे मुख्याः प्राणा एत एवोद्गातारश्चोपगातारश्च । जै० उ० १।२२।५ ॥
- „ प्राणः सामवेदः । श० १४।४।३।१२ ॥
- „ स यः प्राणस्तत्साम । जै० उ० १।२५।१० ॥
- „ तस्मात्प्राण एव साम । जै० उ० ३।१।१८ ॥
- „ प्राणो वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यञ्चि । श० १४।८।१४।३ ॥

- प्राणः प्राणा वै सामानि । श० ६ । १ । २ । ३२ ॥
- ॥ प्राणो वाव साम्नस्सुवर्णम् । जै० उ० १ । ३६ । ४ ॥
- ॥ प्राणो वै वामदेव्यम् । श० ६ । १ । २ । ३८ ॥
- ॥ प्राणो वै हिङ्गारः । श० ४ । २ । २ । ११ ॥
- प्राणो हि वै हिङ्गारस्तस्मादपिगृह्य नासिके न हिङ्गुतुं शक्नोति । श० १ । ४ । १ । २ ॥
- ॥ प्राणो वै स्वरः । तां० २४ । ११ । ६ ॥
- ॥ प्राणः स्वरः । तां० ७ । १ । १० ॥ १७ । १२ । २ ॥
- ॥ प्राणाः स्वरसामानः । तां० २४ । १४ । ४ ॥ २५ । १ । ८ ॥
- ॥ प्राणो वै स्तवः । कौ० ८ । ३ ॥
- ॥ प्राणा वै स्तोमाः । श० ८ । ४ । १ । ३ ॥
- ॥ प्राणो वै वषट्कारः । श० ४ । २ । १ । २९ ॥
- ॥ प्राणा वै स्वाहाकृतयः । कौ० १० । ५ ॥
- ॥ प्राणो ऽसौ (द्यु-) लोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥
- ॥ प्राणो भरतः । ऐ० २ । २४ ॥
- ॥ एष (अग्निः) उ वाऽ इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा विभर्ति तस्माद्देवाद् भरतवदिति । श० १ । ५ । १ । ८ ॥
- ॥ (=भूतिः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशवो भवन्ति । जै० उ० २ । ४ । ७ ॥
- ॥ (=प्रभूतिः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशवः प्रभवन्ति । जै० उ० २ । ४ । ६ ॥
- ॥ प्राणा उ ह वाव राजन् मनुष्यस्य सम्भूतिरेवेति । जै० उ० ४ । ७ । ४ ॥
- ॥ प्राणं वा अनु प्रजाः पशवस्सम्भवन्ति । जै० उ० २ । ४ । ५ ॥
- ॥ प्राणा वै ब्रह्म । तै० ३ । २ । ८ । ८ ॥
- ॥ प्राणा उ वै ब्रह्म । श० ८ । ४ । १ । ३ ॥
- ॥ प्राणो वै ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । २ ॥ जै० उ० ३ । ३८ । २ ॥
- ॥ प्राणो वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । ३ ॥
- ॥ प्राणो वै ब्रह्म पूर्व्यम् (यजु० ११ । ५) । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥
- ॥ प्राणा वै बृहत्स्यः । ऐ० ३ । १४ ॥

- प्राणः प्राणो बृहत् । तां० ७ । ६ । १४, १७ ॥ १८ । ६ । २६ ॥
- „ एष (प्राणः) उ एव बृहस्पतिः । श० १४ । ४ । १ । २२ ॥
- „ एष (प्राणः) उऽ एव ब्रह्मणस्पतिः । वाग्वै ब्रह्म तस्या एव पतिस्तस्माद्बु ह ब्रह्मणस्पतिः । श० १४ । ४ । १ । २३ ॥
- „ प्राणो वै वाचस्पतिः । श० ४ । १ । १ । ६ ॥
- „ प्राणो वाचस्पतिः (यजु० ११ । ७) । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥
- „ वाग्वाऽ इदं कर्म प्राणो वाचस्पतिः (यजु० ३० । १) । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥
- „ नमो वाचे प्राणपत्न्यै स्वाहा । ष० २ । ६ ॥
- „ वाक् च वै प्राणश्च मिथुनम् । श० १ । ४ । १ । २ ॥
- „ तस्मात्सर्वे प्राणा वाचि प्रतिष्ठिताः । श० १२ । ८ । २ । २५ ॥
- „ तस्याः (वाचः) उ प्राण एव रसः । जै० ७० । १ । १ । ७ ॥
- „ यावद्वै प्राणेष्वापो भवन्ति तावद्वाचा वदति । श० ५ । ३ । ५ । १६ ॥
- „ प्राणा वा आपः । तै० ३ । २ । ५ । २ ॥ तां० ६ । ९ । ४ ॥
- „ सा ह वागुवाच । (हे प्राण !) यद्वाऽ अहं वसिष्ठास्मि त्वं तद्वसिष्ठो ऽसीति । श० १४ । ९ । २ । १४ ॥
- „ तयोः (सदसतोः) यत् सत् तत्साम तन्मनस्स प्राणः । जै० ७० । १ । ५३ । २ ॥
- „ अर्द्धभाग्वै मनः प्राणानाम् । ष० १ । ५ ॥
- „ मनो वै प्राणानामधिपतिर्मनसि हि सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठिताः । श० १४ । ३ । २ । ३ ॥
- „ मनसि वै सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठिताः । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥
- „ प्राणदेवस्यो वै ब्रह्मा । ष० २ । ६ ॥
- „ प्राणा वै भुजः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥
- „ प्राणा वा ऋतुयाजाः । ऐ० २ । २६ ॥ कौ० १३ । ६ ॥ गो० ७० । ३ । ७ ॥
- „ प्राणो वै धाय्या । कौ० १५ । ४ ॥
- „ प्राणो धाय्या । जै० ७० । ३ । ४ । ३ ॥
- „ दिशो वै प्राणाः । जै० ७० । ४ । २२ । ११ ॥

[प्राणः

(३४६)

प्राणः प्राणा वै धुरः । तां० १४।२।१८ ॥

” प्राणा वाऽ अवकाशाः । कौ० ८।६ ॥ श० १४।१।४।१ ॥

” प्राणा अवकाशाः । श० १४।२।२।५१ ॥

” प्राणा दीक्षा । तै० ३।८।१०।२ ॥ श० १३।१।७।२ ॥

” प्राणो वै ककुच्छन्दः । श० ८।५।२।४ ॥

” प्राणा वा उष्णिक्कुम्भी । तां० ८।५।५ ॥

” प्राणो वै गायत्री । श० ६।४।२।५ ॥ ष० ३।७ ॥

” प्राणो गायत्री । श० ६।२।१।२४ ॥ ६।६।२।७ ॥ १०।

३।१।१ ॥ तां० ७।३।८ ॥ १६।३।६ ॥

” प्राणो वै गायत्र्यः । कौ० १५।२ ॥ १६।३ ॥ १७।२ ॥

” तत्प्राणो वै गायत्रम् (साम) । जै० ३७।१।३७।७ ॥

” प्राणा वै भवित्राणि । श० १४।३।१।२१ ॥

” प्राणो वा भ्रुकूप्रीच्यः । कौ० ८।५ ॥

” प्राणा वै प्रावाणः (यजु० ३८।१५) । श०-१४।२।२।३३ ॥

” स एषो ऽहमा ऽऽखणं यत्प्राणः । स यथा अश्मानमाखणमुत्वा
लोष्टो विध्वंसत एवमेव स विध्वंसते य एवं विद्धांसमुपवदति ।

जै० ३७।१।६०।७-८ ॥

” य इमे शीर्षन्प्राणास्ते प्रयाजाः । ऐ० १।१७ ॥

” प्रयाजाः प्राञ्चो ह्यन्ते तद्धि प्राणरूपम् । श० ११।२।७।२७ ॥

” प्राणा वै प्रयाजाः । ऐ० १।११ ॥ कौ० ७।१ ॥ १०।३ ॥

श० ११।२।७।२७ ॥

” प्राणा वै प्रयाजानुयाजाः । श० १४।२।२।५१ ॥

” प्राणो वै प्रायणीयः (यागः) । ऐ० १।७ ॥

” प्राणः सर्वं ऋत्विजः । ऐ० ६।१४ ॥

” प्राणाः पशवः । तै० ३।२।८।६ ॥

” प्राणो मनुष्याः । श० १४।४।३।१३ ॥

” प्राणो वै पवमानः । श० २।२।१।६ ॥

” प्राणो वै माध्यन्दिनः पवमानः । श० १४।३।१।२९ ॥

” (पुरुषस्य) ये ऽवाञ्चः (प्राणाः) तत्तृतीयसवनम् । कौ०
२५।१२ ॥

” प्राणा वै वशो वीर्यम् । श० १०।६।५।६ ॥

- प्राणः प्राणा वै वशः । श० । १४ । ५ । २ । ५ ॥
- ” अथ यत्प्राणा अभयन्त तस्माद् प्राणाः श्रियः । श० ६ । १ । १ । ४ ॥
- ” प्राणा वै द्विदेवत्याः । ऐ० २ । २८ ॥
- ” प्राणा द्विदेवत्याः । कौ० १३ । ५, ६ ॥
- ” प्राणो ह वाऽ अस्य (यज्ञस्य) उपांशुः । श० ४ । १ । १ । १ ॥
- ” अथवा उपांशुः प्राण एव । कौ० १२ । ४ ॥
- ” प्राणो ह्युपांशुः श्रुतिमांशुः (पृथिवीं) ह्येव प्राणाश्चमिप्राणिति । श० ४ । १ । २ । २७ ॥
- ” उपांशुश्चायतनो वै प्राणः । श० १० । ३ । ५ । १५ ॥
- ” प्राणा वै त्रिवृत । तां० २ । १५ । ३ ॥ ३ । ६ । ३ ॥
- ” त्रिवृत्ते प्राणः । तै० ३ । २ । ३ । ३ ॥
- ” त्रय इमे पुरुषे प्राणाः । श० १ । ३ । ५ । १३ ॥
- ” स वा अयं त्रेधा विहितः प्राणः, प्राणोऽपानो ध्यान इति । कौ० १३ । ६ ॥
- ” त्रयो वै प्राणाः प्राण उदानो ध्यानः । श० ६ । ४ । २ । ५ ॥ ६ । ४ । २ । १० ॥
- ” प्राणो वा अपानो ध्यानस्त्रिस्तो देव्यः । ऐ० २ । ४ ॥
- ” पञ्चधा विहितो वाऽ अयं शीर्षेन्द्रप्राणो मनो वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रम् । श० ६ । २ । २ । ५ ॥
- ” पशुनेति यजन्ति प्राणमेव तद्यजमाने वधति । कौ० १३ । ९ ॥
- ” पशु वाऽ इमे शीर्षेन्द्रप्राणाः । श० १२ । ६ । १ । ६ ॥ १४ । १ । ३ । ३२ ॥
- ” पशुर्हि प्राणाः । श० ६ । ७ । १ । २० ॥
- ” सप्त शिरसि प्राणाः । तां० २ । १४ । २ ॥ २२ । ४ । ३ ॥
- ” सप्त शीर्षेन्द्रप्राणाः । श० ६ । ५ । २ । ८ ॥
- ” सप्त वै शीर्षेन्द्रप्राणाः । ऐ० १ । १७ ॥ तै० १ । २ । ३ । ३ ॥
- ” अष्टौ प्राणाः । स० ९ । २ । २ । ६ ॥
- ” नव प्राणाः । श० ६ । ३ । १ । २१ ॥ ६ । ८ । २ । १० ॥ तां० ७ । ७ । ६ ॥

- प्राणः नव वै प्राणाः । ऐ० ४ । १६ ॥ गो० पू० ४ । ६ ॥ कौ० ७ ।
१० ॥ ष० ३ । १२ ॥ तां० ४ । ५ । २१ ॥ १४ । ७ । ६ ॥
- ” नव वै प्राणाः सप्त शीर्षन्नावाञ्चौ द्वौ । श० ६ । ४ । २ । ५ ॥ ८ ।
४ । ३ । ७ ॥
- ” नवमे पुरुषे प्राणाः । श० १ । ५ । २ । ५ ॥
- ” नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी । तै० १ । ३ । ७ । ४ ॥ २ ।
२ । १ । ७ ॥
- ” नव प्राणाः.....(नाभिः) दशमी प्राणानाम् । तां० ६ । ८ । ३ ॥
- ” दश प्राणाः । श० ६ । ३ । १ । २१ ॥
- ” दशमे प्राणाः । कौ० २६ । ८ ॥
- ” दश वै पुरुषे प्राणाः । गो० उ० ६ । २ ॥
- ” दश वाऽ इमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशो यस्मिन्नेते प्राणाः
प्रतिष्ठिताः । श० ३ । ८ । १ । ३ ॥
- ” द्वादशमे पुरुषे प्राणाः । गो० पू० ५ । ५ ॥
- ” त्रयोदशमे पुरुषे प्राणाः । गो० पू० ५ । ५ ॥
- ” त्रयोदशमे पुरुषे प्राणा नाभिस्त्रयोदशी । श० १२ । ३ । २ । २ ॥
- ” एतावन्तः (त्रीणि च शतानि षष्टिश्च) एव पुरुषस्य प्राणाः ।
गो० पू० ५ । ५ ॥
- ” एकपुत्र इति चैकितानेयः । एको ह्येवैष पुत्रो यत्प्राणः ॥ स उ
एव द्विपुत्र इति । द्वौ हि प्राणापानौ ॥ स उ एव त्रिपुत्र इति ।
त्रयो हि प्राणोऽपानो व्यानः ॥ स उ एव चतुष्पुत्र इति ।
चत्वारो हि प्राणोऽपानो व्यानस्समानः ॥ स उ एव पञ्चपुत्र
इति । पञ्च हि प्राणोऽपानो व्यानस्समानोऽवानः ॥ स उ एव
षट्पुत्र इति । षड्द्वि प्राणोऽपानो व्यानस्समानोऽवान उदानः ॥
स उ एव सप्तपुत्र इति सप्त हीमे शीर्षण्याः प्राणाः ॥ स उ एव
नवपुत्र इति सप्त हि शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाञ्चौ ॥ स उ एव
दशपुत्र इति । सप्त शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाञ्चौ नाभ्यां दशमः ॥
स उ एव बहुपुत्र इति । एतस्य हीयं सर्वाः प्रजाः (?) । जै० उ०
२ । ५ । २—११ ॥
- ” को हि तद्वेद यावन्त इमेऽन्तरात्मन्प्राणाः । श० ७ । २ । २ । २० ॥

- प्राणः बहुधा होवेष निविष्टो यत्प्राणः । जै० उ० ३ । २ । ६३ ॥
- ” तस्मात्सर्वे प्राणाः प्राणोदानयोरेव प्रतिष्ठिताः । श० १२ । ६ । १ । १० ॥
- ” न वाऽ अस्थिषु प्राणो ऽस्ति । श० ७ । १ । १ । १५ ॥
- ” प्राणो वै हृदयमतो ह्ययमूर्ध्वः प्राणः संचरति । श० ३ । ८ । ३ । १५ ॥
- ” प्राणो हृदये (श्रितः) । तै० ३ । १० । ८ । ५ ॥
- ” तस्मादयमात्मन्प्राणो मध्यतः । श० ७ । ३ । १ । २ ॥
- ” नासिकेऽऽ वै प्राणस्य पन्थाः । श० १२ । ६ । १ । १४ ॥
- ” वहिर्हि प्राणः । तां० ७ । ६ । १४ ॥
- ” तं (पशुं संज्ञप्तं) प्राची दिक् । प्राणेत्यनुप्राणः प्राणमेवास्मिँस्त-
ददधात् । श० ११ । ८ । ३ । ६ ॥
- ” पुरस्तात्प्रत्यङ् प्राणो धीयते । श० ७ । ५ । १ । ७ ॥
- ” प्राणो हि प्रियः प्रजानाम् । प्राण इव प्रियः प्रजानां भवति । य
पवं वेद । तै० २ । ३ । ६ । ५ ॥
- ” प्राणो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च । श० १४ । ६ । २ । १ ॥
- ” तं (प्राणं) पाप्मा ना ऽन्वसृज्यत । न ह्येतेन प्राणेन पापं वदति
न पापं ध्यायति न पापम्पश्यति न पापं शृणोति न पापं
गन्धमपानिति । तेनाऽपहत्य मृत्युमपहत्य पाप्मानं (देवाः)
स्वर्गं लोकमायन् । जै० उ० २ । १ । १९—२० ॥
- ” प्राणा वै समिधः । ऐ० २ । ४ ॥ श० १ । ५ । ४ । १ ॥
- ” प्राणा वै समिधः (यजु० १७ । ७९) प्राणा होतश्च समिन्धते ।
श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥
- ” प्राणै हीयं पुरुषः समिद्धः । श० १ । ५ । ४ । १ ॥
- ” यदु वै प्राणो ऽङ्गं नाभिप्राप्नोति शुष्यति वाचनं न्नायति वा ।
श० ८ । ७ । २ । १४ ॥
- ” यत्रायं पुरुषो म्रियतऽ उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्याहो नेति, नेति
होवाच याज्ञवल्क्यो ऽत्रैव (प्राणाः) समवनीयन्ते । श० १४ ।
६ । २ । १२ ॥
- ” प्रादेशमात्रं हीम आत्मनो ऽभि प्राणक । कौ० २ । २ ॥

प्राणः प्राणो वै प्रवान् । श० १ । ४ । ३ । ३ ॥

„ (प्रजापतिः) प्राणादेवेमं लोकं (पृथिवीं) प्रावृहत् । कौ०
६ । १० ॥

„ लेखासु हीमे प्राणाः । श० ७ । २ । २ । १८ ॥

„ आयत इव ह्ययमवाङ् प्राणः । ष० २ । २ ॥

„ शिरो वै प्राणानां योनिः । श० ७ । ५ । १ । २२ ॥

„ प्राणो हि रेतसां विकर्त्ता । श० १३ । ३ । ८ । १ ॥

„ प्राणो रेतः । ऐ० २ । ३८ ॥

„ अभ्रुवं वै तद्यत्प्राणः । श० १० । २ । ६ । १९ ॥

प्राणभृतः (इष्टकाः) अन्नं प्राणभृदन्नं हि प्राणान्बभ्रति । श० ८ ।
१ । ३ । १ ॥

„ अङ्गानि प्राणभृत्यङ्गानि हि प्राणान्बभ्रति । श०
८ । १ । ३ । १ ॥

प्राणापानौ शतं शतानि पुरुषः समेनाष्टौ शता यन्मितं तद्वदन्ति ।
अहोरात्राभ्यां पुरुषः समेन तावत्कृत्वः प्राणिति चाप
चानितीति । श० १२ । ३ । २ । ८ ॥

„ प्राणापानौ पवित्रे । तै० ३ । ३ । ४ । ४ ॥ ३ । ३ । ६ । ७ ॥

„ प्राणापानौ मित्रावरुणौ । तै० ३ । ३ । ६ । ६ ॥ तां० ६ । १० ।
५ ॥ ६ । ८ । १६ ॥

„ मित्रावरुणौ (एवैनं) प्राणापानाभ्याम् (अघतः) । तै० १ ।
७ । ६ । ६ ॥

„ प्राणापानावेवाध्वर्युः । गो० पू० २ । १० ॥

„ प्राणापानौ देवः । गो० पू० २ । १० ॥

„ प्राणापानौ ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥

„ प्राणापानौ वै बृहद्रथन्तरे । तां० ७ । ६ । १२ ॥

„ प्राणापानौ वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३ । ६ ।
२१ । ३ ॥

„ प्राणापाना उपांश्वन्तर्यामौ (ग्रही) । ऐ० २ । २१ ॥

„ प्राणापानौ वा उपांश्वन्तर्यामौ (ग्रही) । कौ० ११ । ८ ॥
१२ । ४ ॥

- प्राणापानौ प्राणापानौ वै गो आयुषी । कौ० १६ । २ ॥
- ” प्राणापानावेव यत्प्रायणीयोदयनीये । कौ० ७ । ५ ॥
- ” प्राणापानौ वै दैव्या होतारः । ऐ० २ । ४ ॥
- ” प्राणापानौ वा अक्षरपङ्कयः । कौ० १६ । ८ ॥
- ” प्राणापानौ वै बार्हतः प्रगाथः । कौ० १५ । ४ ॥ १८ । २ ॥
- ” वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारः । ऐ० ३ । ८ ॥
- ” वाक् च ह वै प्राणापानौ च वषट्कारः । गो० उ० ३ । ६ ॥
- प्राणोदानौ सो ऽयं (वायुः) पुरुषे ऽन्तः प्रविष्टः प्राङ् च प्रत्यङ् च
ताविमौ प्राणोदानौ । श० १ । १ । ३ । २ ॥ १ । ८ ।
३ । १२ ॥
- ” ते (पवित्रे—यजु० १ । १२) वै द्वे भवतः । ……ताविमौ
प्राणोदानौ (श्वासप्रश्वासाँ रुधिरादिनां शोधकावित्यर्थः) ।
श० १ । १ । ३ । २ ॥
- ” प्राणोदानौ पवित्रे । श० १ । ८ । १ । ४४ ॥
- ” इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ । श० ४ । ३ । १ । २२ ॥
- ” प्राणोदानौ वै द्यावापृथिवी । श्व० १४ । २ । २ । ३६ ॥
- ” प्राणोदानौ मित्रावरुणौ । श० ३ । २ । २ । १३ ॥
- ” प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ ॥ श० १ । ८ । ३ । १२ ॥ ३ ।
६ । १ । १६ ॥ ५ । ३ । ५ । ३४ ॥ ६ । ५ । १ । ५६ ॥
- ” प्राणोदानौ वाऽ अध्वर्युः । श० ५ । ५ । १ । ११ ॥
- ” प्राणोदानावेव यत्प्रायणीयोदयनीये । कौ० ७ । ५ ॥
- ” प्राणोदानावेवाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च । श० २ । २ । २ । १८ ॥
- ” प्राणोदानाऽ उ वै रेतः सित्तं विक्रुतः । श० १ । ५ ।
१ । ५६ ॥
- प्रातः वैवस्य सधितुः प्रातःप्रसवः प्राणः । तै० १ । ५ । ३ । १ ॥
- प्रातःसवनम् अप्रेर्वै प्रातःसवनम् । कौ० १२ । ६ ॥ १४ । ५ ॥ २८ । ५ ॥
- ” अप्रेर्यं वै प्रातःसवनम् । जै० उ० १ । ३७ । २ ॥
- ” वसूनां वै प्रातःसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥
- ” वसूनामेव प्रातःसवनम् । श० ४ । ३ । ५ । १ ॥
- ” तं (आदित्यं) वसवो ऽष्टकपालेन (पुरोडाशेन) प्रातः-
सवने ऽभिषज्यन् । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥

- प्रातःसवनम् अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनम्^७
रुद्रा माध्यन्दिनम्^७ सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श०
१४ । १ । १ । १५ ॥
- ” गायत्रं हि प्रातःसवनम् । गो० उ० ३ । १६ ॥
- ” गायत्रं वै प्रातःसवनम् । ऐ० ६ । २, ६ ॥ ष० १ । ४ ॥
तां० ६ । ३ । ११ ॥
- ” अयं वै लोकः (पृथिवी) प्रातःसवनम् । श० १२ । ८ ।
२ । ८ ॥ गो० उ० ३ । १६ ॥
- ” तस्य (पुरुषस्य) य ऊर्ध्वाः प्राणास्तप्रातःसवनम् । कौ०
२५ । १२ ॥
- ” ब्रह्म वै प्रातःसवनम् । कौ० १६ । ४ ॥
- ” त्रिवृत्पञ्चदशौ (स्तोमौ) प्रातःसवनम् (वहतः) । तां०
१६ । १० । ५ ॥
- ” अनिरुक्तं प्रातःसवनम् । तां० १८ । ६ । ७ ॥
- ” पीतवद्वै प्रातःसवनम् । ऐ० ४ । ४ ॥
- ” व्यृद्धं वा एतदपशव्यं यत्प्रातःसवनमनिडम्^७ हि । तां०
६ । ९ । २३ ॥
- ” ऊमा वै पितरः प्रातःसवने । ऐ० ७ । ३४ ॥
- ” एकच्छन्दः प्रातःसवनम् । ष० १ । ३ ॥
- ” उद्यन्तं (सूर्यमीप्सन्ति) प्रातःसवनेन । कौ० १८ । ९ ॥
- प्रातरनुवाकः प्रातर्वै स (प्रजापतिः) तं देवेभ्यो ऽन्वब्रवीद्यत्प्रातरन्व-
ब्रवीत्तत्प्रातरनुवाकस्य प्रातरनुवाकत्वम् । ऐ० २ । १५ ॥
- ” यदेवैनं प्रातरन्वाह तत्प्रातरनुवाकस्य प्रातरनुवाकत्वम् ।
कौ० ११ । १ ॥
- ” सर्वं प्रातरनुवाकः । कौ० ११ । ७ ॥
- ” प्रजापतिर्वै प्रातरनुवाकः । कौ० ११ । ७ ॥ २५ । १० ॥
- ” प्रजापतेर्वा एतदुक्तं यत्प्रातरनुवाकः । ऐ० २ । १७ ॥
- ” वाक् प्रातरनुवाकः । कौ० ११ । ८ ॥
- ” शिरो वा एतद्यज्ञस्य यत्प्रातरनुवाकः । ऐ० २ । २१ ॥
- प्रातर्यावाणः एते वाव देवा प्रातर्यावाणो यद्गिरिषा अभ्विनौ । ऐ०
२ । १५ ॥

- प्रायणीयः (यागः) स्वर्गं वा पतेन लोकमुपप्रयंति यत् प्रायणीयस्तत्रा-
यणीयस्य प्रायणीयत्वम् । ऐ० १ । ७ ॥
- ” अदित्य एव प्रायणीयो भवति । श० ३ । २ । ३ । ६ ॥
- ” अथ यत् प्रायणीयेन यजन्ते । अदितिमेव देवतां
यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । २ ॥
- ” प्राणो वै प्रायणीयः । ऐ० १ । ७ ॥
- प्रायणीयम् (ब्रह्मः) प्रायणीयेन वा अह्ना देवाः स्वर्गं लोकं प्रायन्त्यत्
प्रायणीयस्तत् प्रायणीयस्य प्रायणीयत्वम् । तां० ४ ।
२ । २ ॥
- ” यदमुत्र राजानं क्रेष्यन्नुपप्रेष्यन्त्यजते । तस्मात्प्राय-
णीयं नाम । श० ४ । ५ । १ । २ ॥
- ” त्रिवृद्धे प्रायणीयमहः । तां० १० । ५ । ४ ॥
- ” त्रिवृत्प्रायणीयमहः । तां० १० । ५ । ४ ॥
- ” ब्रह्म प्रायणीयमहः । तां० ११ । ४ । ६, ६ ॥
- ” ततिर्वै यज्ञस्य प्रायणीयम् । कौ० ७ । ६ ॥
- ” प्राणापानाबेव यत्प्रायणीयोदयनीये । कौ० ७ । ५ ॥
- प्रायणीयोदयनीयौ (यज्ञस्य) बाहू प्रायणीयोदयनीयौ । श० ३ । २ ।
३ । २० ॥
- प्रावित्रम् यज्ञो वै प्रावित्रम् । श० १ । ५ । २ । १ ॥
- प्राष्टत् तस्मात्प्राष्टृषि सर्वा वाचो वदन्ति । तै० १ । ८ । ४ । २ ॥
- प्राशित्रम् लोकः प्राशित्रम् । श० ११ । २ । ७ । १६ ॥
- प्रासहा सेना वा इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नाम । ऐ०
३ । २२ ॥
- ” सेना ह नाम पृथिवी (= विस्तीर्णैति सायणः) धनञ्जया विश्व-
व्यचा अदितिः सूर्यत्वक् । इन्द्राणी देवी प्रासहा ददाना ।
तै० २ । ४ । २ । ७ ॥
- ” इन्द्रो वै प्रासहस्पतिस्तुविष्मन् । ऐ० ३ । २२ ॥
- प्रियङ्गवः प्रियङ्गुतण्डुलैर्जुहोति । प्रियाङ्गा ह वै नामैते । एतैर्वै देवा
अश्वस्याङ्गानि समदधुः । तै० ३ । ८ । १४ । ६ ॥
- ” स (रुद्रः) एतच्छ रुद्रायाऽऽर्द्रायै प्रियङ्गवं चरुं पयसि निरक्षपत् ।
ततो वै स पशुमानभवत् । तै० ३ । १ । ४ । ४ ॥

[फल्गुन्यः

(३५४)

प्रियङ्गवः भौज्वं वा एतदोषधीनां यत्प्रियङ्गवः । ऐ० ८ । १६ ॥

प्रियम् प्रजा वै प्रियाणि पशवः प्रियाणि । तां० ८ । ५ । १५ ॥

प्रेतिः (यजु० १५ । ६) अन्नं प्रेतिः । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥

प्रेषाः यज्ञो वै देवेभ्य उदक्रामत्तं प्रैषैः प्रैषमैच्छन् तत्प्रेषाणां प्रैषत्वम् ।
ऐ० ३ । ६ ॥

„ तं देवाः प्रैषैः प्रैषं (= प्रकृष्टं सोमस्यान्वेषणमिति सायण)
पेच्छन् । तत्प्रेषाणां प्रैषत्वम् । तै० २ । २ । ८ । ५ ॥

„ (देवाः) प्रैषैरेव प्रैषमैच्छन् । श० ३ । ९ । ३ । २८ ॥

„ बार्हता वै प्रैषाः । श० १२ । ८ । २ । १४ ॥

प्रोक्षयः (बहुवचने) दिव्या आपः प्रोक्षणयः । तै० २ । १ । ५ । १ ॥

प्रोक्षणी आपः प्रोक्षणयः । ऐ० ५ । २८ ॥

प्रोष्ठपदाः (नक्षत्रम्) (देवाः) प्रोष्ठपदेषूदयच्छन्त (स्वकीयान्यायुधा-
न्यसुरयोधनायोद्यतवन्तः) । तै० १ । ५ । २ । ९ ॥

„ अहेर्बुध्नियस्योत्तरे (प्रोष्ठपदाः) । तै० १ । ५ । १ ।
५ ॥ ३ । १ । २ । ९ ॥

„ अजस्यैकपदः पूर्वे प्रोष्ठपदाः । तै० १ । ५ । १ ।
५ ॥ ३ । १ । २ । ८ ॥

प्रुचः तस्यावाङ् मेधः पपात । स एष घनस्पतिरजायत तं देवाः
प्रापश्यंस्तस्मात्प्रुच्यः प्रुच्यो हे वै नामैतद्यत्प्लुक्षः । श० ३ । ८ ।
३ । १२ ॥

„ स्वाराज्यं च ह वा एतद्वैराज्यं च घनस्पतीनाम् (यत्प्लुक्षः) । ऐ०
७ । ३२ ॥ ८ । १६ ॥

„ वशासो वा एष घनस्पतिरजायत यत्प्लुक्षः । ऐ० ७ । ३२ ॥

प्रुवः (सामविशेषः) यत् प्रुवो भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै । तां०
१४ । ५ । १७ ॥

प्रेङ्गः (प्रेङ्गः) प्रेङ्गमाल्ल्य होता शंभसति महस एव तद्रूपं क्रियते ।
तां० ५ । ५ । ६ ॥

„ महो वै प्रेङ्गः । तै० १ । २ । ६ । ६ ॥

(फ)

फल्गुन्यः (नक्षत्रम्) अर्जुन्यो वै नामैतास्ता एतत्परोऽक्षमाचक्षते फल्गुन्य
इति । श० २ । १ । २ । ११ ॥

- फल्गुन्यः (नक्षत्रम्) अर्धरात्रौ वा एतन्नक्षत्रं यत्पूर्वं फल्गुनी । तै० १ ।
१ । २ । ४ ॥ १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । ८ ॥
- ” भगस्य वा एतन्नक्षत्रं यदुत्तरे फल्गुनी । तै० १ ।
१ । २ । ४ ॥ १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । ८ ॥
- ” एतां वाऽ इन्द्रनक्षत्रं यत्फल्गुन्यः । श० २ । १ ।
२ । ११ ॥
- ” मुखमुत्तरे फल्गू पुच्छं पूर्वं । कौ० ५ । १ ॥
- ” मुखे (संवत्सरस्य) उत्तरे फल्गुन्यो पुच्छं पूर्वं ।
गो० उ० १ । ६२ ॥
- ” एषा वै प्रथमा रात्रिः संवत्सरस्य यदुत्तरे फल्गुनी ।
तै० १ । १ । २ । ९ ॥
- ” एषा ह संवत्सरस्य प्रथमा रात्रिर्यत्फाल्गुनी पौर्ण-
मासी योत्तरैषोत्तमा या पूर्वा मुखत एव तत्संव-
त्सरमारभते । श० ६ । २ । २ । १८ ॥
- ” मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यत्फाल्गुनी पौर्णमासी ।
कौ० ४ । ४ ॥ ५ । १ ॥ तां० ५ । ९ । ८ ॥ गो० उ०
१ । १९ ॥
- ” एषा वै अघन्या रात्रिः संवत्सरस्य यत्पूर्वं फल्गुनी ।
तै० १ । १ । २ । ९ ॥

फाण्टम् फाण्टं मनुष्याणाम् । श० ३ । १ । ३ । ८ ॥

- फाल्गुनानि (= हेमन्तानि वृषाणि) इन्द्रो वृषमहन् तस्य बलकः पराऽपतत्
तानि फाल्गुनान्यभवन् । तै० १ । ४ ।
७ । ६ ॥
- ” द्वयानि वै फाल्गुनानि । लोहितपुष्पाणि
चारुणपुष्पाणि च स यान्यरुणपुष्पाणि
फाल्गुनानि तान्यभिषुणुयादेष वै सो-
मस्य म्यङ्गो यदरुणपुष्पाणि । श० ४ ।
५ । १० । २ ॥
- ” पशवो वै फाल्गुनानि । तै० १ । ४ ।
७ । ६ ॥

फेनः स (फेनः) यदोपहन्यते मृदेव भवति । श० ६ । १ । ३ । ३ ॥
 ('नमुचिः' शब्दमपि पश्यत)

(ब)

बदरम् यत्क्रीहा तद् बदरम् (अभवत्) । श० १२ । ७ । १ । ३ ॥

बभ्रुः (यजु० १२ । ७५) सोमो वै बभ्रुः । श० ७ । २ । ४ । २६ ॥

बम्बः (आजद्विषः) बम्बेनाऽऽजद्विषेण (उद्रात्रा दीक्षामहा इति)
 पितरो दक्षिणतः (आमच्छन्) । जै० उ० २ ।
 ७ । २ ॥

बहिः प्रजा वै बहिः । कौ० ५ । ७ ॥ १८ ॥ १० ॥ तै० १ । ६ । ३ । १० ॥
 श० १ । ५ । ३ । १६ ॥ २ । ६ । १ । १३, ४४ ॥ ४ । ४ । ५ ।
 १४ ॥ गो० उ० १ । २४ ॥

„ पशवो वै बहिः । ऐ० २ । ४ ॥

„ ओषधयो बहिः । ऐ० ५ । २८ ॥ श० १ । ३ । ३ । ६ ॥ १ । ८ ।
 २ । ११ ॥ १ । ९ । २ । २६ ॥ तै० २ । १ । ५ । १ ॥

„ (ऋ० ६ । १६ । १०) अयं लोको बहिः । श० १ । ४ । १ । २४ ॥

„ अयं वै लोको बहिः । श० १ । ८ । २ । ११ ॥ १ । ६ । २ । २६ ॥

„ बहिर्यजति शरदमेव, शरदि हि बहिष्ठा ओषधयो भवन्ति । कौ०
 ३ । ४ ॥

„ शरद्वै बहिरिति हि शरद् बहिर्या इमा ओषधयो ग्रीष्महेमन्ताभ्यां
 नित्यक्ता भवन्ति ता वर्षा वर्द्धन्ते ताः शरदि बहिषो रूपं
 प्रस्तीर्णाः शरे तस्माच्छरद् बहिः । श० १ । ५ । ३ । १२ ॥

„ क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बहिः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥

„ भूमा वै बहिः । श० १ । ५ । ४ । ४ ॥

बहिषदः (पितरः) मासा वै पितरो बहिषदः । तै० १ । ६ । ८ । ३ ॥

बलभिद् (ऋतुः) यद् बलभिदा (यजते) बलमेवास्मै भिनत्ति । तां०
 १९ । ७ । ३ ॥

बलम् बलं वै सहः । श० ६ । ६ । २ । १४ ॥ .

„ बलं वै शवः (यजु० १२ । १०६ ॥ १८ । ५१) । श० ७ । ३ ।
 १ । २६ ॥ ९ । ४ । ४ । ३ ॥

बलम् बलं वृद्धये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ८ ॥

„ इन्द्रो बलं बलपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १२ ॥ तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥

बलिवर्दः परिवत्सरो बलिवर्दः । तै० ३ । ८ । २० । ५ ॥

बहिष्पवमानः (स्तोत्रम्) मुखं वा एतद्यज्ञस्य यद् बहिष्पवमानः । ऐ० २ । २२ ॥

„ बहिष्पवमानेन वै यज्ञः (=प्रमिश्रोम इति सायणः) सृज्यते । तां० ६ । ६ । २२ ॥

बहिष्पवमान्यः (स्तोत्रीयाः) स्त्रियो बहिष्पवमान्यः । तां० ६ । ८ । ५ ॥

बहु अन्तो वै बहु । ऐ० ५ । २ । १५ ॥

बादरायणः विष्वक्सेनो व्यासाय पाराशर्याय व्यासः पाराशर्यो जैमि-
नये जैमिनिः पौष्पिण्ड्याय पौष्पिण्ड्यः पाराशर्यायणाव
पाराशर्यायणो बादरायणाय बादरायणस्ताण्डिशाठ्याय-
निभ्यां ताण्डिशाठ्यायनिनौ बहुभ्यः । सा० वि० ३ । ६ । ३ ॥

बार्हदुकथम् (साम) बृहदुकथो वा एतेन वाङ्मेयो ऽन्नस्य पुरोधामाग-
च्छदन्नं वै ब्रह्मणः पुरोधामागस्यावरुधै । तां० १४ । ६ । ३८ ॥

बार्हद्विरम् (साम) ब्रह्मवर्चसम्महामित्यब्रवीत् (इन्द्रं) बृहद्विरित्तस्मा
एतेन बार्हद्विरेण ब्रह्मवर्चसं प्रायच्छद् ब्रह्मवर्चस-
काम एतेन स्तुवीत् ब्रह्मवर्चसी भवति । तां० १३ । ४ । १७ ॥

„ बार्हद्विरं ब्राह्मणाय (कुर्व्यात्) । तां० १३ । ४ । १८ ॥

बाहुः बाहुर्धाऽ अरन्तिः । श० ६ । ३ । १ । ३३ ॥ ६ । ७ । १ । १४ ॥
१४ । १ । २ । ६ ॥

„ पञ्चदशौ हि बाहु । श० ८ । ४ । ४ । ६ ॥

„ धीर्यं वाऽ एतद्राजन्यस्य यद् बाहु । श० ५ । ४ । १ । १७ ॥

„ तस्माद् बाहुर्वीर्य्यो (राजन्यः) बाहुभ्यां हि सृष्टः । तां० ६ । १ । ८ ॥

„ तस्माद्राजा बाहुबली भावुकः । श० १३ । २ । २ । ५ ॥

„ बाहु वै मित्रावरुणौ । श० ५ । ४ । १ । १५ ॥

„ बाहु वै स्रुचौ । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥

बाहू (=“आर्द्रानचत्रम्” इति सायणः) रुद्रस्य बाहू । तै० १ । ५ । १ । १॥
 बिल्वः अथ (प्रजापतेः) यत्कुन्तापमासीत् । यो मज्जा स सार्धं७७ सम-
 वद्रुत्य श्रोत्रत उदभिनत्स एष वनस्पतिरभवद्विल्वस्तस्मात्त-
 स्यान्तरतः सर्वमेव फलमाद्यं भवति तस्माद्बु हारिद्र इव भाति ।
 श० १३ । ४ । ४ । ८ ॥

„ बेलवं (यूषं कुर्वीत) अन्नाद्यकामः । कौ० १० । १ ॥

„ बिल्वं ज्योतिरिति वा आचक्षते । ऐ० २ । १ ॥

„ बेलवं (यूषं) ब्रह्मवर्चसकामस्य (करोति) । ष० ४ । ४ ॥

„ षड् बेलवाः (यूषाः) भवन्ति । ब्रह्मवर्चसस्यावरुद्धे । तै० ३ ।
 ८ । २० । १ ॥

बिसानि यानि बिसानि तान्यस्यै पृथिव्यै रूपम् । श० ५ । ४ । ५ । १४ ॥

बुद्धिः बृहस्पतिरिव बुद्ध्या (मूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥

बुधः महीन्दीक्षा^{२३} सौमायनो (=सोमपुत्रः) बुधो यदुदयच्छदनन्द-
 त्सर्वमाप्नोन्मन्मा^{२३}से मेदोधा इति । तां० २४ । १८ । ६ ॥

बुध्या उपमा विष्टाः (यजु० १३ । ३) दिशो वाऽअस्य (सूर्यस्य) बुध्या
 उपमा विष्टाः । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

बृहच्छन्दः (यजु० १५ । ५), असौ वै (द्यु-)लोको बृहच्छन्दः । श०
 ८ । ५ । २ । ५ ॥

बृहच्छोवाः उदानो वै बृहच्छोवाः । श० १ । ४ । ३ । ३ ॥

बृहज्ज्योतिः असौ वाऽआदित्यो बृहज्ज्योतिः । श० ६ । ३ । १ । १५ ॥

बृहत् (साम) बृहन्मर्या इदं७७ स ज्योगन्तरभूदिति तद् बृहतो बृहत्स्वम् ।
 तां० ७ । ६ । ५ ॥

„ त्वामिद्वि हवामहे [ऋ० ६ । ४६ । १] इत्यस्यामृच्युत्प-
 शं साम बृहत्-इति ‘ऐ० ४ । १३’ भाष्ये सायणः) ॥

„ साम वै बृहत् । तां० ७ । ६ । १७ ॥

„ भारद्वाजं वै बृहत् । ऐ० ८ । ३ ॥

„ बृहता वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्सस्य तेजः परापतत्त-
 त्सौभरमभवत् । तां० ८ । ८ । ६ ॥

„ बृहतो ह्येतत्तेजो यत्सौभरम् । तां० ८ । ८ । १० ॥

„ सौभरं भवति बृहतस्तेजः । तां० १२ । १२ । ७ ॥

- बृहत् (साम) द्व्यक्षरं बृहत् । तं० २ । १ । ५ । ७ ॥
- ” बृहस्त्रि पूर्व^{२३} रथन्तरात् । तां० ११ । १ । ४ ॥
- ” यद्भ्रुस्वं तद्रथन्तरं यद्दीर्घं तद् बृहत् । कौ० ३ । ५ ॥
- ” यद् बृहत्तद्वैवतम् । ऐ० ४ । १३ ॥
- ” बृहदेत्त्परोक्षं यद्वैरूपम् (साम) । तां० १२ । ८ । ४ ॥
- ” यद् बृहत्तद्वैराजम् (साम) । ऐ० ४ । १३ ॥
- ” अन्तो बृहत्साम्नाम् । तां० १६ । १२ । ८ ॥
- ” श्रैष्ठ्यं वै बृहत् । ऐ० ८ । २ ॥
- ” ज्यैष्ठ्यं वै बृहत् । ऐ० ८ । २ ॥
- ” यथा वै पुत्रो ज्येष्ठ एव बृहत्प्रजापतेः । तां० ७ । ६ । ६ ॥
- ” ऊर्ध्वमिव हि बृहत् । तां० ८ । ६ । ११ ॥
- ” द्यौर्वै बृहद् । श० ९ । १ । २ । ३७ ॥
- ” द्यौर्बृहत् । तां० १६ । १० । ८ ॥
- ” बृहद्भ्रुसौ (द्यौः) । श० १ । ७ । २ । १७ ॥
- ” असौ (द्यौः) बृहत् । कौ० ३ । ५ ॥ तै० १ । ४ । ६ । २ ॥
तां० ७ । ६ । १७ ॥
- ” असौ (द्यु-) लोको बृहत् । ऐ० ८ । २ ॥
- ” उपहृतं बृहत्सह दिवा । तै० ३ । ५ । ८ । १ ॥ श० १ ।
८ । १ । १६ ॥
- ” स्वर्गो लोको बृहत् । तां० १६ । ५ । १५ ॥
- ” बृहद्वै सुवर्गो लोकः । तै० १ । २ । २ । ४ ॥ तां० ६ । १ । ३१ ॥
- ” बृहता वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् । तां० १८ । २ । ८ ॥
- ” आदित्यो बृहत् । ऐ० ५ । ३० ॥
- ” प्राणो बृहत् । तां० ७ । ६ । १४, १७ ॥ १८ । ६ । २६ ॥
- ” क्षत्रं बृहत् । ऐ० ८ । १, २ ॥
- ” मनो वै बृहत् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
- ” मनो बृहत् । ऐ० ४ । २८ ॥
- ” स (प्रजापतिः) तुष्णीं मनसा ध्यायत्तस्य यन्मनस्यासी-
त्तद् बृहत्समभवत् । तां० ७ । ६ । १ ॥

- बृहत् (साम) वर्षम वै बृहत् । तां० ११ । ६ । ४ ॥
- „ पेरं वै बृहत् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
- „ बृहद्विराट् । तै० १ । ४ । ४ । ६ ॥
- „ एतद्वै बृहतः स्वमायतनं यत्त्रिण्डुप् । तां० ४ । ४ । १० ॥
- „ त्रैण्डुमं वै बृहत् । तां० ५ । १ । १४ ॥
- „ स बृहदसृजत तत्स्तनयित्त्रोर्घोषोन्वसृज्यत । तां० ७ । ८ । १० ॥
- „ महर्वाहृतम् । ऐ० ५ । ३० ॥
- बृहती (छन्दः) बृहती वृथ्हतेवृद्धिकर्मणः । दे० ३ । ११ ॥
- „ बृहती मर्या यथेमान् लोकान् व्यापामेति तद् बृहत्या बृहत्त्वम् । तां० ७ । ४ । ३ ॥
- „ यस्य नव ता बृहतीम् । कौ० ६ । २ ॥
- „ षट्त्रिंशदक्षरा बृहती । श० ८ । ३ । ३ । ८ ॥ तै० ३ । ६ । १२ । १ ॥ तां० १० । ३ । ६ ॥ गो० पू० ४ । १२ ॥
- „ षट्त्रिंशदक्षरा वै बृहती । ऐ० ४ । २४ ॥ ७ । १ ॥ श० ३ । ५ । १ । ६ ॥
- „ ता वा एता बृहत्यो यत्र षट्त्रिंशदक्षराः । तां० १६ । ११ । १० ॥
- „ एतया हि देवा इमाँल्लोकानाश्रुवत ते वै दशभिरवाक्षरैरिं लोकमाश्रुवत दशभिरन्तरिक्षं दशभिर्दिवं अतुर्भिश्चतस्रो दिशो द्वाभ्यामेवास्मिँल्लोके प्रत्यतिष्ठस्तस्मादेतां बृहतीत्याचक्षते । ऐ० ४ । २४ ॥
- „ पञ्चदशभ्यैकविंशच्च बार्हतौ तौ गौश्चाविश्वान्वसृज्येतां तस्मात्सौ बार्हतं प्राचीनं भास्कुस्तः । तां० १० । २ । ६ ॥
- „ गोऽन्वमेव हि बृहती । कौ० ११ । २ ॥
- „ पशवो बृहती । कौ० १७ । २ ॥ २६ । ३ ॥ ष० ३ । १० ॥
- „ पशवो वै बृहती । तां० १६ । १२ । ६ ॥
- „ बार्हताः पशवः । ऐ० ४ । ३ ॥ ५ । ६ ॥ कौ० २३ । १ ॥ २६ । ३ ॥ तै० १ । ४ । ५ । ५ ॥ श० १३ । ४ । ३ । १५ ॥
- „ बृहती वाव छन्दसां स्वराद् । तां० १० । ३ । ८ ॥

- बृहती (छन्दः) स्वराज्यं छन्दसां बृहती । तां० २४ । ६ । ३ ॥
- „ श्रीर्वै बृहती । कौ० २८ । ७ ॥ २६ । ५ ॥
- „ श्रीर्वै यशश्छन्दसां बृहती । ऐ० १ । ५ ॥
- „ बृहत्यां वा असावादित्यः श्रियां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितस्त-
पति । गो० उ० ५ । ७ ॥
- „ बार्हतो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० १५ । ४ ॥
२५ । ४ ॥ गो० उ० ३ । २० ॥
- „ बृहती स्वर्गो लोकः । श० १० । ५ । ४ । ६ ॥
- „ बृहत्यामधि स्वर्गो लोकः प्रतिष्ठितः । श० १३ । ५ ।
४ । २८ ॥
- „ बार्हतो वा असी (स्वर्गः) लोकः । तै० १ । १ । ८ । २ ॥
- „ बार्हतो वै स्वर्गो लोकः । गो० पू० ४ । १२ ॥
- „ बार्हताः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ७ । १ ॥
- „ बृहत्या वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् । तां० १६ । १२ । ७ ॥
- „ पथमानस्य बृहती (स्वर्गा) । तां० ७ । ४ । १ ॥
- „ अयं मध्यमो (लोकः=अन्तरिक्षं) बृहती । तां० ७ ।
३ । ६ ॥
- „ बृहती हि संवत्सरः । श० ६ । ४ । २ । १० ॥
- „ वाग्वै बृहती । श० १४ । ४ । १ । २२ ॥
- „ यदस्यै वाचो बृहत्यै पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः । त्रै० उ०
२ । २ । ५ ॥
- „ मनो बृहती । श० १० । ३ । १ । १ ॥
- „ प्राणा वै बृहत्यः । ऐ० ३ । १४ ॥
- „ व्यानो बृहती । तां० ७ । ३ । ८ ॥
- „ आत्मा वै बृहती । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥
- „ बार्हत हि माध्यन्दिनं सवनम् । तां० ९ । ७ । ७ ॥
- „ बार्हता वै प्रैषा बार्हता प्रावाणः । श० १२ । ८ । २ । १४ ॥
- „ बृहत्या वा एतदयनं यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २४ ॥
- „ एतद्वै रथन्तरस्य स्वमायतनं यद् बृहती । तां० ४ ।
४ । १० ॥

बृहती (छन्दः) बृहत्यां भूयिष्ठानि सामानि भवन्ति । तां० ७ । ३ । १६ ॥

” सा बृहत्यभवत्तयेमान् लोकान् (देवाः) व्याप्नुवन् ।
तां० ७ । ४ । २ ॥

” एषा वै प्रतिष्ठिता बृहती या पुनःपदा ॥ तां० १७ ।
१ । १३ ॥

” पर्शवो बृहत्यः । श० ८ । ६ । २ । १० ॥

बृहदुचः प्रजापतिर्वै बृहदुक्षः । श० ४ । ४ । १ । १४ ॥

बृहद्गाः सुवर्गो वै लोको बृहद्गाः । तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥

बृहद्रथन्तरे (सामनी) अनड्वाहौ वा एतौ देवयानौ यजमानस्य यद्
बृहद्रथन्तरे । तां० १२ । ४ । १४ ॥

” बृहद्रथन्तरे छन्दो द्यावापृथिवी देवते पक्षौ । श०
१० । ३ । २ । ४ ॥

” एते वै यज्ञस्य मावी संपारिण्यौ यद् बृहद्रथन्तरे
ताभ्यामेव तत्संबत्सरं तरन्ति । ऐ० ४ । १३ ॥

” पादौ वै बृहद्रथन्तरे शिर एतद् (आरम्भणीयम्)
अहः । ऐ० ४ । १३ ॥

” पक्षौ वै बृहद्रथन्तरे शिर एतद् (आरम्भणीयम्)
अहः । ऐ० ४ । १३ ॥

” बृहद्रथन्तरे (महाव्रतस्य) पत्नी । तां० १६ ।
११ । ११ ॥

” उभे बृहद्रथन्तरे भवतस्तद्धि स्वाराज्यम् । तां०
१९ । १३ । ५ ॥

” पदावो वै बृहद्रथन्तरे । तां० ७ । ७ । १ ॥

” प्राणापानौ वै बृहद्रथन्तरे । तां० ७ । ६ । १२ ॥

” ज्योगामयाधिने उभे (बृहद्रथन्तरे) कुर्यादप-
क्रान्तौ वा एतस्य प्राणापानौ यस्य ज्योगामयति
प्राणापानावेवास्मिन्दधाति । तां० ७ । ६ । १२ ॥

बृहदयः अश्वो वै बृहदयः । तै० ३ । ६ । ५ । ३ ॥ श० १३ । २ ।
६ । १५ ॥

बृहन् एष तै शुक्रो य एष (सूर्यः) तपत्येष उऽएव बृहन् । श० ४ ।
६ । ६ । ६ ॥

बृहन्विपश्चित् (यजु० ११।४) प्रजापतिर्वै बृहन्विपश्चित् । श० ६।
३।१।१६ ॥

बृहस्पतिः वाग्धै बृहती तस्या एष पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः । श० १४।
४।१।२२ ॥

” यदस्यै वाचो बृहस्यै पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः । जै० उ० २।
२।५ ॥

” बृहस्पतिः (एवैनं) वाचां (सुव्रते) । तै० १।७।४।१ ॥

” अथ बृहस्पतये वाचे । नैघारं चरं निर्धपति । श० ५।३।
३।५ ॥

” ये (प्रजापते रेतमपिण्डा दग्धाः सन्तः) ऽङ्गारा आसंस्ते
ऽङ्गिरसो ऽभवन्त्यदङ्गाराः पुनरवशान्ता उददीप्यन्त तद्
बृहस्पतिरभवत् । ऐ० ३।३४ ॥

” स (बृहस्पतिः) एतं बृहस्पतये तिष्याय नैघारं चरं पयसि
निरवपत् । ततो वै स ब्रह्मवर्षस्यभवत् । तै० ३।१।४।६ ॥

” बृहस्पतेस्तिष्यः (नक्षत्रविशेषः) । तै० १।५।१।२ ॥
३।१।१।५ ॥

” (यजु० ३८।८) अयं वै बृहस्पतिर्यो ऽयं (वायुः) पवते ।
श० १४।२।२।१० ॥

” एष (प्राणः) उ एष बृहस्पतिः । श० १४।४।१।२२ ॥

” अथ यस्सो ऽपान आसीत्स बृहस्पतिरभवत् । जै० उ० २।
२।५ ॥

” यच्चभ्रुः स बृहस्पतिः । गो० उ० ४।११ ॥

” युञ्जति हि बृहस्पतिः । श० ३।१।४।१६ ॥

” बृहस्पतिरिव बुद्ध्या (भूयासम्) । मं० २।४।१४ ॥

” बृहस्पतिर्वै सर्वे ब्रह्मा । गो० उ० १।३।४ ॥

” ब्रह्म वै बृहस्पतिः । ऐ० १।१३ ॥ १।१९ ॥ २।३८ ॥ ४।
११ ॥ कौ० ७।१० ॥ १२।८ ॥ १८।२ ॥ श० ३।१।४।
१५ ॥ ३।९।१।११ ॥ जै० उ० १।३७।६ ॥

” ब्रह्म बृहस्पतिः । गो० उ० ६।७ ॥

” ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिः । तै० १।३।८।४ ॥ १।८।
६।४ ॥

- बृहस्पतिः बृहस्पतिर्ब्रह्म ब्रह्मपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
- „ बृहस्पते ब्रह्मणस्पते । तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥
- „ बृहस्पतिर्वै देवानां ब्रह्मा । श० १ । ७ । ४ । २१ ॥ ४ । ६ । ६ । ७ ॥
- „ बृहस्पतिर्ह वै देवानां ब्रह्मा । कौ० ६ । १३ ॥
- „ बृहस्पतिर्वा आङ्गिरसो देवानां ब्रह्मा । गो० उ० १ । १ ॥
- „ ते ऽङ्गिरस आदित्येभ्यः प्रजिच्युः भवः सुत्या नो याजयत न इति तेषां हाग्निर्दूत आस त आदित्या ऊचुरथास्माकमद्य सुत्या तेषां नस्त्वमेव (अग्ने !) होतासि, बृहस्पतिर्ब्रह्मा ऽप्यास्य उद्राता, घोर आङ्गिरसो ऽध्वर्युरिति । कौ० ३० । ६ ॥
- „ बृहस्पतिर्वै देवानामुद्राता । तां० ६ । ५ । ५ ॥
- „ तं (शर्यातं [? शर्याति] मानवं) देवा बृहस्पतिनोद्रात्रा दीक्षामहा इति पुरस्तादागच्छन् । जै० उ० २ । ७ । २ ॥
- „ बृहस्पतिः पुर पता । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥
- „ बृहस्पतिव देवानां पुरोहितः । ऐ० ८ । २६ ॥
- „ धेना बृहस्पतेः पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥
- „ बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः (उदक्रामत्) । ऐ० १ । २४ ॥
- „ यजमानदेवत्यो वै बृहस्पतिः । तै० १ । ८ । ३ । १ ॥
- „ बार्हस्पत्यो वा एष देवतया यो वाजपेयेन यजते । तै० १ । ३ । ६ । ८—९ ॥
- „ बार्हस्पत्योष्टकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥
- „ एषा वा ऊर्ध्वा बृहस्पतेर्दिक् । श० ५ । ५ । १ । १२ ॥
- „ बृहस्पतिः (श्रियः) ब्रह्मवर्चसम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
- „ सः (बृहस्पतिः प्रजापति) अब्रवीत्कौञ्चं साम्नो वृणे ब्रह्मवर्चसमिति । जै० उ० १ । ५१ । १२ ॥
- „ बृहस्पतेर्मध्यन्दिनः । तै० १ । ५ । ३ । २ ॥
- „ मित्राबृहस्पती वै यज्ञपथः । श० ५ । ३ । २ । ४ ॥
- „ शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान् यज्ञाञ्छ्रमयांचकार । कौ० ३ । ८ ॥

बृहस्पतिः शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यो ऽञ्जसा यन्नस्य स०स्थां विदांचकार स
देवलोकमपीयाय । तत्तदन्तर्हितमिव मनुष्येभ्य आस ।
श० १ । ६ । १ । २४ ॥

बृहस्पतिसवः स एष बृहस्पतिसवो, बृहस्पतिरकामयत देवानां पुरोधं
(= पौरोहित्यं) गच्छेयमिति स एतेनायजत स देवानां
पुरोधामगच्छत् । तां० १७ । ११ । ४ ॥

बेकुरा तस्यै (वाचे) जुहुयाद् बेकुरा नामासि । तां० ६ । ७ । ६ ॥

ब्रध्नः असौ वा आदित्यो ब्रध्नः । तै० ३ । ६ । ४ । १ ॥

ब्रध्नस्य विष्टपम् (ऋ० ८ । ६६ । ७) (= द्यौः), अदो वै ब्रध्नस्य विष्टपं
यत्रासौ (सूर्यः) तपति । कौ० १७ । ३ ॥

„ स्वर्गो वै लोको ब्रध्नस्य विष्टपम् । ऐ० ४ । ४ ॥

ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव ब्रध्नस्य विष्टपं
चतुस्त्रिंशस्तस्य चतुर्विंशतिरर्धमासाः
सप्तऽर्तवो द्वे अहोरात्रे संवत्सर एव ब्रध्नस्य
विष्टपं चतुस्त्रिंशस्तद्यत्तमाह ब्रध्नस्य विष्टप-
मिति स्वाराज्यं वै ब्रध्नस्य विष्टपं स्वाराज्यं
चतुस्त्रिंशः । श० ८ । ४ । १ । २३ ॥

ब्रध्नो ऽरुषः (यजु० २३ । ५) असौ वाऽआदित्यो ब्रध्नो ऽरुषः । श० ६३ ।
२ । ६ । १ ॥

ब्रह्म (वागिति) एतदेषां (नासां) ब्रह्मेतद्धि सर्वाणि नामानि विभर्ति ।
श० १४ । ४ । ४ । १ ॥

„ वाग्ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥

„ वाग्वै ब्रह्म । ऐ० ६ । ३ ॥ श० २ । १ । ४ । १० ॥ ६४ । ४ । २ ।
२३ ॥ ६४ । ६ । १० । ५ ॥

„ वाग्निव ब्रह्म । ऐ० २ । १५ ॥ ४ । २१ ॥

„ वागिति तद्ब्रह्म । जै० उ० २ । ६ । ६ ॥

„ सा या सा वाग्ब्रह्मैव तत् । जै० उ० २ । १३ । २ ॥

„ ब्रह्म वै वाचः परमं व्योम । तै० ३ । ६ । ५ । ५ ॥

„ तस्यै वाचः सत्यमेव ब्रह्म । श० २ । १ । ४ । १० ॥

„ सत्यं ब्रह्म । श० १४ । ८ । ५ । १ ॥

- ब्रह्म वाऽऽश्रुतम् । श० ४ । १ । ४ । १० ॥
- ॥ मनो ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥ ष० १ । ५ ॥
- ॥ मनो वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । १५ ॥
- ॥ हृदयं वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । १८ ॥
- ॥ चक्षुर्ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥
- ॥ चक्षुर्वै ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । ८ ॥
- ॥ श्रोत्रं वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । १२ ॥
- ॥ श्रोत्रं वै ब्रह्म श्रोत्रेण हि ब्रह्म शृणोति श्रोत्रे ब्रह्म प्रतिष्ठितम् ।
ऐ० २ । ४० ॥
- ॥ ब्रह्म वै गायत्री । ऐ० ४ । ११ ॥ कौ० ३ । ५ ॥
- ॥ ब्रह्म हि गायत्री । तां० ११ । ११ । ६ ॥
- ॥ ब्रह्म गायत्री । श० ४ । ४ । १ । १८ ॥
- ॥ ब्रह्म वै प्रणवः । कौ० ११ । ४ ॥
- ॥ ब्रह्म ह वै प्रणवः । गो० उ० ३ । ११ ॥
- ॥ भूरिति वै प्रजापतिः ब्रह्माजनयत । श० २ । १ । ४ । १२ ॥
- ॥ स (प्रजापतिः) भ्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव
विद्याम् । श० ६ । १ । १ । ८ ॥
- ॥ ततः (प्रजापतिः) ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रय्येव विद्या तस्मादा-
हुर्ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रथमजमिति । श० ६ । १ । १ । १० ॥
- ॥ ब्रह्म वाऽऽश्रुक् । कौ० ७ । १० ॥
- ॥ ब्रह्म वै मन्त्रः । श० ७ । १ । १ । ५ ॥
- ॥ ब्रह्म (=मन्त्र इति सायणः) हि देवान् प्रच्यावयति । श० ३ । ३ ।
४ । १७ ॥
- ॥ वेदो ब्रह्म । जै० उ० ४ । २५ । ३ ॥
- ॥ (=वेदाः) सताक्षरं वै ब्रह्मऽर्गित्येकाक्षरं यजुरिति द्वे सामेति
द्वेऽअथ यदतोऽन्यद् ब्रह्मैव तद्, द्वयक्षरं वै ब्रह्म तदेतत्सर्वं
सताक्षरं ब्रह्म । श० १० । २ । ४ । ६ ॥
- ॥ एतद्वे यजुः (उर्वन्तरिक्षमन्वेमीति) ब्रह्म रक्षोहा । श० ४ । १ ।
१ । २० ॥
- ॥ ब्रह्म वै प्रजापतिः । श० १३ । ६ । २ । ८ ॥

- ब्रह्म ब्रह्म वै बृहस्पतिः । कौ० ७। १० ॥ १२। ८ ॥ १८। २ ॥ ऐ० १।
१३ ॥ १। १६ ॥ २। ३८ ॥ ४। ११ ॥ श० ३। १। ४। १५ ॥
३। ६। १। ११ ॥ जै० उ० १। ३७। ६ ॥
- „ ब्रह्म बृहस्पतिः । गो० उ० ६। ७ ॥
- „ ब्रह्म वै देशानां बृहस्पतिः । तै० १। ३। ८। ४ ॥ १। ८। ६। ४ ॥
- „ बृहस्पतिर्वै सर्वं ब्रह्म । गो० उ० १। ३, ४ ॥
- „ बृहस्पतिर्ब्रह्म ब्रह्मपतिः । तै० २। ५। ७। ४ ॥
- „ ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः । कौ० ८। ५ ॥ ६। ५ ॥ तां० १६। ५। ८ ॥
- „ ब्रह्म ब्रह्मा ऽभवत्स्वयम् । तै० ३। १२। ६। ३ ॥
- „ ब्रह्म ह वै ब्राह्मणं पुष्करे ससृजे । गो० पू० १। १६ ॥
- „ चन्द्रमा वै ब्रह्म । ऐ० २। ४१ ॥
- „ आदित्यो वै ब्रह्म । जै० उ० ३। ४। ६ ॥
- „ (यजु० १३। ३) असौ वाऽ आदित्यो ब्रह्म । श० ७। ४। १।
१४ ॥ १४। १। ३। ३ ॥
- „ ब्रह्माग्निः । श० १। ३। ३। १६ ॥
- „ ब्रह्म वा अग्निः । कौ० ६। १, ५ ॥ १२। ८ ॥ श० २। ५। ४।
८ ॥ ५। ३। ५। ३२ ॥ तै० ३। ६। १६। ३ ॥
- „ ब्रह्म ह्यग्निः । श० १। ५। १। ११ ॥
- „ अग्निरु वै ब्रह्म । श० ८। ५। १। १२ ॥
- „ अग्निरेव ब्रह्म । श० १०। ४। १। ५ ॥
- „ (यजु० १७। १४) अयमग्निर्ब्रह्म । श० ६। २। १। १५ ॥
- „ अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः । जै० उ० २। ६३। १ ॥
- „ ब्रह्म ह्यग्निस्तस्मादाह ब्राह्मणेति । श० १। ४। २। २ ॥
- „ मुखं होतदग्नेर्यद् ब्रह्म । श० ६। १। १। १० ॥
- „ अथ यत्रैतद्गङ्गाराश्वाकाश्यन्तऽ इव । तर्हि ह्येष (अग्निः) भवति
ब्रह्म । श० २। ३। २। १३ ॥
- „ अयं वाऽ अग्निर्ब्रह्म च क्षत्रं च । श० ६। ६। ३। १५ ॥
- „ अग्निर्ब्रह्माग्निर्ब्रह्मः । श० ३। २। २। ७ ॥
- „ ब्रह्म वै यज्ञः । ऐ० ७। २२ ॥
- „ ब्रह्म हि यज्ञः । श० ५। ३। २। ४ ॥

- ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्मः । श० ३ । १ । ४ । १५ ॥
- ॥ तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्त्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयाद्
ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते । श० ३ । २ । १ । ४० ॥
- ॥ ब्रह्म वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥
- ॥ अयं वै ब्रह्म यो ऽयं (वायुः) पवते । ऐ० ८ । २८ ॥
- ॥ प्राणो वै सघ्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । ३ ॥
- ॥ तद्यद्वै ब्रह्म स प्राणः । जै० उ० १ । ३३ । २ ॥
- ॥ प्राणा वै ब्रह्म । तै० ३ । २ । ८ । ८ ॥
- ॥ प्राणो वै ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । २ ॥ जै० उ० ३ । ३८ । २ ॥
- ॥ प्राणा उ वै ब्रह्म । श० ८ । ४ । १ । ३ ॥
- ॥ प्राणापानौ ब्रह्म । गो० पू० २ । १० । (११) ॥
- ॥ ब्रह्म हि पूर्वं क्षत्रात् । तां० ११ । १ । २ ॥
- ॥ सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म । श० १४ । ४ । २ । २३ ॥
- ॥ ब्रह्मणः क्षत्रं निर्मितम् । तै० २ । ८ । ८ । ६ ॥
- ॥ तद्यत्र वै ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदाहास्मिन्
वीरो जायते । ऐ० ८ । ६ ॥
- ॥ अभिगन्तैव ब्रह्म कर्ता क्षत्रियः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥
- ॥ ब्रह्म वै ब्राह्मणः । तै० ३ । ६ । १४ । २ ॥ श० १३ । १ । ५ । ३ ॥
- ॥ ब्रह्म हि ब्राह्मणः । श० ५ । १ । ५ । २ ॥
- ॥ ब्रह्मणो वा पतद्रूपं यद्ब्राह्मणः । श० १३ । १ । ५ । २ ॥
- ॥ ब्रह्म हि वसन्तः (ऋतुः) । श० २ । १ । ३ । ५ ॥
- ॥ ब्रह्म वै रथन्तरम् । ऐ० ८ । १, २ ॥ तां० ११ । ४ । ६ ॥
- ॥ विद्युद्धवेव ब्रह्म । श० १४ । ८ । ७ । १ ॥
- ॥ ब्रह्मैव मित्रः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥
- ॥ ब्रह्म हि मित्रः । श० ४ । १ । ४ । १० ॥ ५ । ३ । २ । ४ ॥
- ॥ ब्रह्म वै पर्णः । तै० १ । ७ । १ । ६ ॥ ३ । २ । १ । १ ॥
- ॥ देवानां ब्रह्मवादं वदतां यत् । उपाश्रयोः (हे पर्ण ! त्वम्)
सुभ्रवा वै श्रुतोसि । तन्मे मामाविशतु ब्रह्मवर्चसम् । तै० १ ।
२ । १ । ६ ॥

- ब्रह्म ब्रह्म वै पलाशः । श० १ । ३ । ३ । १६ ॥ ५ । २ । ४ । १८ ॥ ६ ।
 ६ । ३ । ७ ॥
- „ ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावास्या । कौ० ४ । ८ ॥
- „ यदमृतं तद्ब्रह्म । गो० पू० ३ । ४ ॥
- „ अथ यद्ब्रह्म तदमृतम् । जै० उ० १ । २५ । १० ॥
- „ अभयं वै ब्रह्माभयं ॐ हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद । श० १४ ।
 ७ । २ । ३१ ॥
- „ ब्रह्म वै भूतानां ज्येष्ठं तेन को ऽर्हति स्पर्द्धितुम् । तै० २ । ८ ।
 ८ । १० ॥
- „ तस्मादाहुर्ब्रह्मैव देवानां ॐ श्रेष्ठमिति । श० ८ । ४ । १ । ३ ॥
- „ तदेतद् ब्रह्म यशश्श्रिया परिवृढम् । ब्रह्म ह तु सन् यशसा श्रिया
 परिवृढो भवति य एवं वेद । जै० उ० ४ । २४ । ११ ॥
- „ षोडशकलं वै ब्रह्म । जै० उ० ३ । ३८ । ८ ॥
- „ सञ्चाऽसञ्चाऽसञ्च सञ्च वाक् च मनश्च [मनश्च] वाक् च चक्षश्च
 श्रोत्रं च श्रोत्रं च चक्षश्च श्रद्धा च तपश्च तपश्च श्रद्धा च तानि
 षोडश । षोडशकलम्ब्रह्म । स य एवमेतत्षोडशकलम्ब्रह्म वेद
 तमेवैतत्षोडशकलम्ब्रह्माप्येति । जै० उ० ४ । २५ । १-२ ॥
- „ कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते । श० १४ । ६ । ६ । १० ॥
- „ ब्रह्म देवानजनयत् । तै० २ । ८ । ८ । ९ ॥
- „ ब्रह्मणो वै रूपमहः क्षत्रस्य रात्रिः । तै० ३ । ६ । १४ । ३ ॥
- „ ब्रह्मणो वाऽ एतद्रूपं यदहः । श० १३ । १ । ५ । ४ ।
- „ द्वे वै ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तञ्च । श० १४ । ५ । ३ । १ ॥
- „ तदेतन्मूर्त्तम् (ब्रह्मणो रूपम्) यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्च । श०
 १४ । ५ । ३ । २ ॥
- „ इदमेव मूर्त्तं (ब्रह्मणो रूपम्) यदन्यत्प्राणाच्च यश्चायमन्तरात्मना-
 काशः । श० १४ । ५ । ३ । ६ ॥
- „ अथामूर्त्तम् (ब्रह्मणो रूपम्) । वायुश्चान्तरिक्षं च । श० १४ ।
 ५ । ३ । ४ ॥
- „ अथामूर्त्तम् (ब्रह्मणो रूपम्) । प्राणाच्च यश्चायमन्तराकाशः ।
 श० १४ । ५ । ३ । ८ ॥

यद्वा ब्रह्मेव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

॥ तस्मादाहुर्ब्रह्मणा चावापृथिवी विष्टब्धेऽइति । श० ८ । ४ । १३ ॥

॥ तद् (ब्रह्म) इदमन्तरिक्षम् । जै० उ० २ । ६ । ६ ॥

॥ ब्रह्म वै त्रिवृत् । तां० २ । १६ । ४ ॥ १९ । १७ । ३ ॥ २३ । ७ । ५ ॥ जै० उ० ३ । ४ । ११ ॥

॥ ब्रह्म तपसि (प्रतिष्ठितम्) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥

॥ (हे राजन्) त्वं ब्रह्मासीतीतरः (ऋत्विक्) प्रत्याह वरुणो ऽसि सत्यौजा इति । श० ५ । ४ । ४ । १० ॥

॥ स होवाच गार्ग्यः । यश्चायमात्मनि (शरीरे) पुरुषः एतमेवाहं ब्रह्मोपासऽ इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्त्संवदिष्टा आत्मन्वीतिवाऽ अहमेतमुपासऽ इति । श० १४ । ५ । १ । १३ ॥ ('ब्राह्मणः' शब्दमपि पश्यत)

ब्रह्मचर्यम् तस्मा एतत्प्रोवाचाष्टाचत्वारिंशद्वर्षं सर्ववेदब्रह्मचर्यं, तच्च-
तुर्द्धां वेदेषु व्यूह्य द्वादश वर्षं ब्रह्मचर्यं द्वादश वर्षाण्यवरार्द्धमपि
स्तायंभरेद्यथाशक्त्यपरम् । गो० पू० २ । ५ ॥

ब्रह्मचारी अथ हैतद्देवानां परिपूतं यद्ब्रह्मचारी । गो० पू० २ । ७ ॥

॥ स (ब्रह्मचारी) यन्मृगाजिनानि वस्ते.....स यद्हरहरा-
चाट्याय कर्म करोति.....स यत्सुषुप्सुनिद्रां निनयति.....
स यत्क्रुद्धो वाचा न कंचन हिनस्ति पुरुषात्पुरुषात्पापीयानिव
मन्यमानः.....अथाङ्गिः श्लाघमानो न स्नायात्.....तां
(कुमारीं) नग्नां नोदीक्षेतेति वेति वा मुखं विपरिधापयेत्
.....तासां (ओषधीनां) पुण्यं गन्धं प्रच्छिद्य नोपजिघ्रेत् ।
गो० पू० २ । २ ॥

॥ ब्रह्मचारी भिक्षं चरति । सं० ५ ॥

॥ स (ब्रह्मचारी) एव विद्वान्यस्या एव भूयिष्ठः श्लाघेत तां
भिक्षेतेत्याहुस्तल्लोक्यमिति स (ब्रह्मचारी) यद्यन्यां
भिक्षितव्यां न विन्देदपि स्वाभेवाचार्यजायां भिक्षेताथो स्वां
मातरं नैनः (ब्रह्मचारिणं) सप्तमी (रात्रिः) अभिक्षि-
तातीयात्समेवं विद्वाःसमेवं चरन्तः सर्वे वेदा आविशन्ति
यथा ह वाऽ अग्निः समिद्धो रोचतेऽ एवः ह वै स स्नात्वा
रोचते यऽ एवं विद्वाग्ब्रह्मचर्यं चरति । श० ११ । ३ । ३ । ७ ॥

- ब्रह्मचारी सप्तमीं नातिनयेत्सप्तमीमतिनयन्न ब्रह्मचारी भवति, समि-
 ङ्गक्षे सप्तरात्रमचरितवान् ब्रह्मचारी पुनरुपनेयो भवति ।
 गो० पू० २ । ६ ॥
- .. (ब्रह्मचारा) अहीर्भूत्वाभिक्षते य एवास्य मृत्यौ पादस्तमेव
 तेन परिक्रीणाति तथै संस्कृत्यात्मन्धत्ते । श० ११ । ३ ।
 ३ । ५ ॥
- .. ब्रह्म वै मृत्यवे प्रजाः प्रायच्छत् । तस्मै ब्रह्मचारिणमेव न
 प्रायच्छत्सो (मृत्युः) ऽब्रवीदस्तु मह्यमप्येतस्मिन्भाग
 इति यामेव रात्रिं समिधं नाहराताऽ इति तस्मादां रात्रिं
 ब्रह्मचारी समिधं नाहरत्यायुष एव तामवदाय वसति
 तस्माद्ब्रह्मचारी समिधमाहरेन्नेदायुषो ऽवदाय वसानीति ।
 श० ११ । ३ । ३ । १ ॥
- .. ब्रह्म ह वै प्रजा मृत्यवे सम्प्रायच्छत्, ब्रह्मचारिणमेव न
 सम्प्रददौ, स होवाचास्यामस्मिन्निति किमिति यां रात्रिं
 समिधमनाहृत्य वसेत्तामायुषो ऽवरुन्धीयेति, तस्माद्ब्रह्म-
 चार्य्यहरहः समिध आहृत्य सायं प्रातरग्निं परिचरेत् । गो०
 पू० २ । ६ ॥
- .. (ब्रह्मचारी) न इमशानमातिष्ठेत्. स चेदभितिष्ठेदुदकं हस्तं
 कृत्वा । गो० पू० २ । ७ ॥
- .. (ब्रह्मचारी) अध एवासीत्, अधः शयीत्, अधस्तिष्ठुदधां
 ब्रजेदेवं ह स्म वै तत्पूर्वं ब्राह्मणा ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति । गो०
 पू० २ । ४ ॥
- .. (ब्रह्मचारी) नोपरिशायी स्यान्न गायत्रो न नर्त्तनो न
 सरणो न निष्ठीवेत् । गो० पू० २ । ७ ॥
- .. तदाहुः । न ब्रह्मचारी सन्मध्वश्रीयादोषधीनां वाऽ एष
 परमो रसो यन्मधु नेदन्नाद्यस्यान्तं गच्छानीत्यथ ह स्माह
 श्वेतकेतुरारुणेयो ब्रह्मचारी सन्मध्वश्चर्य्यै वाऽ एतद्विद्यायै
 शिष्टं यन्मधु...यथा ह वाऽ ऋचं वा यजुर्वा साम वाभि-
 व्याहरेत्तादृकथ एवं विद्वान्ब्रह्मचारी सन्मध्वश्चाति तस्माद्
 क ममेवाश्रीयात् । श० ११ । ५ । ४ । १८ ॥

- ब्रह्मचारी तस्मादुत ब्रह्मचारी मधु नाऽभीयाद्धेदस्य प्लाव इति । कामं
ह त्वाचार्यदत्तमभीयात् । जै० उ० १ । ५४ । १ ॥
- ” तस्माद्ब्रह्मचारिण आचार्यं गोपायन्ति । गृहान्पशुश्रेष्ठो
ऽपहरानिति । श० ३ । ६ । २ । १५ ॥
- ” अथ (आचार्यः) अस्मै (ब्रह्मचारिणे) सावित्रीमन्वाह ।
श० ११ । ५ । ४ । ६ ॥
- ” पञ्च ह वा एते ब्रह्मचारिण्यग्गयो धीयन्ते द्वौ पृथग्घस्तयोर्मुंखे
हृदय उपस्थ एव पञ्चमः । गो० पू० २ । ४ ॥
- ब्रह्मणस्पतिः एष (प्राणः) उऽएत्र ब्रह्मणस्पतिः । वाग्वै ब्रह्म तस्या
एष पतिस्तस्मादु ह ब्रह्मणस्पतिः । श० १४ । ४ । १ । २३ ॥
- ” (यजु० ३७ । ७) एष वै ब्रह्मणस्पतिर्य एष (सूर्यः)
तपति । श० १४ । १ । २ । १५ ॥
- ” बृहस्पते ब्रह्मणस्पते । तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥
- ” ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः । कौ० ऋ ५ ॥ ९ । ५ ॥ तां १६ । ५ । ८ ॥
- ” भोत्रं ब्राह्मणस्पत्वः (प्रगाथः) । कौ० १५ । ३ ॥
- ब्रह्मणो वत्सः अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः । जै० उ० २ । १३ । १ ॥
- ब्रह्म पूर्व्यम् (यजु० ११ । ५) प्राणो वै ब्रह्म पूर्व्यम् । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥
- ब्रह्मयज्ञः स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः । श० ११ । ५ । ६ । २ ॥
- ” तस्य वाऽ एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य वागेव जुहुर्मन उपभृच्चभ्रुर्भुवा
मेधा स्रवः सत्यमवभृथः स्वर्गो लोक उदयनम् । श० ११ ।
५ । ६ । ३ ॥
- ” तस्य वाऽ एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य चत्वारो वषट्कारा यद्वातो वाति
यद्विद्योतते यत्स्तनयति यदवस्फूर्जति तस्मादेवंविद्वाते
वाति विद्योतमाने स्तनयत्यवस्फूर्जत्यधीयीतैव वषट्काराणा-
मच्छम्बट्काराय । श० ११ । ५ । ६ । ६ ॥ (आप० धर्मसूत्रे । १ ।
४ । १२ ॥ मनु० २ । १०६ ॥) 'स्वाध्यायः' शब्दमपि पश्यत ॥
- ब्रह्मवर्चसम् हुग्भा इति ब्रह्मवर्चसकामस्य । भातीव हि ब्रह्मवर्चसम् ।
जै० उ० ३ । १३ । १ ॥
- ” ब्रह्मवर्चसं वै रथन्तरम् । तै० २ । ७ । १ । १ ॥
- ब्रह्मवेदः ब्रह्मवेदः (= अथर्ववेदः) एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
('अथर्ववेदः' शब्दमपि पश्यत) ।

- ब्रह्महत्या एष ह वै साक्षान्मृत्युर्यद्ब्रह्महत्या । श० १३ । ३ । ५ । ३ ॥
 ब्रह्मा यमेवामुं त्रय्यै विद्यायै तेजो रसं प्रावृहत्तेन ब्रह्मा ब्रह्मा भवति ।
 कौ० ६ । ११ ॥
 „ अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति त्रय्या विद्ययेति । ऐ० ५ । ३३ ॥
 „ अथ केन ब्रह्मत्वं (क्रियते) इत्यनया (ऋग्यजुःसामाख्यया)
 त्रय्या विद्ययेति ह ब्रूयात् । श० ११ । ५ । ८ । ७ ॥
 „ तस्माद्यो ब्रह्मनिष्ठः स्यात्तं ब्रह्माणं कुर्वीत । गो० उ० १ । ३ ॥
 „ एष ह वै विद्वान्त्सर्वविद् ब्रह्मा यद् भृग्वङ्गिरोविद् (= अथर्व-
 वेदविद्) । गो० पू० २ । १८ ॥ ५ । ११ ॥
 „ यज्ञस्य हेष भिषग्यद् ब्रह्मा यज्ञायैव तद्भेषजं कृत्वा हरति । ऐ०
 ५ । ३४ ॥
 „ ब्रह्मा वाऽ ऋत्विजां भिषक्तमः । श० १ । ७ । ४ । १९ ॥ १४ ।
 २ । २ । १६ ॥
 „ स (ब्रह्मा) यदत् ऊर्ध्वमसंस्थितं यज्ञस्य तदभिगोपायति ।
 श० १ । ७ । ४ । १८ ॥
 „ ब्रह्मा वै यज्ञस्य दक्षिणत आस्ते ऽभिगोप्ता । श० १ । ७ । ४ । १८ ॥
 „ ब्रह्मा हि यज्ञं दक्षिणतो ऽभिगोपायति । श० ५ । ४ । ३ । २६ ॥
 „ ब्रह्मा वै यज्ञस्य दक्षिणत आस्ते ब्रह्मा यज्ञं दक्षिणतो गोपायति ।
 श० । १२ । ६ । १ । ३८ ॥
 „ दक्षिणत आयतनो वै ब्रह्मा । तै० ३ । ९ । ५ । १ ।
 „ तस्मात्स (ब्रह्मा) तूष्णीमास्ते । जै० उ० ३ । १६ । २ ॥
 „ ब्रह्मा वा ऋत्विजामनिरुक्तः । तां० १८ । १ । २३ ॥
 „ बृहस्पतिर्ह वै देवातां ब्रह्मा । कौ० ६ । १३ ॥
 „ बार्हस्पत्यो ब्रह्मा । श० १३ । २ । ६ । ६ ॥
 „ बार्हस्पत्यो वै ब्रह्मा । तै० ३ । ६ । ५ । १ ॥
 „ अर्वाण्वसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा । कौ० ६ । १३ ॥
 „ अर्वाण्वसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा पराण्वसुरसुराणां । गो० उ० १ । ११ ॥
 „ शरद्ब्रह्मा तस्माद्यदा सस्यं पच्यते ब्रह्मण्वत्यः प्रजा इत्याहुः ।
 श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥
 „ चन्द्रमा ब्रह्मा (आसीत्) । गो० पू० १ । १३ ॥

- ब्रह्मा चन्द्रमा वै ब्रह्मा । श० १२ । १ । १ । २ ॥ गो० पू० २ । ३४ ॥
- „ चन्द्रमा वै ब्रह्मा ऽधिदैवं मनो ऽध्यात्मम् । गो०पू० ४ । २ ॥
- „ तस्य (पुरुषस्य) मन एव ब्रह्मा । कौ० १७ । ७ ॥
- „ मन एव ब्रह्मा । गो० पू० २ । १० ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥
- „ मनो ब्रह्मा । गो० पू० २ । १० (११) ॥
- „ मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा । श० १४ । ६ । १ । ७ ॥
- „ हृदयं (वै यज्ञस्य) ब्रह्मा । श० १२ । ८ । २ । २३ ॥
- „ चक्षुर्ब्रह्मा । तै० २ । १ । ५ । ६ ॥
- „ अग्निर्वै ब्रह्मा । ष० १ । १ ॥
- „ बलं वै ब्रह्मा । तै० ३ । ८ । ५ । २ ॥
- „ ब्रह्म ब्रह्मा ऽभवत्स्वयम् । तै० ३ । १२ । ६ । ३ ॥
- „ ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे । गो० पू० १ । १६ ॥
- „ या सा प्रथमा (ओङ्कारस्य) मात्रा ब्रह्मदेवत्या रक्ता वर्णेन यस्तां
ध्यायेत् नित्यं स गच्छेद्ब्राह्म पदम् । गो० पू० १ । २५ ॥
- „ प्रजापतिर्वै ब्रह्मा । गो० उ० ५ । ८ ॥
- „ प्राजापत्यो ब्रह्मा । तै० ३ । ३ । ८ । ३ ॥
- „ प्राजापत्यो वै ब्रह्मा । गो० उ० ३ । १८ ॥
- „ प्राणदेवत्यो वै ब्रह्मा । ष० २ । ६ ॥
- „ ततो ब्रह्मा जनकः (वैदेहः) आस । श० ११ । ६ । २ । १० ॥
- ब्रह्मा कृष्णः (यजु० २३ । १३) चन्द्रमा वै ब्रह्मा कृष्णः । श० १३ ।

२ । ७ । ७ ॥

- ब्राह्मणः ब्राह्मणो वै सर्वा देवतः । तै० १ । ४ । ४ । २, ४ ॥
- „ एते वै देवा अहुतादो यद् ब्राह्मणाः । गो० उ० १ । ६ ॥
- „ एता वै प्रजा हुतादो यद् ब्राह्मणाः । ऐ० ७ । १६ ॥
- „ अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणाः । ष० १ । १ ॥ ('देवाः'
शब्दमपि पश्यत)
- „ दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः । तै० १ । २ । ६ । ७ ॥
- „ आहुतिर्वा एषा यद्ब्राह्मणस्य मुखम् । तां १६ । ६ । १४ ॥
- „ आग्नेयो ब्राह्मणः । तां १५ । ४ । ८ ॥
- „ आग्नेयो वै ब्राह्मणः । तै० २ । ७ । ३ । १ ॥

- ब्राह्मणः एष वा अग्निर्वैश्वानरः । यद्ब्राह्मणः । तै० ३ । ७ । ३ । २ ॥
- ” एष ह वै सान्तपनो ऽग्निर्यद् ब्राह्मणो यस्य गर्भाधानपुंसवन-
सीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदान-
चूडाकरणोपनयनाप्लवनाग्निहोत्रघृतचर्यादीनि कृतानि भव-
न्ति स सान्तपनः । गो० पू० २ । २३ ॥
- ” अग्ने महौ असि ब्राह्मण भारत । कौ० ३ । २ ॥ श० १ । ४ ।
२ । २ ॥ तै० ३ । ५ । ३ । १ ॥
- ” ब्रह्मगो वाऽ एतद्रूपं यद् ब्रह्मणः । श० १३ । १ । ५ । २ ॥
- ” ब्रह्म वै ब्राह्मणः । तै० ३ । ६ । १४ । २ ॥ श० १३ । १ । ५ । ३ ॥
- ” ब्रह्म हि ब्राह्मणः । श० ५ । १ । ५ । २ ॥
- ” एष वो ऽमो राजा सोमो ऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा (यजु०
१० । १८) इति ... तस्माद् ब्राह्मणो नाद्यः सोमराजा हि
भवति । श० ५ । ४ । २ । ३ ॥
- ” सौमराजानो ब्राह्मणाः । तै० १ । ७ । ४ । २ ॥ १ । ७ । ६ । ७ ॥
- ” सौम्यो हि ब्राह्मणः । तै० २ । ७ । ३ । १ ॥
- ” सोमो वै ब्राह्मणः । तां० २३ । १६ । ५ ॥
- ” स यदि सामं, ब्राह्मणानां स भक्षो ब्राह्मणांस्तेन भक्षेण
जिन्विष्यसि ब्राह्मणकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यत आदाय्या-
पाय्यावसायी यथाकामप्रयाप्यो यदा वै क्षत्रयाय पापं भवति
ब्राह्मणकल्पो ऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हाऽस्माद् द्वितीयो
वा तृतीयो वा ब्राह्मणतामभ्युपैतोः स ब्रह्मबन्धवे न जिज्यु-
षितः । ऐ० ७ । २६ ॥
- ” अशिव इव वाऽ एष भक्षो यत्सुरा ब्राह्मणस्य । श० १२ ।
८ । १ । ५ ॥
- ” स (क्षत्रियः) ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणतामभ्युपैते । ऐ०
७ । २३ ॥
- ” तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव
ब्रूयाद् ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते । श० ३ । २ । १ । ४० ॥
- ” य उ वै कश्च यजते ब्राह्मणीभूयेवैव यजते । श० १३ । ४ ।
१ । ३ ॥

- ब्राह्मणः तस्माद् ब्राह्मणो नैव गायेत्र नृत्येन्माग्लागृधः स्यात् । गो०
 पू० २ । २१ ॥
- ” तद्धवेव ब्राह्मणेनैष्ट्यं यद्ब्रह्मवर्षसी स्यादिति । श० १ ।
 ६ । ३ । १६ ॥
- ” यो वै ब्राह्मणानामनूचानतमः स एषां वीर्यवत्तमः । श० ४ ।
 ६ । ६ । ५ ॥
- ” इदं वै यस्मिन्वसति ब्राह्मणो वा राजा वा श्रेयान्मनुष्यो
 न्वेव तमेव नार्हति वक्तुमिदं मे त्वं गोपाय प्राहं वत्स्यामीति ।
 श० २ । ४ । १ । १० ॥
- ” तस्माद्ब्राह्मणं प्रथमं यन्तमितरे त्रयो वर्णाः पश्चादनुयन्ति ।
 श० ६ । ४ । ४ । १३ ॥
- ” तस्मान्न कदा चन ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च वैश्यं च शूद्रं च
 पश्चादन्वितः । श० ६ । ४ । ४ । १३ ॥
- ” यो वै राजा ब्राह्मणादबलीयानमित्रेभ्यो वै स बलीनृषा
 भवति । श० ५ । ४ । ४ । १५ ॥
- ” प्रतिलोमं वै तद्यद्ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयात् । श० १४ । ५ ।
 १ । १५ ॥
- ” तत्तद्वक्त्रमेव । यद् ब्राह्मणो ऽराजन्यः स्याद्यद्यु राजानं
 लभेत स्मृद्धं तत् । श० ४ । १ । ४ । ६ ॥
- ” तस्मादेव ब्राह्मणयज्ञ एव यत्सौत्रामणी । श० १२ । ६ । १ । १॥
- ” इष्टापूर्तं वै ब्राह्मणस्य । तै० ३ । ९ । १४ । ३ ॥ श० १३ ।
 १ । ५ । ६ ॥
- ” यज्ञ उवाच ब्राह्मणस्यैव तृप्तिमनु तृप्येयमिति । श० १ ।
 ७ । ३ । २८ ॥
- ” एतानि वै ब्रह्मण आयुधानि यद्यज्ञायुधानि । ऐ० ७ । १९ ॥
- ” तस्य ब्राह्मणस्यानग्निः स्य नैव दैवं दद्यान्न पित्र्यं न चास्य
 स्वाध्यायाशिषो न यज्ञ आशिषः स्वर्गद्वमा भवन्ति । गो०
 पू० २ । २३ ॥
- ” सर्वस्यैष न वेद यो ब्राह्मणः सन्नश्वमेधस्य न वेद, सो
 ऽब्राह्मणः । श० १३ । ४ । २ । १७ ॥

ब्राह्मणः यद्ब्राह्मणः (= ब्राह्मणनक्षत्रम्) एव रोहिणी । तस्मादेव ।

तै० २ । ७ । ६ । ४ ॥

” ब्राह्मणो वा अष्टाविंशो नक्षत्राणाम् । तै० १ । ५ । ३ । ४ ॥

” गायत्रो वै ब्राह्मणः । ऐ० १ । २८ ॥

” गायत्रच्छन्दा वै ब्राह्मणः । तै० १ । १ । ६ । ६ ॥

” तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्य्यङ्कुरोति मुखतो हि सृष्टः । तां०
६ । १ । ६ ॥

” ब्राह्मणो मनुष्याणां (मुखम्) । तां० ६ । १ । ६ ॥

” अस्य सर्वस्य ब्राह्मणो मुखम् । श० ३ । ६ । १ । १४ ॥

” ब्राह्मणो वा उपद्रष्टा । गो० ३० २ । १६ ॥

” ब्राह्मणो वै प्रजानामुपद्रष्टा । तै० २ । २ । १ । ३, ५ ॥

” ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता । श० १ । १ । ४ । ६ ॥ १ । २ । १८ ॥
१ । ३ । ४ । १३ ॥

” वसन्तो वै ब्राह्मणस्यर्तुः । तै० १ । १ । २ । ६ ॥ श० १३ ।
४ । १ । ३ ॥

” तस्माद् ब्राह्मणो वसन्तऽ आदधीत ब्रह्म हि वसन्तः (ऋतुः)
। श० २ । १ । ३ । ५ ॥

” सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः । तै० ३ । १२ । ९ । २ ॥

” बार्हद्विरं (साम) ब्राह्मणाय (कुर्व्यात्) । तां० १३ । ४ । १८ ॥

” ब्राह्मणेषु ह पशवो ऽभविष्यन् । श० ४ । ४ । १ । १८ ॥ ('ब्रह्म'
शब्दमपि पश्यत)

ब्राह्मणाच्छंसी ऐन्द्राबार्हस्पत्यं ब्राह्मणाच्छंसिन उच्यं भवति । गो० ३०
४ । १४, १६ ॥

” ऐन्द्रो ब्राह्मणाच्छंसी । तै० १ । ७ । ६ । १ ॥ श० ९ । ४ । ३ । ७ ॥

” आत्मा वै ब्राह्मणाच्छंसी । कौ० २८ । ६ ॥

” वैरूपं ब्राह्मणाच्छंसिनः । कौ० २५ । ११ ॥

” वसिष्ठाद्ब्राह्मणाच्छंसी (न प्रच्यवते) । गो० ३० ३ । २३ ॥

” ऋषुभो ब्राह्मणाच्छंसी । तां० ५ । १ । १४ ॥

ब्राह्मणी द्यौर्ब्राह्मणी । जै० ३० ३ । ४ । ६ ॥

[भरतः

(३७८)

(भ)

- भक्षः प्राणो वै भक्षः । श० ४ । २ । १ । २९ ॥
- भगः (यजु० ११ । ७) यज्ञो भगः । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥
- ॥ तस्य (भगस्य) चक्षुः परापतत्तस्मादाहुरन्धो वै भग इति । गो०
उ० १ । २ ॥
- ॥ तस्य (भगस्य) अक्षिणी निर्जघान तस्मादाहुरन्धो भग इति ।
कौ० ६ । १३ ॥
- ॥ तस्मादाहुरन्धो भग इति । श० १ । ७ । ४ । ६ ॥
- ॥ भगस्य वा एतन्नक्षत्रं यदुत्तरे फल्गुनी । तै० १ । १ । २ । ४ ॥
१ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । ८ ॥
- भद्रः (अथर्व० ७ । १९ । १) अयं वै लोको भद्रः । ऐ० १ । १३ ॥
- भद्रम् (यजु० १९ । ११) अन्नं वै भद्रम् । तै० १ । ३ । ३ । ६ ॥
- ॥ भद्रमेभ्यो ऽभूदिति कल्याणमेधैतन्मानुष्यै वाचो वदति । श०
४ । ६ । ९ । १९ ॥
- भद्रम (साम) गोतमस्य भद्रं (साम) भवति । तां० १३ । १२ । ६ ॥
- ॥ आशिषमेवास्मा (यजमानाय) एतेन (भद्रेण साम्ना)
आशास्ते । तां० १३ । १२ । ७ ॥
- ॥ एतेन वै गोतमो जेमानं महिमानमगच्छत् तस्माद्ये च
पराञ्चो गोतमाद्ये चावर्वाञ्चस्त उभये गोतम ऋषयो ब्रुवते ।
तां० १३ । १२ । ८ ॥
- भद्रा (प्रजापतेस्तनूषिशेषः) भद्रा तत्सोमः । ऐ० ५ । २५ ॥ कौ० २७ । ५ ॥
- भरतः (यजु० १२ । ३४) प्रजापतिर्वै भरतः, स हीद३४ सर्वं विभर्ति ।
श० ६ । ८ । १ । १४ ॥
- ॥ स ह्यैष (सूर्यः) भर्ता । श० ४ । ६ । ७ । २१ ॥
- ॥ अग्निर्वै भरतः स वै देवेभ्यो हृद्यं भरति । कौ० ३ । २ ॥
- ॥ एष (अग्निः) हि देवेभ्यो हृद्यं भरति तस्माद्भरतो ऽग्निरित्याहुः ।
श० १ । ४ । २ । २ ॥ १ । ५ । १ । ८ ॥
- ॥ एष (अग्निः) उ वाऽ इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा विभर्ति तस्माद्दे-
वाह भरतवदिति । श० १ । ६ । १ । ८ ॥
- ॥ प्राणो भरतः । ऐ० २ । २४ ॥

- भरतः (दौष्णन्तिः) तस्माद् भरतो दौष्णन्तिः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन्परीबायाश्वैरु च मेध्यैरीजे । ऐ० ८ । २३ ॥
- „ अष्टासप्ततिं भरतो दौष्णन्तिर्यमुनामनु । गङ्गायां वृषभेन ऽबध्ना-
त्पञ्चपञ्चाशतं हयान् । ऐ० ८ । २३ ॥ श० १३ । ५ । ४ । ११ ॥
- „ शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे परः सहस्रानिन्द्राया-
श्वान्मेध्यान्य आहरद्विजित्य पृथिवीं११ सर्वामिति । श० १३ । ५ ।
४ । १३ ॥
- „ शतानीकः समन्तासु मेध्यं११ सात्राजितो हयम् । आदत्त यज्ञं
काशीनां भरतः सत्वतामिव । श० १३ । ५ । ४ । २१ ॥
- भरताः ततो वै वसिष्ठपुरोहिता भरताः प्राजायन्त । तां० १५ । ५ । २४ ॥
- „ तस्माद्धाप्येतर्हि भरताः सत्वनां (? सत्वतां) वित्तिं प्रयन्ति
तुरीये ह्यैव संग्रहीतारो वदन्ते ('भरतः' शब्दमपि पश्यत) ।
ऐ० २ । २५ ॥
- „ तस्माद्धेदं भरतानां पशवः सायंगोष्ठाः सन्तो मध्यन्दिने संग-
विनीमायन्ति । ऐ० ३ । ६८ ॥
- भरद्वाजः (यजु० १३ । ५५) मनो वै भरद्वाज ऋषिरन्नं वाजो यो वै
मनो बिभर्त्ति सो ऽन्नं वाजं भरति तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः ।
श० ८ । १ । १ । ६ ॥
- „ भरद्वाजस्य वाजभृद्वाजकर्मीयं वा (साम) । आर्षेय वा०
१ । ३ । १ । २ । २ ॥
- „ भरद्वाजो वै त्रिभिरायुर्भिर्ब्रह्मचर्य्यमुवास । त१० ह जीर्णं११
स्थविर१० शयानमिन्द्र उपव्रज्योवाच । अनन्ता वै वेदाः ।
तै० ३ । १० । ११ । ३ ॥
- भर्गः अयं वै (पृथिवी-) लोको भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ७ ॥
- „ पृथिव्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ ऋग्वेदो वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ६ ॥
- „ ऋग्वेद एव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ होतैव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ अग्निर्वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥ जै० उ० ४ । २८ । २ ॥
- „ अग्निरेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

- भर्गः वसव एव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ वाग्वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥
- „ वागेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ वसन्त एव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ गायत्र्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ प्राच्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ आदित्यो वै भर्गः । जै० उ० ४ । २८ । २ ॥
- „ चन्द्रमा वै भर्गः । जै० उ० ४ । २८ । २ ॥
- „ (ऋ० ३ । ६२ । १०) भर्गो देवस्य कवयो ऽजमाहुः । गो० पू० १ । ३२ ॥
- „ धीर्यं वै भर्ग एव विष्णुर्यज्ञः । श० ५ । ४ । ५ । १ ॥
- „ त्रिवृदेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- भवः पर्जन्यो वै भवः पर्जन्याद्धीद^{२३} सर्वं भवति । श० ६ । १ । ३ । १५ ॥
- „ यज्ञव आपस्तेन (भवः=जन्म—अमरकोषे ३ कांडे, २०५ श्लोके ॥ जन्म=आपः—वैदिकनिघंटौ १ । १२ ॥) । कौ० ६ । २ ॥
- „ अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि, शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रो, ऽग्निरिति । श० १ । ७ । ३ । ८ ॥
- „ एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥
- भविष्यत् असौ (सुलोकः) भविष्यत् । तै० ३ । ८ । १८ । ६ ॥
- „ भविष्यत्प्रति चाहरत् (=प्रतिहर्ता ऽऽसीत्) । तै० ३ । १२ । ६ । ३ ॥
- भव्यम् परिमितं वै भूतमपरिमितं भव्यम् । ऐ० ४ । ६ ॥
- भाः असौ वा आदित्यो भा इति । जै० उ० १ । ४ । १ ॥
- „ श्रीर्वै भाः । जै० उ० १ । ४ । १ ॥
- भानुः अजक्षेण भानुना दीद्यतमित्यजक्षेणार्चिषा दीप्यमानमित्येतत् । श० ६ । ४ । १ । २ ॥

भान्तः पञ्चदशः (यजु० १४ । २३) षष्ठी वै भान्तो षडः पञ्चदशो ऽथो
 चन्द्रमा वै भान्तः पञ्चदशः स च पञ्चदशाहान्यापूर्यते
 पञ्चदशापक्षीयते तद्यत्तमाह भान्त इति भाति हि
 चन्द्रमाः । श० ८ । ४ । १ । १० ॥

भारः (यजु० २३ । २६) श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः । श० १३ । २ । ६ । ३ ॥

„ राष्ट्रं वै भारः । तै० ३ । ६ । ७ । १ ॥

भारतः एष (अग्निः) उ वाऽ इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा विभर्ति तस्मा-
 द्वेषाह भारतेति । श० १ । ४ । २ । २ ॥

„ अग्ने मह्यँ असि ब्राह्मण भारत । कौ० ३ । २ । ॥ श० १ । ४ ।
 २ । २ ॥ तै० ३ । ५ । ३ । १ ॥

भारती भारत्यै परिव्रापः (= लाजा इति सायणः) । तै० १ । ५ । ११ । २ ॥

भागवम् (साम) प्रवद्भागवं भवति । प्रवता (सास्रा) वै देवाः स्वर्गं
 लोकं प्रायन्तुद्वतोदायन् । तां० १४ । ३ । २३, २४ ॥

भासम् (साम) स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यं तमसाविध्यत् स न व्यरोचत
 तस्याग्निर्भासेन तमो ऽपाहन् स व्यरोचत यद्वै तद्भा
 अभवत्तद्भासस्य भासत्वम् । तां० १४ । ११ । १४ ॥

„ भासं भवति भाति तुष्टुवानः । तां० १४ । ११ । १२ ॥

भुजः प्राणा वै भुजः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

भुजिष्याः अन्नं भुजिष्याः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

भुज्युः (यजु० १८ । ४२) यज्ञो वै भुज्युर्यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुन-
 क्ति । श० ६ । ४ । १ । ११ ॥

भुरग्युः (यजु० १५ । ५१) भुरग्युरिति भर्तेत्येतत् । श० ८ । ६ । ३ । २० ॥

„ (यजु० १३ । ४३) भुरग्युमिति भर्तारमित्येतत् । श० ७
 ५ । २ । १६ ॥

भुवः (यजु० १३ । ५४) अग्निर्वै भुवो ऽग्नेर्हीद^३ सर्वं भवति । श०
 ८ । १ । १ । ४ ॥

„ भुव इत्यन्तरिक्षलोकः । श० ८ । ७ । ४ । ५ ॥

„ स भुव इति व्याहरत् । सो ऽन्तरिक्षमसृजत् । चातुर्मास्यानि
 सामानि । तै० २ । २ । ४ । २-३ ॥

„ भुवरिति यजुर्भ्योक्षरत् सो ऽन्तरिक्षलोको ऽभवत् । ष० १ । ५ ॥

भुवः (प्रजापतिः) भुव इत्येव यजुर्वेदस्य रसमादत्त । तदिदमन्त-
रिक्षमभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स वायुरभवद्रसस्य
रसः । जै० उ० १ । १ । ४ ॥

” भुव इति (प्रजापतिः) क्षत्रम् (अजनयत) । श० २ । १ ।
४ । १२ ॥

” भुव इति (प्रजापतिः) प्रजाम् (अजनयत) । श० २ । १ ।
४ । १३ ॥

भुवनपतिः (यजु० ११ । २ ॥) एतानि वै तेषामग्नीनां नामानि
यद्भुवपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिः । श० १ । ३ । ३ । १७ ॥

भुवनम् यज्ञो वै भुवनम् । तै० ३ । ३ । ७ । ५ ॥

” यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः । तै० ३ । ६ । ५ । ५ ॥

भुवनस्य गोपाः स (प्रजापतिः) उ वाव भुवनस्य गोपाः । जै० उ०
३ । २ । ११ ॥

भुवपतिः (यजु० ११ । २) एतानि वै तेषामग्नीनां नामानि यद्भुव-
पतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिः । श० १ । ३ । ३ । १७ ॥

भुवस्पतिः प्रच्यवस्व भुवस्पतऽ इति भुवनानां ह्येष (सोमः) पतिः ।
श० ३ । ३ । ४ । १४ ॥

भूः (यजु० १३ । १८) भूर्हीयम् (पृथिवी) । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥

” स (प्रजापतिः) भूरित्येवग्वेदस्य रसमादत्त । सेयं पृथिव्यम-
वत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् सो ऽग्निरभवद्रसस्य रसः । जै०
उ० १ । १ । ३ ॥

” भूरित्यृग्भ्योऽनरत् सो ऽयं (पृथिवी-) लोको ऽभवत् । ष० १ । ५ ॥

” स भूरिति व्याहरत् । स भूमिमसृजत् । अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ
यजूंषि । तै० २ । २ । ४ । २ ॥

” भूरिति वाऽ अयं (पृथिवी-) लोकः । श० ८ । ७ । ४ । ६ ॥

” भूरिति वै प्रजापतिः ब्रह्माजनयत् । श० २ । १ । ४ । १२ ॥

” भूरिति वै प्रजापतिः । आत्मानमजनयत् । श० २ । १ । ४ । १३ ॥

भूतः प्रजापतिर्वै भूतः । तै० २ । १ । ६ । ३ ॥

भूतम् अयं वै (पृथिवी-) लोको भूतम् । तै० ३ । ८ । १८ । ६ ॥

” भूतं ह प्रसोतैषां (विश्वसृजाम्) आसीत् । तै० ३ । १२ ।
९ । ३ ॥

भूतम् परिमितं वै भूतमपरिमितं भव्यम् । ऐ० ४ । ६ ॥

भूतवान् (=भूतपतिः=रुद्रः) तेषां (देवानाम्) या एव घोरतमास्तन्व
आसंस्ता एकधा समभरंस्ताः संभृता एष देवो (रुद्रः)
ऽभवत्तदस्यैतद्भूतवध्नाम, भवति वै स यो ऽस्यैतदेवं नाम वेद ।
ऐ० ३ । ३३ ॥

भूतस्य प्रथमजा (यजु० ३७ । ४) इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा ।
श० १४ । १ । २ । १० ॥

भूतानां पतिः (यजु० ११ । २ ॥) एतानि वै तेषामग्नीनां नामानि
यद्भुवपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिः । श० १ । ३ । ३ । १७ ॥

” भूतानां पतिर्गृहपतिरासीदुषाः पत्नी । श० ६ । १ ।
३ । ७ ॥

” यः स भूतानां पतिः संत्वसरः सः । श० ६ । १ । ३ । ८ ॥

भूतानि प्रजा वै भूतानि । श० २ । ४ । २ । १ ॥ ३ । ५ । २ । १३ ॥ ४ ।
५ । ३ । १ ॥

” तद्यानि तानि भूतानि ऋतवस्ते । श० ६ । १ । ३ । ८ ॥

भूतिः (=प्राणः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशवो भवन्ति । जै० उ० २ ।
४ । ७ ॥

भूतेच्छदः (ऋचः) तद्यदेतान् (असुरान्) इमे देवाः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो
ऽछादयंस्तस्माद् भूतेच्छदस्तद् भूतेच्छदां भूतेच्छदत्वम् । गो० उ०
६ । १४ ॥

” तेषां वै देवा असुराणां भूतेच्छद्विरेव भूतं छादयित्वा ऽथैना-
नत्यायन् । ऐ० ६ । ३६ ॥

” इमे वै लोका भूतेच्छदः । गो० उ० ६ । १४ ॥

भूमा श्रीर्वै भूमा । श० ३ । १ । १ । १२ ॥

” पुष्टिर्वै भूमा । तै० ३ । ६ । ८ । ३ ॥

” भूमा वै सहस्रम् । श० ३ । ३ । ३ । ८ ॥

” अजावी आलभते भूम्ने । तै० ३ । ६ । ८ । ३ ॥

भूमिः अभूदिव वा इदमिति तद्भूमेर्भूमित्वम् । तां० २० । १४ । २ ॥

” अभूद्वा इदमिति तद्भूम्ये भूमित्वम् । तै० १ । १ । ३ । ७ ॥

” अभूद्वाऽ इयं प्रतिष्ठेति । तद्भूमिरभवत् । श० ६ । १ । १ । १५ ॥
६ । १ । ३ । ७ ॥

भूमिः इयं (पृथिवी) वै भूमिरस्यां वै स भवति यो भवति । श० ७ ।
२ । १ । ११ ॥

„ (यजु० १३ । १८) भूमिर्हीयम् (पृथिवी) । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥
भूरिजः भरणाद् भूरिज उच्यते । दे० ३ । २१ ॥

भूर्भुवस्त्वः भूर्भुवस्स्वरिति सा त्रयी विद्या । जै० उ० २ । ९ । ७ ॥

„ एता वै व्याहृतयः (= भूर्भुवस्स्वरिति) सर्वप्रायश्चित्तयः ।
जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

भृगुः ताम्यः श्रान्ताभ्यस्तप्ताम्यः संतप्ताम्यो (अङ्गयः) यद्रेत आसी-
त्तद्भृज्यत यद्भृज्यत तस्माद् भृगुः समभवत् तद् भृगोर्भृगु-
त्वम् । गो० पू० १ । ३ ॥

„ वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः । गो० पू० २ । ८ (६) ॥

„ वरुणस्य वै सुषुवाणस्य भर्गो ऽपाक्रामत्स त्रेधापत्नद्भृगुस्तृतीय-
मभवच्छ्रायन्तीयं (साम) तृतीयमपस्तृतीयं प्राविशत् । ती०
१८ । ६ । १ ॥

„ तस्य (प्रजापतेः) यद् रेतसः प्रथममुददीप्यत तद्सावावित्यो
ऽभवद्यद् द्वितीयमासीत्तद्भृगुरभवत्तं वरुणो न्यगृह्णीत तस्मात्स
भृगुर्वारुणिः । ऐ० ३ । ३४ ॥

भृग्वङ्गिरसः अथाङ्गिरैरभ्यूहति । भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्
(यजु० १ । १८) इत्येतद्वै तेजिष्ठं तेजो यद्भृग्वङ्गिरसाम् ।
श० १ । २ । १ । १३ ॥

„ एतद्वै भूविष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वंगिरसः । गो० पू० ३ । ४ ॥

भेकुरयः (अपसरसः, यजु० १८ । ४०) (= नक्षत्राणि) भाकुरयो ह
नामैते भा० हि नक्षत्राणि कुर्वन्ति । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥

भेषजम् यद् भेषजं तदमृतम् । गो० पू० ३ । ४ ॥

„ शान्तिर्वै भेषजमापः । कौ० ३ । ६ ७, ८, ९ ॥ गो० उ०
१ । २५ ॥

भौज्यम् तस्मादेतस्यां दक्षिणस्यां दिशि ये के च सत्वतां राजानो
भौन्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते गोजत्येनानभिषिक्तानाचक्षते ।
ऐ० ८ । १४ ॥

„ अथैनं (इन्द्रं) दक्षिणस्यां दिशि रुद्रां देवाः... अम्यषिञ्चद्...
भौज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

भौज्यम् ऊर्जा वा एषो ऽभ्राद्याह्नस्पतिरजायत यदुवुम्बरो भौज्यं वा
एतदह्नस्पतीनाम् । ऐ० ७ । ३२ ॥

भ्रजश्छन्दः (यजु० १५ । ५) अग्निर्वै भ्रजश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

भ्राजः अग्नेर्भ्राजसा (त्वाभिषिञ्चामीति) । श० ५ । ४ । २ । २ ॥

„ ततो ऽस्मिन् (सूर्ये) एतद् भ्राज आस । श० ४ । ५ । ४ । ५ ॥

भ्राद् भ्राजं गच्छेति सोमो वै भ्राद् । श० ३ । २ । ४ । ६ ॥

भ्रातृव्यः भ्रातृव्यो वा अरहः । तै० ३ । २ । ६ । ४ ॥

„ इमं देवाः । असपत्नश्च सुवध्वमितीमं देवा अभ्रातृव्यश्च
सुवध्वमित्येवैतदाह । श० ५ । ४ । २ । ३ ॥

„ त्वयायं वृत्रं बधेदिति (यजु० १० । ८) त्वयायं द्विषन्तं
भ्रातृव्यं बधेदित्येवैतदाह (वृत्रः=भ्रातृव्यः) । श० ५ । ३ ।
५ । २८ ॥

„ स यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात्स सौश्रामण्या यजेत । श० १२ ।
७ । ३ । ४ ॥

भ्रूणहत्या अमृत्युर्वा अन्यो भ्रूणहत्याया इत्याहुः । भ्रूणहत्या वाव
मृत्युरिति । तै० ३ । ६ । १५ । २ ॥

(म)

मखः मख इत्येतद्यज्ञनामधेयं छिद्रप्रतिषेधसामर्थ्यात्, छिद्रं खमि-
त्युक्तं तस्य मोति प्रतिषेधः । मा यक्षं छिद्रं करिष्यतीति । गो०
उ० २ । ५ ॥

„ यज्ञो वै मखः । तै० ३ । २ । ८ । ३ ॥ तां० ७ । ५ । ६ ॥ श०
६ । ५ । २ । १ ॥

„ स उ एव मखः स विष्णुः । श० १४ । १ । १ । १३ ॥

„ (यजु० ३७ । ११) एष वै रुखां य एष (सूर्यः) तपति । श०
१४ । १ । ३ । ५ ॥

„ (“विष्णुः” शब्दमपि पश्यत)

मघवान् स उ एव मखः स विष्णुः । तत इन्द्रो मखवानभवन्मखवान्ह
वै तं मघवानित्याचक्षते परोऽक्षम । श० १४ । १ । १ । १३ ॥

„ इन्द्रो वै मघवान् । श० ४ । १ । २ । १५, १६ ॥

मघाः (नक्षत्रविशेषः) पितृणां मघाः । तै० १ । ५ । १२२ ॥ ३ । १ ।
१ । ६ ॥

मज्जा हारिद्र इव हि मज्जा । श० १३ । ४ । ४ । ८ ॥

„ षष्ठिश्च ह वै त्रीणि च शतानि पुरुषस्य मज्जानः । श० १० ।
५ । ४ । १२ ॥

„ मज्जा यजुः । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥

„ मज्जानोज्योतिस्तद्धि यजुष्मतीनां रूपम् । श० १० । २ ।
६ । १८ ॥

मण्डूकः एतद्धै यत्रैतं प्राणा ऋषयोऽग्नेऽग्निश्च समस्कुर्वन्तमद्भिरवो-
द्धस्ता आपः समस्कन्दंस्ते मण्डूका अभवन् । श० ९ । १ ।
२ । २१ ॥

„ तस्मान्मण्डूकः पशूनामनुपजीवनीयतमो यातयामा हि सः ।
श० ६ । १ । २ । २४ ॥

मतिः (यजु० १३ । ५८) धाग्वै मतिर्वाचा हीदश्च सर्वे मनुते । श०
८ । १ । २ । ७ ॥

मत्स्यः मत्स्यः सामदो राजेत्याह तस्योदकेचरा विशस्तऽ इम आसतऽ
इति मत्स्याश्च मत्स्यहनञ्चोपसमेता भवन्ति तानुपदिशतीति-
हासो वेदः सोऽयमिति । श० १३ । ४ । ३ । १२ ॥

मदः यो वाऽ ऋचि मदो यः सामन्नसो वै सः । श० ४ । ३ । २ । ५ ॥

मदिन्तमः (यजु० ६ । २७) मदिन्तम इति स्वादिष्ठ इत्येवैतदाह । श०
३ । ६ । ३ । २५ ॥

मद्राः तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा
उत्तरकुरथ उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते विरा-
दित्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

मधु (यजु० ३७ । १३) प्राणो वै मधु । श० १४ । १ । ३ । ३० ॥

„ (यजु० ११ । ३८) रसो वै मधु । श० ६ । ४ । ३ । २ ॥ ७ ।
५ । १ । ४ ॥

„ अपो देवा मधुमतीरगृष्णन्नित्यपो देवा रसवतीरगृह्णन्नित्येवै-
तदाह । श० ५ । ३ । ४ । ३ ॥

„ औषधीनां वाऽ एष परमो रसो यन्मधु । श० ११ । ५ । ४ । १८ ॥

- मधु रसो वा एष ओषधिवनस्पतिषु यन्मधु । ऐ० ८ । २० ॥
- „ तस्मादुत स्त्रियो मधु नाऽश्नन्ति पुत्राणामिदं व्रतं चराम इति
वदन्तीः । जै० उ० १ । ५५ । २ ॥
- „ (एक आहुः—) न ब्रह्मत्रागी सन्मध्वश्नीयादोषधीनां वाऽ एष
परमो रसो यन्मधु नेदन्नाद्यस्यान्तं गच्छानीति । श० ११ । ५ ।
४ । १८ ॥
- „ यथा ह वाऽ ऋचं वा यजुर्वा साम वाभिव्याहरेत्तादृक्कथ एवं
विद्वान्ब्रह्मचारी सन्मध्वश्नाति । श० ११ । ५ । ४ । १८ ॥
- „ एतद्वै प्रत्यक्षात्सोमरूपं यन्मधु । श० १२ । ८ । २ । १५ ॥
- „ अन्नं वै मधु । तां० ११ । १० । ३ ॥
- „ परमं वा एतदन्नाद्यं यन्मधु । तां० १३ । ११ । १७ ॥
- „ महत्यै वा एतद्देवतायै रूपम् । यन्मधु । तै० ३ । ८ । १४ । २ ॥
- „ मध्वमुष्य (स्वर्गस्य लोकस्य रूपम्) । श० ७ । ५ । १ । ३ ॥
- „ गायत्रमयनं भवति ब्रह्मवर्चसकामस्य स्वर्णिधनम्मधुनामुष्मिल्लोक
उपतिष्ठते । तां० १३ । ४ । १० ॥
- „ सर्वं वाऽ इदं मधु यदिदं किं च । श० ३ । ७ । १ । ११ ॥ १४ ।
१ । ३ । १३ ॥

मधुः (मासः) एतौ (मधुश्च माधवश्च) एव वासन्तिकौ (मासौ)
स यद्वसन्तऽ ओषधयो जायन्ते वनस्पतयः पच्यन्ते
तेनो हैतौ मधुश्च माधवश्च । श० ४ । ३ । १ । १४ ॥

मधुकृतः या एताः पूर्वपक्षापरपक्षयो रात्रयः । ता मधुकृतः । तै० ३ ।
१० । १० । १ ॥

मधुदैव्यम् एतद्वै मधुदैव्यं यदाज्यम् । ऐ० २ । २ ॥

मधुपर्कः एष ह्यारण्यानां रसः । कौ० ४ । १२ ॥

मधुप्रियम् पशवो वै रेवत्यो मधुप्रियम् । तां० १३ । ७ । ३ ॥

मधुमती ओषधयो मधुमतीः । तै० ३ । २ । ८ । २ ॥

मधुवृषाः (पूर्वपक्षापरपक्षयोः) यान्वहानि ते मधुवृषाः । तै० ३ ।
१० । १० । १ ॥

मधुसारधम् यज्ञो ह वै मधुसारधम् । श० ३ । ११ । ३ । १३ ॥

[मनः

(३८८)

मध्यन्दिनः आत्मा मध्यन्दिनः । कौ० २५ । १२ ॥ २८ । ९ ॥

„ आत्मा यजमानस्य मध्यन्दिनः । ऐ० ३ । १८ ॥

„ मध्यन्दिनो मनुष्याणाम् । श० २ । ४ । २ । ८ ॥

„ मध्यन्दिने मनुष्याः (वृत्रायाशनमभिहरन्ति) । श० } १ ।
६ । ३ । १२ ॥

„ बृहस्पतेर्मध्यन्दिनः । तै० १ । ५ । ३ । २ ॥

मध्यम् (यजु० २३ । २६) श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यम् । श० १३ । २ । ९ ।
४ ॥ तै० ३ । ६ । ७ । १ ॥

„ प्रजा वै पशवो मध्यम् । श० १ । ६ । १ । १७ ॥

„ त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रो देवता मध्यम् । श० १० । ३ । २ । ५ ॥

मध्यमा चितिः अन्तरिक्षे वै मध्यमा चितिः । श० ८ । ७ । २ । १८ ॥

„ उदरं मध्यमा चितिः । श० ८ । ७ । २ । १८ ॥

मनः मनो वै बृहत् । तां० ७ । ६ । १७ ॥

„ मनो बृहत् । ऐ० ४ । २८ ॥

„ मनो बृहती । श० १० । ३ । १ । १ ॥

„ मनो ब्रह्मा । गो० पू० २ । १० (११) ॥ ष० १ । ५ ॥

„ मनो वै सम्राट् । परमं ब्रह्मा । श० १४ । ६ । १० । १५ ॥

„ मन एव ब्रह्मा । गो० पू० २ । १० ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

„ मनो ब्रह्मा । गो० पू० २ । १० (११) ॥

„ मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा । श० १४ । ६ । १ । ७ ॥

„ तस्य (पुरुषस्य) मन एव ब्रह्मा । कौ० १७ । ७ ॥

„ मनो होता । तै० २ । १ । ५ । ९ ॥

„ मनो वै यज्ञस्य मैत्रावरुणः । ऐ० २ । ५, २६, २८ ॥

„ मनो वै पाथ्यो वृषा (यजु० ११ । ३४ ॥) । श० ६ । ४ । २ । ४ ॥

„ मनो वै परिपतिः । गो० उ० २ । ३ ॥

„ तदेता वाऽ अस्य (प्रजापतेः) ताः पञ्च मर्त्यास्तन्व आसंलोम
त्वङ् मांसमस्थि मज्जाथैता अमृता मनो वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रम् ।
श० १० । १ । ३ । ४ ॥

„ अपूर्वा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) तन्मनः । ऐ० ५ । २५ ॥ कौ०
२७ । ५ ॥

- मनः मन इव हि प्रजापतिः । तै० २ । २ । १ । २ ॥
- ॥ यः प्रजापस्तिन्मनः । जै० उ० १ । ३३ । २ ॥
- ॥ प्रजापतिर्वै मनः । कौ० १० । १ ॥ २६ । ३ ॥ श० ४ । १ । १ । २२ ॥
- ॥ मनो वै प्रजापतिः । तै० ३ । ७ । १ । २ ॥
- ॥ मनो हि प्रजापतिः । सा० १ । १ । १ ॥
- ॥ मन एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- ॥ मनो वै भरद्वाज ऋषिरन्नं वाजो यो वै मनो विभक्तिं सो ऽन्नं
वाजं भरति तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः (यजु० १३ । ५५) ।
श० ८ । १ । १ । २ ॥
- ॥ मनो ऽन्तरिक्षलोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥
- ॥ मनः पितरः । श० १४ । ४ । ३ । १३ ॥
- ॥ मनो ह वायुर्भूत्वा दक्षिणातस्तस्थौ । श० ८ । १ । १ । ७ ॥
- ॥ न वै वातात् किञ्चनाशीयो ऽस्ति न मनसः किञ्चनाशीयो ऽस्ति
तस्मादाह वातो वा मनो वेति । श० ५ । १ । ४ । ८ ॥
- ॥ मन एवाग्निः । श० १० । १ । २ । ३ ॥
- ॥ मनो ह वाऽ अस्य सविता । श० ४ । ४ । १ । ७ ॥
- ॥ मन एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १५ ॥
- ॥ मनो वै सविता । श० ६ । ३ । १ । १३, १५ ॥
- ॥ मनः सावित्रम् । कौ० १६ । ४ ॥
- ॥ यन्मनः स इन्द्रः । गो० उ० ४ । ११ ॥
- ॥ मनः प्रगाथः । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥
- ॥ मन एव वत्सः । श० ११ । ३ । १ । १ ॥
- ॥ मनो ह वाऽ अशुः (ग्रहः) । श० ११ । ५ । ६ । २ ॥
- ॥ मनो वा ऋतम् । जै० उ० ३ । ३६ । ५ ॥
- ॥ मनो वै सरस्वात् । श० ७ । ५ । १ । ३१ ॥ ११ । २ । ४ । ६ ॥
- ॥ स एष हृदः कामानाम्पूर्णो यन्मनः । जै० उ० १ । ५८ । ३ ॥
- ॥ मनो वै समुद्रः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ५२ ॥
- ॥ मनो वै समुद्रदण्डः (यजु० १५ । ४) । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥
- ॥ वाग्वै समुद्रो मनः समुद्रस्य चक्षुः । तां० ६ । ४ । ७ ॥

[मनः

(३६०)

- मनः तस्य (मनसः) एषा कुल्या यद्वाक् । जै० उ० १ । ५८ । ३ ॥
- ” मनो वै श्रावस्तोऽप्रीया । ऐ० ६ । २ ॥
- ” कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धा ऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्हीर्षी-
भीरित्येतत्सर्वं मन एव । श० १४ । ४ । ३ । ६ ॥
- ” नेव हि सन्मनो नेवासत् । श० १० । ५ । ३ । २ ॥
- ” अनिरुक्तं हि मनो ऽनिरुक्तं ह्येतद्यत्तूष्णीम् । श० १ । ४ ।
४ । ५ ॥
- ” अपरिमिततमिव हि मनः परिमिततरेव हि वाक् । श० १ ।
४ । ४ । ७ ॥
- ” मनो वा एतद्यदपरिमितम् । कौ० २६ । ३ ॥
- ” अनन्तं वै मनः । श० १४ । ६ । १ । ११ ॥
- ” मनो देवः । गो० पू० २ । १० ॥
- ” वृषा हि मनः । श० १ । ४ । ४ । ३ ॥
- ” वाक् च वै मनश्च देवानां मिथुनम् । ऐ० ५ । २३ ॥
- ” वागिति मनः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
- ” वाक् च वै मनश्च हविर्धाने । कौ० ९ । ३ ॥
- ” मनो हि पूर्वं वाचो यद्धि मनसाभिगच्छति तद्वाचा वदति ।
तां० ११ । १ । ३ ॥
- ” वाग्वै मनसो हसीयसी । श० १ । ४ । ४ । ७ ॥
- ” वाचो मनो देवता मनसः पशवः । जै० उ० १ । ५६ । १४ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै वागदो (अन्तरिक्षम्) मनः । ऐ० ५ । ३३ ॥
- ” अलङ्गल(म्)मिव ह वै वाग्वदेद्यन्मनो न स्यात्तस्मादाह धृता
मन्त्रसेति । श० ३ । २ । ४ । ११ ॥
- ” न ह्ययुक्तेन मनसा किं चन सम्प्रति शक्नोति कर्तुम् । श० ६ ।
३ । १ । १४ ॥
- ” अन्यन्नमना अभूवं नादर्शमन्यन्नमना अभूवं नाध्रौषमिति मनसां
ह्येव पश्यति मनसा शृणोति । श० १४ । ४ । ३ । ८ ॥
- ” अर्द्धभाग्वै मनः प्राणानाम् । ष० १ । ५ ॥
- ” मनसि वै सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठिताः । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥
- ” मनो वै प्राणानामधिपतिर्मनसि हि सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।
श० १४ । ३ । १ । ३ ॥

- मनः मनो यजमानस्य (रूपम्) । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥
- „ मनसा वाऽ इदं सर्वमाप्तम् । श० १ । ७ । ४ । २२ ॥ ५ ।
४ । ३ । ९ ॥
- „ असंप्रोषितं वा इदं मनः । ऐ० ६ । २ ॥
- „ मनो हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥
- „ कस्मिन्तु मनः प्रनिष्ठितं भवतीति हृदयऽ इति । श० १४ । ६ ।
९ । २५ ॥
- „ मनसि ह्ययमात्मा प्रतिष्ठितः । श० ६ । ७ । १ । २१ ॥
- „ वागेवऽर्चश्च सामानि च मन एव यजूंषि । श० ४ । ६ ।
७ । ५ ॥
- „ अथ यन्मनो यजुष्टत् । जै० उ० १ । २५ । ६ ॥
- „ मनो वै यजुः । श० ७ । ३ । १ । ४० ॥
- „ मनो यजुर्वेदः । श० १४ । ४ । ३ । १२ ॥
- „ मनो ऽध्वर्युः । श० १ । ५ । १ । २१ ॥
- „ मनो वाव साङ्गश्शीः । जै० उ० १ । ३६ । २ ॥
- „ तयोः (सदसतोः) यत् सत् तत्साम तन्मनस्स प्राणः । जै०
उ० १ । ५३ । २ ॥
- „ स (प्रजापतिः) मन एव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ । १३ । ५ ॥
- „ चन्द्रमा मे मनसि स्थितः । तै० ३ । १० । ८ । ५ ॥
- „ मनश्चन्द्रमाः । जै० उ० ३ । २ । ६ ॥
- „ तद्यत्तन्मनश्चन्द्रमास्सः । जै० उ० १ । २८ । ५ ॥
- „ यत्तन्मन एव स चन्द्रमाः । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥
- „ मनो वै देववाहनं मनो हीदं मनस्विनं भूयिष्ठं वनीवाह्यते । श०
१ । ४ । ३ । ६ ॥
- „ अथ यत्कृष्णं तद्वा रूपमन्नस्य मनसो यजुषः । जै० उ० १ ।
२५ । ६ ॥
- मनश्छन्दः (यजु० १५ । ४) प्रजापतिर्वै मनश्छन्दः । श० ८ । ५ ।
२ । ३ ॥
- मनुः प्रजापतिर्वै मनुः स हीदं सर्वममनुत् । श० ६ । ६ । १ । १६ ॥
- „ (यजु० ३७ । १२) अथा ह वाऽ इयं (पृथिवी) भूत्वा मनु-
मुवाह सो ऽस्याः पतिः प्रजापतिः । श० १४ । १ । ३ । २५ ॥

[मनुष्याः

(३६२)

- मनुः (यजु० १५ । ४९) ये विद्वान्सस्ते मनवः । श० ८ । ६ ।
३ । १८ ॥
- „ आयुर्वै मनुः । कौ० २६ । १७ ॥
- „ य एवं मनुष्याणां मनुष्यत्वं वेद । मनस्येव भवति । नैनं मनुः
(=मननशक्तिरिति सायणः) जहाति । तै० २ । ३ । ८ । ३ ॥
- „ (=मनुष्यः) अग्निर्होता मनुवृत्तो ऽयं (अग्निः) हि सर्वतो
मनुष्यैर्वृतः । ऐ० २ । ३४ ॥
- „ मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह । तस्य मनुष्या विशाः । श० १३ । ४ ।
३ । ३ ॥
- „ मनोर्यद्वाऽ इत्यु वाऽ आहुः । श० १ । ५ । १ । ७ ॥
- „ मनुर्हं वाऽ अग्रे यज्ञेनेजे तदनुकृत्येमाः प्रजा यजन्ते । श० १ ।
५ । १ । ७ ॥
- „ (मनुमत्स्यकथा--) तस्य (मनोः) अघनेनिजानस्य मत्स्यः
पाणीऽप्रापेदे । स हास्मै वाचमुवाद । विभृहि मा पारयिष्यामि
त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा
ततस्त्वा पारयितास्मीति । श० १ । ८ । १ । १--२ ॥
- „ सा (मनोर्दुहिता) एषा निदानेन यदिडा । श० १ । ८ ।
१ । ११ ॥ ('इडा' शब्दमपि पश्यत)
- „ मनुर्वै यत्किञ्चावदत्तज्ञेवजम्भेवजतायै । तां० २३ । १६ । ७ ॥
- „ अथैतन्मनुवंश्रे मिथुनमपश्यत् । स इमश्रूण्यग्रे ऽवपत् । अर्थो-
पपक्षौ । अथ केशान् । ततो वै स प्राजायत् । प्रजया पशुभिः ।
यस्यैवं वपन्ति । प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते । तै० १ । ५ ।
६ । ३ ॥
- मनुष्यलोकः सो ऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा । श०
१४ । ४ । ३ । २४ ॥
- „ उदीचीमावृत्य दोग्धि मनुष्यलोकमेव तेन जयति । तै०
२ । १ । ८ । १ ॥ ३ । २ । १ । ३ ॥
- मनुष्यसवः य इष्टया स्यते स मनुष्यसवः । तै० २ । ७ । ५ । १ ॥
- मनुष्याः स (प्रजापतिः) पितृन्सृष्ट्वा मनस्येत् । तदनु मनुष्यानसृजत् ।
तन्मनुष्याणां मनुष्यत्वम् । य एवं मनुष्याणां मनुष्यत्वं

वेद । मनस्येव भवति । नैनं मनुः (=मननशक्तिरिति सायणः) जहाति । तै० २ । ३ । ८ । ३ ॥

- मनुष्याः पुरुषो (=मनुष्यः) वै प्रजापतेर्नेदिष्टम । श० २ । ५ । १ । १ ॥
 ” उभयम्बैतत् प्रजापतिर्यच्च देवा यच्च मनुष्याः । श० ६ । ८ । १ । ४ ॥
 ” उभये ह वाऽ इदमग्रे सहासुर्देवाश्च मनुष्याश्च । श० २ । ३ । ४ । ४ ॥
 ” देवानां वै विधामनु मनुष्याः । श० ६ । ७ । ४ । ९ ॥ ६ । १ । १ । १६ ॥
 ” मनुष्याननु पशवः, देवाननु वयांस्योषधयो वनस्पतयः । श० १ । ५ । २ । ४ ॥
 ” द्राघीयो हि देवायुषश्च हसीयो मनुष्यायुषम । श० ७ । ३ । १ । १० ॥
 ” उभये देवमनुष्याः पशूनुपर्जावन्ति । श० ६ । ४ । ४ । २२ ॥
 ” एतद्वै देवानां परममन्नं यत्सोमः । एतन्मनुष्याणां यत्सुरा । तै० १ । ३ । ३ । ३ ॥
 ” सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः । श० १ । १ । १ । ४ ॥ १ । १ । २ । १७ ॥ ३ । ३ । २ । २ ॥ ३ । ९ । ४ । १ ॥
 ” अनृतसंहिता वै मनुष्या इति । पे० १ । ६ ॥
 ” मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह तस्य मनुष्या विशस्तऽ इमऽ आसतऽ इत्यश्रोत्रिया गृहमेधिन उपसमेता भवन्ति तानुपदिशत्यृचो वेदः । श० १३ । ४ । ३ । ३ ॥
 ” मनुष्या वै जन्तवः । श० ७ । ३ । १ । ३२ ॥
 ” द्विरहो मनुष्येभ्य उपह्रियते प्रातश्च सायञ्च । तै० १ । ४ । ६ । २ ॥
 ” अथैनं (प्रजापतिं) मनुष्याः । प्रावृता उपस्थं कृत्वोपासी-
 दंस्तान् (प्रजापतिः) अब्रवीत् सायम्प्रातर्वोऽशनं प्रजा वो मृत्युर्वोऽग्निर्वो ज्योतिरिति । श० २ । ४ । २ । ३ ॥
 ” नैव देवाः (प्रजापतेराह्नाम्) अतिक्रामन्ति । न पितरो न पशवो मनुष्या एवैकेऽतिक्रामन्ति तस्माद्यो मनुष्याणां

मेघत्यशुभे मेघति विहृच्छति हि न ह्ययनाय चन भवत्यनृतः
हि कृत्वा मेघति तस्माद् सायम्प्रातराशयेव स्यात् स यो
हैवं विद्वान् सायम्प्रातराशी भवति सर्वः हैवायुरेति । श०
२ । ४ । २ । ६ ॥

- मनुष्याः फाष्टं मनुष्याणाम् । श० ३ । १ । ३ । ८ ॥
 ” हन्तकारं मनुष्याः (उपजीवन्ति) । श० १४ । ८ । ६ । १ ॥
 ” रयिरिति मनुष्याः (उपासते) । श० १० । ६ । २ । २० ॥
 ” मध्यन्दिनो मनुष्याणाम् । श० २ । ४ । २ । ८ ॥
 ” तस्मै (वृत्राय) इ स्म पूर्वाह्णे देवा अशनमभिहरन्ति मध्य-
 न्दिने मनुष्याऽपराह्णे पितरः । श० १ । ६ । ३ । १२ ॥
 ” (अस्य भूलोकस्य) मनुष्या यजुष्मत्यः (इष्टकाः) । श०
 १० । ६ । ४ । १ ॥
 ” मनुष्याणां षा एषा दिग्यत्प्रतीची । ष० ३ । १ ॥
 ” प्राचीनप्रजनना वै देवाः प्रतीचीनप्रजनना मनुष्याः । श०
 ७ । ४ । २ । ४० ॥
 ” एषा (उदीची) वै देवमनुष्याणां शान्ता दिक् । तै० २ ।
 १ । ३ । ५ ॥
 ” उदीची हि मनुष्याणां दिक् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥ १ ।
 ७ । १ । १२ ॥
 ” एषा (उदीची) वै मनुष्याणां दिक् । तै० १ । ६ । ९ । ७ ॥
 ” उदीचीमावृत्य दोग्धि मनुष्यलोकमेव तेन जयति । तै० २ ।
 १ । ८ । १ ॥ ३ । २ । १ । ३ ॥
 ” तस्मान्मानुषऽ उदीचीनवःशामेव शालां वा विमितं वा
 मिन्वन्ति । श० ३ । १ । १ । ७ ॥
 ” अथ योत्तरा (आहुतिः) ते मनुष्याः । श० २ । ३ । २ । १६ ॥
 ” (मनुष्याः प्रजापतिमब्रुवन्—) दत्तेति न आत्थेति । श० १४ ।
 ८ । २ । ३ ॥
 ” अथ यदेव वासयेत् । तेन मनुष्येभ्य ऋणं जायते तद्धचेभ्य
 एतत्करोति यदेनान्वासयते यदेभ्यो ऽशनं ददाति । श० १ ।
 ७ । २ । ६ ॥

मनुष्याः (प्रजापतिः) प्रस्तावमनुष्येभ्यः (प्रायच्छत) । जै० उ०
१ । ११ । ६ ॥

मनोजवाः मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु । श० ३ । ५ । २ । ६ ॥
मनोता तिस्रो वै देवानां मनोतास्तासु हि तेषां मनांस्योतानि वाग्वै
देवानां मनोता तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि गौर्हि देवानां
मनोता तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि, अग्निर्वै देवानां मनोता
तस्मिन्हि तेषां मनांस्योतान्यग्निः सर्वा मनोता अग्नौ मनोताः
सगच्छन्ते । ऐ० २ । १० ॥

„ अग्निर्वै देवानां मनोता तस्मिन् ह्येषां मनांस्योतानि भवन्ति ।
१० । ६ ॥

„ अग्निः सर्वा मनोता । कौ० १० । ६ ॥

„ वाग्वै देवानां मनोता । को० १० । ६ ॥

„ गौर्वै देवानां मनोता । कौ० १० । ६ ॥

मन्त्रः वाग्वै मन्त्रः । श० ६ । ४ । १ । ७ ॥

„ वाग्घि मन्त्रः । श० १ । ४ । ४ । ११ ॥

„ ब्रह्म वै मन्त्रः । श० ७ । १ । १ । ५ ॥

„ यांश्च ग्रामे यांश्चारण्ये जपन्ति मन्त्रान् नानार्थान् बहुधा
जनासः... । गो० पू० ५ । २५ ॥

मन्त्रकृत एष वाव पिता यो मन्त्रकृत । तां० १३ । ३ । २४ ॥

मन्थावलाः (जीवविशेषः) यानि पर्णानि ते मन्थावलाः (अभवन्) ।
ऐ० ३ । २६ ॥

मन्थी अक्षैव शुक्र आद्यो मन्थी । श० ४ । २ । १ । ३ ॥

„ आद्यो वै मन्थी । श० ५ । ४ । ४ । २१ ॥

„ चन्द्रमा एव मन्थी । श० ४ । २ । १ । १ ॥

मन्दस्व (यजु० १२ । १०८) मन्दस्व धीतिमिहित इति दीप्यस्व
धीतिमिहित इत्येतत् । श० ७ । ३ । १ । ३१ ॥

मन्युः पशुर्मा वा एष मन्युः । यद्वराहः । तै० १ । ७ । ६ । ४ ॥

„ वराहं क्रोधः (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥

मन्विजः (अग्निः) इमं (अग्नि) हि मनुष्या इन्धते । ऐ० २ । ३४ ॥

„ मनुर्ह्येतमग्रऽ ऐन्द्र तस्मादाह मन्विज इति । श० १ ।
४ । २ । ५ ॥

[मरुतः

(३६६)

मयः यद्वै शिवं तन्मयः । तै० २ । २ । ५ । ५ ॥

„ (हे ऽश्व ! त्वं) मयो ऽस्मि । तां० १ । ७ । १ ॥

मयन्दम् (यजु० १४ । ६) यद्वाऽ अनिरुक्तं तन्मयन्दम् । श० ८ । २ ।
३ । ११ ॥

मयुः (यजु० १३ । ४७) किम्पुरुषो वै मयुः (अमरकोषे कां० १
स्वर्गवर्गे श्लो० ७४) । श० ७ । ५ । २ । ३२ ॥

मरीचिः एता वाऽ आपः स्वराजो यन्मरीचयः । श० ५ । ३ । ४ । २१ ॥

„ यः कपालं रसो लिप्त आसीत्ता मरीचयो ऽभवन् । श० ६ ।
१ । २ । २ ॥

मरुतः मरुतो रश्मयः । तां० १४ । १२ । ९ ॥

„ ये ते मारुताः (पुरोडाशाः) रश्मयस्ते । श० ९ । ३ । १ । २६ ॥

„ युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस इति युञ्जन्तु त्वा देवा इत्येवंत-
दाह (मरुतः=देवाः—अमरकोषे ३ । ३ । ५८) । श० ५ । १ ।
४ । ६ ॥

„ गणशो हि मरुतः । तां० १९ । १४ । २ ॥

„ मरुतो गणानां पतयः । तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥

„ सप्त हि मारुतो गणः । श० २ । ५ । १ । १३ ॥

„ सप्त वै मारुतो गणः । श० ५ । ४ । ३ । १७ ॥

„ सप्त गणा वै मरुतः । तै० १ । ६ । २ । ३ ॥ २ । ७ । २ । २ ॥

„ सप्त-सप्त हि मारुता गणाः (७x७=४९—यजु० १७ । ८०—
८५ ॥ ३६ । ७ ॥) । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥

„ मारुतः सप्तकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

„ मारुतस्तु सप्तकपालः (पुरोडाशः) । श० २ । ५ । १ । १२ ॥

„ मारुतश्च सप्तकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । ३ । १ । ६ ॥

„ मरुतो वै देवानां भूयिष्ठाः । तां० १४ । १२ । ६ ॥ २१ । १४ । ३ ॥

„ मरुतो हि देवानां भूयिष्ठाः । तै० २ । ७ । १० । १ ॥

„ मरुतो ह वै देवविशो ऽन्तरिक्षभाजना ईश्वराः । कौ० ७ । ८ ॥

„ विशो वै मरुतो देवविशः । २ । ५ । १ । १२ ॥

„ मरुतां वै देवानां विशः । ऐ० १ । ६ ॥ तां० ६ । १० । १० ॥
१८ । १ । १४ ॥

- मरुतः अहुतादो वै देवानां मरुतो विद् । श० ४ । ५ । २ । १६ ॥
- ” दिङ् वै मरुतः । तै० १ । ८ । ३ । ३ ॥ २ । ७ । २ । २ ॥
- ” विशो मरुतः । श० २ । ५ । २ । ६, २७ ॥ ४ । ३ । ३ । ६ ॥
- ” विशो वं मरुतः । श० ३ । ६ । १ । १७ ॥
- ” मारुतो हि वैश्यः । तै० २ । ७ । २ । २ ॥
- ” कीनाशाः (= कृषौ कर्मकरा इति सायणः) आसन्मरुतः
सुदानवः (= सुष्टु दातार इति सायणः) । तै० २ । ४ । ८ । ७ ॥
- ” पशवो वै मरुतः । ऐ० ३ । १६ ॥
- ” अन्नं वै मरुतः । तै० १ । ७ । ३ । ५ ॥ १ । ७ । ५ । २ ॥ १ । ७ ।
७ । ३ ॥
- ” प्राणा वै मारुताः । श० ६ । ३ । १ । ७ ॥
- ” मारुता वै ग्रावाणः । तां० ९ । ६ । १४ ॥
- ” मरुतो वै देवानामपराजितमायतनम् । तै० १ । ४ । ६ । २ ॥
- ” अप्सु वै मरुतः शिताः (? श्रिताः) । कौ० ५ । ४ ॥
- ” अप्सु वै मरुतः श्रितः (श्रिताः) । गो० ३० । १ । २२ ॥
- ” आपो वै मरुतः । ऐ० ६ । ३० ॥ कौ० १२ । ८ ॥
- ” मरुतो ऽङ्गिरग्निमतमयन् । तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दन् सा
ऽशनिरभवत् । तै० १ । १ । ३ । १२ ॥
- ” मरुतो वै वर्षस्येशते । श० ६ । १ । २ । ५ ॥
- ” षड्भिः पार्जन्यैर्वा मारुतैर्वा (पशुभिः) वर्षासु (यजते) ।
श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥
- ” इन्द्रस्य वै मरुतः । कौ० ५ । ४, ५ ॥
- ” अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः.....
अभ्यविञ्चन्...पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वाव-
द्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८ । १४ ॥
- ” हेमन्तेनर्तुना देवा मरुतस्त्रिणवे (स्तोमे) स्तुतं बलेन शकरीः
सहः । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । २ ॥
- ” मारुत्यो वत्सतर्य्यः । तां० २१ । १४ । १२ ॥
- ” पङ्क्तिश्छन्दो मरुतो देवता ष्टीवन्तौ । श० १० । ३ । २ । १० ॥
- ” मरुस्तोमो वा एषः (षोडशः स्तोमः) । तां० १७ । १ । ३ ॥

[महः

(३६८)

मरुतः क्रीडिनः मरुतो ह वै क्रीडिनो वृत्र^{१३} हनिष्यन्तमिन्द्रमागतं
तमभितः परि चिक्रीडुर्महयन्तः । श० २ । ५ । ३ । २० ॥

” ते (मरुतः) एनं (इन्द्रं) अध्यक्षीडन् तत्क्रीडिनां
क्रीडित्वम् । तै० १ । ६ । ७ । ५ ॥

” इन्द्रस्य वै मरुतः क्रीडिनः । कौ० ५ । ५ ॥

” इन्द्रो वै मरुतः क्रीडिनः । गो० उ० १ । २३ ॥

मरुतः सान्तपनाः मरुतो ह वै सांतपना मध्यन्दिने वृत्र^{१३} सन्तेषुः
स संतप्तो ऽनन्नेव प्राणन्परिदीर्णः शिश्ये । श०
२ । ५ । ३ । ३ ॥

” इन्द्रो वै मरुतः सान्तपनाः । गो० उ० १ । २३ ॥

• मरुतः स्वतवसः घोरा वै मरुतः स्वतवसः । कौ० ५ । २ ॥ गो० उ०
१ । २० ॥

मरुतः स्वापयः प्राणो वै मरुतः स्वापयः । ऐ० ३ । १६ ॥

मरुत्वतीयग्रहः सवनततिर्वै मरुत्वतीयग्रहः । कौ० १५ । १ ॥

मरुत्वतीयम् (शस्त्रम्) पवमानोकथं वा एतद्यन्मरुत्वतीयम् । ऐ० ८ ।
१ ॥ कौ० १५ । २ ॥

” तदेतद्द्वार्त्तमैवोकथं यन्मरुत्वतीयमेतेन हेन्द्रो
वृत्रमहन् । कौ० १५ । २ ॥

” तदेतत्पृतनाजिदेव सूक्तं यन्मरुत्वतीयमेतेन
हेन्द्रः पृतना अजयत् । कौ० १५ । ३ ॥

मरुत्स्तोमः अथैष मरुत्स्तोम एतेन वै मरुतो ऽपरिमितां पुष्टिमपुष्यन्न-
परिमितां पुष्टिं पुष्यति य एवं वेद । तां० १९ । १४ । १ ॥

मर्त्यः अनात्मा हि मर्त्यः । श० २ । २ । २ । ८ ॥

असूत्यानि (धान्यविशेषः) सर्वासां वा एतद्देवताना^{१३} रूपम् । यन्मसू-
स्यानि । तै० ३ । ८ । १४ । ६ ॥

महः पशवो वै महस्तस्माद्यस्यैते बहवो भवन्ति भूयिष्ठमस्य कुले
महीयन्ते । श० ११ । ८ । १ । ३ ॥

” यज्ञो वै देवानां महः । श० १ । ६ । १ । ११ ॥

” अध्वर्युदेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

” यजुर्वेदो महः । श० १२ । ३ । ४ । ९ ॥

- महः यजुर्वेद एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ अन्तरिक्षलोको महः । श० १२ । ३ । ४ । ७ ॥
- „ अन्तरिक्ष एव महः । गो० उ० ५ । १५ ॥
- „ वायुमहः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥
- „ वायुरेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ प्राणो महः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥
- „ प्राणा एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ प्रतीच्येव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ सुवर्गो वै लोको महः । तै० ३ । ८ । १८ । ५ ॥
- „ असौ वै (स्वर्गो) लोको महाऽसि । तस्यादित्या अधिपतयः ।
तै० ३ । ८ । १८ । २ ॥
- „ रुद्रा एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ ग्रीष्म एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ त्रिष्टुबेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ पंचदश एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- महत महद्वा अन्तरिक्षम् । ऐ० ५ । १८, १९ ॥
- „ अन्तो वै महत् । ऐ० ५ । २, १२ ॥
- महदुक्थम् अशीतिभिर्दि महदुक्थमाख्यायते । श० १० । १ । २ । ६ ॥
- „ महदुक्थमृचाम् (समुद्रः) । श० ९ । ५ । २ । १२ ॥
- „ सर्वां हेता ऋचो यन्महदुक्थम् । श० १० । १ । १ । ५ ॥
१० । ४ । १ । १३ ॥
- „ यदेतन्मण्डलं (सूर्यः) तपति । तन्महदुक्थं ता ऋचः स
ऋचां लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥
- „ द्यौर्महदुक्थम् । श० १० । १ । २ । २ ॥
- „ आत्मा महदुक्थम् । श० १० । १ । २ । ५ ॥
- „ वाङ्महदुक्थम् । श० १० । १ । २ । ३ ॥
- महर्त्विक् अश्वस्य वा आलब्धस्य महिमोदक्रामत् । स महर्त्विजः
प्राविशत् । तन्महर्त्विजां महर्त्विक्त्तम् । तै० ३ । ८ । २ । ४ ॥
- महादिवाकीर्त्यम् एतद्वे प्रत्यक्षं साम यन्महादिवाकीर्त्यम् । कौ० २५ । ४ ॥
- महान् प्रजापतिर्वाव महान् । तां० ४ । १० । २ ॥

महान् अग्निर्वै महान् । जै० उ० ३ । ४ । ७ ॥

„ एष (अग्निः) एव महान् । श० १० । ४ । १ । ४ ॥

„ प्राण एव महान् । श० १० । ४ । १ । २३ ॥

महान् देवः एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः = शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

„ (= रुद्रः) स एषो ऽष्टनामाष्टधा विहितो महान्देवः । कौ० ६ । ९ ॥ (अष्टमूर्त्तिः = महादेवः = रुद्रः — अमरकोषे काण्डे १, स्वर्गवर्गे । श्लो० ३७ ॥)

„ (प्रजापतिः) तं (रुद्रं) अब्रवीन्महान्देवो ऽसीति । तद्यदस्य तन्नामाकरोच्चन्द्रमास्तद्रूपमभवत्प्रजापतिर्वै चन्द्रमाः प्रजापतिर्वै महान्देवः । श० ६ । १ । ३ । १६ ॥

„ यन्महान्देव आदित्यस्तेन । कौ० ६ । ६ ॥

„ एष ह वै महान्देवो यद्यज्ञः । गो० पू० २ । १६ ॥

„ 'पशुपतिः,' 'पशुमान्,' 'भूतवान्,' 'रुद्रः,' इत्येतानपि शब्दान् पश्यत ।

महानाम्न्यः (ऋचः) ; इन्द्रो वा एताभिर्महानात्मानं निरमिमीत तस्मान्महानाम्न्यः । ऐ० ५ । ७ ॥

„ महानाम्नोभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहन् । कौ० २३ । २ ॥

„ (वृत्रघ्न समये) महान् घोष आसीत् तन्महानाम्न्यः (शक्यैः) । तां० १३ । ४ । १ ॥

„ वज्रो वै महानाम्न्यः । ष० ३ । ११ ॥

„ अथो इमे वै लोका महानाम्न्य इमे महान्तः । ऐ० ५ । ७ ॥

महायज्ञाः पञ्चैव महायज्ञाः । तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति । श० ११ । ५ । ६ । १ ॥

महावीरः ते देवा अद्भुवन् । महान्बत नो वीरो ऽपादिति तस्मान्महावीरः । श० १४ । १ । १ । ११ ॥

„ स एष महावीरो मध्यन्दिनोत्सर्गः । कौ० ८ । ७ ॥

„ शिरो वा एतद्यज्ञस्य यन्महावीरः । कौ० ८ । ३ ॥

महावीरः असौ वै महावीरो यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० ८ । ३,
७ ॥ ('धर्मः' शब्दमपि पश्यत)

महावैश्वामित्रम् (साम) पाप्मानं हत्वा यदमहीयन्त तत् महावै-
श्वामित्रस्य महावैश्वामित्रत्वम् । तां० १३ ।
६ । १२ ॥

महावैष्टम्भम् (साम) महावैष्टम्भं ब्रह्मसाम भवत्यन्नाद्यस्यावरुष्यै ।
तां० १२ । ४ । १९ ॥

महाव्याहृतयः स तान् पञ्च वेदान् (सर्पवेदं पिशाचवेदमसुरवेदमि-
तिहासवेदं पुष्यणवेदमिति) अभ्यश्राम्यदभ्यतपत्सम-
तपत्सेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यः पञ्च महाव्या-
हृतीर्निरमिमात वृषत् करद् गुहन् महत् तदिति ।
गो० पू० १ । १० ॥

॥ किं सर्वंप्रायश्चित्तिमिति महाव्याहृतीरेव मघवश्चिति ।
प० १ । ६ ॥

महाव्रतम् महन्मर्यां व्रतं यदिममधिन्वीदिति तन्महाव्रतस्य महाव्र-
तत्वम् । तां० ४ । १० । १ ॥

॥ तं देवा भूतानां रसं तेजः सम्भृत्य तेनैनं (प्रजापतिं)
अभिषज्यन् महानववर्षीति । तन्महाव्रतस्य महाव्रतत्वम् ।
तै० १ । २ । ६ । १ ॥

॥ महद् व्रतमिति । तन्महाव्रतस्य महाव्रतत्वम् । तै० १ । २ ।
६ । १ ॥

॥ महतो व्रतमिति । तन्महाव्रतस्य महाव्रतत्वम् । तै० १ ।
२ । ६ । १ ॥

॥ प्रजापतिर्वाष महास्तस्यैतद् व्रतमन्नमेव । तां० ४ ।
१० । २ ॥

॥ अथ यन्महाव्रतमुपयन्ति । प्रजापतिमेव देवतां यजन्ते ।
श० १२ । १ । ३ । २१ ॥

॥ एष (अग्निः) एष महास्तस्यैतदन्नं व्रतं तन्महाव्रतं सा-
मवः । श० १० । ४ । १ । ४ ॥

महाव्रतम् प्राण एव महास्तस्यान्नमेव व्रतं तन्महाव्रतं सामतः ।
श० १० । ४ । १ । २३ ॥

„ प्राणो महाव्रतम् । श० १० । १ । २ । ३ ॥

„ सर्वाणि हैतानि सामानि यन्महाव्रतम् । श० १० । १ ।
१ । ५ ॥

„ अथ यदेतद्विदीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्नां
लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥

„ महाव्रतं^३ साम्नाम् (समुद्रः) । श० ९ । ५ । २ । १२ ॥

„ बृहद्रथन्तरे (महाव्रतस्य) पक्षौ । तां० १६ । ११ । ११ ॥

„ वामदेव्यमात्मा (महाव्रतस्य) । तां० १६ । ११ । ११ ॥

„ यज्ञायज्ञीयं (साम) ह्येव महाव्रतस्य पुच्छम् । तां० ५ ।
१ । १८ ॥

„ यज्ञायज्ञीयं (साम) पुच्छम् (महाव्रतस्य) । तां० १६ ।
११ । ११ ॥

„ अन्तरिक्षं महाव्रतम् । श० १० । १ । २ । ३ ॥

„ अत्येतदन्याम्यहाम्यह्य्यन्महाव्रतम् । तां० ५ । २ । ११ ॥

„ अन्तो महाव्रतम् । तां० ५ । ६ । १२ ॥

महाव्रतीयः (ऋहः) महद्वाऽइदं व्रतमभूयेनायं^४ समहास्तेति तस्मा-
न्महाव्रतीयो नाम । श० ४ । ६ । ४ । २ ॥

महाव्रीहयः साम्राज्यं वा एतदोषघ्निनां यन्महाव्रीहयः । षे० ८ । १६ ॥

महाहविः महाहविषा ह वै देवा वृत्रं जञ्जुः । श० २ । ५ । ४ । १ ॥

„ महाहविर्होता सप्तहोतृणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । २ ॥

महिमा (षु० ११ । १९) देवा महिमानः । श० १० । २ । २ । २ ॥

„ (षु० ११ । ६) यज्ञो वै महिमा । श० ६ । ३ । १ । १८ ॥

„ राजामहिमाः श० १३ । २ । ११ । २ ॥ तै० ३ । ९ । १० । १ ॥

महिषः (षु० १२ । १०५) अग्निर्वै महिषः स हीदं जातो महा-
त्सर्वमैष्णात् । श० ७ । ३ । १ । २३ ॥

„ (षु० १२ । १११) अग्निर्वै महिषः । श० ७ । ३ । १ । ३४ ॥

„ (षु० १२ । २०) प्राणा वै महिषाः । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

„ (षु० १९ । ३२) ऋत्विजो वै महिषाः । श० १२ । ८ । १ । २ ॥

महिषी वैव प्रथमा विष्ठा (भाय्या) सा महिषी । श० ६।५।३।१ ॥

„ महिषी हीयं (पृथिवी) । श० ६।५।३।१ ॥

„ महिषी हि वाक् । श० ६।५।३।४ ॥

„ महिषी धाय्या । कौ० १५।४ ॥

„ भूरिति महिषी । तै० ३।९।४।५ ॥

मही (यजु० ११।५१) इयं (पृथिवी) वाऽ भवितिर्मही । श० ६।
५।१।१० ॥

„ इयं (पृथिवी) एव मही । जै० ७० ३।४।७ ॥

„ पृथिवीं मातरं महीम् । तै० २।४।६।८ ॥

„ (यजु० १।२०) मही इति ह वाऽ पतासामेकं नाम यद्रवाम् ।
श० १।२।१।२२ ॥ ३।१।३।९ ॥

महेन्द्र यन्महानिन्द्रोऽभवत्तन्महेन्द्रस्य महेन्द्रत्वम् । ऐ० ३।२१ ॥

„ इन्द्रो वाऽ एष पुरा वृत्रस्य वधाद्यथ वृत्रं हत्वा यथा महा-
राजो विजिग्यान एवं महेन्द्रोऽभवत् । श० १।६।४।२१ ॥
२।५।४।९ ॥ ४।३।३।१७ ॥

महथाः (=शक्यः) महथामकरोत्तन्महथाः । तां १३।४।१ ॥

मा (यजु० १४।१८ ॥) अयं वै (पृथिवी-) लोको मायं हि लोको
मित इव । श० ८।३।३।५ ॥

मांसम् एतदु ह वै परममन्नाद्यं यन्मांसम् । श० ११।७।१।३ ॥

„ अन्नमु पशोर्मांसम् । श० ७।५।२।४२ ॥

„ मांसं वै पुरीषम् । श० ८।६।२।१४ ॥ ८।७।३।१ ॥

„ मांसं पुरीषम् । श० ८।७।४।१९ ॥

„ मांसं सत्त्वात् सादनम् । श० ८।१।४।५ ॥

„ मांसं सीयन्ति ह वै जुह्वतो यजमानस्याग्नयः । श० ११।७।
१।२ ॥

„ मांसं सीयन्ति वा आहिताग्नेरग्नयः । गो० ७० २।१ ॥ ('अग्न-
यो मांसकामाश्च इत्यपि भूयते भ्रुतिः' इति नालकण्ठीय-
टीकायुते महाभारते धनपर्वाणे अ० २०८ श्लो० ११ ॥ कुम्भ-
धोजसंस्कारजे-अ० २१२ श्लो० १० ॥ मनु० ४।२५-२८ ॥)

[माध्यन्दिनं सवनम् (४०४)

मासम् (ब्राह्मोदनिकस्य रक्षणकर्ता) न मासं समश्नीयात् । न स्त्रिय-
मुपेयात् । यन्मासं समश्नीयात् । यत्स्त्रियमुपेयात् । निर्वीर्यः
स्यात् । नैनमाग्निरुपनमेत् । तै० १ । १ । ९ । ७-८ ॥

” (यजमानः) अहतं वसानो ऽवभृथादुदैति चतुरो मासो न
मासं समश्नाति, न स्त्रियमुपैति । तां० १७ । १३ । ६, ११, १४ ॥

” अमासं साश्यनुभूते तपस्व्यनुब्रवाऽ इति । श० १४ । १ । १ ।
२९ ॥

माः चन्द्रमा वै मा मासः । जै० उ० ३ । १२ । ६ ॥

माघः माघे वा मा नो ऽघं भूदिति । श० १३ । ८ । १ । ४ ॥

मातरिश्वा प्राणो मातरिश्वा । ऐ० २ । ३८ ।

” अयं वै वायुर्मातरिश्वा यो ऽयं पवते । श० ६ । ४ । ३ । ४ ॥

” अथ यद्दक्षिणतो वाति । मातरिश्वैव भूत्वा दक्षिणतो
वाति । तै० २ । ३ । ९ । ५ ॥

” सर्वा दिशो ऽनुविवाति । सर्वा दिशो ऽनुसंवातीति ।
स वा एष मातरिश्वैव । तै० २ । ३ । ९ । ६ ॥

” अन्तरिक्षं वै मातरिश्वनो घर्मः । तै० ३ । २ । ३ । २ ॥

माता न हि माता पुत्रं हिनस्ति न पुत्रो मातरम् । श० ५ । २ ।
१ । १८ ॥

मात्रा यद्वेव मिमीते तस्मान्मात्रा । श० ३ । ९ । ४ । ८ ॥

माघवः (मासः) एतौ (मधुश्च माघवश्च) एव वासन्तिकौ (मासौ)
स यद्वसन्तऽ ओषधयो जायन्ते घनस्पतयः पच्यन्ते तेनो
हैतौ मधुश्च माघवश्च । श० ४ । ३ । १ । १४ ॥

माधुच्छन्दसम् (साम) इदं ह्यन्वोजसेति माधुच्छन्दसं प्रजापते-
र्वा एषा तनूरयातयाम्नी प्रयुज्यते । तां० ९ । २ । १७ ।

” माधुच्छन्दसं भवति सामार्षेयवत् स्वर्गाय युज्यते
स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः । तां० ११ । ९ । ६ ॥

माध्यन्दिनं सवनम् रुद्राणां माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १६ । १ ॥
३० । १ ॥ श० ४ । ३ । ५ । १ ॥

” रुद्रा एकादशरूपालेन माध्यन्दिने सवने (अग्नि-
पज्यन्) । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥

माध्यन्दिनं सवनम् अथेम विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातः-
सवनं रुद्रा माध्यन्दिनं सवनमादित्यास्तृती-
यसवनम् । श० १४ । १ । १ । १५ ॥

” ऊर्वाः (पितरः) माध्यन्दिने (सवने) । ऐ० ० । ३४ ॥

” मरुत्वद्धि माध्यन्दिनं सवनम् । तां० ९ । ७ ।
२ ॥ १३ । ९ । २ ॥

” इन्द्रस्य माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १४ । ५ ॥

” ऐन्द्रं वै माध्यन्दिनं सवनम् । जै० उ० १ । ३७ । ३ ॥

” एतद्वाऽ इन्द्रस्य निष्केवल्यं सवनं यन्माध्यन्दि-
नं सवनं तेन वृत्रमजिघांस्तेन द्यक्षिणीषत ।
श० ४ । ३ । ३ । ६ ॥

” ऐन्द्रं त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ० ४ । ४ ॥

” ऐन्द्रं हि त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० २९ । २ ॥

” त्रैष्टुभं वै माध्यन्दिनं सवनम् । ऐ० ६ । ११ ॥

” त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् । ष० १ । ४ ॥

” अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ०
४ । ४ ॥

” अन्तरिक्षं वै माध्यन्दिनं सवनम् । श० १२ ।
८ । २ । ९ ॥

” क्षत्रं माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १६ । ४ ॥

” स्वर्गो वै लोको माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ०
३ । १७ ॥

” एतद्वै यज्ञस्य स्वर्गं यन्माध्यन्दिनं सवनम् ।
तां० ७ । ४ । १ ॥

” साध्या वै नाम देवा आसंस्ते ऽवच्छिद्य तृतीय-
सवनमाध्यन्दिनेन सवनेन सह स्वर्गं लोकमायन् ।
तां० ८ । ३ । ५ ॥ ८ । ४ । ९ ॥

” मध्ये सन्तं (सूर्यमीक्षितं) माध्यन्दिनेन सव-
नेन कौ० १८ । ९ ॥

माध्यन्दिनं सवनम् सप्तदशपञ्चविंशौ (स्तोमौ) माध्यन्दिनं सवनम् (बहूतः) । तां० १६ । १० । ५ ॥

„ बाजवन्माध्यन्दिनं सवनम् । तां० १८ । ६ । ७ ॥

„ एतेन वै माध्यन्दिनं सवनं प्रतिष्ठितं यत्त्रिणिधनम् । तां० ७ । ३ । २ ॥

„ बार्हतं हि माध्यन्दिनं सवनम् । तां० ९ । ७ । ७ ॥

माध्यन्दिनः पवमानः प्राणो वै माध्यन्दिनः पवमानः । श० १४ । ३ । १ । २९ ॥

„ त्रिच्छन्दा माध्यन्दिनः पवमानः । ष० १ । ३ ॥

मानवम् (साम) एतेन वै मनुः प्रजातिं भूमानमगच्छत्प्रजायते बहुर्भवति मानवेन तुष्टुवानः । तां० १३ । ३ । १५ ॥

मानुषम् यदब्रुवन्मेदं प्रजापते रेतो दुषदिति तन्मादुषमभवत्तन्मादुषस्य मादुषत्वं मादुषं ह वै नामैतद्यन्मानुषं तन्मादुषं सन्मानुषमित्याचक्षते (इदं मे मादुषत् । तां० ८ । २ । १०) । षे० ३ । ३३ ॥

मामहानः (यजु० १७ । ५५) यजमानो वै मामहानः । श० ९ । २ । ३ । ९ ॥

मारणम् त्रिरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां शवाद्कारमाहृत्य चतुष्पथे बाधकामिधममुपसमाधाय वैभीतकेन स्रुवेण सर्षपतैलेनाहुतिसहस्रं जुहुयात्सम्मील्येन यत्र वृश्चशब्दः स्यात्सत्र पुरुषः शूलहस्त उत्तिष्ठति तं ब्रूयादमुञ्जहीति हन्त्येनम् । सा० ३ । ६ । ३ ॥

मारुतो मरुतां गणः (यजु० १८ । ४५) अस्तरिक्षलोको वै मारुतो मरुतां गणः । श० ९ । ४ । २ । ६ ॥

मार्गीयवम् (साम) देवं वा एतं (पशुपतिं) भृगयुरिति वदस्येतेन (मार्गीयवेण) वै स उभयेषां पशूनामाधिपत्यमाश्नुतोभयेषां पशूनामाधिपत्यमश्नुते मार्गीयवेण तुष्टुवानः । तां० १४ । ९ । १२ ॥

मार्जलीयः (पुरुषस्य) बाहू मार्जलीयश्चाग्नीषीयश्च । कौ० १७ । ७ ॥

मार्जालीयः बाहुऽपवास्य (यज्ञस्य) आग्नीध्रीयश्च मार्जालीयश्च । श०
३ । ५ । ३ । ४ ॥

॥ यामेन मार्जालीयमुपतिष्ठन्ते पितृलोकमेव तज्जयन्ति । तां०
५ । ४ । ११ ॥

मार्तण्डः (अदितिः) अधिकृतं हाष्टमं (पुत्रं) जनयाञ्चकार
मार्तण्डं संदेघो ह्येवास यावानेघोर्ध्वस्तावांस्तिर्यङ् पुरुष-
संमित इत्यु हैकऽ आहुः । श० ३ । १ । ३ । ३ ॥

॥ तदभ्यनूक्ता । (पश्यत ऋ० १० । ७२ । ८-) अष्टौ पुत्रासो
अदितेर्ये जातास्तन्वं परिदेवाँ उप्रैत् सप्तभिः परा मार्त-
ण्डमास्यदिति । तां० २४ । १२ । ५-६ ॥

॥ यं (मार्तण्डं) उ ह तद्विचक्रुः (देवा आदित्याः), स विवस्वा-
नादित्यस्तस्येमाः प्रजाः । श० ३ । १ । ३ । ४ ॥

माषाः तदु ह स्माहापि बर्कुर्वाणो माषान्मे पचत न वा पतेषांश्च
हविर्गृह्णन्तीति । श० १ । १ । १ । १० ॥

मासाः मासाः (संवत्सरस्य) कर्मकाराः । तै० ३ । ११ । १० । ३ ॥

॥ मासा वै रश्मयः । तां० १४ । १२ । ९ ॥

॥ मासा हवींश्चिषि । श० ११ । २ । ७ । ३ ॥

॥ यव्या मासाः । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

॥ मासा वै देवा अभिद्यवः । गो० पू० ५ । २३ ॥

॥ मासा वै पितरो बर्हिषदः । तै० १ । ६ । ८ । ३॥ ३ । ३ । ६ । ४ ॥

॥ मासा उपसदः । श० १० । २ । ५ । ६ ॥

॥ उदाना मासाः । तां० ५ । १० । ३ ॥

॥ पविर्न पवविष्यन्सहस्वान्तसहीनारुणो ऽरुणरजा इति । पते
ऽनुवाका अर्द्धमासानाञ्च मासानाञ्च नामधेयानि । तै० ३ ।
२० । १० । ३ ॥

किं नु ते ऽस्मास्तु (मासेषु) इति । इमानि स्थूलानि पर्वाणि ।
जै० उ० ३ । २३ । ८ ॥

[मित्रः

(४०८)

माहाराज्यम् अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः...

अभ्यविञ्चन्.....पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधि-
पत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८ । १४ ॥

माहिनम् इयं (पृथिवी) वै माहिनम् । ऐ० ३ । ३८ ॥

मित्रः सर्वस्य ह्येव मित्रो मित्रम् । श० ५ । ३ । २ । ७ ॥

„ मित्रः (एवैनं) सत्यानां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥

„ मित्र ! सत्यानामाधिपते ! । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥

„ ब्रह्मैव मित्रः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

„ ब्रह्म हि मित्रः । श० ४ । १ । ४ । १० ॥ ५ । ३ । २ । ४ ॥

„ मित्रः क्षत्रं क्षत्रपतिः । श० ११ । ४ । ३ । ११ ॥ तै० २ । ५ ।
७ । ४ ॥

„ मित्रः (श्रियः) क्षत्रम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥

„ अथ यत्रैतत्प्रतितरामिव तिरञ्जीवार्चिः संशाम्यतो भवति तर्हि
ह्येष (अग्निः) भवति मित्रः । श० २ । ३ । २ । १२ ॥

„ तं यद् घोरसंस्पर्शं सन्तं (अग्निं) मित्रकृत्येषोपासते तदस्य
मैत्रं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥

„ (यजु० ११ । ५३ ॥ १४ । २४ ॥) प्राणो वै मित्रः । श० ६ ।
५ । १ । ५ ॥ = । ४ । २ । ६ ॥ १२ । ९ । २ । १२ ॥

„ ते हेमे लोका मित्रगुप्तास्तस्मादेषां लोकानां न किञ्चन मीयते ।
श० ६ । ५ । ४ । १४ ॥

„ (यजु० ११।६४) अयं वै वायुर्मित्रो यो ऽयं पवते । श० ६ । ५ ।
४ । १४ ॥

„ मित्रस्य सङ्गवः (कालविशेषः) । तै० १ । ५ । ३ । १ ॥

„ अहर्मिमित्रः । तां० २५ । १० । १० ॥

„ अहर्षे मित्रः । ऐ० ४ । १० ॥

„ मैत्रं वा अहः । तै० १ । ७ । १० । १ ॥

„ वरुण्या वाऽ एता ओषधयो याः कृष्टे जायन्ते ऽथैते मैत्रा यन्ना-
म्बाः । श० ५ । ३ । ३ । ८ ॥

„ वरुण्या वाऽ एषा (शाखा) या परशुवृक्षणाथैषा मैत्री (शाखा)
या स्वयम्प्रशीर्णा । श० ५ । ३ । २ । ५ ॥

मित्रः वरुण्यो वाऽ एष यो ऽग्निना ऋतो ऽथैष मैत्रो य ऊष्मणा
ऋतः । श० ५ । ३ । २ । ८ ॥

„ वरुण्यं वाऽ एतद्यन्मथितं (आज्यं) अथैतन्मैत्रं यत्स्वयमुदि-
तम् । श० ५ । ३ । २ । ६ ॥

„ मैत्रो वै दक्षिणः । वरुणः सव्यः । तै० १ । ७ । १० । १ ॥

„ तद्यदेवात्र पयस्तन्मित्रस्य, सोम एष वरुणस्य । श० ४ । १ ।
४ । ९ ॥

„ यः (अर्धमासः) आपूर्यते स मित्रः । तां० २५ । १० । १० ॥

„ यो (अर्धमासः) ऽपक्षीयते स मित्रः । श० २ । ४ । ४ ।
१८ ॥

„ यद्वाऽ ईजानस्य स्विष्टं भवति मित्रो ऽस्य तद् गृह्णाति । श०
४ । ५ । १ । ६ ॥

„ मित्रेणैव यज्ञस्य स्विष्टं शमयति । तै० १ । २ । ५ । ३ ॥

„ मैत्रो नवकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

मित्रम् प्राणो मित्रम् । जै० उ० ३ । ३ । ६ ॥

मित्रावृहस्पती मित्रावृहस्पती वै यज्ञपथः । श० ५ । ३ । २ । ४ ॥

मित्रावरुणौ प्राणापानौ मित्रावरुणौ । तां० ६ । १० । ५ ॥ ९ । ८ ।
१६ ॥ तै० ३ । ३ । ६ । ९ ॥

„ (यजु० १४ । २४) प्राणो वै मित्रो ऽपानो वरुणः । श०
८ । ४ । २ । ६ ॥ १२ । ९ । २ । १२ ॥

„ मित्रावरुणौ (एवैनं) प्राणापानाभ्याम् (अवतः) । तै०
१ । ७ । ६ । ६ ॥

„ प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ । श० १ । ८ । ३ । १२ ॥ ३ ।
६ । १ । १६ ॥ ५ । ३ । ५ । ३४ ॥ ९ । ५ । १ । ५६ ॥

„ प्राणोदानौ मित्रावरुणौ । श० ३ । २ । २ । १३ ॥

„ अहोरात्रौ वै मित्रावरुणौ । तां० २५ । १० । १० ॥

„ अहर्वै मित्रो रात्रिर्वरुणः । पे० ४ । १० ॥

„ अर्धमासौ (=शुक्लकृष्णपक्षौ) वै मित्रावरुणौ । तां० २५ ।
१० । १० ॥

- मित्रावरुणौ अथेतावेवार्धमालौ मित्रावरुणौ, य एवापूर्यते स वरुणो
 योऽपक्षीयते स मित्रः । श० २ । ४ । ४ । १८ ॥
- „ बाहू वै मित्रावरुणौ । श० ५ । ४ । १ । ३५ ॥
- „ अयं वै (पृथिवी-) लोको मित्रो ऽसौ (घुलोकः)
 वरुणः । श० १२ । ९ । २ । १२ ॥
- „ घाघापृथिवीं वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम । तां० १४ ।
 २ । ४ ॥
- „ गोसंस्तवी वै मित्रावरुणौ । कौ० १८ । १३ ।
- „ अथ यद्गोऽआयुषी (स्तोमौ) उपयन्ति । मित्रावरुणा-
 वेव देवते यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १६ ॥
- „ अथ (अग्निः) यदुच्च हृष्यति नि च हृष्यति तदस्य
 मैत्रावरुणं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
- „ एतद्वै मित्रावरुणयोः स्वं हविर्यत्पयस्या । कौ० १८ । १२ ॥
- „ मैत्रावरुणी पयस्या । श० २ । ४ । ४ । १४ ॥ ५ । ५ ।
 १ । १ ॥
- „ मैत्रावरुणी वा अनूबन्ध्या । कौ० ४ । ४ ॥
- „ यदा न कश्चन रसः पर्यशिष्यत तत एषा मैत्रावरुणी
 वशा समभवत्सस्मादेषा न प्रजायते । श० ४ । ५ । १ । ९ ॥
- „ सा हि मैत्रावरुणी यद्वशा । श० ५ । ५ । १ । ११ ॥
- „ उदीची दिक् । मित्रावरुणौ देवता । तै० ३ । ११ । ५ । २ ॥
- „ मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधस्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्या-
 रिष्ट्यै (यजु० ११ । ३) । श० १ । ३ । ४ । ४ ॥
- „ मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरास-
 ङ्ग्यः स्वाहा । श० ५ । २ । ४ । ५ ॥
- „ मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् (यजु० २ । १६) । श०
 १ । ८ । ३ । १२ ॥
- „ षड्भिर्मैत्रावरुणैः (पशुभिः) शरदि (यजते) । श०
 १३ । ५ । ४ । २८ ॥

मिथुनम् इन्द्रं वै मिथुनम् । ऐ० ३ । ५० ॥ श० ११ । १ । २ । ६ ॥

मिथुनम् तस्माद्यः कश्च मिथुनमुपप्रैति गन्धं चैव स रूपं कामयते ।
श० ९ । ४ । १ । ४ ॥

„ तद्यथा हैवेदं मानुषस्य मिथुनस्यान्तं गत्वा संविद इव भव-
ति । श० १० । ५ । २ । ११ ॥

„ व्यृद्धं वाऽ एतन्मिथुनं यदन्यः पश्यति । श० ४ । ६ । ७ । ९ ॥

„ मिथुनं वै पशवः । ऐ० ४ । २१ ॥ ५ । १६, १७, १८ । १९ ॥

मिमिक्षताम् (यजु० १३ । ३२) इमं यज्ञं मिमिक्षतामितीमं यज्ञमवता-
मित्येतत् । श० ७ । ५ । १ । १० ॥

मुखम् मुखं प्रतीकम् । श० १४ । ४ । ३ । ७ ॥

मुञ्जः अग्निर्देवेभ्य उदकामत्त मुञ्जं प्राविशत्तस्मात्स सुषिरः । श०
६ । ३ । १ । २६ ॥

„ सैषा योनिरग्नेर्यन्मुञ्जः । श० ६ । ३ । १ । २६ ॥

„ योनिरेषाग्नेर्यन्मुञ्जः । श० ६ । ६ । १ । २३ ॥

„ योनिर्मुञ्जाः । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥

„ यक्षिया हि मुञ्जाः । श० १२ । ८ । ३ । ६ ॥

„ ऊर्वा मुञ्जाः । तै० ३ । ८ । १ । १ ॥

मुदः (अप्सरसः, यजु० १८ । ३८) ओषधयो वै मुदं ओषधिभिर्हीदंश्च
सर्वे मोदते । श० ९ । ४ । १ । ७ ॥

मुम्ययनयज्ञः स एष सर्वकामस्य यज्ञः । कौ० ४ । १० ॥

मुष्करः (पशुः) प्रजननं वै मुष्करः । श० ५ । १ । ३ । १० ॥

मुष्टिः (यजु० २३ । २४) राष्ट्रं मुष्टिः । श० १३ । २ । ९ । ७ ॥ तै०
३ । ९ । ७ । ५ ॥

मुसकम् योनिरुलूखलम्..... शिश्रं मुसलम् । श० ७ । ५ । १ । ३८ ॥

मुहूर्ताः स (प्रजापतिः) पञ्चदशाहो रूपाण्यपश्यदात्मनस्तन्वो मुहूर्ता

„ लोकम्पृणाः पञ्चदशैव रात्रेस्तद्यन्मुहु प्रायन्ते तस्मान्मुहूर्ताः।
श० १० । ४ । २ । १८ ॥

„ लोकम्पृणाभिः (इष्टकार्भिः) मुहूर्तान् (आग्नोति) । श० १० ।
४ । ३ । १२ ॥

„ अथ यत्क्षुद्राः सन्त इमाँलोकानापूरयन्ति तस्मात् (मुहूर्ताः)
लोकम्पृणाः (इष्टकाः) । श० १० । ४ । २ । १८ ॥

[मृच

(४१२)

मुहूर्तः चित्रः केतुर्वाता प्रदाता सविता प्रसविताभिश्शस्तानुमन्तेति
एत ऽनुवाका मुहूर्तानां नामधेयानि । तै० ३ । १० । १० । ३॥

- मूर्धा (पञ्च० १४ । ९) प्रजापतिर्वै मूर्धा । श० ८ । २ । ३ । १० ॥
,, एष वै मूर्धा य एष (सूर्यः) तपति । श० १३ । ४ । १ । १३ ॥
,, मूर्धा हृदये (ध्रितः) । तै० ३ । १० । ८ । ९ ॥
,, स यो ह तत्राङ्गीयाद्वा भक्षयेद्वा मूर्धा हास्य विपतेत् । श०
३ । ६ । १ । २३ ॥
,, मूर्धास्य विपतेद्य एनमुपबद्धेतेति । श० ११ । ४ । १ । ९ ॥
,, मूर्धा ते व्यपतिष्यत् । तै० ३ । १० । ९ । ५ ॥

मूलवर्हणी (=मूलनक्षत्रम्) मूलमेषामवृक्षामेति । तन्मूलवर्हणी । तै०
१ । ५ । २ । ८ ॥

,, निर्ऋत्यै मूलवर्हणी । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥ ३ । १ । २ । ३ ॥

मृगयुः देवं वा एतं (पशुपतिं) मृगयुरिति वदन्ति । तां० १४ । ९ ।
१२ ॥ 'मृगव्याधः' शब्दमपि पश्यत ।

मृगव्याधः (=Dog-star) य उ एव मृगव्याधः स (रुद्रः) उ एव सः
(मृगव्याध एकादशरुद्रेष्वन्यतमः—नीलकण्ठीयटीकायुते
महाभारत आदिपर्वणि अध्याये ६६, ऋ० २ ॥) । ऐ० ३ ।
३३ ॥ 'मृगयुः' शब्दमपि पश्यत ।

मृगशीर्षम् (नक्षत्रम्) एतद्वै प्रजापतेः शिरो यन्मृगशीर्षम् । श० २ ।
१ । २ । ८ ॥

,, स (प्रजापती रुद्रेण) विद्ध ऊर्ध्व उदप्रपतत्तमेतं मृगः
(=मृगशीर्षनक्षत्रम्) इत्याचक्षते । ऐ० ३ । ३३ ॥

,, सोमो राजा मृगशीर्षेण आगन् । तै० ३ । १ । १ । २ ॥

,, स (सोमः) एतच्छ सोमाय मृगशीर्षाय इयामाकं चरुं पयसि
निरवपत् । ततो वै स ओषधीनां राज्यमभ्यजयत् ।
तै० ३ । १ । ४ । ३ ॥

मृच स (फेनः) यक्षोपहन्यते मृदेष भवति । श० ६ । १ । ३ । ३ ॥

,, यन्मृदिषं तद् (पृथिवी) । श० १४ । १ । २ । ९ ॥

- मृत्युः स समुद्रादमुच्यत स मुच्युरभवत्तं वा एतं मुच्युं सन्तं मृत्यु-
रित्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्य-
क्षद्विषः । गो० पू० १ । ७ ॥
- ” एष वै मृत्युर्यत्संवत्सरः । एष हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुः
क्षिणोत्यथ म्रियन्ते । श० १० । ४ । ३ । १ ॥
- ” एष एव मृत्युः । य एष (सूर्यः) तपति । श० २ । ३ । ३ । ७ ॥
- ” स एष (आदित्यः) मृत्युः । श० १० । ५ । १ । ४ ॥
- ” स एष एव मृत्युः । य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः । श० १० ।
५ । २ । ३ ॥
- ” स एष एव मृत्युः । य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषो यश्चायं
दक्षिणे ऽक्षन्पुरुषस्तस्य हैतस्य हृदये पादावतिहतौ तौ हैतदा-
च्छिद्योत्क्रामति स यदोत्क्रामत्यथ हैतत्पुरुषो म्रियते । श०
१० । ५ । २ । १३ ॥
- ” अग्निर्वै मृत्युः । कौ० १३ । ३ ॥ श० १४ । ६ । २ । १० ॥
- ” यो ऽग्निर्मृत्युस्सः । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥ २ । १३ । २ ॥
- ” सो (अग्निः=मृत्युः) ऽपामन्नम् । श० १४ । ६ । २ । १० ॥
- ” अथैत एव मृत्यवो यदग्निर्वीयुरादत्यश्चन्द्रमाः ॥ ते ह पुरुषं
जायमानमेव मृत्युपाशैरभिदधति । जै० उ० ४ । ९ । १-२ ॥
- ” मृत्युस्तदभवद्जाता । शमितोग्रो विशांपतिः । तै० ३ । १२ ।
९ । ६ ॥
- ” मृत्युः शमिता । तां० २५ । १८ । ४ ॥
- ” एको वा अमुष्मिँल्लोके मृत्युः । अशनया मृत्युरेव । तै० ३ ।
९ । १५ । १-२ ॥
- ” अशनाया हि मृत्युः । श० १० । ६ । ५ । १ ॥
- ” अमृत्युर्वा अन्यो ब्रूणहत्याया इत्याहुः । ब्रूणहत्या वाव
मृत्युरिति । तै० ३ । ९ । १५ । २ ॥
- ” तस्य (अग्नेर्वैश्वानरस्य) एष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपि
धाय शृणोति स यदोत्क्रामिष्यन्भवति नैतं घोषं शृणोति ।
श० १४ । ८ । १० । १ ॥

[मेघपतिः

(४१४)

मृत्युः मृत्युर्वै तमः । श० १४ । ४ । १ । ३२ ॥ गो० ३० । ५ । १ ॥

„ मृत्युर्वै तमश्छाया । ऐ० ७ । १२ ॥

„ अमृतान्मृत्युः (निर्वर्तते) । श० १० । २ । ६ । १९ ॥

मृषः (यजु० ११ । ७२) अग्रे त्वं तरा मृध इत्यग्ने त्वं तर सर्वान्पाप्मन इत्येतत् । श० ६ । ६ । ३ । ४ ॥

„ (यजु० ११ । १८) पाप्मा वै मृधः । श० ६ । ३ । ३ । ८ ॥

मेखला सा (मेखला) वै शार्णी भवति । श० ३ । २ । १ । ११ ॥

„ तथोऽपवैष एतां (मेखलां) मध्यत आत्मन ऊर्जं धत्तं समाप्तिं तया समाप्नोति । श० ३ । २ । १ । १० ॥

• मेघः मेदो वै मेघः । श० ३ । ८ । ४ । ६ ॥

मेघः (यजु० १३ । ४७) (=अन्नं) मेघायित्यन्नायत्येतत् । श० ७ । ५ । २ । ३२ ॥

„ पुरुषं वै देवाः पशुमालभन्त तस्माद्दालब्धान्मेघ उदाक्रामत्सोऽश्वं प्राविशत्.....तेऽश्वमालभन्त.....ते गामालभन्त... स (मेघो देवैः) अनुगतो व्रीहिरभवत् । ऐ० २ । ८ ॥

„ पुरुषश्च ह वै देवाः । अग्रे पशुमालेभिरे तस्यालब्धस्य मेघोऽपचक्राम सोऽश्वं प्राविशे तंऽश्वमालभन्त.....ते गामालभन्ततेऽविमालभन्त.....तेऽजमालभन्त.....ताविमौ व्रीहियवौ (मेघः) । श० १ । २ । ३ । ६, ७ ॥

„ (देवाः) तं (मेघम्) खनन्त इवान्वीषुस्तमन्वविन्दस्ताविमौ व्रीहियवौ । श० १ । २ । ३ । ७ ॥

„ सर्वेषां वाऽ एष पशूनां मेघो यद्व्रीहियवौ । श० ३ । ८ । ३ । १ ॥

„ मेदो वै मेघः । श० ३ । ८ । ४ । ६ ॥

„ पशुर्वै मेघः । ऐ० २ । ६ ॥

„ मेघो वा एष पशूनां यत्पुरोडाशः । कौ० १० । ५ ॥

„ मेघो वा आज्यम् । तै० ३ । ९ । १२ । १ ॥

मेघपतिः यजमानो मेघपतिः । ऐ० २ । ६ ॥

„ यजमानो वै मेघपतिः । कौ० १० । ४ ॥

„ देवस्यैव मेघपतिरिति । कौ० १० । ४ ॥

मेघपतिः अथो अस्वाहुर्यस्यै वाव कस्यै च देवतायै पशुरालभ्यते
सैव मेघपतिरिति । ऐ० २ । ६ ॥

मेघम् मेघ्या वा आपः । श० १ । १ । १ । १ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥

मेनका (यजु० १५ । १६) (घायोः) मेनका च सहजन्त्या चाप्सरसा-
विति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहिस्थिरिमे तु ते
घावापृथिवी । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥

॥ नृषणश्वस्य ह मेनस्य मेनका नाम दुहिता स तांश्च हेन्द्र-
श्रकमे । ष० १ । १ ॥

मेनिः (क्रोधरूपा शक्तिरिति ऐ० ८ । २४ भाष्ये सायणः) अमेन्यस्मे नृष्णा-
नि धारय' (यजु० ३८ । १४) इत्यकुष्यञ्चो धनानि धारयेत्येवै-
तदाह । श० १४ । २ । २ । ३० ॥

॥ ता वा एता अङ्गिरसां जामयो यन्मेनयः । गो० पू० १ । ९ ॥

मेघः स हि प्रत्यक्षं वरुणस्य पशुर्यन्मेषः । श० २ । ५ । २ । १६ ॥

॥ सारस्वतं मेषम् (आलमते) । तै० १ । ८ । ५ । ६ ॥

मैत्रावरुणः (ऋत्विग्विमेषः) प्रणेता वा एष होत्रकाणां यन्मैत्रावरुणः ।
ऐ० ६ । ६ ॥ गो० उ० ५ । १२ ॥

॥ यज्ञो वै मैत्रावरुणः । कौ० १३ । २ ॥

॥ मनो वै यज्ञस्य मैत्रावरुणः । ऐ० २ । ५, २६, २८ ॥

॥ मनो (वै यज्ञस्य) मैत्रावरुणः । श० १२ । ८ । २ । २३ ॥

॥ चक्षुश्च मनश्च मैत्रावरुणः । ऐ० २ । २६ ॥

॥ चक्षुर्मैत्रावरुणः । कौ० १३ । ५ ॥

॥ गायत्रो वै मैत्रावरुणः । तां० ५ । १ । १५ ॥

॥ तस्मान्मैत्रावरुणो वामदेवान् प्रच्यवते । गो० उ० ३ । २३ ॥

॥ वामदेव्यं मैत्रावरुणसाम भवति । श० १३ । ३ । ३ । ४ ॥

॥ शाकरं (पृष्ठं) मैत्रावरुणस्य । कौ० २५ । ११ ॥

॥ पेंद्रावरुणं मैत्रावरुणस्योक्तं भवति । गो० उ० ४ । १४ ॥

मैघातिथम् (साम) एतेन वै मेघातिथिः काण्वो विभिन्दुकाङ्घ्रिनीर्गा
उद्सृजत पशूनामवरुधै मैघातिथं क्रियते । तां०
१५ । १० । ११ ॥

श्लेषः ते ऽसुरा आसवचसो हे ऽलवो हे ऽलव इति ('हेलो हेल इति' इति काण्वशास्त्रीयशतपथपाठः—See footnote No. 3 in the शतपथ translated by Prof. Eggeling. 'हेलयो हेलय इति' इति महाभाष्ये १।१ प्रथमाह्निके) वदन्तः परावभूवुः ॥ तत्रैतामपि वाचमूढुः उपजिज्ञास्याँ स म्लेच्छस्तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेदसुर्या ह्येषा वाक् । श० ३।२।१।२३-२४ ॥

(य)

- यकृत् यकृत् सविता । श० १२।९।१।१५ ॥
 यक्षः यक्षमिव चक्षुषः प्रियो वो भूयासम् । मं० १।७।१४ ॥
 यजत्रम् यजत्रमिति यक्षियमित्येतत् । श० ६।६।३।६ ॥
 यजमानः यद्यजते तद्यजमानः । श० ३।२।१।१७ ॥
 " एष उ एव प्रजापतिर्यो यजते । ऐ० २।१८ ॥
 " यजमानो ह्येव स्वे यज्ञे प्रजापतिः । श० १।६।१।२० ॥
 " इन्द्रो वै यजमानः । श० २।१।२।११ ॥ ४।५।४।८ ॥ ५।१।३।४ ॥
 " यजमानो मेघपतिः । ऐ० २।६ ॥
 " यजमानो वै मेघपतिः । कौ० १०।१४ ॥
 " यजमानो हि यज्ञपतिः । श० ४।२।२।१० ॥
 " यजमानो वै यज्ञपतिः (यजु० १।२) । श० १।१।२।१२ ॥ १।२।२।२।८ ॥ १।७।१।११ ॥
 " यजमानो ऽग्निः । श० ६।३।३।२१ ॥ ६।५।१।८ ॥ ७।४।१।२१ ॥ ९।२।३।३३ ॥
 " स उऽएव यजमानस्तस्मादाग्नेयो भवति । श० ३।६।१।६ ॥
 " आहवनीयभाग्यजमानः । कौ० ३।९ ॥
 " मनो यजमानस्य (रूपम्) । श० १२।८।२।४ ॥
 " यजमानो वै दादवान् (यजु० १२।१०६ ॥ १३।५२) । श० २।३।४।३८, ४० ॥ ७।३।१।२९ ॥ ७।५।२।३९ ॥

- यजमानः यजमानो वै मामहानः (यजु० १७ । ५५) । श० ९ । २ ।
३ । ६ ॥
- ” यजमानो वै सुस्रयुः (ऋ० ३ । २७ । १) । श० १ । ४ ।
१ । २१ ॥
- ” यजमानो वै हव्यदातिः (ऋ० ६ । १६ । १०) । श० १ । ४ ।
१ । २४ ॥
- ” यजमानः पशुः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥ २ । २ । ८ । २ ॥
- ” यजमानो वै यूपः । ऐ० २ । ३ ॥ श० १३ । २ । ६ । ६ ॥
- ” एष वै यजमानो ययूपः । तै० १ । ३ । ७ । ३ ॥
- ” यजमानो वाऽ एष निदानेन ययूपः । श० ३ । ७ । १ । ११ ॥
- ” यजमानदेवत्यो वै यूपः । तै० ३ । ६ । ५ । २ ॥
- ” यजमानो वै प्रस्तरः । ऐ० २ । ३ ॥ श० १ । ८ । १ । ४५ ॥
१ । ८ । ३ । ११, १४, १६ ॥ तै० ३ । ३ । ६ । ७, ८ ॥ ३ ।
३ । ९ । २, ३ ॥ तां० ६ । ७ । १७ ॥
- ” यजमानो यज्ञः । श० १३ । २ । २ । १ ॥
- ” यजमानो वै यज्ञः । ऐ० १ । २८ ॥
- ” आत्मा वै यज्ञस्य यजमानो ऽङ्गान्मृत्युजः । श० ६ । ५ ।
२ । १६ ॥
- ” संवत्सरो यजमानः । श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥
- ” एष वै यजमानो यत्सोमः । तै० १ । ३ । ३ । ५ ॥
- ” यजमानो वाऽ अग्निष्ठा । श० ३ । ७ । १ । १६ ॥
- ” यजमानो हि सूक्तम् । ऐ० ६ । ६ ॥
- ” यजमानः स्रुचः । तै० ३ । ३ । ६ । ३ ॥
- ” यजमानदेवत्या वपा । तै० ३ । ९ । १० । १ ॥
- ” यजमानच्छन्दसमेवोष्णिक् । कौ० १७ । २ ॥
- ” यजमानच्छन्दसं पंक्तिः । कौ० १७ । २ ॥
- ” यजमानच्छन्दसं द्विपदा (ऋक्) । कौ० १७ । २ ॥
- ” यजमानो वै द्वियजुः (इष्टका) । श० ७ । ४ । २ । १६, २४ ॥
- ” (यजमानः) अहतं वसानो ऽवधृथादुदैति चतुरो मासो ;
न मांसमश्नाति न स्त्रियमुपैति । तां० १६ । १३ । ६, ११, १४ ॥

यजमानः यां वै काञ्च यज्ञऽ ऋत्विजऽ आशिषमाशासते यजमान-
स्यैव सा । श० १ । ६ । १ । २१ ॥

„ त्वङ्मा०स० स्नाय्वस्थि मज्जा । एतमेव तत्पञ्चधा
विहितमात्मानं वरुणपाशान्मुञ्चति (यजमानः) । तै० १ !
५ । ६ । ७ ॥

„ स ह सर्वतनूरेव यजमानो ऽमुष्मिँल्लोके सम्भवति य एवं
विद्वान्निष्क्रीत्या यजते । श० ११ । १ । ८ । ६ ॥

यजमानभागः यजमानो वै यजमानभागः । ऐ० ७ । २६ ॥

„ यज्ञो वै यजमानभागः । ऐ० ७ । २६ ॥

यजुर्वेदः यजो ह वै नामैतद्यजुरिति । श० ४ । ६ । ७ । १३ ॥

„ एष (वायुः) हि यज्ञेवेद० सर्वं जनयत्येतं यन्तमिदमनु
प्रजायते तस्माद्वायुरेव यजुः ॥ अयमेवाकाशो जूः । यदि-
दमन्तरिक्षमेत० ह्याकाशमनु जवते तदेतद्यजुर्वायुश्चान्त-
रिक्षं च यञ्च जूश्च तस्माद्यजुः । श० १० । ३ । ५ । २ ॥

„ यजुरित्येष (पुरुषः) हीद० सर्वं युनक्ति । श० १० । ५ ।
२ । २० ॥

„ प्राणो वै यजुः प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि युज्यन्ते ।
श० १४ । ८ । १४ । २ ॥

„ प्राण एव यजुः । श० १० । ३ । ५ । ४ ॥

„ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सवितः प्रार्पयतु श्रेष्ठ-
तमाय कर्मण इत्येवमार्दिं कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । गो०
पू० १ । २९ ॥

„ अष्टौ (बृहतीसहस्राणि—८०००×३६=२८८००० अक्षराणि)
यजुषाम् । श० १० । ४ । २ । २४ ॥

„ व्यृद्धमु वाऽ एतद्यज्ञस्य । यदयजुष्केण क्रियते । श० १३ ।
१ । २ । १ ॥

„ (प्रजापतिः) यजुर्भ्यो ऽधि विष्णुम् (असृजत) । तै० २ ।
३ । २ । ४ ॥

„ यजू०षि विष्णु (स्वभागरूपेणाभजत) । श० ४ । ६ ।

यजुर्वेदः आज्ञाद्भुतयो ह वाऽ एता देवानाम् । यद्यजूंषि । श० ११ ।
५ । ६ । ५ ॥

- ” अन्नमेव यजुः । श० १० । ३ । ५ । ६ ॥
- ” (सूर्यः) यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥
- ” (आदित्यस्थः) पुरुषो यजूंषि । श० १० । ५ । १ । ५ ॥
- ” आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञ-
वल्क्येनाख्यायन्ते । श० १४ । ६ । ४ । ३३ ॥
- ” आदित्यानीमानि यजूंषीत्याहुः । श० ४ । ४ । ५ । १९ ॥
- ” अथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूंषि
स यजुषां लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥
- ” अग्निर्यजुषाम् (समुद्रः) । श० ९ । ५ । २ । १२ ॥
- ” मनोऽध्वर्युः (= यजुर्बिहृत्विक्) । श० १ । ५ । १ । २१ ॥
- ” अथ यन्मनो यजुष्टत् । जै० उ० १ । २५ । ६ ॥
- ” मनो यजुर्वेदः । श० १४ । ४ । ३ । १२ ॥
- ” मन एव यजूंषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ ॥
- ” मनो वै यजुः । श० ७ । ३ । १ । ४० ॥
- ” वागेवऽर्चश्च सामानि च । मन एव यजूंषि । श० ४ ।
६ । ७ । ५ ॥
- ” (प्रजापतिः) भुव इत्येष यजुर्वेदस्य रसमादत्त । तदिदमन्त-
रिक्षमभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स वायुरभवद्रसस्य
रसः । जै० उ० १ । १ । ४ ॥
- ” भुवरिति यजुर्भ्योक्षरत् सोऽन्तरिक्षलोकोऽभवत् । ष० १ । ५ ॥
- ” यजुषां वायुर्देवतं तदेव ज्योतिस्त्रैण्डुमं छन्दोऽन्तरिक्षं स्था-
नम् । गो० पू० १ । २९ ॥
- ” वायोर्यजुर्वेदः (अजायत) । श० ११ । ५ । ८ । ३ ॥
- ” अन्तरिक्षं वै यजुषामायतनम् । गो० पू० २ । २४ ॥
- ” अन्तरिक्षलोको यजुर्वेदः । ष० १ । ५ ॥
- ” अन्तरिक्षं यजुषा (जयति) । श० ४ । ६ । ७ । २ ॥
- ” ुजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्वीनिम् । तै० ३ । १२ । ६ । २ ॥
- ” दक्षिणां (दिशं) आहुर्यजुषामपाराम् । तै० ३ । १२ । ६ । १ ॥

- यजुर्वेदः सर्वा गतिर्याजुषी ह्येव शश्वत् । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥
- „ यजुर्वेदो महः । श० १२ । ३ । ४ । ९ ॥
- „ यजुर्वेद एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ अद्वा वै तद्यद्यजुः । श० १३ । ८ । २ । ७ ॥
- „ तस्माद्यजूंषि निरुक्तानि सन्त्यनिरुक्तानि । श० ४ । ६ । ७ । १७ ॥
- „ मज्जा यजुः । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥
- „ (दक्षिणनेत्रस्य) यदेव तान्नमिव बभ्रुरिव तद्यजुषाम् (रूपम्) ।
जै० उ० ४ । २४ । १२ ॥
- „ अथ यत्कृष्णं तदपां रूपमन्नस्य मनसो यजुषः । जै० उ० १ ।
२५ । ९ ॥
- „ स (प्रजापतिः) यजूंष्येव हिङ्गारमकरोत् । जै० उ० १ ।
१३ । ३ ॥
- „ तस्य (यमस्य) पितरो विशः.....यजूंषि वेदः.....
यजुषामनुवाकं व्याचक्षाण इवानुद्रवेत् । श० १३ । ४ । ३ । ६ ॥
- „ बह्वी वै यजुःष्वाशीः । श० १ । २ । १ । ७ ॥ ३ । ५ । १ ।
११ ॥ ३ । ६ । १ । १७ ॥
- यजुष्मत्स्यः (इष्टकाः) यजुष्मतीभिरहान्यर्घमासान्मासानृतून्(आप्नोति)।
श० १० । ४ । ३ । १२ ॥
- „ अन्नं वै यजुष्मत्य इष्टकाः । श० ८ । ७ । २ । ८ ॥
- „ यजुष्मत्यो ज्योतिस्तद्व्यह्नां रूपम् । श० १० । १ । ६ । १७ ॥
- „ मज्जानो ज्योतिस्तद्वि यजुष्मतीनां रूपम् । श० १० ।
२ । ६ । १८ ॥
- „ (अस्य लोकस्य) मनुष्या यजुष्मत्यः । श० १० । ५ । ४ । १ ॥
- यज्ञः स (सोमः) तायमानो जायते स यन्जायते तस्माद्यज्ञो यज्ञो
इ वै नामैतद्यद्यज्ञ इति । श० ३ । ६ । ४ । २३ ॥
- „ प्राणः (यज्ञस्य) सोमः । कौ० ९ । ६ ॥
- „ अध्वरो वै यज्ञः । श० १ । २ । ४ । ५ ॥ १ । ४ । १ । ३५-३९ ॥
१ । ४ । ५ । ३ ॥ २ । ३ । ४ । १० ॥ ३ । ५ । ३ । १७ ॥ ३ ।
९ । २ । ११ ॥

- यज्ञः यज्ञो वै मखः । श० ६ । ५ । २ । १ ॥ तै० ३ । २ । ८ । ३ ॥
 तां० ७ । ५ । ६ ॥
- „ मख इत्येतद्यज्ञनामधेयम् । गो० ७० २ । ५ ॥
- „ यज्ञो वै नमः (यजु० १३ । ८ ॥) । श० ७ । ४ । १ । ३० ॥
- „ यज्ञो वै नमः । श० २ । ४ । २ । २४ ॥ २ । ६ । १ । ४२ ॥ ९ ।
 १ । १ । १६ ॥
- „ यज्ञो वै स्वाहाकारः । श० ३ । १ । ३ । २७ ॥
- „ यज्ञो वै भुज्युः (यजु० १८ । ४२) यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि
 भुनक्ति । श० ६ । ४ । १ । ११ ॥
- „ यज्ञो भगः (यजु० ११ । ७) । श० ६ । ३ । १ । १९ ॥
- „ गातुं वित्त्वेति यज्ञं वित्त्वेत्येवैतदाह । (गातुः=यज्ञः) । श० १ ।
 ९ । २ । २८ ॥ ४ । ४ । ४ । १३ ॥
- „ यज्ञो वाऽ ऋतस्य योनिः (यजु० ११ । ६) । श० १ । ३ । ४ । १६ ॥
- „ यज्ञो ह वै मधुसारघम् । श० ३ । ४ । ३ । १३ ॥
- „ यज्ञो वै महिमा (यजु० ११ । ६) । श० ६ । ३ । १ । १८ ॥
- „ यज्ञो वै देवानां महः । श० १ । ९ । १ । ११ ॥
- „ पप ह वै महान्देवो यद्यज्ञः । गो० पू० २ । १६ ॥
- „ यज्ञो वै बृहन्विपादिचत् । श० ३ । ५ । ३ । १२ ॥
- „ यज्ञो वा अर्यमा । तै० २ । ३ । ५ । ४ ॥
- „ यज्ञो वै तार्यम् । तै० १ । ३ । ७ । १ ॥ ३ । ९ । २० । १ ॥
- „ यज्ञो वै वसुः (यजु० १ । २) । श० १ । ७ । १ । ९, १४ ॥
- „ यज्ञो विदद्वसुः । तां० १५ । १० । ४ ॥
- „ यज्ञो वै विदद्वसुः । तां० ११ । ४ । ५ ॥
- „ यज्ञो ऽसुरेषु विदद्वसुः । तां० ८ । ३ । ३ ॥
- „ यत्संयद्वसुः (यजु० १५ । १८) इत्याह यज्ञश्च हि संयन्तीतीदं
 वस्विति । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥
- „ यज्ञो वै सुतर्मा नौः कृष्णाजिनं वै सुतर्मा नौर्वाग्वै सुतर्मा नौः ।
 ऐ० १ । १३ ॥
- „ यज्ञो वै स्वः (यजु० १ । ११) अहर्देवाः सूर्यः । श० १ । १ ।
 २ । २१ ॥

[यज्ञः

(४२२)

- यज्ञः यज्ञो वै सुस्रम (यजु० १२ । ६७, १११) । श० ७ । २ । २ ।
४ ॥ ७ । ३ । १ । ३४ ॥
- „ यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म (यजु० १ । १) । श० १ । ७ । १ । ५ ॥
- „ यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म । तै० ३ । २ । १ । ४ ॥
- „ यज्ञो वै विद् (यजु० ३८ । १९) । श० १४ । ३ । १ । ९ ॥
- „ यज्ञो वै विशो यज्ञे हि सर्वाणि भूतानि विष्टानि । श० ८ । ७ ।
३ । २१ ॥
- „ ब्रह्म यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । १५ ॥
- „ ब्रह्म हि यज्ञः । श० ५ । ३ । २ । ४ ॥
- „ ब्रह्म वै यज्ञः । ऐ० ७ । २२ ॥
- „ सैषा त्रयीविद्या (=ऋक्सामयजूषि) यज्ञः । श० १ । १ । ४ । ३ ॥
- „ एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः । श० ४ । ३ । ४ । ३ ॥
- „ यज्ञः प्रजापतिः । श० ११ । ६ । ३ । ९ ॥
- „ यज्ञ उ वै प्रजापतिः । कौ० १० । १ ॥ १३ । १ ॥ २५ । ११ ॥
२६ । ३ ॥ तै० ३ । ३ । ७ । ३ ॥
- „ स वै यज्ञ एव प्रजापतिः । श० १ । ७ । ४ । ४ ॥
- „ प्रजापतिर्यज्ञः । ऐ० २ । १७ ॥ ४ । २६ ॥ श० १ । १ । १ । १३ ॥
१ । ५ । २ । १७ ॥ ३ । २ । २ । ४ ॥ तै० ३ । २ । ३ । १ ॥ गो०
उ० ३ । ८ ॥ ४ । १२ ॥ ६ । १ ॥
- „ प्रजापतिर्वै यज्ञः । गो० उ० २ । १८ ॥ तै० १ । ३ । १० । १० ॥
- „ प्राजापत्यो यज्ञः । तै० ३ । ७ । १ । २ ॥
- „ इन्द्रो यज्ञस्यात्मा । श० ९ । ५ । १ । ३३ ॥
- „ इन्द्रो यज्ञस्य देवता । ऐ० ५ । ३४ ॥ ६ । ९ ॥ श० २ । १ । २ । ११ ॥
- „ इन्द्रो वै यज्ञस्य देवता । श० १ । ४ । १ । ३३ ॥ १ । ४ । ५ ।
४ ॥ २ । ३ । ४ । ३८ ॥
- „ तदाहुः किन्देवत्यो यज्ञ इति । ऐन्द्र इति ब्रूयात् । गो० उ० ३ । २३ ॥
- „ एते वै यज्ञस्यान्त्ये तन्वौ यदग्निश्च विष्णुश्च । ऐ० १ । १ ॥
- „ विष्णुर्यज्ञः । गो० उ० १ । १२ ॥ तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥
- „ यो वै विष्णुः स यज्ञः । श० ५ । २ । ३ । ६ ॥
- „ स यः स विष्णुर्यज्ञः सः । स यः स यज्ञो ऽसौ स आदित्यः ।
श० १४ । १ । १ । ६ ॥

- यज्ञः विष्णुर्वै यज्ञः । ऐ० १ । १५ ॥
- „ यज्ञो विष्णुः । तां० १३ । ३ । २ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥
- „ 'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ' (यजु० १ । १२) इति यज्ञो वै विष्णुर्य-
ज्ञिये स्थ इत्येवैतदाह । श० १ । १ । ३ । १ ॥
- „ यज्ञो वै विष्णुः (यजु० २२ । २०) । श० १३ । १ । ८ । ८ ॥
- „ यज्ञो वै विष्णुः । कौ० ४ । २ ॥ १८ । ८, १४ ॥ तां० ९ । ६ ।
१० ॥ श० १ । १ । २ । १३ ॥ ३ । २ । १ । ३८ ॥ गो० उ० ४ ।
६ ॥ तै० १ । २ । ५ । १ ॥
- „ यज्ञो वै विष्णुः शिपिविष्टः । तां० ९ । ७ । १० ॥
- „ विष्णवे हि गृह्णाति यो यज्ञाय (हविः) गृह्णाति । श० ३ । ४ ।
१ । १४ ॥
- „ अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनं रुद्रा
माध्यन्दिनं सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ । १ । १५ ॥
- „ तद्यदेनेन (यज्ञेन विष्णुना) इमां सर्वां (पृथिवीं) सम-
विन्दन्त तस्माद्वेदिर्नाम । श० १ । २ । ५ । ७ ॥
- „ तं (यज्ञं) वेद्यामन्वविन्दन् । ऐ० ३ । ९ ॥
- „ यज्ञो वै वैष्णुवारुणः । कौ० १६ । ८ ॥
- „ मित्रावृहस्पती वै यज्ञपथः । श० ५ । ३ । २ । ४ ॥
- „ यज्ञो वै देवेभ्यो ऽपाक्रामत्स सुपर्णरूपं कृत्वाचरत् तं देवा एतैः
(सौपर्णैः) सामभिरारभन्त । तां० १४ । ३ । १० ॥
- „ वय इव ह वै यज्ञो विधीयते तस्योपाश्वन्तर्यामावेव पक्षा-
घात्मोपाश्वसवनः । श० ४ । १ । २ । २५ ॥
- „ यज्ञमुखं वाऽ उपाश्वसुः । श० ५ । २ । ४ । १७ ॥
- „ देवा यज्ञियाः । श० १ । ५ । २ । ३ ॥
- „ एतद्वै देवानामपराजितमायतनं यद्यज्ञः । तै० ३ । ३ । ७ । ७ ॥
- „ सर्वेषां वाऽ एष भूतानां सर्वेषां देवानामात्मा यद्यज्ञः । श० १४ ।
३ । २ । १ ॥
- „ यज्ञ उ देवानामात्मा । श० ८ । ६ । १ । १० ॥
- „ यज्ञो वै देवानामात्मा । श० ९ । ३ । २ । ७ ॥
- „ (प्रजापतिर्देवानब्रवीत्-) यज्ञो वो ऽन्नम् । श० २ । ४ । २ । १ ॥

- यज्ञः यज्ञ उ देवानामन्नम् । श० ८ । १ । २ । १० ॥
- „ देवरथो वा एष यद्यज्ञः । ऐ० २ । ३७ ॥ कौ० ७ । ७ ॥
- „ एते वै यज्ञमवन्ति ये ब्राह्मणाः शुश्रुवाऽसोऽनूचाना एते
ह्येनं तन्वत्तऽ एतऽ एनं जनयन्ति । श० १ । ८ । १ । २८ ॥
- „ एतैर्ह्यत्र (यज्ञे) उभयैरथौ भवति यद्देवैश्च ब्राह्मणैश्च । श० ३ ।
३ । ४ । २० ॥
- „ स ह्येष यज्ञ उवाच । नग्नताया वै विभेमीति का तेऽनघ्नतेत्य-
भित एव मा परिस्तृणीयुरिति तस्मादेतदग्निमभितः परिस्तृ-
णन्ति तृष्णाया वै विभेमीति का ते तृप्तिरिति ब्राह्मणस्यैव
तृप्तिमनुत्प्येयमिति तस्मात्सऽस्थिते यज्ञे ब्राह्मणं तर्पयितवै
ब्रूयाद्यज्ञमेवैतत्तर्पयति । श० १ । ७ । ३ । २८ ॥
- „ यद्वै यज्ञस्य न्यूनं प्रजननमस्य तदथ यदातिरिक्तं पशव्यमस्य
तदथ यत्संकसुकऽश्रियाऽ अस्य तदथ यत्सम्पन्नऽस्वर्ग्यमस्य
तत् । श० १ । ४ । ४ । ८ ॥
- „ त्रिवृद्धि यज्ञः । श० १ । १ । ४ । २३ ॥ १ । २ । ५ । १४ ॥ ३ ।
२ । १ । ३२ ॥
- „ त्रिवृत्प्रायणा हि यज्ञास्त्रिवृदुदयनाः । श० २ । ३ । ४ । १७ ॥
- „ ते वै पञ्चान्यद् भूत्वा पञ्चान्यद् भूत्वा कल्पेतामाहावश्च हिंकारश्च
प्रस्तावश्च प्रथमा च ऋगुद्रीथश्च मध्यमा च प्रतिहारश्चोत्तमा
च निधनश्च वषट्कारश्च ते यत्पञ्चान्यद् भूत्वा पञ्चान्यद् भूत्वा
कल्पेतां तस्मादाहुः पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्तः पशव इति ।
ऐ० ३ । २३ ॥ गो० उ० ३ । २० ॥
- „ पाङ्क्तो यज्ञः । श० १ । ५ । २ । १६ ॥ ३ । १ । ४ । २० ॥ गो०
पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० २ । ३ ॥ ३ । २० ॥ ४ । ४, ७ ॥
- „ पाङ्क्तो वै यज्ञः । ऐ० १ । ५ ॥ ३ । २३ ॥ ५ । ४, १८, १९ ॥
कौ० १ । ३, ४ ॥ २ । १ ॥ १३ । २ ॥ तै० १ । ३ । ३ । १ ॥
श० १ । १ । २ । १६ ॥ तां० ६ । ७ । १२ ॥
- „ यज्ञो वा आश्रावणम् । श० १ । ५ । १ । १ ॥ १ । ८ । ३ । ९ ॥
- „ एष वै यज्ञो यदग्निः । श० २ । १ । ४ । १९ ॥
- „ अग्निर्पञ्चः । श० ३ । २ । २ । ७ ॥

- यज्ञः अग्निरु वै यज्ञः । श० ५ । २ । ३ । ६ ॥
- „ अग्निर्वै यज्ञः । श० ३ । ४ । ३ । १९ ॥ तां० ११ । ५ । २ ॥
- „ अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य । श० १ । ५ । २ । ११, १४ ॥ ३ । १ । ३ । २८ ॥ ११ । १ । २ । २ ॥
- „ शिर एतद्यज्ञस्य यदग्निः । श० ९ । २ । ३ । ३१ ॥
- „ अग्निर्वै यज्ञमुखम् । तै० १ । ६ । १ । ८ ॥
- „ एष हि यज्ञस्य सुकृतुः (ऋ० १ । १२ । १) यदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३५ ॥
- „ वाग्घ्न यज्ञः । श० १ । ५ । २ । ७ ॥ ३ । १ । ४ । २ ॥
- „ वाग्वै यज्ञः । ऐ० ५ । २४ ॥ श० १ । १ । २ । २ ॥ ३ । १ । ३ । २७ ॥ ३ । २ । २ । ३ ॥
- „ वायु वै यज्ञः । श० १ । १ । ४ । ११ ॥
- „ वाग्यज्ञस्य (रूपम्) श० १२ । ८ । २ । ४ ॥
- „ अयं वै यज्ञो यो ऽयं (वायुः) पवते । ऐ० ५ । ३३ ॥ श० १ । ९ । २ । २८ ॥ २ । १ । ४ । २१ ॥ ४ । ४ । ४ । १३ ॥ ११ । १ । २ । ३ ॥
- „ अयं वाव यज्ञो यो ऽयं (वायुः) पवते । जै० उ० ३ । १६ । १ ॥
- „ अयमु वै यः (वायुः) पवते स यज्ञः । गो० पू० ३ । २ ॥ ४ । १ ॥
- „ वातो वै यज्ञः । श० ३ । १ । ३ । २६ ॥
- „ संवत्सरो यज्ञः प्रजापतिः । श० २ । २ । २ । ४ ॥
- „ संवत्सरो यज्ञः । श० ११ । २ । ७ । १ ॥
- „ संवत्सरसंमितो वै यज्ञः पञ्च वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य तं पञ्च-
भिराप्नोति तस्मात्पञ्च जुहोति । श० ३ । १ । ४ । ५ ॥
- „ यज्ञ एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ७ ॥
- „ स यः स यज्ञो ऽसौ स आदित्यः । श० १४ । १ । १ । ६ ॥
- „ यज्ञो वै यजमानभागः । ऐ० ७ । २६ ॥
- „ यजमानो वै यज्ञः । ऐ० १ । २८ ॥
- „ यजमानो यज्ञः । श० १३ । २ । २ । १ ॥
- „ आत्मा वै यज्ञस्य यजमानो ऽङ्गान्यृत्विजः । श० ९ । ५ । २ । १६ ॥
- „ आत्मा वै यज्ञः । श० ६ । २ । १ । ७ ॥

यज्ञः पुरुषो वै यज्ञस्तस्य शिर एव हविर्धाने मुखमाहवनीय उदरं
सदो ऽन्नमुक्तथानि बाहू मार्जालीयश्चाऽऽग्नीध्रीयश्च या इमा
अन्तर्देवतास्ते अन्तःसदसं धिष्य्या प्रतिष्ठा गार्हपत्यव्रतश्रव-
णाविति । कौ० १७ । ७ ॥

१. पुरुषो वै यज्ञस्तस्य शिर एव हविर्धानं मुखमाहवनीयः उदरं
सदः, अन्तरुक्तथानि, बाहू मार्जालीयश्चाग्नीध्रीयश्च, या इमा
देवतास्तेऽन्तःसदसं धिष्य्याः, प्रतिष्ठे गार्हपत्यव्रतश्रवणाविति ।
गो० उ० ५ । ४ ॥
२. पुरुषो वै यज्ञः । कौ० १७ । ७ ॥ २५ । १२ ॥ २८ । ९ ॥ श० १ ।
३ । २ । १ ॥ ३ । ५ । ३ । १ ॥ तै० ३ । ८ । २३ । १ ॥ जै० उ०
४ । २ । १ ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० ६ । १२ ॥
३. पुरुषो यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । २३ ॥
४. स (पुरुषः) यज्ञः । गो० पू० १ । ३९ ॥
५. पुरुषो वै यज्ञस्तेनेदं सर्वं मितम् (तैत्तिरीयसंहितायाम् ५ ।
२ । ५ । १ः—यज्ञेन वै पुरुषः सम्मितः ॥) । श० १० । २ ।
१ । २ ॥
६. पुरुषसम्मितो यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । २३ ॥
७. पशवो यज्ञः । श० ३ । २ । ३ । ११ ॥
८. पशवो हि यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । ९ ॥
९. कतमो यज्ञ इति पशव इति । श० ११ । ६ । ३ । ९ ॥
१०. शतोन्मानो वै यज्ञः । श० १२ । ७ । २ । १३ ॥
११. यज्ञो वै भुवनज्येष्ठः । कौ० २५ । ११ ॥
१२. यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥
१३. यज्ञो वै भुवनम् । तै० ३ । ३ । ७ । ५ ॥
१४. यज्ञो वा अनः । श० १ । १ । २ । ७ ॥ ३ । ६ । ३ । ३ ॥
१५. आपो वै यज्ञः । ऐ० २ । २० ॥ श० ३ । ८ । ५ । १ ॥
१६. यज्ञो वाऽ आपः । कौ० १२ । १ ॥ श० १ । १ । १ । १२ ॥ तै०
३ । २ । ४ । १ ॥
१७. अङ्घ्रियज्ञः प्रणीयमानः प्राङ् तायते । तस्मादाचमनीयं पूर्वमाहा-
रयति । गो० पू० १ । ३९ ॥

- यज्ञः ऋतेरक्षा वै यज्ञः। ऐ० २।७ ॥
- „ परोऽक्षं यज्ञः। श० ३।१।३।२५ ॥
- „ अजातो ह वै तावत्पुरुषो यावन्न यजते स यज्ञेनैव जायते। जै०
उ० ३।१४।८ ॥
- „ तन्न सर्व इवाभिप्रपद्येत ब्राह्मणो वैव राजन्यो वा वैश्यो वा
ते हि यज्ञियाः। श० ३।१।१।९ ॥
- „ अयज्ञो वा एषः। यो ऽपत्नीकः। तै० २।२।२।६ ॥
- „ पूर्वार्धो वै यज्ञस्याध्वर्युर्जघनार्धः पत्नी। श० १।९।२।३ ॥
- „ जघनार्धो वाऽप एष यज्ञस्य यत्पत्नी। श० १।३।१।१२ ॥
२।५।२।२९ ॥ ३।८।२।२ ॥
- „ अथ त्रीणि वै यज्ञस्येन्द्रियाणि । अध्वर्युर्होता ब्रह्मा। तै० १।
८।६।६ ॥
- „ मनोर्यज्ञऽ इत्यु वाऽ आहुः। श० १।५।१।७ ॥
- „ मनुर्ह वाऽ अग्रे यज्ञेनेजे तदनुकृत्येमाः प्रजा यजन्ते। श० १।
५।१।७ ॥
- „ ज्येष्ठयज्ञो वा एष यद् द्वादशाहः। ऐ० ४।२५ ॥
- „ यज्ञं वाऽ अनु प्रजाः। श० १।८।३।२७ ॥
- „ यज्ञाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। श० ४।४।२।९ ॥
- „ रेतो वाऽ अत्र यज्ञः। श० ७।३।२।९ ॥
- „ (यज्ञस्य) प्राणो धूमः। श० ६।९।३।८ ॥
- „ एतच्छिरो यज्ञस्य यद्विषुवान्। कौ० २६।१ ॥
- „ शिरो वै यज्ञस्यातिथ्यम्। बाह्व प्रायणीयोदयनीयौ। श० ३।
२।३।२० ॥
- „ शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यम्। ऐ० १।१७, २५ ॥ कौ० ८।१ ॥
- „ शिरो वै यज्ञस्याहवनीयः पूर्वो ऽर्धो वै शिरः पूर्वार्धेभैवैतद्यज्ञस्य
कल्पयति। श० १।३।३।१२ ॥
- „ एतद्वै यज्ञस्य शिरो यम्मन्त्रवान्ब्रह्मौदनः। गो० पू० २।१६ ॥
- „ शिरो वै यज्ञस्योत्तर आधारः। श० १।४।५।५ ॥ ३।७।
४।७ ॥
- „ उत्तरत उपचारो हि यज्ञः। श० ८।६।१।१९ ॥

- यज्ञः चक्षुषी वाऽ एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ । श० ११ । ७ । ४ । २ ॥
 १४ । २ । २ । ५२ ॥
- ॥ एतद्वै प्रत्यक्षाद्यज्ञरूपं यद् घृतम् । श० १२ । ८ । २ । १५ ॥
- ॥ मृगधर्मा (=पलायनशीलः) वै यज्ञः । तां० ६ । ७ । १० ॥
- ॥ यज्ञो वै मैत्रावरुणः । कौ० १३ । २ ॥
- ॥ मनो (वै यज्ञस्य) मैत्रावरुणः । श० १२ । ८ । २ । २३ ॥
- ॥ मनो वै यज्ञस्य मैत्रावरुणः । ऐ० २ । ५, २६, २८ ॥
- ॥ विराड् वै यज्ञः । श० १ । १ । १ । २२ ॥ श० २ । ३ । १ । १८ ॥
 ४ । ४ । ५ । १९ ॥
- ॥ वैराजो यज्ञः । गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० ६ । १५ ॥
- ॥ यदु ह किं च देवाः कुर्वते स्तोमेनैव तत्कुर्वते यज्ञो वै स्तोमो
 यज्ञेनैव तत्कुर्वते । श० ८ । ४ । ३ । २ ॥
- ॥ नासामा यज्ञो ऽस्ति । श० १ । ४ । १ । १ ॥
- ॥ एते वै यज्ञा वागन्ता ये यज्ञायज्ञीयान्ताः । तां० ८ । ६ । १३ ॥
- ॥ श्रायन्तीयं यज्ञविभ्रष्टाय ब्रह्मसाम कुर्यात् । तां० ८ । २ । ९ ॥
- ॥ यज्ञस्य शीर्षच्छिन्नस्य (रसो व्यक्षरत्स) पितृनगच्छत् ।
 श० १४ । २ । २ । ११ ॥ (विष्णुशब्दमपि पश्यत)
- ॥ दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षांस्यजिघांसन् । गो० उ० १ । १८ ॥
 २ । १६ ॥
- ॥ रक्षां०सि यज्ञं न हि०स्युरिति । श० १ । ८ । १ । १६ ॥
- ॥ देवानां वै यज्ञं० रक्षां०स्यजिघांसन् । तां० १४ । १२ । ७ ॥
- ॥ हलति वाऽ एष यो यज्ञपथादेत्येति वाऽ एष यज्ञपथाद्यद्यज्ञि-
 यान्यज्ञेन प्रसजत्ययज्ञियान्वाऽ एतद्यज्ञेन प्रसजति शूद्रांस्त्व-
 चांस्त्वत् ॥ श० ५ । ३ । २ । ४ ॥
- ॥ यद्वै यज्ञस्यान्यूनातिरिक्तं तच्छिवम् । श० ११ । २ । ३ । ९ ॥
- ॥ यद्वै यज्ञस्यान्यूनातिरिक्तं तत्स्विष्टम् । श० ११ । २ । ३ । ६ ॥
- ॥ विष्णुर्वै यज्ञस्य दुरिष्टं पाति । ऐ० ३ । ३८ ॥ ७ । ५ ॥
- ॥ यद्वै यज्ञस्य दुरिष्टं तद्वरुणो गृह्णाति । तां० १३ । २ । ४ ॥ १५ ।
 १ । ३ ॥
- ॥ वरुणेन (यज्ञस्य) दुरिष्टं (शमयति) । तै० १ । २ । ५ । ३ ॥

- यज्ञः यज्ञस्य (ईजानस्य) दुरिष्टं भवति वरुणो ऽस्य तद् गृह्णाति ।
श० ४ । ५ । १ । ६ ॥
- „ वरुणः (यज्ञस्य) स्विष्टम् (पाति) । ऐ० ३ । ३८ ॥ ७ । ५ ॥
- „ अक्षरेणैव यज्ञस्य छिद्रमपिदधाति । तां० ८ । ६ । १३ ॥
- „ यज्ञो यज्ञस्य प्रायश्चित्तिः । ऐ० ७ । ४ ॥
- „ यद्यज्ञे ऽभिरूपं तत्समृद्धम् । कौ० ९ । ६ ॥ गो० ३० ४ । १८ ॥
- „ पतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगाभिव-
दति । ऐ० १ । ४, १३, १६, १७ ॥
- „ व्यृद्धमु वाऽ एतद्यज्ञस्य । यद्यजुष्केण क्रियते । श० १३ । १ ।
२ । १ ॥
- „ व्यृद्धं वै तद्यज्ञस्य यन्मानुषम् । श० १ । ४ । १ । ३५ ॥ १ ।
४ । ३ । ३५ ॥ १ । ८ । १ । २९ ॥ ३ । २ । २ । १५ ॥ ३ । ३ । ४ । ३१ ॥
- „ स एतं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत् । गो०
पू० १ । १२ ॥
- „ सप्त सुत्याः सप्त च पाकयज्ञाः हविर्यज्ञाः सप्ततथैकविंशतिः ।
सर्वे ते यज्ञा अङ्गिरसो ऽपियन्ति नूतना यानृषयो सृजन्ति ये
च सृष्टाः पुराणैः । गो० पू० ५ । २५ ॥
- „ अथातो यज्ञक्रमा अग्न्याधेयमग्न्याधेयात्पूर्णाहुतिः पूर्णाहुते-
रग्निहोत्रमग्निहोत्राद्दर्शपूर्णमासौ दर्शपूर्णमासाभ्यामाप्रयणमा-
प्रयणाश्चातुर्मास्यानि चातुर्मास्येभ्यः पशुबन्धः पशुबन्धादग्नि-
ष्टोमो ऽग्निष्टोमाद्राजसूयो राजसूयाद्वाजपेयो वाजपेयादश्वमे-
धो ऽश्वमेधात्पुरुषमेधः पुरुषमेधात्सर्वमेधः सर्वमेधाद्दक्षिणा-
वन्तो दक्षिणावद्भ्यो ऽदक्षिणा अदक्षिणाः सहस्रदक्षिणे प्रत्य-
तिष्ठंस्ते वा एते यज्ञक्रमाः । गो० पू० ५ । ७ ॥
- „ अग्निष्टोम उक्थ्यो ऽग्निर्ऋतुः प्रजापतिः संवत्सर इति । एते ऽनु-
षाका यज्ञक्रतूनाञ्चर्तूनाञ्च संवत्सरस्य च नामधेयानि । तै० ३ ।
१० । १० । ४ ॥
- „ हवींश्चि ह वाऽ आत्मा यज्ञस्य । श० १ । ६ । ३ । ३९ ॥
- „ आहुतिर्हि यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । १ ॥

[यज्ञः

(४३०)

यज्ञः वनस्पतयो हि यज्ञिया न हि मनुष्या यजेरन् यद्वनस्पतयो न स्युः । श० ३ । २ । २ । ९ ॥

„ यदि पालाशान् (परिधीन्) न विन्देत् । अथोऽपि वैकङ्कता स्युर्यदि वैकङ्कताञ्च विन्देदथोऽपि कार्पर्यमयाः स्युर्यदि कार्पर्यमयाञ्च विन्देदथोऽपि वैल्वाः स्युरथो चादिरा अथोऽऔ-
दुम्बरा पते हि वृक्षा यज्ञियाः । श० १ । ३ । ३ । २० ॥

„ तस्मादेष (विकङ्कतः) यज्ञियो यज्ञपात्रीयो वृक्षः । श० २ । २ । ४ । १० ॥

„ यज्ञो विकङ्कतः । श० १४ । १ । २ । ५ ॥

„ कुलायमिव ह्येतद्यज्ञे क्रियते यत्पैतुदारवाः परिधयो गुग्गुल्-
पास्तुकाः सुगंधितेजनानीति । ऐ० १ । २८ ॥

„ स यः श्रद्धधानो यजते तस्येष्टं न क्षीयते । कौ० ७ । ४ ॥

„ यज्ञो वा अवति । तां० ६ । ४ । ५ ॥

„ इतःप्रदाना वै वृष्टिरितो ह्यग्निर्वृष्टिं वनुते स (अग्निः) पतैः
(घृत-स्तोकैरेतान्स्तोकान् वनुते तऽपते स्तोका वर्षन्ति ।
श० ३ । ५ । २ । २२ ।

„ ततो ऽसुरा उभयीरोषधीर्याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः
कृत्ययेव त्वद्विषेणेव त्वत्प्रलिलिपुरुतैवं चिद्देवानभिभवेमेति ततो
न मनुष्या आशुर्न पशव आलिलिशिरे ता ह्येमाः प्रजा अनाश-
केन नोत्पराबभूवुः.....ते (देवाः) होचुर्दन्तेदमासामपजिघां-
सामेति केनेति यज्ञेनैवेति । श० २ । ४ । ३ । २-३ ॥

„ पतेन वै देवाः । (आग्रयणाख्येन) यज्ञेनेष्टोभयीनामोषधीनां
याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः कृत्यामिव त्वद्विषमिव
त्वदपज्जनुस्तत आश्रन्मनुष्या आलिशन्त पशवः । श० २ । ४ ।
३ । ११ ॥

„ भेषज्ययज्ञा वा पते यच्चातुर्मास्यानि तस्मादतुसंधिषु प्रयुज्यंत
ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते । गो० ३० १ । १९ ॥

„ भेषज्ययज्ञा वा पते यच्चातुर्मास्यानि तस्मादतुसंधिषु प्रयुज्यन्त
ऋतुसंधिषु हि व्याधिर्जायते । कौ० ५ । १ ॥

- यज्ञः एष ह वै यजमानस्यामुष्मिल्लोकऽ भात्मा भवति यद्यज्ञः स ह सर्वतनूरेव यजमानो ऽमुष्मिल्लोके सम्भवति य एवं विद्वाभि-
ष्कीत्या यजते । श० ११ । १ । ८ । ६ ॥
- „ यज्ञेन वै देवा दिवमुपोदक्रामन् । श० १ । ७ । ३ । १ ॥
- „ स्वर्गो वै लोको यज्ञः । कौ० १४ । १ ॥
- „ (यज्ञेन वै देवाः सुवर्गं लोकमायन्-तैत्तिरीयसंहितायाम् ६ ।
३ । ४ । ७ ॥)
- „ यज्ञेन वै तद्देवा यज्ञमयजन्त यदग्निना ऽग्निमयजन्त ते स्वर्गं
लोकमायन् । ऐ० १ । १६ ॥
- यज्ञपतिः यजमानो हि यज्ञपतिः । श० ४ । २ । २ । १० ॥
- „ (यजु० १ । २ ॥) यजमानो वै यज्ञपतिः । श० १ । १ ।
२ । १२ ॥ १ । २ । २ । ८ ॥ १ । ७ । १ । ११ ॥
- „ वत्सा उ वै यज्ञपतिं वर्धन्ति यस्य ह्येते भूयिष्ठा भवन्ति
स हि यज्ञपतिर्वर्धते । श० १ । ८ । १ । २८ ॥
- यज्ञायज्ञीयम् (साम) योनिर्वै यज्ञायज्ञीयमेतस्माद्द्वै योनेः प्रजापति-
र्यज्ञमसृजत यद्यज्ञं यज्ञमसृजत तस्माद्यज्ञायज्ञीयम् ।
तां० ८ । ६ । ३ ॥
- „ चन्द्रमा वै यज्ञायज्ञीयं यो हि कश्च यज्ञः संतिष्ठतऽ
एतमेव तस्याहुतीनां रसो ऽप्येति तद्यदेतं यज्ञो यज्ञो
ऽप्येति तस्मान्चन्द्रमा यज्ञायज्ञीयम् । श० ९ । १ ।
२ । ३९ ॥
- „ देवा वै ब्रह्म व्यभजन्त तस्य यो रसो ऽत्यरिच्यत
तद्यज्ञः यज्ञीयमभवत् । तां० ८ । ६ । १ ॥
- „ एषा वै प्रत्यक्षमनुष्टुब्यद्यज्ञायज्ञीयम् । तां० १५ । ९ । १५ ॥
- „ यज्ञायज्ञीयं ह्येव महाव्रतस्य पुच्छम् । तां० ५ ।
१ । १८ ॥
- „ यज्ञायज्ञीयं पुच्छम् (महाव्रतस्य) । तां० १६ । ११ । ११ ॥
- „ अतिशयं वै द्विपदां यज्ञायज्ञीयम् । तां० ५ । १ । १९ ॥
- „ वाचो रसो यज्ञायज्ञीयम् । तां० १८ । ५ । २१ ॥ १८ ।
११ । ३ ॥

[यतिः

(४३२)

- यज्ञायज्ञीयम् वाग्यज्ञायज्ञीयम् । तां० ५ । ३ । ७ ॥ ११ । ५ । २८ ॥
,, एते वै यज्ञा वागन्ता ये यज्ञायज्ञीयान्ताः । तां० ८ ।
६ । १३ ॥
,, एषा वै शिशुमारी यज्ञपथे ऽप्यस्ता यज्ञायज्ञीयं यद्वि-
रागिरेत्याहात्मानं तदुद्गाता गिरति । तां० ८ । ६ । ९ ॥
,, पशवो ऽन्नाद्यं यज्ञायज्ञीयम् । तां० १५ । ९ । १२ ॥
,, पन्था वै यज्ञायज्ञीयम् । तां० ४ । २ । २१ ॥
,, कथमिव यज्ञायज्ञीयङ्गेयमित्याहुर्व्यथा ऽनड्वान् प्रस्ना-
वयमाण इत्थमिव चेत्यमिव चेति । तां० ८ । ७ । ४ ॥
,, स्वर्गो वै लोको यज्ञायज्ञीयम् । श० ६ । ४ । ४ । १० ॥

यण्वम् (साम) पशवो वै यण्वम् । तां० १३ । ३ । ६ ॥

- यतिः इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्रीला वागभ्यवद-
त्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एतच्छुद्धाशुद्धीयमपश्यत्तेनाशुद्धयत्
(इन्द्रो यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तान्दाक्षिणत उत्तरवेद्या
आदन्—तैत्तिरीयसंहितायाम् ६ । २ । ७ । ५ ॥) । तां० १४ ।
११ । २८ ॥
,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्रीला वागभ्यवद-
त्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एते शुद्धाशुद्धीये (सामनी) अप-
श्यत्ताभ्यामशुद्धयत् । तां० १९ । ४ । ७ ॥
,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्रीला वागभ्यवद-
त्स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतमुपहव्यं प्रायच्छत् । तां० १८ ।
१ । ९ ॥
,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त
पृथुरदिमर्बुहद्विरी रायोवाजः । तां० १३ । ४ । १७ ॥
,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त
रायोवाजो बृहद्विरिः पृथुरदिमः । तां० ८ । १ । ४ ॥
,, (इन्द्रः) यतीन्सालावृकेभ्यः प्रादात् [(अहमिन्द्रः) यतीन्
सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्—शङ्करानन्दीयटीकायुतायां कौषी-
तकिब्राह्मणोपनिषदि ३ । १ ॥] । ऐ० ७ । २८ ॥

- यतिः (=मेघः । इति सायणः—ऋ० १० । ७२ । ७ भाष्ये)
 यद्वाहिष्ठीयम् (सप्त) ब्रह्मयज्ञसं वा एतानि सामान्युक्त्वा भ्रोत्री-
 याणि ब्रह्मयज्ञसी भवति यद्वाहिष्ठीयेन तुण्डवानः ।
 तां० १५ । ५ । २६ ॥
- यन्ता (ऋ० ३ । १३ । ३) अपानो वै यन्ता ऽपानेन ह्ययं यतः प्राणो
 न पराद् भवति । ऐ० २ । ४० ॥
- ” वायुर्वै यन्ता वायुना हीदं यतमन्तरिक्षं न समृच्छति । ऐ० २ ।
 ४१ ॥
- यमः (यजु० ३७ । ११) एष वै यमो य एष (सूर्यः) तपत्येष हीद-
 ः सर्वं यमयत्येतेनेदं सर्वं यतम् । श० १४ । १ । ३ । ४ ॥
- ” अथैष एव गार्हपत्यो यमो राजा । श० २ । ३ । २ । २ ॥
- ” अग्निर्वायु यमः । गो० उ० ४ । ८ ॥
- ” (यजु० १२ । ६३) अग्निर्वै यम इयं (पृथिवी) यम्याभ्यां ही-
 दं सर्वं यतम् । श० ७ । २ । १ । १० ॥
- ” यमो ह वाऽअस्याः (पृथिव्याः) अवसानस्येष्टे । श० ७ ।
 १ । १ । ३ ॥
- ” (यजु० ३८ । ९ ॥) अयं वै यमो यो ऽर्ष (वायुः) एवते ।
 श० १४ । २ । २ । ११ ॥
- ” यमः पन्था । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥
- ” (यमाय) दण्डपाणये स्वाहा । ष० ५ । ४ ॥
- ” यामं शुकं हरितमालभेत । गो० उ० २ । १ ॥
- ” क्षत्रं वै यमो विशः पितरः । श० ७ । १ । १ । ४ ॥
- ” यमो वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विशः । श० १३ । ४ ।
 ३ । ६ ॥
- ” पितृलोको यमः । कौ० १६ । ८ ॥
- ” किं देवतोस्यां दक्षिणायां दिश्यसीति । यमदेवत इति । श० १४ ।
 ६ । ९ । २२ ॥
- ” अनूराधाः प्रथमं अपभरणीरुत्तमं तानि यमनक्षत्राणि । तै० १ ।
 ५ । २ । ७ ॥
- यमी इयं (पृथिवी) यमी । श० ७ । २ । १ । १० ॥ गो० उ० ४ । ८ ॥

[यवाः

(४३४)

ययुः ययुर्नामासीत्याह । एतद्वा अश्वस्य प्रियं नामधेयम् । तै० ३ ।
८ । ९ । २ ॥

यवाः ततो देवेभ्यः सर्वा एवौषधय ईयुर्यवा हैवैभ्यो नेयुः । तद्वै
देवा अस्पृषवत । त एतैः सर्वाः सपत्नानामोषधीरयुवत । यद-
युवत तस्माद्यवा नाम । श० ३ । ६ । १ । ८-९ ॥

„ निर्व्वरुणत्वाय (=“वरुणकृतबाधपरिहाराय” इति सायणः)
एष यवाः । तां० १८ । ९ । १७ ॥

„ वरुण्यो यवः । श० ४ । २ । १ । ११ ॥

„ वरुण्यो ह वाऽ अग्ने यवः । श० २ । ५ । २ । १ ॥

„ वारुणं यवमयं चरुं निर्व्वपति । तै० १ । ७ । २ । ६ ॥

„ वारुणो यवमयश्चरुः । श० ५ । २ । ४ । ११ ॥

„ तस्य (सोमस्य) अश्रु प्रास्कन्दत्ततो यवः समभवत् । श० ४ ।
२ । १ । ११ ॥

„ स यः सर्वासामोषधीनां रसऽ आस्त्रितं यवेष्वदधुस्तस्मा-
द्यत्रान्याऽ ओषधयो म्लायन्ति तदेते मोदमाना वर्द्धन्ते ।
श० ३ । ६ । १ । १० ॥

„ सैनान्यं वा एतदोषधीनां यद्यवाः । ऐ० ८ । १६ ॥

„ (देवाः) तं (मेघम्) खनन्त इवान्वीषुस्तमन्वाविन्दंस्ता-
विमौ व्रीहियवौ । श० १ । २ । ३ । ७ ॥

„ सर्वेषां वा एष पशूनां मेघो यद् व्रीहियवौ । श० ३ । ८ । ३ । १ ॥

„ (यजु० २३ । ३०) विद् वै यवः । श० १३ । २ । ९ । ८ ॥

„ राष्ट्रं यवः । तै० ३ । ९ । ७ । २ ॥

„ अथ ये फेनास्ते यवाः । श० १२ । ७ । १ । ४ ॥

„ (यजु० १४ । २६) ते (पूर्वपक्षा) द्वीदं सर्वं युवते । श० ८ ।
४ । २ । ११ ॥

„ स यो देवानाम् (अर्धमासः=शुक्लपक्षः) आसीत् । स यवा
युवत (=“समसृज्यन्त इति” सायणः) हि तेन देवाः । श० १ ।
७ । २ । २५ ॥

(अथोऽ इतरथाहुः) यो ऽसुराणाम् (अर्धमासः=कृष्णपक्षः)
स यवायुवत हि तं देवाः । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

यवाः (यजु० १४ । २६) पूर्वपक्षा वै यवाः । श० ८ । ४ । २ । ११ ॥
यविष्टः (यजु० १३ । ५२) पतद्भास्य (अग्नेः) प्रियं घाम यद्यविष्ट
इति यद्वै जात इदं सर्वमयुवत तस्माद्यविष्टः । श० ७ ।
५ । २ । ३८ ॥

यविष्ण्यः (ऋ० ६ । ६ । ११) यविष्टो (=युवतम इति सायणः)
ह्यग्निः । श० १ । ४ । १ । २६ ॥

यन्वाः यन्या मालाः । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

यशः सामवेद एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ सामवेदो यशः । श० १२ । ३ । ४ । ९ ॥

„ उद्रातैव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ आदित्यो यशः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥

„ आदित्य एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ चक्षुर्यशः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥

„ चक्षुरेव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ प्राणा वै यशः । श० १४ । ५ । २ । ५ ॥

„ द्यौर्यशः । श० १२ । ३ । ४ । ७ ॥

„ द्यौरेव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ वर्षा एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ जगत्येव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ सप्तदशः (स्तोमः) एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ उद्दीच्येव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ पशवो यशः । श० १२ । ८ । ३ । १ ॥

„ (ऋ० १० । ७२ । १० ॥) यशो वै सोमो राजा । ऐ० १ ।
१३ ॥

„ यशो वै सोमः । श० ४ । २ । ४ । ६ ॥

„ सोमो वै यशः । तै० २ । २ । ८ । ८ ॥

„ यश उ वै सोमो राजान्नाद्यम् । कौ० ६ । ६ ॥

„ यशो हि सुरा । श० १२ । ७ । ३ । १४ ॥

„ यशो वै हिरण्यम् । ऐ० ७ । १८ ॥

यशः यशो देवाः । श० २ । १ । ४ । ९ ॥

„ तस्माद् (देवाः) यशः । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥

याज्या इयं (पृथिवी) हि याज्या । श० १ । ४ । २ । १९ ॥

„ इयं (पृथिवी) याज्या । श० १ । ७ । २ । ११ ॥

„ अन्तरिक्षलोकं याज्यया (जयति) । श० १४ । ६ । १ । ९ ॥

„ ऋष्टिर्वै याज्या विद्युदेष विद्युद्धीदं ऋष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति ।
ऐ० २ । ४१ ॥

„ अन्नं वै याज्या । गो० उ० ३ । २२ ॥ ६ । ८ ॥

„ अन्नं याज्या । कौ० १५ । ३ ॥ १६ । ४ ॥ गो० उ० ३ । २१ ॥

„ अपानो याज्या । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥

„ आसीनो याज्यां यजति । श० १ । ४ । २ । १६ ॥

„ प्रयच्छति (हविः) याज्यया । श० १ । ७ । २ । १७ ॥

„ प्रत्तिर्वै याज्या पुण्यैव लक्ष्मीः । ऐ० २ । ४० ॥

यातुः (= यो ऽयं दक्षिणे ऽक्षन्पुरुषः) एतेन हीदं सर्वं यतम् ।
श० १० । ५ । २ । २० ॥

यामः (यजु० ११ । १३) अस्मिन्यामे वृषण्वसू ऽइत्यस्मिन्कर्मणि
वृषण्वसूऽ इत्येतत् । श० ६ । ३ । २ । ३ ॥

यामम् (साम) एतेन वै यमो ऽनपजय्यममुष्य लोकस्याधिपत्यमा-
श्नुत । तां० ११ । १० । २१ ॥

„ एतेन वै यमी यमं स्वर्गं लोकमगमयत् स्वर्गस्य लोक-
स्यानुष्यात्यै स्वर्गात् लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः । तां० ११ ।
१० । २२ ॥

यामि (यजु० १० । ४९) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमान इति तत्त्वा
याच्चे ब्रह्मणा वन्दमान इत्येतत्तदाशास्ते । (अथापि वर्णलोपो
भवति तत्त्वा यामीति-निरुक्ते २ । १) । श० ९ । ४ । २ । १७ ॥

याविहोत्रम् यवा च हि वाऽ अयवा यवेतीवाथ येनैतेषां होता
भवति तद्याविहोत्रमित्याचिक्षते । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

युक्तिः (अहीनस्य) तद्यच्चतुर्विंशो ऽहन्युज्यंते सा युक्तिः । ऐ० ६ । २३ ॥

युञ्जानः (यजु० ११ । १) प्रजापतिर्वै युञ्जानः स मन एतस्मै कर्मणे
ऽयुङ्क्त । श० ६ । ३ । १ । १२ ॥

- युद्धम् नाराजकस्य युद्धमस्ति । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥
- „ युद्धं वै राजन्यस्य । तै० ३ । ९ । १४ । ४ ॥
- „ युद्धं वै राजन्यस्य वीर्यम् । श० १३ । १ । ५ । ६ ॥
- युधाजित् इन्द्रो वै युधाजित् । तां० ७ । ५ । १४ ॥
- युवा सुवासाः (ऋ० ३ । ८ । ४) प्राणो वै युवा सुवासाः । ऐ० २ । २ ॥
- यूनर्वा साम वै यूनर्वा । तां० ६ । ४ । ८ ॥
- यूपः (देवाः) तं वै (यज्ञं) यूपेनैवायोपयंस्तद्यूपस्य यूपत्वम् ।
ऐ० २ । १ ॥
- „ (देवाः) यदनेन (यूपेन यज्ञं) अयोपयंस्तस्माद्यूपो नाम ।
श० १ । ६ । २ । १ ॥ ३ । १ । ४ । ३ ॥ ३ । २ । २ । २ ॥
- „ तस्माद्यूपऽ एव पशुमालभन्ते नऽर्ते यूपत्कदाचन । श० ३ ।
७ । ३ । २ ॥
- „ पशवे वै यूपमुच्छ्रयन्ति । श० ३ । ७ । २ । ४ ॥
- „ गर्तन्वान्यूपो ऽतीक्षणाग्रो भवति । श० ५ । २ । १ । ७ ॥
- „ अष्टाश्रियूपो भवति । श० ५ । २ । १ । ५ ॥
- „ सप्तदशारक्षिर्यूपो भवति । तै० १ । ३ । ७ । २ ॥
- „ खादिरो यूपो भवति । श० ३ । ६ । २ । १२ ॥
- „ स्तुप एवास्य (यज्ञस्य) यूपः । श० ३ । ५ । ३ । ४ ॥
- „ यूप स्थाणुः । श० ३ । ६ । २ । ५ ॥
- „ खलेवाली यूपो भवत्येतया हि तं रसमुत्कषन्ति । तां० १६ ।
१३ । ८ ॥
- „ वैष्णवो हि यूपः । श० ३ । ६ । ४ । १ ॥
- „ असौ वा अस्य (अग्निहोत्रस्य कर्तुः) आदित्यो यूपः ।
ऐ० ५ । २८ ॥
- „ आदित्यो यूपः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥
- „ वज्रो यूपः । श० ३ । ६ । ४ । १६ ॥
- „ वज्रो वा एष यद्यूपः । कौ० १० । १ ॥ ऐ० २ । १, ३ ॥ ष०
४ । ४ ॥
- „ वज्रो वै यूपशकलः । श० ३ । ८ । १ । ५ ॥

यूपः (चतुर्धाविभक्तस्य वज्रस्य) यूपस्तृतीयं (=तृतीयोऽशः) वा
यावद्वा । श० १ । २ । ४ । १ ॥

„ एष वै यजमानो यद्यूपः । तै० १ । ३ । ७ । ३ ॥

„ यजमानो वै यूपः । ऐ० २ । ३ ॥ श० १३ । २ । ६ । ९ ॥

„ यजमानदेवत्यो वै यूपः । तै० ३ । ९ । ५ । २ ॥

„ यजमानो वाऽ एष निदानेन यद्यूपः । श० ३ । ७ । १ । ११ ॥

योगः यद्योक्त्तम् । स योगः । तै० ३ । ३ । ३ । ३ ॥

योगक्षेमः यद्योक्त्तं स योगः । यदास्ते स क्षेमः । योगक्षेमस्य क्लृप्त्यै ।
तै० ३ । ३ । ३ । ३ ॥

• योनिः योनिस्तूखलम्.....शिञ्जं मुसलम् । श० ७ । ५ । १ । ३८ ॥

„ योनिर्वाऽ उखा । श० ७ । ५ । २ । २ ॥

„ योनिर्वाऽ उत्तरवेदिः । श० ७ । ३ । १ । २८ ॥

„ योनिर्वै गार्हपत्या चितिः । श० ७ । १ । १ । ८ ॥ ८ । ६ । ३ ॥ ८ ॥

„ योनिरेव वरुणः । श० १२ । ९ । १ । १७ ॥

„ योनिर्वै पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । १ । ७ ॥

„ योनिर्मुञ्जाः । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥

„ परिमण्डला हि योनिः । श० ७ । १ । १ । ३७ ॥

„ अन्धमिव वै तमो योनिः । जै० उ० ३ । ९ । २ ॥

„ मा०३०सेन वाऽ उदरं च योनिश्च स०३०हिते । श० ८ । ६ ।
२ । १४ ॥

योनिश्चतुर्विंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव योनिश्चतुर्विंश-
शस्तस्य चतुर्विंशतिरर्धमासास्तद्यत्तमाह योनि-
रिति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानां योनिः । श० ८ ।
४ । १ । १८ ॥

योषा योषा वाऽ इयं वाग्यदेनं न युवति । श० ३ । २ । १ । २२ ॥

„ योषा हि वाक् । श० १ । ४ । ४ । ४ ॥

„ वागिति स्त्री (=योषा) । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

„ योषा वै वेदिः । श० १ । ३ । ३ । ८ ॥

„ योषा वै वोद्वृषाग्निः । श० १ । २ । ५ । १५ ॥

„ योषा वाऽअग्निः । श० १४ । ९ । १ । १६ ॥

„ योषा हि अक् । श० १ । ४ । ४ । ४ ॥

- योषा योषा वै स्रुग्वृषा स्रुवः । श० १ । ३ । १ । ९ ॥
- ॥ योषा वै पत्नी । श० १ । ३ । १ । १८ ॥
- ॥ न वै योषा कंचन हिनस्ति । श० ६ । ३ । १ । ३९ ॥
- ॥ तस्मात्पुमान्दक्षिणतो योषामुपशेते । जै० उ० १ । ४३ । ३ ॥
- ॥ दक्षिणतो वै वृषा योषामुपशेते । श० ६ । ३ । १ । ३० ॥
७ । ५ । १ । ६ ॥
- ॥ अरक्षिमात्राद्भि वृषा योषामुपशेते । श० ६ । ३ । १ । ३० ॥
७ । ५ । १ । ६ ॥
- ॥ पश्चाद्वै परीत्य वृषा योषामधिद्रवति तस्याऽऽ रेतः सिञ्चति ।
श० २ । ४ । ४ । २३ ॥
- ॥ रक्षाऽऽसि योषितमनुसचन्ते तदुत रक्षाऽऽस्येव रेत आद-
धति । श० ३ । २ । १ । ४० ॥
- ॥ तस्माद्यदा योषा रेतो धत्ते ऽथ पयो धत्ते । श० ७ । १ । १ । ४४ ॥
- ॥ पुरन्धर्योषा (यजु० २२ । २२) इति । योषित्येव रूपं दधाति
तस्माद्रूपिणी युवतिः प्रिया भावुका । श० १३ । १ । ९ । ६ ॥
- ॥ पुरन्धर्योषेत्याह । योषित्येव रूपं दधाति । तस्मात्स्त्री युवतिः
प्रिया भावुका । तै ३ । ८ । १३ । २ ॥
- ॥ एवमिव हि योषां प्रशऽऽसन्ति पृथुश्रोणिर्विमृष्टान्तराऽऽसा
मध्ये संप्राह्येति । श० १ । २ । ५ । १६ ॥
- ॥ पश्चाद्दरीयसी पृथुश्रोणिरिति वै योषां प्रशऽऽसन्ति । श० ३ ।
५ । १ । ११ ॥
- ॥ योषा वै सिनीवाली (यजु० ११ । ५६) एतदु वै योषायै समुद्र-
ऽऽ रूपं यत् सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । श० ६ । ५ । १ । १० ॥
- ॥ ('जाया,' 'पत्नी,' 'स्त्री' इत्येतानपि शब्दान् पश्यत) ।
- यौक्ताश्वम् (साम) युक्ताश्वो वा आङ्गिरसः शिशू जातौ विपर्य्यहर-
त्तस्मान्मन्त्रोपाक्रामत्स तपो ऽतप्यत स एतद्यौक्ताश्वमप-
ह्यत्तं मन्त्र उपावर्त्तत तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि
साम यौक्ताश्वं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० ११ । ८ । ८ ॥
- यौधाजयम् (साम) युधा मर्या अजैष्मेति तस्माद्यौधाजयम् । तां०
७ । ५ । १५ ॥
- ॥ इन्द्रो वै युधाजित्तस्यैतद्यौधाजयम् । तां० ७ ।
५ । १४ ॥

सौधाजयम् वज्रो वै यौधाजयम् । तां० ७ । ५ । १२ ॥

(२)

- रक्षांसि देवान्ह वै यज्ञेन यजमानांस्तानसुररक्षसानि ररक्षुर्न यक्ष्यध्व
इति तद्यदरक्षंस्तस्माद्रक्षांसि । श० १ । १ । १ । १६ ॥
- ” देवान्ह वाऽअग्नी (गार्हपत्याइषनीयौ) आधास्यमानान् ।
तानसुररक्षसानि ररक्षुर्नाऽग्निर्जनिष्यते नाऽग्नी आधास्यध्वऽ
इति तद्यदरक्षंस्त्रस्माद्रक्षांसि । श० २ । १ । ४ । १५ ॥
- ” रक्षांसि यज्ञं न हिंस्युरिति । श० १ । ८ । १ । १६ ॥
- ” एतद्वै देवा अबिभयुर्यद्वै ना यज्ञं दक्षिणतो रक्षांसि नाष्ट्रा न
हन्युरिति । श० ७ । ४ । १ । ३७ ॥
- ” अता हीन्द्रस्तिष्ठन्दक्षिणतो नाष्ट्रा रक्षांस्यपाहन् । श०
१ । ४ । ५ । ३ ॥
- ” दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षांस्यजिघांसन् । गो० उ० १ । १८ ॥
२ । १६ ॥
- ” तुषैर्वै फलीकरणैर्देवा हविर्यज्ञेभ्यो रक्षांसि निरभजन्नन्ना
महायज्ञात्स यदन्ना रक्षः संसृजतादित्याह रक्षांस्येव तत्स्वेन
भागधेयेन यन्नान्निरवदयते । ऐ० २ । ७ ॥
- ” ततो देवा सर्वे यज्ञं संवृज्याथ यत्पापिष्ठं यज्ञस्य भागधेय-
मासीत्तेनैतान् (असुरान्-रक्षांसि) निरभजन्नन्ना (=रुधिरेण)
पशोः, फलीकरणैर्हविर्यज्ञात् सुनिर्भक्ता असन् । श० १ । ६ ।
२ । ३५ ॥
- ” असुरभाजनानि ह वै रक्षांसि । कौ० १० । ४ ॥
- ” रक्षसां भागो ऽसि (यजु० ६ । १६) इति रक्षसां ह्येष भागो
यदसृक् । श० ३ । ८ । २ । १४ ॥
- ” रक्षसां हि स भागः (असृग्पः) । श० १ । ६ । २ । ३५ ॥
- ” रक्षांसि योषितमनुसचन्ते तदुत रक्षांस्येव रेत आद-
धति । श० ३ । २ । १ । ४० ॥
- ” तिर इवैतद्यद्रक्षांसि । ऐ० २ । ७ ॥
- ” अमूलं वाऽइदमुभयतः परिच्छिन्नं रक्षो ऽन्तरिक्षमनुचरति ।
श० ३ । १ । ३ । १३ ॥

- रक्षांसि अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता । श० १ । २ । १ । ६, ६ ॥ १ । २ ।
 २ । १३ ॥
- „ अग्निर्वै रक्षसामपहन्ता कौ० ८ । ४ ॥ १० । ३ ॥
- „ अग्निर्वै ज्योती रक्षोहा । श० ७ । ४ । १ । ३४ ॥
- „ ते (देवाः) ऽत्रिदुः । अयं (अग्निः) वै नो विरक्षस्तमः । श०
 ३ । ४ । ३ । ८ ॥
- „ अग्नेर्वाऽ एतद्रेतो यद्धिरण्यं नाष्ट्राणां रक्षसामपहत्यै । श०
 १४ । १ । ३ । २९ ॥
- „ सूर्यो हि नाष्ट्राणां रक्षसामपहन्ता । श० १ । ३ । ४ । ८ ॥
- „ (इन्द्रः) तत् (रक्षः) सीसेनावजघान । तस्मात्सीसं मृदु
 सुतजवथ् हि । श० ५ । ४ । १ । १० ॥
- „ ते (देवाः) एतं रक्षोहणं वनस्पतिमपश्यन्कार्भर्य्यम् ।
 श० ७ । ४ । १ । ३७ ॥
- „ देवा ह वाऽ एतं वनस्पतिषु राक्षोघ्नं ददशुर्यत्कार्भर्य्यम्
 (=भद्रपर्णाति सायणः) । श० ३ । ४ । १ । १६ ॥
- „ यदपामार्गहोमो भवति रक्षसामपहत्यै । तै० १ । ७ । १ । ८ ॥
- „ अपामार्गैर्वै देवा दिक्षु नाष्ट्रा रक्षास्यपामृजत । श० ५ ।
 २ । ४ । १४ ॥
- „ ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता । श० १ । १ । ४ । ६ ॥
- „ साम हि नाष्ट्राणां रक्षसामपहन्ता । श० ४ । ४ । ५ । ६ ॥
 १४ । ३ । १ । १० ॥
- „ अङ्गिरसः स्वर्गं लोकं यतो रक्षास्यन्वसचन्त तान्येतेन
 हरिवर्णो ऽपाहन्त यदेतत्साम भवति रक्षसामपहत्यै । तां० ८ ।
 ६ । ५ ॥
- „ स यां वै दप्तो वदति यामुन्मत्तः सा वै राक्षसी वाक् ।
 ऐ० २ । ७ ॥
- „ आपो वै रक्षोघ्नीः । तै० ३ । २ । ३ । १२ ॥ ३ । २ । ४ । २ ॥
 ३ । २ । ६ । १४ ॥
- „ अथोदकवतोत्तानेन पात्रेण (पात्रस्थं दधिमिश्रितं क्षीरं)
 अपिदधाति । नेदेनदुपरिष्ठात्नाष्ट्रा रक्षास्यवमृशानिति

वज्रो वाऽ आपस्तम्बज्जेणैवैतन्नाप्द्रा रक्षांभ्यस्ततो ऽपहन्ति ।
 (रक्षांसि=Germes in the air ?) श० १ । ७ । १ । २० ॥
 रक्षांसि कुबेरो वैश्रवणो राजेत्याह तस्य रक्षांभ्योऽसि विशस्तानीमा-
 न्वासतऽ इति सेलगाः पापकृत उपसमेता भवन्ति तानुपदि-
 शति देवजनविद्या वेदः सो ऽयमिति देवजनविद्याया एकं पर्व
 व्याचक्षाण इवानुद्रवेत् (एवं—शाङ्खायनश्रौतसूत्रे १६ । २ ।
 १६-१८ ॥ आश्व० श्रौ० सू० १० । ७ । ६ ॥) । श० १३ । ४ ।
 ३ । १० ॥

रजतम् एतत् (रजतं) रात्रिरूपम् । ऐ० ७ । १२ ॥

- „ अथ यदस्तमेति (आदित्यः) । एतामेव तद्रजतां कुशीमनु-
 संविशति । (रजता कुशी=रात्रिः) । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥
- „ रजता (कुशी) रात्रिः (अभवत्) । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥
- „ रजतैव द्वीयं पृथिवी । श० १४ । १ । ३ । १४ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै रजता । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥
- „ अवान्तरदिशा रजताः । तै० ३ । ६ । ६ । ५ ॥
- „ अवान्तरदिशो रजताः (सूच्यः) । श० १३ । २ । १० । ३ ॥
- „ अन्तरिक्षस्य (रूपं) रजताः (सूच्यः) । तै० ३ । ६ । ६ । ५ ॥
- „ (असुराः) रजतां (पुरीं) अन्तरिक्षे (चक्रिरे) । श० ३ । ४ ।
 ४ । ३ ॥
- „ सुवर्णेन रजतम् (संदध्यात्) । (एवं छान्दोग्योपनिषदि
 ४ । १७ । ७) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥ गो० पू० १ । १४ ॥
- „ रजतेन त्रपु (संदध्यात्) । (एवं छान्दोग्योपनिषदि ४ । १७
 ७) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥
- „ रजतेन लोहम् (सन्दध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥
- रक्षांसि इमे वै लोका रक्षांभ्योऽसि (यजु० ११ । ६) । श० ६ । ३ ।
 १ । १८ ॥
- „ द्यौर्वै तृतीयं रजः । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥
- रज्जुः वरुण्या (=“वरुणपाशात्मिका” इति सायणः) रज्जुः । श० १ ।
 ३ । १ । १४ ॥
- „ वरुण्या वाऽ एषा यद्रज्जुः । श० ३ । २ । ४ । १८ ॥ ३ ।
 ७ । ४ । १ ॥

रज्जुः वरुण्या वै यज्ञे रज्जुः । श० ६ । ४ । ३ । ८ ॥

रज्जुदालः तस्य (प्रजापतेः) यः श्लेष्मासीत्स सार्धं^३ समवद्रुत्य
मध्यतो नस्त उद्भिन्तस एष वनस्पतिरभवद्रज्जुदालस्त-
स्मात्स श्लेष्मणः श्लेष्मणो हि समभवत् । श० १३ । ४ ।
४ । ६ ॥

रक्ता (यजु० ३८ । ५) यो रक्ता वा वसुविद्यः सुदत्र इति यो घना-
नां दाता वसुवित्पणाय इत्येवैतदाह । श० १४ । २ । १ । १५ ।
रथः तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते । गो० पू० २ । २१ ॥

॥ रसंतमं^० ह वै तद्रथन्तरमित्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ९ । १
२ । ३६ ॥

॥ तस्माद्रथः पर्युतो दर्शनीयतमो भवति । श० १३ । २ । ७ । ८ ॥

॥ वज्रो वै रथः । तै० १ । ३ । ६ । १ ॥ ३ । १२ । ५ । ६ ॥
श० ५ । १ । ४ । ३ ॥

॥ (चतुर्द्धीविभक्तस्य वज्रस्य) रथस्तृतीयं (=तृतीयोऽशः) वा
यावद्वा । श० १ । २ । ४ । १ ॥

॥ असौ वाऽ आदित्य एष रथः । श० ९ । ४ । १ । १५ ॥

॥ वैश्वानरो वै देवतया रथः । तै० २ । २ । ५ । ४ ॥

रथगृत्सः (यजु० १५ । १५) तस्य (अग्नेः) रथगृत्सश्च रथौ जाश्च
सेनानीग्रामणपाविति वासन्तिकौ तावृत् । श० ८ । ६ ।
१ । १६ ॥

रथन्तरम् (साम) रसंतमं^० ह वै तद्रथन्तरमित्याचक्षते परोऽक्षम् ।
श० ६ । १ । २ । ३६ ॥

॥ रथममर्याः क्षेप्लातारीदिति तद्रथन्तरस्य रथन्तरत्वम् ।
तां० ७ । ६ । ४ ॥

॥ स (प्रजापतिः) रथन्तरमसृजत तद्रथस्य घोषो ऽन्वसृज्यत ।
तां० ७ । ८ । ६ ॥

॥ (अभित्वा शूर नोभुमः [ऋ० ७ । ३२ । २२] इत्यस्यामृच्यु-
त्पन्नं साम रथन्तरम्—पै० ४ । १३ सायणभाष्ये)

॥ (यजु० १५ । ५) अयं वै (पृथिवी-) लोको रथन्तरं हुन्दः ।
श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

॥ इयं वै पृथिवी रथन्तरम् । पै० ८ । १ ॥

- रथन्तरम् इयं (पृथिवी) वै रथन्तरम् । कौ० ३ । ५ ॥ ष० २ । २ ॥
 तै० १ । ४ । ६ । २ ॥ तां० ६ । ८ । १८ ॥ १५ । १० । १५ ॥
 श० ५ । ५ । ३ । ५ ॥ ९ । १ । २ । ३६ ॥
- ” अयं वै (पृथिवी-) लोको रथन्तरम् । ऐ० ८ । २ ॥
- ” राथन्तरो वा अयं (भू-) लोकः । तै० १ । १ । ८ । १ ॥
- ” रथन्तरं हीयम् (पृथिवी) । श० १ । ७ । २ । १७ ॥
- ” उपहृतं रथन्तरं सह पृथिव्या । तै० ३ । ५ । ८ । १ ॥
 श० १ । ८ । १ । १९ ॥
- ” वाग्वै रथन्तरम् । ऐ० ४ । २८ ॥
- ” वाग्रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
- ” ब्रह्मवर्चसं वै रथन्तरम् । तै० २ । ७ । १ । १ ॥
- ” ब्रह्म वै रथन्तरम् । ऐ० ८ । १ । २ ॥ तां० ११ । ४ । ६ ॥
- ” ऋग्रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
- ” अपानो रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १४ । १७ ॥
- ” यद्भस्वं तद्रथन्तरं यद्दीर्घं तद् बृहत् । कौ० ३ । ५ ॥
- ” देवरथो वै रथन्तरम् । तां० ७ । ७ । १३ ॥
- ” अन्नं वै रथन्तरम् । ऐ० ८ । १ ॥
- ” राथन्तरी वै रात्री । ऐ० ५ । ३० ॥
- ” गायत्री वै रथन्तरस्य योनिः । तां० १५ । १० । ५ ॥
- ” गायत्रं वै रथन्तरम् । तां० ५ । १ । १५ ॥
- ” गायत्रं वै रथन्तरं गायत्रच्छन्दः । तां० १५ । १० । ९ ॥
- ” एतद्वै रथन्तरस्य स्वमायतनं यद् बृहती । तां० ४ । ४ । १०
- ” अग्निर्वै रथन्तरम् । ऐ० ५ । ३० ॥
- ” उप वै रथन्तरम् (“उपशब्दसम्बद्धं हि रथन्तरपृष्ठं ज्यो-
 तिष्ठोमे” इति सायणः) । तां० १६ । ५ । १४ ॥
- ” ऐडं रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
- ” त्रिवृच्च त्रिणवच्च राथन्तरौ तावजश्चाश्वश्चान्वसृज्येतां
 तस्मात्तौ राथन्तरं प्राचीनं प्रधुनुतः । तां० १० । २ । ५ ॥
- ” चतुरक्षरं रथन्तरम् । तै० २ । १ । ५ । ७ ॥
- ” प्रजननं वै रथन्तरम् । तां० ७ । ७ । १६ ॥
- ” यद्रथन्तरं तच्छाकरम् । ऐ० ४ । १३ ॥

- रथन्तरम् रथन्तरमेतत्परोक्षं यच्छक्यः । तां० १३ । २ । ८ ॥
- „ यद्वै रथन्तरं तद्वैरूपम् (साम) । ऐ० ४ । १३ ॥
- „ रथन्तरमेतत्परोक्षं यद्वैरूपम् (साम) । तां० १२ । २ । ५ । ६ ॥
- „ रथन्तरं ह्येतत्परोक्षं यद्यथैतम् (यच्छयैतं साम) । तां० ७ । १० । ८ ॥
- „ (सामवेद उवाच -) रथन्तरं नाम मे सामाघोरञ्चाकूरञ्च । गो० पू० २ । १८ ॥
- „ वसन्तेनर्तुना देवा वसवस्त्रिवृतास्तुतम् । रथन्तरेण तेजसा । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १६ । १ ॥
- „ तेजो रथन्तरं साम्नाम् । तां० १५ । १० । ६ ॥
- „ रथन्तरं साम्नाम् (प्रतिष्ठा) । तां० ९ । ३ । ४ ॥
- „ रथन्तरं वै सम्राट् । तै० १ । ४ । ४ । ६ ॥
- रथप्रोतः (यजु० १५ । १७) तस्य (आदित्यस्य) रथप्रोतश्चासमरथ-
श्च सेनानीग्रामण्याविति वार्षिकौ तावृत् । श० ८ । ६ । १ । १८ ॥
- रथस्वनः, रथेचित्रः (यजु० १५ । १५) तस्य (वायोः) रथस्वनश्च
रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्याविति त्रैष्मौ तावृत् ।
श० ८ । ६ । १ । १७ ॥
- रथौजाः (यजु० १५ । १५) तस्य (अग्नेः) रथगृत्सश्च रथौजाश्च
सेनानीग्रामण्याविति वासन्तिकौ तावृत् । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥
- रभसः (यजु० ११ । २३) व्यचिष्टमन्नै रभसं दशानमित्यवकाशवन्त-
मन्नैरन्नादं दीप्यमानमित्येतत् । श० ६ । ३ । ३ । १९ ॥
- रम् प्राणो वै रं प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि रतानि । श० १४ । ८ । १३ । ३ ॥
- रम्या तनूः प्राणो वाऽस्य (यजमानस्य) सा रम्या तनूः । श० ७ । ४ । १ । १६ ॥
- रयिः रयिरिति मनुष्याः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥
- „ वीर्यं वै रयिः । श० १३ । ४ । २ । १३ ॥
- „ पुष्टं वै रयिः । श० २ । ३ । ४ । १३ ॥
- „ पशवो वै रयिः । तै० १ । ४ । ४ । ६ ॥

[रश्मयः

(४४६)

- रयिः एष वै रयिवैश्वानरः (=आपः) । श० १० । ६ । १ । ५ ॥
,, रयिष्ठं सोमो रयिपतिर्दधातु । तै० २ । ८ । १ । ६ ॥
रयिष्ठम् (साम) पशवो वै रयिष्ठं पशूनामवहधै । तां० १४ ।
११ । ३१ ॥
- रश्मयः अथ यः कपाले रसो लिप्त आसीत्ते रश्मयो ऽभवन् । श० ६ ।
१ । २ । ३ ॥
- ,, युक्ता ह्यस्य (इन्द्रस्य) हरयः शतादशेति (ऋ० ६ । ४७ ।
१८) । सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः (हरयः = रश्मयः) ।
जै० उ० १ । ४४ । ५ ॥
- ,, अर्भाशवो वै रश्मयः । श० ५ । ४ । ३ । १४ ॥
- ,, रश्मयो ह्यस्य (सूर्यस्य) विश्वे देवाः । श० ३ । ९ । २ । ६ । १२ ॥
- ,, तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते विश्वे देवाः । श० ४ । ३ ।
१ । २६ ॥
- ,, एते वै विश्वे देवा रश्मयः । श० २ । ३ । १ । ७ ॥
- ,, एते वै रश्मयो विश्वे देवाः । श० १२ । ४ । ४ । ६ ॥
- ,, तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते सुकृतः । श० १ । ९ । ३ । १० ॥
- ,, रश्मय एव हिङ्गारः । जै० उ० १ । ३३ । २ ॥
- ,, रश्मयो वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥
- ,, रश्मयो वै दिवाकीर्त्यानि (सामानि) । तै० १ । २ । ४ । २ ॥
- ,, रश्मयो वा एत आदित्यस्य यद्विवाकीर्त्यानि । तां० ४ ।
६ । १३ ॥
- ,, तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते देवा मरीचिपाः । श० ४ । १ ।
१ । २५ ॥
- ,, मासा वै रश्मयो मरुतो रश्मयः । तां० १४ । १२ । ९ ॥
- ,, ये ते मारुताः (पुरोडाशाः) रश्मयस्ते । श० ९ । ३ ।
१ । २५ ॥
- ,, (यजु० १५ । ६ ॥) अन्नं रश्मिः । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥
- ,, प्राणा रश्मयः । तै० ३ । २ । ५ । २ ॥
- ,, (यजु० १ । १२) एते वाऽ उत्पवितारो यत्सूर्यस्य रश्मयः ।
श० १ । १ । ३ । ६ ॥
- ,, एते वै पवितारो यत्सूर्यस्य रश्मयः । श० ३ । १ । ३ । २२ ॥

- रश्मयः तद्यदेकैकस्य रश्मेर्द्वौ द्वौ वर्णौ भवतः । गो० उ० ६ । ६ ॥
- „ (साविता) रश्मिभिर्वर्ष (समदधात्) । गो० पू० १ । ३६ ॥
- रसः रसो वै मधु । श० ६ । ४ । ३ । २ ॥ ७ । ५ । १ । ४ ॥
- „ अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नित्यपो देवा रसवतीरगृह्णन्नित्येवै-
तदाह (मधु=रसः) । श० ५ । ३ । ४ । ३ ॥
- „ स्वधायै त्वेति रसाय त्वेत्येवैतदाह (स्वधा=रसः) । श० ५ ।
४ । ३ । ७ ॥
- „ रसो वाऽ आपः । श० ३ । ३ । ३ । १८ ॥ ३ । ६ । ४ । ७ ॥
- रहस्युः (देवमलिम्बुङ्) तान् (वैखानसानुर्षान्) रहस्युर्देवमलिम्बुङ्
मुनिमरणे ऽमारयत् । तां० १४ । ४ । ७ ॥
- राका योत्तरा (पौर्णमासी) सा राका । ऐ० ७ । ११ ॥ ष० ४ । ६ ॥
गो० उ० १ । १० ॥
- „ योषाः सा राका । ऐ० ३ । ४८ ॥
- „ या राका सा त्रिष्टुप् । ऐ० ३ । ४७, ४८ ॥
- राजनम् (साम) एतद्वै साक्षादन्नं यद्राजनं पञ्चविधं भवति पाङ्कं
ह्यन्नम् । तां० ५ । २ । ७ ॥
- राजन्यः पृष वै प्रजापतेः प्रत्यक्षतमां यद्राजन्यस्तसादेकः सन्बहूना-
मीष्टे यद्वेव चतुरक्षरः प्रजापतिश्चतुरक्षरो राजन्यः । श०
५ । १ । ५ । १४ ॥
- „ तस्माद् वाहुवीर्य्यो (राजन्यः) वाहुभ्यां हि सृष्टः ।
तां० ६ । १ । ८ ॥
- „ क्षत्रं राजन्यः । ऐ० ८ । ६ ॥ श० १३ । १ । ५ । ३ ॥
- „ क्षत्रस्य वाऽ एतद्रूपं यद्राजन्यः । श० १३ । १ । ५ । ३ ॥
- „ ओजः क्षत्रं वीर्य्यं राजन्यः । ऐ० ८ । २, ३, ४ ॥
- „ वृषा वै राजन्यः । तां० ६ । १० । ६ ॥
- „ युद्धं वै राजन्यस्य वीर्य्यम् । श० १३ । १ । ५ । ६ ॥
- „ युद्धं वै राजन्यस्य । तै० ३ । ९ । १४ । ४ ॥
- „ तस्माद्राजन्यस्य पञ्चदश स्तोमस्त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रो देवता
ग्रीष्म ऋतुः । तां० ६ । १ । ८ ॥
- „ त्रिष्टुप्छन्दा वै राजन्यः । तै० १ । १ । ९ । ६ ॥

- राजन्यः आनुष्टुभो राजन्यः । तै० १ । ८ । ८ । २ ॥ तां० १८ ।
८ । १४ ॥
- „ ऐन्द्रो वै राजन्यः । तै० ३ । ८ । २३ । २ ॥
- „ ऐन्द्रो राजन्यः । तां० १५ । ४ । ८ ॥
- „ औदुम्बरेण राजन्यः अभिषिञ्चति । तै० १ । ७ । ८ । ७ ॥
- „ पार्थुरश्म^३ राजन्यः ब्रह्मसाम कुर्वीत । तां० १३ । ४ । १८ ॥
- „ तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव
ब्रूयात् ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते । श० ३ । २ ।
१ । ४० ॥ (क्षत्रशब्दमपि पश्यत)
- राजसूयः (यज्ञ) राजा वै राजसूयेनेष्ट्रा भवति । श० ५ । २ । १ ।
१२ ॥ ९ । ३ । ४ । ८ ॥
- „ स राजसूयेनेष्ट्रा राजेति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥
- „ राज एव राजसूयम् । श० ५ । १ । १ । १२ ॥
- „ यो राजसूयः । स वरुणसवः । तै० २ । ७ । ६ । १ ॥
- „ वरुणसवो वाऽ एष यद्राजसूयम् । श० ५ । ३ । ४ । १२ ॥
- „ तस्माद्रासूयेनेजानः सर्वमायुरेति । तै० २ । ७ । ७ । ५ ॥
- राजा स राजसूयेनेष्ट्रा राजेति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥
- „ राजा वै राजसूयेनेष्ट्रा भवति । श० ५ । १ । १ । १२ ॥ ६ । ३ । ४ । ८ ॥
- „ राज एव राजसूयम् । श० ५ । १ । १ । १२ ॥
- „ यो वै राजा ब्राह्मणादबलीयानमित्रेभ्यो वै स बलीयान् भवति ।
श० ५ । ४ । ४ । १५ ॥
- „ तस्माद्राजा बाहुबली भावुकः । श० १३ । २ । २ । ५ ॥
- „ तस्माद्राजोरुबली भावुकः । श० १३ । २ । २ । ८ ॥
- „ राजानो वै राष्ट्रभृतस्ते हि राष्ट्राणि विभ्रति । श० ९ । ४ ।
१ । १ ॥
- „ नाऽराजकस्य युद्धमस्ति । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥
- „ तद्यथा महाराजः पुरस्तात्सैनानीकानि प्रत्युह्यामयं पन्थानम-
न्वियात् । कौ० ५ । ५ ॥
- „ यथा राज्ञऽ आगतायोदकमाहरेत् । श० ३ । ३ । ४ । ३१ ॥
- „ तस्माद्राजादण्डयः ['तत्र राजा भवेदण्डयः (!) सद्वस्त्रमिति
धारणा' इति मनु० ८ । ३३६ ॥] । श० ५ । ४ । ४ । ७ ॥

राजा राजा महिमा । तै० ३ । ९ । १० । १ ॥ श० १३ । २ । ११ । २ ॥
राज्यम् अथैनं (इन्द्रं) अस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायाम् दिशि
साध्याश्चाऽऽप्याश्च देवाः . . . अभ्यषिञ्चन् . . . राज्याय ।
पे० ८ । १४ ॥

„ अवर॑ हि राज्यं पर॑ सा म्नाज्यम् । श० ५ । १ । १ । १३ ॥
रातयः (यजु० ३८ । ११) इहैव रातयः सन्त्वितीहैव नो धनानि स-
न्त्वित्येवैतदाह (रातयः=घनानि) । श० १४ । २ । २ । २६ ॥

रात्रिः अन्धो रात्रिः (अन्धः=ऋ० ८ । ९२ । १ ॥) । तां० ९ । १ । ७ ॥

„ तमः पाप्मा रात्रिः । कौ० १५ । ६, ९ ॥ गो० उ० ५ । ३ ॥

„ तम इव हि रात्रिर्मृत्युरिव । पे० ४ । ५ ॥

„ मृत्योस्तम इव हि रात्रिः । गो० उ० ५ । १ ॥

„ रात्रिर्व्वरुणः । पे० ४ । १० ॥ तां० २५ । १० । १० ॥

„ वारुणी रात्रिः । तै० १ । ७ । १० । १ ॥

„ सगरा रात्रिः (सगरः=ऋतुविशेषः-तैत्तिरीयसंहितायां ४ । ४ ।
७ । २ ॥ ५ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्ये ऽपि) । श० १ । ७ ।
२ । २६ ॥

„ अहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः । कौ० २ । ६ ॥

„ रात्रिरेव श्रीः श्रिया॑ ह्यैतद्राज्या॑ सर्वाणि भूतानि संवसन्ति ।
श० १० । २ । ६ । १६ ।

„ रात्रिवै व्युष्टिः । श० १३ । २ । १ । ६ ॥

„ रात्रिः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

„ रात्रिवै कृष्णा शुक्लवत्सा तस्या असावादित्यो वत्सः । श० ६ ।
२ । ३ । ३० ॥

„ रात्रिर्वात्सप्रम् (सूक्तम्) । श० ६ । ७ । ४ । १२ ॥

„ अहोरात्रे वात्सप्रम् (सूक्तम्) । श० ६ । ७ । ४ । १० ॥

„ रात्रिवै पिशाङ्गिला । तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥

„ रात्रयः क्षपाः । पे० १ । १३ ॥

„ रात्रिवै संयच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

„ रजता (कुशी) रात्रिः (अभवत्) । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

„ अथ यदस्तमेति (आदित्यः) । एतामेव तद्रजतां कुशीमनुक्तं वि-
शति (रजता कुशी=रात्रिः) । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

रात्रिः एतत् (रजतं) रात्रिरूपम् । ऐ० ७ । १२ ॥

„ सोमो रात्रिः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥

„ क्षेमो रात्रिः । श० १३ । १ । ४ । ३ ॥

„ ब्रह्मणो वै रूपमहः क्षत्रस्य रात्रिः । तै० ३ । ६ । १४ । ३ ॥

„ यजमानदेवत्यं वा अहः । भ्रातृव्यदेवत्या रात्रिः । तै० २ । २ । ६ । ४ ॥

„ आग्नेयी वै रात्रिः । तै० १ । १ । ४ । २ ॥ १ । ५ । ३ । ४ ॥ २ । १ । २ । ७ ॥

„ राथन्तरी वै रात्री । ऐ० ५ । ३० ॥

„ पञ्चच्छन्दांसि रात्रौ शंसत्यनुष्टुभं गायत्रीमुष्णिहं त्रिष्टुभं जगतीमित्येतानि वै रात्रिच्छन्दांसि । कौ० ३० । ११ ॥

रात्रिः (=रात्रिपर्यायः) एषा वा अग्निष्टोमस्य सम्मा यद्रात्रिः । द्वादश-
स्तोत्राण्यग्निष्टोमो द्वादशस्तोत्राणि रात्रिः । तां० ६ । ६ ।
२३—२४ ॥

„ एषा वा उक्थस्य सम्मा यद्रात्रिः (=सन्धिस्तोत्राणि) ।
त्रीण्युक्थानि, (अग्निरुषा अश्विनाविति) त्रिदेवत्यः सन्धिः ।
तां० ९ । १ । २५—२६ ॥

रामः (मार्गवेयः) रामो हास मार्गवेयो ऽनूचानः श्यापर्णायः । ऐ०
७ । २७ ॥

रायः पशवो वै रायः । श० ३ । ३ । १ । ८ ॥ ४ । १ । २ । १५ ॥

रायस्पोषः पशवो वै रायस्पोषः । श० ३ । ४ । १ । १३ ॥

„ भूमा वै रायस्पोषः । श० ३ । ५ । २ । १२ ॥

रायोवाजीयम् (साम) रायोवाजीयं वैश्याय (कुर्यात्) । तां० १३ ।
४ । १८ ॥

„ पशून् नृह्यमित्यब्रवीत् (इन्द्रं) रायोवाजस्तस्मा पतेन
रायोवाजीयेन पशून् प्रायच्छत् । पशुकाम पतेन स्तुवीत्
पशुमान् भवति । तां० १३ । ४ । १७ ॥

राष्ट्रभृतः (हवींषि) राजानो वै राष्ट्रभृतस्तोहि राष्ट्राणि विभ्रति । श०
९ । ४ । १ । १ ॥

राष्ट्रम् (यजु० १३ । ११) श्रीर्वै राष्ट्रम् । श० ६ । ७ । ३ । ७ ॥

- राष्ट्रम् श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यम् । तै० ३ । ९ । ७ । १ ॥ श० १३ । २ । ९ । ४ ॥
- „ श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेघः । श० १३ । २ । ९ । २ ॥ तै० ३ । ९ । ७ । १ ॥
- „ राष्ट्रं वाऽ अश्वमेघः । श० १३ । १ । ६ । ३ ॥ तै० ३ । ८ । ९ । ४ ॥
- „ राष्ट्रं सान्नाय्यम् (हविः) । श० ११ । २ । ७ । १७ ॥
- „ अष्टौ वै वीरा राष्ट्रं समुद्यच्छन्ति राजभ्राता च राजपुत्रश्च पुरोहितश्च महिषी च सूतश्च ग्रामणी च क्षत्ता च संग्रहीता चैते वै वीरा राष्ट्रं समुद्यच्छन्त्येतेष्वेवाभ्यभिषिच्यते । तां० १९ । १ । ४ ॥
- „ क्षत्रं हि राष्ट्रम् । ऐ० ७ । २२ ॥
- „ राष्ट्रं पत्नः (यजु० २३ । २२ ॥) । तै० ३ । ९ । ७ । ४ ॥ श० १३ । २ । ९ । ६ ॥
- „ राष्ट्रं मुष्टिः (यजु० २३ । २४) । श० १३ । २ । ९ । ७ ॥ तै० ३ । ९ । ७ । ५ ॥
- „ राष्ट्रं हरिणः (यजु० २३ । ३०) । श० १३ । २ । ९ । ८ ॥
- „ राष्ट्राणि वै विशः । ऐ० ८ । २६ ॥
- „ राष्ट्रं सप्तदशः (स्तोमः) । तै० १ । ८ । ८ । ५ ॥
- „ सविता राष्ट्रं राष्ट्रपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १४ ॥ तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
- राष्ट्री वाग्वै राष्ट्री । ऐ० १ । ९ ॥
- रासभः यद्वरसदिव स रासभो ऽभवत् । श० ६ । १ । १ । ११ ॥
- „ यत्तद्वरसदिवैष रासभः । श० ६ । ३ । १ । २८ ॥
- „ वैश्यं च शूद्रं चानु रासभः । श० ६ । ४ । ४ । १२ ॥
- रास्ना हिरो (हिरः=‘मेखला’ इति सायणः) वै रास्ना (=‘रशना’ इति सायणः) । श० १ । ३ । १ । १५ ॥
- रिप्रम् तामदमेध्यं रिप्रं तत् । श० ३ । १ । २ । १२ ॥
- रुक् (यजु० १८ । ४८ ॥ रुक्=दीप्तिः) अमृतत्वं वै रुक् । श० ९ । ४ । २ । १४ ॥

[रुद्रः

(४५२)

रुद्रं अमृतं वै रुक् । श० ७ । ४ । २ । २१ ॥

„ (यजु० १३ । ३९) प्राणो वै रुक् प्राणेन हि रोचते । श० ७ ।
५ । २ । १२ ॥

„ चक्षुर्वै रुक् । श० ६ । ३ । ३ । ११ ॥

रुक्मः असौ वाऽ आदित्य एष रुक्म एष हीमाः सर्वाः प्रजा अति-
रोचते रोचो ह वै तथ रुक्म इत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ७ ।
४ । १ । १० ॥

„ आदित्यस्य (रूपं) रुक्मः । तै० ३ । ९ । २० । २ ॥

„ असौ वाऽ आदित्य एष रुक्मः । श० ६ । ७ । १ । ३ ॥

„ तस्य (अश्वस्य श्वेतस्य) रुक्मः पुरस्ताद्भवति । तदेतस्य रूपं
क्रियते य एष (आदित्यः) तपति । श० ३ । ५ । १ । २० ॥

„ सत्यथैतद्यद्रुक्मः ।तद्यत्तत्सत्यम् । असौ स आदित्यः ।
श० ६ । ७ । १ । १—२ ॥

„ प्रजातिस्तेजो वीर्यं रुक्मः । श० ६ । ७ । १ । ९ ॥

„ रुक्मो वै समुद्रः (यजु० १३ । १६) । श० ७ । ४ । २ । ५ ॥

रुजा (इषुः) अथ यया विद्धः शयित्वा जीवति वा म्रियते वा सा
द्वितीया तदिदमन्तरीक्षं सैषा रुजा नाम । श० ५ । ३ । ५ । २९ ॥

रुद्रः यदरोदीत्साम्राट् । श० ६ । १ । ३ । १० ॥

„ अग्निर्वै रुद्रः । श० ५ । ३ । १ । १० ॥ ६ । १ । ३ । १० ॥

„ (त्वमग्ने रुद्रः.....ऋ० २ । १ । ६ ॥)

„ रुद्रो ऽग्निः । तां १२ । ४ । २४ ॥

„ यो वै रुद्रः सो ऽग्निः । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥

„ एष रुद्रः । यदग्निः । तै० १ । १ । ५ । ८—९ ॥ १ । १ । ६ । ६ ॥
१ । १ । ८ । ४ ॥ १ । ४ । ३ । ६ ॥

„ तान्यतोऽन्यथौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशानिः,
भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि कुमारो नवमः (रुद्रः=
शिवः=मष्टमूर्तिः—अमरकोषे १ । १ । ३६ ॥ कुमारः=स्कन्दः
=रुद्रपुत्रो ऽग्निपुत्रश्च—अमरकोषे १ । १ । ४२-४३ ॥ महाभारते,
वनपर्वणि २२५ । १५—१९) । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

- रुद्रः अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि, शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रो ऽग्निरिति । श० १।७।३।८ ॥
- „ अथोऽभारण्येन्वेव पशुषु रुद्रस्य हेति दधाति (हेतिः=रुद्रस्य आयुधम् ॥ रुद्रः=अग्निः ॥ अमरकोषे १।१।६०—हेतिः=अग्ने-रर्चिः ॥ Monier-Williams' Sanscrit-English Dictionary—हेतिः=agni's weapon, flame etc., etc.) । श० १२।७।३।२० ॥
- „ अथ यत्रैतत्प्रथमं समिद्धो भवति । धूप्यतऽ इव तर्हि ह्यैव (अग्निः) भवति रुद्रः । श० २।३।२।९ ॥
- „ रुद्र पशूनां पते । तै० ३।११।४।२ ॥
- „ रुद्रः (एवैनं राजानं) पशूनां (सुवते) । तै० १।७।४।१ ॥
- „ रुद्रश्च हि नाति पशवः । श० ३।२।४।२० ॥
- „ रौद्रा वै पशवः । श० ६।३।२।७ ॥
- „ रौद्री वै गौः । तै० २।२।५।२ ॥
- „ यद्रौस्तेन रौद्री । श० ५।२।४।१३ ॥
- „ यद्रुद्रश्चन्द्रमास्तेन । कौ० ६।७ ॥
- „ यज्ञेन वै देवाः । दिवमुपोदक्रामन्नथ यो ऽयं देवः (रुद्रः) पशूनामीष्टे स इहाहीयत तस्माद्वास्तव्य इत्याहुर्वास्तौ हि तदहीयत । श० १।७।३।१ ॥
- „ वास्तव्यो वाऽ एष देवः (रुद्रः) । श० ५।२।४।१३ ॥ ५।३।३।७ ॥
- „ य उ एव मृगव्याधः (=Dog-star) स (रुद्रः) उ एव स (मृगव्याध एकादशरुद्रेष्वन्यतमः—नीलकण्ठीयटीकायुते महाभारते, आदिपर्वणि, अध्याये ६६, श्लो० २—३) । ऐ० ३।३३ ॥
- „ रुद्रो वै खिष्टकृत् । कौ० ३।४, ६ ॥
- „ रुद्रः खिष्टकृत् । श० १३।३।४, ३ ॥
- „ रुद्रियः (=रुद्रदेवत्यः) खिष्टकृत् (यागः) । श० १।७।३।२१ ॥
- „ रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम् । कौ० २५।१३ ॥
- „ घोरो वै रुद्रः । कौ० १६।७ ॥

रुद्रः रुद्रो ह वा एष देवानामशान्तः सञ्चितो भवति तमेवैतच्छ्रमयति ।
कौ० १९ । ४ ॥

- „ (रुद्रस्य) यो एवेषुस्त्रिकाण्डा सो एवेषुस्त्रिकाण्डा (त्रिशूली= शिवः=रुद्रः—इति वाचस्पत्यकोषे) । ऐ० ३ । ३३ ॥
- „ शूळपाणये (रुद्राय) स्वाहा । ष० ५ । ११ ॥
- „ अम्बिका ह वै नामास्य (रुद्रस्य) स्वसा । श० २ । ६ । २ । ९ ॥
- „ शरद्वा अस्य (रुद्रस्य) अम्बिका स्वसा । तै० १ । ६ । १० । ४ ॥ (परिशिष्टभागे “अम्बिका” शब्दमपि पश्यत)
- „ आखुस्ते (रुद्रस्य) पशुः (आखुयानः=गणेशः=रुद्रपुत्रः—वैज- यन्ती कोषे, स्वर्गकाण्डे आदिदेवाध्याये, श्लो० ५४ ॥) । श० २ । ६ । २ । १० ॥ तै० १ । ६ । १० । २ ॥
- „ (शतरुद्रियहोमे) अर्कपत्रेण जुहोति । श० ६ । १ । १ । ४, ९ ॥
- „ एतस्य वै देवस्य (रुद्रस्य) आशयादर्कः समभवत्स्वेनैवैनम् (रुद्रम्) एतद्भागेन स्वेन रसेन प्रीणाति (यजमानः) । श० ९ । १ । १ । ९ ॥
- „ (शतरुद्रियहोमे) गवेधुकासकतुभिर्जुहोति । यत्र वै सा देवता (=रुद्रः) विस्त्रस्ताशयत्ततो गवेधुकाः समभवन्त्स्वेनैवैनम् (रुद्रम्) एतद्भागेन स्वेन रसेन प्रीणाति (यजमानः) । श० ९ । १ । १ । ८ ॥
- „ रौद्रो गावेधुकश्चरुः । श० ५ । २ । ४ । ११, १३ ॥
- „ स (रुद्रः) एतच्छ्रुद्रायाऽऽर्द्रायै प्रैयङ्गवं चरुं पयसि निरव- पत् । ततो वै स पशुमानभवत् । तै० ३ । १ । ४ । ४ ॥
- „ प्रजापतिर्वै रुद्रं यज्ञान्निरभजत् (“देवा वै यज्ञाद्रुद्रमन्तरायन्”- इति तैत्तिरीयसंहितायाम् २ । ६ । ८ । ३ ॥ “दक्षः (प्रजापतिः) उवाच—सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु न भागः परिकल्पितः । न मन्त्रो भार्यया सार्द्धं शङ्करस्येति नेज्यते ” इति कूर्मपुराणे पूर्वभागे, अध्याये १५, श्लो० ८ ॥) । गो० ३० १ । २ ॥
- „ उच्छेषणभागो वै रुद्रः । तै० १ । ७ । ८ । ५ ॥
- „ (रुद्रः) तं (प्रजापतिम्) अभ्यायत्याविध्यत् । ऐ० ३ । ३३ ॥
- „ तथं (प्रजापतिम्) रुद्रो ऽभ्यायस्य विव्वाध । श० १ । ७ । ४ ३ ॥

- रुद्रः ल (रुद्रः) यज्ञमभ्यायम्याविध्यत् । (स यज्ञमविध्यत्—इति तैत्तिरीयसंहितायाम् २ । ६ । ८ । ३ ॥) । गो० उ० १ । १ ॥
- „ तद्यद्रुदितात्समभवंस्तस्माद्रुद्राः सो ऽयश्च शतशीर्षा रुद्रः सहस्राक्षः शतेषुधिरधिज्यधन्वा प्रतिहितायी भीषयमाणो ऽतिष्ठदन्नमिच्छमानस्तस्माद्देवा अविभयुः । श० ९ । १ । १ । ६ ॥
- „ एषा (उदीची) वै रुद्रस्य दिक् । तै० १ । ७ । ८ । ६ ॥
- „ एषा (उदीची) ह्येतस्य देवस्य (रुद्रस्य) दिक् । श० २ । ६ । २ । ७ ॥
- „ उत्तरार्धे जुहोत्येषा ह्येतस्य देवस्य (रुद्रस्य) दिक् । श० १ । ७ । ३ । २० ॥
- „ यदुदञ्चः प्रेत्य त्र्यम्बकैश्चरन्ति रुद्रमेव तत्स्वायां दिशि प्रीणन्ति कौ० ५ । ७ ॥
- „ रुद्रस्य बाहू (=‘आर्द्रानक्षत्रम्’ इति सायणः) । तै० १ । ५ । १ । १ ॥
- „ रौद्रो वै प्रतिहर्ता । गो० उ० ३ । १६ ॥
- „ एतद्ध वाऽअस्य (रुद्रस्य) जान्धितं प्रज्ञातमवसानं यच्चतुष्पथम् । श० २ । ६ । २ । ७ ॥
- „ ‘पशुपतिः’, ‘पशुमान्’, ‘भूतवान्’, ‘महान्देवः’ इत्येतानपि शब्दान् पश्यत ।
- रुद्राः तद्यद्रुदितात्समभवंस्तस्माद्रुद्राः । श० ९ । १ । १ । ६ ॥
- „ प्राणा वै रुद्राः । प्राणा हीदं सर्वं रोदयन्ति । जै० उ० ४ । २ । ६ ॥
- „ कतमे रुद्रा इति । दशमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदस्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति । श० ११ । ६ । ३ । ७ ॥
- „ (मृगव्याघ्रश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महायशाः । अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परंतपः ॥ दहनो ऽथेश्वरश्चैव कपाली च महाद्युतिः । स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रा एकादश स्मृताः—इति नीलकण्ठीयटीकायुते महाभारत आदिपर्वणि, ६६ । २-३ ॥)
- „ रुद्रा एकादशकपालेन माध्यन्दिने सबने (अभिषज्यन्) । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥

[रेतः]

(४५६)

रुद्राः रुद्राणां माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥ श०
४ । ३ । ५ । १ ॥

„ अथेमं विष्णुं यद्दं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनं
रुद्रा माध्यन्दिनं सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ ।
१ । १ । १५ ॥

„ त्रिष्टुबुद्धाणां पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥

„ रुद्रास्त्रिष्टुभं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ५ ॥

„ रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा संमृजन्तु । तां० १ । २ । ७ ॥

„ रुद्रास्त्वा दक्षिणतो ऽभिषिञ्चन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा । तै० २ ।
७ । १५ । ५ ॥

„ अथैनं (इन्द्रं) दक्षिणस्यां दिशि रुद्रा देवाः.....अभ्यषि-
ञ्चन् भौज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

„ प्रीष्णेण देवा ऋतुना रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् । बृहता यशसा
बलम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । १ ॥

„ रुद्रा एष महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ वसवो वै रुद्रा आदित्याः सञ्ज्ञावभागाः । तै० ३ । ३ । ९ । ७ ॥

„ सोमो रुद्रैः (व्यग्रवत्) । श० ३ । ४ । २ । १ ॥

„ रुद्राणां वा पतद्रूपम् । यत्पृथुकाः । तै० ३ । ८ । १४ । ३ ॥

रूपम् अन्नं वै रूपम् । श० ६ । २ । १ । १२ ॥

„ कुमारीं रूपं (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥

„ योषित्येव रूपं वधाति । श० १३ । १ । ९ । ६ ॥ तै० ३ । ८ ।
१३ । २ ॥

रुरः अग्निर्वै रुरः । तां० ७ । ५ । १० ॥ १२ । ४ । २४ ॥

रेतः रेतः पुरुषस्य प्रथमं सम्भवतः सम्भवति । ऐ० ३ । २ ॥

„ रेतो हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ५ । ७ ॥

„ अवाग्धै नाम्ने रेतः । श० ६ । ७ । १ । ९ ॥

„ नामिद्गन्ना (आसन्दी) भवति । अन्न (नामिप्रदेशे) वाऽ अन्नं
प्रसितिष्ठति..... अत्रोऽप्यव रेतस आशयः । श० ३ । ३ । ४ । २८ ॥

„ रेतो वै नामानेदिष्टः । ऐ० ६ । २७ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

- रेतः रेतो वै वृष्ण्यम् (यजु० १२ । ११२) । श० ७ । ३ । १ । ४६ ॥
- „ सोमो वै वृष्णो अश्वस्य रेतः । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥
- „ रेतः सोमः । श० ३ । ३ । २ । १ ॥ ३ । ३ । ४ । २८ ॥ ३ । ४ । ३ । ११ ॥ तै० २ । ७ । ४ । १ ॥ कौ० १३ । ७ ॥
- „ रेतो वै सोमः । श० १ । ९ । २ । ६ ॥ २ । ५ । १ । ९ ॥ ३ । ८ । ५ । २ ॥
- „ सोमो रेतो ऽद्धात् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥ १ । ७ । २ । ३ ॥ ४ ॥ १ । ८ । १ । २ ॥
- „ आपो रेतः प्रजननम् । तै० ३ । ३ । १० । ३ ॥
- „ आपो मे रेतसि श्रिताः । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥
- „ आपो हि रेतः । तां० ८ । ७ । ९ ॥
- „ रेतो वा आपः । ऐ० १ । ३ ॥
- „ यत्पयस्तद्रेतः । गो० ७० । २ । ६ ॥
- „ पयो हि रेतः । श० ९ । ५ । १ । ५६ ॥
- „ रेतः पयः । श० १२ । ४ । १ । ७ ॥
- „ रेतो वै घृतम् (यजु० १७ । ७९) । श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥ आज्यशब्दमपि पश्यत ॥
- „ रेत आज्यम् । श० १ । ३ । १ । १८ ॥ (घृतशब्दमपि पश्यत)
- „ पतद्रेतः । यदाज्यम् । तै० १ । १ । ९ । ४ ॥
- „ रेतो वाऽ ओदनः । श० १३ । १ । १ । ४ ॥ तै० ३ । ८ । २ । ४ ॥
- „ रेतो वा अन्नम् । गो० पू० ३ । २३ ॥
- „ प्राणो रेतः । ऐ० २ । ३८ ॥
- „ रेतो वै तनूनपात् । श० १ । ५ । ४ । २ ॥
- „ रेतो हिरण्यम् । तै० ३ । ८ । २ । ४ ॥
- „ वागु हि रेतः । श० १ । ५ । २ । ७ ॥
- „ वाग्नेतः । श० १ । ७ । २ । २१ ॥
- „ शुक्रं वै रेतः । ऐ० २ । १४ ॥
- „ बोषा पयस्या रेतो वाजिनम् । श० २ । ४ । ४ । २१ ॥ २ । ५ । १ । १६ ॥
- „ रेतो वाजिनम् । तै० १ । ६ । ३ । १० ॥

[रेतः

(४५८)

- रेतः रेतःसिक्किर्वै पालीघतग्रहः । कौ० १६ । ६ ॥
" रेतो वै पालीघतः (ग्रहः) । ऐ० ६ । ३ ॥ गो० उ० ४ । ५ ॥
" रेतो वा अच्छिद्रम् । ऐ० २ । ३८ ॥
" सौर्य्यं रेतः । तै० ३ । ६ । १७ । ५ ॥
" द्रप्सीव हि रेतः । श० ११ । ४ । १ । १५ ॥
" त्रिवृद्धि रेतः । तां० ८ । ७ । १४ ॥
" पञ्चविंशत्त्रिंशद्दि रेतः । श० ७ । ३ । १ । ४३ ॥
" रेतो वाऽ अत्र यद्भवः । श० ७ । ३ । २ । ९ ॥
" संवत्सरे संवत्सरे वै रेतःसिक्किर्जायते । कौ० १६ । ६ ॥
" यस्मात्कुमारस्य रेतः सिक्किं न सम्भवति यस्मादस्य मध्यमे वयसि सम्भवति यस्मादस्य पुनरुत्तमे वयसि न सम्भवति । श० ११ । ४ । १ । ७ ॥
" कामार्तो वै रेतः सिञ्चति । गो० उ० ६ । १५ ॥
" आण्डौ वै रेतःसिक्कि, यस्य ह्याण्डौ भवतः स एव रेतः सिञ्चति । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥
" पृथ्व्यो वै रेतःसिक्कि । श० ७ । ५ । १ । १३ ॥ ८ । ६ । २ । ७ ॥
" दक्षिणतो हि रेतः सिच्यते । तां० ८ । ७ । १० ॥ ६२ । १० । १२ ॥
" दक्षिणतो वाऽ उदग्योनौ रेतः सिच्यते । श० ६ । ४ । २ । १० ॥
" आनुतुन्नाद्धि रेतो धीयते । तां० १२ । १० । ११ ॥
" हिङ्कताद्धि रेतो धीयते । तां० ८ । ७ । १३ ॥
" उपांशु वै रेतः सिच्यते । श० ९ । ३ । १ । २ ॥
" उपांश्विव वै रेतसः सिक्किः । ऐ० २ । ३८ ॥
" यदा वै स्त्रियै च पुंश्वसञ्च संतप्यते ऽथ रेतः सिच्यते । श० ३ । ५ । ३ । १६ ॥
" अन्ततो हि रेतो धीयते । श० ६ । ५ । १ । ५६ ॥
" यद्दे रेतसो योनिमतिरिच्यते ऽमुया तद्भवत्यथ यन्न्यूनं व्युद्धं तदेतद्दे रेतसः समृद्धं यत्समं बिलम् । श० ६ । ३ । ३ । २६ ॥
" वांशुर्वै रेतसां विकर्ता । श० १३ । ३ । ८ । १ ॥
" प्राणो हि रेतसां विकर्ता । श० १३ । ३ । ८ । १ ॥
" प्राणोवानाऽ उ वै रेतः सिक्किं विकुरुतः । श० ९ । ५ । १ । ५६ ॥
" रेतो वै प्रजातिः । श० १४ । ९ । २ । ६ ॥

- रेतः उभयतः परिगृहीतं वै रेतः प्रजायते । श० २ । ३ । १ । ३३ ॥
 रेतःसिचौ (इष्टके) पृष्ठयो वै रेतःसिचौ । श० ७ । ५ । १ । १३ ॥
 ८ । ६ । २ । ७ ॥
 ,, आण्डौ वै रेतःसिचौ, यस्य ह्याण्डौ भवतः स
 पव रेतः सिञ्चति । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥
 रेवती (नक्षत्रम्) रेवत्यामरवन्त । तै० १ । ५ । २ । ९ ॥
 ,, पूषणो रेवती । गावः परस्ताद्भृत्सा अवस्तात् । तै० १ । ५ ।
 १ । ५ ॥
 ,, पूषा रेवत्यन्वेति पन्थाम् । तै० ३ । १ । २ । ९ ॥
 रेवत्यः (=रैवतं साम) स (प्रजापतिः) रेवतीरखुजत तद्गवां घोषो
 ऽन्वखुज्यत (रेवतीर्नः सधमादे [ऋ० १ । ३० । १३] इत्य-
 स्यां गीयमानं रैवतं साम—इति ऐ० ४ । १३ भाष्ये सायणः) ।
 तां० ७ । ८ । १३ ॥
 ,, ज्योती रेवती साम्नाम् । तां० १३ । ७ । २ ॥
 ,, यद् बृहत्तैद्रवतम् । ऐ० ४ । १३ ॥
 ,, गायत्री वै रेवती । तां० १६ । ५ । १९ ॥
 ,, या हि का च गायत्री सा रेवती । तां० १६ । ५ । २७ ॥
 ,, रेवत्यो मातरः । तां० १३ । ६ । १७ ॥
 ,, रेवतीनां रसो यद्वारवन्तीयम् । तां० १३ । १० । ५ ॥
 ,, (यजु० १ । २१) रेवत्य आपः । श० १ । २ । २ । २ ॥
 ,, आपो वै रेवतीः । तै० ३ । २ । ५ । २ ॥
 ,, आपो वै रेवत्यः । तां० ७ । ९ । २० ॥ १३ । ९ । १६ ॥
 ,, अपां वा एष रसो यद्वेवत्यः । तां० १३ । १० । ५ ॥
 ,, (यजु० ६ । ८ ॥) रेवन्तो हि पशवस्तस्मादाह रेवती रमण्व-
 मिति । श० ३ । ७ । ३ । १३ ॥
 ,, पशवो वै रेवत्यः । तां० १३ । ७ । ३ ॥ १३ । ९ । २५ ॥
 ,, पशवो वै रेवत्यः । तां० १३ । १० । ११ ॥
 ,, वाग्वै रेवती । श० ३ । ८ । १ । १२ ॥
 ,, रेवत्यः सर्वा देवताः । ऐ० २ । १६ ॥
 रैभी (ऋक्) रेभन्तो वै देवाश्चर्षयश्च स्वर्गं लोकमायन् । गो० ३० ।
 ६ । १२ ॥

- रोचनः (यजु० १२।४९) रोचनो ह नामैष लोको यत्रैष (सूर्यः)
 पतत्तपति । श० ७।१।१।२४ ॥
- „ (यजु० २३।५ ॥) नक्षत्राणि वै रोचना दिवि । तै० ३।
 ९।४।२ ॥
- रोदसी अदरोदीत् (प्रजापतिः) तदनयोः (द्यावापृथिव्योः) रोद-
 स्त्वम् । तै० २।२।९।४ ॥
- „ (यजु० ११।४३ ॥ १२।१०७ ॥) इमे वै द्यावापृथिवी रोदसी ।
 श० ६।४।४।२ ॥ ६।७।३।२ ॥ ७।३।१।३० ॥
- „ इमे (द्यावापृथिव्यौ) ह वाव रोदसी । जै० ७० १।३२।४ ॥
- „ द्यावापृथिवी वै रोदसी । ऐ० २।४१ ॥
- रोहः (यजु० १३।५१) स्वर्गो वै लोको रोहः । श० ७।५।२।३६ ॥
- रोहिणी (नक्षत्रम्) सा (विराट्) तत ऊर्ध्वारोहत् । सा रोहिण्य-
 भवत् । तद्रोहिण्यै रोहिणित्वम् । तै० १।१।१०।६ ॥
- „ विराट् सृष्टा प्रजापतेः । ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी । योनिरग्नेः
 प्रतिष्ठितिः । तै० १।२।२।२७ ॥
- „ यमु हैव तत्पञ्चवो मनुष्येषु काममरोहँस्तमु हैव पशुषु
 क्षामथि रोहति य एवं विद्वाप्प्रोहिण्यां (अग्नी) आधत्से ।
 श० २।१।२।७ ॥
- „ प्रजापती रोहिण्यामग्निमसृजत तं देवा रोहिण्यामादधत
 ततो वै ते सर्वाप्प्रोहानरोहन् तद्रोहिण्यै रोहिणित्वम् । तै०
 १।१।२।२ ॥
- „ ता अस्य (प्रजापतेः) प्रजाः सृष्टा एकरूपा उपस्तब्धास्त-
 स्थू रोहिण्य इवैव तद्वै रोहिण्यै रोहिणीत्वम् । श० २।१।
 २।६ ॥
- „ या (प्रजापतेर्दुहिता) रोहित् (= रक्तवर्णा मृगी) सा रोहिणी
 (अभूत्) । ऐ० ३।३३ ॥
- „ प्रजापते रोहिणी । तै० १।५।१।१ ॥
- „ रोहिणी देव्युदगात् पुरस्तात् प्रजापतिथि हविषा
 वर्द्धयन्ती । तै० ३।१।१।२ ॥
- „ इन्द्रस्य रोहिणी (= ज्येष्ठानक्षत्रमिति सायणः) । तै० १।
 ५।१।४ ॥

रोहिणी आत्मा वै प्रजा पशवो रोहिणी । श० ११ । १ । १ । ७ ॥

„ यद् ब्राह्मणः (=ब्राह्मणनक्षत्रम्) एव रोहिणी । तस्मादेव ।
तै० २ । ७ । १ । ४ ॥

रोहितकूलीयम् (साम) एतेन वै विश्वामित्रो रोहिताभ्यां रोहितकूल
आजिमजयत् । तां० १४ । ३ । १२ ॥

„ विश्वामित्रो भरतानां मनस्वत्यायात् सौदन्तिभिर्नाम
जनतयांशं प्रास्यतेमाम्नां यूयं वस्त्रिकाञ्जयायेमानि
मह्यं यूयं पूर्याय यदीमाविदं रोहितावश्मचितं
कूलमुद्रहात इति स एते सामनी अपश्यन्ताभ्यां
युक्त्वा प्रासेघत्स उदजयत् । तां० १४ । ३ । १३ ॥

„ रोहितकूलीयं भवत्याजिजित्यायै । तां० १४ । ३ । ११ ॥

रोहितम् (छन्दः) रोहितं वै नामैतच्छन्दो यत्पारुच्छेपमेतेन वा
इन्द्रः सप्त स्वर्गाल्लोकानरोहत् । ऐ० ५ । १० ॥

रौरवम् (साम) ते (असुराः) प्रत्युष्यमाणा अरवन्त यदरवन्त
तस्माद्रौरवम् । तां० ७ । ५ । ११ ॥

„ अग्निर्बै करुस्तस्यैतद्रौरवम् । तां० ७ । ५ । १० ॥

„ पशवो वै रौरवम् । तां० ७ । ५ । ८ ॥

रौहिणी (पुरोडाशौ) अग्निश्च ह वा आवित्यश्च रौहिणावेताभ्यां हि
देवताभ्यां यज्ञमानाः स्वर्गं लोकं रोहन्ति । श० १४ ।
२ । १ । २ ॥

„ अहोरात्रे वै रौहिणी । श० १४ । २ । १ । ३ ॥

„ इमौ वै लोकौ (छावापृथिव्यौ) रौहिणी । श० १४ । २ ।
१ । ४ ॥

„ चक्षुषी वै रौहिणी । श० १४ । २ । १ । ५ ॥

(ल)

लक्षणम् यद्वै नास्ति तदलक्षणम् । श० ७ । २ । १ । ७ ॥

लक्ष्मीः तस्माद्यस्य मुखे लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते ।
श० ५ । ४ । ४ । ११ ॥

लक्ष्मीः तस्माद्यस्य दक्षिणतो लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्या-
चक्षते । श० ८ । ४ । ४ । ११ ॥

„ तस्माद्यस्य सर्वतो लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते ।
श० ८ । ५ । ४ । ३ ॥

लवणम् लवणेन सुवर्णं सन्दध्यात् । गो० पू० १ । १४ ॥ जै० ३० ३ ।
१७ । ३ ॥

लाजाः आदित्यानां वा एतद्रूपम् । यल्लाजाः । तै० ३ । ८ । १४ । ४ ॥

„ नक्षत्राणां वाऽ एतद्रूपं यल्लाजाः । श० १३ । २ । १ । ५ ॥

लातव्यः लातव्यो गोत्रो, ब्रह्मणः पुत्रः (ओङ्कारः) । गो० पू० १ ।
२५ ॥

„ स्वाहा वै सत्यसम्भूता ब्रह्मणो दुहिता ब्रह्मप्रकृता लातव्य-
सगोत्रा त्रीण्यक्षराण्येकं पदं त्रयो वर्णाः शुक्लः पद्मः सुवर्ण
इति । ष० ४ । ७ ॥

„ एतद् स्म वा आह कृशाम्बः स्वायवो ब्रह्मा लातव्यः कथं
स्विदथ शिशुमारी यक्षपथेऽप्यस्ता रिष्यति । तां० ८ । ६ । ८

कामगायनः स्वाहा वै सत्यसम्भूता ब्रह्मणा प्रकृता कामगायनसगो-
त्रा द्वे अक्षरे एकं पदं त्रयश्च वर्णाः शुक्लः पद्मः सुवर्ण
इति (लातव्यशब्दमपि पश्यत) । गो० पू० ३ । १६ ॥

लोकम्पृणाः (इष्टिकाः) (=मुहूर्ताः) अथ यत्क्षुद्राः सन्त इमां लोकाना-
पूरयन्ति तस्मात् (मुहूर्ताः) लोकम्पृणाः । श०
१० । ४ । २ । १८ ॥

„ लोकम्पृणाभिर्मुहूर्तान् (आप्नोति) । श० १० ।
४ । ३ । १२ ॥

„ असौ वाऽ आदित्यो लोकम्पृणैष ह्रीमांल्लोका-
न्पूरयति । श० ८ । ७ । २ । १ ॥

„ असौ वाऽ आदित्यो लोकम्पृणा । श० ८ । ५ ।
४ । ८ ॥

„ इन्द्रो लोकम्पृणा । श० ८ । ७ । २ । ६ ॥

„ आत्मा लोकम्पृणा । श० ८ । ७ । २ । ८ ॥

„ वाग्वै लोकम्पृणा । श० ८ । ७ । २ । ७ ॥

- लोकम्पृणाः (इष्टिकाः) क्षत्रं वै लोकम्पृणा । श० ६ । ४ । ३ । ५ ॥
- „ क्षत्रं वै लोकम्पृणा विश इमा इतरा इष्टिकाः ।
श० ८ । ७ । २ । २ ॥
- „ अथ यन्नक्षत्राणित्याख्यायते तल्लोकम्पृणा ।
श० १० । ५ । ४ । ५ ॥
- लोकाः त्रय इमे लोकाः । तां० १६ । १६ । ४ ॥
- „ त्रयो हीमे लोकाः । तां० ७ । १ । १ ॥
- „ त्रयो वाऽ इमे लोकाः । श० १ । २ । ४ । २० ॥
- „ पता वै (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतय इमे (पृथिव्यादयः)
लोकाः । तै० १ । २ । ४ । ३ ॥
- „ त्रयो वाव लोकाः । मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति ।
श० १४ । ४ । ३ । २४ ॥
- „ उत्तर पथां लोकानां ज्यायान् । तां० १६ । १० । ३ ॥
- „ इमे वै (त्रयः) लोका दिव्यानि धामानि । श० ६ । ३ ।
१ । १७ ॥
- „ इमे वै (पृथिवी, अन्तरिक्षं धौश्चेति त्रयः) लोका रजाधंसि
(यजु० ११ । ६) । श० ६ । ३ । १ । १८ ॥
- „ इमे वै लोका विश्वा सद्धानि (यजु० १२ । १३) । श० ६ ।
७ । ३ । १० ॥
- „ स यः स वैश्वानरः । इमे स लोका इयमेव पृथिवी विश्वम-
ग्निर्नरो ऽन्तरिक्षमेव विश्वं वायुर्नरो धौरेव विश्वमादित्यो
नरः । श० ६ । ३ । १ । ३ ॥
- „ इमे लोकास्त्रिरात्रः । तां० १६ । ११ । ४ ॥ २१ । ७ । २ ॥
- „ इमे वै लोकास्त्रिणवः (स्तोमः) । तां० ६ । २ । ३ ॥ १९ । १० ।
६ ॥
- „ इमे वै लोका उखा । श० ६ । ५ । २ । १७ ॥ ६ । ७ । १ । २२ ॥
७ । ५ । १ । २७ ॥
- „ इमे वै लोका उपसद्ः । श० १० । २ । ५ । ५ ॥
- „ इमे वै (त्रयो) लोका भूतेछद्ः । गो० ३५ । ६ । १४ ॥

- लोकाः इमऽ उ लोकाः प्रतिष्ठा चरित्रम् (यजु० १४ । १२ ॥ १५ । ६४ ॥) । श० ८ । ३ । १ । १० ॥ ८ । ७ । ३ । १६ ॥
- ॥ इमे वै लोकाः सरिरम् (यजु० १३ । ४९ ॥ १५ । ५२ ॥) । श० ७ । ५ । २ । ३४ ॥ ८ । ६ । ३ । २१ ॥
- ॥ तदाहुः किं तत्सहस्रम् (ऋ० ६ । ६९ । ८) इतीमे लोका इमे वेदा अथो वागिति ब्रूयात् । ऐ० ६ । १५ ॥
- ॥ इमे वै लोकाः सर्पास्ते हानेन सर्वेण सर्पन्ति यदिदं किं च । श० ७ । ४ । १ । ३५ ॥
- ॥ इमे लोकाः सुरवः (यजु० १३ । ३) । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥
- ॥ इमे वै लोकाः रुचः । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ९ । २ ॥
- ॥ इमे वै लोकाः स्वयमातृणाः । श० ७ । ४ । २ । ८ ॥
- ॥ इमे वै लोकाः स्वरसामानः । ऐ० ४ । १६ ॥
- ॥ इमे वै लोकाः सतश्च योनिरसतश्च (यजु० १३ । ३) यश्चास्ति यश्च न तदेभ्य एव लोकेभ्यो जायते । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥
- ॥ इमे वै लोका विष्णोर्विक्रमणं विष्णोर्विक्रान्तं विष्णोः क्रान्तम् । श० ५ । ४ । २ । ६ ॥
- ॥ स (विष्णुः) इमाँलोकान्विचक्रमे ऽथो वेदानथो वाचम् । ऐ० ६ । १५ ॥
- ॥ इमऽ उ लोकाः संवत्सरः । श० ८ । २ । १ । १७ ॥
- ॥ एतऽ उ वाव लोका यद्द्वोराप्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरः । श० १० । २ । ६ । ७ ॥
- ॥ ते हेमे लोका मित्रगुप्ताः । श० ६ । ५ । ४ । १४ ॥
- ॥ स ह प्रजापतिरीक्षां चक्रे । कथं न्विमं (प्रयो) लोका भुवाः प्रतिष्ठिताः स्युरिति स एभिश्चैव पर्वतैर्नदीभिश्चोमाम् (पृथिवीम्) भद्रं हृद्वयोभिश्च मरीचिभिश्चान्तरिक्षं, जीमूतैश्च नक्षत्रैश्च दिवम् । श० ११ । ८ । १ । २ ॥
- ॥ यावन्त इमे लोका ऊर्ध्वास्तावन्तस्तीर्थ्यश्चः (तीर्थ्यश्चः) । तां० १८ । ६ । ३ ॥

लोकेष्टकाः विशी लोकेष्टकाः । श० ७ । ३ । १ । १३ । २७ ॥

- कोम (साम) भरद्वाजस्य लोम (साम) भवति । तां० १३ ।
११ । ११ ॥
- „ तदु (लोमसाम) दीर्घमित्याहुः । तां० १३ । ११ । १२ ॥
- „ पशवो वै लोम (साम) । तां० १३ । ११ । ११ ॥
- लोमानि लोमानि हृदये (श्रितानि) । तै० ३ । १० । ८ । ८ ॥
- „ छन्दां०सि वै लोमानि । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥ ६ । ७ । १ ।
६ ॥ ९ । ३ । ४ । १० ॥
- „ ओषधिवनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥
- „ लोमैव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥
- लोहम् रजतेन लोहम् (सन्दध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥
- „ लोहेन सीसम् (सन्दध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥
- „ दिशो वै लोहमभ्यः (सूच्यः) । श० १३ । २ । १० । ३ ॥
- लोहायसम् त्रपुणा लोहायसम् (संदध्यात्) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥
- लोहिततूळानि (अङ्गुनानि) (इन्द्रो वृत्रमहृष्टस्तस्य) यो वपाया
उत्खिन्नायाः (सोमः समधावत्) तानि लोहिततूळानि । तां० ९ । ५ । ७ ॥

(व)

- वक्रयः (=वक्राणि पार्श्वस्थीनि) षड्विंशतिरस्य (पशोः) वक्रयः ।
तै० ३ । ६ । ६ । ३ ॥
- „ पर्शव उ ह वै वक्रयः । कौ० १० । ४ ॥
- वज्रः वज्रो वाऽ अग्निः । श० ३ । ५ । ४ । २ ॥ ६ । ३ । १ । ३९ ॥
- „ वज्रो वै परशुः । श० ३ । ६ । ४ । १० ॥
- „ वज्रः शासः । श० ३ । ८ । १ । ५ ॥
- „ त्रिवृद्धै वज्रः । कौ० ३ । २ ॥
- „ (देवाः) एतं त्रिः समृद्धं वज्रमपश्यन्नाप इति तत्प्रथमं वज्ररूपं
सरस्वतीति तद् द्वितीयं वज्ररूपं पञ्चदशर्चं भवति तत्तृतीयं वज्र-
रूपमेतेन वै देवाग्निः समृद्धेन वज्रेणैभ्यो लोकेभ्यो ऽसुराननु-
दन्त । कौ० १२ । २ ॥
- „ वज्रो वाऽ आपः । श० १ । १ । १ । १७ ॥ १ । ७ । १ । २० ॥ ३ ।
१ । २ । ६ ॥ ७ । ५ । २ । ४१ ॥ तै० ३ । २ । ४ । २ ॥

- वज्रः पञ्चदशः (स्तोमः) वै वज्रः । श० १ । ३ । ५ । ७ ॥ ३ । ६ । ४ ।
 २५ ॥ कौ० ७ । २ ॥ १५ । ४ ॥ ष० ३ । ४ ॥ तै० २ । २ । ७ । २ ॥
 तां० २ । ४ । २ ॥
- „ वज्रो वै भान्तो (यजु० १४ । २३) वज्रः पञ्चदशः (यजु० १४ ।
 २३) । श० ८ । ४ । १ । १० ॥
- „ इन्द्रो ह यत्र वृत्राय वज्रं प्रजहार । स प्रहृतश्चतुर्धा ऽभवत्तस्य
 स्फथस्तृतीयं वा यावद्वा यूपस्तृतीयं वा यावद्वा रथस्तृतीयं वा
 यावद्वाथ यत्र प्राहरत्सच्छकलो ऽशीर्यत स पतित्वा शरो
 ऽभवत्सस्माच्छरो नाम यदशीर्यतैवमु स चतुर्धा वज्रो ऽभवत् ।
 श० १ । २ । ४ । १ ॥
- „ वज्रो वै स्फथः । तै० १ । ७ । १० । ५ ॥ ३ । २ । ६ । १० ॥ ३ ।
 २ । १० । १ ॥ श० १ । २ । ५ । २० ॥ ३ । ३ । १ । ५ ॥ ५ । ४ ।
 ४ । १५ ॥
- „ वज्रो वै शरः । श० ३ । १ । ३ । १३ ॥ ३ । २ । १ । १३ ॥
- „ वज्रो यूपः । श० ३ । ६ । ४ । १९ ॥
- „ वज्रो वा एष ययूपः । कौ० १० । १ ॥ ऐ० २ । १, ३ ॥ ष० ४४ ॥
- „ वज्रो वै यूपशकलः । श० ३ । ८ । १ । ५ ॥
- „ वज्रो वै रथः । तै० १ । ३ । ६ । १ ॥ ३ । १३ । ५ । ६ ॥ श० ५ ।
 १ । ४ । ३ ॥
- „ वज्रो वै विकङ्कतः । श० ५ । २ । ४ । १८ ॥
- „ वज्रो वै पशवः । श० ६ । ४ । ४ । ६ ॥ ८ । २ । ३ । १४ ॥
- „ वज्रो वाऽ अश्वः । श० ४ । ३ । ४ । २७ ॥ ६ । ३ । ३ । १२ ॥
- „ वज्रो वै चक्रम् । तै० १ । ४ । ४ । १० ॥
- „ वज्रो वै प्रावा । श० ११ । ५ । ९ । ७ ॥
- „ वज्रो वाऽ आज्यम् । श० १ । ४ । ४ । ४ ॥
- „ वज्रस्तेन यदपोनप्नीया वज्रस्तेन यत्त्रिष्टुब्जस्तेन यद्वाक् ।
 ऐ० २ । १६ ॥
- „ वज्रो वै त्रिष्टुप् । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥
- „ वज्र एव वाक् । ऐ० २ । २१ ॥
- „ त्राग्नि वज्रः । ऐ० ४ । १ ॥

- वज्रः वज्रो वै वषट्कारः । ऐ० ३ । ८ ॥ कौ० ३ । ५ ॥ श० १ । ३ । ३ ।
 १४ ॥ गो० उ० ३ । १, ५ ॥
- „ वज्रो वा एष यद्वषट्कारः । ऐ० ३ । ६ ॥
- „ वज्रो वै हिङ्कारः । कौ० ३ । २ ॥ ११ । २ ॥
- „ हिङ्कारेण वज्रेणाऽऽस्त्रालोकादसुराननुदत् । जै० उ० २ । ८ । ३ ॥
- „ वज्रो वै महानाम्न्यः (ऋचः) । ष० ३ । ११ ॥
- „ वज्रो वै सामिधेन्यः । कौ० ३ । २, ३ ॥ ७ । २ ॥
- „ वज्रो वै वैश्वानरीयम् (सूक्तम्) । ऐ० ३ । १४ ॥
- „ वज्रो वै यौधाजयम् (साम) । तां० ७ । ५ । १२ ॥
- „ शाकरो वज्रः । तै० २ । १ । ५ । ११ ॥
- „ वज्रा वाऽऽ उपसदः । श० १० । २ । ५ । २ ॥
- „ वज्रो वै त्रिणवः (स्तोमः) । तां० ३ । १ । २ ॥
- „ आनुष्टुभो वा एष वज्रो यत्षोडशी (शस्त्रम्) । कौ० १७ । १ ॥
- „ वज्रो वा एष यत्षोडशी । ऐ० ४ । १ ॥
- „ वज्रः षोडशी । ष० ३ । ११ ॥
- „ वज्रो वै षोडशी । गो० उ० २ । १३ ॥ तां० १२ । १३ । १४ ॥
 १९ । ६ । ३ ॥
- „ संवत्सरो वज्रः । श० ३ । ६ । ४ । १९ ॥
- „ संवत्सरो हि वज्रः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥
- „ वीर्यं वज्रः । श० १ । ३ । ५ । ७ ॥
- „ वीर्यं वै वज्रः । श० ७ । ३ । १ । १९ ॥
- „ वज्रो वाऽऽ ओजः । श० ८ । ४ । १ । २० ॥
- „ अष्टाश्रिवै वज्रः । ऐ० २ । १ ॥
- „ पुरो गुरुरिव हि वज्रः । तां० ८ । ५ । २ ॥
- „ एवमेव वै वज्रः साधुर्यदारम्भणतो ऽणीयान् प्रहरणतः स्थवी-
 यान् । ष० ३ । ४ ॥
- „ दक्षिणत उद्यामो हि वज्रः । श० ८ । ५ । १ । १३ ॥
- „ वज्रेणैवैतद्रक्षाऽंशसि नाष्ट्रा अपहन्ति । श० ७ । ४ । १ । ३४ ॥
- बडवा तस्माद्दु संवत्सरऽऽ एव स्त्री वा गौर्वा बडवा वा विजापते ।
 श० ११ । १ । ६ । २ ॥

वत्सः वत्सा वै दैव्या अध्वर्यवः । श० १ । ८ । १ । २७ ॥

„ मन एव वत्सः । श० ११ । ३ । १ । १ ॥

„ अयमेव वत्सो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १२ । ४ । १ । ११ ॥

„ अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः । जै० उ० २ । १३ । १ ॥

„ वत्सा उ वै यज्ञपतिं वर्धन्ति यस्य ह्येते भूयिष्ठा भवन्ति स हि यज्ञपतिर्वर्धते । श० १ । ८ । १ । २८ ॥

वत्सतरी मारुत्यो वत्सतर्य्यः । तां० २१ । १४ । १२ ॥

वदति यद्वै वदति शंसतीति वै तदाद्भुः । श० १ । ८ । २ । १२ ॥

वधकाः ये वधकास्ते ऽन्तरिक्षस्य रूपम् । श० ५ । ४ । ५ । १४ ॥

• वनस्पतयः वनस्पतयो वै द्रु । तै० १ । ३ । ९ । १ ॥

„ यदुग्रो देव ओषधयो वनस्पतयस्तेन । कौ० ६ । ५ ॥

„ भौज्यं वा एतद्वनस्पतीनां (यदुदुम्बरः) । ऐ० ७ । ३२ ॥
८ । १६ ॥

„ अथो सर्वेऽ एते वनस्पतयो यदुदुम्बरः । श० ७ । ५ ।
१ । १५ ॥

„ तेजो ह वाऽएतद्वनस्पतीनां यद्वाह्याशकलस्तस्माद्यदा बाह्या-
शकलमपतक्ष्णुवन्त्यथ शुष्यन्ति । श० ३ । ७ । १ । ८ ॥

„ वनस्पतयो हि यज्ञिया न हि मनुष्या यजेरन् यद्वनस्पतयो
न स्युः । श० ३ । २ । २ । ९ ॥

वनस्पतिः अग्निर्वै वनस्पतिः । कौ० १० । ६ ॥

„ प्राणो वनस्पतिः । कौ० १२ । ७ ॥

„ प्राणो वै वनस्पतिः । ऐ० २ । ४, १० ॥

„ स (वनस्पतिः) उ वै पयोभाजनः । कौ० १० । ६ ॥

वन्दारु (षड्० १२ । ४२) वन्दारुष्टे तन्वं वन्देऽअग्नः इति वन्दिता
ते ऽहं तन्वं वन्दे अऽ इत्येतत् । श० ६ । ८ । २ । ६ ॥

वपनम् ते ऽसुरा ऊर्ध्वं पृष्ठेभ्यो नाऽपश्यन् । ते केशानग्रे ऽवपन्त । अथ
श्मश्रूणि । अथोपपक्षौ । ततस्ते ऽवाञ्च आयन् । परामवन् ।
यस्यैवं वपन्ति । अवाडेति । अथो परैव भवति । तै० १ । ५ ।
६ । १—२ ॥

„ अथैतन्मनुर्षन्त्रे मिथुनमपश्यत् । स श्मश्रूण्यग्रे ऽवपत । अथो-
पपक्षौ । अथ केशान् । ततो वै स प्राजायत । प्रजया पशुभिः ।

वपनम् यस्यैवं वपन्ति । प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते । तै० १ ।

५ । ६ । ३ ॥

„ अथ देवा ऊर्ध्वं पृष्ठेभ्यो ऽपश्यन् । त उपपक्षावग्रे ऽवपन्त ।
अथ इमश्चूणि । अथ केशान् । ततस्ते ऽभवन् । सुवर्गं लोकमा-
यन् । यस्यैवं वपन्ति । भवत्यात्मना । अथो सुवर्गं लोकमेति ।
तै० १ । ५ । ६ । २ ॥

वपा शुक्ला वपा । ऐ० २ । १४ ॥

„ आत्मा वपा । कौ० १० । ५ ॥

„ यजमानदेवत्यो वै वपा । तै० ३ । ९ । १० । १ ॥

„ हुत्वा वपामेवाग्रे ऽभिघारयति । श० ३ । ८ । २ । २४ ॥

„ प्रातः पशुमालभन्ते तस्य वपया प्रचरन्ति । तां० ५ । १० । ९ ॥

वपाश्रपणी कार्ष्मैर्यमयौ वपाश्रपण्यौ भवतः । श० ३ । ८ । २ । १७ ॥

वपुः वपुर्हि पशवः । ऐ० ५ । ६ ॥

वन्नयः इमा वै वन्नथो यदुपदीकाः । श० १४ । १ । १ । ८ ॥

वयः (ऋ० ३ । २९ । ८) प्राणो वै वयः । ऐ० १ । २८ ॥

„ “ पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तम् ” (यजु० ११ । ३३) इति
पृथुर्वाऽ एष (अग्निः) तिर्यङ् वयसो बृहन्धूमेन (वयः=धूमः) ।
श० ६ । ३ । ३ । १९ ॥

„ (यजु० १२ । १०६) धूमो वाऽ अस्य (अग्नेः) श्रवो वयः स
ह्येनममुष्मिँल्लोके श्रावयति । श० ७ । ३ । १ । २९ ॥

„ “ दिव्यं सुपर्णो वयसा बृहन्तम् ” (यजु० १८ । ५१) इति
दिव्यो वाऽ एष (अग्निः) सुपर्णो वयसो बृहन्धूमेन (वयः=धूमः) ।
श० ९ । ४ । ४ । ३ ॥

वयश्छन्दः (यजु० १५ । ५) अन्नं वै वयश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ६ ।

वयस्कृच्छन्दः (यजु० १५ । ५) अग्निर्वै वयस्कृच्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ६ ॥

वयांसि अथ यदशु संश्रितमासीत्तानि वयांसि स्यभवन् । श० ६ । १ । २ । २ ॥

„ ताक्ष्यो वैपश्यतः राजेत्याह तस्य वयांसि विशः
पुराणं वेदः । श० १३ । ४ । ३ । १३ ॥

„ उरस एवास्य (इन्द्रस्य) हृदयात्विषिरस्रवत्स ह्येनो ऽपाञ्चि-
हाभवद्वयसांसं राजा । श० १२ । ७ । १ । ६ ॥

- वयांसि एतद्वै वयसामोजिष्ठं बलिष्ठं यच्छथेनः । श० ३ । ३ । ४ । १५ ॥
- „ स (इयनः) हि वयसामाशिष्ठः । तां० १३ । १० । १४ ॥
- „ इयेनो वै वयसां क्षेपिष्ठः । ष० ३ । ८ ॥
- „ पशवो वै वयांसि । श० ९ । ३ । ३ । ७ ॥
- „ निर्ऋतेर्वा एतन्मुखं यद्वयांसि यच्छकुनयः । ऐ० २ । १५ ॥
- „ निर्णामौ हि वयसः पक्षयोर्भवतो वितृतीये वितृतीये हि वयसः पक्षयोर्निर्णामौ भवतोऽन्तरे वितृतीयेऽन्तरे हि वितृतीये वयसः पक्षयोर्निर्णामौ भवतः । श० १० । २ । १ । ५ ॥
- „ देवाननु वयांस्योषधयो वनस्पतयः । श० १ । ५ । २ । ४ ॥
- वयुनाविद् (यजु० ११ । ४) वयुनाविदित्येष (प्रजापतिः) हीदं वयुनमविदन्त् । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥
- वरः सर्वे वै वरः । श० २ । २ । १ । ४ ॥ ५ । २ । ३ । १ ॥ १३ । ४ । १ । १० ॥
- „ आत्मा हि वरः । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥
- वरणः (वृक्षविशेषः) वारणं (शङ्कुं) पश्चादघं मे वारयाताऽइति । श० १३ । ८ । ४ । १ ॥
- „ तस्माद्दरणो भिषज्य एतेन हि देवा आत्मानमत्रायन्त तस्मात् (वरणवृक्षस्याग्न्युपशमनहेतुत्वात्) ब्राह्मणो वारणेन (वरण-विकारेण पात्रेण) न पिबेद् वैश्वानरश्चेच्छमया इति । तां० ५ । ३ । १०-११ ॥
- वरसद् एष (सूर्यः) वै वरसद् वरं वा एतत्सङ्गनां यस्मिन्नेष आसन्नस्तपति । ऐ० ४ । २० ॥
- वराहः अग्नौ ह वै देवा धृतकुम्भं प्रवेश्यांचक्रुस्ततो वराहः सम्भूव तस्माद्दराहो मेदुरो घृतास्त्रि सम्भूतस्तस्माद्दराहो गावः संजानते स्वमेवैतद्रसमभिसंजानते । श० ५ । ४ । ३ । १९ ॥
- „ पशूनां वा एष मन्युः । यद्दराहः । तै० १ । ७ । ९ । ४ ॥
- „ वराहं क्रोधः (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥
- „ तां (प्रादेशमार्त्रां पृथिवीं) एमूष इति वराह उज्जघान सोऽस्याः (पृथिव्याः) पतिः प्रजापतिः । श० १४ । १ । २ । ११ ॥
- „ स (प्रजापतिः) वै वराहो रूपं कृत्वा उपन्यमज्जत् । तै० १ । १ । ३ । ६ ॥

वरिवरुणन्दः (यजु० १५।४) अन्तरिक्षं वै वरिवरुणन्दः । श० ८
५।२।३ ॥

वरिष्ठा संवत् (यजु० ११।१२) इयं (पृथिवी) वै वरिष्ठा संवत् ।
श० ६।३।२।२ ॥

वरुणः (आपः) यच्च वृत्वा ऽतिष्ठंस्तद्वरणो ऽभवत्सं वा एतं वरणं
सन्तं वरुण इत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवा
भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः । गो० पू० १।७ ॥

„ वरुणो वै जुम्बकः (यजु० २५।९) । श० १३।३।६।५ ॥
तै० ३।९।१५।३ ॥

„ रात्रिर्वरुणः । ऐ० ४।१० ॥ तां० २५।१०।१० ॥

„ वारुणी रात्रिः । तै० १।७।१०।१ ॥

„ यः प्राणः स वरुणः । गो० उ० ४।११ ॥

„ यो वै वरुणः सो ऽग्निः । श० ५।२।४।१३ ॥

„ यो वा अग्निः स वरुणस्तदप्येतद्विष्णोक्तं त्वमग्ने वरुणो
जायसे यदिति । ऐ० ६।२६ ॥

„ अथ यत्रैतत्प्रदीप्ततरो भवति । तर्हि ह्येष (अग्निः) भवति
वरुणः । श० २।३।२।१० ॥

„ स यदाग्निर्घोरसंस्पर्शस्तदस्य वारुणं रूपम् । ऐ० ३।४ ॥

„ वरुण्यो वा ऽ एष यो ऽग्निना श्रुतो ऽथैष मैत्रो य ऊष्मणा
श्रुतः । श० ५।३।२।५ ॥

„ यः (अर्द्धमासः) अपक्षीयते स वरुणः । तां० २५।१०।१० ॥

„ यः (अर्द्धमासः) एवापूर्यते स वरुणः । श० २।४।४।१८ ॥

„ क्लोमा वरुणः । श० १२।९।१।१५ ॥

„ श्रीर्वै वरुणः । कौ० १८।९ ॥

„ वरुणः (श्रियः) साम्राज्यम् (आदत्त) । श० ११।४।३।३ ॥

„ चावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम । तां० १४।२।४ ॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको मित्रो ऽसौ (सुलोकः) वरुणः ।
श० १२।९।२।१२ ॥

„ न्यानो वरुणः । श० १२।९।१।१६ ॥

- वरुणः (यजु० १४।२४) अपानो वरुणः । श० ८।४।२।६ ॥
 १२।९।२।१२ ॥
- ” योनिरेव वरुणः । श० १२।९।१।१७ ॥
- ” वरुणो वृक्षः । श० ४।१।४।१ ॥
- ” वरुण एव सविता । जै० उ० ४।२७।३ ॥
- ” स वा एषो (सूर्यः)ऽपः प्रविश्य वरुणो भवति । कौ० १८।११ ॥
- ” वरुण आदित्यैः (उदक्रामत्) । ऐ० १।२४ ॥
- ” वरुण आदित्यैः (व्यद्रवत्) । श० ३।४।२।१ ॥
- ” संवत्सरो वरुणः । श० ४।४।५।१८ ॥
- ” संवत्सरो हि वरुणः । श० ४।१।४।१० ॥
- ” क्षत्रं वरुणः । कौ० ७।१० ॥ १२।५ ॥ श० ४।१।४।१ ॥
 गो० उ० ६।७ ॥
- ” क्षत्रं वै वरुणः । श० २।५।२।६, ३४ ॥
- ” क्षत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजः । नक्षत्राणां शतभिषग्वसिष्ठः ।
 तै० ३।१।२।७ ॥
- ” इन्द्रस्य (= “वरुणस्य” इति सायणः) शतभिषक् (नक्षत्रम्) ।
 तै० १।५।१।५ ॥
- ” इन्द्र उ वै वरुणः स उ वै पयोभाजनः । कौ० ५।४ ॥
- ” इन्द्रो वै वरुणः स उ वै पयोभाजनः । गो० उ० १।२२ ॥
- ” तद्यदेवान् पयस्तन्मित्रस्य सोम एव वरुणस्य । श० ४।
 १।४।६ ॥
- ” वारुणं यवमयं चरुं निर्वपति । तै० १।७।२।६ ॥
- ” वारुणो यवमयश्चरुः । श० ५।२।४।११ ॥
- ” वरुण्यो ह वाऽअग्ने यवः । श० २।५।२।१ ॥
- ” वरुण्यो यवः । श० ४।३।१।११ ॥
- ” निर्व्वरुणत्वाय (= “वरुणकृतवाद्यपरिहाराय” इति सायणः)
 एव यवाः । तां० १८।९।१७ ॥
- ” (उपसहेवतारूपाया इषोः) वरुणः पर्णानि । ऐ० १।२५ ॥
- ” यत्पश्चाद्वासि वरुणो राजा भूतो वासि (प्रतीची दिग् वरुणो
 ऽधिपतिः—अथर्ववेदे ३।२७।३) । जै० उ० ३।२१।२ ॥
- ” एषा (उत्तरा) वै वरुणस्य दिक् । तै० ३।८।२०।४ ॥

- वरुणः यद्वै यज्ञस्य दुरिष्टं तद्वरुणो गृह्णाति । तां० १३। २। ४ ॥
१५। १। ३ ॥
- ” यज्ञस्य (ईजानस्य) दुरिष्टं भवति वरुणो ऽस्य तद् गृह्णाति ।
ज्ञ० ४। ५। १। ६ ॥
- ” वरुणेन (यज्ञस्य) दुरिष्टं (शमयति) । तै० १। २। ५। ३ ॥
- ” वरुणः (यज्ञस्य) स्विष्टम् (पाति) । ऐ० ३। ३८ ॥ ७। ५ ॥
- ” सत्यानृते वरुणः । तै० १। ७। १०। ४ ॥
- ” अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति । तै० १। ७। २। ६ ॥
- ” वरुणो वा एतं गृह्णाति यः पाप्मना गृहीतो भवति । श०
१२। ७। २। १७ ॥
- ” वरुण्यं वा ऽएतत्स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरति । श०
२। ५। २। २० ॥
- ” (अनडुही वहला) यत्स्त्री सती वहत्यधर्मेण, तदस्यै वारुण्यं
रूपम् । श० ५। २। ४। १३ ॥
- ” वरुण ! धर्मिणां पते । तै० ३। ११। ४। १ ॥
- ” वरुणः (एवैनं) धर्मपतीनां (सुवते) । तै० १। ७। ४। २ ॥
- ” वरुणो वा ऽ आर्षयिता । श० ५। ५। ४। ३१ ॥
- ” सर्वो वै देवानां वरुणः । श० ५। ३। १। ५ ॥
- ” वरुणो ऽन्नपतिः । श० १२। ७। २। २० ॥
- ” वरुणः सम्राट् सन्नपतिः । तै० २। ५। ७। ३ ॥ श० ११।
४। ३। १० ॥
- ” वरुणो वै देवानां राजा । श० १२। ८। ३। १० ॥
- ” विराट् वरुणस्य पत्नी । गो० ७० २। ९ ॥
- ” अथ यदप्सु वरुणं यजति स्व एवैनं तदायतने प्रीणाति । कौ०
५। ४ ॥
- ” अप्सु वै वरुणः । तै० १। ६। ५। ६ ॥
- ” तस्य (प्रजापतेः) यद् रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादि-
त्यो ऽभवद्यद् द्वितीयमासीत्तद् भृगुरभवत्तं वरुणो न्यगृह्णाति
तस्मात्स भृगुर्ब्राह्मिणः । ऐ० ३। ३४ ॥
- ” वरुणस्य वै सुषुवाणस्य भर्गो ऽपाक्रामत्स त्रेधापतद् भृगुस्व-

तीयमभवच्छ्रायन्तीयं तृतीयमपस्तृतीयं प्राविशत् । तां०
१८।९।१ ॥

वरुणः यो ह वाऽ अयमपामावर्त्तः स हावभृथः स ह्वैष वरुणस्य पुत्रो
वा भ्राता वा । श० १२।६।२।४ ॥

” वरुण्यो वाऽ अवभृथः । श० ४।४।५।१० ॥

” एता वाऽ अपां वरुणगृहीता याः स्यन्दमानानां न स्यन्दन्ते ।
श० ४।४।५।१० ॥

” वरुण्या वाऽ एता आपो भवन्ति याः स्यन्दमानानां न स्यन्द-
न्ते । श० ५।३।४।१२ ॥

” वरुणस्य वा अभिषिच्यमानस्याप इन्द्रियं वीर्यं निरघ्नन् । त-
त्सुवर्णं हिरण्यमभवत् । तै० १।८।६।१ ॥

” वरुण्यो वै ग्रन्थिः । श० १।३।१।१६ ॥

” वरुण्यो हि ग्रन्थिः । श० ५।२।५।१७ ॥

” वरुण्या वाऽ एषा यद्रज्जुः । श० ३।२।४।१८ ॥ ३।७।४।१ ॥

” वरुण्या वै यज्ञे रज्जुः । श० ६।४।३।८ ॥

” वरुण्या (=‘वरुणपाशात्मिका’ इति सायणः) रज्जुः ।
श० १।३।१।१४ ॥

” वारुणो वै पाशः । तै० ३।३।१०।१ ॥ श० ६।७।३।८ ॥

” अथेयमेव वारुण्यागा ऽगीता । जै० उ० १।५२।९ ॥

” वारुण एककपालः पुरोडाशो भवति । श० ४।४।५।१५ ॥

” (श्रीः) वारुणं दशकपालं पुरोडाशं (अपश्यत्) ।
श० ११।४।३।५ ॥

” वारुणो दशकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१।१०।२३ ॥

” स (इन्द्रः) एतं वरुणाय शतभिषजे भेषजेभ्यः पुरोडाशं
दशकपालं निरवपत् कृष्णानां व्रीहीणाम् । तै० ३।१।५।९ ॥

” तद्धि वारुणं यत्कृष्णं (वासः) । श० ५।२।५।१७ ॥

” वरुणस्य सायम् (कालः) आसवो ऽपानः । तै० १।५।३।१ ॥

” खलतेर्विह्लिधस्य शुक्रस्य पिक्वाक्षस्य मूर्ध्नेन जुहोति एतद्वै
वरुणस्य रूपम् । तै० ३।९।१५।३ ॥

- वरुणः शुक्लस्य खलतेर्विह्वलस्य पिङ्गाक्षस्य मूर्धनि जुहोत्येतद्वै
वरुणस्य रूपम् । श० १३ । ३ । ६ । ५ ॥
- „ वारुणो वा अश्वः । तै० २ । २ । ५ । ३ ॥ ३ । ८ । २० । ३ ॥
३ । ९ । १६ । १ ॥
- „ वरुणो ह वै सोमस्य राहो ऽभीवाक्षि प्रतिपिपेष तदश्वयत्ततो
ऽश्वः समभवत् । श० ४ । २ । १ । ११ ॥
- „ (प्रजापतिः) वारुणमश्वं (आलिप्सत) । श० ६ । २ । १ । ५ ॥
- „ स हि वारुणो यदश्वः । श० ५ । ३ । १ । ५ ॥
- „ एष वै प्रत्यक्षं वरुणस्य पशुर्यन्मेषः । श० २ । ५ । २ । १६ ॥
- „ वारुणी च हि त्वाष्ट्रो चाविः । श० ७ । ५ । २ । २० ॥
- „ यज्ञो वै वैष्णुवारुणः । कौ० १६ । ८ ॥
- „ वरुणसवो वाऽ एष यद्राजसूयम् । श० ५ । ३ । ४ । १२ ॥
- „ यो राजसूयः । स वरुणसवः । तै० २ । ७ । ६ । १ ॥
- „ मैत्रो वै दक्षिणः । वारुणः सव्यः । तै० १ । ७ । १० । १ ॥
- „ वरुण्या वाऽ एता ओषधयो याः कृष्टे जायन्ते ऽथैते मैत्रा यज्ञा-
म्वाः । श० ५ । ३ । ३ । ८ ॥
- „ वरुण्या वाऽ एषा (शाखा) या परशुवृक्णाथैषा मैत्री (शाखा)
या स्वयम्प्रशर्णा । श० ५ । ३ । २ । ५ ॥
- „ वरुण्यं वाऽ एतद्यन्मथितं (आज्यं) अथैतन्मैत्रं यत्स्वयमुदि-
तम् । श० ५ । ३ । २ । ६ ॥
- „ एतद्वाऽ अवरुण्यं यन्मैत्रम् । श० ३ । २ । ४ । १८ ॥
- „ स (वरुणः) अब्रवीद्यद्भो न कश्चनाऽवृत तदहम्पारिहरिष्य
इति । किमिति । अपध्वान्तं साम्नो वृणे ऽपशव्यमिति ।
जै० उ० १ । ५२ । ८ ॥
- वरुणप्रधासाः तद्यन्वेव (प्रजापतिना सृष्टाः प्रजाः) वरुणस्य यवान्
प्रादंस्तस्माद्वरुणप्रधासा नाम । श० २ । ५ । २ । १ ॥
- „ यदादित्यो वरुणश्च राजानं वरुणप्रधासैरयजत । तद्वरुण-
प्रधासानां वरुणप्रधासत्वम् । तै० १ । ४ । १० । ६ ॥
- „ वरुणप्रधासैर्वै प्रजापतिः । प्रजा वरुणपाशात्प्रामुञ्चता
अस्यानमीवा अकिन्विषाः प्रजाः प्राजायन्त । श० २ ।
५ । ३ । १ ॥

[वर्षाः

(४७६)

वरुणप्रघासाः अयमेव दक्षिण उरुर्वरुणप्रघासाः । श० ११ । ५ । २ ।
३ ॥

„ यद्वरुणप्रघासैर्यजते वरुण एव तर्हि भवति वरुणस्यैव
सायुज्यं सलोकतां जयति । श० २ । ६ । ४ । ८ ॥

वरुणसाम एतेन वै वरुणो राज्यमाधिपत्यमगच्छद्राज्यमाधिपत्यं
गच्छति वरुणसाम्ना तुष्टुवानः । तां० १३ । ९ । २३ ॥

वरुणयः अहोरात्राणि वै वरुणयो ऽहोरात्रैर्हीदुं सर्वे वृतम् । श० ६ ।
५ । ४ । ६ ॥

वरुण्यम् अग्निर्वै वरुण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥

„ आपो वै वरुण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥

„ चन्द्रमा वै वरुण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥

वर्षः सूर्यस्य वर्चसा । तां० १ । ३ । ५ ॥ १ । ७ । ३ ॥

„ सूर्यस्य वर्चसा (त्वाभिषिञ्चामीति) । श० ५ । ४ । २ । २ ॥

„ ततो ऽस्मिन् (अग्नौ) एतद्वर्च आस । श० ४ । ५ । ४ । ३ ॥

„ वर्चो वा ऽ एतद्यद्विरण्यम् । श० ३ । २ । ४ । ९ ॥

„ वर्चो वै हिरण्यम् । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥

„ यद्वै वर्चस्वी कर्म चिकीर्षति शक्नोति वै तत्कर्तुम् । श० ५ ।
२ । ५ । १२ ॥

„ वर्चो द्वाविंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव वर्चो द्वाविंश-
शस्तस्य द्वादशमासाः सप्तऽर्तवो द्वेऽअहोरात्रे संवत्सर एव
वर्चो द्वाविंशस्तद्यत्तमाह वर्च इति संवत्सरो हि सर्वेषां
भूतानां वर्चस्वितमः । श० ८ । ४ । १ । १६ ॥

वर्णाः चत्वारो वै वर्णाः । ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्रः । श० ५ । ५ ।
४ । ९ ॥

वर्षाः (ऋतुः) यद्वर्षति तद्वर्षाणाम् (रूपम्) । श० २ । २ । ३ । ८ ॥

„ तस्य (आदित्यस्य) रथप्रोतश्चासमरथश्च (यजु० १५ । १७)
सेनानीग्रामण्याविति वार्षिकौ तावृत् । श० ८ । ६ । १ । १८ ॥

„ यदा वै वर्षाः पिन्वन्ते ऽथैनाः सर्वे देवा सर्वाणि भूतान्युप-
जीवन्ति । श० १५ । ३ । १ । २२ ॥

„ मयसो वै वर्षस्येशते । श० ९ । १ । ३ । १ ॥

वर्षाः षड्भिः पार्जन्यैर्वा मारुतैर्वा (पशुभिः) वर्षासु (यजते) ।

श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥

„ वर्षे सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

„ वर्षा वै सर्वऽ ऋतवः । श० २ । २ । ३ । ७ ॥

„ वर्षा ह त्वेव सर्वेषामृतनाशं रूपम् । श० २ । २ । ३ । ७ ॥

„ वर्षाः पुच्छम् (संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ४ ॥

„ वर्षा उत्तरः (पक्षः संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ३ ॥

„ वर्षा एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ वर्षा उद्गाता तस्माद्यदा बलवद्वर्षति सास्र इवोपब्धिः क्रियते ।

श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥

„ (प्रजापतिः) वर्षामुद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १२ । ७

„ वर्षा उद्गीथः । ष० ३ । १ ॥

„ वर्षाशरदौ सारस्वताभ्याम् (अबरुन्धे) । श० १२ । ५ । २ । ३४ ॥

„ वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतं वैरूपेण विशौजसा ।
तै० २ । ६ । १६ । १-२ ॥

„ वर्षा ह्यस्य (वैश्यस्य) ऋतुः । तां० ६ । १ । १० ॥

„ तस्माद्द्वैश्यो वर्षास्वादर्धीत । विद्विषि वर्षाः । (वृष्टिशब्दमपि
पश्यत) । श० २ । १ । ३ । ५ ॥

„ श्रोत्रं होतत् पृथिव्या यद्वल्मीकः । तै० १ । १ । ३ । ४ ॥

ऊर्जं वा एतं रसं पृथिव्या उपदीका उद्विहन्ति यद्वल्मीकम् ।

वल्मीकः तै० १ । १ । ३ । ४ ॥

„ प्राजापत्यो वै वल्मीकः । तै० ३ । ७ । २ । १ ॥

वल्मीकवपा इयं (पृथिवी) वै वल्मीकवपा । श० ६ । ३ । ३ । ५ ॥

वशा यद्वशमन्नवत्सा वशा ऽभवत्तस्मात्सा हविरिव । ऐ० ३ । २६ ॥

„ यदा न कश्चन रसः पर्याशिष्यत तत एषा मैत्रावरुणी वशा
समभवत्तस्मादेषा न प्रजायते रसाद्धि रेतः सम्भवति रेतसः
पशावस्तद्यदन्ततः समभवत्तस्मादन्तं यद्वश्यानुवर्तते । श०
४ । ५ । १ । ९ ॥

„ सा हि मैत्रावरुणी यद्वशा । श० ५ । ५ । १ । ११ ॥

„ वशामनूषन्ध्यामलभते । श० २ । ४ । ४ । १४ ॥

वशा वशामालभन्ते । तामालभ्य संज्ञपयन्ति संज्ञप्याह वषामुत्खि-
देत्युत्खिद्य वषामनुमर्शं गर्भमष्टवै ब्रूयात्स यदि न विन्दन्ति
किमाद्रियेरन् यद्यु विन्दति तत्र प्रायश्चित्तिः क्रियते ।
श० ४ । ५ । २ । १ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै वशा पृश्निः । श० १ । ८ । ३ । १५ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै वशा पृश्निर्यदिदमस्यां मूलि चामूलं चान्नाद्यं
प्रतिष्ठितं तेनेयं वशा पृश्निः । श० ५ । १ । ३ । ३ ॥

वशीकरणम् (भूतवशीकरणात्) पञ्च हास्य कार्षापणा भवन्ति
व्ययकृताश्च पुनरायन्ति मूलमशून्यं कुर्यात् । सा० वि०
३ । ७ । ५ ॥

„ (वशीकृताः) जम्भकाः (= भूतविशेषाः) हास्य सार्व-
कामिका भवन्ति । सा० वि० ३ । ७ । ५ ॥

„ तेन (द्रव्येण) अनुलिम्पेदवांशं (= लिङ्गं) च नि त्वा नक्ष्य
विश्रुत इत्येतेनास्य वेशस्थाः (= वेद्याः) प्रव्रजिताः
(पतिकुलाग्निर्गताः स्वैराचारिण्यः) च वद्या भवन्ति ।
सा० वि० २ । ६ । ४ ॥

वषट्कारः स वै वौगिति करोति । वाग्वै वषट्कारो वाग्रेतो रेत
एवैतत्सिञ्चति षडित्यृतवो वै षट् तद्वतुष्वेवैतद्रेतः सिच्यते
तद्वतवो रेतः सिक्कमिमाः प्रजाः प्रजनयन्ति तस्मादेवं
वषट्करोति । श० १ । ७ । २ । २१ ॥

„ वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारः । ऐ० ३ । ८ ॥

„ वाक् च ह वै प्राणापानौ च वषट्कारः । गो० उ० ३ । ६ ॥

„ तस्यै (वाचे) द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च
वषट्कारं च । श० १४ । ८ । ९ । १ ॥

„ प्राणो वै वषट्कारः । श० ४ । २ । १ । २९ ॥

„ एष एव वषट्कारो य एष (सूर्यः) तपति । श० १ । ७ ।
२ । ११ ॥

„ एष वं वषट्कारो य एष (सूर्यः) तपति । श० ११ । २ ।
२ । ५ ॥

„ यः सूर्यः स धाता स उ एव वषट्कारः । ऐ० ३ । ४८ ॥

„ यो धाता स वषट्कारः । ऐ० ३ । ४७ ॥

- वषट्कारः निमेषो वषट्कारः । तै० २ । १ । ५ । ९ ॥
- ” त्रयो वै वषट्कारा वज्रो धामच्छद्रिक्तः । ऐ० ३ । ७ ॥
- ” त्रयो वै वषट्कारा वज्रो धामच्छद्रिक्तः । स यदेवोच्चैर्बलं
वषट्करोति स वज्रः... अथ यः समः संततो निर्हाणच्छत्स्व
धामच्छत्.....अथ येनैव षट् परार्धोति स रिक्तः ।
गो० उ० ३ । ३ ॥
- ” वज्रो वै वषट्कारः । ऐ० ३ । ८ ॥ कौ० ३ । ५ ॥ श० १ ।
३ । ३ । १४ ॥ गो० उ० ३ । १, ५ ॥
- ” वज्रो वा एष यद्वषट्कारो यं छिष्यात्तं ध्यायेद्वषट्करिष्यंस्त-
स्मिन्नेव तं वज्रमास्थापयति । ऐ० ३ । ६ ॥
- ” देवेषुर्वा एषा यद्वषट्कारः । तां० ८ । १ । २ ॥
- ” देवपात्रं वाऽ एष यद्वषट्कारः । श० १ । ७ । २ । १३ ॥
- ” देवपात्रं वा एतद्यद्वषट्कारः । ऐ० ३ । ५ ॥
- ” देवपात्रं वै वषट्कारः । गो० उ० ३ । १ ॥
- ” एते एव वषट्कारस्य प्रियतमे तनू यदोजश्च सहश्च ।
कौ० ३ । ५ ॥
- ” ओजश्च ह वै सहश्च वषट्कारस्य प्रियतमे तन्वौ ।
ऐ० ३ । ८ ॥
- ” तस्य वाऽ एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य चत्वारो वषट्कारा यद्वातो
वाति यद्विद्योतते यत्स्तनयति यदवस्फूर्जति तस्मादेवं-
विद्वाते वाति विद्योतमाने स्तनयत्यवस्फूर्जत्यधीयीतैव
वषट्काराणामच्छब्देकाराय । श० ११ । ५ । ६ । ९ ॥
- ” वषट्कारो ह्येष परोऽक्षं यद्वेट्कारः । श० ९ । ३ । ३ । १४ ॥
- वसतीवर्यः (आपः) तदासु विश्वान्देवान्संवेशयत्येते वै वसतां वरं
तस्माद्द्वसतीवर्यो नाम । श० ३ । ९ । २ । १६ ॥
- वसन्तः (ऋतुः) एतौ (मधुश्च माधवश्च) एव वासन्तिकौ (मासौ)
स यद्वसन्तऽ ओषधयो जायन्ते वनस्पतयः पच्यन्ते तेनो
हैतौ मधुश्च माधवश्च । श० ४ । ३ । १ । १४ ॥
- ” तस्य (अग्नेः) रथगृत्सश्च रथौजाश्च (यजु० १५ । १५) सेना-
नीग्रामण्याविति वासन्तिकौ तावृत् । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥

- वसन्तः यदेव पुरस्ताद्वाति तद्वसन्तस्य रूपम् । श० २ । २ । ३ । ८ ॥
- ” तस्य (संवत्सरस्य) वसन्त एव द्वारं हेमन्तो द्वारं तं
वाऽपतं संवत्सरं स्वर्गं लोकं प्रपद्यते । श० १ । ६ । १ । १९ ॥
- ” मुखं वा पतद्वतूनां यद्वसन्तः । तै० १ । १ । २ । ६-७ ॥
- ” तस्य (संवत्सरस्य) वसन्तः शिरः । तै० ३ । ११ । १० । २ ॥
- ” ऊर्ध्वं वसन्तः । ऐ० ४ । २६ ॥
- ” वसन्त आग्नीध्रस्तस्माद्वसन्ते दावाश्चरन्ति तद्व्यग्निरूपम् ।
श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥
- ” वसन्तः समिद्धोऽन्यानृतून्त्सामिन्धे । श० १ । ३ । ४ । ७ ॥
- ” वसन्तो वै समित् । श० १ । ५ । ३ । ९ ॥
- ” समिधो यजति वसन्तमेव वसन्ते वा इदं सर्वं समिध्यते ।
कौ० ३ । ४ ॥
- ” वसन्तो हिङ्गारः । ष० ३ । १ ॥
- ” स (प्रजापतिः) वसन्तमेव हिङ्गारमकरोत् । जै० उ०
१ । १२ । ७ ॥
- ” षड्भिराग्नेयैः (पशुभिः) वसन्ते (यजते) । श० १३ । ५ ।
४ । २८ ॥
- ” वसन्तेनर्तुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुतम् । रथन्तरेण तेजसा ।
हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । १ ॥
- ” वसन्त एव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- ” वसन्तो वै ब्राह्मणस्यर्तुः । तै० १ । १ । २ । ६ ॥ श० १३ । ४ । १ । ३ ॥
- ” तस्माद्ब्राह्मणो वसन्तऽआदधीत ब्रह्म हि वसन्तः । श० २ ।
१ । ३ । ५ ॥
- वसवः कतमे वसव इति । अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादि-
त्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एते हीदं सर्वं
वासयन्ते ते यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति । श० ११ ।
६ । ३ । ६ ॥
- ” प्राणा वै वसवः । प्राणा हीदं सर्वं वस्वाददते । जै० उ० ४ ।
२ । ३ ॥
- ” प्राणा वै वसवः । तै० ३ । २ । ३ । ३ ॥ ३ । २ । ५ । २ ॥

- वसवः गायत्री वसूनां पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥
- „ वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा संमृजन्तु । तां० १ । २ । ७ ॥
- „ वसवो गायत्रीं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ४ ॥
- „ वसवस्त्वा पुरस्तादभिषिञ्चन्तु गायत्रेण छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥
- „ अथैनं (इन्द्रं) प्राच्यां दिशि वसवो देवाः.....अभ्यषिञ्चन्... साम्राज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥
- „ अग्निर्वसुभिरुदक्रामत् । ऐ० १ । २४ ॥
- „ वसव एव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ वसूनामेव प्रातःसवनम् । श० ४ । ३ । ५ । १ ॥
- „ वसूनां वै प्रातःसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥
- „ अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनं रुद्रा माध्यन्दिनं सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ । १ । १ । १५ ॥
- „ तं (आदित्यं) वसवो ऽष्टकपालेन (पुरोडाशेन) प्रातःसवने ऽभिषज्यन् । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥
- „ वसन्तेभर्तुना देवा वसवस्त्रिवृतास्तुतम् । रथन्तरेण तंजसा । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । १ ॥
- „ वसूनां वा एतद्रूपम् । यत्तण्डुलाः । तै० ३ । ८ । १४ । ३ ॥
- „ वसवो वै रुद्रा आदित्या सञ्ज्ञावभागाः । तै० ३ । ३ । ९ । ७ ॥
- „ वसूनां श्रविष्ठाः (नक्षत्रम्) । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥
- „ अष्टौ देवा वसवः सोम्यासः । चतस्रो देवीरजराः श्रविष्ठाः । ते यज्ञं पान्तु रजसः पुरस्तात् । संवत्सरीणममृतं स्वस्ति । तै० ३ । १ । २ । ६ ॥
- वसा परमं वा एतदन्नाद्यं यद्वसा । श० १२ । ८ । ३ । १२ ॥
- वसिष्ठः (यजु० १३ । ५४) यद्वै नु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठो ऽथो यद्वस्तुतमो वसति तेनोऽप्येव वसिष्ठः । श० ८ । १ । १ । ६ ॥
- „ येन वै श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठः (हिङ्गारः) गो० उ० ३ । ६ ॥
- „ ष (प्रजापतिः) वै वसिष्ठः (= सर्वश्रेष्ठ इति सायणः) । श० २ । ४ । ४ । २ ॥

वसिष्ठः प्रजापतिवै वसिष्ठः । कौ० २५ । २ ॥ २६ । १५ ॥

” (यजु० १३ । ५४) प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः । श० ८ । १ । १ । ६ ॥

” सा ह वागुवाच । (हे प्राण) यद्वाऽ अहं वसिष्ठास्मि त्वं तद्वसिष्ठो ऽसीति । श० १४ । ९ । २ । १४ ॥

” (ऋ० २ । ६ । १) अग्निवै देवानां वसिष्ठः । ऐ० १ । २८ ॥

” वसिष्ठो वा एतं (इन्द्रक्रतुन्न आभरेति प्रगाथं) पुत्रहतो (नीलकंठीयटीकायुते महाभारते, आदिपर्वणि, अ० १७६) ऽपश्यत् स प्रजया पशुभिः प्राजायत । तां० ४ । ७ । ३ ॥ ८ । २ । ४ ॥

” वसिष्ठस्य जानत्रे (सामनी) भवतो वसिष्ठो वा एते पुत्रहतः सामनी अपश्यत् स प्रजया पशुभिः प्राजायत । तां० १९ । ३ । ८ ॥

” ततो वै वसिष्ठपुरोहिता भरताः प्राजायन्त । तां० १५ । ५ । २४ ॥

वसिष्ठयज्ञः “दाक्षायणयज्ञः” शब्दं पश्यत ॥

वसिष्ठा वाग्वै वसिष्ठा । श० १४ । ९ । २ । २ ॥

वसु पशवो वसु । श० ३ । ७ । ३ । ११, १३ ॥

” पशवो वै वसु । तां० ७ । १० । १७ ॥ १३ । ११ । २ ॥

वसुः (यजु० १ । २) यज्ञो वै वसुः । श० १ । ७ । १ । ६, १४ ॥

” स एषो (अग्निः) ऽत्र वसुः । श० ९ । ३ । २ । १ ॥

” वसुरन्तरिक्षसत् (यजु० १२ । १४) । श० ५ । ४ । ३ । २३ ॥

वसुरन्तरिक्षसत् (यजु० १२ । १४) वायुवै वसुरन्तरिक्षसत् । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

” एष (सूर्यः) वै वसुरन्तरिक्षसद् । ऐ० ४ । २० ॥

वसुधेयः इन्द्रो वसुधेयः । श० १ । ८ । २ । १६ ॥

वसुवनिः अग्निवै वसुवनिः । श० १ । ८ । २ । १६ ॥

वसोर्धारा अत्रैव सर्वो ऽग्निः संस्कृतः स एषोत्र वसुस्तस्मै देवा एतां धारां प्रागृह्णन्तस्मै नमस्ते तद्यदेतस्मै वसवऽ एतां धारां प्रागृह्णन्तस्मादेनां वसोर्धारेत्याचक्षते । श० ९ । ३ । २ । १ ॥

” तद्यदेषा वसुमयी धारा तस्मादेनां वसोर्धारेत्याचक्षते । श० ९ । ३ । २ । ४ ॥

” अग्नाविष्णू इति वसोर्धारायाः (रूपम्) । तै० ३ । ११ । ९ । ९ ॥

” तस्यै वाऽ एतस्यै वसोर्धारायै । द्यौरैवात्मा । श० ९ । ३ । ३ । १५ ॥

- वसोर्धारा (वसोर्धारायै) अभ्रमूधः । श० ९ । ३ । ३ । १५ ॥
 ,, (वसोर्धारायै) विद्युत्स्तनः । श० ९ । ३ । ३ । १५ ॥
 वक्त्रिः वद्विर्वा अनङ्गवान् । तै० १ । १ । ६ । १० ॥ १ । ८ । २ । ५ ॥
 वाः यद्वृणोत्तस्माद्वाः (जलम्) । श० ६ । १ । १ । ९ ॥
 वाक् वाग्वै गीः (यजु० १२ । ६८) । श० ७ । २ । २ । ५ ॥
 ,, वाग्वै धेनुः । गो० पू० २ । २१ ॥ तां० १८ । ९ । २१ ॥
 ,, वाचं धेनुमुपासीत । तस्याश्चत्वार स्तनाः स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारः स्वधाकारस्तस्यै द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च हन्तकारं मनुष्याः स्वधाकारं पितरस्तस्याः प्राण ऋषभो मनो वत्सः । श० १४ । ८ । ९ । १ ॥
 ,, वाग्वै शबली (= 'कामधेनुः' इति सायणः) । तां० २१ । ३ । १ ॥
 ,, वाक् सरस्वती । श० ७ । ५ । १ । ३१ ॥ ११ । २ । ४ । ६ ॥ १२ । ९ । १ । १३ ॥
 ,, वाक्नु सरस्वती । ऐ० ३ । १ ॥
 ,, वागेव सरस्वती । ऐ० २ । २४ ॥ ६ । ७ ॥
 ,, वाग्धि सरस्वती । ऐ० ३ । २ ॥
 ,, वाग्वै सरस्वती । कौ० ५ । २ ॥ १२ । ८ ॥ १४ । ४ ॥ तां० ६ । ७ । ७ ॥ १६ । ५ । १६ ॥ श० २ । ५ । ४ । ६ ॥ ३ । ९ । १ । ७ ॥ तै० १ । ३ । ४ । ५ ॥ ३ । ८ । ११ । २ ॥ गो० उ० १ । २० ॥
 ,, वाग्वै सरस्वती पावीरवी । ऐ० ३ । ३७ ॥
 ,, सरस्वती वाचमदधात् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥
 ,, अथ यत्स्फूर्जयन्वाचमिव वदन्दहति तदस्य (अग्नेः) सारस्वतं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
 ,, सा (वाक्) ऊर्ध्वोदातनोद्यथापां धारा संततैवम् (सरस्वती [नदी] = वाक् ॥ सरस्वतीशब्दं पश्यत) । तां० २० । १४ । २ ॥
 ,, वाग्वै समुद्रः । तां० ७ । ७ । ९ ॥
 ,, वाग्वै समुद्रो मनः समुद्रस्य चक्षुः । तां० ६ । ४ । ७ ॥
 ,, वाग्वै समुद्रो (ऋ० ४ । ५८ । १) न वै वाक् क्षीयते न समुद्रः क्षीयते । ऐ० ५ । १६ ॥
 ,, वाग्वै सरिः उग्रः (यजु० १३ । ४) । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

- वाक् वाग्वै सरिरम् (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ५३ ॥
- „ वाग्वै सोमक्रयणी (गौः) निदानेन । श० ३ । २ । ४ । १०, २५ ॥
- „ वाग्वाऽ एषा निदानेन यत्साहस्री (गौः) तस्या एतत् सहस्रं वाचः प्रजातम् । श० ४ । ५ । ८ । ४ ॥
- „ तदाहुः किं तत्सहस्रम् (ऋ० ६ । ६९ । ८) इतीमे लोका इमे वेदा अथो वागिति ब्रूयात् । ऐ० ६ । १५ ॥
- „ वाग्वै सिनीवाली (यजु० ११ । ५५) । श० ६ । ५ । १ । ६ ॥
- „ वाक् सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १५ ॥
- „ वाग्वै सार्वराज्ञी । कौ० २७ । ४ ॥
- „ वागेव सुवर्णी (माया) । श० ३ । ६ । २ । २ ॥
- „ वाग्वाव शतपदी । ष० १ । ४ ॥
- „ वाग्वै रेवती । श० ३ । ८ । १ । १२ ॥
- „ वागषाढा । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥ ७ । ५ । १ । ७ ॥
- „ वाग्वाऽ अषाढा । श० ७ । ४ । २ । ३४ ॥ ८ । ५ । ४ । १ ॥
- „ वाग्वै पथ्या स्वस्तिः । कौ० ७ । ६ ॥ श० ३ । २ । ३ । ८ ॥ ४ । ५ । १ । ४ ॥
- „ वाग्घ्येषा (पथ्या स्वस्तिः) । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥
- „ जूरसि (यजु० ४ । १७), (जूः) इत्येतत् ह वा अस्याः (वाचः) एकं नाम । श० ३ । २ । ४ । ११ ॥
- „ तस्यै (वाचे) जुहुयाद् बेकुरा नामासि । तां० ६ । ७ । ६ ॥
- „ वाग्वै धिषणा (यजु० ११ । ६१) । श० ६ । ५ । ४ । ५ ॥
- „ वाग्वै ऋतिः (यजु० १३ । ५८) वाचा हृदीऽऽ सर्वे मनुते । श० ८ । १ । २ । ७ ॥
- „ वाग्वै बृहती । श० १४ । ४ । १ । २२ ॥
- „ यदस्यै वाचो बृहत्यै पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः । जै० उ० २ । २ । ५ ॥
- „ बृहस्पतिः (एवैनं) वाचां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥
- „ अथ बृहस्पतये वाचे । नैवारं चरुं निर्वपति । श० ५ । ३ । ३ । ५ ॥
- „ वाग्वै राष्ट्री । ऐ० १ । १६ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै वागवो (अन्तरिक्षम्) मनः । ऐ० ५ । ३३ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै वाक् । श० ४ । ६ । ९ । १६ ॥

- वाक् वागिति पृथिवी । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
- ॥ वागेवायं (पृथिवी-) लोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥
- ॥ वागित्यन्तरिक्षम् । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
- ॥ वागिति द्यौः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
- ॥ वाग्वै लोकम्पृणा (इष्टका) । श० ८ । ७ । २ । ७ ॥
- ॥ वाग्वै विराद् । श० ३ । ५ । १ । ३४ ॥
- ॥ वाग्वै विश्वामित्रः । कौ० १० । ५ ॥ १५ । १ ॥ २९ । ३ ॥
- ॥ वाग्वै विश्वकर्मऽर्षिः (यजु० १३ । ५८) वाचा हीदथ्सर्वं
कृतम् । श० ८ । १ । २ । ६ ॥
- ॥ वागेव सथ्सुत्तुच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥
- ॥ वाग्वा अनुष्टुप् । ऐ० १ । २८ ॥ ३ । १५ ॥ ६ । ३६ ॥ श० १ ।
३ । २ । १६ ॥ ८ । ७ । २ । ६ ॥ गो० उ० ६ । १६ ॥
- ॥ वागनुष्टुप् । कौ० ५ । ६ ॥ ७ । ९ ॥ २६ । १ ॥ २७ । ७ ॥ श०
१० । ३ । १ । १ ॥ तै० १ । ८ । २ ॥ तां० ५ । ७ । १ ॥
- ॥ महिषी हि वाक् । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥
- ॥ वागित्यृक् । जै० उ० १ । ९ । २ ॥
- ॥ वागृक् । जै० उ० ४ । २३ । ४ ॥
- ॥ सा या सा वौगृक् सा । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥
- ॥ वागेवऽर्वेदः । श० १४ । ४ । ३ । १२ ॥
- ॥ वागेवऽर्चश्च सामानि च । मन एव यजूथ्सि । श० ४ । ६ ।
७ । ५ ॥
- ॥ वाग्ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥
- ॥ वाग्घि ब्रह्म । ऐ० २ । १५ ॥ ४ । २१ ॥
- ॥ वाग्वै ब्रह्म । ऐ० ६ । ३ ॥ श० २ । १ । ४ । १० ॥ १४ । ४ । १ ।
२३ ॥ १४ । ६ । १० । ५ ॥
- ॥ वागिति तद् ब्रह्म । जै० उ० २ । ९ । ६ ॥
- ॥ सा या सा वाग्ब्रह्मैव तत् । जै० उ० २ । १३ । २ ॥
- ॥ ब्रह्मैव वाचः परमं व्योम । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥
- ॥ वाग्वै ब्रह्म च सुब्रह्म चेति । ऐ० ६ । ३ ॥
- ॥ वाग्वै सुब्रह्मण्या । ऐ० ६ । ३ ॥
- ॥ वागुक्थम् । ष० १ । ५ ॥

- वाक् वाग्धि शस्त्रम् । ऐ० ३ । ४४ ॥
 ,, वाक् शंसः । ऐ० २ । ४ ॥ ६ । २७, ३२ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥
 ,, वाग्वै रथन्तरम् । ऐ० ४ । २८ ॥
 ,, वाग्रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
 ,, वाग्वै त्वष्टा वाग्धीदं सर्वे ताष्टीव । ऐ० २ । ४ ॥
 ,, वाग्वै दध्यङ्कुडार्थर्वणः (यजु० ११ । ३३ ॥) । श० ६ । ४ ।
 २ । ३ ॥
 ,, वाग्वा अर्बुदम् । तै० ३ । ८ । १६ । ३ ॥
 ,, वाग्वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥
 ,, वागेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
 ,, वाग्वा उत्तरनाभिः । श० १४ । ३ । १ । १६ ॥
 ,, वागुदयनीयम् । कौ० ७ । ९ ॥
 ,, वाग्वामभृत् । श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥
 ,, वाग्वै शर्म (ऋ० ३ । १३ । ४) । ऐ० २ । ४० ॥
 ,, वाग्वै स्नुक् । श० ६ । ३ । १ । ८ ॥
 ,, वागेवादाभ्यः (ग्रहः) । श० ११ । ५ । ६ । १ ॥
 ,, वाग्वै सीतासमरः । श० ७ । २ । ३ । ३ ॥
 ,, वागिति श्रोत्रम् । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
 ,, वाग्वा इन्द्रः । कौ० २ । ७ ॥ १३ । ५ ॥
 ,, वाग्वायैन्द्री । ऐ० २ । २६ ॥
 ,, एतस्य वा इन्द्राग्न्योः प्रियं धाम यद्वागिति । ऐ० ६ । ७ ॥ गो०
 उ० ५ । १३ ॥
 ,, अग्निर्मे वाचि श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥
 ,, सा या सा वागग्निस्सः । जै० उ० १ । २८ । ३ ॥
 ,, सा या सा वागासीत्सो ऽग्निरभवत् । जै० उ० २ । २ । १ ॥
 ,, या वाक् सो ऽग्निः । गो० उ० ४ । ११ ॥
 ,, वागेवाग्निः । श० ३ । २ । २ । १३ ॥
 ,, वाग्वाऽग्निः । श० ६ । १ । २ । २८ ॥ जै० उ० ३ । २ । ५ ॥
 ,, तपो मे तेजो मे ऽन्नम्मे वाक् मे । तन्मे त्वयि (अग्नी) । जै० उ०
 ३ । २० । १६ ॥
 ,, वाग्वाऽअस्य (अग्नेः ?) स्वो महिमा श० ६ । ४ । २ । १७ ॥

- वाक् वाग्वाऽ अस्य (प्रजापतेः) स्वो महिमा । श० २ । २ । ४ । ४ ॥
- ” प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत्तस्य वागेव स्वमासीद्वाग् द्वितीया
स ऐक्षतेमामेव वाचं विसृजा इयं वा इदं सर्वं विभवन्त्ये-
ष्यतीति स वाचं विसृजत (काठकसंहितायाम् १२ । ५ ॥ २७ ।
१ :— प्रजापतिर्वा इदमासीत्तस्य वाग् द्वितीयासीत्तामिथुनं
समभवत्सा गर्भमधत्त सास्मादपाक्रामत्सेमाः प्रजा असृजत
सा प्रजापतिमेव पुनः प्राविशत्) । तां० २० । १४ । २ ॥
- ” प्रजापतिर्हि वाक् । तै० १ । ३ । ४ । ५ ॥
- ” वाग्नि प्रजापतिः । श० १ । ६ । ३ । २७ ॥
- ” वाग्वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । ६ ॥ १३ । ४ । १ । १५ ॥
- ” प्रजापतिर्वै वाक्पतिः । (वाचस्पतिशब्दमपि पश्यत्) । श०
३ । १ । ३ । २२ ॥
- ” तदेता वाऽ अस्य (प्रजापतेः) ताः पञ्च मर्त्यास्तन्व आसं
लोम त्वङ् मांसमस्थि मज्जाथैता अमृता मनो वाक् प्राणश्चक्षुः
श्रोत्रम् । श० १० । १ । ३ । ४ ॥
- ” (यजु० ३० । १) वाग्वाऽ इदं कर्म प्राणो वाचस्पतिः । श० ६ ।
३ । १ । १९ ॥
- ” नमो वाचे प्राणपत्न्यै स्वाहा । ष० २ । ९ ॥
- ” वाक् च वै प्राणश्च मिथुनम् । श० १ । ४ । १ । २ ॥
- ” सा ह वागुवाच । (हे प्राण !) यद्वाऽ अहं वसिष्ठास्मि त्वं
तद्वसिष्ठो ऽसीति । श० १४ । ६ । २ । १४ ॥
- ” वाग्वातस्य पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥
- ” वाग्वै वायुः । तै० १ । ८ । ८ । १ ॥ तां० १८ । ८ । ७ ॥
- ” तस्मात्सर्वे प्राणा वाचि प्रतिष्ठिताः । श० १२ । ८ । २ । २५ ॥
- ” तस्याः (वाचः) उ प्राण एव रसः । जै० उ० १ । १ । ७ ॥
- ” यावद्वै प्राणेष्वापो भवन्ति तावद्वाचा वदति । श० ५ । ३ ।
५ । १६ ॥
- ” वाक् च वै मनश्च देवानां मिथुनम् । ऐ० ५ । २३ ॥
- ” तस्य (मनसः) एषा कुल्या यद्वाक् । जै० उ० १ । ५८ । ३ ॥
- ” वाग्देवत्यं साम वाचो मनो देवता । जै० उ० १ । ५६ । १४ ॥

- वाक् वाग्वै मनसो हसीयसी । श० १ । ४ । ४ । ७ ॥
- „ अपरिमिततरमिच हि मनः परिमिततरेव हि वाक् । श० १ । ४ । ४ । ७ ॥
- „ मनो ह पूर्वं वाचो यद्धि मनसाभिगच्छति तद्वाचा वदति ।
तां० १ । १ । १ । ३ ॥
- „ अलग्ल(श्र)मिव ह वै वाग्वदेद्यन्मनो न स्यात्तस्मादाह धृता
मनसेति । श० ३ । २ । ४ । ११ ॥
- „ वागिति मनः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
- „ वाक् च वै मनश्च हविर्धाने । कौ० ९ । ३ ॥
- „ युनजिम वाचधं सह सूर्येण । तां० १ । २ । १ ॥
- „ सा या सा वागसौ स आदित्यः । श० १० । ५ । १ । ४ ॥
- „ वागिति चन्द्रमाः । जै० उ० ३ । १३ । १२ ॥
- „ वाग्घ चन्द्रमा भूत्वोपरिष्ठात्तस्थौ । श० ८ । १ । २ । ७ ॥
- „ वाग्वै देवानां मनोता । ऐ० २ । १० ॥ कौ० १० । ६ ॥
- „ वाग्यज्ञस्य (रूपम्) । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥
- „ वाग्घ यज्ञः । श० १ । ५ । २ । ७ ॥ ३ । १ । ४ । २ ॥
- „ वाग्वै यज्ञः । ऐ० ५ । २४ ॥ श० १ । १ । २ । २ ॥ ३ । १ । ३ ।
२७ ॥ ३ । २ । २ । ३ ॥
- „ वागु वै यज्ञः । श० १ । १ । ४ । ११ ॥
- „ वाचो रसो यज्ञायज्ञीयम् (साम) । तां० १८ । ५ । २१ ॥ १८ ।
११ । ३ ॥
- „ वाग्यज्ञायज्ञीयम् (साम) । तां० ५ । ३ । ७ ॥ ११ । ५ । २८ ॥
- „ वाग्वैरूपम् (साम) । तां० १६ । ५ । १६ ॥
- „ वाग्यज्ञस्य होता । ऐ० २ । ५, २८ ॥
- „ वाग्वै यज्ञस्य होता । श० १२ । ८ । २ । २३ ॥ १४ । ६ । १ । ५ ॥
- „ वाग्घोता । श० १ । ५ । १ । २१ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥
- „ वागेव होता । गो० पू० २ । १० ॥ गो० उ० ३ । ८ ॥
- „ वाग्वै होता (यजु० १३ । ७) । कौ० १३ । ९ ॥ १७ । ७ ॥
- „ वाग्घोता षड्ढोतृणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । २ ॥
- „ अग्निवै होताधिदेवतं वाग्घ्यात्मम् । श० १२ । १ । १ । ४ ॥ गो०
पू० ४ । ४ ॥
- „ वाग्वै हविष्कृत् । श० १ । १ । ४ । ११ ॥

- वाक् उद्गातारो वै वाचे भागधेयं कुर्वन्ति । तां० ६ । ७ । ५ ॥
- ॥ वाक् सर्व ऋत्विजः । गो० उ० ३ । ८ ॥
- ॥ वाचा पशुन्दाधार तस्माद्वाचा सिद्धा वाचाहृता आयन्ति
तस्माद्गु नाम जानते । तां० १० । ३ । १३ ॥
- ॥ ज्यावृद्धै वाक् । तां० १० । ४ । ६ । ९ ॥
- ॥ त्रेधा विहिता हि वाग्—ऋचो यजूंषि सामानि । श० ६ ।
५ । ३ । ४ ॥
- ॥ सा वाऽ एषा वाक् त्रेधा विहिता । ऋचो यजूंषि सामानि ।
श० १० । ४ । ५ । २ ॥
- ॥ वागिति सर्वे देवाः । जै० उ० १ । ९ । २ ॥
- ॥ वागेव देवाः । श० १४ । ४ । ३ । १३ ॥
- ॥ वाग्देवः । गो० पू० २ । १० ॥
- ॥ वज्र एव वाक् । ऐ० २ । २१ ॥
- ॥ वाग्घि वज्रः । ऐ० ४ । १ ॥
- ॥ वज्रस्तेन यद्वाक् । ऐ० २ । १६ ॥
- ॥ वाक् च ह वै प्राणापानौ च वषट्कारः । गो० उ० ३ । ६ ॥
- ॥ वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारः । ऐ० ३ । ८ ॥
- ॥ वाग्वै वषट्कारो वाग्नेतः । श० १ । ७ । २ । २१ ॥
- ॥ वागु हि रेतः । श० १ । ५ । २ । ७ ॥
- ॥ शीर्ष्णो हीयमधिवाग्वदति । श० १ । ४ । ४ । ११ ॥
- ॥ वाग्घृदये (श्रिता) । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥
- ॥ तदेतत्तुरीयं वाचो निरुक्तं यन्मनुष्या वदन्त्यथैतत्तुरीयं वाचो
ऽनिरुक्तं यत्पशवो वदन्त्यथैतत्तुरीयं वाचो ऽनिरुक्तं यद्वयांषि
वदन्त्यथैतत्तुरीयं वाचो ऽनिरुक्तं यदिदं क्षुद्रं सरीसृपं
वदति । श० ४ । १ । ३ । १६ ॥
- ॥ वाग्वै देवानां पुरान्नमास । तै० १ । ३ । ५ । १ ॥
- ॥ वाग्वै वाजस्य प्रसवः । तै० १ । ३ । २ । ५ ॥
- ॥ वाग्योनिः । ऐ० २ । ३८ ॥
- ॥ उदीचीमेव दिशम् । पथ्यया स्वस्त्या प्राजानंस्तस्माद्ब्रोत्तराहि
वाग्वदति कुरुपञ्चालत्रा । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥

वाक् तस्मादुदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागुयत उदञ्च उ एव यन्ति
वाचं शिक्षितुं यो वा तत आगच्छति तस्य वा शुश्रूषन्त इति ।
कौ० ७ । ६ ॥

„ अयातयाम्नी वाऽ इयं वाक् । श० ४ । ५ । ८ । ३ ॥

„ वागु सर्वं भेषजम् । श० ७ । २ । ४ । २८ ॥

„ प्रादेशमात्रं हीदमभि वाग्वदति । श० ६ । ३ । १ । ३३ ॥

„ सेयं वागृतुषु प्रतिष्ठिता वदति । श० ७ । ४ । २ । ३७ ॥

„ तस्मात्संवत्सरवेलायां प्रजाः (=शिशवः) वाचं प्रवदन्ति ।
श० ७ । ४ । २ । ३८ ॥

„ स (प्रजापतिः) वाचमयच्छत्स संवत्सरस्य परस्ताद्ब्रह्माहरद्
द्वादशकृत्वः । ऐ० २ । ३३ ॥

„ वाक् संवत्सरः । तां० १० । ११ । ७ ॥

„ सर्वा वाचं पुरुषो वदति । तां० १३ । १२ । ३ ॥

„ तां वनस्पतयश्चतुर्द्धा वाचं विन्यदधुर्दुन्दुभौ वीणयामश्रे तूणवे
तस्मादेशा वदिष्टैषा वल्गुतमा वाग्या वनस्पतीनां देवानां
श्लेषा वागासीत् । तां० ६ । ५ । १३ ॥

„ परमा वा एषा वाग्या दुन्दुभौ । तै० १ । ३ । ६ । २—३ ॥

„ एषा वै परमा वाग्या सप्तदशानां दुन्दुभीनाम् । श० ५ । १५ । ६ ॥

„ एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतम् । तां० ८ । ६ । १३ ॥

„ वाचो वा एतौ स्तनौ (यदधिके द्वे अक्षरे) । सत्यानृते वाव ते ।
गो० ३० । ४ । १९ ॥

„ वाचो वाव तौ स्तनौ सत्यानृते वाव ते । ऐ० ४ । १ ॥

„ एतद्वै वाचो जितं यद्दामीत्याह । ऐ० ८ । ६ ॥

„ एकाक्षरा वै वाक् । तां० ४ । ३ । ३ ॥

„ योषा हि वाक् । श० १ । ४ । ४ । ४ ॥

„ योषा वाऽ इयं वाग्यदेनं न युविता । श० ३ । २ । १ । २२ ॥

„ वागिति स्त्री । जै० ३० । ४ । २२ । ११ ॥

वाकोवाक्यम् यद्वा वाऽ अयं वाकोवाक्यमधीते क्षीरैर्दानमाश्लौदनौ
हैव तौ । श० ११ । ५ । ७ । ५ ॥

वाक्पतिः (षजु० ४ । ४) प्रजापतिर्वै वाक्पतिः । श० ३ । १ । ३ । २२ ॥

वाचः साम निष्करीयाः सत्रमासत ते तृतीयमहर्न प्राजानंस्ताने-
तत्साम गायमाना वागुपाप्लवत् तेन तृतीयमहः प्राजानं-
स्ते ऽब्रुवन्नियं वाच नस्तृतीयमहरदीदृशदिति तृतीयस्यै-
वैषाहो दृष्टिः । तां० १२ । ५ । १४ ॥

वाचस्पतिः (यजु० ११ । ७) प्राणो वाचस्पतिः । श० ६ । ३ । १ । १९ ॥

„ प्राणो वै वाचस्पतिः । श० ४ । १ । १ । ६ ॥

„ प्रजापतिर्वै वाचस्पतिः (वाक्पतिशब्दमपि पश्यत) । श०
५ । १ । १ । १६ ॥

„ वाचस्पतिर्होता दशहोतृणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥

वाचो ऽग्रम् श्रौर्वै वाचो ऽग्रम् । तां० ६ । ६ । १२ ॥

„ मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यद्वाचोग्रम् । तां० ४ । २ । १७ ॥

वाजः अन्नं वै वाजः । तै० १ । ३ । ६ । २, ६ ॥ १ । ३ । ५ । ५ ॥ श०
५ । १ । ४ । ३ ॥ ६ । ३ । २ । ४ ॥ तां० १३ । ६ । १३, २२ ॥
१५ । ११ । १२ ॥ १८ । ६ । ८ ॥

„ अन्नं वाजः । श० ५ । १ । १ । १६ ॥ ५ । १ । १ । ६ ॥

„ (ऋ० ३ । २७ । १) अन्नं वै वाजाः । श० १ । ४ । १ । ९ ॥

„ वीर्यं वै वाजाः । श० ३ । ३ । ४ । ७ ॥

„ ओषधयः खलु वै वाजः । तै० १ । ३ । ७ । १ ॥

„ वाजो वै पशवः । ऐ० ५ । ५ ॥

„ वाजो वै स्वर्गो लोकः । तां० १३ । ७ । १२ ॥ गो० ७ । ५ । ५ ॥

„ वाग्वै वाजस्य प्रसवः । तै० १ । ३ । २ । ५ ॥

वाजजित् (साम) वाजजिद्भवति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै । तां०
१३ । ९ । २० ॥ तां० १५ । ११ । १२ ॥

वाजदावर्यः (बहुवचने; सामविशेषः) अत्सो वाजदावर्यः । तां० १३ । ९ । १७ ॥

वाजपतिः एष (अग्निः) हि वाजानां पतिः । ऐ० २ । ५ ॥

वाजपेयम् (यज्ञविशेषः) अन्नं वाऽ एष उज्जयति यो वाजपेयेन यजते
ऽन्नपेयं ह वै नामैतद्यद्वाजपेयम् । श० ५ । १ । ३ । ३ ॥

„ प्रजापतिरकामयत वाजमाप्नुयात् स्वर्गं लोकमिति स
एतं वाजपेयमपश्यद्वाजपेयो वा एष वाजमेवैतेन स्वर्गं ष
(? स) लोकमाप्नोति । तां० १५ । ७ । १ ॥

„ वाज्येवैनं (सोमं) पीत्वा भवति । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥

- वाजपेयम् वाज^{२३} ह्येतेन (वाजपेयेन) देवा ऐप्सन् । तै० १ । ३ । २।३॥
 ,, बार्हस्पत्यो वा एष देवतया यो वाजपेयेन यजते । तै०
 १ । ३ । ६ । ८-९ ॥
 ,, वाजपेययाजी वाव प्रजापतिमाप्नोति । तां० १८ । ६ । ४ ॥
 ,, यो वै वाजपेयः । स सम्राट्सवः । तै० २ । ७ । ६ । १ ॥
 ,, सम्राड्वाजपेयेन (इष्ट्वा भवति) । श० ५ । १ । १ । १३ ॥ ९ ।
 ३ । ४ । ८ ॥
 ,, स वाजपेयेनेष्ट्वा सम्राडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥
 ,, स वा एष ब्राह्मणस्य चैव राजन्यस्य च यज्ञः । तं वा एतं
 वाजपेय इत्याहुः । तै० १ । ३ । २ । ३ ॥
 ,, सोमो वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ३ ॥
 ,, अन्नं वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥
 ,, ब्रह्म वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥
 ,, वाजपेयो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । गो० उ० १ । ८ ॥
 वाजिनम् (ऋ० १० । ७२ । १०) इन्द्रियं वै वीर्यं वाजिनम् । ऐ० १ । २३ ॥
 ,, योषा पयस्या रेतो वाजिनम् । श० २ । ४ । ४ । २१ ॥ २ ।
 ५ । १ । १६ ॥
 ,, रेतो वाजिनम् । तै० १ । ६ । ३ । १० ॥
 ,, पशवो वै वाजिनम् । तै० १ । ६ । ३ । १० ॥
 वाजी यत्सद्यो वाजान्तसमजयत् । तस्माद्वाजी नाम । तै० ३ । ९ ।
 २१ । २ ॥
 ,, (हे ऽश्व त्वं) वाज्यसि । तां० १ । ७ । १ ॥
 ,, वाजिनो ह्यश्वाः । श० ५ । १ । ४ । १५ ॥
 ,, (अश्वो) वाजी (भूत्वा) गन्धर्वान् (अवहत्) । श० १०।६।४।१॥
 ,, देवाश्वा वै वाजिनः । कौ० ५ । २ ॥
 ,, देवाश्वा वै वाजिनो ऽत्र देवाः साश्वा अभीष्टाः प्रीता भवन्ति ।
 गो० उ० १ । २० ॥
 ,, अग्निर्वायुः सूर्यः । ते वै वाजिनः । तै० १ । ६ । ३ । ९ ॥
 ,, आदित्यो वाजी । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥
 ,, इन्द्रो वै वाजी । ऐ० ३ । १८ ॥

- वाजी पशवो वै वाजिनः । गो० उ० १ । २० ॥
- „ ऋतवो वै वाजिनः । कौ० ५ । २ ॥ श० २ । ४ । ४ । २२ ॥
गो० उ० १ । २० ॥
- „ छन्दाश्चिसि वै वाजिनः । गो० उ० १ । २० ॥ तै० १ । ६ । ३ । १९ ॥
- „ उक्थ्या वाजिनः । गो० उ० १ । २२ ॥
- वाजी देवजूतः (ऋ० १० । १७८ । १) एष (तार्क्ष्यः=वायुः) वै वाजी
देवजूतः । ऐ० ४ । २० ॥
- वाणः (=महावीणा) (वाणः) शततन्त्रीको भवति । तां० ५ । ६ । १३ ॥
- „ अन्तो वै वाणः (वाद्यानाम्) । तां० ५ । ६ । १२ ॥ १४ । ७ । ८ ॥
- वातः (यजु० १५ । ६२) वातो हि वायुः । श० ५ । ७ । ३ । १२ ॥
- „ यो वै प्राणः स वातः । श० ५ । २ । ४ । ९ ॥
- „ प्राणो वै वातः । श० १ । १ । २ । १४ ॥
- „ (=विश्वव्यचाः-यजु० १८ । ४१) एष (वातः) हीदुं सर्वं
व्यचः करोति । श० ९ । ४ । १ । १० ॥
- „ न वै वातात् किञ्चनाशीयो ऽस्ति न मनसः किञ्चनाशीयो
ऽस्ति तस्मादाह वातो वा मनो वेति । श० ५ । १ । ४ । ८ ॥
- „ वातो वै यज्ञः । श० ३ । १ । ३ । २६ ॥
- „ युक्तो वातोन्तरिक्षेण ते सह । तां० १ । २ । १ ॥
- „ वाग्वातस्य पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥
- „ तस्मादेषो ऽर्वाचीनमेव वातः पवते । श० ५ । ७ । ३ । ९ ॥
- वातहोमाः वायुर्वातहोमाः । श० ९ । ४ । ३ । १ ॥
- „ प्राणा वै वातहोमाः । श० ९ । ४ । २ । १० ॥
- वातापिः इन्द्र उ वै वातापिः स हि वातमाप्त्वा शरीराण्यर्हन्प्रतिप्रैति ।
कौ० २७ । ४ ॥
- वात्सप्रम् (साम) वत्सप्रमीर्भालन्दनः श्रद्धाम्नाविन्दत स तपो ऽतप्यत
स एतद्वात्सप्रमपश्यत्स श्रद्धामविन्दत श्रद्धां विन्दामहा
इति वै सत्रमासते विन्दते श्रद्धाम् । तां० १२ । ११ । २५ ॥
- „ यद्वेव वत्सं स्पृशति तस्माद्वात्सप्रम् सूक्तम् । कौ० २ । ४ ॥
- „ रात्रिर्वात्सप्रम् । श० ६ । ७ । ४ । १२ ॥
- „ अहोरात्रे वात्सप्रम् । श० ६ । ७ । ४ । १० ॥

वात्सप्रम् स ह्येष दाक्षायणहस्तः । यद्वात्सप्रं तस्माद्यं जातं कामयेत
सर्वमायुरियादिति वात्सप्रणैनमभिमृशेत्तदस्मै जाताया-
युष्यं करोति । श० ६ । ७ । ४ । २ ॥

” प्रतितिष्ठति वात्सप्रेण तुष्टुवानः । तां० १२ । ११ । २४ ॥

” प्रतिष्ठा वै वात्सप्रम् । श० ६ । ७ । ४ । १५ ॥

” दैवमवसानं यद्वात्सप्रम् । श० ६ । ८ । १ । ३ ॥

वात्सम् (साम) वात्सेन (साम्ना) वत्सो (अग्निं) व्यैत् (=“प्राविशत्”
इति सायणः) मैधातिथेन मेधातिथिस्तस्य (वत्सस्य) न
लोम च नौषत्तद्वाव स तर्ह्यकामयत, कामसनि साम वात्सं,
काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १४ । ६ । ६ ॥

वामः यं वै गां यमश्वं यं पुरुषं प्रशंसन्ति वाम हाते तं प्रशंस-
सन्ति । तां० १३ । ३ । १६ ॥

वामदेव्यम् (कया नश्चित्र आ भुवत्-ऋ० ४ । ३१ । १-३ ॥) तौ (मित्रा-
वरुणौ) अब्रूतां वामं मर्या इदं देवेष्व्राजनीति तस्माद्द्वाम-
देव्यम् (साम) । तां० ७ । ८ । १ ॥

” पिता वै वामदेव्यं पुत्राः पृष्ठानि । तां० ७ । ९ । १ ॥

” वामदेव्यं वै साम्नां सत् । तां० ४ । ८ । १० ॥

” सत् (=उत्कृष्टमिति सायणः) वै वामदेव्यं साम्नाम् ।
तां० १५ । १२ । २ ॥

” वामदेव्यमात्मा (महाव्रतस्य) । तां० १६ । ११ । ११ ॥

” शान्तिर्वै वामदेव्यम् । तां० १ । १ । ८ । २ ॥

” शान्तिर्वै भेषजं वामदेव्यम् । कौ० २७ । २ ॥ २९ । ३,४ ॥

” सर्वदेवत्यं वै वामदेव्यम् । तां० ७ । ८ । २ ॥

” प्राजापत्यं वै वामदेव्यम् । तां० ४ । ८ । १५ ॥ ११ । ४ । ८ ॥

” प्रजापतिर्वै वामदेव्यम् । श० १३ । ३ । ३ । ४ ॥

” प्रजननं वै वामदेव्यम् । श० ५ । १ । ३ । १२ ॥

” वामदेव्यं मैत्रावरुणसाम भवति । श० १३ । ३ । ३ । ४ ॥

” प्राणो वै वामदेव्यम् । श० ९ । १ । २ । ३८ ॥

” पशवो वै वामदेव्यम् । तां० ४ । ८ । १५ ॥ ७ । ९ । ९ ॥

११ । ४ । ८ ॥ १४ । ९ । २४ ॥

वामदेव्यम् इदं वा वामदेव्यं यजमानलोको ऽमृतलोकः स्वर्गो लोकः ।

ऐ० ३ । ४६ ॥

„ उपहृतं वामदेव्यं सहान्तरिक्षेण । श० १ । ८ । १ । १६ ॥

„ अन्तरिक्षं वै वामदेव्यम् । तै० १ । १ । ८ । २ ॥ २ । १ ।

५ । ७ ॥ तां० १५ । १२ । ५ ॥

वामनः वामनो ह विष्णुरास । श० १ । २ । ५ । ५ ॥

„ स हि वैष्णवो यद्वामनः (गौः) । श० ५ । २ । ५ । ४ ॥

„ वैष्णवो वामनः (पशुः) । श० १३ । २ । २ । ६ ॥

„ वैष्णवं वामनं (पशुम्) आलभन्ते । तै० १ । २ । ५ । १ ॥

वामभृत् इयं (पृथिवी) वामभृत् । श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥

„ वाग्वामभृत् । श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥

वामम् प्राणा वै वामम् । श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥

„ वामं हि पशवः । ऐ० ५ । ६ ॥

वाम्नम् (साम) (वाम्नं) सामार्षेयेण प्रशस्तं यं वै गमं यमइवं यं

पुरुषं प्रशंसन्ति वाम इति तं प्रशंसन्ति । तां० १३ ।

३ । १९ ॥

वायुः अयं वै वायुर्यो ऽयं पवते । श० २ । ६ । ३ । ७ ॥

„ अयं वै वायुर्यो ऽयं पवतऽ एष वा इदं सर्वं विविनक्ति

यदिदं किञ्च विविच्यते । श० १ । १ । ४ । २२ ॥

„ वातो (यजु० १५ । ६२) हि वायुः । श० ८ । ७ । ३ । १२ ॥

„ वायुर्वातहोमाः । श० ९ । ४ । २ । १ ॥

„ वायुर्वा उशनः । तां० ७ । ५ । १९ ॥

„ वायुरनुवत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥ तै० १ । ४ । १० । १ ॥

„ वायुर्वै निकाथइच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

„ अयं वाऽ अवस्युरशिमिदो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १४ ।

२ । २ । ५ ॥

„ वायुर्वै देवः । जै० उ० ३ । ४ । ८ ॥

„ अयं वै ब्रह्म यो ऽयं (वायुः) पवते । ऐ० ८ । २८ ॥

„ अयं वै बृहस्पतिः (यजु० ३८ । ८) यो ऽयं (वायुः) पवते ।

श० १४ । २ । २ । १० ॥

[वायुः

(४९६)

- वायुः अयं वै पवित्रं (यजु० १।१२) यो ऽयं (वायुः) पवते ।
श० १।१।३।२ ॥ १।७।१।१२ ॥
- „ पवित्रं वै वायुः । तै० ३।२।५।११ ॥
- „ अयं वायुः पवमानः । श० २।५।१।५ ॥
- „ (वायुः) यत्पश्चाद्वाति । पवमान एव भूत्वा पश्चाद्वाति ।
तै० २।३।९।६ ॥
- „ वायुर्होव प्रजापतिस्तदुक्तमृषिणा पवमानः प्रजापतिरिति ।
ऐ० ४।२६ ॥
- „ स यो ऽयं (वायुः) पवते स एष एव प्रजापतिः । जै० उ० १।
३४।३ ॥
- „ स एष वायुः प्रजापतिरस्मिन्स्त्रैष्टुभे ऽन्तरिक्षे समन्तं पर्यक्तः ।
श० ८।३।४।१५ ॥
- „ एतद्वै प्रजापतेः प्रत्यक्षं रूपं यद्वायुः । कौ० १९।२ ॥
- „ अर्धं ह प्रजापतेर्वायुरर्धं प्रजापतिः । श० ६।२।२।११ ॥
- „ यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः । श० ४।१।३।१९ ॥
- „ अयं वै वायुर्मित्रो (यजु० ११।६४) यो ऽयं पवते । श० ६।
५।४।१४ ॥
- „ अयं वै यमो (यजु० ३८।६) यो ऽयं (वायुः) पवते ।
श० १४।२।२।११ ॥
- „ वायुर्वै यंता (ऋ० ३।१३।३) वायुना हीदं यतमन्तरिक्षं
न समृच्छति । ऐ० २।४१ ॥
- „ अयं वै वायुर्मातरिश्वा यो ऽयं पवते । श० ६।४।३।४ ॥
- „ (वायुः) यदक्षिणतो वाति । मातरिश्वैव भूत्वा दक्षिणतो
वाति । तै० २।३।९।५ ॥
- „ वायुर्वै जातवेदा वायुर्हीदं सर्वं करोति यदिदं किंच । ऐ० २।३४ ॥
- „ वायुर्वा अग्नेः स्वो महिमा । कौ० ३।३ ॥
- „ तेजो वै वायुः । तै० ३।२।९।१ ॥
- „ अयं वै पूषा (यजु० ३८।३, १५) यो ऽयं (वायुः) पवतऽ एष
हीदं सर्वं पुष्यति । श० १४।२।१।९ ॥ १४।२।२।३२ ॥
- „ यो वाऽ अयं पवतऽ एष द्युतानो मारुतः । श० ३।६।१।१६ ॥

- वायुः यो वाऽ अयं (वायुः) पवतऽ एष तनूनपाच्छाकरः सो ऽयं प्रजानामुपद्रष्टा प्रविष्टस्ताविमौ प्राणोदानौ । श० ३।४।२।५ ॥
- ” यो वाऽ अयं (वायुः) पवतऽ एष तनूनता शाकरः । श० ३।४।२।११ ॥
- ” वायुर्वै ताक्ष्यः । कौ० ३०।५ ॥
- ” अयं वै ताक्ष्यो यो ऽयं (वायुः) पवते एष स्वर्गस्य लोकस्याभिवोढा । ऐ० ४।२० ॥
- ” एष (ताक्ष्यः=वायुः) वै सहावांस्तयता (ऋ० १०।१७८।१) एष हीमाल्लोकान्तघस्तरति । ऐ० ४।२० ॥
- ” वायुर्वाऽ आशुस्त्रिवृत्स एष त्रिषु लोकेषु वर्तते । श० ८।४।१९ ॥
- ” वायुर्वै देवानामाशुः सारसारितमः । तै० ३।८।७।१ ॥
- ” वायुर्वै देवानामाशिष्ठः । श० १३।१।२।७ ॥
- ” (वायो !) त्वं वै नः (देव नाम् । आशिष्ठो ऽसि । श० ४।१।३।३ ॥
- ” एष (वायुः) हि सर्वेषां भूतानामाशिष्ठः । श० ८।४।१।९ ॥
- ” वायुर्वै तूर्णिह्वयवाङ्गायुर्देवभ्यो ह्वयं वहति । ऐ० २।३५ ॥
- ” वायुर्वै तूर्णिर्वायुर्हीदं सर्वं सद्यस्तरति यादेदं किं व । ऐ० २।३५ ॥
- ” वायुः सतिः । तै० १।३।६।४ ॥
- ” वायुर्वै चरन् । तै० ३।९।४।१ ॥
- ” अयं वै सरिरः (यजु० ३८।७) यो ऽयं (वायुः) पवत एतस्माद्धै सरिरात् सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सहेरते । श० १४।२।२।३ ॥
- ” अयं वै समुद्रः (यजु० ३८।७) यो ऽयं (वायुः) पवतऽ एतस्माद्धै समुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि समुद्रवन्ति । श० १४।२।२।२ ॥
- ” य एवायं (वायुः) पवत एष एव स समुद्र एतं हि संद्रवन्तं सर्वाणि भूतान्यनुसंद्रवन्ति । जै० ३०।१।२५।४ ॥
- ” अयं वै साधुः (यजु० ३७।१०) यो ऽयं (वायुः) पवतऽ एष हीमाल्लोकान्तसद्भो ऽनुपवते । श० १४।१।२।२३ ॥
- ” वायुरेव सविता । गो० पू० १।३३ ॥ जै० ३०।४।२७।५ ॥
- ” अयं वै सविता (यजु० ३८।८) यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १४।२।२।९ ॥

वायुः (वायुः) यदुत्तरतो वाति । सवितैथ भूत्वोत्तरतो वाति ।
तै० २ । ३ । ९ । ७ ॥

॥ तस्मादुत्तरतः पञ्चादयं भूयिष्ठं पवमानः (=वायुः) पवते
सवितुप्रसूतो ह्येष पतत्पवते । ऐ० १ । ७ ॥

॥ वायुर्वै वसुरन्तरिक्षसत् (यजु० १२ । १४) । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

॥ अयमेव वत्सो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १२ । ४ । १ । ११ ॥

॥ यो ऽयं वायुः पवतऽ एष सोमः । श० ७ । ३ । १ । १ ॥

॥ एष (वायुः) वै सोमस्योद्गीथो यत्पवते । तां० ६ । ६ । १८ ॥

॥ अयं वै वायुर्विश्वकर्मा (यजु० १३ । ५५ ॥ १५ । १६) यो ऽयं
पवतऽ एष हीदं सर्वं करोति । श० ८ । १ । १ । ७ ॥ ८ । ६ । १ । १७ ॥

॥ एष वै पृथगवर्त्मा वैश्वानरः (यद्वायुः) । श० १० । ६ । १ । ७ ॥

॥ प्राणस्त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यद्वायुः) । श० १० । ६ । १ । ७ ॥

॥ वायुर्वै मध्यमा विश्वज्योतिः (इष्टका) । श० ८ । ३ । २ । १ ॥

॥ वायुर्वै विकर्णी (इष्टका) । श० ८ । ७ । ३ । ९ ॥

॥ तस्माद्वायुरेव साम । जै० उ० ३ । १ । १२ ॥

॥ अयमेव स्रुवो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १ । ३ । २ । ५ ॥

॥ वायुर्वै स्तोता । तै० ३ । ९ । ४ । ४ ॥ श० १३ । २ । ६ । २ ॥

॥ वायुरेव हिङ्गारः । जै० उ० १ । ३६ । ९ ॥ १ । ५८ । ९ ॥

॥ वायुरेकपात्तस्याकाशं पादः । गो० पू० २ । ८ ॥

॥ वायुर्धाव्या । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

॥ वायुरापञ्चन्द्रमा इत्येते ऋगवः । गो० पू० २ । ८ (९) ॥

॥ यस्स प्राणो वायुस्सः । जै० उ० १ । २९ । १ ॥

॥ प्राणा उ वा वायुः । श० ८ । ४ । १ । ८ ॥

॥ वायुर्वै प्राणः । कौ० ८ । ४ ॥ जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

॥ वायुर्हि प्राणः । ऐ० २ । २६ ॥ ३ । २ ॥

॥ प्राणो हि वायुः । तां० ४ । ६ । ८ ॥

॥ प्राणो वै वायुः । कौ० ५ । ८ ॥ १३ । ५ ॥ ३० । ५ ॥ श० ४ ।

४ । १ । १५ ॥ ६ । २ । २ । ६ ॥ गो० उ० १ । २६ ॥

॥ यः स प्राणो ऽयमेव स वायुर्यो ऽयं पवते । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥

॥ प्राणो वै वायव्या (ऋक्) । कौ० १६ । ३ । ४ ॥

- वायुः वायुर्मे प्राणे श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥
- ॥ प्राणापानौ मे श्रुतम्मे । तन्मे त्वयि (वायौ) । जै० उ० ३ । २१ । १० ॥
- ॥ स (वायुः) यत्पुरस्ताद्वाति । प्राण एव भूत्वा पुरस्ताद्वाति । तस्मात्पुरस्ताद्वातं सर्वाः प्रजाः प्रतिनन्दन्ति । तै० २ । ३ । ९ । ४—५ ॥
- ॥ वायुर्वै प्रणोर्यज्ञानां यद्वा हि प्राणित्यथ यज्ञो ऽथाग्निहोत्रम् । ऐ० २ । ३४ ॥
- ॥ वायुप्रणेत्रा वै पशवः । श० ५ । ४ । १ । १५ ॥
- ॥ यत्पशुपतिर्घायुस्तेन । को० ६ । ४ ॥
- ॥ ते (पशवः) अब्रुवन्वायुर्वा अस्मःकमीशे । जै० उ० १ । ५२ । ४ ॥
- ॥ एताभिः (एकोनविंशतिभि रात्रिभिः) वायुरारण्यानां पशूनामाधिपत्यमाश्रुत । तां० २३ । १३ । २ ॥
- ॥ वायुर्वाऽ उग्रः । श० ६ । १ । ३ । १३ ॥
- ॥ वायुर्वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥
- ॥ वायुर्वा उपश्रोता । गो० उ० २ । १९ ॥ ४ । ९ ॥ तै० ३ । ७ । ५ । ४ ॥
- ॥ वायुरेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- ॥ वायुर्महः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥
- ॥ मनो ह वायुभूर्त्वा दक्षिणतस्तस्थौ । श० ८ । १ । १ । ७ ॥
- ॥ इमे वै (त्रयो) लोका पूरयमेव पुरुषो यो ऽयं (वायुः) पवते सो ऽस्यां पुरि शेते तस्मात्पुरुषः । श० १३ । ६ । २ । १ ॥
- ॥ अयं वै यज्ञो यो ऽयं (वायुः) पवते । ऐ० ५ । ३३ ॥ श० १ । ९ । २ । २८ ॥ २ । १ । ४ । ११ ॥ ४ । ४ । ४ । १३ ॥ ११ । १ । २ । ३ ॥
- ॥ अयं वाव यज्ञो यो ऽयं (वायुः) पवते । जै० उ० ३ । १६ । १ ॥
- ॥ अयमु वै यः (वायुः) पवते स यज्ञः । गो० पू० ३ । २ ॥ ४ । १ ॥
- ॥ वाग्वै वायुः । तै० १ । ८ । ८ । १ ॥ तां० १८ । ८ । ७ ॥
- ॥ वायुर्वै रेतसां विकर्ता । श० १३ । ३ । ८ । १ ॥
- ॥ वायुर्वै पयसः प्रदापयिता । तै० ३ । ७ । १ । ५ ॥
- ॥ वायुर्वै सर्वेषां देवानामात्मा । श० १४ । ३ । २ । ७ ॥
- ॥ सर्वेषामु ह्येष देवानामात्मा यद्वायुः । श० ९ । १ । २ । ३८ ॥

- वायुः एकाह वाव कृत्स्ना देवता ऽर्धदेवता एवा ऽन्याः । अयमेव
 (वायुः) यो ऽयम्पवते । जै० उ० ३ । १ । १ ॥
- „ द्यौरसिवायौ श्रिता । तै० ३ । ११ । १ । १० ॥
- „ वायुरस्यन्तरिक्षे श्रितः । दिवः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ९ ॥
- „ वायुर्वै नभसस्पतिः । गो० उ० ४ । ९ ॥
- „ वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः । तै० ३ । २ । १ । ३ ॥
- „ (प्रजापतिः) भुव इत्येव यजुर्वेदस्य रसमादत्त । तदिदमन्त-
 रिक्षमभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स वायुरभवद्द्रसस्य
 रसः । जै० उ० १ । १ । ४ ॥
- „ वायुर्दिशां यथा गर्भः । श० १४ । ९ । ४ । २१ ॥
- „ वायुरेव यजुः । श० १० । ३ । ५ । २ ॥
- „ वायोर्यजुर्वेदः (अजायत) । श० ११ । ५ । ८ । ३ ॥
- „ यजुषां वायुर्देवतं तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दो ऽन्तरिक्षं स्थानम् ।
 गो० पू० १ । २९ ॥
- „ त्रैष्टुभो हि वायुः । श० ८ । ७ । ३ । १२ ॥
- „ वायुरध्वर्युः । गो० पू० १ । १३ ॥
- „ वायुर्वा अध्वर्युः । गो० पू० २ । २४ ॥
- „ वायुर्वा एतं (आदित्यं) देवतानामानशे । तां० ४ । ६ । ७ ॥
- „ तदसावादित्य इमांल्लोकान्त्सूत्रे समावयते तद्यत्तत्सूत्रं वायुः
 सः । श० ८ । ७ । ३ । १० ॥
- „ एष वाऽअपां रसो यो ऽयं पवते स एष (वायुः) सूर्ये
 समाहितः सूर्यात्पवते । श० ५ । १ । २ । ७ ॥
- „ अयं वै वायुर्यो ऽयं पवतऽ एष वाऽ इदं सर्वं प्रप्याययति
 यदिदं किञ्च वर्षत्येषे वाऽ एतासां (गवां) प्रप्याययिता ।
 श० १ । ७ । १ । ३ ॥
- „ अयं वै वर्षस्येष्टे यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १ । ८ । ३ । १२ ॥
- „ तस्माद्यां दिशं वायुरेति तां दिशं वृष्टिरन्वेति । श० ८ । २ ।
 ३ । ५ ॥
- „ यस्माद्वायत्रमध्ये द्वितीयः (त्रिरात्रः) तस्मात्तिर्यङ्क् वायुः
 पवते । तां० १० । ५ । २ ॥

- वायुः तस्मादेष (वायुः) दक्षिणैव भूयिष्ठं वाति । श० ८ । १ । १ । ७ ॥
 ८ । ६ । १ । १७ ॥
- ” शुक्लो हि वायुः । श० ६ । २ । २ । ७ ॥
- ” तथेति वायुः पवते । जै० उ० ३ । ६ । २ ॥
- ” अनिरुक्तो हि वायुः । श० ८ । ७ । ३ । १२ ॥
- ” शान्तिर्हि वायुः । तां० ४ । ६ । ९ ॥
- ” वायोर्निष्ठया (=“स्वातिः” इति सायणः) । तै० १ । ५ । २ । ३ ॥
 ३ । १ । १ । १० ॥
- ” (वायोः) मेनका च सहजन्या (यजु० १५ । १६) चाप्सरसाविति
 दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिरिमे तु ते द्यावा-
 पृथिवी । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥
- ” तस्य (वायोः) रथस्वनश्च रथेच्चित्रश्च (यजु० १५ । १५)
 सेनानीग्रामण्याविति त्रैष्मौ तावृत् । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥
- ” तम् (वायुं) एताः पञ्च देवताः परिस्त्रियन्ते विद्युद्ब्रष्टिश्चन्द्रमा
 आदित्यो ऽग्निः । ऐ० ८ । २८ ॥
- ” सो ऽयं (वायुः) पुरुषे ऽन्तः प्रविष्टस्त्रेधा विहितः प्राण उदानो
 व्यान इति । श० ३ । १ । २ । २० ॥

- वारवन्तीयम् (साम) अग्निर्वा इदं वैश्वानरो दहन्नैतस्माद्देवा अग्निभ-
 युस्तं वरणशास्त्रया ऽवारयन्त यदवारयन्त तस्माद्धार-
 वन्तीयम् । तां० ५ । ३ । ९ ॥
- ” सो (अग्निः) ऽश्वो वारो भूत्वा पराडैत् । तं वारवन्ती-
 येनावारयत । तद्धारवन्तीयस्य वारवन्तीयत्वम् । तै०
 १ । १ । ५ । ३ ॥
- ” यदवारयन् (=देवा आदित्यस्याधःपातं निवारितवन्तः)
 तद्धारवन्तीयस्य वारवन्तीयत्वम् । तै० १ । ५ । १२ । १ ॥
- ” (विष्णुः पशून्) वारवन्तीयेनावारयत । तै० २ । ७ । १४ । २ ॥
- ” पशवो वै वारवन्तीयम् । तां० ५ । ३ । १२ ॥
- ” वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम कार्य्यं यज्ञस्यैव छिद्रं वारयते !
 तां० ९ । ६ । ११ ॥

[बालखिल्याः

(५०२)

वारवन्तीयम् वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम कार्थमिन्द्रियस्य वीर्यस्य परि-
गृहीत्यै । तां० ९ । ५ । ९ ॥

” वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम भवतीन्द्रियस्य वीर्यस्य
परिगृहीत्यै । तां० १८ । ६ । १६ ॥

” केशिने वा एतद्वाल्भ्याय सामाविरभवत् । तां०
१३ । १० । ८ ॥

” रेवतीनां रसो यद्धारवन्तीयम् । तां० १३ । १० । ५ ॥
वार्ष्णे सामनी पेयाहा इति वा इन्द्रो वृत्रमहजैयादोहो वेति न्यगृह्णा-
द्धार्ष्णे सामनी वीर्यवती । ओज एवैताभ्यां वीर्यमव-
रुन्धे । तां० ११ । ११ । १२, १३ ॥

वार्ष्णम् (साम) वृशो वैजानस्त्रघरणस्य त्रैधात्वस्यैक्वाकस्य पुरोहित
आसीत्स ऐक्वाको ऽघावयत् ब्राह्मणकुमारं रथेन
व्यञ्छिनत्स पुरोहितमब्रवीत्तव मा पुरोघायामिदमी-
दगुपागादिति तमेतेन साम्ना समैरयत्तद्वाव स तर्ह्य-
कामयत्, कामसनि साम वार्ष्ण, काममेवैतेनावरुन्धे ।
तां० १३ । ३ । १२ ॥

बालखिल्याः (ऋचः) यद्वा उर्वरयोरसंभिन्नं भवति खिलमिति वै
तदाचक्षते बालमात्रा उ हेमे प्राणा असंभिन्नास्तघद-
संभिन्नास्तस्माद्बालखिल्याः । कौ० ३० । ८ ॥

” प्राणा वै बालखिल्याः प्राणानेवैतदुपदधाति ता यद्वा-
लखिल्या नाम यद्वाऽ उर्वरयोरसंभिन्नं भवति खिल
इति वै तदाचक्षते बालमात्रादु हेमे प्राणा असंभिन्ना-
स्ते यद्बालमात्रादसंभिन्नास्तस्माद्बालखिल्याः । शं०
८ । ३ । ४ । १ ॥

” प्राणा बालखिल्याः । ऐ० ६ । २६ ॥ कौ० ३० । ८ ॥

” प्राणा वै बालखिल्याः । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

” यदि बालखिल्याः प्राणानस्यांतरियात् । ऐ० ५ । १५ ॥

” पशवो बालखिल्याः । तां० २० । ६ । २ ॥

” प्रगाथा वै बालखिल्याः । ऐ० ६ । २८ ॥

” ऐन्द्रयो बालखिल्याः (ऋचः) । ऐ० ६ । २६ ॥

- वावाता (पत्नी) भुव इति वावाता । तै० ३ । ९ । ४ । ५ ॥
- वासः रूपं वाऽ एतत्पुरुषस्य यद्वासः । श० १३ । ४ । १ । १५ ॥
- „ तस्माद् सुवासा एव बुभूषेत् । श० ३ । १ । २ । १६ ॥
- „ ओषधयो वै वासः । श० १ । ३ । १ । १४ ॥
- „ सर्वदेवत्यं वै वासः । तै० १ । २ । ६ । ११ ॥ १ । ३ । ७ । ३ ॥
- „ सौम्यश्च हि देवतया वासः । तै० १ । ६ । १ । ११ ॥ ३ । २ । ५ । २ ॥
- „ तस्य वाऽ एतस्य वाससः । अग्नेः पर्यासो भवति वायोरनु-
छादो नीविः पितृणाञ्च सर्पाणां प्रघातो विश्वेषां देवानां
तन्तव आरोका नक्षत्राणामेव च हि वाऽ एतत्सर्वे देवा अन्वा-
यत्ताः । श० ३ । १ । २ । १८ ॥
- „ त्वग्निं वासः । श० ४ । ३ । ४ । २६ ॥
- „ तद्वै निष्पेष्ट्वै ब्रूयाद्यदेवास्य (वाससः) अत्रामेध्या (स्त्री)
कृणन्ति (=Spins) वा वयति वा तदस्य (वाससः) मेध्य-
मसदिति । श० ३ । १ । २ । १९ ॥
- वासिष्ठम् (साम) वासिष्ठो वा एतेन वैडवः स्तुत्वाञ्जसा स्वर्गं लोक-
मपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गांल्लोकान् च्यवते
तुष्टुवानः । तां ११ । ८ । १४ ॥
- वास्तव्यः (=रुद्रः) यज्ञेन वै देवाः । दिवमुपोदक्रामन्नथ यो ऽयं देवः
(रुद्रः) पशूनामीष्टे स इहाहीयत तस्माद्वास्तव्य इत्याहु-
र्वास्तौ हि तदहीयत । श० १ । ७ । ३ । १ ॥
- „ वास्तव्यो वाऽ एष (रुद्रः) देवः । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥
५ । ३ । ३ । ७ ॥
- वास्तु वास्तु हि तद्यज्ञस्य यद्घृतेषु हविःषु (अवाशेष्यते) । श०
१ । ७ । ३ । ७ ॥
- „ वास्तव्यनुष्टुप्वास्तु स्विष्टकृत् । श० १ । ७ । ३ । १८ ॥
- „ पेसुकं वै वास्तु पिंस्यति ह प्रजया पशुभिर्यस्यैवं विदुषो ऽनुष्टुभौ
भवतः । श० १ । ७ । ३ । १८ ॥
- „ अवीर्यं वै वास्तु । श० १ । ७ । ३ । १७ ॥
- वि अन्नं वै व्यन्नं हीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि । श० १४ । ८ । १३ । ३ ॥
- विंशतिः प्रजापतेर्विंशस्तादाप आयंस्तास्वितास्वविशद्यद्विशत्तस्मा-
द्विंशतिः । श० ७ । ५ । २ । ५४ ॥

- विकङ्कतः (वृक्षविशेषः) प्रजापतिर्यां प्रथमामाहुतिमजुहोत्स हुत्वा यत्र
न्यमृष्ट ततो विकङ्कतः समभवत् । श० ६।६।३।१॥
१४।१।२।५॥
- „ स (प्रजापतिः) हुत्वा न्यमृष्ट । ततो विकङ्कतः समभवत्-
स्मादेश यज्ञियो यज्ञपात्रीयो वृक्षः । श० २।२।४।१०॥
- „ यज्ञो विकङ्कतः । श० १४।१।२।५॥
- „ अग्नेः सृष्टस्य यतः । विकङ्कतं भा आच्छत् । तै० १।१।३।१२॥
- „ यत्ते सृष्टस्य यतः । विकङ्कतं भा आच्छजातवेदः । तै०
१।२।१।७॥
- „ सैषा प्रथमाहुतिर्यद्विकङ्कतः । श० ६।६।३।१॥
- „ वज्रो वै विकङ्कतः । श० ५।२।४।१८॥
- विकर्णां (इष्टका) वायुवै विकर्णां । श० ८।७।३।९॥
- „ आयुवै विकर्णां । श० ८।७।३।११॥
- विघ्नः (ऋतुः) इन्द्रमदेव्यो माया असचन्त स प्रजापतिमुपाधावत्त-
स्मा एतं विघ्नं प्रायच्छत्तेन सर्वा मृधो व्यहत् यद्व्यहत् तद्वि-
घ्नस्य विघ्नत्वम् । तां० १९।१९।१॥
- „ इन्द्रो ऽकामयत् पाप्मानं भ्रातृव्यं विहन्यामिति स एतं विघ्न-
नमपश्यत्तेन पाप्मानं भ्रातृव्यं व्यहन् वि पाप्मानं भ्रातृव्यं
इते य एवं वेद । तां० १९।१८।२॥
- „ (इन्द्रः) तं (विघ्नं) आहरत् । तेनायजत् । तेनैवासां (विशां)
तथै सत्तम्भं व्यहन् । तद्विघ्नस्य विघ्नत्वम् । तै० २।
७।१८।१॥
- विचक्षणम् चक्षुवै विचक्षणं वि ह्येनेन पश्यतीति । ऐ० १।६॥
- „ चक्षुवै विचक्षणं चक्षुषा हि विप्रश्यति । कौ० ७।३॥
- वितस्तिः हस्तो वितस्तिः । श० १०।२।२।८॥
- वित्तम् एतावान्बलु वै पुरुषो यावदस्य वित्तम् । तै० १।४।७।७॥
- विद्वसुः यज्ञो ऽसुरेषु विद्वसुः । तां० ८।३।३॥
- „ यज्ञो वै विद्वसुः । तां० ११।४।५॥
- „ यज्ञो विद्वसुः । तां० १५।१०।४॥
- „ विद्वसु वै तृतीयस्वप्नम् । तां० ८।३।६॥

विदानः (यजु० ११ । ३६) विदान इति विद्वानित्येतत् । श० ६।४।२।७॥
विदेहाः सैषा (सदानारा नदी) अप्पेतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा ।
श० १ । ४ । १ । १७ ॥

विद्या विद्या वै धिषणा । तै० ३ । २ । २ । २ ॥

” विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम । तवाऽहमस्मि त्वं मा पालयस्वा-
ऽनर्हते मानिने नैव मा दा गोपाय मा श्रेयसे ते ऽहमस्मीति वि-
द्यया सह म्रियेत न विद्यामूषरे वपेद् ब्रह्मचारी धनदायी मे-
धावी श्रोत्रियः प्रियो विद्यया वा विद्यां यः प्राह तानि तीर्थानि
षण्ममेति (निहक्ते अ० २ खं० ४ ॥ मनुस्मृतौ २ । ११२-११०) ।
संहितो० खं० ३ ॥

” विद्यया देवलोकः (जद्यः) देवलोको वै लोकानां श्रेष्ठस्तस्मा-
द्विद्यां प्रशंसन्ति । श० १४ । ४ । ३ । २३ ॥

विद्युत् (प्रजापतिः) तान् (देवान्) व्यद्यत् (=पाप्मनः सकाशाद् “वि-
योगितवान्” इति सायणः) । यद्व्यद्यत् । तस्माद्विद्युत् । तै०
३ । १० । ९ । १ ॥

” विद्युद्ब्रह्मेत्याहुः । विदानाद्विद्युद्विद्यत्येनं सर्वस्मात्पाप्मनो य
एवं वेद विद्युद्ब्रह्मेति विद्युद्व्येव ब्रह्म । श० १४ । ८ । ७ । १ ॥

” विद्युद्वाऽअशनिः । श० ६ । १ । ३ । १४ ॥

” विद्युत्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ६ ॥

” विद्युदेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥

” अथैतस्यामुदीच्यान्दिशि भूयिष्ठं विद्योतते । ष० २ । ४ ॥

” वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव, विद्युद्दीदं वृष्टिमन्नाद्यं सम्प्रयच्छति ।
ऐ० २ । ४१ ॥

” वृष्टिर्वै विराद् तस्या एते घोरे तन्वौ विद्युच्च हातुनिश्च । श०
१२ । ८ । ३ । ११ ॥

” विद्युद्वाऽअपां ज्योतिः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ ।
२ । ४९ ॥

” (वसोर्धारायै) विद्युत्स्तनः । श० ६ । ३ । ३ । १५ ॥

” यो विद्युति (पुरुषः) स सर्वरूपः । सर्वाणि ह्येतस्मिन् रूपानि ।
जै० उ० १ । २७ । ६ ॥

विद्वांसः ये वै विद्वाँसस्ते पक्षिणो ये ऽविद्वाँसस्ते ऽपक्षास्त्रि-
वृत्पञ्चदशावेव स्तोमौ पक्षौ कृत्वा स्वर्गं लोकं प्रयन्ति ।
तां० १४ । १ । १३ ॥

„ विद्वाँसो हि देवाः । श० ३ । ७ । ३ । १० ॥

विधर्म (साम) विधर्म भवति धर्मस्य विधृत्यै । तां० १५ । ५ । ३१ ॥

विधाः (यजु० १४ । ७) आपो वै विधा अद्भिर्हीदँ सर्वं विहितम् ।

श० ८ । २ । २ । ८ ।

विधाता चन्द्रमा एव धाता च विधाता च । गो० उ० १ । १० ॥

विधृती (द्विवचने) तस्मात् (द्वे तृणे) तिरश्ची निदधाति तस्माद्देव

(अनयोः) विधृती (इति) नाम । श० १ । ३ । ४ । १० ॥

विपश्चित् यज्ञो वै बृहन्विपश्चित् । श० ३ । ५ । ३ । १२ ॥

विप्रः (यजु० ११ । ४) विप्रा विप्रस्येति प्रजापति वै विप्रो देवा विप्राः ।

श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

„ एते वै विप्रा यदृषयः । श० १ । ४ । २ । ७ ॥

विभावसुः (यजु० १२ । १०६) (=प्रभूवसुः) महि भ्राजन्ते अर्चयो

विभावसविति मंहतो भ्राजन्ते ऽर्चयः प्रभूवसवित्येतत् ।

श० ७ । ३ । १ । २९ ॥

विभूनयः याष्णङ्गिभूतय ऋतवस्ते । जै० उ० १ । २१ । १ ॥

विमदः (=विमदेन दृष्टं सूक्तम् । ऋ० १० । २१ ॥) विमदेन वै देवा

असुरान्वयमदन् । कौ० २२ । ६ ॥

विमुक्तिः (अहीनस्य) अथ यत्पुरस्तादुदयनीयस्यातिरात्रस्य विमुच्यन्ते

सा विमुक्तिः । ऐ० ६ । २३ ॥

वियच्छन्दः (यजु० १५ । ५) अहर्वै वियच्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

विराट् (उन्दः) विराट् विरमणाद्विराजन्तद्वा । दे० ३ । ६२ ॥

„ वृष्टिर्वै विराट् तस्या एते घोरे तन्धौ विद्युच्च ह्यादुनिश्च । श०

१२ । ८ । ३ । ११ ॥

„ विराडभिः । श० ६ । २ । २ । ३४ ॥ ६ । ३ । १ । २१ ॥ ६ ।

८ । २ । १२ ॥ ९ । १ । १ । ३१ ॥

„ आग्नेयै विराट् । श० ३ । ५ । १ । ३४ ॥

„ विराट्पृथिवीयम् (पृथिवी) । श० २ । २ । १ । २० ॥

- विराट् इयं (पृथिवी) वै विराट् । श० १२ । ६ । १ । ४० ॥ गो० उ० ६ । २ ॥
- ” (यजु० १३ । २४) अयं वै (पृथिवी-) लोको विराट् । श० ७ । ४ । २ । २३ ॥
- ” (यजु० १३ । ४३) विराट् वै गौः । श० ७ । ५ । २ । १९ ॥
- ” एषा वै स्तनवती विराट् यङ्गामङ्गामयते तमेतां दुग्धे (‘तस्या-
थ कामधुग्धेनुर्वसिष्ठस्य महात्मनः । उक्ता कामान्प्रयच्छेति
सा कामान्नुह्यते सदा ॥’ इति नीलकंठीयटीकायुते महाभारत
आदिपर्वणि १७५ । ६ ॥ ‘विश्वरूपी’ ‘शबली’ इत्येतौ शब्दा-
वपि पश्यत) । तां० २० । १ । ५ ॥
- ” अन्नं विराट् । कौ० ९ । ६ ॥ १२ । ३ ॥ तै० १ । ६ । ३ । ४ ॥
१ । ८ । २ । २ ॥ तां० ४ । ८ । ४ ॥
- ” अन्नं विराट् तस्माद्यस्यैवेह भूयिष्ठमन्नं भवति स एव भूयिष्ठं
लोके विराजति तद्विराजो विराट्त्वम् । ऐ० १ । ५ ॥
- ” अन्नं वै विराट् । श० ७ । ५ । २ । १९ ॥ ऐ० १ । ५ ॥ ४ । १२ ॥
५ । १९ ॥ ६ । २० ॥
- ” अन्नं वै श्रीर्विराट् । गो० पू० ५ । ४ ॥ गो० उ० १ । १९ ॥
- ” श्रीर्विराडन्नाद्यम् । कौ० १ । १ ॥ २ । ३ ॥ १२ । २ ॥ १५ । ५ ॥
- ” श्रीर्वै विराट् यशो ऽन्नाद्यम् । गो० पू० ५ । २० ॥ गो० उ०
६ । १५ ॥
- ” एतद्वै कृत्स्नमन्नाद्यं यद्विराट् । कौ० १४ । २ ॥
- ” विराडन्नाद्यम् । ऐ० ४ । १६ ॥ ८ । ४ ॥
- ” ऊर्ग्विराट् । तै० १ । २ । २ । २ ॥
- ” वैराजीर्वा आपः । कौ० १२ । ३ ॥
- ” वैराजो वै पुरुषः । तां० २ । ७ । ८ ॥ १९ । ४ । ५ ॥ तै० ३ ।
९ । ८ । २ ॥
- ” विराट् वै यज्ञः । श० १ । १ । १ । २२ ॥ २ । ३ । १ । १८ ॥
४ । ४ । ५ । १९ ॥
- ” वैराजो यज्ञः । गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० ६ । १५ ॥
- ” विराट् वाऽ अग्निष्टोमः । कौ० १५ । ३ ॥
- ” वैराजः सोमः । कौ० ६ । ६ ॥ श० ३ । ३ । २ । १७ ॥ ३ ।
९ । ४ । १६ ॥

विराट् विराड् वरुणस्य पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

„ अथैतद्वामे ऽक्षणि पुरुषरूपम् । एषास्य (दक्षिणे ऽक्षणि वर्त्तमानस्येन्द्राख्यस्य पुरुषस्य) पत्नी विराट् । श० १४।६।२।३॥

„ सा (विराट्) तत ऊर्ध्वारोहत् । सा रोहिण्यभवत् । तै० १ । १ । १० । ६ ॥

„ विराट् सृष्टा प्रजापतेः । ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी । योनिरग्नेः प्रतिष्ठितिः । तै० १ । २ । २ । २७ ॥

„ सर्वदेवत्यं वा एतच्छन्दो यद्विराट् । श० १३ । ४ । ६ । १३ ॥

„ सत् (उत्कृष्टमिति सायणः) विराट् छन्दसाम् । तां० १५।१२।२।

„ विराट् छन्दसां (सत्) । तां० ४ । ८ । १० ॥

„ विराड् वै छन्दसां ज्योतिः । तां० ६ । ३ । ६ ॥

„ विराड्ढि छन्दसां ज्योतिः । तां० १० । २ । २ ॥

„ विराजो वा एतद्रूपं यदक्षरम् । तां० ८ । ६ । १४ ॥

„ दशाक्षरा वै विराट् । श० १ । १ । १ । २२ ॥

„ दशाक्षरा विराट् । ऐ० ६ । २० ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० १ । १८ ॥ ६ । २, १५ ॥ तां० ३ । १३ । ३ ॥

„ दशदशिनी विराट् । कौ० २ । ३ ॥ १७ । ३ ॥ १६ । ५, ७ ॥

„ दश च ह वै चतुर्विराजो ऽक्षराणि । गो० पू० ५ । २० ॥

„ त्रिंशदक्षरा वै विराट् । ऐ० ४ । १६ ॥ ८ । ४ ॥ श० ३ । ५ । १ । ७ ॥

„ त्रिंशदक्षरा विराट् । तै० ३ । ८ । १० । ४ ॥ तां० १० । ३ । १२ ॥ तै० १ । ६ । ३ । ४ ॥

„ सा विराट् त्रयस्त्रिंशदक्षरा भवति । ऐ० २ । ३७ ॥

„ त्रयस्त्रिंशदक्षरा वै विराट् । कौ० १४ । २ ॥ १८ । ५ ॥ श० ३ । ५ । १ । ८ ॥

„ एषा वै परमा विराट् यच्चत्वारिंशद्वात्रयः पङ्क्तिर्वै परमा विराट् । तां० २४ । १० । २ ॥

„ सहस्राक्षरा वै परमा विराट् । तां० २५ । ९ । ४ ॥

„ विराड् वाऽऽनाधृष्टं छन्दः (यजु० १४।९) । श० ८ । २ । ४ । ४ ॥

„ स (प्रजापतिः) पुरुषमेधेनेप्द्वा विराडिति नामाद्यत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥

विराट् बृहद्विराट् । तै० १ । ४ । ४ । ९ ॥

विरोचनः प्रह्लादो ह वै कायाधवो विरोचनश्च स्वं पुत्रमपन्यधत् ।
नेदेनं देवा अहनन्निति । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥

” प्रह्लादो वै कायाधवः विरोचनं स्वं पुत्रमुदास्यत् । स
प्रदरो ऽभवत् । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

विलम्बसौपर्णम् (साम) यदन्तरात्मा पक्षौ विलम्बते तस्माद्विलम्ब-
सौपर्णम् । तां० १४ । ९ । २० ॥

विवधश्छन्दः (यजु० १५ । ५) अन्तरिक्षं वै विवधश्छन्दः । श०
८ । ५ । २ । ५ ॥

विवर्तो ऽष्टाचत्वारिंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव विवर्तो ऽष्टा-
चत्वारिंशस्तस्य षड्विंशतिरर्धमासास्त्रयो-
दश मासाः सप्तऽर्तवो द्वे अहोरात्रे तद्यत्तमाह
विवर्त इति संवत्सराद्धि सर्वाणि भूतानि विवर्तन्ते ।
श० ८ । ४ । १ । २५ ॥

विवलं छन्दः (यजु० १४ । ९) एकपदा वै विवलं छन्दः । श० ८ । २ ।
४ । १ ॥

विवस्वान् असौ वाऽ आदित्यो विवस्वानेष ह्यहोरात्रे विवस्ते तमेष
वस्ते सर्वतो ह्येनेन परिवृतः । श० १० । ५ । २ । ४ ॥

” विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथः । श० ४ । ३ । ५ । १८ ॥

” (देवा आदित्याः) यं (मार्तण्डं) उ ह तद्विचक्रुः, स
विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः । श० ३ । १ । ३ । ४ ॥

विवाहः तस्माद्दु समानादेव पुरुषादत्ता (=भर्ता) चाद्यः (=भार्या)
च जायेतेऽइदं हि चतुर्थे पुरुषे तृतीये सङ्गच्छामहऽ इति
विदेवं दीव्यमाना जात्याऽभासते । श० १ । ८ । ३ । ६ ॥

” सा (सुकन्या) होवाच यस्मै मां पितादात्रैवाहं तं जीवन्त-
ं हास्यामीति । श० ४ । १ । ५ । ९ ॥

विशः यज्ञो वै विशो यज्ञे हि सर्वाणि भूतानि विष्टानि । श० ८ । ७ ।
३ । २१ ॥

” (यजु० ३८ । १९) यज्ञो वै विद् । श० १४ । ३ । १ । ९ ॥

” विड्क्थानि । तां० १८ । ८ । ६ ॥ १९ । १६ । ६ ॥

” विद् शस्त्रम् । ष० १ । ४ ॥

- विशः विद् सूक्तम् । ऐ० २ । ३३ ॥ ३ । १२ ॥
 ,, विशो ग्रावाणः । श० ३ । ९ । ३ । ३ ॥
 ,, विद्धे ग्रावानः । तां० ६ । ६ । १ ॥
 ,, विद् वै गमः । श० १३ । २ । ९ । ६ ॥ तै० ३ । ९ । ७ । ३५ ॥
 ,, विद्धे शकुन्तिका (यजु० २३ । २२) । श० १३ । २ । ९ । ६ ॥
 तै० ३ । ९ । ७ । ३ ॥
 ,, विद्धे हरिणी । तै० ३ । ९ । ७ । २ ॥
 ,, विशो विश्वे देवाः । श० २ । ४ । ३ । ६ ॥ ३ । २ । १ । १६ ॥
 ,, विशो वै विश्वे देवाः । श० ५ । ५ । १ । १० ॥
 ,, विशो वै पस्त्याः । श० ५ । ३ । ५ । १९ ॥ ५ । ४ । ४ । ५ ॥
 ,, विशो वै सूर्यः । श० १३ । २ । १० । २ ॥
 ,, विशो होत्राशंसिनः । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० ३० । ६ । ३ ॥
 ,, विद् सप्तदशः । तां० १८ । १० । ९ ॥
 ,, विद् वै सप्तदशः । तां० २ । ७ । ५ ॥ २ । १० । ४ ॥
 ,, विशः सप्तदशः । ऐ० ५ । ४ ॥
 ,, वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतं वैरूपेण विशौजसा ।
 तै० २ । ६ । १६ । १—२ ॥
 ,, राष्ट्रूणि वै विशः । ऐ० ५ । २६ ॥
 ,, विद् सुरा । श० १२ । ७ । ३ । ८ ॥
 ,, आद्या हीमाः प्रजा विशः । श० ४ । २ । १ । १७ ॥
 ,, अन्नं वै विशः । श० ४ । ३ । ३ । १२ ॥ ५ । १ । ३ । ३ ॥ ६ ।
 ७ । ३ । ७ ॥
 ,, अन्नं विशः । श० २ । १ । ३ । ५ ॥
 ,, अन्नं वै क्षत्रियस्य विद् । श० ३ । ३ । २ । ८ ॥
 ,, तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः । श० १३ । २ । ९ । ६ ॥
 ,, तस्माद्राष्ट्री विशमस्ति । श० १३ । २ । ९ । ८ ॥
 ,, दैव्यो वाऽपता विशो यत्पशवः । श० ३ । ७ । ३ । ६ ॥
 ,, अपरजना ह वै विशो ऽदेवीः । गो० ३० । ६ । १६ ॥
 ,, क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हिः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥
 ,, तस्माद् ब्रह्म च क्षत्रं च विशि प्रतिष्ठिते । श० ११ । २ । ७ । १६ ॥

- विशः स्वरिति (प्रजापतिः) विशम् (अजनयत) । श० २ । १ । ४ । १२ ॥
- „ स विशमसृजत यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते
वसवो रुद्रा आदित्या विश्वे देवा मरुत इति । श० १४ । ३ । २४ ॥
- „ पूषा विशां विदूषति । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
- „ तस्याः (विशः) राजा गर्भः । तां० २ । ७ । ५ ॥
- „ अहुतादो वै विशः । श० २ । ५ । २ । २४ ॥
- „ भूमो वै विद् । श० ३ । ६ । १ । १७ ॥
- „ अनिरुक्तेव हि विद् । श० ९ । ३ । १ । १५ ॥
- विशाखे (= नक्षत्रविशेषः) इन्द्राग्नियोर्विशाखे । तै० १ । ५ । १ । ३ ॥
- „ नक्षत्राणः मधिषली विशाखे । श्रेष्ठाविन्द्राग्नी भुवनस्य गोपौ ।
तै० ३ । १ । १ । ११ ॥
- „ (प्रजापतेर्नक्षत्रियस्य) ऊरू विशाखे । तै० १ । ५ । २ । २ ॥
- विशालं छन्दः (यजु० १५ । ५) अयं वै (पृथिवी-) लोको विशालं
छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ६ ॥
- „ (यजु० १४ । ९) द्विपदा वै विशालं छन्दः । श० ८ ।
२ । ४ । २ ॥
- विशोविशीयम् (साम) अग्निरकामयत विशो विशो ऽतिथिः स्यां विशो
विश आतिथ्यमश्नुवीयेति स तपो ऽतप्यत स एत-
द्विशोविशीयमपश्यत्तेन विशो विशो ऽतिथिरभवत्
विशो विश आतिथ्यमाश्नुत विशो विशो ऽतिथिर्भवति
विशो विश आतिथ्यमश्नुते विशोविशीयेन तुष्टुवानः ।
तां० १४ । ११ । ३७ ॥
- विश्वकर्मा अथो विश्वकर्मेण । विश्वं वै तेषां कर्म कृतं सर्वं जितं
भवति ये संवत्सरमासते । श० ४ । ६ । ४ । ५ ॥
- „ (यजु० १३ । ५८) वाग्वै विश्वकर्म ऽर्षिर्वाचा हीदं सर्वं
कृतम् । श० ८ । १ । २ । ९ ॥
- „ (यजु० १३ । १६ ॥ १४ । ५, ९) प्रजापतिवै विश्वकर्मा ।
श० ७ । ४ । २ । ५ ॥ ८ । २ । १ । १० ॥ ८ । २ । ३ । १३ ॥
- „ संवत्सरो विश्वकर्मा । श्रे० ४ । २९ ॥
- „ असौ वै विश्वकर्मा यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० ५ । ५ ॥
गो० ३० १ । २३ ॥

- विश्वकर्मा विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पातु । श० ३ । ५ । २ । ७ ॥
- ” असौ (द्यौः) विश्वकर्मा । तै० ३ । २ । ३ । ७ ॥
- ” तस्य (इन्द्रस्य) असौ (द्यु-) लोको नाभिजित् आसीत्तं
(इन्द्रः) विश्वकर्मा भूत्वाभ्यजयत् । तै० १ । २ । ३ । ३ ॥
- ” इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा विश्वकर्मा ऽभवत्प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा
विश्वकर्मा ऽभवत् । ऐ० ४ । २२ ॥
- ” विश्वकर्मायमग्निः । श० ९ । २ । २ । २ ॥ ६ । ५ । १ । ४२ ॥
- ” (यजु० १३ । ५५ ॥ १५ । १६) अयं वै वायुर्विश्वकर्मा यो
ऽयं पवतऽएष हीदं सर्वं करोति । श० ८ । १ । १ । ७ ॥
८ । ६ । १ । २७ ॥
- ” वैश्वकर्माण एककपालः पुरोडाशो भवति विश्वं वा एतत्कर्म
कृतं सर्वं जितं देवानामासीत्सकामेधैरीजनानां विजिग्या-
नानाम् । श० २ । ५ । ४ । १० ॥
- ” (प्रजापतिः) वैश्वकर्माणं पुरुषं (आलिप्तत) । श० ६ ।
२ । १ । ५ ॥
- विश्वजित् (यज्ञः) (देवाः) विश्वजिता विश्वमजयन् । तां० २२ । ५ । ५ ॥
- ” विश्वजिता वै प्रजापतिः सर्वाः प्रजा अजनयत्सर्वमुदजयत्स-
स्माद्विश्वजित् । कौ० २५ । १३ ॥
- ” एष ह प्रजानां प्रजापतिर्यद्विश्वजित् । गो० पू० ५ । १० ॥
- ” प्रजापतिर्विश्वजित् । कौ० २५ । ११, १२, १५ ॥
- ” ततो वा इदमिन्द्रो विश्वमजयद्यद्विश्वमजयत्समाद्विश्वजित् ।
तां० १६ । ४ । ५ ॥
- ” इन्द्रो विश्वजिदिन्द्रो हीदं सर्वं विश्वमजयत् । कौ० २४ । १ ॥
- ” अथ यद्विश्वजितमुपयन्ति । इन्द्रमेव देवतां यजन्ते । श०
१२ । १ । ३ । १५ ॥
- ” सर्वं विश्वजित् । कौ० २५ । १४ ॥
- ” सर्वं वै विश्वजित् । श० १० । २ । ५ । १६ ॥
- ” स वा एष विश्वजिद्यः सहस्रसंघत्सरस्यं प्रतिमा गा०
पू० ५ । १० ॥
- ” एकाहो वै विश्वजित् । कौ० २५ । ११

- विश्वजित् स कृत्स्नो विश्वजित्यो ऽनिरात्रः । कौ० २५ । १४ ॥
- „ चर्कीवान्वा एष (विश्वजित्) यज्ञः कामाय । तां० १६ । १५ । ४ ॥
- विश्वज्योतिः (उक्थ्यः साहस्र एकाहः) पशवो वा उक्थानि पशवो
विश्वं ज्योतिर्विश्व एव ज्योतौ पशुषु प्रतितिष्ठति । तां०
१६ । १० । २ ॥
- „ (इष्टका) एता होव देवताः (अग्निः, वायुः, आदित्यः)
विश्वं ज्योतिः । श० ६ । ३ । ३ । २६ ॥ ६ । ५ । ३ । ३ ॥
- „ अग्निर्वै प्रथमा विश्वज्योतिः । श० ७ । ४ । २ । २५ ॥
- „ वायुर्वै मध्यमा विश्वज्योतिः । श० ८ । ३ । २ । १ ॥
- „ प्राणो वै विश्वज्योतिः । श० ७ । ४ । २ । २८ ॥ ८ । ३ ।
२ । ४ ॥ ८ । ७ । १ । २२ ॥
- „ प्रजा वै विश्वज्योतिः । श० ७ । ४ । २ । २६ ॥ ८ । ३ ।
२ । २ ॥
- „ प्रजा वै विश्वज्योतिः प्रजा होव विश्वं ज्योतिः । श० ६ ।
५ । ३ । ५ ॥
- „ कीकसा विश्वज्योतिः । श० ७ । ५ । १ । ३५ ॥
- विश्वधायाः (यजु० १३ । १८) (=पृथिवी) अस्याऽऽ हीदं सर्वं
हितम् । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥
- „ वृष्टिर्वै विश्वधायाः । तै० ३ । २ । ३ । २ ॥
- विश्वप्रीः (अनुवाकः) सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा इति विश्वप्रीः ।
तै० ३ । ११ । ९ । ९ ॥
- विश्वम् यद्वै विश्वं सर्वं तत् । श० ३ । १ । २ । ११ ॥
- „ तदन्नं वै विश्वंप्राणो मित्रम् । जै० ३० । ३ । ३ । ६ ॥
- विश्वरूपः त्वष्टुर्ह वै पुत्रः । त्रिशीर्षा षडक्ष आस तस्य त्रीण्येव मुखान्यासुस्तद्यदेवऽऽरूप आस तस्माद्विश्वरूपो नाम । श० १ ।
७ । ३ । १ ॥ ५ । ५ । ४ । २ ॥
- „ तस्य (विश्वरूपस्य) सोमपानमेवैकं मुखमास । सुरापानमेकमन्यस्माऽ अशनायैकं तमिन्द्रो दिद्वेष तस्य तानि
शीर्षाणि प्रविच्छेद् । श० १ । ६ । ३ । २ ॥
- „ स (इन्द्रः) यत्र त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं विश्वरूपं जघान ।
श० १ । २ । ३ । २ ॥

विश्वरूपा (=कामधेनुः) इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिर्विश्वरूपी
 (विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु—अथर्व० ४। ३४। ८ ॥
 विश्वरूपा धेनुः कामदुघा ऽस्येका—अथर्व० ९। ५। १० ॥
 पश्चिमा वारुणी दिक् च धार्यते वै सुभद्रया । महानुभावया
 नित्यं मातले विश्वरूपया ॥ सर्वकामदुघा नामधेनुर्धार-
 यते दिशम् । उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंज्ञिताम् ॥
 इति महाभारते उद्योगपर्वणि १०२। ९—१० ॥ अथर्ववेदे
 १२। १। ६१ ॥ पृथिवीसूक्ते—त्वमस्यावपनी जनाना-
 मदितिः कामदुघा पप्रथाना.....अत्र पृथिवी=कामदुघा) ।
 तै० १। ७। ६। ७ ॥ 'शबली' 'विराट्' इत्येतावपि शब्दौ
 पश्यत ॥

विश्वव्यचाः (यजु० १३। ५६ ॥ १५। १७) असौ वाऽ आदित्यो विश्व-
 व्यचा यदा होवैष उदेत्यथेदं सर्वं व्यचो भवति । श० ८।
 १। २। १ ॥ ८। ६। १। १८ ॥

„ (यजु० १८। ४१ ॥ वातः ॥) एष (वातः) हीदं सर्वं
 व्यचः करोति । श० ९। ४। १। १० ॥

„ अन्तरिक्षं विश्वव्यचाः । तै० ३। २। ३। ७ ॥

विश्वसृजः एतेन (सहस्रसंवत्सरसत्रेण) विश्वसृज इदं विश्वमसृजन्त ।
 यद्विश्वमसृजन्त । तस्माद्विश्वसृजः (= 'तपः' 'ब्रह्म' 'सत्यम्'
 इत्येवमादयः) । तै० ३। १२। ६। ५ ॥

„ यद्विश्वमसृजन्त तस्माद्विश्वसृजः ('तपः' 'ब्रह्म' 'इरा'
 'अमृतम्' इत्येवमादयः) । तां० २५। १८। २ ॥

„ (विश्वसृजो दश—अथर्व० ११। ९। ४ ॥ मनुस्मृतौ १।
 ३४—३५—अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चराम् ।
 पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश । मरीचिमत्र्यङ्गि-
 रसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं
 नारदमेव च ॥)

„ सत्यं ह होतैषामासीत् यद्विश्वसृज आसत् । तै० ३।
 १२। ९। ३ ॥

विश्वाची (अप्सराः=वेदिः । यजु० १७ । ५९) विश्वाचीरभिचष्टे घृताची-
रिति स्रुचश्चैतद्वेदीश्चाह । श० ९ । २ । ३ । १७ ॥

, (यजु० १५ । १८) वेदिरेव विश्वाची । श० ८ । ६ । १ । १९ ॥

विश्वानि धामानि (यजु० ४ । ३४) अङ्गानि वै विश्वानि धामानि ।
श० ३ । ३ । ४ । १४ ॥

विश्वामित्रः विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्र आस विश्वं हास्मै
मित्रं भवति य एवं वेद । ऐ० ६ । २०, २१ ॥

, (यजु० १३ । ५७) श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिर्यदेनेन सर्वतः
श्रृणोत्यथो यदस्मै सर्वतो मित्रं भवति तस्माच्छ्रोत्रं
विश्वामित्र ऋषिः । श० ८ । १ । २ । ६ ॥

, तदन्नं वै विश्वम्प्राणो मित्रम् । जै० उ० ३ । ३ । ६ ॥

, वाग्वै विश्वामित्रः । कौ० १० । ५ ॥ १५ । १ ॥ २६ । ३ ॥

, जन्हुवृर्चावन्तो (? = 'जहोः पुत्रा ऋचीवन्नामाकाः' इति
सायणः) राष्ट्र आहिसन्त स विश्वामित्रो जाह्नवो राजै-
तम् (चतूरात्रम्) अपश्यत् स राष्ट्रमभवदराष्ट्रभितरे ।
तां २१ । १२ । २ ॥

विश्वायुः इयं (पृथिवी) वै विश्वायुः । तै० ३ । २ । ३ । ७ ॥

विश्वा सप्तानि (यजु० १२ । १३) इमे वै लोका विश्वा सप्तानि । श०
६ । ७ । ३ । १० ॥

विश्वे देवाः एते वै सर्वे देवा यद्विश्वे देवाः । कौ० ४ । १४ ॥ ५ । २ ॥

, एते वै विश्वे देवा यत्सर्वे देवाः । गो० उ० १ । २० ॥

, यदस्मिन्विश्वे देवा असीदंस्तस्मात्सदो नाम तऽऽएवा-
स्मिन्नेते ब्राह्मणा विश्वगोत्राः सीदन्ति । श० ३ । ५ । ३ ।
५ ॥ ३ । ६ । १ । १ ॥

, रश्मयो ह्यस्य (सूर्यस्य) विश्वे देवाः । श० ३ । ९ । २ ।
६, १२ ॥

, तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते विश्वे देवाः । श० ४ । ३ ।
१ । २६ ॥

, एते वै विश्वे देवा रश्मयः । श० २ । ३ । १ । ७ ॥

, एते वै रश्मयो विश्वे देवाः । श० १३ । ४ । ४ । ६ ॥

[विश्वे देवाः

(५१६)

विश्वे देवाः प्राणा वै विश्वे देवाः (यजु० ३८ । १५) । श० १४ । २ ।

२ । ३७ ॥

॥ ऋतवो वै विश्वे देवाः (यजु० १२ । ६१) । श० ७ । १ ।
१ । ४३ ॥

॥ इन्द्राग्नी वै विश्वे देवाः । श० २ । ४ । ४ । १३ ॥

॥ इन्द्राग्नी हि विश्वे देवाः । श० ३ । ९ । २ । १४ ॥

॥ अथ यदेनं (अग्निम्) एकं सन्तं बहुधा विहरन्ति तदस्य
वैश्वदेवं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥

॥ श्रोत्रं विश्वे देवाः । श० ३ । २ । २ । १३ ॥

॥ ता (दिशः) उ एव विश्वे देवाः । जै० उ० २ । २ । ४ ॥
२ । ११ । ५ ॥

॥ स (प्रजापतिः) विश्वान्देवानसृजत तान्दिक्षूपादधात् ।
श० ६ । १ । २ । ९ ॥

॥ 'विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गि-
रस्वत् ('ध्रुवासि दिशोसि' यजु० ११ । ५८) इति दिशो हैत-
द्यजुरतद्वै विश्वे देवा वैश्वानरा एषु लोकेषूखायामेतेन
चतुर्थेन यजुषा दिशो ऽदधुः । श० ६ । ५ । २ । ६ ।

॥ विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गि-
रस्वत् (यजु० ११ । ६०) । श० ६ । ५ । ३ । १० ॥

॥ विश्वे देवा उपद्रवः । जै० उ० १ । ५८ । ९ ॥

॥ वैश्वदेवो वै पूतभृत् । श० ४ । ४ । १ । १२ ॥

॥ तस्य (प्रजापतेः) विश्वे देवाः पुत्राः । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

॥ वैश्वदेवो हि वैश्यः । तै० २ । ७ । २ । २ ॥

॥ विडु विश्वे देवाः । श० १० । ४ । १ । ९ ॥

॥ विशो विश्वे देवाः । श० २ । ४ । ३ । ६ ॥ ३ । ९ । १ । १६ ॥

॥ विशो वै विश्वे देवाः । श० ५ । ५ । २ । १० ॥

॥ वैश्यदेव्यो वै प्रजाः । तै० १ । ६ । २ । ५ ॥ १ । ७ । १० । २ ॥

॥ तान् (पशून्) विश्वे देवाः सप्तदशेन स्तोमेन नाप्नुवन् ।
तै० २ । ७ । १४ । २ ॥

॥ पशवो वै वैश्वदेवम् (शकम्) । कौ० १६ । ३ ॥

विश्वे देवाः वैश्वदेवो वाऽ अश्वः । श० १३ । २ । ५ । ४ ॥ तै० ३ । ९ ।

२ । ४ ॥ ३ । ९ । ११ । १ ॥

„ वैश्वदेवी वै गौः । गो० उ० ३ । १९ ॥

„ वैश्वदेवं वा अन्नम् । तै० ३ । ६ । १ । १० ॥

„ विश्वेषां वा एतद्देवानां^{११} रूपम् । यत्करम्बाः । तै० ३ । ८ । १४ । ४ ॥

„ सर्वमिदं विश्वे देवाः । श० ३ । ९ । १ । १४ ॥ ४ । ४ । १९, १८ ॥

„ सर्वे वै विश्वे देवाः । श० १ । ७ । ४ । १२ ॥ ३ । ९ । १ । १३ ॥ ४ । २ । २ । ३ ॥ ४ । ५ । २ । १० ॥

„ विश्वे देवा एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ अनन्ता विश्वे देवाः । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥

„ विश्वे वै देवा देवानां यशस्वितमाः । श० १३ । १ । २ । ८ ॥ तै० ३ । ८ । ७ । २ ॥

„ बृहस्पतिर्विश्वेदेवैः (उदक्रामत्) । ऐ० १ । २४ ॥

„ वैश्वदेवानि ह्यङ्गानि । ऐ० ३ । २ ॥

„ ते (विश्वे देवाः) अद्भुन्वैश्वदेवं साम्नो वृणीमहे प्रजनन-
मिति । जै० उ० १ । ५२ । २ ॥

„ वैश्वदेवो वाऽ अम्भृणावतो हि देवेभ्य उन्नयन्त्यतो मनुष्ये-
भ्यो ऽतः पितृभ्यः । श० ४ । ५ । ६ । ३ ॥

„ अथ यहशरात्रमुपयन्ति । विश्वानेव देवान्देवतां यजन्ते ।
श० १२ । १ । ३ । १७ ॥

„ वैश्वदेवो द्वादशकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

„ विश्वे देवा द्वादशकपालेन तृतीयसवने (आदित्यमभिष-
ज्यन्) । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥

„ वैश्वदेवं वै तृतीयसवनम् । ऐ० ६ । १५ ॥ श० १ । ७ । ३ । १६ ॥ ४ । ४ । १ । १२ ॥ जै० उ० १ । ३७ । ४ ॥

„ अथ यां वीरुस्यन्निव प्रथयन्निव गायति सा वैश्वदेवी
(आगा) । तथा तृतीयसवनस्योद्देयम् । जै० उ० १ । ३७ । ४ ॥

„ अथैनं (इन्द्रं) उदीक्यां दिशि विश्वे व्रेषाः अभ्याविञ्चन्
वैराज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

[विष्णुः

(५१८)

विश्वे देवाः विश्वे त्वा देवा उत्तरतो ऽभिषिञ्चन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा ।

तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

„ विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सङ्ग्रहः स्वाहा । श० ५ ।

२ । ४ । ५ ॥

विषम् यवमात्रं वै विषस्य न हिनस्ति । गो० उ० १ । ३ ॥

विषुवान् देवलोको वा एष यद्विषुवान् । तां० ४ । ६ । २ ॥

„ विषुवान्वै पञ्चममहः । तां० १३ । ४ । १६ ॥ १३ । ५ । १० ॥

„ आत्मा वा एष संवत्सरस्य यद्विषुवान् । तां० ४ । ७ । १ ॥

„ आत्मा च संवत्सरस्य विषुवानङ्गानि मासाः । श० १२ ।
२ । ३ । ६ ॥

„ आत्मा वै सवत्सरस्य विषुवानङ्गानि पक्षौ (दक्षिणः पक्ष
उत्तरः पक्षश्च) । गो० पू० ४ । १८ ॥

„ एतच्छिरो यज्ञस्य यद्विषुवान् । कौ० २६ । १ ॥

„ अथ यद्विषुवन्तमुपयन्ति । आदित्यमेव देवतां यजन्ते । श०
१२ । १ । ३ । १४ ॥

विष्टम्भः (यजु० १४ । ९) प्रजापतिर्वै विष्टम्भः । श० ८ । २ । ३ । १२ ॥

विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः (यजु० १५ । ४) दिशो वै विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः ।

श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

विष्णुः तद्यदेवेदं क्रीतो विशतीव तदु हास्य (सोमस्य) वैष्णवं रूपम् ।

कौ० ८ । २ ॥

„ यो वै विष्णुः स यज्ञः । श० ५ । २ । ३ । ६ ॥

„ विष्णुर्यज्ञः । गो० उ० १ । १२ ॥ तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥

„ विष्णुर्वै यज्ञः । ऐ० १ । १५ ॥

„ 'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ' (यजु० १ । १३) इति यज्ञौ वै विष्णुर्यः
क्षिये स्थ इत्येवैतदाह । श० १ । १ । ३ । १ ॥

„ (यजु० २२ । २०) यज्ञो वै विष्णुः । श० १३ । १ । ८ । ६ ॥

„ यज्ञो वै विष्णुः । कौ० ४ । २ ॥ १८ । ८, १४ ॥ तां० ९ । ६ । १० ॥

श० १ । १ । २ । १३ ॥ ३ । २ । १ । ३६ ॥ गो० उ० ४ । ६ ॥

तै० १ । २ । ५ । १ ॥

„ यज्ञो वै विष्णुः शिपिविष्टः । ता० ६ । ७ । १० ॥

- विष्णुः यज्ञो वै वैष्णुवारुणः । कौ० १६।८ ॥
- ॥ यज्ञो विष्णुः । श० १।६।३।९ ॥ तां० १३।३।२ ॥ गो०
उ० ६।७ ॥
- ॥ विष्णवे हि गृह्णाति यो यज्ञाय (हविः) गृह्णाति । श० ३।४।१।१४ ॥
- ॥ अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनं
रुद्रा माध्यन्दिनं सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४।
१।१।१५ ॥ *
- ॥ (=आदित्यः) स यः स विष्णुर्यज्ञः स । स यः स यज्ञो ऽसौ स
आदित्यः । श० १४।१।१।६ ॥
- ॥ स उ एव मखः स विष्णुः । श० १४।१।१।१३ ॥
- ॥ (प्रजापतिः) यजुर्भ्यो ऽधि विष्णुं (असृजत) । तद्विष्णुं यश
आच्छत् । तं (विष्णुं) आलभत । विष्णोरध्योषधीरसृजत ।
तै० २।३।२।४ ॥
- ॥ यजुषोषि विष्णुः (स्वभागरूपेणाभजत) । श० ४।६।७।३ ॥
- ॥ यो वै विष्णुः सोमः सः । श० ३।३।४।२१ ॥ ३।६।३।१९ ॥
- ॥ जुष्टा विष्णव इति । जुष्टा सोमायेत्येवैतदाह (विष्णुः=सोमः)
। श० ३।२।४।१२ ॥
- ॥ यत्तदन्नमेष सं विष्णुर्देवता । श० ७।५।१।२१ ॥
- ॥ वीर्यं विष्णुः । तै० १।७।२।२ ॥
- ॥ प्रादेशमात्रो वै गर्भो विष्णुः । श० ६।५।२।८ ॥ ६।६।२।१२ ॥
७।५।१।१४ ॥
- ॥ अग्निर्वाऽअहः सोमो रात्रिरथ यदन्तरेण (अहो रात्रेश्च यो
ऽन्तरालः कालः) तद्विष्णुः । श० ३।४।४।१५ ॥
- ॥ यदह दीक्षते तद्विष्णुर्भवति । श० ३।२।१।१७ ॥
- ॥ विष्णुः सर्वा देवताः । ऐ० १।१ ॥
- ॥ तस्मादाहुर्विष्णुर्देवानां श्रेष्ठ इति । श० १४।१।१।५ ॥
- ॥ अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः । ऐ० १।१ ॥
- ॥ अन्तो विष्णुर्देवतानाम् । तां० २१।४।६ ॥
- ॥ अग्निर्वै देवानामवराध्यो विष्णुः परार्ध्यः । कौ० ७।१ ॥
- ॥ अग्निर्वै यज्ञस्यावराध्यो विष्णुः परार्ध्यः । श० ५।२।३।६ ॥
- ॥ एते वै यज्ञस्यान्त्ये तन्वौ यदग्निश्च विष्णुश्च । ऐ० १।१ ॥

विष्णुः अग्नाविष्णू वै देवानामन्तभाजौ । कौ० १६। ८ ॥

” आग्नावैष्णवमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ३। १।
३। १ ॥ ५। २। ३। ६ ॥

” यज्ञो विष्णुः स देवेभ्य इमां विक्रान्तिं विचक्रमे यैषामियं
विक्रान्तिरिदमेव प्रथमेन पदेन पस्पाराथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन
दिवमुत्तमेन । श० १। ९। ३। ९ ॥

” यज्ञो वै विष्णुः स देवेभ्य इमां विक्रान्तिं विचक्रमे यैषामियं
विक्रान्तिरिदमेव प्रथमेन पदेन पस्पाराथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन
दिवमुत्तमेनैताम्बेवैष एतस्मै विष्णुर्यज्ञो विक्रान्तिं विक्रमते ।
श० १। १। २। १३ ॥

” इमे वै लोका विष्णोर्विक्रमणं विष्णोर्विक्रान्तं विष्णोः क्रान्तम् ।
श० ५। ४। २। ६ ॥

” स (विष्णुः) इमाँल्लोकान्विचक्रमे ऽथो वेदानथो वाचम् । ऐ०
६। १५ ॥

” वामनो ह विष्णुरास (विष्णुपुराणे ३। १। ४२-४३-मन्वन्तरे
तु संप्राप्ते तथा वैवस्वते द्विज । वामनः कश्यपाद्विष्णुरदित्यां
संबभूव ह ॥ त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना ।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम् ॥) । श० १। २। ५। ५ ॥

” स हि वैष्णवो यद्वामनः (गौः) । श० ५। २। ५। ४ ॥

” वैष्णवं वामनं (पशुं) आलभन्ते । तै० १। २। ५। १ ॥

” वैष्णवो वामनः (पशुः) । श० १३। २। २। ९ ॥

” चक्रपाणये (विष्णवे) स्वाहा । ष० ५। १० ॥

” विष्णुर्वै देवानां द्वारपः । ऐ० १। ३० ॥

” विष्णवाशानां पते । तै० ३। ११। ४। १ ॥

” तस्य (विष्णोः) उपपरासृत्य । (वम्रथः) ज्यामपिजश्रुस्तस्यां
छिन्नायां धनुरान्त्यौ विष्फुरन्त्यौ विष्णोः शिरः प्रचिच्छिदतुः
(विष्णोर्हृयग्रीवावतारकथा :—देवीभागावते १। ५। १९, २५,
२६, ३०, ४२ ॥ १। ६। ८—९ ॥ ह्यशिरा विष्णुः—नीलकण्ठी-
यटीकायुते महाभारते शान्तिपर्वणि, ३४७। ४८ ॥) । श०
१४। १। १। ९ ॥

- विष्णुः तस्य (मखस्य=विष्णोः) धनुरार्त्तिरूर्द्धा पतित्वा शिरो ऽछिन-
त्स प्रवर्ग्यो ऽभवत् । तां० ७ । ५ । ६ ॥
- „ (दध्यङ्कुथर्वणः) तौ (अश्विनौ) ह (छिन्नस्य विष्णुशिरसः
पुनःसन्धानविद्याऽध्यापनार्थं) उपनिन्ये तौ यदोपनिन्ये ऽथास्य
(दर्धाच्च आथर्वणस्य) शिरश्छित्त्वान्यत्रापनिदधतुरथाश्वस्य
शिर आहृत्य तद्वास्य प्रतिदधतुः । श० १४ । १ । १ । २४ ॥
- „ विष्णुर्वै यज्ञस्य दुरिष्टं पाति । ऐ० ३ । ३८ ॥ ७ । ५ ॥
- „ पङ्क्तिर्विष्णोः पत्नी । गो० ३० । २ । ९ ॥
- „ शृण्वन्ति श्रोणाममृतस्य गोपां ।.....महीं देवीं विष्णुपत्नीमजू-
र्याम् । तै० ३ । १ । २ । ५-६ ॥
- „ विष्णोः श्रोणा (=श्रवणनक्षत्रमिति सायणः) । तै० १ । ५ ।
१ । ४ ॥
- „ यच्छ्रोत्रं स विष्णुः । गो० ३० । ४ । ११ ॥
- „ वैष्णवाः पुरुषाः । श० ५ । २ । ५ । २ ॥
- „ वैष्णवो हि यूपः । श० ३ । ६ । ४ । १ ॥
- „ वैष्णवस्त्रिकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥
- „ अथ यद्वैष्णवः । त्रिकपालो वा पुरोडाशो भवति चरुर्वा ।
श० ५ । २ । ५ । ४ ॥
- „ तान् (पशून्) विष्णुरेकविंशतिशेन स्तोमेनाप्नोत् । तै० २ ।
७ । १४ । ० ॥
- „ (उपसहेवतारूपाया इषोः) विष्णुस्तेजनम् । ऐ० १ । २५ ॥
- „ तथैवैतद्यजमानो विष्णुर्भूत्वंमालोकान् क्रमते । स यः स
विष्णुर्यज्ञः सः । श० ६ । ७ । २ । १०—११ ॥
- „ तद्यद्येनेन (यज्ञेन विष्णुना) इमांश्च सर्वांश्च (पृथिवीं) सम-
विन्दन्त तस्माद्द्वेदिर्नाम । श० १ । २ । ५ । ७ ॥
- „ यन्वेवात्र विष्णुमन्वविन्दंस्तस्माद्द्वेदिर्नाम । श० १ । २ । ५ । १० ॥
- „ वैष्णवश्च हि हविर्धानम् । श० ३ । ५ । ३ । १५ ॥
- „ या सा द्वितीया (ओङ्कारस्य) मात्रा विष्णुदेवत्या कृष्णा
वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्वैष्णवं पदम् । गो० ५०
१ । २५ ॥

[वृकः

(५२२)

विष्णुक्रमाः एतद्वै देवा विष्णुभूत्वेमांल्लोकानक्रमन्त यद्विष्णुभूत्वा-
क्रमन्त तस्माद् विष्णुक्रमाः । श० ६ । ७ । २ । १० ॥

„ तद्वाऽ अहोरात्रेऽप्येव विष्णुक्रमा भवन्ति । श० ६ ।
७ । ४ । १० ॥

„ अहर्वै विष्णुक्रमाः । श० ६ । ७ । ४ । १२ ॥

विष्णुर्धाइन्द्रः (यजु० १५ । ५) असौ वै (द्यु-) लोको विष्णुर्धाइन्द्रः ।
श० ८ । ५ । २ । ६ ॥

विहव्यम् (सूक्तम्) जमदग्नेश्च वा ऋषीणाञ्च सोमौ स० सुतावास्तां
तत एतज्जमदग्निर्विहव्यमपश्यत्तमिन्द्र उपावर्तत यद्विहव्य-
ॐ हाता शंसतीन्द्रमेवैषां इह्वेके । तां ६ । ४ । १४ ॥

वीर्यम् (साम) च्यवनो वै दाधीचोऽश्विनोः प्रिय आश्वीत्सोऽजीर्य-
समेतेन साम्नाप्सु व्यैङ्कयतान्तं पुनर्युवानमकुरुतां तद्वाव तौ
(अश्विनो) तर्ह्यकामयेतां कामसनि साम वीङ्कं काममेवैतेना-
वरुन्धे । तां १४ । ६ । १० ॥

वीणा श्रियै वाऽ एतद्रूपं यद्वीणा । श० ३ । १ । ५ । १ ॥

„ श्रिया वा एतद्रूपम् । यद्वीणा । तै० ३ । ९ । १४ । १ ॥

„ यदा वै पुरुषः श्रियं गच्छति वीणास्मै वाद्यते । श० १३ । १५ । १ ॥

वीतिः (यजु० ११ । ४६) अग्नऽ आयाहि वीतयऽ इत्यथितवऽ इत्ये-
तत् । श० ६ । ४ । ४ । ९ ॥

वीरः (५ जु० ४ । २३) पुत्रो वै वीरः । श० ३ । ३ । १ । १२ ॥

„ (वीरता-यजु० ७ । १२) अत्ता हि वीरः । श० ४ । २ । १ । ९ ॥

„ प्राणा वै दश वीराः (यजु० १९ । ४८) । श० १२ । ५ । १ । २२ ॥

वीर्यम् वीर्यं विष्णुः । तै० १ । ७ । २ । २ ॥

„ वीर्यं वा इन्द्रः । तां ९ । ७ । ५, ८ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥

„ वीर्यं वा अग्निः । तै० १ । ७ । १ । २ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥

„ वीर्यं ॐ षोडशी । श० १२ । २ । २ । ७ ॥

„ इन्द्रियं वीर्यं ॐ षोडशी । तां २१ । ५ । ६ ॥

„ इन्द्रियं वै वीर्यं वाजिनम् (ऋ० १० । ७२ । १०) । ऐ० १ । ३ ॥

„ वीर्यं त्रिष्टुप् । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥

„ तिस्रन्वै वीर्यवत्तरः । श० ६ । ६ । २ । १ ॥

वृकः अथ यत्कर्णाभ्यामग्रवत्ततो वृकः समभवत् । श० ३ । १ । ४ । १० ॥

वृकः मूत्रादेवास्यौजो ऽस्रवत् । स वृको ऽभवदारण्याणां (—नां) पशू-
नां जूतिः । श० १२ । ७ । १ । ८ ॥

वृक्षस्याग्रम् श्रीर्वै वृक्षस्याग्रम् । नै० ३ । ९ । ७ । ४ ॥

वृत्रः वृत्रो हं वाऽ इदं सर्वं वृत्वा शिश्ये । यदिदमन्तरेण यावा-
पृथिवी स यदिदं सर्वं वृत्वा शिश्ये तस्माद् वृत्रो नाम । श०
१ । १ । ३ । ४ ॥

„ स यद्वर्त्तमानः समभवत् । तस्माद् वृत्रः । श० १ । ६ । ३ । ९ ॥

„ तथैवैतद्यजमानः पौर्णमासेनैव वृत्रं पाप्मानं हत्वापहतपा-
प्मैतत्कर्मारभते । श० ६ । २ । २ । १९ ॥

„ पाप्मा वै वृत्रः । श० ११ । १ । ५ । ७ ॥ १३ । ४ । १ । १३ ॥

„ (यजु० ११ । ३३) वृत्रहणं पुरंदरमिति पाप्मा वै वृत्रः पाप्महर्नं
पुरन्दरमित्येतत् । श० ६ । ४ । २ । ३ ॥

„ इन्द्रो वै वृत्रहा । कौ० ४ । ३ ॥

„ वृत्रशङ्कुं दक्षिणतो ऽघस्यैवानत्ययाय । श० १३ । ८ । ४ । १ ॥

„ (यजु० १० । ८) त्वयायं वृत्रं बधेदिति त्वयायं द्विषन्तं भ्रातृव्यं
बधेदित्येवैतदाह । श० ५ । ३ । ५ । २८ ॥

„ यदिमाः प्रजा अशनमिच्छन्ते ऽस्माऽ एवैतद् वृत्रायोदराय बलिं
हरन्ति । श० १ । ६ । ३ । १७ ॥

„ (इन्द्रः) तं (वृत्रं) द्वेषान्विभिनत्तस्य यत्सौम्यं न्यक्तमास तं
चन्द्रमसं चकाराथ यदस्यासुर्य्यमास तेनेमाः प्रजा उदरेणाधि-
ष्यत् । श० १ । ६ । ३ । १७ ॥

„ वृत्रो वै सोम आसीत् । श० ३ । ४ । ३ । १३ ॥ ३ । ९ । ४ । २ ॥
४ । २ । ५ । १५ ॥

„ अथैष एव वृत्रो यच्चन्द्रमाः । श० १ । ६ । ४ । १३, १८ ॥

„ वार्ष्णिं वै पौर्णमासं (हविः) । इन्द्रो ह्येतेन वृत्रमहन्नथैतदेव
वृत्रहत्यं यदामावास्यं (हविः) वृत्रं ह्यस्माऽ एतज्जन्नुषऽ
आप्यायनमकुर्वन् । श० १ । ६ । ४ । १२ ॥

„ महानास्त्रीभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहन् । कौ० २३ । २ ॥

„ (इन्द्रः) एताभिः (अग्निः) ह्येनं (वृत्रं) अहन् । श० १ । १ । ३ । ८ ॥

वृषः वृषतुरः (यजु० ६। ३४) इति वृषश्च होताः (आपः) अघ्नन् ।

श० ३। ९। ४। १६ ॥

११ आपो ह वै वृषं जघ्नुस्तेनैवैतद्वीर्येणापः स्यन्दन्ते । श०
३। ६। ४। १४ ॥

१२ महाहविषा ह वै देवा वृषं जघ्नुः । श० २। ५। ४। १ ॥

१३ एतैर्वै (साकमेधैः) देवाः वृषमघ्नन्तैर्वै व्यजयन्त येयमेषां
विजितिस्ताम् । श० २। ५। ३। १ ॥

१४ (वृषस्य वधसमये) महान् घोष आसीत् । तां० १३। ४। १ ॥

१५ अथ (वृषः) यदपात्समभवत्तस्मादाहिस्तं दनुश्च दनायुश्च मा-
तेव च पितेव च परिजगृह्णतुस्तस्माद्दानव इत्याहुः । श० १।
६। ३। ९ ॥

१६ तस्य (वृषस्य) एतच्छरीरं यद्भिरयो यदश्मानः । श० ३। ४।
३। १३ ॥ ३। ९। ४। २ ॥ ४। २। ५। १५ ॥

१७ वृषस्य ह्येष कर्नानकः (यदाञ्जनम्) । श० ३। १। ३। १५ ॥

१८ मरुतो ह वै सांतपना मध्यन्दिने वृषं संतेपुः स संतप्तो ऽन-
न्नेव प्राणन्परिदीर्णः शिश्ये । श० २। ५। ३। ३ ॥

१९ मरुतो ह वै क्रीडिनो वृषं हनिष्यन्तमिन्द्रमागतं तमभितः
परिचिक्रीडुर्महयन्तः । श० २। ५। ३। २० ॥

२० स यो ह वैमेतं वृषमन्नादं वेदाश्नादो ह वै भवति । श० १। ६।
३। १७ ॥

वृषभः या रोहिणी (गौः) सा वार्ष्णेया यामिदं राजा संग्रामं जित्वो-
दाकुरुते । श० ३। ३। १। १४ ॥

२१ वार्ष्णेयं वै धनुः । श० ५। ३। ५। २७ ॥

वृषतुरः (यजु० ६। ३४) वृषतुर इति वृषश्च होता (आपः) अघ्नन् ।
श० ३। ६। ४। १६ ॥

वृषः वृषो ऽग्निः समिध्यते (ऋ० ३। २७। १४) । श० १। ४। १। २९ ॥

वृषभः (ऋ० २। १२। १२) वृषभ इति । एष (आदित्यः) ह्येषा ऽऽसा-
म्प्रजानामृषभः । जै० ७० १। २९। ८ ॥

२२ स एष (आदित्यः) सप्तरश्मिवृषभस्तुविष्मान् (ऋ० २। १२।
१२) । जै० ७० १। २८। २ ॥

वृषा (यजु० १८ । २२) एष वै वृषा हरिर्य एष (सूर्यः) तपति । श०
१४ । ३ । १ । २६ ॥

॥ इन्द्रो वै वृषा । तां । ९ । ४ । ३ ॥

॥ इन्द्रो वृषा । श० १ । ४ । १ । ३३ ॥

॥ समग्निरिध्यते वृषा (ऋ० ३ २७ । १३) । श० १ । ४ । १ २९ ॥

॥ योषा वै वेदिवृषाग्निः । श० १ । २ । ५ । १५ ॥

॥ वृषा हि मनः । श० १ । ४ । ४ । ३ ॥

॥ योषा वै स्रुग्वृषा स्रुवः । श० १ । ३ । १ । ९ ॥

॥ वृषा हि स्रुवः । श० १ । ४ । ४ । ३ ॥

॥ वृषा वै राजन्यः । तां० ६ । १० । ९ ॥

॥ (हे ऽथ त्वं) वृषासि । तां० १ । ७ । १ ॥

॥ आण्डाभ्यां हि वृषा पिन्वते । श० १४ । ३ । १ । २२ ॥

॥ पश्चाद्दे परीत्य वृषा योषामधि द्रवति तस्या रेतः सिञ्चति ।
श० २ । ४ । ४ । २३ ॥

॥ वृषा हिङ्कारः । गो० पू० ३ । २३ ॥

वृषाकपिः तद्यत्कम्पयमानो रेतो वर्षति तस्माद्वृषाकपिः, तद्वृषाकपे-

वृषाकपित्वम् । गो० उ० ६ । १२ ॥

॥ आदिस्थो वै वृषाकपिः । गो० उ० ६ । १२ ॥

॥ आत्मा वै वृषाकपिः ऐ० ६ । २९ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

॥ (होता) यदि वृषाकपिम् (वृषाकपिदृष्टम् ऋ० १० । ८६ ।

१—१३ एतत्सूक्तमन्तरियात्=लोपयेत्तदानीम्) आत्मानम्

(=“ मध्यदेहम् ” इति सायणः) अस्य (यजमानस्य)

अन्तरियात् । ऐ० ५ । १५ ॥

वृष्टिः (प्रजापतिः) तं (पाप्मानं) अवृश्चत् । यदवृश्चत् । तस्माद्वृष्टिः ।

तै० ३ । १० । ६ । १ ॥

॥ (सविता) रश्मिभिर्वर्षे (समदधात्) । गो० पू० १ । ३६ ॥

॥ वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव विद्युद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति ।

ऐ० २ । ४१ ॥

॥ वृष्टिर्वै विराट् तस्या पते घोरे तन्वौ विद्युच्च हादुनिश्च ।

श० १२ । ८ । ३ । ११ ॥

वेतसः

(५२६)

वृष्टिः तौ (अनङ्गवाहौ) यदि कृष्णौ स्यातामन्यतरो वा कृष्णस्तत्र
विद्याद्वर्षिष्यत्यैषमः पर्जन्यो वृष्टिमान्भविष्यतीत्येतदु विज्ञानम् ।

श० ३ । ३ । ४ । ११ ॥

„ अन्नं वृष्टिः । गो० पू० ४ । ४ । ५ ॥

„ वृष्टिर्वै विश्वधायाः । तै० ३ । २ । ३ । २ ॥

„ अयं वै वर्षस्येष्टे यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १ । ८ । ३ । १२ ॥

„ तस्माद्यां दिशं वायुरेति तां दिशं वृष्टिरन्वेति । श० ८ । २ । ३ । ५ ॥

„ मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् (यजु० २ । १६) । श० १ । ८ ।
३ । १२ ॥

„ इतःप्रदाना वै वृष्टिरितो ह्यग्निर्वृष्टिं वनुते स एतैः (घृत-)
स्तोकैरेतान्दस्ताकान् वनुते तऽपते स्तांका वर्षन्ति । श० ३ ।
८ । २ । २२ ॥

„ अर्वाचीनाग्रा (' अवाचीनाग्रा ' इति भास्करसम्मतः पाठः) हि
वृष्टिः । तै० ३ । ३ । १ । ३ ॥ " वर्षाः " इत्येतमपि शब्दं पश्यत ।

„ वृष्टिः सम्मार्जनानि । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥

„ यदा वै द्यावापृथिवी सञ्जानाथेऽथ वर्षति । श० १ । ८ । ३ । १२ ॥

„ वृष्टिर्वै वृष्ट्वा चन्द्रमसमनुप्रविशति । ऐ० ८ । २८ ॥

वृष्टिवनिः (यजु० ३८ । ६) सूर्यस्य ह वाऽएको रश्मिर्वृष्टिवनिर्नाम
येनेमाः सर्वाः प्रजा विभर्ति । श० १४ । २ । १ । २१ ॥

वृष्ण्यम् (यजु० १२ । ११२) रेतो वै वृष्ण्यम् । श० ७ । ३ । १ । ४६ ॥

वेदकारः वषट्कारो ह्येष परोऽक्षं यद्वेदकारः । श० ९ । ३ । ३ । १४ ॥

वेणुः सैषा योनिरग्नेर्वेद्रेणुः । श० ६ । ३ । १ । ३१ ॥

„ अग्निर्देवेभ्य उदक्रामत्स वेणुं प्राविशत्तस्मात्स सुषिरः । श०
६ । ३ । १ । ३१ ॥

वेतसः ताः (आपः) प्रजापतिमब्रुवन् । यद्वै नः कमभूदवाक्कदगपिदिति
सो ऽब्रवीदेष व एतस्य वनस्पतिर्वैत्त्विति वेत्तु संवेत्तु सो ऽह
वै तं वेतस इत्यावक्षते परोऽक्षम् । श० ९ । १ । २ । २२ ॥

„ अप्सुयोनिर्वै वेतसः । श० १२ । ८ । ३ । १५ ॥

„ अप्सुजा वेतसः । श० १३ । २ । २ । १९ ॥

„ अप्सुजो वेतसः । तै० ३ । ८ । ४ । ३ ॥ ३ । ८ । १९ ।
२ ॥ ३ । ८ । २० । ४ ॥

वेतसः तस्माद्धेतसो वनस्पतीनामनुपजीवनीयसमो यातयामा हि सः ।

श० ९ । १ । २ । २४ ॥

वेदः (= दर्भमुष्टिः) प्राजापत्यो वेदः । तै० ३ । ३ । २ । १ ॥

.. प्राजापत्यो वै वेदः । तै० ३ । ३ । ७ । २ ॥ ३ । ३ । ८ । १ ॥

.. प्राजापतेर्वा एतानि इमभ्रूणि यद्वेदः । तै० ३ । ३ । ९ । ११ ।

.. योषा वै वेदिर्वृषा वेदः । श० १ । ९ । २ । २९, २४ ॥

.. वृषा वै वेदो योषा पत्नी । कौ० ३ । ९ ॥

वेदाः स इमानि त्रीणि ज्योतींष्यमितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो

वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ।

श० ११ । ५ । ८ । ३ ॥

.. चत्वारो वा इमे वेदाः ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति ।

गो० पू० २ । १६ ॥

.. चत्वारो ऽस्यै (स्वाहायै) वेदाः शरीरं षडङ्गान्यङ्गानि ।

ष० ४ । ७ ॥

.. ते सर्वे त्रयो वेदाः । दश च महस्त्राण्यष्टौ च शतान्यशीतीनां

(१०८०० × ८० = ८६४००० अक्षराणि) अभवन् । श० १० ।

४ । २ । २५ ॥

.. एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सत्राह्यणाः

सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्व्याख्यानाः सपुराणाः सस्वराः

ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकौ-

वाक्याः । गो० पू० २ । १० ॥

.. वेदो ब्रह्म । जै० उ० ४ । २५ । ३ ॥

.. वेदा एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥

.. तदाहुः किं तत्सहस्रम् (ऋ० ६ । ६ । ९ । ८) इतीमे लोका इमे वेदा अथी वागिति ब्रूयात् । ऐ० ६ । १५ ॥

.. (इन्द्रो भरद्वाजमुवाच-) अनन्ता वै वेदाः । तै० ३ । १० ।

११ । ३ ॥

.. अथी सर्वेषां वा एष वेदानां रसो यत् साम । श० १२ । ८ ।

३ । ३३ ॥ गो० उ० ५ । ७ ॥

- वेदाः सो ऽपहतपाप्मानन्तां श्रियमश्नुते य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेव-
मेतां वेदानां मातरं सावित्रीं सम्पदमुपनिषदमुपास्ते । गो० पू०
१ । ३९ ॥
- .. एतानि ह वै वेदानामन्तःश्लेषणानि यदेता (भूर्भुवःस्वरिति)
व्याहृतयः । ऐ० ५ । ३३ ॥
- .. नाऽवेदाविन्मनुते तं बृहन्तम् । तै० ३ । १२ । ९ । ७ ॥
- .. ("त्रयो विद्या" शब्दमपि पश्यत)
- वेदिः तं (यज्ञं) वेद्यामन्वविन्दन् यद्वेद्यामन्वविन्दंस्तद्वेदेवेदित्वम् ।
ऐ० ३ । ९ ॥
- .. यन्वेवात्र विष्णुमन्वविन्दंस्तस्माद्वेदिर्नाम । श० १ । २ । ५ । १० ॥
- .. तद्यदेनेन (यज्ञेन विष्णुना) इमांश्च सर्वांश्च (पृथिवीं) सम-
विन्दन्त तस्माद्वेदिर्नाम । श० १ । २ । ५ । ७ ॥
- .. वेदिर्देवेभ्यो ऽनिलायत । तां वेदेनान्वविन्दन् । तै० ३ । ३ ।
९ । १० ॥
- .. पृथिवी वेदिः । ऐ० ५ । २८ ॥ तै० ३ । ३ । ६ । २ । ८ ॥
- .. इयं (पृथिवी) वै वेदिः । श० ७ । ३ । १ । १५ ॥ ७ । ५ ।
२ । ३१ ॥
- .. एतावती वै पृथिवी । यावती वेदिः । तै० ३ । २ । ९ । १२ ॥
- .. यावती वै वेदिस्तावती पृथिवी । श० ३ । ७ । २ । १ ॥
- .. तस्मादाहुर्यावती वेदिस्तावती पृथिवीति । श० १ । २ । ५ । ७ ॥
- .. यावती वै वेदिस्तावतीयमपृथिवी । जै० उ० १ । ५ । ५ ॥
- .. तस्याः (पृथिव्याः) एतत्परिमितं रूपं यदन्तर्वेद्येषु भूमा
ऽपरिमितो यो बहिर्वेदि । ऐ० ८ । ५ ॥
- .. वेदिर्वै परो ऽन्तः पृथिव्याः । तै ३ । ६ । ५ । ५ ॥
- .. उर्वरा वेदिर्भवत्येतत् (स्थानं) वा अस्याः (पृथिव्याः)
वीर्यवत्तमम् । तां० १६ । १३ । ६ ॥
- .. वेदिर्वै देवलोकः । श० ८ । ६ । ३ । ६ ॥
- .. वेदिर्वै सलिलम् । श० ३ । ६ । २ । ५ ॥
- .. वेदिरेव विश्वाची (अप्सराः । यजु० १५ । १८) । श० ८ । ६ ।
१ । १६ ॥

वेदिः स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीः (यजु० १७।५९) इति स्रुच-
श्चैतद्वेदीश्चाह (विश्वाची=वेदिः । घृताची=स्रुक्) । श० ९ ।

२।३।१७ ॥

„ योषा वै वेदिः । श० १।३।३।८ ॥

„ योषा वै वेदिर्वृषा वेदः (दर्भमुष्टिः) । श० १।६।२।२१, २४ ॥

„ योषा वै वेदिर्वृषाग्निः । श० १।२।५।१५ ॥

„ सा वै (वेदिः) पश्चाद्द्वरीयसी स्यात् । मध्ये स० ह्यारिता पुनः
पुरस्तादुर्वी । श० १।२।५।१६ ॥

„ व्याममात्री (वेदिः) पश्चात्स्यादित्याहुः । एतावान्वै पुरुषः
पुरुषसम्मिता हि त्र्यरत्निः प्रार्ची । श० १।२।५।१४ ॥

„ तस्मात्त्र्यंगुला वेदिः स्यात् । श० १।२।५।९ ॥

„ (वेदिः) चतुरंगुलं खेया । तै० ३।२।९।११ ॥

„ सा वै (वेदिः) प्राक्प्रवणा स्यात् । श० १।२।५।१७ ॥

„ अथो (वेदिः) उदक्प्रवणा । श० १।२।५।१७ ॥

वेधाः (ऋ० ८।४३।११) इन्द्रो वै वेधाः । णे० ६।१० ॥ गो० उ०
२।२० ॥

वेनः (ऋ० १०।१२३।१) अयं वै वेनो ऽस्माद्वा ऊर्ध्वा अन्ये प्राणा
वेनन्त्यवाञ्चो ऽन्ये तस्माद्देनः (=नाभिः, प्राणः ?) । ऐ० १।२० ॥

„ (यजु० १३।३) असावादित्यो वेनो यद्वै प्रजिजनिषमाणो
ऽवेनत्तस्माद्देनः । श० ७।४।१।१४ ॥

„ (ऋ० १०।१२३।१) इन्द्र उ वै वेनः । कौ० ८।५ ॥

„ आत्मा वै वेनः । कौ० ८।५ ॥

वेषः वेषाय वामिति वेवेष्टीव हि यज्ञम् । श० १।१।२।१ ॥

वैखानसम् (साम) (इन्द्रः) तान् (मृतान् वैखानसानृषीन्) एतेन
(वैखानसाख्येन) साम्ना समैरयत् (=पुनः प्राणैस्तान्
समयोजयदिति सायणः) तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि
साम वैखानसं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १४।४।७ ॥

वैखानसाः (ऋषयः) वैखानसा वा ऋषय इन्द्रस्य प्रिया आसन्तान्
रहस्युर्देवमलिम्लुङ् मुनिमरणे ऽमारयत् । तां० १४।४।७ ॥

वैतहव्यम् (साम) वीतहव्यः श्रायसो ज्योन्निरुद्ध एतत्सामापश्यत्सो
ऽवगच्छत्प्रत्यतिष्ठदवगच्छति प्रतितिष्ठत्येतेन तुष्टुवानः ।
तां० ९।१।९ ॥

“पान्तमावो अन्धसः” (ऋ० ८।९२।१) इति वैतहव्यम् ।
तां० ९।२।१ ॥

वैदन्वितानि (सामानि) विदन्वान्वै भार्गव इन्द्रस्य प्रत्यहृष्टस्तु
शुगार्थत् स तपो ऽतप्यत स एतानि वैदन्वितान्यपश्यत्सैः
शुचमपाहतापशुचं हते वैदन्वितैस्तुष्टुवानः । तां०
१३।११।१० ॥

वैयश्वम् (साम) व्यश्वो वा एतेनाङ्गिरसो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत्
स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्या एतत्पृष्ठानामन्ततः क्रियते ।
तां० १४।१०।९ ॥

वैराजम् (साम) (पित्रा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा [ऋ० ७।२२।१]
इत्यस्यामृच्युत्पन्नं वैराजं साम—इति ऐ० ४।१३ भाष्ये सायणः)
स वैराजमसृजत तदग्नेर्घोषो ऽन्वसृज्यत । तां० ७।८।११ ॥

“ यद् बृहत्तद्वैराजम् । ऐ० ४।१३ ॥

“ प्रजापतिवैराजम् । तां० १६।५।१७ ॥

वैराज्यम् अथैनं (इन्द्रं) उदीच्यां दिशि विश्वे देवाः..... अभ्याषिञ्चन्
.....वैराज्याय । ऐ० ८।१४ ॥

“ यशसो वा एष वनस्पतिरजायत यत्प्लक्षः स्वाराज्यं च ह
वा एतद्वैराज्यं च वनस्पतीनाम् । ऐ० ७।३२ ॥

“ तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि ये केच परेण हिमवन्तं जनपदा
उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते
विराडित्येनानभिषिकानाचक्षते । ऐ० ८।१४ ॥

वैरूपम् (साम) देवा वै तृतीयेनाह्वा स्वर्गं लोकमायंस्तानसुरा
रक्षांस्यन्ववारयन्त ते विरूपा भवत विरूपा भवतेति भवंत
आयंस्ते यद्विरूपा भवत विरूपा भवतेति भवंत आयंस्तद्वैरूपं
सामाऽभवत्तद्वैरूपस्य वैरूपत्वम् । ऐ० ५।१ ॥

“ (यद् घाव इन्द्र ते शतम् [ऋ० ८।७०।५] इत्यस्यामृच्युत्पन्नं
वैरूपं साम—इति ऐ० ४।१३ भाष्ये सायणः)

- वैरूपम् यद्वै रथन्तरं तद्वैरूपम् । ऐ० ४ । १३ ॥
- ॥ रथन्तरमेतत्परोक्षं यद्वैरूपम् । तां० १२ । २ । ५, ९ ॥
- ॥ बृहदेतत्परोक्षं यद्वैरूपम् । तां० १२ । ८ । ४ ॥
- ॥ वाग्वैरूपम् । तां० १६ । ५ । १६ ॥
- ॥ पशवो वै वैरूपम् । तां० १४ । ९ । ८ ॥
- ॥ दिशां वा एतत्साम यद्वैरूपम् । तां० १२ । ४ । ७ ॥
- ॥ वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतं वैरूपेण विशौजसा ।
तै० २ । ६ । १९ । १-२ ॥
- ॥ आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा सप्तदशेन स्तोमेन वैरूपेण
सान्नाऽऽरोहन्तु तानन्वारोहामि स्वाराज्याय । ऐ० ८ । १२ ॥
(ऐ० ८ । १७ अपि पश्यत)

- वैश्यः वैश्यो वै पुष्यतीव । कौ० २५ । १५ ॥
- ॥ वैश्यो वै ग्रामणीः । श० ५ । ३ । १ । ६ ॥
- ॥ जगतीछन्दा वै वैश्यः । तै० १ । १ । ९ । ७ ॥
- ॥ जागतो वै वैश्यः । ऐ० १ । २८ ॥
- ॥ वैश्वदेवो हि वैश्यः । तै० २ । ७ । २ । २ ॥
- ॥ विडु विश्वे देवाः । श० १० । ४ । १ । ९ ॥
- ॥ शरद्वै वैश्यस्यर्तुः । तै० १ । १ । २ । ७ ॥
- ॥ तस्माद् बहुपशुर्वैश्वदेवो हि जागतो (वैश्यः) वर्षा ह्यस्य
(वैश्यस्य) ऋतुस्तस्माद् ब्राह्मणस्य च राजन्यस्य चाद्यो ऽधरो
हि सृष्टः । तां० ६ । १ । १० ॥
- ॥ तस्माद्वैश्यो वर्षास्वादधीत विद्धि वर्षाः । श० २ । १ । ३ । ५ ॥
- ॥ तस्माद्वैशीपुत्रं नाभिषिञ्चति । श० १३ । २ । ९ । ८ ॥
- ॥ अथ यदि दधि, वैश्यानां स भक्षो वैश्यांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसिं
वैश्यकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यते ऽन्यस्य बलिकृदन्यस्याऽऽद्यो
यथाकामज्येयो यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति वैश्यकल्पो ऽस्य
प्रजायामाजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा वैश्य-
तामभ्युपैतोः स वैश्यतया जिज्युषितः । ऐ० ७ । २६ ॥
- ॥ तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयाद्
ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते । श० ३ । २ । १ । ४० ॥
- ॥ वैश्यं च शूद्रं चानु रासभः । श० ६ । ४ । ४ ॥

[वैश्वानरः

(५३२)

वैश्यः मारुतो हि वैश्यः । तै० २ । ७ । २ । २ ॥

„ एतद्वै वैश्यस्य समृद्धं (= समृद्धिरितिसायणः) यत् पशवः ।
तां० १८ । ४ । ६ ॥

„ विद्वै यवः । श० १३ । २ । ९ । ८ ॥

„ ऋग्भ्यो जातं वैश्यं वर्णमाहुः । तै० ३ । १२ । ९ । २ ॥

„ विद् तृतीयसवनम् । कौ० १६ । ४ ॥

„ रायोवाजीयं (साम) वैश्याय (कुर्यात्) । तां० १३ । ४ ।
१८ ॥

वैश्वदेवम् (पर्व) यद्विश्वे देवाः समयजन्त तद्वैश्वदेवस्य वैश्वदेव-
त्वम् । तै० १ । ४ । १० । ५ ॥

„ प्रजापतिर्वै वैश्वदेवम् । कौ० ५ । १ ॥

„ (शस्त्रम्) पांचजन्यं वा एतदुक्तं यद्वैश्वदेवम् । ऐ० ३३१ ॥

„ पवमानोक्तं वा एतद्यद्वैश्वदेवम् । कौ० १६ । ३ ॥

„ पशवो वै वैश्वदेवम् । कौ० १६ । ३ ॥

वैश्वमनसम् (साम) विश्वमनसं वा ऋषिमध्यायमुदब्रजितं रक्षो
ऽगृह्णात् । तां० १५ । ५ । २० ॥

„ अपपाप्मानं हंते वैश्वमनसेन तुष्टुवानः । तां० १५ ।
३ । २० ॥

वैश्वानरः स यः स वैश्वानरः । इमे स लोका इत्येव पृथिवी विश्व-
मग्निर्नरो ऽन्तरिक्षमेव विश्वं वायुर्नरो द्यौरिव विश्वमादि-
त्यो नरः । श० ६ । ३ । १ । ३ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै वैश्वानरः । श० १३ । ३ । ८ । ३ ॥

„ एष वै प्रतिष्ठा वैश्वानरः (यत्पृथिवी) । श० १० । ६ । १ । ४ ॥

पादौ त्वाऽपतौ वैश्वानरस्य (यत्पृथिवी) । श० १० । ६ ।
१ । ४ ॥

„ एष वै रयिर्वैश्वानरः (यदापः) । श० १० । ६ । १ । ५ ॥

„ वस्तिस्त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यदापः) । श० १० । ६ ।
१ । ५ ॥

„ एष वै बहुलो वैश्वानरः (यदाकाशः) । श० १० । ६ ।

- वैश्वानरः आत्मा त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यदाकाशः) । श० १० ।
६ । १ । ६ ॥
- „ एष वै पृथग्बर्मा वैश्वानरः (यद्वायुः) । श० १० । ६ । १ । ७ ॥
- „ प्राणस्त्वाऽएष वैश्वानरस्य यद्वायुः । श० १० । ६ । १ । ७ ॥
- „ असौ वै वैश्वानरो यो ऽसौ (आदित्यः) तपति । कौ० ४ ।
३ ॥ १९ । २ ॥
- „ स यः स वैश्वानरः । असौ स आदित्यः । श० ९ । ३ ।
१ । २५ ॥
- „ (=सूर्यः) वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु । तै० १ । ४ ।
८ । ३ ॥
- „ एष वै सुततेजा वैश्वानरः (यदादित्यः) । श० १० । ६ । १ । ८ ॥
- „ चक्षुस्त्वाऽएतद्वैश्वानरस्य (यदादित्यः) । श० १० । ६ ।
१ । ८ ॥
- „ एष वाऽ अतिष्ठा वैश्वानरः (यद् द्यौः) । श० १० । ६ । १ । ९ ॥
- „ मूर्धा त्वाऽ एष वैश्वानरस्य (यद् द्यौः) । श० १० । ६ । १ । ९ ॥
- „ स एषो ऽग्निर्वैश्वानरो यत्पुरुषः । श० १० । ६ । १ । ११ ॥
- „ अयमाग्निर्वैश्वानरो यो ऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते
यदिदमद्यते तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिघाय शृणो-
ति स यदोत्कृमिष्यन्भवति नैतं घोषं शृणोति । श० १४ ।
८ । १० । १ ॥
- „ वैश्वानर इति वा अग्नेः प्रियं धामः । तां० १४ । २ । ३ ॥
- „ वैश्वानरो वै सर्वे ऽग्नयः । श० ६ । १ । १ । ३५ ॥ ६ । ६ ।
१ । ५ ॥
- „ संवत्सरो ऽग्निर्वैश्वानरः । ऐ० ३ । ४१ ॥
- „ संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः । तै० १ । ७ । २ । ५ ॥ श० ६ ।
६ । १ । २० ॥
- „ संवत्सरो वैश्वानरः । श० ५ । २ । ५ । १५ ॥ ६ । २ । १ ।
३६ ॥ ६ । ६ । १ । ५ ॥ ७ । ३ । १ । ३५ ॥ ९ । ३ । १ । १ ॥
- „ संवत्सरो वै वैश्वानरः । श० ४ । २ । ४ । ४ ॥ ५ । २ ॥
५ । १४ ॥

[व्याघ्रः

(५३४)

- वैश्वानरः संवत्सरो वै पिता वैश्वानरः प्रजापतिः । श० १।५।१।१६ ॥
- ” वैश्वानरं द्वादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५।२।५।२३ ॥
- ” वैश्वानरं द्वादशकपालं (पुरोडाशं) निर्वपति । तै० १।७।२।५ ॥
- ” वैश्वानरो द्वादशकपालः (पुरोडाशः) । श० ६।६।१।५ ॥
- ” विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गि-
रस्वत् (यजु० ११।५८) । श० ६।५।२।६ ॥
- ” विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गि-
स्वत् (यजु० ११।६०) । श० ६।५।३।१० ॥
- ” शिर एव वैश्वानरः । श० ६।६।१।९ ॥
- ” शिरो वै वैश्वानरः । श० ९।३।१।७ ॥
- ” क्षत्रं वै वैश्वानरः । श० ६।६।१।७ ॥ ९।३।१।१३ ॥
- ” वैश्वानरो वै देवतया रथः । तै० २।२।५।४ ॥
- ” वज्रो वै वैश्वानरीयम् (सूक्तम्) । ऐ० ३।१४ ॥
- वैष्टम्भम् (साम) अहर्वा एतत् (तृतीयम्) अवलीयत तद्देवा वैष्टम्भै
व्यष्टम्भुवथ्स्तद्वैष्टम्भस्य वैष्टम्भत्वम् । तां १२।३।१० ॥
- बौषद् असौ (आदित्यः) वाव वावृतवः षट् । ऐ० ३।६ ॥ गो० उ०
३।२ ॥
- ” बौषडिति बौगिति वाऽ एष (अग्निः) षडितीदथ् षट्चितिक-
मन्नम् । श० १०।४।१।३ ॥
- व्यचक्षन्दः (यजु० १५।४) असौ वाऽ आदित्यो व्यचक्षन्दः । श०
८।५।२।३ ॥
- व्यचस्वत् (यजु० ११।३०) व्यचस्वती संवसाथामित्यवकाशवती सं-
वसाथामित्येतत् । श० ६।४।१।१० ॥
- व्यचिष्टः (यजु० ११।२३) व्यचिष्टमन्नैरभसं दृशानमित्यवकाशवन्त-
मन्नैरन्नादं दीप्यमानमित्येतत् । श० ६।३।३।१९ ॥
- व्यच्यमानः (यजु० १३।४९) (=उपजीव्यमानः) व्यच्यमानथ् सरिरस्य-
मध्य ऽहतीमे वै लोकाः सरिरमुपजीव्यमानमेषु लोकेष्वि-
त्येतत् । श० ७।५।२।३४ ॥
- व्यथा (आत्तिः) अनात्यै त्वेत्येवैतदाह यदाहाव्यथायै त्वेति । श० ५।
४।३।७ ॥
- व्याघ्रः क्षत्रं वा एतदारण्यानां पशूनां यद्व्याघ्रः । ऐ० ८।६ ॥

व्याघ्रः ऊवध्यादेवास्य मन्थुरस्त्रवत्स व्याघ्रो ऽभवदारण्यानां पशुनां
राजा । श० १२ । ७ । १ । ८ ॥

व्याधिः ऋतुसंधिषु हि व्याधिर्जायते । कौ० ५ । १ ॥

„ ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते । गो० उ० १ । १९ ॥

व्यानः व्यानो ह्युपांशुसवनो ऽन्तरिक्षं ह्येव व्यनन्नभिव्यनिति ।
श० ४ । १ । २ । २७ ॥

„ (यज्ञस्य) व्यान उपांशुसवनः । श० ४ । १ । १ । १ ॥

„ व्यानो वरुणः । श० १२ । ९ । १ । १६ ॥

„ व्यानः प्रतिहर्ता । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

„ व्यानो बृहती । तां० ७ । ३ । ८ ॥

„ आपो व्यानः । जै० उ० ४ । २२ । ९ ॥

„ (प्रजापतिः) व्यानादमुं (द्यु-) लोकम् (प्रावृहत्) । कौ० ६ । १० ॥

„ (तं संज्ञप्तं पशुं) दक्षिणा दिग्व्यानेत्यनुप्राणद्वयानमेवास्मिंस्तद-
दधात् । श० ११ । ८ । ३ । ६ ॥

„ द्विर्ऋतुनेति (यजन्ति) उपरिष्ठाद्वयानमेव तद्यजमाने दधति ।
कौ० १३ । ९ ॥

„ निक्रीडित इव ह्ययं व्यानः । ष० २ । २ ॥

„ व्यानः शस्या (ऋक्) । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥

व्यानट् (यजु० १२ । १०२) (=असृजत) यो वा दिवश्च सत्यधर्मा व्यान-
डिति यो वा दिवश्च सत्यधर्मासृजतेत्येतत् । श० ७ । ३ । १ । २० ॥

व्याहृतयः पतानि ह वै वेदानामन्तःश्लेषणानि यदेता (भूर्भुवः स्व-
रिति) व्याहृतयः । ऐ० ५ । ३३ ॥

„ एवमेवैता (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतयस्त्रयै विद्यायै
संश्लेषिण्यः । कौ० ६ । १२ ॥

„ सैषा सर्वप्रायश्चित्तिर्यदेता व्याहृतयः । ऐ० ५ । ३३ ॥

„ एता वै व्याहृतयः (भूर्भुवस्स्वरिति) सर्वप्रायश्चित्तयः ।
जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

„ एता वै (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतयः इमे लोकाः । तै०
२ । २ । ४ । ३ ॥

„ ता वा एताः पंच व्याहृतयो भवन्त्यो श्रावयास्तु श्रौषडयज
ये यजामहे वौषडिति । गो० पू० ५ । २१ ॥

[व्रात्याः

(५३६)

व्याहृतयः ता एता व्याहृतयः । प्रेत्येति वागिति भूर्भुवः स्वरित्युदिति

(प्र, आ, वाक्, भूर्भुवस्स्वः, उत्) । जै० उ० २ । ९ । ३ ॥

„ सर्वाप्तिर्वा एषा यदेता व्याहृतयः । ऐ० ८ । ७ ॥

व्युष्टिः व्युष्टिर्वै दिवा, व्येवास्मै वासयति । तां० ८ । १ । १३ ॥

„ व्युष्टिर्वा एष द्विरात्रो व्येवास्मै (यजमानाय) वासयति ।
तां० १८ । ११ । ११ ॥

„ अहर्व्युष्टिः । तै० ३ । ८ । १६ । ४ ॥

„ रात्रिर्वै व्युष्टिः । श० १३ । २ । १ । ६ ॥

व्योमसद् एष (सूर्यः) वै व्योमसद् व्योम वा एतत् सन्नानां यस्मि-
न्नेय आसन्नस्तपति । ऐ० ४ । २० ॥

व्योमा (यजु० १४ । २३) व्योमा हि संवत्सरः । श० ८ । ४ । १ । ११ ॥

„ प्रजापातिर्वै व्योमा । श० ८ । ४ । १ । ११ ॥

व्रजो गोस्थानः छन्दाश्च सि वै व्रजो गोस्थानः । तै० ३ । २ । ९ । ३ ॥

व्रतपतिः अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः । गो० उ० १ । १४ ॥

व्रतभृत् आग्नेर्वै देवानां व्रतभृत् । गो० उ० १ । १५ ॥

व्रतम् (यजु० १३ । ३३) अन्नं वै व्रतम् । श० ७ । ५ । १ । २३ ॥
तां० २२ । ४ । ५ ॥

„ अन्नं व्रतम् । तां० २३ । २७ । २ ॥

„ अन्नंश्च हि व्रतम् । श० ६ । ६ । ४ । ५ ॥

„ तदु हाषाढः सावयसो ऽनशनमेव व्रतं मेने । श० १ । १ । १ । ७ ॥

„ एतत्खलु वै व्रतस्य रूपं यत्सत्यम् । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

„ संवत्सरो वै व्रतं तस्य वसन्त ऋतुमुखं ग्रीष्मश्च वर्षाश्च पक्षौ

शरन्मध्यश्च हेमन्तः पुच्छम् । तां० २१ । १५ । २ ॥

„ वीर्यं वै व्रतम् । श० १३ । ४ । १ । १५ ॥

„ अमानुष इव वाऽ एतद्भवति यद् व्रतमुपैति । श० १ । ९ । ३ । २३ ॥

„ न ह वाऽ अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति । ऐ० ७ । ११ ॥ कौ०
३ । १ ॥

व्रातः विषम इव वै व्रातः (=व्रात्यसमुदायः इति सायणः) । तां०
१७ । १ । ५ । ११ ॥

व्रात्याः 'षोडशस्तोमः' शब्दं पश्यत ।

- ब्रीहयः मज्जभ्य ष्वास्य भक्षः सोमपीथो ऽस्रवत्ते ब्रीहयो ऽभवन् ।
 श० १२ । ७ । १ । ९ ॥
- „ स (मेधो देवैः) अनुगतो ब्रीहिरभवत् । ऐ० २ । ८ ॥
- „ (देवाः) तं (मेधम्) खनन्त इवान्वीषुस्तमन्वविन्दंस्ता-
 विमौ ब्रीहियवौ । श० १ । २ । ३ । ७ ॥
- „ सर्वेषां वा एष पशूनां मेधो यद् ब्रीहियवौ । श० ३ । ८ ।
 ३ । १ ॥
- „ क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद् ब्रीहयः । ऐ० ८ । १६ ॥

श

- शंयुः शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान् यज्ञाञ्छमयांचकार तस्माच्छं-
 योर्वाकमाह । कौ० ३ । ८ ॥
- „ शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यो ऽञ्जसा यज्ञस्य स०स्थां विदांचकार स
 देवलोकमपीयाय । तत्तदन्तर्हितमिव मनुष्येभ्य आस । श०
 १ । ६ । १ । २४ ॥
- शंयोर्वाकः शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान् यज्ञाञ्छमयांचकार तस्माच्छं-
 योर्वाकमाह । कौ० ३ । ८ ॥
- „ प्रतिष्ठा वै शंयोर्वाकः । कौ० ३ । ८ ॥
- „ प्रतिष्ठा शम्योर्वाकः । श० ११ । २ । ७ । २६ ॥
- शंसः वाक् शंसः । ऐ० २ । ४ ॥ ६ । २७, ३२ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥
- शंसति यद्वै वदति श०सतीति वै तदाहुः । श० १ । ८ । २ । १२ ॥
- शकुन्तला शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे परः सहस्रानिन्द्रा-
 याश्वान्मेध्यान्य आहरद्विजित्य पृथिवीं० सर्वामिति ।
 श० १३ । ४ । ४ । १३ ॥
- शकुन्तिका (यजु० २३ । २२) विद्वै शकुन्तिका । श० १३ । २ । ६ । ६ ॥
 तै० ३ । ९ । ७ । ३ ॥
- शकर्यः (ऋचः) यदिमांल्लोकान्प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्रोद्यद्विदं
 किञ्च तच्छकरो ऽभवंस्तच्छकरीणां शकरीत्वम् । ऐ० ५ । ७ ॥
- „ इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावद् वृत्रं हनानीति तस्मा एतच्छ-
 न्दोभ्य इन्द्रियं वीर्यं निर्माय प्रायच्छदेतेन शकनुहीति तच्छ-
 करीणां शकरीत्वम् । तां० १३ । ४ । १ ॥

शक्यः एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशक्यन्तुं तद्यदाभिर्वृत्रमशक्यन्तुं तस्माच्छक्यः । कौ० २३ । २ ॥

„ एताभिः (भुरिग्भिः शकरीभिः) वा इन्द्रो वृत्रमहन् क्षिप्रं वा एताभिः पाप्मानं हन्ति क्षिप्रं वसीयान् भवति । तां० १२ । १३ । २३ ॥

„ पशवः शक्यः । तां० १३ । १ । ३ ॥

„ पशवो वै शक्यः । तां० १३ । ४ । १३ ॥ १३ । ५ । १८ ॥

„ पशवो वै शकरीः । तै० १ । ७ । ५ । ४ ॥

„ पशवः शकरी । तां० १२ । ७ । ६ ॥

„ श्रीः शक्यः । तां० १३ । २ । २ ॥

„ शाकरो वज्रः । तै० २ । १ । ५ । ११ ॥

„ वज्रः शक्यः । तां० १२ । १३ । १४ ॥

„ रथन्तरमेतत्परोक्षं यच्छक्यः । तां० १३ । २ । ८ ॥

„ ब्रह्म शक्यः । तां० १६ । ५ । १८ ॥

„ सप्तपदा वै तेषां (छन्दसां) परार्धां शकरी । श० ३ । ९ । २ । १७ ॥

„ सप्तपदा शकरी । तै० २ । १ । ५ । ११ ॥ तां० १६ । ७ । ६ ॥

„ स (प्रजापतिः) शकरीरसृजत तदपाङ्घोषो ऽन्वसृज्यत ('शाकरम्' शब्दमपि पश्यत) । तां० ७ । ८ । १२ ॥

भङ्कु (साम) तद् (शङ्कु साम) उ सीदन्तीयमित्याहुः । तां० ११ । १० । १२ ॥

„ शङ्कु भवत्यहो धृत्यै यद्वा अधृतं शङ्कुना तद्वाधार । तां० ११ । १० । ११ ॥

शणाः यत्र वा प्रजापतिरजायत गर्भो भूत्वैतस्माद्यज्ञात्तस्य यज्ञेदिष्ट-
मुल्बमासीत्ते शणास्तस्मात्ते पूतयो भवन्ति । श० ३ । १ । १ । ११ ॥

„ शणा जरायु । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥

शतक्रतुः इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः । तै० २ । ४ । ८ । ७ ॥

शतपदी वाग्वाव शतपदी । ष० १ । ४ ॥

„ ऋक् शतपदी । ष० १ । ४ ॥

शतभिषक् (नक्षत्रम्) यच्छतमभिषज्यन् । तच्छतभिषक् । तै० १ ।

५ । २ । ९ ॥

” क्षत्रस्य राजा वरुणो ऽधिराजः । नक्षत्राणां शतभिषग्व-
सिष्ठः । तै० ३ । १ । २ । ७ ॥

” इन्द्रस्य (=वरुणस्येति सायणः) शतभिषक् । तै० १ । ५ ।
१ । ५ ॥

शतम् एषा वाव यज्ञस्य मात्रा यच्छतम् । तां० २० । १५ । १२ ॥

शतरुद्रीयम् तद्यदेतं शतशीर्षाणं रुद्रमेतेनाशमयंस्तस्माच्छत-

शीर्षरुद्रशमनीयं शतशीर्षरुद्रशमनीयं ह वै तच्छत-

रुद्रियमित्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ९ । १ । १ । ७ ॥

” ते (देवाः) ऽब्रुवन् । अन्नमस्मै (रुद्राय) सम्भराम ते
नैनं शमयामेति तस्माऽ एतदन्नं समभरञ्छान्तदेव-
त्यं तेनैनमशमयंस्तद्यदेतं देवमेतेनाशमयंस्तस्माच्छान्त-
देवत्यं शान्तदेवत्यं ह वै तच्छतरुद्रियमित्याचक्षते
परोऽक्षम् । श० ९ । १ । १ । २ ॥

” त्वमग्ने रुद्र इति शतरुद्रीयस्य रूपम् । तै० ३ । ११ ।
९ । ९ ॥

” अहोरात्रे (संवत्सरस्य) शतरुद्रीयम् । तै० ३ । ११ ।
१० । ३ ॥

शबलः अहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः (अथर्ववेदे, कां० ८, सू० १,
मं० ९:—श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथि-
रक्षी भवानौ.....) । कौ० २ । ९ ॥

शबली वाग्वै शबली (=“कामधेनुः” इति सायणः । वाल्मीकीयरा-
मायणे बालकाण्डे ५३ । १:—एवमुक्ता वसिष्ठेन शबला
शत्रुसूदन । विदधे कामधुक्कामान्यस्य यस्येप्सितं यथा ॥)
तस्यास्त्रिरात्रो वत्सस्त्रिरात्रो वा एतां प्रदापयति ॥ तद्य एवं
वेद तस्मा एषा ऽप्रप्ता दुग्धे (‘विश्वरूपी’ पृश्निः ‘विराट्’
इत्येतानपि शब्दान् पश्यत) । तां० २१ । ३ । १—२ ॥

शम् ताभ्यः श्रान्ताभ्यस्तप्ताभ्यः संतप्ताभ्यः (वृधदादिभ्यः पंचमहा-
व्याहृतिभ्यः) शमित्यूष्वमक्षरमुदक्रामत्स य इच्छेत्सर्वाभि-
रेताभिरावाङ्मिश्च परावङ्मिश्च कुर्वीत्येतयैव तन्महाव्याहृत्या

कुर्वीत । गो० पू० १ । ११ ॥

शमनीचामेदूणां स्तोमः अथैष शमनीचामेदूणां११ स्तोमो ये ज्येष्ठाः
सन्तो व्रात्यां प्रवसेयुस्त पतेन यजेरन् ।
तां० १७ । ४ । १ ॥

शमिता अधिगुश्चापापश्च । उभौ देवानां११ शमितारौ । तै० ३ । ६ ।
६ । ४ ॥

॥ मृत्युस्तदभवद्धाता । शमितोग्रो विशां पतिः । तै० ३ । १२ ।
९ । ६ ॥

॥ मृत्युः शमिता । तां० २५ । १८ । ४ ॥

शमी (वृक्षः) प्रजापतिरग्निमसृजत सो ऽबिभेद प्र मा धक्ष्यतीति तं११
शम्याशमयत् । तच्छम्यै शमित्वम् । तै० १ । १ । ३ । ११ ॥

॥ तद्यदेतं११ शम्याशमयंस्तस्माच्छमी । श० ९ । २ । ३ । ३७ ॥

॥ शमीमयं (शङ्कुं) उत्तरतः, शं मे ऽसदिति । श० १३ । ८ ।
४ । १ ॥

॥ शं वै प्रजापतिः प्रजाभ्यः शमीपलाशैरकुरुत । श० २ । ५ ।
२ । १२ ॥

॥ यया ते सृष्टस्याग्नेः । हेतिमशमयत्प्रजापतिः । तामिभामप्रदाहाय
शमी० शान्त्यै हराम्यहम् । तै० १ । २ । १ । ६—७ ॥

शम्भूर न्दः (यजु० १५ । ४) द्यौर्वै शम्भूरच्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ३ ॥

शम्या जिह्वैव शम्या । श० १ । २ । १ । १७ ॥

शरः अथ (इन्द्रः) यत्र (वज्रं) प्राहरत्तच्छकलो ऽशीर्यत स
पतित्वा शरो ऽभवत्तस्माच्छरो नाम यदशीर्यत । श० १ ।
२ । ४ । १ ॥

॥ वज्रो वै शरः । श० ३ । १ । ३ । १३ ॥ ३ । २ । १ । १३ ।

शरद् (ऋतुः) शरद्वै बर्हिरिति हि शरद्वर्हिया इमा ओषधयो ग्रीष्म-
हेमन्ताभ्यां नित्यक्ता भवन्ति ता वर्षा वर्द्धन्ते ताः शरदि
बर्हिषो रूपं प्रस्तीर्णाः शरे तस्माच्छरद्वर्हिः । श० १ । ५ ।
३ । १२ ॥

॥ बर्हिर्यजति शरदमेव शरदि हि बर्हिष्ठा ओषधयो भवन्ति ।
कौ० ३ । ४ ॥

- शरद् शरदि ह खलु वै भूयिष्ठा ओषधयः पच्यन्ते । जै० उ० १ ।
३५ । ५ ॥
- „ तस्माच्छरदमोषधयो ऽभिसंपच्यन्ते । तां० २१ । १५ । ३ ॥
- „ स्वधा वै शरद् । श० १३ । ८ । १ । ४ ॥
- „ शरत्प्रतिहारः । ष० ३ । १ ॥
- „ (प्रजापतिः) शरदम्प्रतिहारम् (अकरोत्) । जै० उ० १ ।
१२ । ७ ॥
- „ शरद्वै वैश्यस्यर्तुः । तै० १ । १ । २ । ७ ॥
- „ शरद्वा अस्य (रुद्रस्य) अम्बिका स्वला (परिशिष्टभागे
'अम्बिका' शब्दमपि पश्यत) । तै० १ । ६ । १० । ४ ॥
- „ शरदुत्तरः पक्षः (संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ४ ॥
- „ शरत्पुच्छम् (संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ३ ॥
- „ यह्नित्वातते तच्छरदः (रूपम्) । श० २ । २ । ३ । ८ ॥
- „ षड्भिर्मैत्रावरुणैः (पशुभिः) शरदि (यजते) । श० १३ ।
५ । ४ । २८ ॥
- „ वर्षाशरदौ सारस्वताभ्याम् (अवरुण्ये) । श० १२ । ५ । २ । ३४ ॥
- „ शरद्ब्रह्मा तस्माद्यदा सस्यं पच्यते ब्रह्मण्वत्यः प्रजा इत्याहुः ।
श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥
- „ शरदेव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- शरीरम् अथ यत्सर्वमस्मिन्नश्रयन्त तस्मादु शरीरम् । श० ६ । १ ।
१ । ४ ॥
- „ अशरीरं वै रेतो ऽशरीरा वषा यद्वै लोहितं यन्मांसं तच्छरी-
रम् । ऐ० २ । १४ ॥
- „ शरीरं हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥
- शर्कराः तां (पुथिवीं) शर्कराभिरदृष्ट्वत् शं वै नो ऽभूदिति तच्छ-
र्कराणां शर्करत्वम् । तै० १ । १ । ३ । ७ ॥
- „ सिकताभ्यः शर्करामसृजतः । श० ६ । १ । ३ । ५ ॥
- „ शर्कराया अश्मानम् (असृजत) तस्माच्छर्कराश्मैवान्ततो
भवति । श० ६ । १ । ३ । ५ ॥
- शर्म चर्म वा ऽ एतत्कृष्णस्य (मृगस्य) तन्मानुष्यं, शर्म देवत्रा ।
श० ३ । २ । १ । ८ ॥

शर्म (ऋ० ३।१३।४) वाग्वै शर्म । ऐ० २।४० ॥

„ (ऋ० ३।१३।४) अग्निर्वै शर्माण्यन्नाद्यानि यच्छति । ऐ० २।४१ ॥

शर्वः यच्छर्वो ऽग्निस्तेन । कौ० ६।३ ॥

„ अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि, शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः, पशूनां पती रुद्रो ऽग्निरिति । श० १।७।३।८ ॥

„ आपो वै सर्वः (=शर्वः=रुद्रः) अद्भ्यो हीदथ सर्वं जायते । श० ६।१।३।११ ॥

„ एतान्यष्टौ (रुद्रः सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६।१।३।१८ ॥

शस्मलिः शस्मलिर्वनस्पतीनां वर्षिष्टं वर्धते । श० १३।२।७।४ ॥

शस्यकः तस्याः (गायत्र्याः) अनु विसृज्य कृशानुः सोमपालः सव्यस्य पदो नस्मच्छिदत्तच्छल्यको ऽभवत्तस्मात्स नस्ममिष । ऐ० ३।२६ ॥

शवः (स) (यजु० १२।१०६ ॥ १८।५१) बलं वै शवः । श० ७।३ ॥ १।२९ ॥ ९।४।४।३ ॥

शस्त्रम् तद्यदेनच्छयति तस्माच्छस्त्रं नाम । श० ४।३।२।३ ॥

„ विद् शस्त्रम् । ष० १।४ ॥

„ प्रजा शस्त्रम् । श० ५।२।२।२० ॥

„ वाग्धि शस्त्रम् । ऐ० ३।४४ ॥

शस्या (ऋक्) द्यौर्लोकं (द्युलोकं) शस्यया (जयति) । श० १४।६।१।९ ॥

„ व्यानः शस्या । श० १४।६।१।१२ ॥

शाकलम् (साम) एतेन वै शाकलः पञ्चमे ऽह्नि प्रत्यतिष्ठत् प्रतितिष्ठति शाकलेन तुष्टुवानः । तां० १३।३।१० ॥

शाकलाः प्राणा वै शाकलाः । श० १४।२।२।३१ ॥

„ प्राणाः शाकलाः । श० १४।२।२।५१ ॥

शाकरम् (साम) (प्रोष्वस्मै पुरोरथम् [ऋ० १०।१३३।१] इत्यस्यां गायमानं शाकरं साम - ऐ० ४।१३ भाष्ये सायणः)

शाकरम् शाकरं मैत्रावरुणस्य । कौ० २५ । ११ ॥

„ यद्रथन्तरं तच्छाकरम् (‘शकर्यः’ शब्दमपि पश्यत) ।
पे० ४ । १३ ॥

शान्तिः शान्तिरापः । श० १ । २ । २ । ११ ॥ १ । ७ । ४ । ९, १७ ॥
१ । ६ । ३ । २, ४ ॥ २ । ६ । २ । १८ ॥ ३ । ३ । १ । ७ ॥

शापः नैनः शप्तम् । नाभिचरितमागच्छति य एवं वेद । तै० ३ ।
१२ । ५ । १ ॥

शाम्भदम् (साम) शम्भद्वा एतेनाङ्गिरसो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत्
स्वर्गस्य लोकस्यानुभ्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः।
तां० १५ । ५ । ११ ॥

शाकरम् (साम) स (शर्करः शिशुमारर्षिः) एतत् सामापश्यत्तेनापो न
समाद्नुत तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि साम शाकरं
काममेवैतेनावहन्धे । तां० १४ । ५ । १५ ॥

शार्दूलः मृत्योर्वा एष वर्णः । यच्छार्दूलः । तै० १ । ७ । ८ । १ ॥

शाला यथा शालायै पक्षसी मध्यमं वणं शमभिसमायच्छन्ति । तै०
१ । २ । ३ । १ ॥

शासः वज्रः शासः । श० ३ । ८ । १ । ५ ॥

„ अस्मि वै शास इत्याचक्षते । श० ३ । ८ । १ । ४ ॥

शिक्यम् दिशः शिक्यं दिग्भिर्हीमे लोकाः शक्नुवन्ति स्थातुं यच्छ-
क्नुवन्ति तस्माच्छिक्यम् । श० ६ । ७ । १ । १६ ॥

„ ऋतवः शिक्यमृतुभिर्हि संवत्सरः शक्नोति स्थातुं यच्छक्नोति
तस्माच्छिक्यम् । श० ६ । ७ । १ । १८ ॥

„ प्राणाः शिक्यं प्राणैर्ह्यमात्मा शक्नोति स्थातुं यच्छक्नोति
तस्माच्छिक्यम् । श० ६ । ७ । १ । २० ॥

शिपिः पशवः शिपिः । तै० १ । ३ । ८ । ५ ॥

शिपिविष्टः यमुपैत्सीत्तमपाराप्सीत्तच्छिपितमिव यज्ञाय भवति त-
स्माच्छिपिविष्टायेति । श० ११ । १ । ४ । ४ ॥

„ एषा वै प्रजापतेः पशुष्टा तनूर्यच्छिपिविष्टः (एषा वै
प्रजापतेः पशुष्टास्तनूर्या शिपिविष्टवती-काठकसंहिता-
याम् १४ । १० ॥) । तां० १८ । ६ । २६ ॥

„ यज्ञो वै बिष्णुः शिपिविष्टः । तां० ९ । ७ । १० ॥

- शिरः यच्छ्रूयं^० समुदैहंस्तस्माच्छिरस्तस्मिन्नेतस्मिन्प्राणा अश्र-
यन्त तस्माद्धैतच्छिरः । श० ६ । १ । १ । ४ ॥
- „ शिरो वै प्राणानां योनिः । श० ७ । ५ । १ । २२ ॥
- „ प्राणो ऽग्निः शीर्षम् । कौ० ८ । १ ॥
- „ गायत्रीछन्दो ऽग्निर्देवता शिरः । श० १० । ३ । २ । १ ॥
- „ गायत्र्यं हि शिरः । श० ८ । ६ । २ । ६ ॥
- „ शिरस्सूक्तम् । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥
- „ त्रिधातु हि शिर इति । तै० ३ । ३ । ७ । ११ ॥
- „ त्रिवृद्धि शिरः । श० ८ । ४ । ४ । ४ ॥ ८ । ६ । २ । ६ ॥
- „ त्रिवृद्धयेव शिरो लोम त्वगस्थि । तां० ५ । १ । ३ ॥
- „ शिर एवास्य त्रिवृत् । तस्मात्तत्रिविधं भवति त्वगस्थि
मस्तिष्कः । श० १२ । २ । ४ । ९ ॥
- „ त्रिवृतं ह्येव शिरो भवति त्वगस्थि मज्जा मस्तिष्कम् । गो०
पू० ५ । ३ ॥
- „ शिरो वा अग्रे सम्भवतः सम्भवति चतुर्धा विहितं वै शिरः
प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं वाग् । तां० २२ । ९ । ४ ॥
- „ शिरो हि प्रथमं जायमानस्य जायते । श० ८ । २ । ४ । १८ ॥
१० । १ । २ । ५ ॥
- „ शीर्षतो वाऽ अग्रे जायमानो जायते । श० ३ । ४ । १ । १९ ॥
- „ यस्माच्छीर्षण्येवाग्रे पलितो भवति । श० ११ । ४ । १ । ६ ॥
- „ द्विकपालं हि शिरः । श० १० । ५ । ४ । १२ ॥
- „ तस्मादष्टकपालं पुरुषस्य शिरः । तै० ३ । २ । ७ । ४ ॥
- „ प्रादेशमात्रमिव हि शिरः । श० ७ । ५ । १ । २३ ॥ १४ । १ ।
२ । १७ ॥
- „ मध्ये संगृहीतमिव हि शिरः । श० १४ । १ । २ । १७ ॥
- „ तस्माच्छिरोऽङ्गानि मेघन्ति नानुमेघति न कृश्यन्त्यनुकृश्यति ।
तां० ५ । १ । ६ ॥
- „ अर्वाग्विलम्बमस ऊर्ध्वबुध्नः । इदं तच्छिरः । श० १४ । १ । २ । १५ ॥
- „ शिर एतद्यज्ञस्य यदुखा । श० ६ । ५ । ३ । ८ ॥ ६ । १ । १५ ॥
- „ शिर एव पृष्ठी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥
- „ श्रीः (=उत्कृष्टं वस्तु) वै शिरः । श० १ । ४ । ५ । ५ ॥ २ । १ ।

- २।८॥४।२।४।२०॥
- शिल्पानि (शस्त्राणि) प्राणाः शिल्पानि । कौ० २५।१२, १३ ॥
- ” आत्मसंस्कृतिर्वाच शिल्पानि छन्दोमयं वा एतैर्यजमान आ-
त्मानं संस्क्रुते । ऐ० ६।२७ ॥
- ” आत्मसंस्कृतिर्वै शिल्पानि । गो० उ० ६।७ ॥
- ” यद्वै प्रतिरूपं तच्छिल्पम् । श० ३।२।१।५ ॥
- ” त्रिवृद्धै शिल्पं नृत्यं गीतं वादितमिति । कौ० २९।५ ॥
- ” तौ वा एताविन्द्रस्तोमौ (अभिर्जिद्विध्वजितौ) धीर्य्यवन्तौ
शिल्पं वा एतौ नाम स्तोमावास्ताम् । तां० १६।४।८ ॥
- शिवः (यजु० १२।१७) शिवः शिव इति शमयत्येवैनं (अग्निम्)
एतदहिःसायै तथो ह्येष (अग्निः) इमांलोकान्छान्तो न हिन-
स्ति (शिवः=रुद्रः=शान्तो ऽग्निः) । श० ६।७।३।१५ ॥
- शिशिरः षड्भिरेन्द्राबार्हस्पत्यैः (पशुभिः) शिशिरे (यजते) । श०
१३।५।४।२८ ॥
- शिशुः अयं वाच शिशुर्यो ऽयं मध्यमः प्राणः । श० १४।५।२।२ ॥
- शिशनम् शिशनं वै शोन्निष्केशं (ऋ० ३।२७।४) शिशनं हीदं
शिशिनं भूयिष्ठं शोचयति । श० १।४।३।९ ॥
- ” वृत्तमिव हि शिशम् । श० ७।५।१।३८ ॥
- ” योनिरुलूखलम् शिशं मुसलम् । श० ७।५।१।३८ ॥
- शीतम् (यजु० २३।२६) क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतम् । श० १३।२।
९।५ ॥
- शीतो वातः क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतो वातः । तै० ३।९।७।२ ॥
- शुक्रः यामं शुक्रं हस्तिमालभेत । गो० उ० २।१ ॥
- शुक्रः (यजु० १८।५०) असौ वा आदित्यः शुक्रः । श० ९।४।२।
२१ ॥ तां० १५।५।६ ॥
- ” एष वै शुक्रो य एष (आदित्यः) तपति । श० ४।३।१।२६ ॥
४।३।३।१७ ॥
- ” एष वै शुक्रो य एष (आदित्यः) तपत्येष उऽएव बृहन् । श०
४।५।६।६ ॥
- ” तद्विऽएष एव शुक्रो य एष (आदित्यः) तपति तद्यदेष तपति
तेनैष शुक्रः । श० ४।२।१।१ ॥

- शुकः तत्र ह्यादित्यः शुकश्चरति । गो० पू० २ । ६ ॥
- ॥ अस्य (अग्नेः) एवैतानि (घर्मः, अर्कः, शुकः, ज्योतिः, सूर्यः) नामानि । श० ९ । ४ । २ । २५ ॥
- ॥ अत्ता वै शुकः (ग्रहः) । श० ५ । ४ । ४ । २० ॥
- ॥ अत्तैव शुक आद्यो मन्थी (ग्रहः) । श० ४ । २ । १ । ३ ॥
- ॥ शुकः (=निर्मल इति सायणः) सोमः । तां० ६ । ६ । ९ ॥ (श० ३ । ३ । ३ । ६ अपि पंदयत)
- ॥ एतौ (शुकश्च शुचिश्च) एव ग्रैष्मौ (मासौ) स यदेतयोर्बलिष्ठं तपति तेनो हैतौ शुकश्च शुचिश्च । श० ४ । ३ । १ । १५ ।
- शुकपात्रम् शुकपात्रमेवानु मनुष्या जायन्ते । श० ४ । ५ । ५ । ७ ॥
- शुकम् ज्योतिः शुकमसौ (आदित्यः) । ऐ० ७ । १२ ॥
- ॥ शुक हिरण्यम् । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥
- ॥ ज्योतिर्वै शुकं हिरण्यम् । ऐ० ७ । १२ ॥
- ॥ शुकः^{११} ह्यतच्छुक्रेण क्रीणाति यत्सोमः^{१२} हिरण्येन । श० ३ । ३ । ३ । ६ ॥
- ॥ (यजु १ । ३१) तेजो ऽसि शुकमस्यमृतमसि (आज्य !) । श० १ । ३ । १ । २८ ॥
- ॥ शुका ह्यापः । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥
- ॥ सत्यं वै शुकम् । श० ३ । ९ । ३ । २५ ॥
- शुकम् तद्यच्छुक्रं तद्वाचो रूपमृचो ऽग्नेर्मृत्योः । जै० ३० १ । २५ । ८ ॥
- शुचिः एतौ (शुकश्च शुचिश्च) एव ग्रैष्मौ (मासौ) स यदेतयोर्बलिष्ठं तपति तेनो हैतौ शुकश्च शुचिश्च । श० ४ । ३ । १ । १५ ॥
- ॥ यत् (अग्नेः) शुचि (रूपम्) तद्विचि (न्यधत्त) । श० २ । २ । १ । १४ ॥
- ॥ वीर्यं वै शुचि यद्वा ऽस्य (अग्नेः) एतदुज्ज्वलत्येतदस्य वीर्यं^{१३} शुचि । श० २ । २ । १ । ८ ॥
- शुद्धाशुद्धीयम् (साम) इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छुत्तमश्रीला वागभ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एतच्छुद्धाशुद्धीयमपश्यत्तेनाशुध्यच्छुध्यति शुद्धाशुद्धीयेन तुष्टुवानः । तां० १४ । ११ । २८ ॥

शुनम् यद्वै समृद्धं तच्छुनम् । श० ७ । २ । २ । ९ ॥

„ या वै देवानां श्रीरासीत् साकमेधैरीजानानां तच्छुनम् ।
श० २ । ६ । ३ । २ ॥

शुनस्कर्णस्तोमः एतेन वै शुनस्कर्णो वाष्किहो ऽयजत तस्माच्छुन-
स्कर्णस्तोम इत्याख्यायते । तां० १७ । १२ । ६ ॥

„ यः कामयेतानामयतामुं लोकमियामिति स एतेन
यजेत । तां० १७ । १२ । १ ॥

„ प्रणानेवास्य (यजमानस्य) बाहिर्णिरादधाति (स य-
जमानः) ताजक (=तस्मिन्नेव काले) प्रमीयते । तां०
१७ । १२ । २ ॥

„ आर्भत्रपवमाने स्तूयमान औदुम्बर्या दक्षिणा प्रावृता
(=वेष्टितसर्वदेहः) निपद्यते तदेव (=तदानीमेव) संग-
च्छते (=म्रियते इति सायणः) । तां० १७ । १२ । ९ ॥

शुनासीरः अथ यस्माच्छुनासीर्येण यजेत । या वै देवानां श्रीरासीत्
साकमेधैरीजानानां विजिग्यानानां तच्छुनमथ यः संवत्सर-
स्य प्रजितस्य रस आसीत्तसीरम् । श० २ । ६ । ३ । २ ॥

„ संवत्सरो वै शुनासीरः । गो० उ० १ । २६ । ॥

„ शान्तिर्वै भेषजं शुनासीरौ । कौ० ५ । ८ ॥

„ शुनासीर्यो द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति । श० २ । ६ ।
३ । ५ ॥

शुष्णः (दानवः) शुष्णो दानवः प्रत्यङ् पतित्वा मनुष्याणामक्षीणि
प्रविवेश स एष कनीनकः कुमारक इव परिभासते । श० ३ ।
१ । ३ । ११ ॥

शूद्रः स पत्त एव प्रतिष्ठाया एकविंशमसृजत तमनुष्टुप् छन्दो
ऽन्वसृज्यत न काचन देवता शूद्रो मनुष्यस्तस्माच्छूद्र उत
बहुपशुरयश्चियो विदेवो हि, न हि तं काचन देवताम्बसृज्यत
तस्मात्पादावनेज्यन्नातिवर्द्धते पत्तो हि सृष्टः । तां० ६ । १ । ११ ॥

„ अयश्चियान्वाऽ एतद्यज्ञेन प्रसजति शूद्रांस्त्वद्यांस्त्वत् । श० ५ ।
३ । २ । ४ ॥

„ अथ यद्यपः शूद्राणां स भक्षः शूद्रांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि
शूद्रकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यते ऽन्यस्य प्रेष्यः कामोत्याप्यो

यथाकामवध्यो, यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति शूद्रकल्पो ऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा शूद्र-
तामभ्युपैतोः स शूद्रतया जिज्युषितः । ऐ० ७ । २६ ॥

शूद्रः असतो वा एष सम्भूतः । यच्छूद्रः । तै० ३ । २ । ३ । ९ ॥

„ अनृत^१ स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत । श०
१४ । १ । १ । ३१ ॥

„ असुर्यः शूद्रः । तै० १ । २ । ६ । ७ ॥

„ तपो वै शूद्रः । श० १३ । ६ । २ । १० ॥

„ वैश्यं च शूद्रं चानु रासभः । श० ६ । ४ । ४ । १२ ॥

„ तस्मात्पुरस्तात्प्रत्यञ्चः शूद्रा अवस्यन्ति । तै० ३ । ३ । ११ । २ ॥

„ स शूद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं (पृथिवी) वै पूषा । श० १४ ।
४ । २ । २५ ॥

शृण्वद् “श्रवद् इन्द्रः शृण्वद्भो ऽग्निः” (यजु० २८ । ६) शृणोतु च
इन्द्रः शृणोत्वग्निरित्याशिषमेव तद्भदते । कौ० २८ । ६ ॥

शृतम् अथ यदेन^१ (इन्द्रं देवाः) शृतेनैवाश्रयंस्तस्माच्छृतम् । श०
१ । ६ । ४ । ८ ॥

शैशवम् (साम) शिशुर्वा आङ्गिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत् स
पितृन् पुत्रका इत्यामन्त्रयत तं पितरो ऽब्रून्धर्मङ्करोपि यो नः
पितृन् सतः पुत्रका इत्यामन्त्रयस इति सो ऽत्रवीदहं वाव
पिता ऽस्मि यो मन्त्रकृदस्मीति ते देवेष्वपृच्छन्त ते देवा
अमुवक्षेण वाव पिता यो मन्त्रकृदिति तद्वै स उदजयदुज्जयति
शैशवेन तुष्टुवानः । (मनुस्मृतौ अ० २ । श्लो० १५१ ॥
तन्त्रवात्तिके १ । ३ । १० ॥) । तां० १३ । ३ । २४ ॥

शोचिष्केशः (ऋ० ३ । २७ । ४) शिश्रं वै शोचिष्केश^१ शिश्रं^१ हीद^१
शिश्रिनं भूयिष्ठं शोचयति । श० १ । ४ । ३ । ९ ॥

शोचीषि (यजु० २७ । ११) (=अर्चीषि) ऊर्ध्वा शुका शोचीष्यग्नेरि-
त्यूर्ध्वानि ह्येतस्य (अग्नेः) शुकाणि शोचीष्यर्चीष्यि
भवन्ति । श० ६ । २ । १ । ३२ ॥

शोशुचानः (यजु० ११ । ४६) (=दीप्यमानः) विपाजसा पृथुना शोशु-
चान इति । विपाजसा पृथुना दीप्यमान इत्येतत् । श०
६ । ४ । ४ । २१ ॥

शोकम् (साम) शुक्तिर्वा एतेनाङ्गिरसो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत्
स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।
तां० १० । ५ । १६ ॥

शोनकयज्ञः स एष (शोनकयज्ञः) तुस्तूर्षमाणस्य यज्ञः । कौ० ४ । ७ ॥
श्राष्टम् (साम) श्नुष्टिर्वा एतेनाङ्गिरसो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत्
स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गात् लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।
तां० १३ । ११ । २२ ॥

„ अग्नेर्वा एतत् (श्रौष्टं) वैश्वानरस्य साम । तां० १३ । ११ । २३ ॥
श्मशानम् अथास्मै श्मशानं कुर्वन्ति गृहान्वा प्रज्ञानं वा यो वे कश्च
ध्रियते स शवस्तस्माऽ एतदन्नं करोति तस्माच्छवान्नं
शवान्नं ह वै तच्छ्मशानमित्याचक्षते परोक्षं श्म-
शा उ हैव नाम पितृणामत्तारस्ते हाऽमुष्मिँल्लोके ऽकृत-
श्मशानस्य साधुकृत्यामुपदम्भयन्ति तेभ्य एतदन्नं करोति
तस्माच्छ्मशान्नं श्मशान्नं ह वै तच्छ्मशानमित्याचक्षते
परोऽक्षम् । श० १३ । ८ । १ । १ ॥

श्यामः द्वे वै श्यामस्य (पशोः) रूपेः शुक्लं चैव लोम कृष्णं च । श०
५ । १ । ३ । ९ ॥ ५ । २ । ५ । ८ ॥

„ स पौष्णो यच्छ्यामः (पशुः) । श० ५ । २ । ५ । ८ ॥

„ अहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः (शबलशब्दमपि पश्यत) । कौ० २ । ९ ॥

श्यामाकाः लोमभ्य एवास्य चित्तमन्नवत् । ते श्यामाका अभवन् ।
श० १२ । ७ । १ । ९ ॥

„ तासां (ओषधीनां) एष उद्धारो यच्छ्यामाकाः । गो० उ०
१ । १७ ॥

„ सौम्यं श्यामाकं चरुं निर्वपति । तै० १ । ६ । १ । ११ ॥

„ अथ सोमाय वनस्पतये श्यामाकं चरुं निर्वपति । श०
५ । ३ । ३ । ४ ॥

„ स (सोमः) एतं सोमाय मृगशीर्षाय श्यामाकं चरुं
पयसि निरवपत् । ततो वै स ओषधीनां राज्यमभ्य-
जयत् । तै० ३ । १ । ४ । ३ ॥

„ एते वै सोमस्यौषधीनां प्रत्यक्षतमां यच्छ्यामाकाः । श०
५ । ३ । ३ । ४ ॥

श्यावाश्वम् (साम) श्यावाश्वमार्वनानस० सत्रमासीनं धन्वोद्वहन्
स एतत्सामापश्यत्तेन वृष्टिमसृजत ततो वै स प्रत्यतिष्ठ-
त्ततो गातुमविन्दत गातुविद्धा एतत्साम । तां० ८ । ५ । ९ ॥

श्येनः यदाह श्येनो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वा अग्निभूत्वा
ऽस्मिंल्लोके संश्यायति । तद्यत्संश्यायति तस्माच्छ्येनस्तच्छ्ये-
नस्य श्येनत्वम् । गो० पू० ५ । १२ ॥

„ उरस एवास्य (इन्द्रस्य) हृदयात्त्विषिरस्त्रवत्स श्येनो ऽपाष्ठिहा-
भवद्वयसां० राजा । श० १२ । ७ । १ । ६ ॥

„ स (श्येनः) हि वयसामाशिष्ठः । तां० १३ । १० । १४ ॥

„ श्येनो वै वयसां क्षेपिष्ठः । ष० ३ । ८ ॥

„ एतद्वै वयसामोजिष्ठं बलिष्ठं यच्छ्येनः । श० ३ । ३ । ४ । १५ ॥

श्यैतम् (साम) श्यैतेन श्येती कुरुते । तै० १ । १ । ८ । ३ ॥

„ ते (प्रजापतिना ऽभिव्याहृताः पशवः) शेत्या अभवन् यच्छे-
त्या अभव००स्तस्माच्छ्यैतम् । तां० ७ । १० । १३ ॥

„ पशुकाम एतन (श्यैतेन साम्ना) स्तुवीत । तां० ७ । १० । १४ ॥

„ पशवो वै श्यैतम् । तां० ७ । १० । १३ ॥

„ रथन्तर०० होतत्परोक्षं यच्छ्यैतम् (यच्छ्यैतम्) । तां० ७ । १० । ८ ॥

अद्वा अद्वा पत्नी सत्यं यजमानः । ऐ० ७ । १० ॥

„ अद्वां कामस्य मातरं हविषा वर्द्धयामसि । तै० २ । ८ । ८ । ८ ॥

„ एतद्दीक्षायै (रूपं) यच्छ्रद्धा । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

„ तेज एव अद्वा । श० ११ । ३ । १ । १ ॥

„ अद्दैव सकृदिष्टस्याक्षितिः स यः अद्धानो यजते तस्येष्टं न
क्षीयते । कौ० ७ । ४ ॥

„ अद्वा वा आपः । तै० ३ । २ । ४ । १ ॥

„ अद्वा वै सूर्यस्य दुहिता (यजु० १९ । ४) । श० १२ । ७ ।
३ । ११ ॥

अवद् अवद् इन्द्रः शृण्वद्वोन्निरिति (यजु० २८ । ६) शृणोतु वै इन्द्रः
शृणोत्वन्निरित्याशिषमेव तद्ददते । कौ० २८ । ६ ॥

अविष्टाः (नक्षत्रम्) यद्शृणोतु तच्छ्रविष्टाः (= धनिष्ठा इति सायणः) ।
तै० १ । ५ । १ । ९ ॥

श्रविष्ठाः वसूनाः श्रविष्ठाः । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥

„ अष्टौ देवा वसवः सोम्यासः । चतस्रो देवीरजराः श्रविष्ठाः ।
ने यज्ञं पान्तु रजसः पुरस्तात् । संवत्सरीणममृतं स्व-
स्ति । तै० ३ । १ । २ । ६ ॥

श्रवो वयः (यजु० १२ । १०६) धूमो वाऽ अस्य (अग्नेः) श्रवो वयः स
ह्येनममुष्मिंल्लोके स्रवयति । (श्रावयति) । श० ७ । ३ ।
१ । २९ ॥

श्रायन्तीयम् (ब्रह्मसाम) यद् (देवाः सूर्यं सप्तसु छन्दःसु) अश्रयन् ।
तच्छ्रायन्तीयस्य श्रायन्तीयत्वम् । तै० १ । ५ । १२ । १ ॥

„ प्रजा गतिः प्रजा असृजत स दुग्धो रिरिचानो ऽमन्यत स
एतच्छ्रायन्तीयमपश्यत्तेनात्मानं समश्रीणात्प्रजया पशु-
भिरिन्द्रियेण । तां० ९ । ६ । ७ ॥

„ वरुणस्य वै सुषुत्राणस्य भर्गो ऽपाक्रामत्स त्रेधापतद् भृ-
गुस्तृतीयमभवच्छ्रायन्तीयं तृतीयमपस्तृतीयं प्राविशत् ।
तां० १८ । ९ । १ ॥

„ यच्छ्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवति पुनरेवात्मानं सञ्श्री-
णाति । तां० १८ । ११ । १ ॥

„ यच्छ्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवति श्रीणाति चैवैनं
(यज्ञविभ्रष्टं) सञ्च करोति । तां० ८ । २ । ११ ॥

„ श्रायन्तीयं यज्ञविभ्रष्टाय ब्रह्मसाम कुर्यात् । तां० ८ ।
२ । ९ ॥

„ श्रीर्द्वै श्रायन्तीयम् । तां० १५ । ४ । ५ ॥

श्रीः अथ यत्प्राणा अश्रयन्त तस्माद्दु प्राणाः श्रियः । श० ६ । १ । १ । ४ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै श्रीः । ऐ० ८ । ५ ॥

„ तस्याः (श्रियः) अग्निरन्नाद्यमादत्त । सोमो राज्यं वरुणः
साम्राज्यं मित्रः क्षत्रामिन्द्रो बलं बृहस्पतिर्ब्रह्मवर्चसञ्च सविता
राष्ट्रं पूषा भगः सरस्वती पुष्टिं त्वष्टा रूपाणि । श० ११ ।
४ । ३ । ३ ॥

„ श्रीर्वा एकशफम् (अश्वाश्वतरगर्दभरूपम्) । तै० ३ । ९ ।

- श्रीः श्रीर्वै पशवः श्रीः शक्यः । तां० १३ । २ । २ ॥
- „ श्रीर्वै श्रायन्तीयम् (साम) । तां० १५ । ४ । ५ ॥
- „ श्रीः पृष्ठ्यानि । कौ० २१ । ५ ॥
- „ भियै वाऽ एतद्रूपं यद्वीणा । श० १३ । १ । ५ । १ ॥
- „ यदा वै पुरुषः श्रियं गच्छति वीणास्मै वाद्यते । श० १३ । १ । ५ । १ ॥
- „ श्रीर्वै स्वरः । श० ११ । ४ । २ । १० ॥
- „ रात्रिरेव श्रीः श्रियाश्च द्वैतद्राज्याश्च सर्वाणि भूतानि संवसन्ति । श० १० । २ । ६ । १६ ॥
- „ श्रीर्वै राष्ट्रम् । श० ६ । ७ । ३ । ७ ॥
- „ श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः । श० १३ । २ । ९ । ३ ॥
- „ श्रीर्वै राष्ट्रस्याग्रम् । श० १३ । २ । ९ । ७ ॥
- „ श्रीर्वै पिलिपिला । श० १३ । २ । ६ । १६ ॥ तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥
- „ श्रीर्वै वरुणः । कौ० १८ । ९ ॥
- „ (सविता) श्रिया स्त्रियम् (समदधात्) । गो० पू० १ । ३४ ॥
- „ श्रीर्देवाः । श० २ । १ । ४ । ९ ॥
- „ भियै पाप्मा (निवर्तते) । श० १० । २ । ६ । १९ ॥
- „ बहिर्धेव वै श्रीः । जै० उ० १ । ४ । ६ ॥
- „ एकस्था वै श्रीः । कौ० १८ । ९ ॥ २९ । ५ ॥
- „ एकस्ता (? एकस्था) वै श्रीः । गो० उ० ६ । १३ ॥
- श्रुद्धयम् (साम) प्रजापतिः पशूनसृजत ते ऽस्मात् सृष्ट्वा अपाक्राम-
 ंस्तानेतेन साम्ना श्रुधिया एहियेत्यन्वह्यत्त एनमुपा-
 वर्त्तन्त यदेतत्साम भवति पशूनामुपावृत्त्यै । तां० १५ ।
 ५ । ३५ ॥
- „ पशवो वै श्रुद्धयं पशूनामवरुध्यै । तां० १५ । ५ । ३४ ॥
- श्रुष्टिः (यजु० १२ । ६८) अन्नश्च श्रुष्टिः । श० ७ । २ । २ । ५ ॥
- श्रेयान् (अथर्व० ७ । ९ । १) तस्मात् (भूलोकात्) असावेव (स्वर्गो)
 लोकः (श्रेयान्) । ऐ० १ । १३ ॥
- श्रेष्ठतमं कर्म (यजु० १ । १) यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म । तै० ३ । २ ।
 १ । ४ ॥

ब्रह्मतमं कर्म यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म । श० १ । ७ । १ । ५ ॥

श्रेष्ठो रश्मिः (यजु० २ । २६) एष वै श्रेष्ठो रश्मिर्यत्सूर्यः । श० १ ।
९ । ३ । १६ ॥

श्रोणा (= श्रवणनक्षत्रमिति सायणः) यदच्छोणत् । तच्छ्रोणा । तै० १ ।
५ । २ । ८, ६ ॥

„ शृण्वन्ति श्रोणाममृतस्य गोपां.....महीं देवीं विष्णुपत्नीमजू-
र्याम् । तै० ३ । १ । २ । ५—६ ॥

„ विष्णोः श्रोणा । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥

श्रोणी जगती छन्द आदित्यो देवता श्रोणी । श० १० । ३ । २ । ६ ॥

„ श्रोणी द्वियजुः (इष्टका) । श० ७ । ५ । १ । ३५ ॥

श्रोत्रम् श्रोत्रं हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥

„ श्रोत्रं वै ब्रह्म श्रोत्रेण हि ब्रह्म शृणोति श्रोत्रे ब्रह्म प्रतिष्ठितम् ।
ऐ० २ । ४० ॥

„ श्रोत्रं वै सप्ताद् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । १२ ॥

„ श्रोत्रं वा अपांश्च सधिः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ५५ ॥

„ श्रोत्रं वै परं रजो दिशो वै श्रोत्रं दिशः परं रजः । श०
७ । ५ । २ । २० ॥

„ यत्तच्छ्रोत्रं दिश एव तत् । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥

„ तद्यत्तच्छ्रोत्रं दिशस्ताः । जै० ३० । १ । २८ । ६ ॥

„ श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिर्यदेनेन सर्वतः शृणोत्यथो यदस्मै
सर्वतो मित्रं भवति तस्माच्छ्रोत्रं विश्वामित्र ऋषिः (यजु०
१३ । ५७) । श० ८ । १ । २ । ६ ॥

„ श्रोत्रं विश्वे देवाः । श० ३ । २ । २ । १३ ॥

„ विश्वं हि श्रोत्रम् । श० ७ । ५ । २ । १२ ॥

„ यच्छ्रोत्रं स विष्णुः । गो० ३० । ४ । ११ ॥

„ वागिति श्रोत्रम् । जै० ३० । ४ । २२ । ११ ॥

„ श्रोत्रं पङ्क्तिः । श० १० । ३ । १ । १ ॥

„ श्रोत्रं वै सम्पच्छ्रोत्रं हीमे सर्वे वेदा अभिसम्पन्नाः । श० १४ ।
९ । २ । ४ ॥

श्रौतकक्षम् (साम) इन्द्राय मङ्गने सुतमिति श्रौतकक्षं क्षत्रसाम प्रक्षत्र-
मेवैतेन भवति । तां० ९ । २ । ७ ॥

श्लोकानुश्लोको श्लोकानुश्लोकाभ्यां (सामविशेषाभ्यां) हविर्दाने उप-
तिष्ठन्ते कीर्त्तिमेव तज्जयन्ति (श्लोकः=कीर्त्तिः=यशः ।
अमरकोशे कां० ३ । नानार्थवर्गे । श्लो० २) । तां०
५ । ४ । १० ॥

श्वः न श्वः श्वमुपासीत को हि मनुष्यस्य श्वो वेद । श० २।१।३।९॥
श्वा अनृतं स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत । श०
१४ । १ । १ । ३१ ॥

श्वान्नाः (यजु० १ । ३४) शिवा ह्यापस्तस्मादाह (हे आपो यूयं) श्वान्ना
स्थिति (श्वान्नाः=शिवाः) । श० ३ । ६ । ४ । १६ ॥

(ष)

षट्त्रिंशः (स्तोमः) “नाकः षट्त्रिंशः” इत्येतं शब्दं पश्यत ।

षट्पादः अग्निः षट्पादस्तस्य पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौराप ओषधिवनस्प-
तय इमानि भूतानि पादाः । गो० पू० २ । ९ ॥

षडङ्गानि (वेदानाम्) चत्वारो ऽस्यै (स्वाहायै) वेदाः शरीरं षडङ्गा-
न्यङ्गानि । ष० ४ । ७ ॥

„ तस्मात्कारणं ब्रूमो वर्णानामयमिदं भविष्यतीति षडङ्गविद-
स्तत्तथा ऽधीमहे । गो० पू० १ । २७ ॥

षडहः षडहो वा उ सर्वः संवत्सरः । कौ० १९ । १० ॥

षड्दोता तस्यै (ब्रह्मणे) षष्टं हृतः प्रत्यशृणोत् । स षड्दूतो ऽभवत्
षड्दूतो ह वै नामैषः । तं वा पतं षड्दूतं सन्तं षड्-
दोतेत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः । तै० २ ।
३ । ११ । २-३ ॥

„ घाता षड्दोता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥

„ घाता षड्दोत्रा । तै० २ । २ । ८ । ४ ॥

„ घाता षड्दोतृणां होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥

„ वाग्घोता षड्दोतृणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । २ ॥

„ पशुबन्धः षड्दोतुः (निदानम्) । तै० २ । २ । ११ ॥ ६ ॥

षष्ठमहः देवायतनं वै षष्ठमहः । कौ० २३ । ५ ॥

„ स्वर्गो वै लोकः षष्ठमहः । ऐ० ६ । २६, ३६ ॥ गो० उ०
६ । १६ ॥

- षष्ठमहः देवक्षेत्रं वा एतद्यत्षष्ठमहः । ऐ० ५ । ६ ॥
 ,, देवक्षेत्रं वै षष्ठमहः । गो० उ० ६ । १० ॥
 ,, सर्वदेवत्यं षष्ठमहः । कौ० २१ । ४ ॥
 ,, प्राजापत्यं वै षष्ठमहः । कौ० २३ । ८ ॥ २५ । ११, १५ ॥
 ,, पुरुष एव षष्ठमहः । कौ० २३ । ४ ॥
 ,, सर्वरूपं वै षष्ठमहः कौ० २१ । ४ ॥ २३ । ७ ॥
 ,, आतिच्छन्दसं वै षष्ठमहः । कौ० २३ । ६, ८ ॥ २६ । ५ ॥
 ,, अन्तः षष्ठमहः । कौ० २३ । ७ ॥ २६ । ८ ॥

षष्ठी चितिः स्वर्ग एव लोकः षष्ठी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १७ ॥

,, शिर एव षष्ठी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥

षोडशः (स्तोमः) हीना वा एते हीयन्ते ये व्रात्यां प्रवसन्ति न हि
 ब्रह्मचर्य्यञ्चरन्ति न कृषिन्न वाणिज्याश्च षोडशो वा एत-
 त्स्तोमः समाप्तुमर्हति । तां० १७ । १ । २ ॥

,, मरुत्स्तोमो वा एषः (षोडशः स्तोमः) । तां० १७ । १ । ३ ॥

षोडश कलाः षोडशकलं वै ब्रह्म । जै० उ० ३ । ३८ । ८ ॥

,, सच्चाऽसच्चाऽसच्च सच्च वाक् च मनश्च [मनश्च] वाक्
 च चक्षुश्च श्रोत्रं च श्रोत्रं च चक्षुश्च श्रद्धा च तपश्च तपश्च
 श्रद्धा च तानि षोडश ॥ षोडशकलम्ब्रह्म । जै० उ० ४ । ३५ ।
 १-२ ॥

,, षोडशकलः प्रजापतिः । श० ७ । २ । २ । १७ ॥

,, स (प्रजापतिः) हैवं षोडशधा ऽऽत्मानं विकृत्य सार्धं
 समैत् । जै० उ० १ । ४८ । ७ ॥

,, स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः । श० १४ । ४ ।
 ३ । २२ ॥

,, स (प्रजापतिः) षोडशधा ऽऽत्मानं व्यकुरुत (१) भद्रं
 च (२) समाप्तिश्च (३) ऽऽभूतिश्च (४) सम्भूतिश्च (५)
 भूतं च (६) सर्वं च (७) रूपं चा (८) ऽपरिमितं च (९)
 श्रीश्च (१०) यशश्च (११) नाम चा (१२) ऽग्रं च (१३)
 सजाताश्च (१४) पयश्च (१५) महीया च (१६) रसश्च ।
 जै० उ० १ । ४६ । २ ॥

षोडश कलाः तस्माऽ एतस्मै सप्तदशाय प्रजापतये । एतत्सप्तदशमङ्ग-

ॐ समस्कुर्वन्व्य एष सौम्योऽध्वरो ऽथ या अस्य ताः षोडश
कला एते ते षोडशऽत्विजः । श० १० । ४ । १ । १६ ॥

” तस्य (संवत्सरस्य प्रजापतेः) रात्रय एव पञ्चदश कला
ध्रुवैवास्य षोडशी कला । श० १४ । ४ । ३ । २२ ॥

” षोडशकलो वै चन्द्रमाः । ष० ४ । ६ ॥

” षोडशकलो वै पुरुषः । श० ११ । १ । ६ । ३६ ॥ तै० १ ।
७ । ५ । १ ॥

” यो वै कला मनुष्याणामक्षरं तद्देवानाम् ॥ तद्वै लोमेति
द्वेऽअक्षरे । त्वगिति द्वेऽअसृगिति द्वे मेद इति द्वे माॐ-
समिति द्वे स्नावेति द्वेऽअस्थीति द्वे मज्जेति द्वे ताः षो-
डश काला अथ य एतदन्तरेण प्राणः संचरति स एव
सप्तदशः प्रजापतिः । श० १० । ४ । १ । १७ ॥

” अष्टावेवास्य (प्रजापतेः) कलाः सावित्राण्यष्टौ वैश्वकर्म-
णान्यथ यदेतदन्तरेण कर्म क्रियते स एव सप्तदशः प्रजा-
पतिः । श० १० । ४ । १ । १६ ॥

” षोडशकला वै पशवः । श० १२ । ८ । ३ । १३ ॥ १३ ।
३ । ६ । ५ ॥

” षोडशकलाः पशवः (शिरो ग्रीवा मध्यदेहः पुच्छमिति च-
त्वार्यङ्गानि च चत्वारः पादाः अष्टौ शफा इत्येवं षोडश-
संख्याका इति सायणः) । तां० ३ । १२ । २ ॥ १६ । ६ । २ ॥

” षोडशकलं वा इदं सर्वम् । कौ० ८ । १ ॥ १६ । ४ ॥
१७ । १ ॥ २२ । ६ ॥ श० १३ । २ । २ । १३ ॥

षोडशी (यजु० १५ । ३) एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप्त्रैष्टुप्प्रमन्तरिक्षं चत-
स्रो दिशः एष एव वज्रः पञ्चदशस्तस्यासावेवादित्यः षोडशी
वज्रस्य भर्ता । श० ८ । ५ । १ । १० ॥

” असो वै षोडशी यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० १७ । १ ॥

” इन्द्रो इ वै षोडशी । श० ४ । ५ । ३ । १ ॥

” इन्द्रो हि षोडशी । श० ४ । २ । ५ । १४ ॥

” इन्द्र उ वै षोडशी । कौ० १७ । १ । ४ ॥

षोडशी (शस्त्रम्, स्तोत्रम्, ग्रहः) अथो षोडशं वा एतत्स्तोत्रं षोडशं
शस्त्रं तस्मात्षोडशीत्याख्यायते । कौ० १७ । १ ॥

„ षोडश स्तोत्राणां षोडश शस्त्राणां षोडशभिरक्षरैरादत्ते
षोडशभिः प्रणौति षोडशपदाभिविदं दधाति तत्षोडशिनः
षोडशित्वम् । ऐ० ४ । १ ॥

„ किं षोडशिनः षोडशित्वं षोडश स्तोत्राणि षोडश शस्त्राणि
षोडशभिरक्षरैरादत्ते । गो० उ० ४ । १९ ॥

„ वृषण्वद्वै षोडशिनो रूपम् । ऐ० ४ । ४ ॥

„ सर्वेभ्यो वा एष सवनेभ्यः सन्निर्मितो यत्षोडशी । ऐ० ४।४॥

„ सर्वेभ्यो वा एष छन्दोभ्यः सन्निर्मितो यत्षोडशी । ऐ० ४।३,४॥

„ सर्वेभ्यो वा एष लोकेभ्यः सन्निर्मितो यत् षोडशी । ऐ०४।४॥

„ त्रिवृद्धै षोडशी । कौ० १७ । ३ ॥

„ आनुष्टुभो वै षोडशी । कौ० १७ । २, ३ ॥

„ आनुष्टुभो वा एष वज्रो यत्षोडशी । कौ० १७ । १ ॥

„ वज्रो वा एष यत्षोडशी । ऐ० ४ । १ ॥

„ वज्रो वै षोडशी । तां० १२ । १३ । १४ ॥ १९ । ६ । ३ ॥ गो०
उ० २ । १३ ॥

„ वज्रः षोडशी । ष० ३ । ११ ॥

„ इन्द्रियं वीर्यैश्च षोडशी । तां० २१ । ५ । ६ ॥

„ वीर्यैश्च षोडशी । श० १२ । २ । २ । ७ ॥

„ अतिरिक्तो वै षोडशी । तां० ६ । १ । ५ ॥

„ अपच्छदिव वा एतद्यज्ञकाण्डं यत् षोडशी (साम) । तां०
१८ । ६ । २३ ॥

„ एकविंशायतनो वा एष यत् षोडशी सप्त हि प्रातःसवने
होत्रा वषट् कुर्वन्ति सप्त माध्यन्दिने सवने सप्त तृतीये
सवने । तां० १२ । १३ । ८ ॥

ष्टीवन्तौ षड्दिकच्छन्दो मरुतो देवता ष्टीवन्तौ : श० १० । ३ । २।१०॥

(स)

संस्कृति (साम) संस्कृति भवति सधुंस्कृत्यै । तां० १५ । ३ । २८ ॥

„ अहर्वा एतद्वलीयत तद्देवा देवस्थाने तिष्ठन्तः संस्कृतिना
समस्कृत्वास्तद् संस्कृतेः संस्कृतित्वम् । तां० १५ । ३ । ३९ ॥

[संवत्सरः

(५५८)

संक्रोशः (सामविशेषः) एतेन वा अङ्गिरसः संक्रोशमानाः स्वर्गं लोक-
मायन् स्वर्गस्य लोकस्यानुष्यात्यै स्वर्गाल्लोकान् च्यवते
नुष्टुवानः । तां० १२ । ३ । २३ ॥

संज्ञपनम् यत्पशुं संज्ञपयन्ति विशासति तत्तं प्रन्ति (पश्यत—ऐ०
२ । ६, ७ ॥ ७ । १ ॥ कौ० १० । ४, ५ ॥ गो० पू० ३ । १८ ॥

गो० उ० २ । १ ॥) । श० २ । २ । २ । १ ॥ ११ । १ । २ । १ ॥

” अथैतत्पशुं प्रन्ति यत्संज्ञपयन्ति यद्विशासति । श० ३ । ८ ।
२ । ४ ॥

” प्रन्ति वा एतत्पशुम् । यदेन संज्ञपयन्ति । श० १३ । २ ।
८ । २ ॥

संयच्छेदः (यजु० १५ । ५) रात्रिवै संयच्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

संयद्भुः (यजु० १५ । १८) यत्संयद्भुसुरित्याह यद्भुं हि संयन्तीतीदं
वस्विति । श० ८ । ६ । १ । १९ ॥

संयाज्ये प्रतिष्ठे वै संयाज्ये । कौ० ७ । ६ ॥

संवत्सरः स ऐश्वर्यं प्रजापतिः । सर्वं वाऽ अत्सारिषं य इमा देवता अस्-
क्षीति स सर्वत्सरो ऽभवत् सर्वत्सरो ह वै नामैतद्यत्संवत्सर
इति । श० ११ । १ । ६ । १२ ॥

” यः स भूतानां पतिः संवत्सरः सः । श० ६ । १ । ३ । ८ ॥

” संवत्सरो वै प्रजापतिः । श० २ । ३ । ३ । १८ ॥ ३ । २ । २ ।
४ ॥ ५ । १ । २ । ९ ॥

” संवत्सरो वै प्रजापतिरेकशतविधः । श० १० । २ । ६ । १ ॥

” संवत्सरः प्रजापतिः । ऐ० १ । १, १३, २८ ॥ २ । १७ ॥ तां०
१६ । ४ । १२ ॥ गो० उ० ३ । ८ ॥ ६ । १ ॥ तै० १ । ४ ।
१० । १० ॥

स (संवत्सरः) एव प्रजापतिस्तस्य मासा एव सहस्रीक्षिणः ।
तां० १० । ३ । ६ ॥

” स वै संवत्सर एव प्रजापतिः । श० १ । ६ । ३ । ३५ ॥

” प्रजापतिः संवत्सरः । ऐ० ४ । २५ ॥

” स एष प्रजापतिरेव संवत्सरः । कौ० ६ । १५ ॥

” संवत्सरो यद्भुः प्रजापतिः । श० १ । २ । ५ । १२ ॥ २ । २ ।
२ । ४ ॥

- संवत्सरः संवत्सरो वै यज्ञः प्रजापतिः । तस्यैत(द्) द्वारं यद्मावास्या
 चन्द्रमा एव द्वारपिधानः । श० ११ । १ । १ । १ ॥
- ॥ संवत्सरो यज्ञः । श० ११ । २ । ७ । १ ॥
- ॥ संवत्सरसंमितो वै यज्ञः पञ्च वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य तं
 पञ्चभिराप्नोति तस्मात्पञ्च जुहोति । श० ३ । १ । ४ । ५ ॥
- ॥ संवत्सरो वै पञ्चहोता । तै० २ । २ । ३ । ६ ॥
- ॥ संवत्सरो वाव होता । गो० उ० ६ । ६ ॥
- ॥ संवत्सरो वै होता । कौ० २९ । ८ ॥
- ॥ संवत्सरो वै धाता । तै० १ । ७ । २ । १ ॥
- ॥ पुरुषो वै संवत्सरः । श० १२ । २ । ४ । १ ॥
- ॥ पुरुषो वाव संवत्सरः । गो० पू० ५ । ३, ४ ॥
- ॥ प्राणो वै संवत्सरः । तां० ५ । १० । ३ ॥
- ॥ वाक् संवत्सरः । तां० १० । १२ । ७ ॥
- ॥ बृहती हि संवत्सरः । श० ६ । ४ । २ । १० ॥
- ॥ तदाहुस्संवत्सर एव सामेति । जै० उ० १ । ३५ । १ ॥
- ॥ संवत्सरः स्वगाकारः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥
- ॥ अग्निः संवत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥
- ॥ अग्निर्वाव संवत्सरः । तै० १ । ४ । १० । १ ॥
- ॥ संवत्सरो ऽग्निः । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥ ६ । ३ । २ । १० ॥
 ६ । ६ । १ । १४ ॥ तां० १० । १२ । ७ ॥
- ॥ संवत्सर एवाग्निः । श० १० । ४ । ५ । २ ॥
- ॥ संवत्सर एषो ऽग्निः । श० ६ । ७ । १ । १८ ॥
- ॥ संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः । तै० १ । ७ । २ । ५ ॥ श० ६ ।
 ६ । १ । २० ॥
- ॥ संवत्सरो ऽग्निर्वैश्वानरः । ऐ० ३ । ४१ ॥
- ॥ संवत्सरो वैश्वानरः । श० ५ । २ । ५ । १५ ॥ ६ । २ । १ ।
 ३६ ॥ ६ । ६ । १ । ५ ॥ ७ । ३ । १ । ३५ ॥ ९ । ३ । १ । १ ॥
- ॥ संवत्सरो वै वैश्वानरः । श० ४ । २ । ४ । ४ ॥ ५ । २ । ५ । १४ ॥
- ॥ संवत्सरो वै पिता वैश्वानरः प्रजापतिः । श० १ । ५ । १ । १६ ॥
- ॥ संवत्सरो वै सोमो राज्ञा (ऋ० ४ । ५३ । ७) । कौ० ७ । १० ॥

संवत्सरः संवत्सरो वै सोमः पितृमान् । तै० १।६।८।२॥ १।६।
९।५ ॥

- „ संवत्सरो वा इन्द्राशुनासीरः । तै० १।७।१।१ ॥
- „ इन्द्राय शुनासीराय (=संवत्सराय) पुरोडाशं द्वादश-
कपालं निर्वपति । तै० १।७।१।१ ॥
- „ संवत्सरो वै शुनासीरः । गो० उ० १।२६ ॥
- „ स यः स संवत्सरो ऽसौ स आदित्यः । श० १०।२।४।३ ॥
- „ एष वै संवत्सरो य एष (आदित्यः) तपति । श० १४।१।
१।२७ ॥
- „ एष वै मृत्युर्यत्संवत्सरः ! एष हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुः
क्षिणोत्यथ म्रियन्ते । श० १०।४।३।१ ॥
- „ संवत्सरो विश्वकर्मा । ऐ० ४।२२ ॥
- „ संवत्सरो बरुणः । श० ४।४।५।१८ ॥
- „ संवत्सरो हि बरुणः । श० ४।१।४।१० ॥
- „ व्योमा (यजु० १४।२३) हि संवत्सरः । श० ८।४।१।११ ॥
- „ सुमेकः संवत्सरः स्वेको ह वै नामैतद्यत्सुमेक इति । श०
१।७।२।२६ ॥
- „ संवत्सरो वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान्पुष्टिमान् । ऐ० २।३१ ॥
- „ संवत्सरो वै परिक्षित्, संवत्सरो हीमाः प्रजाः परिक्षेति, सं-
वत्सरं हीमाः प्रजाः परिक्षियन्ति । ऐ० ६।३२ ॥
- „ संवत्सरो वै परिक्षित् संवत्सरो हीदं सर्वं परिक्षियतीति ।
गो० उ० ६।१२ ॥
- „ संवत्सरो वै प्रवतः शश्वतीरपः । तां० ४।७।६ ॥
- „ संवत्सरो वज्रः । श० ३।६।४।१९ ॥
- „ संवत्सरो हि वज्रः । श० ३।४।४।१५ ॥
- „ संवत्सरो यजमानः । श० ११।२।७।३२ ॥
- „ अध्रातृव्या (प्रजापतेस्तनूविशेषः) तत्संवत्सरः । ऐ० ५।
२५ ॥ कौ० २७।५ ॥
- „ अग्निष्टोम उक्थ्यो ऽग्निर्ऋतुः प्रजापतिः संवत्सर इति । पते
ऽनुवाका यज्ञकृतनाञ्चर्तूनाञ्च संवत्सरस्य च नामधेयानि ।
तै० ३।१०।१०।४ ॥

- संवत्सरः संवत्सरो वै देवानां जन्म । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥
- „ संवत्सरः खलु वै देवानां पूः । तै० १ । ७ । ७ । ५ ॥
- „ तस्य (संवत्सरस्य) वन्त एव द्वारं^३ हेमन्तो द्वारं तं वाऽ
एतं^३ संवत्सरं^३ स्वर्गं लोकं प्रपद्यते । श० १ । ६ । १ । १६ ॥
- „ संवत्सरः सुवर्गो लोकः । तै० २ । २ । ३ । ६ ॥ ३ । ९ । २ ।
२ ॥ श० ८ । ४ । १ । २३ ॥ ८ । ६ । १ । ४ ॥ तां० १८ ।
२ । ४ ॥
- „ मध्ये ह संवत्सरस्य स्वर्गो लोकः । श० ६ । ७ । ४ । ११ ॥
- „ संवत्सरो वाव नाकः पटत्रिंशत्स्य चतुर्विंशतिरर्घ-
मासा द्वादश मासास्तद्यत्तमाह नाक इति न हि तत्र गताय
कस्मैचनार्कं भवति । श० ८ । ४ । १ । २३ ॥
- „ संवत्सरो वै देवानां गृहपतिः । तां० १० । ३ । ६ ॥
- „ एकं वा एतद्देवानामहः । यत्संवत्सरः । तै० ३ । ९ । २२ । १ ॥
- „ सद्यो वै देवानां^३ संवत्सरः । तां० १६ । ६ । ११ ॥
- „ इमऽ उ लोकाः संवत्सरः । श० ८ । २ । १ । १७ ॥
- „ सर्वे वै संवत्सरः । श० १ । ६ । १ । १६ ॥ १ । ७ । २ । २४ ॥
४ । २ । २ । ७ ॥ १० । २ । ५ । १६ ॥ ११ । १ । २ । १२ ॥
- „ संवत्सर इदं सर्वम् । श० ८ । ७ । १ । १ ॥
- „ संवत्सरो वाऽ ऋतव्याः (इष्टकाः) । श० ८ । ६ । १ । ४ ॥
८ । ७ । १ । १ ॥
- „ ऋतवः संवत्सरः । तै० ३ । ९ । ९ । १ ॥
- „ ऋषभो वा एष ऋतूनाम् । यत्संवत्सरः । तस्य त्रयोदशो
मासो विष्टपम् । तै० ३ । ८ । ३ । ३ ॥
- „ त्रयो वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य । श० ३ । ४ । ४ । १७ ॥ ११ ।
५ । ४ । ११ ॥
- „ त्रेधा विहितो वै संवत्सरः । कौ० १६ । ३ ॥
- „ पञ्चऽर्तवः संवत्सरस्य । श० १ । ५ । २ । १६ ॥ ३ । १ ।
४ । २० ॥
- „ षड्वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य । श० १ । २ । ५ । १२ ॥
- „ सप्तऽर्तवः संवत्सरः । श० ६ । ६ । १ । १४ ॥ ७ । ३ । ० ।
९ ॥ ९ । १ । १ । २६ ॥

संवत्सरः द्वादश वा वै त्रयोदश वा संवत्सरस्य मासाः । श० २ । १ ।

३ । २७ ॥ श० ५ । ४ । ५ । २३ ॥

„ संवत्सरस्य प्रतिमा वै द्वादश रात्रयः । तै० १ । १ । ६ । ७ ॥
१ । १ । ६ । १० ॥

„ त्रयोदश वै मासाः संवत्सरस्य । श० ३ । ६ । ४ । २४ ॥

„ एतावन्वै संवत्सरो यदेष त्रयोदशो मासस्तदत्रैव सर्वः
संवत्सर आप्तो भवति । कौ० १९ । २ ॥

„ एतावान्वै संवत्सरो यदेष त्रयोदशो मासस्तदत्रैव सर्वः
संवत्सर आप्तो भवति । कौ० ५ । ८ ॥

„ स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः । श० १४ । ४ ।
३ । २२ ॥

„ संवत्सराः सप्तदशः । तां० ६ । २ । २ ॥

„ सप्तदशो वै संवत्सरो द्वादश मासाः पञ्चर्तवः । श० ६ ।
२ । २ । ८ ॥

„ संवत्सर एव सप्तदशस्यायतनं द्वादश मासाः पञ्चर्तव एतदेव
सप्तदशस्यायतनम् । तां० १० । १ । ७ ॥

„ द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य पञ्चर्तव एष एव प्रजापतिः
सप्तदशः । श० १ । ३ । ५ । १० ॥

„ सप्तदशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पंचर्तवो हेमन्तशिशिरयोः
समासेन तावान्तसंवत्सरः, संवत्सरः प्रजापतिः । ऐ० १ । १ ॥

„ संवत्सरो वाव प्रतूर्तिरष्टादशः (यजु० १४ । २३) तस्य द्वादश
मासाः पञ्चर्तवः संवत्सर एव प्रतूर्तिरष्टादशस्तद्यत्तमाह
प्रतूर्तिरिति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि प्रतिरति । श०
८ । ४ । १ । १३ ॥

„ संवत्सरो वाव तपो नवदशः (यजु० १४ । २३ ॥) तस्य द्वा-
दशमासाः षड् ऋतवः संवत्सर एव तपो नवदशस्तद्यत्तमाह
तप इति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि तपति । श० ८ । ४ ।
१ । १४ ॥

„ संवत्सरो वाव वर्चो द्वाविंशतिः (यजु० १४ । २३) तस्य
द्वादशमासाः सप्तर्तवो द्वेऽअहोरात्रे संवत्सर एव वर्चो

द्वाविंशस्तयत्तमाह वर्ष इति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानां
वर्चस्वितमः । श० ८ । ४ । १ । १६ ॥

- संवत्सरः संवत्सरो वाव सम्भरणस्त्रयोविंशः (यजु० १४ । २३)
तस्य त्रयोदश मासाः सप्तऽर्तवो द्वेऽअहोरात्रे संवत्सर एव
सम्भरणस्त्रयोविंशस्तयत्तमाह सम्भरण इति संवत्सरो
हि सर्वाणि भूतानि हम्भृतः । श० ८ । ४ । १ । १७ ॥
- ” चतुर्विंशो वै संवत्सरः । तां० ४ । १० । ५ ॥
- ” चतुर्विंशत्यर्धमासो वै संवत्सरः । ऐ० ८ । ४ ॥
- ” संवत्सरो वाव गर्भाः पञ्चविंशस्तस्य चतुर्विंशतिरर्धमा-
साः संवत्सर एव गर्भाः पञ्चविंशः । श० ८ । ४ । १ । १६ ॥
- ” संवत्सरो वाव 'प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशः' (यजु० १४ । २३)
तस्य चतुर्विंशतिरर्धमासाः षड् ऋतवो द्वेऽअहोरात्रे संव-
त्सर एव प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशस्तयत्तमाह प्रतिष्ठेति संवत्सरो
हि सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा । श० ८ । ४ । १ । २२ ॥
- ” संवत्सरो वाव ब्रह्मस्य विष्टये चतुस्त्रिंशस्तस्य चतुर्विंश-
शतिरर्धमासाः सप्तऽर्तवो द्वे अहोरात्रे संवत्सर एव ब्रह्मस्य
विष्टये चतुस्त्रिंशः (यजु० १४ । २३) । श० ८ । ४ । १ । २३ ॥
- ” संवत्सरो वाव विवर्तो ऽष्टाचत्वारिंशतः (यजु० १४ । २३)
षड्विंशतिरर्धमासास्त्रयोदश मासाः सप्तऽर्तवो द्वे अहोरात्रे
तयत्तमाह विवर्त्त इति संवत्सराद्धि सर्वाणि भूतानि विव-
र्तन्ते । श० ८ । ४ । १ । २५ ॥
- ” त्रीणि वै षष्टि शतानि संवत्सरस्याहाम् । कौ० ११ । ७ ॥
- ” त्रीणि च ह वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्याहोरात्राणि । मो०
पू० ५ । ५ ॥
- ” एतावान् वै संवत्सरो यदहोरात्रे । कौ० १५ । ५ ॥
- ” विरूपः (=नानारूपः) संवत्सरः । तां० १४ । ९ । ८ ॥
- ” यस्मादेशा समाना सती षडहविमाकर्नानारूपा तस्माद्विरूपः
संवत्सरः । तां० १० । ६ । ७ ॥
- ” षडहो वा उ सर्वः संवत्सरः । कौ० १९ । १० ॥
- ” नवाहो वै संवत्सरस्य प्रतिमा । ष० ३ । १२ ॥

- संवत्सरः संवत्सरस्य प्रतिमां यां (एकाष्टकारूपां) त्वां रात्रिं यजा-
महे । मं० २ । २ । १८ ॥
- .. संवत्सरस्य या पत्नी (एकाष्टकारूपा) सा नो अस्तु सु-
मङ्गली (अथर्व० ३ । १० । २) । मं० २ । २ । १६ ॥
- .. एषा वै संवत्सरस्य पत्नी यदेकाष्टका । तां० ५ । ९ । २ ॥
- .. मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यत्फाल्गुनी पौर्णमासी । कौ० ४ ।
४ ॥ १ । १ ॥ तां० ५ । ९ । ८ ॥ गो० ३० १ । १९ ॥
- .. मुखं (संवत्सरस्य) उत्तरे फल्गुन्यां पुच्छं पूर्वं । गो० ३०
१ । १९ ॥
- .. एषा ह संवत्सरस्य प्रथमा रात्रिर्यत्फाल्गुनी पौर्णमासी ।
श० ६ । २ । २ । १८ ॥
- .. एषा वै प्रथमा रात्रिः संवत्सरस्य यदुत्तरे फल्गुनी । तै० १ ।
१ । २ । ९ ॥
- .. एषा वै जघन्या रात्रिः संवत्सरस्य यत्पूर्वं फल्गुनी । तै० १ ।
१ । २ । ९ ॥
- .. किं नु ते मयि (संवत्सरे) इति । अयम् आत्मा । स
(आत्मा) मे त्वयि (संवत्सरे) । जै० ३० ३ । २४ । ८ ॥
- .. आत्मा वा एष संवत्सरस्य यद्विषुवान् । तां० ४ । ७ । १ ॥
- .. आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवानङ्गानि पक्षौ (=दक्षिणः पक्ष
उत्तरः पक्षश्च) । गो० पू० ४ । १८ ॥
- .. आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवानङ्गानि मासाः । श० १२ ।
२ । ३ । ६ ॥
- .. अथ ह वाऽ एष महासुपर्ण एव यत्संवत्सरः । तस्य यान्पु-
रस्ताद्विषुवतः षण्मासानुपयन्ति सोऽन्यतरः पक्षौ ऽथ
यान्पुहपरिष्ठात्सोऽन्यतर आत्मा विषुवान् । श० १२ । २ ।
३ । ७ ॥
- .. संवत्सरो वै व्रतं तस्य वसन्त ऋतुर्मुखं ग्रीष्मश्च वर्षाश्च
पक्षौ शरन्मध्यं हेमन्तः पुच्छम् । तां० २२ । १५ । २ ॥
- .. तस्य (संवत्सरस्य) वसन्तः शिरः । तै० ३ । ११ । १० । २ ॥
- .. वर्षा उत्तरः (पक्षः संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ३ ॥

- संवत्सरः वर्षा पुच्छम् (संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ४ ॥
- .. संवत्सरं संवत्सरो वै रेतः सिकं जायते । ऐ० ४ । १४ ॥
- .. संवत्सरं संवत्सरो वै रेतःसिक्तिर्जायते । कौ० १९ । ९ ॥
- .. संवत्सरो वै प्रजननम् गो० पू० २ । १९ ॥
- .. संवत्सरं हि प्रजाः पशवोऽनुपजायन्ते । तां० १० । १ । ९ ॥
- .. तस्माद्दु संवत्सरऽ एव स्त्री वा गौर्वी वडवा वा त्वजायते । श० ११ । १ । ६ । २ ॥
- .. संवत्सरऽ एव कुमारो व्याजिद्वीषेति । श० ११ । १ । ६ । ३ ॥
- .. तस्मात्संवत्सरांशलायां प्रजाः (=शिशवः) वानं प्रवदन्ति । श० ७ । ४ । २ । ३८ ॥
- .. चक्षुर्वा एतत्संवत्सरस्य यच्चित्रापूर्णमामः । तां० ४ । ९ । ११ ॥
- .. प्रजापतेर्ह वै प्रजाः संसृजनस्य पर्वणि विसस्रं सुः । स वै संवत्सरऽ एव प्रजापतिस्तस्यैतानि पर्वण्यहोरात्रयोः सन्धी पौर्णमासी चामावास्या चर्तुमुखानि । श० १ । ६ । ३ । ३५ ॥
- .. संवत्सरोऽसि नक्षत्रेषु श्रितः । ऋतूनां प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १४ ॥
- .. (नक्षत्राणि) संवत्सरस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १३ ॥
- .. तस्माद्दुः संवत्सरः सर्वे कामा इति । श० १० । २ । ४ । १ ॥
- .. संवत्सरो वै सर्वस्य ज्ञान्तिः । तां० ६ । ८ । १३ ॥
- संवेश उपवेशः छन्दांसि वै संवेश उपवेशः । तै० १ । ४ । ६ । ४ ॥
- संशानानि (सामानि) अथ यस्मात्संशानानि नाम । एतैर्वै सामभिर्देवा इन्द्रमिन्द्रियाय वीर्याय समश्यन् । श० १२ । ८ । ३ । २६ ॥
- .. अथ कस्मात्संशानानि नाम एतैर्वै सामभिर्देवा इन्द्रमिन्द्रियेण वीर्येण समश्यन् । गो० उ० ५ । ७ ॥
- संख्यः (देवताः, हवीषि) वरुणस्य सुबुवाणस्य दशधेन्द्र्यं वीर्यं परापतत् । तत्संख्यं सुन्द्रिरनुसमसर्पत् । तत्संख्यं सुपां संख्यं सुखम् । तै० १ । ८ । १ । २ ॥
- .. तद्यदनमतभिर्देवताभिरनुसमसर्पत् । तस्मात्संख्यो नाम । श० ५ । ५ । ५ । ३ ॥

(सजाताः

(५६६)

संस्कारः यस्य (ब्राह्मणस्य) गर्भाधानपुंसवनसमीपन्तोनयनजातकर्म-
नामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनप्लव-
नाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनि कृतानि भवन्ति स सान्तपतः ।
शा० पू० ३ । २३ ।

संस्तुच्छन्मः (यजु० १५ । ५) वागेव संस्तुच्छन्दः । श० ८ ।
५ । २ । ५ ॥

संस्थाः यास्मत् संस्था या एवैतास्सप्त होत्राः प्राचीर्विषदूर्कर्वन्ति ता
एव ताः । जै० उ० १ । २१ । ४ ॥

संस्थितयजूषि (देवाः) यत्समस्यापयंस्तस्मात्संस्थितयजूषि । श०
६ । ५ । १ । २९ ॥

संस्त्रवभागाः वसवो वै रुद्रा आदित्या सांस्त्रवभागाः ('संस्त्रव-
भागाः'—यजु० २ । १८ ॥ विहीनमाज्यं संस्त्रव इति मही-
धरः) तै० ३ । ३ । ९ । ७ ॥

संहितः (यजु० १८ । ३०) असौ वा आदित्यः संहित एष ह्यहो-
रात्रे संदधति । श० ९ । ४ । १ । ८ ॥

संहितम् (साम) तद्देवाः संहितेन समदधुर्यत्समदधुस्तस्मात्संहि-
तम् । तां ८ । ४ । ९ ॥

„ संहितं भवति ह्यक्षरणिधनं प्रतिष्ठायै प्रतिष्ठायैव सत्र-
मासते । तां ११ । ५ । ४ ॥

„ संहितं भवति ह्यक्षरणिधनं प्रतिष्ठायै । तां १५ । ११ । ३ ॥

सक्तवः देवानां वऽ एतद्रूपं यत्सक्तवः । श० १३ । २ । १ । ३ ॥

„ प्रजापतेर्वा एतद्रूपम् । यत्सक्तवः । तै० ३ । ८ । १४ । ५ ॥

सखा सखायः सप्तपदा अभूम । तै० ३ । ७ । ७ । ११ ॥

सखा भक्षः प्राणो वै सखा भक्षः । श० १ । ८ । १ । २३ ॥

सगरा सगरा रात्रिः (सगरः=ऋतुविशेषः—तैत्तिरीयसंहितार्यां ४ ।
४ । ७ । २ ॥ ५ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्ये ऽपि) । श० १ ।
७ । २ । २६ ॥

सङ्गवः (काकविशेषः) मित्रस्य सङ्गवः । तै० १ । ५ । ३ । १ ॥

सजाताः (= 'ज्ञातयः' इति सायणः ॥ यजु० १ । १७) भूमा वै सजाताः ।
श० १ । २ । १ । ७ ॥

सजाताः प्राणा वै सजाताः प्राणैर्हि सह जायते । श० १ । ६ ।
१ । १५ ॥

सजुः (यजु० १४ । ७) अथैतद्यजमान एनाभिर्देवताभिः (ऋत्वा-
दिभिः) सयुग्भूत्वैताः प्रजाः प्रजनयति तस्माद्दु सर्वास्वेव सजुः
सजूरित्यनुवर्तते । श० ८ । २ । २ । ७ ॥

सञ्जयम् (साम) ते देवा असुरान् सञ्जयेन समजयन् यत्समजयञ्छ-
स्तस्मात्सञ्जयम्पशूनामवरुध्यै सञ्जयं क्रियते । तां० १३
६ । ७ ॥

सत् तयोः (सदसतोः) यत् सत् तन्नाम तन्मनस्स प्राणः । जै०
उ० १ । ५३ । २ ॥

„ सदमृतम् । श० १४ । ४ । १ । ३१ ॥

सतश्च योनिरसतश्च (यजु० १३ । ३) इमे वै लोकाः सतश्च योनिरसतश्च
यच्च ह्यस्ति यच्च न तदेभ्य एव लोकेभ्यो जायते ।
श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

सतोबृहती शिथिलमिव वा एतच्छन्दो यत्सतोबृहती । तां० १४ । १० । ३ ॥

„ शिथिलमिव वा एतत् छन्दश्चराचरं यत् सतोबृहती ।
तां० १७ । १ । १२ ॥

„ सतोबृहत्या वै देवा इमान् लोकान् व्याप्नुवन्निमानेवैता-
भिर्लोकान् व्याप्नोति । तां० १६ । ११ । ९ ॥

„ प्राणाः सतोबृहती । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

„ पशवः सतोबृहती । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

„ प्रजाः सतोबृहती । गो० उ० ६ । ८ ॥

सत्पतिश्चेकितानः (यजु० ११ । ५१) सत्पतिश्चेकितान इत्ययमग्निः
सतां पतिश्चेतयमान इत्येतत् । श० ८ । ६ ।
३ । २० ॥

सत्यम् तदेतत्त्रयक्षरं सत्यमिति स इत्यकमक्षरं तीत्येकमक्षरम-
त्येकमक्षरं प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतोऽनृतम् । श० १४ ।
५ । ६ । २ ॥

„ तद्यत्तत्सत्यम् । त्रयी सा विद्या । श० ९ । ५ । १ । १८ ॥

„ सत्यं वा ऋतम् । श० ७ । ३ । १ । २३ ॥ १४ । ३ । १) १८ ॥
तै० ३ । ५ । ३ । ४ ॥

सत्यम् ऋतमिति (यजु० १२।१४) सत्यमित्येतत् । श० ६।७।

३।११ ॥

„ यो वै धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति
धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति । श० १४।४।२।२६ ॥

„ सत्यं वै सुकृतस्य लोकः । तं० ३।३।६।११ ॥

„ एतत्सत्तु वै व्रतस्य रूपं यत्सत्यम् । श० १२।८।२।४ ॥

„ एकं ह वै देवा व्रतं चरन्ति सत्यमेव । श० ३।४।२।८ ॥

„ एकं ह वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्माद्दु सत्यमेव वदेत् ।
श० १४।१।१।३३ ॥

„ सत्यसंहिता वै देवाः । ऐ० १।६ ॥

„ सत्यमया उ देवाः । कौ० २।८ ॥

„ सत्यमेव देवा अनुतं मनुष्याः । श० १।१।१।४ ॥ १।१।
२।१७ ॥ ३।३।२।२ ॥ ३।६।४।१ ॥

„ एवं ह वाऽ अस्य जितमनपजयमेवं यशो भवति य एवं
विद्वान्तसत्यं वदति । श० ३।४।२।५ ॥

„ स यः सत्यं वदति यथाग्निं समिद्धं घृतेनाभिषिञ्चेद्देवं है-
नं स उद्दीपयति तस्य भूयो भूय एव तेजो भवति श्वः श्वः
श्रेयान्भवत्यथ यो ऽनृतं वदात् यथाग्निं समिद्धं तमुदकेना-
भिषिञ्चेद्देवं हैनं स जासयति तस्य कनायः कनीय एव
तेजो भवति श्वः श्वः पापीयान्भवति तस्माद्दु सत्यमेव वदेत् ।
श० २।२।२।१९ ॥

„ तस्माद्दु हैतद्य आसक्ति सत्यं वदत्यैषावीरतर-इवैव भवत्य-
नाख्यतर-इव स ह त्वेवान्ततो भवति देवा ह्येवान्ततो भवन् ।
श० ९।५।१।१६ ॥

„ (उद्दालकः) तस्मै (प्राचीनयोग्याय) हैतां शोकतरां व्याहृ-
तिमुवाच यत्सत्यं तस्माद्दु सत्यमेव वदेत् । श० ११।५।३।
१३ ॥

„ स यः सत्यं वदति स दीक्षितः । कौ० ७।३ ॥

„ सत्ये होव दीक्षा प्रतिष्ठिता भवति । श० १४।६।९।२४ ॥

„ तस्यै वाचः सत्यमेव ब्रह्म । श० २।१।४।१० ॥

- सत्यम् सत्यं ब्रह्म । श० १४ । ८ । ५ । १ ॥
- ” सत्यं ब्रह्मणि (प्रतिष्ठितम्) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥
- ” आपः सत्यं (प्रतिष्ठिताः) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥
- ” तद्यत्तत्सत्यम् आप एव तदापो हि वै सत्यम् । श० ७ । ४ । १ । ६ ॥
- ” सत्यं वा एतत् । यद्ब्रूषति । तै० १ । ७ । ५ । ३ ॥
- ” असावादित्यः सत्यम् । तै० २ । १ । ११ । १ ॥
- ” तद्यत्सत्यम् । असौ स आदित्यः । श० ६ । ७ । १ । २ ॥
- ” तद्यन्नत्सत्यम् । असौ स आदित्यो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः । श० १४ । ८ । ६ । ३ ॥
- ” सत्यमेष य द्ष (आदित्यः) तपति । श० १४ । १ । २ । २२ ॥
- ” (यजु० ११ । ४७) अयं वाऽ अग्निर्ऋतमसावादित्यः सत्यं यदि वासो (आदित्यः) ऋतमयश्च (अग्निः) सत्यमुभयम्वेतदयमग्निः । श० ६ । ४ । ४ । १० ॥
- ” सत्यं वै शुक्रम् । श० ३ । ६ । ३ । २५ ॥
- ” सत्यं वै हिरण्यम् । गो० उ० ३ । १७ ॥
- ” प्राणा वै सत्यम् । श० १४ । ५ । १ । २३ ॥
- ” चक्षुर्वै सत्यम् । तै० ३ । ३ । ५ । २ ॥
- ” एतद्वै मनुष्येषु सत्यं यच्चक्षुः । गो० उ० २ । २३ ॥
- ” इयं (पृथिवी) एव सत्यमियश्च ह्यवैषां लोकानामद्वातमाम् । श० ७ । ४ । १ । ८ ॥
- ” नामरूपे सत्यम् । श० १४ । ४ । ४ । ३ ॥
- ” श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः । ऐ० ७ । १० ॥
- ” सत्यश्च ह होतैषामासीत् यद्विश्वसृज आसत् । तै० ३ । १२ । ९ । ३ ॥
- सत्याचर्षणीधृदनर्वा (ऋ० ४ । १७ । २०) इयं (पृथिवी) वै सत्याचर्षणीधृदनर्वा । ऐ० ३ । ३८ ॥
- सत्यानृते वाचो वा एतौ स्तनौ, सत्यानृते वाच ते (द्वे अक्षरे) । गो० उ० ४ । १९ ॥
- सत्याशीः साम हि सत्याशीः । तां० ११ । १० । १० ॥ १३ । १२ । ७ ॥ १५ । ५ । १३ ॥

[सदस्यः

(५७०)

सत्रम् आत्मदक्षिणं वै सत्रम् । कौ० १५ । १ ॥

„ आत्मदक्षिणं वा एतद्यत्सत्रम् । तां० ४ । ९ । १९ ॥

„ सर्वान् लोकानहीनेन । अथो सत्रेण (अभिजयति) । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

सत्रासाहीयम् (साम) यद्वा असुराणामसोढमासीत्तद्देवाः सत्रासाही-
येनासहन्त सत्रैतानसक्ष्महीति तत्सत्रासाहीयस्य सत्रा-
साहायत्वम् । तां० १२ । ९ । २१ ॥

„ सत्रा भ्रातृव्यं सहते सत्रासाहीयेन तुष्टुवानः । तां०
१२ । ६ । १२ ॥

सत्वन्तः (बहुवचने) शतानीकः समन्तासु मेध्यं सान्नाजितो ह्यम् ।
आदत्त यज्ञं काशीनां भरतः सत्वतामिवेति । श० १३ । ५ ।
४ । २१ ॥

„ तस्माद्धाप्येतर्हि भरताः सत्वनां (? सत्वतां) वित्तिं प्रयन्ति
तुरीये ह्यैव संग्रहीतारो वदन्ते । ऐ० २ । २५ ॥

„ तस्मादेतस्यां दक्षिणस्यां दिशि ये के च सत्वतां राजानो
भोज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते भोजेत्येनानभिषिकानाचक्षते ।
ऐ० ८ । १४ ॥

सदः यदस्मिन्निवश्वे देवा असीदंस्तस्मात्सदो नाम तऽऽपवास्मिन्नेते
राहणा विश्वगोत्राः सीदन्ति । श० ३ । ५ । ३ । ५ ॥ ३ । ६ ।
१ । १ ॥

„ उदरं वै सदः । कौ० ११ । ८ ॥

„ उदरमेवास्य (यज्ञस्य) सदः । श० ३ । ५ । ३ । ५ ॥

„ (पुरुषस्य) उदरं सदः । कौ० १७ । ७ ॥

„ प्रजापतेर्वा एतदुदरं यत्सदः । तां० ६ । ४ । ११ ॥

„ तस्मात्सदस्यृकसामाभ्यां कुर्वन्त्येन्द्रं हि सदः । श० ४ । ६ ।
७ । ३ ॥

„ ऐन्द्रं हि सदः । श० ३ । ६ । १ । २२ ॥

„ तस्मादुद्रीचीनवशं सदो भवति । श० ३ । ६ । १ । २३ ॥

„ तस्य पृथिवी सदः । तै० २ । १ । ५ । १ ॥

सदस्यः (पुरुषस्य) प्रजातिः सदस्यः । कौ० १७ । ७ ॥

„ (पुरुषस्य) प्रजापतिः (? प्रजातिः) सदस्यः । गो० ३० । ५ । ४ ॥

सदस्यः सदस्या ऋतवो ऽभवन् । तै० ३ । १२ । ६ । ४ ॥

सदानीरा (नदी) सैषा (सदानीरा) अप्येतर्हि कोसलविदेहानां
मर्यादा । श० १ । ४ । १ । १७ ॥

सदोविशीयम् (ब्रह्मसाम) पशवः सदोविशीयम् । तां० १८ । ४ । ६ ॥

सद्यःक्रीः (एकाहः सामयोगः) तऽ एतेन सद्यःक्रियाङ्गिरस आदित्यान-
याजयन् । श० ३ । ५ । १ । १७ ॥

„ अस्माभिः (अङ्गिरोभिः) एष प्रतिगृहीतो य एष (सूर्यः)
तपतीति तस्मात्सद्यःक्रियो ऽश्वः श्वतो दक्षिणा । श० ३ ।
५ । १ । १६ ॥

सधमादः (यजु० १० । ७) अनतिमानिन्य इत्येवैतदाह यदाह सधमाद
इति । श० ५ । ३ । ५ । १९ ॥

सधस्यः (यजु० १८ । ५९) स्वर्गो वै लोकः सधस्यः । श० ६ । ५ ।
१ । ४६ ॥

सनातनः पृणक्षि सानासि क्रतुम् (यजु० १२ । १०९) इति पृणक्षि
सनातनं क्रतुमित्येतत् । श० ७ । ३ । १ । ३२ ॥

सन्धिः (स्तोत्रम्) एषा वा उक्थस्य सम्मा यद्वात्रिः (=सन्धिस्तो-
त्रम्), त्रीण्युक्तानि । (अग्निरुषा अश्विनाविति) त्रिदेवत्यः
सन्धिः । तां० ९ । १ । २५-२६ ॥

सन्ध्योपासनम् यत्सायञ्च प्रातश्च सन्ध्यामुपास्ते..... । ष० ४ । ५ ॥

„ तस्माद् ब्राह्मणो ऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते स
ज्योतिष्याज्योतिषो दर्शनात् सो ऽस्याः कालः । ष०
४ । ५ ॥

„ ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्माद् ब्राह्मणः सायमासीनः
सन्ध्यामुपास्ते कस्मात्प्रातस्तिष्ठन् । ष० ४ । ५ ॥

„ अथ (सन्ध्यायां) यदपः प्रयुङ्क्ते ता विप्रुषो वज्री-
भवन्ति ता विप्रुषा वज्रीभूत्वा ऽसुरानपाग्नन्ति ।
ष० ४ । ५ ॥

सपत्नः इमं देवाः । असपत्नश्च सुवध्वमितीमं देवा अभ्रातृव्यं सुव-
ध्वमित्येवैतदाह । श० ५ । ४ । २ । ३ ॥

„ पापमा वै सपत्नः । श० ८ । ५ । १ । ६ ॥

सपत्नः सपत्नो वाऽ अभिमातिः (यजुः १। ३७ ॥ ३८। ८ ॥) : श०
३। १। ४। १० ॥ ५। २। ४। १६ ॥ १४। २। २। ८ ॥

सप्तदशः (स्तोमः) प्रजापतिर्वै सप्तदशः । गो० उ० २। १३ ॥ ५।
८ ॥ तै० १। ५। १०। ६ ॥ तां० २। १०। ५ ॥ १७। १। ४ ॥

” सप्तदशः प्रजापतिः । तै० १। ३। ३। २ ॥

” सप्तदशो वै प्रजापतिः । ऐ० १। १६ ॥ ४। २६ ॥ कौ० ८।
२ ॥ १०। ६ ॥ १६। ४ ॥ श० १। ५। २। १७ ॥ ५। १। २।
११ ॥ गो० उ० १। १९ ॥

” सप्तदशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पञ्चर्तवो हेमन्तशिशिरयोः
समासेन तावान् संवत्सरः संवत्सरः प्रजापतिः । ऐ० १। १ ॥

” द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य पञ्चर्तव एष एव प्रजापतिः
सप्तदशः । श० १। ३। ५। १० ॥

” संवत्सर एव सप्तदशस्यायतनं द्वादश मासाः पञ्चर्तव एत-
देव सप्तदशस्यायतनम् । तां० १०। १। ७ ॥

” सप्तदशो वै संवत्सरो द्वादश मासाः पञ्चर्तवः । श० ६।
२। २। ८ ॥

” संवत्सरः सप्तदशः । तां० ६। २। २ ॥

” तस्माऽ एतस्मै सप्तदशाय प्रजापतये । एतत्सप्तदशमन्नं^{१३}
समस्कुर्वन्त्य एष सौम्योध्वरो ऽथ या अस्य ताः षोडश
कला एते ते षोडशत्विजः । श० १०। ४। १। १६ ॥

” तद्वै लोमेति द्वेऽअक्षरे । त्वगिति द्वेऽअसृगिति द्वे मेद इति
द्वे मा^{१४}समिति द्वे स्नावेति द्वेऽअस्थीति द्वे मज्जेति द्वे
ताः षोडश कला अथ य एतदन्तरेण प्राणः सञ्चरति
स एव सप्तदशः प्रजापतिः । श० १०। ४। १। १७ ॥

” अन्नं वै सप्तदशः । तां० २। ७। ७ ॥ १७। ६। २ ॥ १९।
११। ४ ॥ २०। १०। १ ॥ २५। ६। ३ ॥

” सप्तदशं^{१५} ह्यन्नम् । श० ८। ४। ४। ७ ॥

” प्रजातिः सप्तदशः । ऐ० ८। ४ ॥

” तं (सप्तदशस्तोमं) उ प्रजातिरित्याहुः । तां० १०। १। ९ ॥

” सप्तदश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रजात्यै । तां० १२।
६। १३ ॥

- सप्तदशः विद् सप्तदशः । तां० १८ । १० । ९ ॥
- “ विद् वै सप्तदशः । तां० २ । ७ । ५ ॥ २ । १० । ४ ॥
- “ विशः सप्तदशः । ऐ० ८ । ४ ॥
- “ पशवो वै सप्तदशः । तां० १६ । १० । ७ ॥
- “ तान् (पशून्) विश्वे देवाः सप्तदशेन स्तोमेन नाप्नुवन् ।
तै० २ । ७ । १४ । २ ॥
- “ सप्तदशो वै पुरुषो दश प्राणाश्चत्वार्यङ्गान्यात्मा पञ्चदशो
श्रीवाः षोडशयः शिरः सप्तदशम् । श० ६ । २ । २ । ९ ॥
- “ उरः सप्तदशः । अष्टावन्ये जत्रवो ऽष्टावन्यऽ उरः सप्तदशम् ।
श० १२ । २ । ४ । ११ ॥
- “ वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतं वैरूपेण विशौ-
जसा । तै० २ । ६ । १६ । १—२ ॥
- “ गायत्रः सप्तदशस्तोमः । तां० ५ । १ । १५ ॥
- “ उदरं वा एषः स्तोमानां यत्सप्तदशः । तां० ४ । ५ । १५ ॥
- “ राष्ट्रं सप्तदशः । तै० १ । ८ । ८ । ५ ॥
- “ सप्तदशः (स्तोमः) एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- “ यत् सप्तदशो यदेवास्य (यजमानस्य) मध्यतो ऽपूतं तत्ते-
नापहन्ति । तां० १७ । ५ । ६ ॥
- “ सर्वः सप्तदशो भवति । तां० १७ । ९ । ४ ॥
- सप्तधाम प्रियाणि (यजु० १७ । ७९) छन्दाँसि वाऽ अस्य सप्त धाम
प्रियाणि । श० २ । ३ । ४४ ॥
- सप्तममहः ततिरेव सप्तममहः । कौ० २६ । ८ ॥
- “ चतुर्विंशत् सप्तममहः । तां० १० । ५ । ४ ॥
- सप्तमी चितिः अमृतमेव सप्तमी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १८ ॥
- “ प्राणा एव सप्तमी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥
- सप्त योनयः (अग्नेः, यजु० १७ । ७९) सप्त योनीरिति चितीरेतदाह ।
श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥
- सप्तराशिमः (ऋ० २ । १२ । १२) यत्सप्तराशिमरिति । सप्त होत आदि-
त्यस्य रश्मयः (सप्तराशिमः=इन्द्रः=आदित्यः) । जै० उ०
१ । २६ । ८ ॥

[सभेयो युवा

(५७४)

सप्तशिमः स एष (आदित्यः) सप्तशिमवृषभस्तुविष्मान् । जै० उ०
१ । २८ । २ ॥

सप्तर्षयः सप्तऽर्षीन्तु ह स्म वै पुरऽर्क्षा इत्याचक्षते । श० १ । १ । २ । ४ ॥

„ अमी ह्युत्तराहि सप्तर्षय उद्यन्ति । श० २ । १ । २ । ४ ॥

सप्तहोता तस्मै (ब्रह्मणे) सप्तमर्षं हृतः प्रत्यशृणोत् । स सप्तहृतो
ऽभवत् । सप्तहृतो ह वै नामैषः । तं वा एतर्षं सप्तहृतश्च
सन्तम् । सप्तहोतेत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि
देवाः । तै० २ । ३ । ११ । २ ॥

„ इन्द्रियं वै सप्तहोता । तै० २ । २ । ८ । २ ॥

„ इन्द्रः सप्तहोता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥

„ इन्द्रः सप्तहोत्रा । तै० २ । २ । ८ । ५ ॥

„ सौम्यो ऽध्वरः सप्तहोतुः (निदानम्) । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥

„ अर्यमा सप्तहोतृणाश्च होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥

सप्त होत्राः (यजु० १३ । ५) दिशः सप्त होत्राः । श० ७ । ४ । १ । २० ॥

सप्ति. (हे ऽश्व त्वं) सप्तिरसि । तां० १ । ७ । १ ॥

„ आशुः सप्तिरित्याह । अश्व एव जवं दधाति । तस्मात्पुराशुरः
श्वो ऽजायत । तै० ३ । ८ । १३ । २ ॥

„ वायुः सप्तिः । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥

सफम् (साम) सफेन वै देवा इमान् लोकान् समाप्नुवन् यत् समा-
प्नुवर्षंस्तत्सफस्य सफत्वम् । तां० ११ । ५ । ६ ॥ १५ ॥
११ । ५ ॥

सन्दम् सन्दमहः (सन्दः=ऋतुविशेषः, तैत्तिरीयसंहितायाम् ४ । ४ ।

७ । २ ॥ ५ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्ये ऽपि) । श० १ । ७ ।

२ । २६ ॥

सभासाहः सखा (ऋ० १० । ७१ । १०) एष वै ब्राह्मणानां सभासाहः

सखा यत्सोमो राजा । ऐ० १ । १३ ॥

सभेयो युवा (यजु० २२ । २२) एष वै सभेयो युवा यः प्रथमवयसी

तस्मात्प्रथमवयसी स्त्रीणां प्रियो भावुकः । श० ६३ । १ ।

९ । ८ ॥

„ यो वै पूर्ववयसी । स सभेयो युवा । तस्माद्युवा पुमान्
प्रियो भावुकः । तै० ३ । ८ । १३ । ३ ॥

समन्तम् (साम) समन्तेन पशुकामः स्तुवीत पुरोधकामः समन्तेन
स्तुवीत । तां० १५ । ४ । ७ ॥

समानः तं (संज्ञसं पशुं) ऊर्ध्वा दिक्समानेत्यनुप्राणत्समानमेवास्मिँ-
स्तददधात् । श० ११ । ८ । ३ । ६ ॥

„ दिशः समानः । जै० उ० ४ । २२ । ९ ॥

„ निरुक्तानिरुक्त इव ह्ययं॑ समानः । ष० १ । २ ॥

समिधः (यजु० १७ । ७९) प्राणा वै समिधः प्राणा ह्येतं॑ समिन्धते ।
श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥

„ प्राणा वै समिधः । ऐ० २ । ४ ॥ श० १ । ५ । ४ । १ ॥

„ यदेन॑ समयच्छत् तत्समिधः समित्वम् । तै० २ । १ । ३ । ८ ॥

„ समिधो यजति वसन्तमेव वसन्ते वा इदं सर्वं समिध्यते ।
कौ० ३ । ४ ॥

„ वसन्तो वै समित् । श० १ । ५ । ३ । ९ ॥

„ गर्भः समित् । श० । ६ । ६ । २ । १५ ॥

„ अस्थीनि वै समिधः । श० ९ । २ । ३ । ४६ ॥

समिष्टयजूषि (देवाः) यत्समयजंस्तस्मात्समिष्टयजू॑षि । श० ९ ।
५ । १ । २९ ॥

„ अथ यस्मात् समिष्टयजुर्नाम । या वाऽ एतेन यज्ञेन
देवता ह्वयति याभ्य एष यज्ञस्तायते सर्वा वै तत्ताः
समिष्टा भवन्ति तद्यत्तासु सर्वासु समिष्टास्वथैतज्जुहो-
ति तस्मात्समिष्टयजुर्नाम । श० १ । ९ । २ । २६ ॥

„ या वाऽ एतेन यज्ञेन देवता ह्वयति याभ्य एष यज्ञ यज्ञ-
स्तायते सर्वा वै तत्ताः समिष्टा भवन्ति तद्यत्तासु सर्वासु
समिष्टास्वथैतानि जुहोति तस्मात्समिष्टयजू॑षि नाम ।
श० ४ । ४ । ४ । ३ ॥

„ अन्नं॑ समिष्टयजुः । श० ११ । २ । ७ । ३० ॥

„ अन्तो हि यज्ञस्य समिष्टयजुः । श० ३ । १ । ३ । ६ ॥

„ समिष्टयजू॑षि ह्येवान्तो यज्ञस्य । श० ४ । ४ । ५ । २ ॥

समीषन्ती पशवो वै समीषन्ती (विष्टुतिः) । तां० ३ । ११ । ४ ॥

समुद्रः (यजु० ३८ । ७) अयं वै समुद्रो यो ऽयं (वायुः) पवतऽ पत-

स्माद्दे समुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि समुद्रवन्ति । श०
१४ । २ । २ । २ ॥

समुद्रः य एवायं (वायुः) पवत एष एव स समुद्र एतं हि संद्रवन्तं
सर्वाणि भूतान्यनु संद्रवन्ति । जै० उ० १ । २५ । ४ ॥

॥ तद्यत् (आपः) समुद्रवन्त तस्मात्समुद्र उच्यते । गो० पू० १ । ७ ॥

॥ तद्वस्तिमभिनत् । स समुद्रो ऽभवत् । तस्मात्समुद्रस्य (जलं)
न पिबन्ति । प्रजननमिव हि मन्यन्ते । तै० २ । २ । १ । २-३ ॥

॥ आपो वै समुद्रः । श० ३ । ८ । ४ । ११ ॥ ३ । ९ । ३ । २७ ॥
२२ । ९ । २ । ५ ॥

॥ समुद्रो वाऽ अपां योनिः । श० ७ । ५ । २ । ५८ ॥

॥ समुद्रो वाऽ अबभूयः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥

॥ (यजु० १३ । ५३) मनो वै समुद्रः । श० ७ । ५ । २ । ५२ ॥

॥ वाग्वै समुद्रो मनः समुद्रस्य चक्षुः । तां० ६ । ४ । ७ ॥

॥ (क्र० ४ । ५८ । १) वाग्वै समुद्रो न वै वाक् क्षीयते न समुद्रः
क्षीयते । ऐ० ५ । १६ ॥

॥ वाग्वै समुद्रः । तां० ७ । ७ । ९ ॥

॥ पुरुषो वै समुद्रः । जै० उ० ३ । ३५ । ५ ॥

॥ (यजु० १३ । १६) रुक्मो वै समुद्रः । श० ७ । ४ । २ । ५ ॥

॥ एष वाव स समुद्रः । यच्चात्वालः । तै० १ । ५ । १० । १ ॥

॥ तेजो ऽसि तपसि श्रितम् । समुद्रस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ ।
११ । १ । ३ ॥

॥ समुद्रो ऽसि तेजसि श्रितः । अपां प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ४ ॥

॥ समुद्र एवास्य (अश्वस्य मेध्यस्य) वन्धुः समुद्रो योनिः
(इन्द्राश्वस्योच्चैःश्रवसः क्षीरसागरादुत्पत्तिः—महाभारत
आदिपर्वणि, १८ । ३७ ॥) । श० १० । ६ । ४ । १ ॥

॥ तस्मादिमं लोकं (=पृथिवीं) दक्षिणावृत्समुद्रः पर्येति । श०
७ । १ । १ । १३ ॥

॥ तस्मादिमं लोकान्दक्षिणावृत्समुद्रः पर्येति । श० ९ । १ । २ । ३ ॥

॥ तस्मादिमं लोकं (=पृथिवीं) सर्वतः समुद्रः पर्येति । श०
७ । १ । १ । १३ ॥

समुद्रः तस्मादिमांलोकान्तसर्वतः समुद्रः पर्येति । श० ९ । १ । २ । ३ ॥

समुद्रश्छन्दः (यजु० १५ । ४) मनो वै समुद्रश्छन्दः । श० ८ । ५ । १ । ४ ॥

समुद्रो नभस्वान् (यजु० १८ । ४५) असौ वै (द्यु-)लोकः समुद्रो
नभस्वान् । श० ९ । ४ । २ । ५ ॥

समृद्धः यो वै ज्ञातो ऽनूचानः स समृद्धः । श० ३ । ६ । १ । २९ ॥

समृद्धिः तद्वै समृद्धं यस्य कनीयाऽसौ भार्याः (=पोष्याः) असन्भूयाऽऽ
सः पशवः । श० २ । ३ । २ । १८ ॥

सम्पद् श्रोत्रं वै सम्पच्छ्रोत्रे हीमे सर्वे वेदा अभिसम्पन्नाः । श० १४ ।
९ । २ । ४ ॥

सम्पाताः (सूक्तविशेषाः) सम्पातैर्वै देवाः स्वर्गं लोकं समपतन् । कौ०
२२ । १ ॥

„ तान् क्षिप्रं समपतद्यत्क्षिप्रं समपतत्तत्संपातानां संपातत्वम् ।
ऐ० ६ । १८ ॥

„ पतैर्वै सम्पातैरेत ऋषय इमांलोकान्तसमपतंस्तद्यत्समप-
तंस्तस्मात् सम्पाताः, तत्सम्पातानां सम्पातत्वम् । गो०
३० ६ । १ ॥

„ वामदेवो वा इमांलोकानपश्यत्तान्तसंपातैः समपतद्यत्संपातैः
समपतत्तत्संपातानां संपातत्वम् । ऐ० ४ । ३० ॥

„ तान्वा एतान्तसंपातान्विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्तान्विश्वामि-
त्रेण दृष्टान्वामदेवो ऽसृजत । ऐ० ६ । १८ ॥ गो० ३० । ६ । १ ॥

सम्भरणस्त्रयोविंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव सम्भरणस्त्रयो-
विंशस्तस्य त्रयोदश मासाः सप्तऽर्तवो द्वेऽअहो-
रात्रे संवत्सर एव सम्भरणस्त्रयोविंशस्तद्यत्त-
माह सम्भरण इति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि
सम्भृतः । श० ८ । ४ । १ । १७ ॥

सम्भारः स यद्वाऽइतश्चेतश्च सम्भरति । तत्सम्भाराणां सम्भार-
त्वम् । श० २ । १ । १ । १ ॥

„ तमेतावच्छः समभरन् यत्सम्भाराः । तै० २ । २ । २ । ६ ॥

सम्भूतिः (=प्राणः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशवस्सम्भवन्ति । जै० ३०
२ । ४ । ५ ॥

सम्भूतिः प्राणा उ ह वाव राजन् मनुष्यस्य सम्भूतिरेवेति । जै० उ०
४ । ७ । ४ ॥

सम्मार्जनानि वृष्टिः सम्मार्जनानि । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥

„ अन्नं ॐ सम्मार्जनानि । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥

सम्राट् स यदाह सम्राडसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै वायुर्भूत्वा-
न्तरिक्षलोके सम्राजति तद्यत्सम्राजति तस्मात्सम्राट् तत्स-
म्राजस्य सम्राट्त्वम् । गो० पू० ५ । १३ ॥

„ तस्य यो रसो व्यक्षरत्तं पाणिभिः सममृजुस्तस्मात्सम्राट् ।
श० १४ । १ । १ । ११ ॥

„ सम्राड् वाजपेयेन (इष्ट्वा भवति) । श० ५ । १ । १३ ॥ ९ ।
३ । ४ । ८ ॥

„ स वाजपेयेनेष्ट्वा सम्राडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥

„ यो वै वाजपेयः । स सम्राट्सवः । तै० २ । ७ । ६ । १ ॥

„ रथन्तरं वै सम्राट् । तै० १ । ४ । ४ । ९ ॥

सरघा इयं (पृथिवी) वै सरघा । तै० ३ । १० । १० । १ ॥

सरघो मधुकृतः एतऽ एव सरघो मधुकृतो यदृत्विजः । श० ३ । ४ ।
३ । १४ ॥

सरस्वती युव ॐ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना
शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् (ऋ० १० । १३१ । ४ ॥ यजु०
१० । ३३ ॥) इत्याश्राव्याहाश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रं ॐ सुभ्रा-
माणं यजेति । श० ५ । ५ । ४ । २५ ॥

„ वाक् सरस्वती । श० ७ । ५ । १ । ३१ ॥ ११ । २ । ४ । ६ ॥
१२ । ९ । १ । १३ ॥

„ वाग्वै सरस्वती । कौ० ५ । २ ॥ १२ । ८ ॥ १४ । ४ ॥ तां०
६ । ७ । ७ ॥ १६ । ५ । १६ ॥ श० २ । ५ । ४ । ६ ॥ ३ । ९ ।
१ । ७ ॥ तै० १ । ३ । ४ । ५ ॥ ३ । ८ । ११ । २ ॥ गो० उ०
१ । २० ॥

„ वाग्वै सरस्वती पावीरवी । ऐ० ३ । ३७ ॥

„ वागेव सरस्वती । ऐ० २ । २४ ॥ ६ । ७ ॥

„ घाग्घ सरस्वती । ऐ० ३ । २ ॥

सरस्वती वाक्नु सरस्वती । ऐ० ३ । १ ॥

„ सरस्वती वाचमदधात् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥

„ अथ यत्स्फूर्जयन्वाचमिव वदन्दहति तदस्य (अग्नेः) सारस्वतं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥

„ सा (वाक्) ऊर्ध्वोदातनोद्यथापां धारा संततैवम् (सरस्वती [नदी]=वाक्) । तां० २० । १४ । २ ॥

„ जिह्वा सरस्वती । श० १२ । ९ । १ । १४ ॥

„ (यजु० ३८ । २) सरस्वती हि गौः । श० १४ । २ । १ । ७ ॥

„ अमावास्या वै सरस्वती । गो० ३० । १ । १२ ॥

„ सारस्वतं मेषम् (आलमते) । तै० १ । ८ । ५ । ६ ॥

„ अविर्मल्हा (=“गलस्तनयुता” इति सायणः) सारस्वती । श० ५ । ५ । ४ । १ ॥

„ वर्षाशरदौ सारस्वताभ्याम् (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३५ ॥

„ योषा वै सरस्वती वृषा पूषा । श० २ । ५ । १ । ११ ॥

„ सरस्वती (श्रियः) पुष्टिम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥

„ सरस्वती पुष्टिः पुष्टिपत्नी । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥

„ सरस्वती पुष्टिं (ष्टिः) पुष्टिपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १६ ॥

„ सर्वे (प्रैषाः) सारस्वता अन्नाद्यस्येवावरुद्धथै । श० १२ । ८ । २ । १६ ॥

„ एषा वा अपां पृष्ठं यत्सरस्वती । तै० १ । ७ । ५ । ५ ॥

„ ऋक्सामे वै सारस्वतावुत्सौ । तै० १ । ४ । ४ । ९ ॥

„ सरस्वत्यै दधि । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥

„ अन्तरिक्षं सारस्वतेन (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३२ ॥

„ सरस्वतीति तद् द्वितीयं वज्ररूपम् । कौ० १२ । २ ॥

„ अथ यत् (अक्ष्योः) कृष्णं तत्सारस्वतम् । श० १२ । ९ । १ । १२ ॥

„ “नमुचि” शब्दमपि पश्यत ॥

सरस्वान् मनो वै सरस्वान् । श० ७ । ५ । १ । ३१ ॥ ११ । २ । ४ । ९ ॥

„ स्वर्गो लोकः सरस्वान् । तां० १६ । ५ । १५ ॥

„ पौर्णमासः सरस्वान् । गो० ३० । १ । १२ ॥

[सर्पाः

(५६०)

सरिरः (यजु० ३८।७॥) अयं वै सरिरो यो ऽयं (वायुः) पवत एतस्मा-
द्धै सरिरात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सहेरते । श० १४ ।
२।२।३ ॥

सरिरम् (यजु० १३।४२) आपो वै सरिरम् । श० ७।५।२।१८ ॥

„ (यजु० १३।४९ ॥ १५।५२) इमे वै लोकाः सरिरम् । श०
७।५।२।३४ ॥ ८।६।३।२१ ॥

„ (यजु० १३।५३) वाग्वै सरिरम् । श० ७।५।२।५३ ॥

„ (यजु० १५।४) वाग्वै सरिरं छन्दः । श० ८।५।२।४ ॥
सालिलशब्दमपि पश्यत ।

सर्पनामानि (‘नमो ऽस्तु सर्पेभ्यः... ..यजु० १३।६ ॥’ इत्याद्या मन्त्राः)
ते (देवाः) एतानि सर्पनामान्यपश्यन् । तैरुपातिष्ठन्त
तैरस्माऽ इमाल्लोकानस्थापयंस्तैरनमयन्त्यदनमयंस्तस्मा-
त्सर्पनामानि । श० ७।४।१।२६ ॥

सर्पराज्ञी इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी । ऐ० ५।२३ ॥
तै० १।४।६।६ ॥

„ इयं वै पृथिवी सर्पराज्ञी । श० २।१।४।३० ॥ ४।६।
९।१७ ॥

„ देवा वै सर्पाः । तेषामियं (पृथिवी) राज्ञी । तै० २।२।
६।२ ॥

सार्पराज्ञा ऋग्भिः स्तुवन्ति । अर्बुदः (अर्बुदः) सर्प एताभि-
र्मुतां त्वचमपाहत मृतामेवैताभिस्त्वचमपघ्नते । तां० ९।
८।७-८ ॥

सर्पाः इमे वै लोकाः सर्पास्ते हानेन सर्वेण सर्पन्ति यदिदं किं च ।
श० ७।४।१।२५ ॥

देवा वै सर्पाः । तेषामियं (पृथिवी) राज्ञी । तै० २।२।६।२ ॥

अर्बुदः काद्रवेयो राजेत्याह तस्य सर्पा विशः.....सर्पविद्या
वेदः..... सर्पविद्याया एकं पर्व व्याचक्षाण इवानुद्रवेत् । श०
१३।४।३।९ ॥

„ ते देवाः सर्पेभ्य आश्रेषाभ्य आज्ये करंभं निरवपन् । तान्
(असुरान्) एताभिरेव देवताभिरुपानयन् । तै० ३।१।४।७ ॥

„ या प्रतीची (दिक्) सा सर्पाणाम् । श० ३।१।१।७ ॥

- सर्पाः रज्जुरिव हि सर्पाः कृपा इव हि सर्पाणामायतनान्यस्ति वै
 मनुष्याणां च सर्पाणां च विश्रातृव्यम् । श० ४ । ४ । ५ । ३ ॥
- सर्वः (=शर्वः=रुद्रः) आपो वै सर्वो ऽद्भ्यो हीदुः सर्वं जायते । श०
 ६ । १ । ३ । ११ ॥
- „ तान्येतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः,
 भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि कुमारो नवमः । श०
 ६ । १ । ३ । १८ ॥
- सर्वजित् (यज्ञः) सर्वजिता वै देवाः सर्वमजयन् सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य
 जित्यै सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वञ्जयति । तां० १६ । ७ । २ ॥
- „ (देवाः) सर्वजिता सर्वमजयन् तां० २२ । ८ । ४ ॥
- सर्वज्योतिः (यज्ञः) अथैष सर्वज्योतिः सवस्याप्तः सर्वस्य जितिः
 सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वञ्जयति । तां० १६ । ९ । १ ॥
- „ परमो वा एष यज्ञः (सर्वज्योतिः) । तां० १६ । ९ । २ ॥
- सर्वम् यद्वै विश्वं सर्वं तत् । श० ३ । १ । २ । ११ ॥
- „ सर्वं वै तद्यत्सहस्रम् । कौ० ११ । ७ ॥ २५ । १४ ॥
- „ सर्वं वै सहस्रम् । श० ४ । ६ । १ । १५ ॥ ६ । ४ । २ । ७ ॥
- „ षोडशकलं वाऽ इदं सर्वम् । श० १३ । २ । २ । १३ ॥ कौ०
 ८ । १ ॥ १६ । ४ ॥ १७ । १ ॥ २२ । ९ ॥
- „ प्रजापतिरेव सर्वम् । कौ० ६ । १५ ॥ २५ । १२ ॥
- „ ब्रह्मैव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ चन्द्रमा एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ मन एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ विश्वे देवा एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ सर्वे वै विश्वे देवाः । श० १ । ७ । ४ । २२ ॥ ३ । ९ । १ । १३ ॥
 ४ । २ । २ । ३ ॥ ५ । ५ । २ । १० ॥
- „ सर्वमिदं विश्वे देवाः । श० ३ । ९ । १ । १४ ॥ ४ । ४ । १ । ९, १८ ॥
- „ ब्रह्मवेद् (=अथर्ववेद्ः) एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ आप एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ आपो वाऽ अस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा । श० ४ । ५ । २ । १४ ॥ ६ ।
 ८ । २ । २ ॥ १२ । ५ । २ । १४ ॥
- „ शरदेव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

- सर्वम् दक्षिणैव (दिक्) सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ एकविंश एव (स्तोमः) सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ अनुष्टुबेव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ एतावद्वाऽ इदं सर्वं यावद्रूपं चैव नाम च । श० ११ । २ । ३ । ६ ॥
- „ एतावद्वाऽ इदं सर्वं यावदिमे च लोका दिशश्च । श० ६ । ५ । २ । २२ ॥
- „ चतुष्टयं वा इदं सर्वम् । कौ० २ । १ ॥ ३ । २ ॥ ३ । ७ ॥ १९ । ४ ॥ २८ । ७ ॥
- „ एतावद्वाऽ इदं सर्वं यावद्ब्रह्म क्षत्रं विद् । श० २ । २ । २ । १४ ॥
- „ सर्वं वाऽ अनिरुक्तम् । श० १ । ३ । ५ । १० ॥ १ । ४ । १ । २१ ॥ २ । २ । १ । ३ ॥ ७ । २ । २ । १४ ॥ १० । १ । ३ । ११ ॥ १२ । ४ । २ । १ ॥
- „ सर्वं वाऽ अक्षय्यम् । श० १ । ६ । १ । १९ ॥ ११ । १ । २ । १२ ॥
- सर्वमेधः पुरुषमेधात्सर्वमेधः । गो० पू० ५ । ७ ॥
- „ स सर्वमेधेनेष्ट्वा सर्वराडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥
- „ परमो वाऽ एष यज्ञक्रतूनां यत्सर्वमेधः । श० १३ । ७ । १ । २ ॥
- सर्वराट् स सर्वमेधेनेष्ट्वा सर्वराडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥
- सर्वरूपः यो विश्रुति (पुरुषः) स सर्वरूपः । सर्वाणि ह्येतास्मिन् रूपाणि । जै० उ० १ । २७ । ६ ॥
- सर्वस्तोमोऽतिरात्रः (क्रतुः) सर्वस्तोमेनातिरात्रेण बुभूषन्त्यजेत सर्व्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वञ्जयति । तां० २० । २ । २ ॥
- सलिलम् आपो ह वाऽ इदमग्रे सलिलमेवास । श० ११ । १ । ६ । १ ॥
- „ आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् । तै० १ । १ । ३ । ५ ॥
- „ आपो वा इदमग्रे महत्सलिलमासीत् । जै० उ० १ । ५६ । १ ॥
- „ वेदिवै सलिलम् । श० ३ । ६ । २ । ५ ॥
- सरिरशब्दमपि पश्यत ।
- सबनपङ्क्तिः पशुरूपवसथे, त्रीणि सवनानि, पशुरनुबन्ध्य इत्येष वै यज्ञः सवनपङ्क्तिः । ऐ० २ । २४ ॥
- सवर्थः ते (आदित्याः) अनुवन् । यन्मोऽनेष्ट (अश्वम्) । स वर्योऽभूत् इति । तस्माद्भवत् सवर्थेत्याह्वयन्ति । तै० ३ । ६ । २१ । १ ॥
- सार्विशः (स्तोमः) “अभीवर्तः सार्विशः” इत्येतं शब्दं पश्यत ।

- सविताः सविता वै देवानां प्रसविता । श० १ । १ । २ । १७ ॥ जै०
उ० ३ । १८ । ३ ॥
- „ सविता वै प्रसविता । कौ० ६ । १४ ॥
- „ सविता वै प्रसवानामीशे । ऐ० १ । ३० ॥ ७ । १६ ॥
- „ सविता प्रसवानामीशे । कौ० ५ । २ ॥
- „ एताभिर्वै (रात्रिभिः) सविता सर्वस्य प्रसवमगच्छत् । तां०
२४ । १५ । २ ॥
- „ आदित्य एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४२७।११ ॥
- „ असावादित्यो देवः सविता । श० ६ । ३ । १ । १८ ॥
- „ असौ वै सविता यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० ७ । ६ ॥
गो० उ० १ । १० ॥
- „ एष वै सविता य एष (सूर्यः) तपति । श० ३ । २ । ३ । १८ ॥
४ । ४ । १ । ३ ॥ ५ । ३ । १ । ७ ॥
- „ एष वाव स सावित्रः । य एष (सूर्यः) तपति । तै० ३ ।
१० । ९ । १५ ॥
- „ अग्निरेव सविता । जै० उ० ४ । २७ । १ ॥ गो० पू० १ । ३३ ॥
- „ यो ह्येव सविता स प्रजापतिः । श० १२ । ३ । ५ । १ ॥ गो०
पू० ५ । २२ ॥
- „ प्रजापतिर्वै सविता । तां० १६ । ५ । १७ ॥
- „ प्रजापतिः सविता भूत्वा प्रजा असृजत । तै० १ । ६ । ४ । १ ॥
- „ सविता प्राजनयत् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥
- „ वरुण एव सविता । जै० उ० ४ । २७ । ३ ॥
- „ विद्युदेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
- „ स्तनयित्पुत्रेव सविता । जै० उ० ४ । २७ । ९ ॥
- „ वायुरेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ५ ॥
- „ (यजु० ३८ । ८) अयं वै सविता यो ऽयं (वायुः) पचते ।
श० १४ । २ । २ । ९ ॥
- „ चन्द्रमा एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
- „ चन्द्र एव सविता । जै० उ० ४ । २७ । १३ ॥
- „ यज्ञ एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ७ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै सविता । श० १३ । १ । ४ । २ ॥ तै० ३ ।
९ । १३ । २ ॥

- सविता अब्धमेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
- „ वेदा एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
- „ अहरेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
- „ पुरुष एव सविता । जै० उ० ४ । २७ । १७ ॥
- „ पशवो वै सविता । श० ३ । २ । ३ । ११ ॥
- „ प्राणो वै सविता । ऐ० १ । १९ ॥
- „ प्राण एव सविता श० १२ । ९ । १ । १६ ॥ गो० पू० १ । ३३ ॥
- „ प्राणो ह वाऽ अस्य सविता । श० ४ । ४ । १ । ५ ॥
- „ मनो वै सविता । श० ६ । ३ । १ । १३, १५ ॥
- „ मन एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १५ ॥
- „ मनो ह वाऽ अस्य सविता । श० ४ । ४ । १ । ७ ॥
- „ मनः सावित्रम् । कौ० १६ । ४ ॥
- „ यकृतसविता । श० १२ । ९ । १ । १५ ॥
- „ सविता (श्रियः) राष्ट्रम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
- „ सविता राष्ट्रं राष्ट्रपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥ श० ११ । ४ । ३ । १४ ॥
- „ तस्मात् (सविता) हिरण्यपाणिरिति स्तुतः । कौ० ६ । १३ ॥ गो० उ० १ । २ ॥
- „ उष्णमेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
- „ (सविता) रश्मिभिर्वर्ष (समदधात्) । गो० पू० १ । ३६ ॥
- „ तद्वै सुपूतं यं देवः सवितापुनात् । श० ३ । १ । ३ । २२ ॥
- „ देवस्य सवितुर्हस्तः (नक्षत्रम्) । तै० १ । ५ । १ । ३ ॥
- „ दातारमद्य सविता विदेय यो नो हस्ताय (नक्षत्राय) प्रसु-
वाति यज्ञम् । तै० ३ । १ । १ । ९ ॥
- „ स (सविता) एतं सवित्रे हस्ताय पुरोडाशं द्वादशकपालं
निरवपदाशूनां (=षष्टिदिनैः शीघ्रं पच्यमानानां) व्रीहीणाम् ।
ततो वै तस्मै (सवित्रे) श्रद्देवा अदधत । सविताभवत् ।
तै० ३ । १ । ४ । ११ ॥
- „ सावित्रं द्वादशकपालं वाष्टाकपालं वा पुरोडाशं निर्वपति ।
श० । ५ । ३ । १ । ७ ॥
- „ अथ सावित्रः । द्वादशकपालो वाष्टाकपालो वा पुरोडाशो
भवति । श० २ । ५ । १ । १० ॥

- सविता सावित्रः पञ्चकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥
- ” (वायुः) यदुत्तरतो वाति । सवितैव भूवोत्तरतो वाति ।
तै० २ । ३ । ६ । ७ ॥
- ” (हे देवा यूयं) सवित्रोदीचीं (दिशं प्रजानाथ) । ऐ० १ । ७ ॥
- ” तस्मादुत्तरतः पश्चाद्यं भूयिष्ठं पवमानः (=वायुः) पवते
सवितृप्रसूतो ह्येष पतत्पवते । ऐ० १ । ७ ॥
- ” प्रतीचीमेव दिशश्च सवित्रा प्रजानन् । श० ३ । २ । ३ । १८ ॥
- ” स (सविता) प्रतीचीं दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥
- ” सवितृप्रसूतं वा इदमन्नमश्नते । कौ० १२ । ८ ॥
- ” सावित्र्युपभृत् । तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥
- ” अथ यत्र ह तत्सविता सूर्या प्रायच्छत्सोमाय रात्रे । कौ०
१८ । १ ॥
- ” प्रजापतिर्वै सोमाय रात्रे दुहितरं प्रायच्छत्सूर्या सावित्रीम् ।
ऐ० ४ । ७ ॥
- सवितुर्वरेण्यम् (ऋ० ३ । ६२ । १०) वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यम् ।
गो० पू० १ । ३२ ॥
- समृतः सोम एव सवृतः (? समृतः—तैत्तिरीयसंहितायां १ । ६
७ । १) इति । गो० ७० १ । २४ ॥
- ” सवृत (? समृत—) यज्ञो वा एष यद्दर्शपूर्णमासौ । गो० ७०
२ । २४ ॥
- सहः बलं वै सहः । श० ६ । ६ । २ । १३ ॥
- ” ओजः सहः सह ओजः । कौ० ३ । ५ ॥
- ” एतौ (सहश्च सहस्यश्च) एव हैमन्तिकौ (मासौ) स यद्धे-
मन्त इमाः प्रजाः सहसेव स्वं वशमुपनयते तेनो हैतौ सहश्च
सहस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १८ ॥
- ” सहसः स्वजः [=उभयतःशिराः सर्प इति सायणः] (अभवत्) ।
ऐ० ३ । १६ ॥
- सहचराणि (शिल्पानि) तान्येतानि सहचराणीत्याचक्षते नाभानेदिष्ठं
वालखिल्या वृषाकपिमेवयामरुतम् । ऐ० ६ । ३० ॥
- सहजम्या (यजु० १५ । १६) (वायोः) मेनका च सहजम्या चाण्ड-
रसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह भाहित्थिरिमे तु
ते द्यावापृथिवी । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥

सहस्यः (मासः) एतौ (सहस्र सहस्यश्च) एव हेमन्तिकौ (मासौ)
स यद्वेमन्त इमाः प्रजाः सहसेव स्वं वशमुपनयते तेनो द्वै-
तौ सहस्रश्च सहस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १८ ॥

सहस्रम् सर्वं वै तद्यत्सहस्रम् । कौ० ११ । ७ ॥ २५ । १४ ॥
 „ सर्वं वै सहस्रम् । श० ४ । ६ । १ । १५ ॥ ६ । ४ । २ । ७ ॥
 „ भूमा वै सहस्रम् । श० ३ । ३ । ३ । ८ ॥
 „ परमं सहस्रम् । तां० १६ । ९ । २ ॥
 „ (ऋ० ६ । ६६ । ८) तदाहुः किं तत्सहस्रमितीमे लोका
 इमे वेदा अथो वागिति ब्रूयात् । ऐ० ६ । १५ ॥
 „ आयुर्वै सहस्रम् । तै० ३ । ८ । १५ । ३ ॥ ३ । ८ । १६ । २ ॥
 „ पशवः सहस्रम् । तां० १६ । १० । १२ ॥

सहस्रम्भरः एषा ह वाऽ अस्य (अग्नेः) सहस्रम्भरता यदेनमेकं सन्तं
बहुधा विहरन्ति । ऐ० १ । २८ ॥

सहस्रयोजनम् (यजु० १६ । ५४ ॥) अयमग्निः सहस्रयोजनम् । श०
९ । १ । १ । २९ ॥
 „ एतद्ध परमं दूरं यत्सहस्रयोजनम् । श० ९ । १ ।
१ । २८ ॥

सहस्रवर्त्तनि साम वै सहस्रवर्त्तनि (सहस्रवर्त्मा सामवेदः—इति
पातञ्जलमहाभाष्यस्य अ० १ पा० १ प्रथमाह्निके) ।
ष० १ । ४ ॥

सहस्रवांस्तोकवान्पुष्टिमान् (ऋ० ३ । १३ । ७) संवत्सरो वै समस्तः
सहस्रवांस्तोकवान्पुष्टिमान् । ऐ० २ । ४१ ॥
 „ आत्मा वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान्पुष्टि-
मान् । ऐ० २ । ४० ॥

सहस्रस्य प्रतिमा (यजु० १३ । ४१) पुरुषो वै सहस्रस्य प्रतिमा ।
श० ७ । ५ । २ । १७ ॥

सहस्रियो वाजः (यजु० १२ । ४७) आपो वै सहस्रियो वाजः । श०
७ । १ । १ । २२ ॥

सहावांस्तृता (ऋ० १० । १७८ । १) एष (तार्क्ष्यः=वायुः) वै
सहावांस्तृतातैष हीमाल्लोकान्सद्यस्तरति । ऐ० ४ । २० ॥

सांमदः मत्स्यः सांमदो राजेत्याह तस्योदकेचरा विशः । श० १३ ।
४ । ३ । १२ ॥

सांवर्त्तम् (साम) देवानां वै यज्ञश्च रक्षाश्चस्यजिघाश्चसंस्तान्येतेन
इन्द्रः संवर्त्तं (=प्रलयमिति सायणः) उपावपद्यत् संवर्त्त-
मुपावपत्तस्मात् सांवर्त्तं पाप्मा वाव स तानसचत
(तमगृह्णादिति सायणसम्मतः पाठः) तं सांवर्त्तनापाद्म-
ताप पाप्मानं हते सांवर्त्तेन तुष्टुवानः । तां० १४ । १२ ७ ॥

साकंप्रस्थाप्यः (यज्ञः) तद्यत्साकं संप्रतिष्ठन्ते साकं सम्प्रयजन्ते साकं
भक्षयन्ते तस्मात्साकंप्रस्थाप्यः । कौ० ४ । ९ ॥

” स एष श्रैष्ठ्यकामस्य पौरुषकामस्य यज्ञः । कौ० ४ । ९ ॥
साकमश्वम् (साम) ते (देवाः) ऽग्निमुखं कृत्वा साकं (=सार्द्धं)

अश्वेन (=अश्वरूपेणाग्निना) अभ्यक्रामन् यत्साकमश्वे-
नाभ्यक्रामंस्तस्मात् साकमश्वम् । तां० ८ । ८ । ४ ॥

” यदग्निरश्वो भूत्वा ऽभ्यत्यद्रवत्तत्साकमश्वं सामाऽभव-
त्तत्साकमश्वस्य साकमश्वत्वम् । ऐ० ३ । ४९ ॥

” यदग्निरश्वो भूत्वा प्रथमः प्रजिगाय तस्मात् साकमश्वम् ।
गो० ३० । ४ । ११ ॥

” साकमश्वं भवत्युक्थानामभिजित्या अभिक्रान्त्यै । एतेन
ह्यग्न उक्थान्यभ्यजयन्नेतेनाभ्यक्रामन् । तां० ११ । ११ । ५, ६ ॥

” प्रजापतिः प्रजा असृजत तान् प्राजायन्त स एतत्सामा-
पश्यत्ताः (प्रजाः प्रजापतिः) अश्वो भूत्वाभ्यजिघत्ताः
प्राजायन्त प्रजनं वा एतत् साम । तां० २० । ४ । ५ ॥

” तत् (साकमश्वम्) उ धुरां सामेत्याहुः । तां० १४ ।
९ । १८ ॥

साकमेधाः ऐन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत् साकमेधाः । कौ० ५ । ५ ॥ गो०
३० । १ । २३ ॥

” एतैर्वै (साकमेधैः) देवा वृत्रमघ्नन्नेतैर्वै व्यजयन्त धेयमेषां
विजितिस्ताम् । श० २ । ५ । ३ । १ ॥

सांग्रहणी (इष्टिः) सांग्रहण्येष्ट्या यजते । इमां जनतां संगृह्णातीति ।
तै० ३ । ५ । १ । १ ॥

सादनम् माश्चसादनम् । श० ५ । १ । ४ । ५ ॥

साधुः (यजु० ३७ । १०) अयं वै साधुर्यो ऽयं (वायुः) पवतऽ एष
हीमाँल्लोकान्त्सिद्धो ऽनुपवते । श० १४ । १ । २ । २३ ॥

साध्या देवाः (यजु० ३१ । १६) प्राणा वै साध्या देवास्तऽ एतं (प्रजा-
पतिं) अग्रऽ एवमसाधयन् । श० १० । २ । २ । ३ ॥

॥ छन्दांसि वै साध्या देवास्ते ऽग्ने ऽग्निनाग्निमयजन्त ने
स्वर्गं लोकमायन् । ऐ० १ । १६ ॥

॥ साध्या वै नाम देवेभ्यो देवाः पूर्वं आस॑स्ते एतत् (शत-
संवत्सरं) सत्रायणमुपाय॑स्तेनार्धव॑स्ते सगवः सपु-
रुषाः सर्व एव सह स्वर्गं लोकमायन् । तां० २५ । ८ । २ ॥

॥ साध्या वै नाम देवा आस॑स्ते ऽवच्छिद्य तृतीयसव-
नम्माध्यन्दिनेन सवनेन सह स्वर्गं लोकमायन् । तां०
८ । ३ । ५ ॥ ८ । ४ । ६ ॥

॥ साध्याश्च त्वा ऽऽप्त्याश्च देवाः पाङ्क्तेन॑छन्दसा त्रिण-
वेन स्तोमेन शाकरेण साङ्गा ऽऽरोहन्तु तानन्वारोहामि
राज्याय । ऐ० ८ । १२ ॥

॥ अथैनं (इन्द्रं) अस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि
साध्याश्चाऽऽप्त्याश्च देवाः.....अभ्यषिञ्चन्.....रा-
ज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

साध्रम् (साम) साध्रं भवति सिद्धयै । तां० १५ । ५ । १८ ॥

सान्.मेः (यजु० १२ । १०९) (=सनातनः) पृणक्षि सानसिं क्रतुमिति
पृणक्षि सनातनं क्रतुमित्येतत् । श० ७ । ३ । १ । ३२ ॥

सान्तपनीया (इष्टिः) उरः सान्तपनीयोरसा हि समिव तप्यते । श०
११ । ५ । २ । ४ ॥

सान्तपनो ऽग्निः एष ह वै सान्तपनो ऽग्निर्यद् ब्राह्मणो यस्य गर्भाधान-
पुंसवनसीमन्तःस्रयनजातकर्मनामकरणानिष्क्रमणात्र-
प्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनाप्लवनाग्निहोत्रव्रतचर्या-
दीनि कृतानि भवन्ति स सान्तपनः । गो० पू० २ ।
२३ ॥

साङ्गाय्यम् (इविः) तमोपधिभ्यश्च वनस्पतिभ्यश्च गोभ्यश्च पशुभ्यश्चा-
दित्याश्च ब्रह्म च ब्राह्मणाः सन्नयन्ते तत्साङ्गाय्यस्य साङ्गा-
य्यत्वम् । ष० ४ । ६ ॥

साम्नाय्यम् तस्मादप्यसोमयाजी समेव नयेत् । श० १ । ६ । ४ । ११ ॥

„ सोमः खलु वै साम्नाय्यम् । तै० ३ । २ । ३ । ११ ॥

„ आमावास्यं वै साम्नाय्यम् । श० २ । ४ । ४ । १५ ॥

„ ऐन्द्रं साम्नाय्यम् । श० २ । ४ । ४ । १२ ॥

„ राष्ट्रं साम्नाय्यम् । श० ११ । २ । ७ । १७ ॥

सामराजम् (साम) साम्नाय्यमाधिपत्यं गच्छति सामराज्ञा तुष्टुवानः ।
तां० १५ । ३ । ३५ ॥

सामवेदः (देवाः सोमं) साम्ना समानयन् । तत्साम्नः सामत्वम् । तै०
२ । २ । ८ । ७ ॥

„ स (प्रजापतिः) ह्येवं षोडशधा ऽऽत्मानं विद्वत्य सार्धं समैत् ।
तद्यत्सार्धं समैत् तत्साम्नस्सामत्वम् । जै० उ० १ । ४ । ७ ॥

„ तद्यत् समेत्य साम प्राजनयतां तत्साम्नस्सामत्वम् । जै०
उ० १ । ५१ । २ ॥

„ ता वा एता देवता अमावास्यां रात्रिं संयन्ति । चन्द्रमा
अमावास्यां रात्रिमादित्यम्प्रविशत्यादित्यो ऽग्निम् । तद्यत्सं-
यन्ति तस्मात्साम । जै० उ० १ । ३३ । ६, ७ ॥

„ समा उ ह वा अस्मिन्ऽइन्द्रांऽसि साम्यादिति तत्साम्नः
सामत्वम् । सा० १ । १ । ५ ॥

„ तद्यदेष (आदित्यः) सर्वैर्लोकैस्सामस्तस्मादेष (आदित्यः)
एव साम । जै० उ० १ । १२ । ५ ॥

„ (तमेतम्पुरुषं) सामोत छन्दोगाः (उपासत), एतस्मिन्
हीदं सर्वं समानम् । श० १० । ५ । १ । २० ॥

„ यो वै भवति यः श्रेष्ठतामश्नुते स सामन्भवत्यसामन्य इति
द्वि निन्दन्ति । ऐ० ३ । २३ ॥

„ सामन्भवति श्रेष्ठतां गच्छति यो वै भवति स सामन्भवत्य-
सामन्य इति ह निन्दन्ते । गो० उ० ३ । २० ॥

„ तद्यत्सा चाऽमश्च तत्सामाऽभवत् तत्साम्नस्सामत्वम् ।
जै० उ० १ । ५३ । ५ ॥

„ यद्वै तत्सा चामश्च समवदतां तत्सामाभवत्तत्साम्नः साम-
त्वम् । गो० उ० ३ । २० ॥

सामवेदः यद्वै तत्सा चाऽमश्च समभवतां तत्सामाऽभवत्सत्साम्नः
सामत्वम् । ऐ० ३ । २३ ॥

- „ सैव नामर्गासत् । अमो नाम साम । गो० उ० ३ । २० ॥
- „ प्राणो वावामो वाक् सा, तत्साम । जै० उ० ४ । २३ । ३ ॥
- „ ऋक् च वा इदमग्रे साम चास्तां सैव नाम ऋगासीदमो नाम
साम । ऐ० ३ । २३ ॥
- „ एष (प्राणः) उऽएव साम । वाग्वै सामैष सा चामश्चेति त-
त्साम्नः सामत्वं यद्वेव समः प्लुषिणा समो मशकेन समो
नागेन सम एभिस्त्रिभिर्लोकैः समो ऽनेन सर्वेण तस्माद्वेव
साम । श० १४ । ४ । १ । २४ ॥
- „ प्राणो वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यञ्चि । श०
१६ । ८ । १४ । ३ ॥
- „ प्राणा वै सामानि । श० ६ । १ । २ । ३२ ॥
- „ प्राणः सामवेदः । श० १४ । ४ । ३ । १२ ॥
- „ स यः प्राणस्तत्साम । जै० उ० १ । २५ । १० ॥
- „ तस्मात्प्राण एव साम । जै० उ० ३ । १ । १८ ॥
- „ प्राणो वाव साम्नुवर्णम् । जै० उ० १ । ३९ । ४ ॥
- „ (वागिति) एतदेषां (नाम्नां) सामैतद्भिः सर्वैर्नामाभिः
समम् । श० १४ । ४ । ४ । १ ।
- „ तद्यदेतत्सर्वं वाचमेवाऽभिसमयति तस्माद्वागेव साम ।
जै० उ० १ । ४० । ६ ॥
- „ एतद्दु ह वाव साम यद्वाक् । जै० उ० २ । १५ । ४ ॥
- „ वागेवऽर्चश्च सामानि च मन एव यजूंषि । श० ४ । ६ ।
७ । ५ ॥
- „ वाग्वाव साम्नः प्रतिष्ठा । जै० उ० १ । ३९ । ३ ॥
- „ वाग्देवत्यं साम, वाचो मनो देवता, मनसः पशवः, पशूना-
मोषधय ओषधीनामापः । तदेतद्भूयो जातं सामाऽप्सु
प्रतिष्ठितमिति । जै० उ० १ । ५९ । १४ ॥
- „ दिवमेव साम्ना (जयति) । श० ४ । ६ । ७ । २ ॥
- „ स्वर्गो लोकः सामवेदः । ष० १ । ५ ॥

- सामवेदः (प्रजापतिः) स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त । सो ऽसौ
 द्यौरभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स आदित्यो ऽभवद् रस-
 स्य रसः । जै० उ० १ । १ । ५ ॥
- ” स्वरिति सामभ्यो ऽक्षरत् स्वः स्वर्गलोको ऽभवत् । ष०
 १ । ५ ॥
- ” साम वा असौ (द्यु-)लोकः । ऋगयम् (भूलोकः) । तां०
 ४ । ३ । ५ ॥
- ” साम्नमादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागतं छन्दो द्यौः स्था-
 नम् । गो० पू० १ । २९ ॥
- ” सूर्यात्सामवेदः (अजायत) । श० ११ । ५ । ५ । ३ ॥
- ” (आदित्यस्य) अर्चिः सामानि । श० १० । ५ । १ । ५ ॥
- ” तस्माद्वायुरेव साम । जै० उ० ३ । १ । १२ ॥
- ” चत्वारि (बृहतीसहस्राणि—४०००×३६=१४४००० अक्ष-
 राणि) साम्नाम् । श० १० । ४ । २ । २४ ॥
- ” अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि
 बर्हिषीत्येवमादि कृत्वा सामवेदमधीयते । गो० पू० १ । २९ ॥
- ” साम वै सहस्रवर्त्तनि (सहस्रवर्त्मा सामवेदः—इति पात-
 अलमहाभाष्यस्य अ० १ पा० १ प्रथमाह्निके) । ष० १ । ४ ॥
- ” साम वाऽ ऋचः पतिः । श० ८ । १ । ३ । ५ ॥
- ” ऋचि साम गीयते । श० ८ । १ । ३ । ३ ॥
- ” एतावद्वाव साम यावान् स्वरः । ऋग्वा एषते स्वराद्भव-
 तीति । जै० उ० १ । २१ । ९ ॥
- ” तस्य (साम्नः) वै स्वर एव स्वम् । श० १४ । ४ । १ । २७ ॥
- ” गायन्ति हि साम । श० ४ । ४ । ५ । ६ ॥
- ” न वाऽ अहिङ्कृत्य साम गीयते । श० १ । ४ । १ । १ ॥
- ” मुखे हि साम्नः प्रस्तावः । तां० १२ । १० । ७ ॥
- ” तानि वा एतानि त्रीणि साम्न उद्गीतमनुगीतमागीतम् ।
 तद्यथेदं वयमागायोद्गायाम एतदुद्गीतम् । अथ यद्यथागीतं
 तदनुगीतम् । अथ यत्किंचेति साम्नस्तदागीतम् । जै० उ०
 १ । ५५ । १४ ॥
- ” पुनरादायं वै सामगाः स्तुवते । कौ० १८ । २ ॥

- सामवेदः सर्वेषां वाऽ एष वेदानां रसो यत्साम् । श० १२ । ८ ।
३ । २३ ॥ गो० उ० ५ । ७ ॥
- „ साम हि नाष्ट्राणां रक्षसामपहन्ता । श० ४ । ४ । ५ । ६ ॥
१४ । ३ । १ । १० ॥
- „ नासामा यज्ञो ऽस्ति । श० १ । ४ । १ । १ ॥
- „ सोमाहुतयो ह वाऽ एता देवानाम् । यत्सामानि । श० ११
५ । ६ । ६ ॥
- „ तस्मादाहुः सामैवान्नमिति । सा० १ । १ । ३ ॥
- „ सो (प्रजापतिः) ऽप्रवीदेकं वावेदमन्नाद्यमसृक्षि सामैव ।
जै० उ० १ । ११ । ३ ॥
- „ साम देवानामन्नम् । तां० ६ । ४ । १३ ॥
- „ श्वत्रं वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ गो० उ० ५ । ७ ॥
- „ साम्राज्यं वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ गो० उ० ५ । ७ ॥
- „ सामवेद एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ सामवेदो यशः । श० १२ । ३ । ४ । ९ ॥
- „ तदाहुस्संवत्सर एव सामेति । जै० उ० १ । ३५ । १ ॥
- „ सर्वे तेजः सामरूप्यं ह शश्वत् । तै० ३ । १२ । ९ । २ ॥
- „ बन्धुमत्साम । जै० उ० ३ । ६ । ७ ॥
- „ (प्रजापतिः) सामान्युद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ ।
१३ । ३ ॥
- „ (दक्षिणनेत्रस्य) यत्कृष्णं (रूपं) तत्साम्नाम् । जै० उ०
४ । २४ । १२ ॥
- „ साम हि सत्याशीः । तां० ११ । १० । १० ॥ १३ । १२ । ७ ॥
१५ । ५ । १३ ॥
- „ तयोः (सदसतोः) यत् सत् तत्साम तन्मनस्स प्राणः ।
जै० उ० १ । ५३ । २ ॥
- „ मनो वाव साम्नश्श्रीः । जै० उ० १ । ३९ । २ ॥
- „ श्रोत्रं वाव साम्नश्श्रुतिः । जै० उ० १ । ३९ । ६ ॥
- „ चक्षुर्वाव साम्ना ऽपचितिः । जै० उ० १ । ३९ । ५ ॥
- „ सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसृतिः । तै० ३ । १२ । ६ । २ ॥

सामवेदः वामदेव्यं वै साम्नां सत् । तां० ४ । ८ । १० ॥

” सत् (=उत्कृष्टमिति सायणः) वै वामदेव्यं साम्नाम्
तां० १५ । १२ । २ ॥

” बृहत्यां भूयिष्ठानि सामानि भवन्ति । तां० ७ । ३ । १६ ॥

” अन्तो बृहत्साम्नाम् । तां० १९ । १२ । ८ ॥

” अथ यदेतदर्विर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्नां
लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥

” महाव्रतं साम्नाम् (समुद्रः) । श० ६ । ५ । २ । १२ ॥

” सामवेदेनास्तमये महीयते । तै० ३ । १२ । ६ । १ ॥

” साम्नामुदीची महती दिशुच्यते । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥

” धर्म इन्द्रो राजेत्याह तस्य देवा विशः.....सामानि वेदः
.....साम्नां दशतं (=दशतिं) ब्रूयात् । श० १३ । ४ । ३ । १४ ॥

” ऋक्सामयोर्द्वैते (शुक्लकृष्णे) रूपे । श० ६ । ७ । १ । ७ ॥

” सामवेदे ऽथ खिलश्रुतिः ब्रह्मचर्येण चैतस्मादथर्वाङ्गिरसो
ह यो वेद स वेद सर्वमिति । गो० पू० १ । २९ ॥

सामिधेनी (ऋक्) एता हि वाऽइदं सर्वं सामिन्धतऽएताभिरिदं
सर्वं समिद्धं तस्मात्सामिधेन्यो नाम । श० ११ । २ ।
७ । ६ ॥

” सामिधे सामिधेनीभिर्होता तस्मात् सामिधेन्यो नाम ।
श० १ । ३ । ५ । १ ॥

” वज्रो वै सामिधेन्यः । कौ० ३ । २, ३ ॥ ७ । २ ॥

साम्राज्यम् तस्मादेतस्यां प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः
साम्राज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते सम्राडित्येनानभिषिक्ता-
नाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

” अथैनं (इन्द्रं) प्राच्यां दिशि वसवो देवाः..... अभ्य-
षिञ्चन्.....साम्राज्याय । ऐ० ८ । १ ॥

” साम्राज्यं वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ गो० ३० । ५ । ७ ॥

” तेजसो वा एष वनस्पतिरजायत यदश्वत्थः, साम्राज्यं वा
एतद्वनस्पतीनाम् । ऐ० ७ । ३२ ॥

” अत्रं हि राज्यं परं साम्राज्यम् । श० ५ । १ । १ । १३ ॥

” साम्राज्यं वै स्वर्गो लोकः । तां० ४ । ६ । २४ ॥

- सायम् (कालः) वरुणस्य सायमासवो ऽपानः । तै० १ । ५ । ३ । १ ॥
 सर्पराज्ञी इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी । कौ० २७ । ४ ॥
 ,, इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञी । तां० ४ । ९ । ६ ।
 ,, वाग्वै सर्पराज्ञी । कौ० २७ । ४ ॥
 ,, गौर्वै सर्पराज्ञी । कौ० २७ । ४ ॥

सर्वेसेनियज्ञः स एष प्रजातिकामस्य यज्ञः । कौ० ४ । ६ ॥

- सालावृकः इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तपां त्रय उदशिष्यन्त
 रायोवाजो बृहद्गिरिः पृथुरश्मिः । तां० ८ । १ । ४ ॥
 ,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तपां त्रय उदशिष्य-
 न्त पृथुरश्मिर्बृहद्गिरी रायोवाजः । तां० १३ । ४ । १७ ॥
 ,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्रीला वागभ्य-
 वदत् स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतमुपहव्यं प्रायच्छत् ।
 तां० १८ । १ । ९ ॥
 ,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्रीला वाग-
 भ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एते शुद्धाशुद्धीये (सामनी)
 अपश्यत्ताभ्यामशुध्यत् । तां० १९ । ४ । ७ ॥
 ,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्रीला वागभ्य-
 वदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एतच्छुद्धाशुद्धीयं (साम) अप-
 श्यत्तेनाशुध्यत् (इन्द्रो यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तान्द-
 क्षिणत उत्तरवेद्या आदन्—तैत्तिरीयसंहितायाम् ६ । २ ।
 ७ । ५ ॥ अथर्ववेदे २ । २७ । ५ः—तयाहं शत्रून्साक्ष इन्द्रः
 सालावृकाँ इव ॥ ऋ० १० । ७२ । ३ः—त्वमिन्द्र सालावृ-
 कान्सहस्रमासन्दिधेपे ॥) । तां० १४ । ११ । २८ ॥
 ,, यत्रेन्द्रं देवताः (यज्ञेषु) पर्यवृञ्जन्, यतः स इन्द्रः) विश्व-
 रूपं त्वाष्ट्रमभ्यमंस्त वृत्रमस्तृत यतीन्सालावृकेभ्यः प्रा-
 दादरुर्मघानवधीद् बृहस्पतेः प्रत्यवधीदिति तत्रेन्द्रः सोम-
 पीथेन व्याद्धेत [तं (प्रतर्दनं) हेन्द्र उवाच मामेव विजानी-
 होतदेवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये यन्मां विजानीया-
 त्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनमरुन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः
 प्रायच्छं बह्वीः सन्धा अतिक्रम्य दिधि प्रह्लादीयानतृणमह-
 मन्तारिक्षे पौलोमान् पृथिव्यां कालकाञ्चास्तस्य मे तत्र न

लोम च नामीयते स यां मां (इन्द्रं) वेद न ह वै तस्य
केन चन कर्मणा लोको मीयते न स्तेयेन न भूणहत्यया
न मानृबधेन न पितृबधेन नास्य पापं चकृषो मुखाशीलं
वेतीति—शङ्करानन्दीयटीकायुतायां कौषीताकिब्राह्मणोप-
निषदि ३ । १ ॥] । ऐ० ७ । २८ ॥

सावित्रः (अग्निः) स यदेते देवते अन्तरेण तत्सर्वं सीदयति ।
तस्मात् सावित्रः । तै० ३ । १० । ११ । ७ ॥
“ एष वाव स सावित्रः । य एष (सूर्यः) तपति । तै० ३ ।
१० । ९ । १५ ॥

सावित्रग्रहः प्राणो वै सावित्रग्रहः कौ० १६ । २ ॥

सावित्री (ऋक्) अथ (आचार्यः) अस्मै (ब्रह्मचारिणे) सावित्रीम-
न्वाह । श० ११ । ५ । ४ । ६ ॥

“ सां उपहतपाप्मानन्तां श्रियमश्नुते य एवं वेद यश्चैवं विद्या-
नेवमेतां वेदानां मातरं सावित्रीं उपदमुपनिषदमुपास्ते ।
गो० पू० १ । ३९ ॥

“ द्यौः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ११ ॥

“ अन्तरिक्षं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

“ नक्षत्राणि सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १३ ॥

“ वाक् सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १५ ॥

“ पृथिवी सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ११ ॥ गो० पू० १ । ३३ ॥

“ रात्रिः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

“ स्तनयित्नुः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

“ विद्युत्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ९ ॥

“ वर्षं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

“ आपस्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ३ ॥

“ अन्नं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

“ दक्षिणाः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

“ छन्दांसि सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ७ ॥

“ शीतं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

“ आकाशस्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ५ ॥

सावित्री स्त्री सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । १७ ॥

„ यो वा एतां सावित्रीमेवं वेदाऽपमृत्यं तरति सावित्र्या एव
सलोकतां जयति । जै० उ० ४ । २८ । ६ ॥

साहस्रः होता हि साहस्रः । श० ४ । ५ । ८ । १२ ॥

„ साहस्राः पशवः । कौ० २१ । ५ ॥

साहस्रः शतधार उत्तः (यजु० १३ । ४९) साहस्रो वाऽ एष शतधार
उत्सो यद्गौः । श० ७ । ५ । २ । ३४ ॥

साहस्री (गौः) व. ग्वाऽ एषा निदानेन यत्साहस्री तस्या एतत् सहस्रं
वाचः प्रजातम् । श० ४ । ५ । ८ । ४ ॥

सिंहः लोहितादेवास्य सहो ऽस्रवत्स सिंहो ऽभवदारण्यानां पशूना-
मीशः । श० १२ । ७ । १ । ८ ॥

„ स यन्नस्तो ऽद्रवत् । ततः सिंहः समभवत् । श० ५ । ५ । ४ ।
१० ॥

सिकताः सा (मृत्) अतप्यत सा सिकता असृजत । श० ६ । १ ।
३ । ४ ॥

„ सिकताभ्यः शर्करामसृजत । श० ६ । १ । ३ । ५ ॥

„ द्वे हि सिकते शुक्ला च कृष्णा च । श० ७ । ३ । १ । ४३ ॥

„ अलंकारो न्वेव सिकता भ्राजन्तऽ इव हि सिकता अग्नेर्वा
एतद्वैश्वानरस्य भस्म यत्सिकताः । श० ३ । ५ । १ । ३६ ॥

„ अग्नेरेतद्वैश्वानरस्य भस्म यत्सिकताः । श० ७ । १ । १ । ९ ॥

„ अग्नेरेतद्वैश्वानरस्य रेतो यत्सिकताः । श० ७ । १ । १ । १० ॥

„ रेतः सिकताः । श० ७ । १ । १ । ११ ॥

„ सिकता वा अपां पुरीषम् । श० ७ । ५ । २ । ५९ ॥

सिनीवाली या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली । ऐ० ७ । ११ ॥ ४० ४ ।
६ ॥ गो० उ० १ । १० ॥

„ (यजु० ११ । ५५) वाग्वै सिनीवाली । श० ६ । ५ । १ । ९ ॥

„ या गौः सा सिनीवाली सो एव जगती । ऐ० ३ । ४८ ॥

„ या सिनीवाली सा जगती । ऐ० ३ । ४७ ॥

„ (यजु० ११ । ५६) योषा वै सिनीवाली । श० ६ । ५ ।
१ । १० ॥

सिन्धवः (ऋ० २ । १२ । १२) तद्यदेतैरिदं सर्वं सितं तस्मात्सिन्धवः ।
जै० उ० १ । २९ । ९ ॥

सिन्धुश्छन्दः (यजु० १५ । ४) प्राणो वै सिन्धुश्छन्दः । श० ८ । ५ ।
२ । ४ ॥

सिमाः (=शाकरं साम, महानाम्न्यः) (इन्द्रो वृत्रस्य) सीमानमभिनत्त-
त्सिमा । तां० १३ । ४ । १ ॥

„ ता ऊर्ध्वाः सीम्नो ऽभ्यसृजत यदूर्ध्वाः सीम्नो ऽभ्यसृजत
तत्सिमा अभवंत्तत्सिमानां सिमात्वम् । ऐ० ५ । ७ ॥

„ मह्यो हि सिमाः । तां० १३ । ५ । ३ ॥

सीता बीजाय वाऽ एषा योनिष्क्रियते यत्सीता यथा ह वाऽ अयोनौ
रेतः सिञ्चेद्वं तद्यदकृष्टे वपति । श० ७ । २ । २ । ५ ॥

„ प्राणा वै सीताः । श० ७ । २ । ३ । ३ ॥

„ सा (सीता सावित्री) ह पितरं प्रजापतिमुपससार । तं ह्यो-
वाच । नमस्ते अस्तु भगवः । तै० २ । ३ । १० । १ ॥

सीतासमरः वाग्वै सीतासमरः । श० ७ । २ । ३ । ३ ॥

सीदन्तीयम् (=शङ्कुसाम) एतेन (सीदन्तीयेन) वै प्रजापतिरूर्ध्व इमान्
लोकानसीदद्यदसीदत्तत् सीदन्तीयस्य सीदन्तीयत्वमूर्ध्व
इमान् लोकान् सीदति सीदन्तीयेन तुष्टुवानः । तां० ११ ।
१० । १२ ॥

„ तद् (शङ्कुसाम) उ सीदन्तीयमित्याहुः । तां० ११ ।
१० । १२ ॥

सीमा (यजु० १३ । ३) मध्यं वै सीमा । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

सीरपतिः इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः । तै० २ । ४ । ८ । ७ ॥

सीरम् सेरं ह्यैतद्यत्सीरमिरामेवास्मिन्नेतद्वधाति । श० ७ । २ । २ । २ ॥

सीसम् नाभ्या एवास्य शूषो ऽस्रवत् । तत्सीसमभवन्नायो न हिरण्य-
म् । श० १२ । ७ । १ । ७ ॥

„ एतद्यो न हिरण्यं यत्सीसम् । श० ५ । १ । २ । १४ ॥

„ लोहेन सीसम् (सन्ध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥

„ सीसेन त्रपु (सन्ध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥

„ (इन्द्रः) तत् (रक्षः) सीसेनापजघान । तस्मात्सीसं मृदु
सृतजवथं हि । श० ५ । ४ । १ । १० ॥

[सुपर्णः

(५९८)

सुकीर्तिः (= “अप प्राच इत्यादि सूक्तम्” इति सायणः) देवयोनिर्वै सुकीर्तिः ।

ऐ० ६ । २९ ॥ गो० उ० ६ । ८, १२ ॥

सुकृतः तस्य सूर्यस्य ये रश्मयस्ते सुकृतः । श० १ । ९ । ३ । १० ॥

सुकृतस्य योनिः (यजु० ११ । ३५) कृष्णाजिनं वै सुकृतस्य योनिः । श०
६ । ४ । २ । ६ ॥

सुकृतस्य लोकः सत्यं वै सुकृतस्य लोकः । तै० ३ । ३ । ६ । ११ ॥

„ पुण्यं कर्म सुकृतस्य लोकः । तै० ३ । ३ । १० । २ ॥

सुक्षितिः (यजु० ३७ । १०) अयं वै (पृथिवी-) लोकः सुक्षिति-
रस्मिन्निह लोके सर्वाणि भूतानि क्षियन्ति । श० १४ । १ । २ । २४ ॥

„ अथोऽअग्निर्वै सुक्षितिरग्निर्होवास्मिँल्लोके सर्वाणि भूतानि
क्षियांति । श० १४ । १ । २ । २४ ॥

सुखम् सुखं वै कम् । गो० उ० ६ । ३ ॥

„ अथो सुखस्य वा एतन्नामधेयङ्कमिति । गो० उ० १ । २२ ॥

„ अथो सुखस्यैवैतन्नामधेयं कमिति । कौ० ५ । ४ ॥

सुगन्धितेजनम् (तृणविशेष इति सायणः) (अग्नेः) यत् स्नाव (आसीत्)
तत्सुगन्धितेजनम् (अभवत्) । तां० २४ । १३ । ५ ॥

„ गन्धो हैवास्य (अग्नेः) सुगन्धितेजनम् । श० ३ ।
५ । २ । १७ ॥

सुचरितम् ऋजुकर्मस्य सत्यं सुचरितम् । तै० ३ । ३ । ७ । १० ॥

सुतर्मानौ यज्ञो वै सुतर्मानौः कृष्णाजिनं वै सुतर्मानौर्वाग्वै सुतर्मा
नौः । ऐ० १ । १३ ॥

सुत्वाः अग्निष्टोमो ऽत्याग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशिमांस्ततः । वाजपेयो
ऽतिरात्रश्चासौर्यामात्र सप्तम इत्येते सुत्वाः । गो० पू० ५ । २३ ॥

सुत्रामा ऋषभमिन्द्राय सुत्राम्णऽ आलभते ! श० ५ । ५ । ४ । १ ॥

सुदप्रः (यजु० ३८ । ५) “रत्नघा” इत्येतं शब्दं पश्यत ।

सुपर्णः षडोः (= षडोः) वै सुपर्णः । कौ० १८ । ४ ॥

„ अथ ह वाऽ एष महासुपर्ण एव यत्संवत्सरः । तस्य यान्पुर-
स्ताद्विषुवतः षण्मासानुपयन्ति सो ऽन्यतरः पक्षो ऽथ
यान्पुष्टपरिहात्सो ऽन्यतर आत्मा विषुवान् । श० १२ । २ ।

३ । ७ ॥

- सुपर्णः (यजु० १३। १६) पुरुषः सुपर्णः । श० ७। ४। २। ५ ॥
- „ यज्ञो वै देवेभ्यो ऽपाक्रामत्स सुपर्णरूपं कृत्वाचरत् तं देवा एतैः (सौपर्णैः) सामभिरारभन्त । तां० १४। ३। १० ॥
- „ प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मान् (ऋ० १०। १४९। ३) । श० १०। २। २। ४ ॥
- „ वीर्यं वै सुपर्णो गरुत्मान् । श० ६। ७। १। ६ ॥
- सुपर्णा (माया) वागेव सुपर्णी । श० ३। ६। २। २ ॥
- सुब्रह्म असावादित्यः सुब्रह्म । ष० १। १ ॥
- „ वाग्वै ब्रह्म च सुब्रह्म चेति । ऐ० ६। ३ ॥
- सुब्रह्मण्या (=इन्द्राऽऽगच्छ हरिव आगच्छेत्यादि निगदः) ब्रह्म वै सुब्रह्मण्या । कौ० २७। ६ ॥
- „ तदाहुः किं सुब्रह्मण्यायै सुब्रह्मण्यात्वमिति वागेवेति ब्रूया-
द्वाग्वै ब्रह्म च सुब्रह्म चेति । ऐ० ६। ३ ॥
- „ वाग्वै सुब्रह्मण्या । ऐ० ६। ३ ॥
- „ ब्रह्मश्रीर्वै नामैतत्साम यन्सुब्रह्मण्या । ष० १। २ ॥
- सुमेकः सुमेकः संवत्सरः स्वेको ह वै नामैतद्यत्सुमेक इति । श० १। ७। २। २६ ॥
- सुन्नम् (=साधु) सुन्ने स्थः सुन्ने मा धत्तमिति साध्व्यौ स्थः साधौ
मा धत्तमित्येवैतदाह । श० १। ८। ३। २७ ॥
- „ प्रजा वै पशवः सुन्नम् । तै० ३। ३। ६। ९ ॥
- „ (यजु० १२। ६७, १११) यज्ञो वै सुन्नम् । श० ७। २।
२। ४ ॥ ७। ३। १। ३४ ॥
- सुम्नयुः (ऋ० ३। २७। १) यजमानो वै सुम्नयुः । श० १। ४।
१। २१ ॥
- सुरभयः प्राणा वै सुरभयः । तै० ३। ९। ७। ५ ॥
- सुरा अनृतं पाप्मा तमः सुरा । श० ५। १। २। १० ॥ ५। १।
५। २८ ॥
- „ अभिमाद्यन्निव हि सुरां पीत्वा वदति । श० १। ६। ३। ४ ॥
५। ५। ४। ५ ॥
- „ तस्मात्सुरां पीत्वा रौद्रमनाः । श० १२। ७। ३। २० ॥

सुरा स्विगीभ्यामेवास्य भामो ऽन्नवत्सा सुराभवदन्नस्य रसः ।
श० १२ । ७ । १ । ७ ॥

- ” यत्सुरा भवति क्षत्ररूपं तदथो अन्नस्य रसः । ऐ० ८ । ८ ॥
 ” अपां च वाऽ एष ओषधीनां च रसो यत्सुरा । श० १२ । ८ ।
 १ । ४ ॥
 ” अन्नं सुरा । तै० १ । ३ । ३ । ५ ॥
 ” यदन्नस्य (शमलमासीत्) सा सुरा (अभवत्) । तै० २ ।
 ३ । २ । ६ ॥ १ । ३ । ३ । ३, ६ ॥
 ” प्रजापतेर्वाऽ एतेऽअन्धसी यत्सोमश्च सुरा च । श० ५ । १ ।
 २ । १० ॥
 ” एतद्वै देवानां परममन्नं यत्सोमः । एतन्मनुष्याणां यत्सुरा ।
 तै० १ । ३ । ३ । ३ ॥
 ” पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा । तै० १ । ३ । ३ । ४ ॥
 ” विट् सुरा । श० १२ । ७ । ३ । ८ ॥
 ” यशो हि सुरा । श० १२ । ७ । ३ । १४ ॥
 ” अशिव इव वाऽ एष भक्षो यत्सुरा ब्राह्मणस्य । श० १२ । ८ । १ । ५ ॥
 ” सुरावान्वाऽ एष बर्हिषद्यज्ञो यत्सौत्रामणी । श० १२ । ८ ।
 १ । २ ॥

सुरुचः (यजु० १३ । ३) इमे लोकाः सुरुचः । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

सुरूपकृतुः यो ऽयमनिरुक्तः प्राणः स सुरूपकृतुः । कौ० १६ । ४ ॥

सुरूपम् (साम) पशवो वै सुरूपं पशूनामवरुध्यै । तां० १४ । ११ । ११ ॥

” अन्नं वै सुरूपम् । कौ० १६ । ३ ॥

सुवर्णम् लवणेन सुवर्णं संदध्यात् । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥ गो० पू०
१ । १४ ॥

” सुवर्णेन रजतम् (संदध्यात्) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥ गो०
पू० १ । १४ ॥ (एवं छान्दोग्योपनिषदि ४ । १७ । ७ ।)

सुवीरः एष वाव सुवीरो यस्य पशवः । तां० १३ । १ । ४ ॥

सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः प्राणो वै सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः । श० ४ । ४ । १ । १४ ॥

सुशस्त्रिः (यजु० १२ । १०८) (=सुष्टुतिः) ऊर्जा नपाज्जातवेदः सुश-
स्त्रिभिरिति । ऊर्जा नपाज्जातवेदः सुष्टुतिभिरित्येतत् ।
श० ७ । ३ । १ । ३१ ॥

सुभास्तिः (यजु० ११। ४१) ये वोढारस्ते सुशस्तयः । श० ६। ४। ३। ६ ॥

सुश्रवाः देवा वै ब्रह्मन्नवदन्त । तत्पर्ण (=पलाशः) उपाश्रुणोत् ।
सुश्रवा वै नाम । तै० १। १। ३। ११ ॥

„ देवानां ब्रह्मवादां वदतां यत् । उपाश्रुणोः, (तस्मात्त्वं हे पर्ण)
सुश्रवा वै श्रुतो ऽसि । ततो मामाविशतु ब्रह्मवर्चसम् । तै०
१। २। १। ६ ॥

सुषदः (यजु० ११। ४४) पृथुर्भुव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहण इति
पृथुर्भव सुशीमस्त्वमग्नेः पशव्यवाहन इत्येतत् (सुषदः=
सुशीमः) । श० ६। ४। ४। ३ ॥

सुषुम्णः (यजु० १८। ४०) सुषुम्ण इति सुयज्ञिय इत्येतत् । श० ९।
४। १। ९ ॥

सुषेणः (यजु० १५। १९) तस्य (पर्जन्यस्य) सेनजिच्च सुषेणश्च
सेनानीग्रामण्याविति द्वैमन्तिकौ तावृत् । श० ८। ६।
१। २० ॥

सुसन्दक् प्राणो वै सुसन्दक् । तै० १। ६। ९। ९ ॥

सूक्तम् यजमानो हि सूक्तम् । ऐ० ६। ९ ॥

„ आत्मा सूक्तम् । कौ० १४। ४ ॥ १५। ३ ॥ १६। ४ ॥ २३। ८ ॥

„ द्यौस्सूक्तम् । जै० उ० ३। ४। २ ॥

„ शिरस्सूक्तम् । जै० उ० ३। ४। ३ ॥

„ गृहाः सूक्तम् । ऐ० ३। २३ ॥

„ गृहा वै सूक्तम् । गो० उ० ३। २१, २२ ॥

„ गृहा वै प्रतिष्ठा सूक्तम् । ऐ० ३। २४ ॥

„ विद् सूक्तम् । ऐ० २। ३३ ॥ ३। १९ ॥

„ प्रजा पशवः सूक्तम् । कौ० १४। ४ ॥

सूक्तवाकः संस्था सूक्तवाकः । श० ११। २। ७। २८ ॥

„ प्रतिष्ठा वै सूक्तवाकः । कौ० ३। ८ ॥

सूची विशो वै सूच्यः । श० १३। २। १०। २ ॥

सूतः सवो वै सूतः । श० ५। ३। १। ५ ॥

सूक्तदोहाः आपो वै सूक्तो ऽन्नं दोहाः । श० ८। ७। ३। २१ ॥

„ प्राणः सूक्तदोहाः । श० ७। १। १। १५ ॥ ७। ३। १। ४५ ॥

[सूर्यः

(६०२)

सूददोहाः प्राणो वै सूददोहाः । श० ७ । १ । १ । २६ ॥

” त्वक्सूददोहाः । श० ८ । १ । ४ । ४ ॥

सूनुः (यजु० १२ । ५१) प्रजा वै सूनुः । श० ७ । १ । १ । २७ ॥

सूरः अन्तो वै सूरः (=सूर्य इति सायणः) । तां० १५ । ४ । २ ॥
१५ । ११ । १४ ॥

सूर्यः तं (इन्द्रं) देवा अब्रुवन् सुवीर्य्यो मर्य्यो यथा गोपायत इति ।
तत्सूर्य्यस्य सूर्य्यत्वम् । तै० २ । १ । १० । ४ ॥

” असौ वै सूर्य्यो यो ऽसौ तपति । कौ० ५ । ८ ॥ गो० उ० १ । २६ ॥

” एष वै सूर्य्यो य एष तपति । श० २ । ६ । ३ । ८ ॥

” (यजु० १८ । ५०) असौ वाऽ आदित्यः सूर्यः । श० ९ । ४ ।
२ । २३ ॥

” एष वै शुक्रो य एष (सूर्यः) तपत्येष उऽएव बृहन् । श० ४ ।
५ । ९ । ६ ॥

” एष वाऽ इन्द्रो य एष (सूर्यः) तपति । श० २ । ३ । ४ । १२ ॥
३ । ४ । २ । १५ ॥

” असौ वै पूषा यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । गो० उ० १ । २० ॥
कौ० ३ । २ ॥

” असौ वै सविता यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० ७ । ६ ॥ गो०
उ० १ । २० ॥

” एष वै सविता य एष तपति (सूर्यः) । श० ३ । २ । ३ । १८ ॥
४ । ४ । १ । ३ ॥ ५ । ३ । १ । ७ ॥

” एष वाव स सावित्रः । य एष (सूर्यः) तपति । तै० ३ । १० ।
९ । १५ ॥

” यः सूर्यः स धाता स उ एव वषट्कारः । ऐ० ३ । ४८ ॥

” एष एव वषट्कारो य एष (सूर्यः) तपति । श० १ । ७ ।
२ । ११ ॥

” एष वै वषट्कारो य एष (सूर्यः) तपति । श० ११ । २ ।
२ । ५ ॥

” एष वै स्वाहाकारो य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ ।
३ । २६ ॥

- सूर्यः एष वै ब्रह्मणस्पतिः (यजु० ३७।७) य एष (सूर्यः) तपति ।
श० १४।१।२।१५ ॥
- „ स वा एषो (सूर्यः) ऽपः प्रविश्य वरुणो भवति । कौ० १८।९॥
- „ अर्कश्चक्षुस्तदसौ सूर्यः । तै० १।१।७।२ ॥
- „ एष वै मखो (यजु० ३७।१२) य एष (सूर्यः) तपति ।
श० १४।१।३।५ ॥
- „ एष वै पिता (यजु० ३७।२०) य एष (सूर्यः) तपति ।
श० १४।१।४।१७ ॥
- „ स हैष (सूर्यः) भर्ता । श० ४।६।७।२१ ॥
- „ एष वै ब्रह्मः । य एष (सूर्यः) तपति येनेमाः सर्वाः प्रजा
गृहीताः । श० ४।६।५।१ ॥
- „ एष (सूर्यः) वै गोजाः । ऐ० ४।२० ॥
- „ एष वै गोपाः (यजु० ३७।१७) य एष (सूर्यः) तपत्येष
हीदथ सर्वं गोपायति । श० १४।१।४।९ ॥
- „ एष वै तन्त्रायी (यजु० ३८।१२ ॥) य एष (सूर्यः) तपत्येष
हीमाँल्लोकांस्तन्त्रमिवानुसंचरति । श० १४।२।२।२२ ॥
- „ अथ वै निविदसावेव यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष हीदं सर्वं निवे-
दयन्नेति । कौ० १४।१ ॥
- „ आदित्यो (=सूर्यः) निवित् । जै० उ० ३।४।२ ॥
- „ सौर्या वा पता देवता यन्निविदः । ऐ० ३।११ ॥
- „ यज्ञो वै स्वः (यजु० १।११) अहर्देवाः सूर्यः । श० १।१।
२।२१ ॥
- „ असौ (सूर्यः) वाव खर्दकेन सूर्यं नातिशंसति । ऐ० ४।१० ॥
- „ असौ वै विश्वकर्मा यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० ५।५ ॥
गो० उ० १।२३ ॥
- „ एष (सूर्यः) वै वरसद् वरं वा एतत्सन्नानां यस्मिन्नेष आसन्न-
स्तपति । ऐ० ४।२० ॥
- „ एष (सूर्यः) वै वसुरन्तरिक्षसद् । ऐ० ४।२० ॥
- „ एष (सूर्यः) वै व्योमसद् व्योम वा एतत् सन्नानां यस्मिन्नेष
आसन्नस्तपति । ऐ० ४।२० ॥

- सूर्यः एष (सूर्यः) वै नृषत् । ऐ० ४ । २० ॥
- „ एष (सूर्यः) वै होता वेदिषद् (ऋ० ४ । ४० । ५) । ऐ० ४ । २० ॥
- „ असौ वै होता यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । गो० ३० ६ । ६ ॥
- „ असौ वै दूरोहो यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । ऐ० ४ । २० ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यो (=सूर्यः) दूरोहणं छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ६ ॥
- „ एष वै यमो (यजु० ३७ । ११) य एष (सूर्यः) तपत्येष हीद॑त्सर्वं यमयत्येतेनेद॑त्सर्वं यतम् । श० १४ । १ । ३ । ४ ॥
- „ स एष (सूर्यः) मृत्युः । श० १० । ५ । १ । ४ ॥
- „ एष एव मृत्युः । य एष (सूर्यः) तपति । श० २ । ३ । ३ । ७ ॥
- „ सूर्यः परिवत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥
- „ आदित्यः (=सूर्यः) परिवत्सरः । तै० १ । ४ । १० । १ ॥
- „ असौ वै महावीरो यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० ८ । ३ । ७ ॥
- „ एष वै चतुःस्त्रिकिर्य एष (सूर्यः) तपति दिशो होतस्य स्त्रकयः । श० १४ । ३ । १ । १७ ॥
- „ अथ वै पुरोरुगसावेव यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष हि पुरस्ताद्बोचते । कौ० १४ । ४ ॥
- „ तद्वाऽ एतदेव पुरश्चरणम् । य एष (सूर्यः) तपति । श० ४ । ६ । ७ । २१ ॥
- „ एष वाव स परोरजा इति होवाच । य एष (सूर्यः) तपति । तै० ३ । १० । ९ । ४ ॥
- „ वाजपेयो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । गो० ३० ५ । ८ ॥
- „ अस्य (अग्नेः) एवैतानि (घर्मः, अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) नामानि । श० ९ । ४ । २ । २५ ॥
- „ एष वै गर्भो देवानां (यजु० ३७ । १४ ॥) य एष (सूर्यः) तपत्येष हीद॑त्सर्वं गृह्णात्येतेनेद॑त्सर्वं गृभीतम् । श० १४ । १ । ४ । २ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यो (=सूर्यः) बृहज्ज्योतिः । श० ६ । ३ । १ । १५ ॥
- „ असौ (सूर्यः) वाव ज्योतिस्तेन सूर्यं नातिशंसति । ऐ० ४ । १० ॥

- सूर्यः ज्योतिरेष य एष (सूर्यः) तपति । २५ । ३, ९ ॥
- „ एष वै श्रेष्ठो रश्मिः (यजु० २ । २६ ॥) यत्सूर्यः । श० १ । १ । ३ । १६ ॥
- „ यदेतन्मण्डलं (=सूर्यः) तपति । तन्महदुक्तं ता ऋचः स ऋचां लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥
- „ बार्हतो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० १५ । ४ ॥ २५ । ४ ॥ गो० उ० ३ । २० ॥
- „ बृहत्यां वा असावादित्यः (=सूर्यः) श्रियां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितस्तपति । गो० उ० ५ । ७ ॥
- „ जागतो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० २५ । ४, ७ ॥
- „ त्रेण्डुभो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० २५ । ४ ॥
- „ य आदित्यः (सूर्यः) स्वर एव सः । जै० उ० ३ । ३३ । १ ॥
- „ स यदाह स्वरो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै सूर्यो भूत्वा-
ऽमुष्मिंल्लोके स्वरति तद्यत्स्वरति तस्मात्स्वरस्तत्स्वरस्य स्वर-
त्वम् । गो० पू० ५ । १४ ॥
- „ एष वै मूर्धा य एष (सूर्यः) तपति । श० १३ । ४ । १ । १३ ॥
- „ (द्युस्थानः) सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य इति तदमुं लोकं (=द्युलोकं) लोकानामाप्नोति तृतीयसवनं यज्ञस्य । कौ० १४ । १ ॥
- „ (यजु० २० । २१) स्वर्गो वै लोकः सूर्यो ज्योतिरुत्तमम् । श० १३ । ६ । २ । ८ ॥
- „ एष (आदित्यः) स्वर्गो लोकः । तै० ३ । ८ । १० । ३ ॥ ३ । ८ । १७ । २ ॥ ३ । ८ । २० । २ ॥
- „ अर्घोदितः (आदित्यः=सूर्यः) प्रस्तावः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥
- „ सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा । श० १४ । ३ । २ । ९ ॥
- „ अथ सूर्यमुदीक्षते । सैषा गतिरेषा प्रतिष्ठा । श० १ । ६ । ३ । १५ ॥
- „ ते (देवाः) सूर्यं काष्ठाङ्गत्वाजिमधावन् । तां ९ । १ । ३५ ॥
- „ एतद्वाऽ अनपराद्धं नक्षत्रं यत्सूर्यः । श० २ । १ । ३ । १९ ॥
- „ सूर्यो ऽग्नेर्योनिरायतनम् । तै० ३ । ६ । २१ । २, ३ ॥
- „ सूर्यस्य वर्चसा । श० ५ । ४ । २ । २ ॥ तां १ । ३ । ५ ॥ १ । ७ । ३ ॥

- सूर्यः तस्माद्गनये साय॑ ह्यते सूर्याय प्रातः । तै० २ । १ । २ । ६ ॥
- ॥ तेषां (नक्षत्राणां) एष (सूर्यः) उद्यन्नेव वीर्यं क्षत्रमादत्त ।
श० २ । १ । २ । १८ ॥
- ॥ स (सूर्यः) यत्रोदङ्ङावर्त्तते । देवेषु तर्हि भवति देवांस्तर्ह्य-
भिगोपायत्यथ यत्र दक्षिणावर्त्तते पितृषु तर्हि भवति पितॄ-
स्तर्ह्यभिगोपायति । श० २ । १ । ३ । ३ ॥
- ॥ सूर्यो हि नाष्ट्राणां रक्षसामपहन्ता । श० १ । ३ । ४ । ८ ॥
- ॥ सूर्यो मा दिव्याभ्यो नाष्ट्राभ्यः पातु । तां० १ । ३ । २ ॥
- ॥ युनजिम वाचं सह सूर्येण । तां० १ । २ । १ ॥
- ॥ सूर्यो वै प्रजानां चक्षुः । श० १३ । ३ । ८ । ४ ॥
- ॥ सूर्यो मे चक्षुषि श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ५ ॥
- ॥ स्वर्भानुर्ह वाऽ आसुरः । सूर्यं तमसा विव्याध स तमसा विद्धो
न व्यरोचत तस्य सोमारुद्रावैतत्तमो ऽपाहतां स एषो
ऽपहतपाप्मा तपति । श० ५ । ३ । २ । २ ॥
- ॥ स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसा ऽविध्यत् । तां० ४ । ५ । २ ॥
- ॥ स्वर्भानुर्वा आसुरिः सूर्यन्तमसाविध्यत् । गो० उ० ३ । १९ ॥
- ॥ सूर्यस्य ह वाऽ एको रश्मिर्बुध्नवतिः (यजु० ३८ । ६) नाम
येनेमाः सर्वाः प्रजा विभर्ति । श० १४ । २ । १ । २१ ॥
- ॥ सूर्याय पुरोडाशमेककपालं (निर्धपति) । ऐ० ३ । ४८ ॥
- ॥ सौर्यं एककपालः पुरोडाशो भवति । श० २ । ६ । ३ । ८ ॥
- ॥ असौ वाव (सूर्यः) मर्चयति (=गच्छति) इव । ऐ० ४ । १० ॥
- ॥ स (सूर्यः) उद्यन्नेवामूं (दिवं) अधिद्रवत्यस्तं यन्निमां
(पृथिवीं) अधिद्रवति । श० १ । ७ । २ । ११ ॥
- ॥ सौर्यो वा अश्वः । गो० उ० ३ । १६ ॥
- ॥ अस्माभिः (अङ्गिरोभिः) एष प्रतिगृहीतो य एष (सूर्यः)
तपतीति तस्मात्सद्यःक्रियो ऽश्वः श्वेतो दक्षिणा । श० ३ ।
५ । १ । १९ ॥
- ॥ श्वेत इव होष (सूर्यः) यन्भवति तस्माच्छ्वेतो ऽनङ्गवान्दक्षिणा ।
श० ५ । ३ । १ । ७ ॥
- ॥ सूर्य उद्गाता । गो० पू० १ । १३ ॥
- ॥ सौर्य उद्गाता । तां० १८ । ९ । ८ ॥

- सूर्यः सौर्यं रेतः । तै० ३ । ६ । १७ । ५ ॥
- „ सूर्यात्सामवेदः (अजायत) । श० ११ । ५ । ८ । ३ ॥
- „ एष वाऽ अपाऽ रसो यो ऽयं (वायुः) पवते स एष सूर्यं
समाहितः सूर्यात्पवते । श० ५ । १ । २ । ७ ॥
- „ आदित्यशब्दमपि पश्यत ॥
- सूर्यराश्मिः (यजु० १८ । ४०) (=चन्द्रमाः) सूर्यस्येव हि चन्द्रमसो
रश्मयः । श० ९ । ४ । १ । ९ ॥
- सूर्यस्य दुहिता (यजु० १९ । ४) श्रद्धा वै सूर्यस्य दुहिता । श० १२ ।
७ । ३ । ११ ॥
- सूर्या अथ यत्र ह तत्सविता सूर्या प्रायच्छन्सोमाय राक्षे । कौ०
१८ । १ ॥
- „ प्रजापतिवै सोमाय राक्षे दुहितरं प्रायच्छत्सूर्या सावित्रीम् ।
ऐ० ४ । ७ ॥
- सेनजित् (यजु० १५ । १९) तस्य (पर्जन्यस्य) सेनजिञ्च सुषेणश्च
सेनानीग्रामण्याविति हैमन्तिकौ तावृत् । श० ८ । ६ । १ । २० ॥
- सेना सेनेन्द्रस्य पत्नी । गो० ३० । २ । ९ ॥
- सैन्धुक्षितम् (साम) सिन्धुक्षिद्वै राजन्यर्षिर्ज्योगपरुद्धश्चरन् स एतत्सै-
न्धुक्षितमपश्यत् सो ऽवागच्छत् प्रत्यतिष्ठदवगच्छति
प्रतितिष्ठति सैन्धुक्षितेन तुष्टुवानः । तां० १२ । १२ । ६ ॥
- सोमः स्वा वै मऽप्येति तस्मात्सोमो नाम । श० ३ । ९ । ४ । २२ ॥
- „ सत्यं (वै) श्री ज्योतिः सोमः । श० ५ । १ । २ । १० ॥ ५ ।
१ । ५ । २८ ॥
- „ श्रीवै सोमः । श० ४ । १ । ३ । ६ ॥
- „ सोमः (श्रियः) राज्यम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
- „ राजा वै सोमः । श० १४ । १ । ३ । १२ ॥
- „ सोमो राजा राजपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥
- „ असौ वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमाः । कौ० ४ । ४ ॥ ७ । १० ॥
- „ सोमो राजा चन्द्रमाः । श० १० । ४ । २ । १ ॥
- „ चन्द्रमा वै सोमः । कौ० १६ । ५ ॥ तै० १ । ४ । १० । ७ ॥ श०
१२ । १ । १ । २ ॥

[सोमः

(६०८)

- सोमः चन्द्रमा उ वै सोमः । श० ६ । ५ । १ । १ ॥
- „ स यदाह गयो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै चन्द्रमा भूत्वा
सर्वोल्लोकान्गच्छति । गो० पू० ५ । १४ ॥
- „ चन्द्रमा वाऽ अस्य (सोमस्य) दिवि भ्रव उत्तमम् (यजु०
१२ । ११३ ॥) । श० ७ । ३ । १ । ४६ ॥
- „ (इन्द्रः) तं (वृत्रं) द्वेषा न्वभिनत्तस्य यत्सौम्यं न्यक्तमास
तं चन्द्रमसं चकाराथ यदस्यासुर्य्यमास तेनेमाः प्रजा उदरेणा-
विध्यत् । श० १ । ६ । ३ । १७ ॥
- „ वृत्रो वै सोम आसीत् । श० ३ । ४ । ३ । १३ ॥ ३ । ९ । ४ ।
२ ॥ ४ । २ । ५ । १५ ॥
- „ पितृलोकः सोमः । कौ० १६ । ५ ॥
- „ पितृदेवत्यो वै सोमः । श० २ । ४ । २ । १२ ॥ ४ । ४ । २ । २ ॥
- „ पितृदेवत्यः सोमः । श० ३ । २ । ३ । १७ ॥
- „ खाहा सोमाय पितृमते । मं० २ । ३ । १ ॥
- „ सौम्यश्चतुष्कपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥
- „ सोमाय वा पितृमते (षट्कपालं पुरोडाशं निर्वपति) । श०
२ । ६ । १ । ४ ॥
- „ संवत्सरो वै सोमः पितृमान् । तै० १ । ६ । ८ । २ ॥ १ । ६ ।
९ । ५ ॥
- „ (ऋ० ४ । ५३ । ७) संवत्सरो वै सोमो राजा । कौ० ७ । १० ॥
- „ ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य । ऐ०
१ । १३ ॥
- „ प्रच्यवस्व भुवस्वतऽ इति भुवनानां ह्येष (सोमः) पतिः ।
श० ३ । ३ । ४ । १४ ॥
- „ सोमो हि प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । २६ ॥
- „ सोमो वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥
- „ यदाह इयेनो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वा अग्निर्भूत्वा-
ऽस्मिंल्लोके संश्यायति । तद्यत्संश्यायति तस्माच्छयेनस्तच्छ-
येनस्य इयेनत्वम् । गो० पू० ५ । १२ ॥

- सोमः सोमो वैष्णवो राजेत्याह तस्यापरसो विशः । श० १३ । ४ ।
३ । ८ ॥
- „ यो वै विष्णुः सोमः सः । श० ३ । ३ । ४ । २१ ॥ ३ । ६ । ३ । २९ ॥
- „ जुष्टा विष्णव इति । जुष्टा सोमायेत्येवैतदाह (विष्णुः=सोमः) ।
श० ३ । २ । ४ । १२ ॥
- „ तद्यदेवेदं क्रीतो विशतीव तदु हास्य (सोमस्य) वैष्णवं
रूपम् । कौ० ८ । २ ॥
- „ सोमो वै पवमानः । श० २ । २ । ३ । २२ ॥
- „ योऽयं वायुः पवतऽ एष सोमः । श० ७ । ३ । १ । १ ॥
- „ स यदाह सम्राडसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै वायुर्भूत्वा-
ऽन्तरिक्षलोके सम्राजति तद्यत्सम्राजति तस्मात् सम्राट्
तत्सम्राजस्य सम्राट्त्वम् । गो० पू० ५ । १३ ॥
- „ एष (वायुः) वै सोमस्योद्गीथो यत्पवते । तां० ६ । ६ । १८ ॥
- „ तस्मात्सोमं सर्वेभ्यो देवेभ्यो जुहति तस्मादाहुः सोमः सर्वा
देवता इति । श० १ । ६ । ३ । २१ ॥
- „ सोमः सर्वा देवताः । ऐ० २ । ३ ॥
- „ सोमो वाऽ इन्दुः । श० २ । २ । ३ । २३ ॥ ७ । ५ । २ । १९ ॥
- „ सोमो रात्रिः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥
- „ सोम एव सवृतः (?समृतः-तैत्तिरीयसंहितायाम् १ । ६ । ७ ।
१) इति । गो० उ० २ । २५ ॥
- „ सोमो वै चतुर्होता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥
- „ सोमो वै पर्णः । श० ६ । ५ । १ । १ ॥
- „ सोमो वै पलाशः । कौ० २ । २ ॥ श० ६ । ६ । ३ । ७ ॥
- „ यदि सोमं न विन्देयुः पूतीकानभिष्णुण्युर्यदि न पूतीकानर्जु-
नानि । तां० ९ । ५ । ३ ॥
- „ इन्द्रो वृत्रमहंस्तस्य यो नस्तः सोमः समधावत्तानि
बभ्रुत्लान्यर्जुनानि । तां० ९ । ५ । ७ ॥
- „ (सोमस्य द्वियमाणस्य) यानि पुष्पाण्यवाशीयन्त तान्यर्जु-
नानि । तां० ८ । ४ । १ ॥
- „ एष वै सोमस्य न्यङ्गो यदरुणदूर्वाः । श० ४ । ५ । १० । ५ ॥
- „ परोक्षमिष ह वा एष सोमो राजा यन्न्यग्रोधः । ऐ० ७ । ३१ ॥

- सोमः पशुर्वै प्रत्यक्षं सोमः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥
- „ सोम एवैष प्रत्यक्षं यत्पशुः । कौ० १२ । ६ ॥
- „ पशवः सोमो राजा । तै० १ । ४ । ७ । ६ ॥
- „ पशवो हि सोम इति । श० १२ । ७ । २ । २ ॥
- „ सोमो वै दधि । कौ० ८ । ६ ॥
- „ एष (सोमः) उ एव किल्विषस्पृत् । ऐ० १ । १३ ॥
- „ स यदाह स्वरो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष द्व वै सूर्यो भूत्वा
ऽमुर्धिमल्लोके स्वरति तद्यत्स्वरति तस्मात्स्वरस्तत्स्वरस्य स्वरत्वम् ।
गो० पू० ५ । १४ ॥
- „ एष वै यजमानो यत्सोमः । तै० १ । ३ । ३ । ५ ॥
- „ द्यावापृथिव्यो वा एष गर्भो यत्सोमो राजा । ऐ० १ । २६ ॥
- „ सोमास्य त्वा युक्तेनाभिषिञ्चामीति । श० ५ । ४ । २ । २ ॥
- „ भ्राजं गच्छेति सोमो वै भ्राद् । श० ३ । २ । ४ । २ ॥
- „ वर्चः सोमः । श० ५ । २ । ५ । १०, ११ ॥
- „ क्षत्रं सोमः । ऐ० २ । ३८ ॥ कौ० ७ । १० ॥ ९ । ५ ॥ १० । ५ ॥
१२ । ८ ॥
- „ क्षत्रं वै सोमः । श० ३ । ४ । १ । १० ॥ ३ । ९ । ३ । ३, ७ ॥
५ । ३ । ५ । ८ ॥
- „ यशो वै सोमः । श० ४ । २ । ४ । ९ ॥
- „ यशो (ऋ० १० । ७२ । १०) वै सोमो राजा । ऐ० १ । १३ ॥
- „ सोमो वै यशः । तै० २ । २ । ८ । ८ ॥
- „ यश उ वै सोमो राजान्नाद्यम् । कौ० ६ । ६ ॥
- „ प्रजापतेर्वाऽएतेऽअन्वसी यत्सोमश्च सुरा च । श० ५ । १ ।
२ । १० ॥
- „ अन्नं सोमः । कौ० ९ । ६ ॥ श० ३ । ३ । ४ । २८ ॥ तां० ६ ।
६ । १ ॥
- „ अन्नं वै सोमः । श० ३ । ६ । १ । ८ ॥ ७ । २ । २ । ११ ॥
- „ एतद्वै देवानां परममन्नं यत्सोमः । तै० १ । ३ । ३ । २ ॥
- „ एतद्वै परममन्नाद्यं यत्सोमः । कौ० १३ । ७ ॥
- „ एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः । श० १ । ६ । ४ ।
५ ॥ २ । ४ । २ । ७ ॥ ११ । १ । ४ । ४ ॥

- सोमः हविर्धे देवानाधं सोमः । श० ३ । ५ । ३ । २ ॥
- „ उत्तमं वाऽ एतद्धविर्यत्सोमः । श० १२ । ८ । २ । १२ ॥
- „ एषो ह परमाहुतिर्यत्सोमाहुतिः । श० ६ । ६ । ३ । ७ ॥
- „ सोमः खलु वै सान्नाय्यम् (हविः) । तै० ३ । २ । ३ । ११ ॥
- „ सोमाहुतयो ह वाऽ एता देवानाम् । यत्सामानि । श० ११ । ५ । ६ । ६ ॥
- „ एषा केवली यत्सोमाहुतिः । श० १ । ७ । २ । १० ॥
- „ अथैषैव कृत्स्ना देवयज्या यत्सोम्यो ऽध्वरः । कौ० १० । ६ ॥
- „ प्राणः सोमः । श० ७ । ३ । १ । २ ॥
- „ प्राणो वै सोमः । श० ७ । ३ । १ । ४५ ॥
- „ प्राणो हि सोमः । तां० ९ । ९ । १, ५ ॥
- „ प्राणः (यज्ञस्य) सोमः । कौ० ९ । ६ ॥
- „ सोमो वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । १ । ३ ॥
- „ एष वाऽ उत्तमः पविर्यत्सोमः । श० ३ । ९ । ४ । ५ ॥
- „ रेतः सोमः । कौ० १३ । ७ ॥ तै० २ । ७ । ४ । १ ॥ श० ३ । ३ । २ । १ ॥ ३ । ३ । ४ । २८ ॥ ३ । ४ । ३ । ११ ॥
- „ रेतो वै सोमः । श० १ । ६ । २ । ९ ॥ २ । ५ । १ । ६ ॥ ३ । ८ । ५ । २ ॥
- „ सोमो रेतो ऽदधात् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥ १ । ७ । २ । ३, ४ ॥ १ । ८ । १ । २ ॥
- „ सोमो वै वृष्णो अश्वस्य रेतः । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥
- „ एते सोमांशवः प्रत्नोऽशुर्यमेतमभिषुण्वन्ति तृप्तोऽशुरापो रसो-
ऽशुर्वीहिर्वृषोऽशुर्यवः शुक्रोऽशुः पयो जीवोऽशुः पशुरमृतो-
ऽशुर्हिरण्यमृगंशुर्यजुरंशुः सामांशुरित्येते वा उ दश सोमां-
शवो यदा वा एते सर्वे संगच्छन्ते ऽथ सोमो ऽथ सुतः । कौ०
१३ । ४ ॥
- „ सोमस्य वा अभिषूयमाणस्य प्रिया तनूरुदक्रामत् तत्सुवर्ण-
३ हिरण्यमभवत् । तै० १ । ४ । ७ । ४५ ॥
- „ चन्द्रं ३ ह्येतच्चन्द्रेण क्रीणाति यत्सोमं ३ हिरण्येन (चन्द्रः=
सोमः, चन्द्रं=हिरण्यम्) । श० ३ । ३ । ३ । ६ ॥

सोमः शुक्रं ह्येतच्छुक्रेण क्रीणाति यत्सोमं हिरण्येन । श० ३ ।
३ । ३ । ६ ॥

„ शुक्रः (=निर्मल इति स्थायणः) सोमः । तां० ६ । ६ । ९ ॥

„ स यत् सोमपानं (विश्वरूपस्य मुखं) आस । ततः कपिञ्जलः
समभवत्तस्मात्स बभ्रुक इव बभ्रुरिव हि सोमा राजा । श० १ ।
६ । ३ । ३ ॥ ५ । ५ । ४ । ४ ॥

„ सोमो वै बभ्रुः (यजु० १२ । ७२) । श० ७ । २ । ४ । २६ ॥

„ स हि सौम्यो यद्बभ्रुः (गौः) । श० ५ । २ । ५ । १२ ॥

„ सोमो गन्धाय । तां० १ । ३ । ६ ॥ सा० ३ । ८ । १ ॥

„ सोम इव गन्धेन (भूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥

„ रसः सोमः । श० ७ । ३ । १ । ३ ॥

„ वाज्येवैनं (सोमं) पीत्वा भवति । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥

„ भद्रा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) तत्सोमः । ऐ० ५ । २५ ॥ कौ०
२७ । ५ ॥

„ (उपसद्देवतारूपाया इषोः) सोमः शल्यः । ऐ० १ । २२ ॥

„ तिर्यो अह्वया हि सोमा भवन्ति । कौ० १५ । ५ ॥ ३० । ११ ॥

„ तद्यत्तदमृतं सोमः सः । श० ६ । ५ । १ । ८ ॥

„ सर्वं हि सोमः । श० ५ । ५ । ४ । ११ ॥

„ तस्मात्सोमो राजा सर्वाणि नक्षत्राण्युपैति । ष० ३ । १२ ॥

„ श्येनो भूत्वा (गायत्री) दिवः सोममाहरत् । श० १ । ८ ।
२ । १० ॥

„ यद्गायत्री श्येनो भूत्वा दिवः सोममाहरत्तेन सा श्येनः । श०
३ । ४ । १ । १२ ॥

„ तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत् । तं गायत्र्याहरत् । तै० १ ।
१ । ३ । १० ॥ ३ । २ । १ । १ ॥

„ अन्तरिक्षदेव्यो हि सोमः । गो० ३० २ । ४ ॥

„ गिरिषु हि सोमः । श० ३ । ३ । ४ । ७ ॥

„ घ्नन्ति वाऽ एनं (सोमं) एतद्यदभिषुण्वन्ति । श० ३ । ३ ।
२ । ६ ॥

„ घ्नन्ति खलु वा एतत्सोमं यदभिषुण्वन्ति । तै० २ । २ । ८ । १ ॥

„ सोमो राजा मृगशीर्षेण आगन् । तै० ३ । १ । १ । २ ॥

- सोमः स (सोमः) एतः सोमाय मृगशीर्षाय श्यामाकं चरुं पयसि
निरवपत् । ततो वै स ओषधीनाः राज्यमभ्यजयत् । तै० ३ ।
१ । ४ । ३ ॥
- „ सौम्यं श्यामाकं चरुं निर्वपति । तै० १ । ६ । १ । ११ ॥
- „ एते वै सोमस्यौषधीनां प्रत्यक्षतमां यच्छ्यामाकाः । श० ५ ।
३ । ३ । ४ ॥
- „ अथ सोमाय वनस्पतये । श्यामाकं चरुं निर्वपति । श० ५ ।
३ । ३ । ४ ॥
- „ तस्य (सोमस्य) अश्रु प्रास्कन्दत्ततो यवः समभवत् । श० ४ ।
२ । १ । ११ ॥
- „ सोम वीरुधां पते । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥
- „ औषधो हि सोऽो राजौषधिभिस्तं भिषज्यंति यं भिषज्यंति
सोममेव राजानं क्रियमाणमनु यानि कानि च भेषजानि तानि
सर्वाण्यग्निष्टोममपियंति । ऐ० ३ । ४० ॥
- „ सोमो वा अकृष्टपचस्य राजा । तै० १ । ६ । १ । ११ ॥
- „ सोम ओषधीनामधिराजः । गो० ३० १ । १७ ॥
- „ सोमो वै राजौषधीनाम् । कौ० ४ । २२ ॥ तै० ३ । ९ । १७ । १ ॥
- „ सौम्या ओषधयः । श० १२ । १ । १ । २ ॥
- „ सोमः (एवैनं) वनस्पतीनां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥
- „ एष वै ब्राह्मणानां सभासाहः सखा (ऋ० १० । ७१ । १० ॥)
यत्सोमो राजा । ऐ० १ । १३ ॥
- „ सोमराजानो ब्राह्मणाः । तै० १ । ७ । ४ । २ ॥ १ । ७ । ६ । ७ ॥
- „ एष वो ऽर्मा राजा सोमो ऽस्माकं ब्राह्मणानाः राजेति ।
.....तस्माद् ब्राह्मणो नाद्यः सोमराजा हि भवति । श० ५ ।
४ । २ । ३ ॥
- „ ब्राह्मणानां स (सोमः) भक्षः । ऐ० ७ । २९ ॥
- „ सोमो वै ब्राह्मणः । तां० २३ । १६ । ५ ॥
- „ सौम्यो हि ब्राह्मणः । तै० २ । ७ । ३ । १ ॥
- „ तस्य (नमुचेः) शीर्षश्छिन्ने लोहितमिश्रः सोमो ऽतिष्ठत्
(“नमुचि”शब्दमपि पश्यत) । श० १२ । ७ । ३ । ४ ॥
- „ शोभनः ह्येतस्य (सोमस्य) वासः । श० ३ । ३ । २ । ३ ॥

- सोमः सौम्यश्च हि देवतया वासः । तै० १ । ६ । १ । ११ ॥ २ । २ ।
५ । २ ॥
- „ (हे देवा यूयं) सोमेन प्रतीचीं, (दिशं प्रजानाथ) । ऐ० १ । ७ ॥
- „ प्रतीचीं दिक् । सोमो देवता । तै० ३ । ११ । ५ । २ ॥
- „ उत्तरा ह वै सोमो राजा । ऐ० १ । ८ ॥
- „ यदुत्तरतो वासि सोमो राजा भूतो वासि । जै० उ० ३ । २१ । २ ॥
- „ उदीचीनदशं वै तत्पवित्रं भवति येन तत्सोमश्च राजानं
सम्पावयन्ति । श० १ । ७ । १ । १३ ॥
- „ स (सोमः) दक्षिणां दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥
- „ दक्षिणामेव दिशं सोमेन प्राजानन् । श० ३ । २ । ३ । १७ ॥
- „ सौम्यो वै देवतया पुरुषः । तै० १ । ७ । ८ । ३ ॥
- „ सौम्यो ऽश्वरः सप्तहोतुः (निदानम्) । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥
- „ यद्वाऽ आर्द्रं यज्ञस्य तत्सौम्यम् । श० ३ । २ । ३ । १० ॥
- „ सोमः पयः । श० १२ । ७ । ३ । १३ ॥
- „ सः (सोमः) अग्रवीद्वल्गु साम्नो वृणे प्रियमिति । जै० उ०
१ । ५१ । १० ॥
- „ सोमो रुद्रैः (व्यद्रवत्) । श० ३ । ४ । २ । १ ॥
- „ आपः सोमः सुतः । श० ७ । १ । १ । २२ ॥
- „ आपो ह्येतस्य (सोमस्य) लोकः । श० ४ । ४ । ५ । २१ ॥
- „ तद्यदेवात्र पयस्तन्मित्रस्य सोम' एव वरुणस्य । श० ४ । १ ।
४ । ९ ॥
- „ वरुणो ह वै सोमस्य राज्ञो ऽभीवाक्षि प्रतिपिपेष तदश्वय-
त्ततो ऽश्वः समभवत् । श० ४ । २ । १ । ११ ॥
- „ दीक्षा सोमस्य राज्ञः पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥
- „ अथ यत्र ह तत्सविता सूर्यो प्रायच्छत्सोमाय राज्ञे । कौ०
१८ । १ ॥
- „ प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत्सूर्यो सावित्रीम् ।
ऐ० ४ । ७ ॥
- „ महीन्दीक्षाश्च सौमायनो (=सोमपुत्रः) बुधो यदुदयच्छद-
नन्दत्सर्वमाप्नोन्मन्मासे मेदोधा इति । ता० २४ । १८ । ६ ॥
- „ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा । तै० १ । ३ । ३ । ४ ॥

सोमः रयि॑ऽ सोमो रयिपतिर्दधातु । तै० २ । ८ । १ । ६ ॥

„ वैराजः सोमः । कौ० ९ । ६ ॥ श० ३ । ३ । २ । १७ ॥ ३ । ९ । ४ । १९ ॥

सोमक्रयणी (गौः) सा या बभ्रुः पिङ्गाक्षी (गौः) सा सोमक्रयणी ।
श० ३ । ३ । १ । १४ ॥

„ वाग्वै सोमक्रयणी निदानेन । श० ३ । २ । ४ । १०, १५ ॥

सोमपीथः इन्द्रियं सोमपीथः । तै० १ । ३ । १० । २ ॥

सोमयागः संवत्सरे संवत्सरे सोमयाजी (अश्रति) । श० १० । १ । ५ । ४ ॥

(सुत्याशब्दमपि पश्यत)

सोमराज्ञी या ओषधीः सोमराज्ञीः । मं० २ । ८ । ३, ४ ॥

सोमवामी स यो वाऽ अलं भूतै सन्भूर्ति न प्राप्नोति यो वालं पशुभ्यः
सन्पशून् विन्दते स सोमवामी । श० १२ । ७ । २ । २ ॥

सोमसाम यथा वा इमा अन्या ओषधय एव॑ सोम आसीत् स
तपो ऽतप्यत स एतत्सामापश्यत्तेन राज्यमाधिपत्यमग-
च्छद्यशो ऽभवद्राज्यमाधिपत्यङ्गच्छति यशो भवति सोम-
साम्ना तुष्टुवानः । तां० ११ । ३ । ९ ॥

सोमो ऽजस्रः (यजु० १३ । ४३) स हैष सोमो ऽजस्रो यद्गौः । श० ७ ।
५ । २ । १६ ॥

सौत्रामणी तावश्विनौ च सरस्वती च । इन्द्रियं वीर्यं नमुचेराहृत्य
तदस्मिन्पुनरदधुस्तं पाप्मनो ऽत्रायन्त सुत्रातं बतैनं
पाप्मनो ऽत्रास्महीति तद्वाव सौत्रामण्यभवत्तत्सौत्रामण्यै
सौत्रामणीत्वम् । श० १२ । ७ । १ । १४ ॥

„ ते देवा अब्रुवन् । सुत्रातं बतैनमत्रासतामिति तस्मात्सौ-
त्रामणी नाम । श० ५ । ५ । ४ । १९ ।

„ ऐन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत् सौत्रामणी । कौ० १६ । १० ॥
गो० ३० । ५ । ७ ॥

„ ऐन्द्रो वाऽ एष यज्ञो यत्सौत्रामणी । श० १२ । ८ । २ २४ ॥

„ उभय॑ऽ सौत्रामणीषिश्च पशुबन्धश्च । श० १२ । ७ । २ ।
२१ ॥

„ देवसृष्टो वाऽ एषेष्टिर्यत्सौत्रामणी । श० ५ । ५ । ४ । १४ ॥

- सौत्रामणी तस्मादेष ब्राह्मणयज्ञ एव यत्सौत्रामणी । श० १२ । ९ ।
१ । १ ॥
- ” सुरावांश्वाऽ एष बर्हिषद्यज्ञो यत्सौत्रामणी । श० १२ ।
८ । १ । २ ॥
- ” सोमो वै सौत्रामणी । श० १२ । ७ । २ । १३ ॥
- ” पवित्रं वै सौत्रामणी । श० १२ । ८ । १ । ८ ॥
- ” स यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात्स सौत्रामण्या यजेत । श० १२ ।
७ । ३ । ४ ॥
- सौपर्णम् (साम) यज्ञो वै देवेभ्यो ऽपाकामत्स सुपर्णं रूपं कृत्वा-
न्त्रत्तं देवा एतैः सामभिरारभन्ता यज्ञ इव वा एष यच्छ-
न्दोमा यज्ञस्यैवैष आरम्भः । तां० १४ । ३ । १० ॥
- ” सौपर्णं भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै । तां० १४ ।
३ । ९ ॥
- सौभरम् (साम) ताः (प्रजाः) अब्रुवन् सुभृतन्नो ऽभार्षीरिति
तस्मात्सौभरम् । तां० ८ । ८ । १६ ॥
- ” बृहता वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्तस्य तेजः परापतत्त-
त्सौभरमभवत् । तां० ८ । ८ । ९ ॥
- ” बृहतो ह्येतत्तेजो यत्सौभरम् । तां० ८ । ८ । १० ॥
- ” सौभरं भवति बृहतस्तेजः । तां० १२ । १२ । ७ ॥
- ” यः स्वर्गकामः स्याद्यः प्रतिष्ठाकामः सौभरेण स्तुवीत
प्र स्वर्गं लोकं जानाति प्रतितिष्ठति । तां० ८ । ८ । १३ ॥
- ” यो वृष्टिकामः स्याद्यो ऽन्नाद्यकामो यः स्वर्गकामः सौभ-
रेण स्तुवीत । तां० ८ । ८ । १८ ॥
- ” सर्वे वै कामाः (सर्वकामसाधनं) सौभरम् । तां० ८ ।
८ । २० ॥
- सौमित्रम् (साम) सुमित्रः सन् कूरमकरित्येनं (कुत्सं) वागभ्यव-
दत्तं शुगार्थत्स तपो ऽतप्यत स एतत्सौमित्रमपश्यत्तन
शुचमपाहताप शुचं हते सौमित्रेण तुष्टुवानः । तां०
१३ । ६ । १० ॥
- ” तद्वाव तौ (इन्द्रश्च सुमित्रः कुत्सश्च) तर्ह्यकामयेतां काम-
सनि साम सौमित्रं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १३ । ६ । १९ ॥

सौमेधम् (साम) योगे योगे तवस्तरमिति सौमेधश्च रात्रिषाम्
रात्रेरेव समृद्धयै । तां० ९ । २ । २० ॥

सौश्रवसम् (साम) तं (छिन्नशिरस्कं सौश्रवसं) एतेन साम्ना (इन्द्रः)
समैरयत् (= सङ्गतावयवमकरोदिति सायणः) स तर्ह्य-
कामयत कामसनि साम सौश्रवसं काममेवैतेनावलन्धे ।
तां० १४ । ६ । ८ ॥

सौहविषम् (साम) सुहविर्वा आङ्गिरसो ऽञ्जसा स्वर्गे लोकमपश्यत्
स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टु-
वानः । तां० १४ । ५ । २५ ॥

॥ यज्ञायज्ञीयमिधनश्च सौहविषं भवति । तां० १५ । ११ । १० ॥
स्कन्धहुतिः अथ यस्याऽग्निमुत्पूतश्च स्क्रन्दति सा वै स्क्रन्नानामाहुतिः ।
ष० ४ । १ ॥

स्तनयित्नुः कतमस्तनयित्नुरित्यग्निरिति । श० ११ । ६ । ३ । ९ ॥

॥ स बृहदसृजत तत्स्तनयित्नुर्घोषोन्वसृज्यत । तां० ७ ।
८ । १० ॥

॥ (प्रजापतिः) स्तनयित्नुमुद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ०
१ । १३ । १ ॥

॥ स्तनयित्नुः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

॥ स्तनयित्नुरेव सविता । जै० उ० ४ । २७ । ९ ॥

स्तवः प्राणा वै स्तवः । कौ० ८ । ३ ॥

स्तावाः (अप्सरसः, यजु० १८ । ४२) दक्षिणा वै स्तावा दक्षिणाभिर्दं
यन्न स्तूयते ऽथो यो वै कश्च दक्षिणां ददाति स्तूयतऽ एव सः
। श० ९ । ४ । १ । ११ ॥

स्तोकः स्तोको वै द्रप्सः । गो० उ० २ । १२ ॥

स्तोता वायुर्वै स्तोता । श० १३ । २ । ६ । २ ॥ तै० ३ । ६ । ४ । ४ ॥

स्तोत्रम् क्षत्रं वै स्तोत्रम् । ष० १ । ४ ॥

॥ आत्मा वै स्तोत्रम् । श० ५ । २ । २ । २० ॥

स्तोत्रियः इयं (पृथिवी) एव स्तोत्रियः । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

॥ आत्मैव स्तोत्रियः । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

॥ आत्मा वै स्तोत्रियः । ऐ० ३ । २३, २४ ॥ ६ । २६ ॥ कौ०
१५ । ४ ॥ २२ । ८ ॥ गो० उ० ३ । २२ ॥

- स्तोत्रिषानुरूपौ आत्मा वै स्तोत्रियानुरूपौ । कौ० ३० । ८ ॥
 स्तोमौ यौ द्वौ स्तोभावहोरात्रे एव ते । जै० उ० १ । २१ । ५ ॥
 स्तोमः सप्त स्तोमाः । श० ९ । ५ । २ । ८ ॥
 ,, त्रिवृत्पञ्चदशः सप्तदश एकविंश एते वै स्तोमानां वीर्यव-
 त्तमाः । तां० ६ । ३ । १५ ॥
 ,, यदु ह किं च देवाः कुर्वते स्तोमेनैव तत्कुर्वते यज्ञो वै स्तोमो
 यज्ञेनैव तत्कुर्वते । श० ८ । ४ । ३ । २ ॥
 ,, स्तोमो वै देवेषु तरो नामासीत् । तां० ८ । ३ । ३ ॥
 ,, स्तोमो वै तरः । तां० ११ । ४ । ५ ॥ १५ । १० । ४ ॥
 ,, स्तोमा वै परमाः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ४ । १८ ॥
 ,, स्तोमा वै त्रयः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ४ । १८ ॥
 ,, स्तोमो हि पशुः । तां० ५ । १० । ८ ॥
 ,, अन्नं वै स्तोमाः । श० ९ । ३ । ३ । ६ ॥
 ,, प्राणा वै स्तोमाः । श० ८ । ४ । १ । ३ ॥
 ,, वीर्यं वै स्तोमाः । तां० २ । ५ । ४ ॥ २ । ११ । २ ॥
 ,, वीरजननं वै स्तोमः । तां० २१ । ६ । ३ ॥
 ,, गायत्रीमात्रो वै स्तोमः । कौ० १९ । ८ ॥
 ,, नाक्षराच्छन्दो व्येत्येकस्मान्न द्वाभ्यां न स्तोत्रियया स्तोमः ।
 श० १२ । २ । ३ । ३ ॥
 ,, देवा वा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपादादविभयुस्तमेतैः
 स्तोमैः सप्तदशैरदृष्ट्यह्न्यदेते स्तोमा भवन्त्यादित्यस्य धृत्यै ।
 तां० ४ । ५ । ६ ॥
 स्तोमभागाः स्तोमो वा एतेषां भागः, तत्स्तोमभागानां स्तोमभाग-
 त्वम् । गो० उ० २ । १३ ॥
 ,, आदित्य स्तोमभागाः । श० ८ । ५ । ४ । २ ॥
 ,, हृदयं स्तोमभागाः । श० ८ । ५ । ४ । ३ ॥
 ,, हृदयं वै स्तोमभागाः श० ८ । ६ । २ । १५ ॥
 स्त्री (सविता) श्रिया स्त्रियम् (समदधात्) । गो० पू० १ । ३४ ॥
 ,, स्त्री सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । १७ ॥
 ,, तस्मादु स्त्री पुंशोपमान्त्रिता निपलाशमिवैव वदति । श० ३ ।
 २ । १ । २० ॥

- स्त्री तस्मात्स्त्री पुं०सोपमन्त्रितारकादिवैवाग्ने ऽसूयति । श० ३ ।
 २ । १ । १९ ॥
- „ तस्माद् दु स्त्री पुमां०सं० ह्यतऽ एवोत्तमम् । श० ३ । २ । १ । २१ ॥
- „ उत्तरत आयतना हि स्त्री । श० ८ । ४ । ४ । ११ ॥
- „ उत्तरतो हि स्त्री पुमां०समुपशेते । श० १ । १ । १ । २० ॥
 २ । ५ । २ । १७ ॥ ४ । ४ । २ । १६ ॥
- „ तस्माद् दु स्त्री पुमां०सं० स००स्कृते तिष्ठन्तमभ्येति । श० ३ ।
 २ । १ । २२ ॥
- „ तस्मात्स्त्रियन्तर्वली हरिणी सती श्यावा भवति । तै० २ । ३ ।
 ८ । १ ॥
- „ तस्माद् दु स्त्रयनुराग्रपत्याविरुद्धते । ऐ० ३ । २२ ॥
- „ तस्मादिमा मानुष्यस्त्रियस्तिर इवैव पुं०सो जिघत्सन्ति । श० १ ।
 ९ । २ । १२ ॥
- „ तस्माद् दु संवत्सरऽ एव स्त्री वा गौर्वा वडवा वा विजायते । श०
 ११ । १ । ६ । २ ॥
- „ अनृतं० स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत । श०
 १४ । १ । १ । ३१ ॥
- „ तस्मादप्येतर्हि मोघस०हिता एव योषाः । श० ३ । २ । ४ । ६ ॥
- „ तस्माद्य एव नृत्यति यो गायति तस्मिन्नेवैताः (योषाः) निमिःश्र-
 तमा इव । श० ३ । २ । ४ । ६ ॥
- „ कर्म वाऽ इन्द्रियं वीर्यं तदेतदुत्सन्नं० स्त्रीषु । श० १२ । ७ ।
 २ । ११ ॥
- „ अवीर्या वै स्त्री । श० २ । ५ । २ । ३६ ॥
- „ तद्वाऽ एतस्त्रीणां कर्म यदूर्णासूत्रम् । श० १२ । ७ । २ । ११ ॥
- „ पतयो ह्येव स्त्रियै प्रतिष्ठा । श० २ । ६ । २ । १४ ॥
- „ तस्मात्स्त्रियः पुं०सो ऽनुवर्तमानो भावुकाः । श० १३ । २ ।
 २ । ४ ॥
- „ न वै स्त्रियं घ्नन्ति । श० ११ । ४ । ३ । २ ॥
- „ यद् वृष्ट्या यदश्न्या तेन स्त्री । ष० १ । २ ॥
- „ एतद्वै पत्न्यै व्रतोपनयनम् (यद्योक्त्रेण संनहनम्) । तै० ३ । ३ ।
 ३ । २ ॥

की यद्यपि बह्व्य इव स्त्रियः सार्धं यन्ति य एव तास्वपि कुमारक
इव पुमान् भवति स एव तत्र प्रथम एत्यनूच्य इतराः । श० १ ।
३ । १ । ९ ॥

„ (मैत्रायणीसंहितायाम् ४ । ६ । ४:—यत्स्थालीं रिञ्चन्ति न
दारुमयं तस्मात्पुमान्दायादः रुद्रदायादथ यत्स्थालीं परास्यन्ति
न दारुमयं तस्मात्स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांश्चिसमथ स्त्रिय
एवातिरिच्यन्ते ॥ काठकसंहितायाम् २७ । ९:—परा स्थालीम-
स्यन्ति न वायव्यं तस्मात्स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसम् ॥
यास्कीये निरुक्ते ३ । १ । ४:—तस्मात्पुमान्दायादो ऽदायाद्
स्त्रीति विज्ञायते तस्मात्स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसमिति च)

„ न वै स्त्रैणं सख्यमस्ति (न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति ।
ऋ० १० । ९५ । १५) । श० ११ । ५ । १ । ६ ॥

„ वरुण्यं वा एतत्स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरति । श० २ ।
५ । २ । २० ॥

„ (मैत्रायणीसंहितायाम्—१ । १० । ११ अनृतंश्चि रुद्रनृतं वा
एषा करोति या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरति ।)

„ (' जाया ', ' पत्नी ', ' योषा ' इत्येतानपि शब्दान् पश्यत्)

स्थाणुः यूष स्थाणुः । श० ३ । ६ । २ । ५ ॥

स्था ङी पत्नी स्थाली । तै० २ । १ । ३ । १ ॥

स्थितम् अन्तो वै स्थितम् । ऐ० ५ । १३, २० ॥

स्नुषा तद्यथैवादः स्नुषा श्वशुराल्लज्जमाना निलीयमानैति । ऐ० ३ । २२ ॥

स्वराणि (अहानि) स्परैर्वै देवा आदित्यं सुवर्गं लोकमस्परवन् यद्-
स्परवन् तत्स्वराणां स्परत्वम् । तै० १ । २ । ४ । ३ ॥

स्फथः स्वादिर स्फथः । श० ३ । ६ । २ । १२ ॥

„ तस्य (चतुर्द्धा विभक्तस्य वज्रस्य) स्फथस्तृतीयं (= तृतीयो-
ऽशः) वा याचद्वा । श० १ । २ । ४ । १ ॥

„ वज्रो वै स्फथः । श० १ । २ । ५ । २० ॥ ३ । ३ । १ । ५ ॥
५ । ४ । ४ । १५ ॥ तै० १ । ७ । १० । ५ ॥ ३ । २ । ९ । १० ॥
३ । २ । १० । १ ॥

- स्फ्यः स यत्स्फ्यमादत्ते । यथैव तदिन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छदेव-
मेवैष एतं पाप्मने द्विषते भ्रातृव्याय वज्रमुद्यच्छति तस्माद्द्वै
स्फ्यमादत्ते । श० १ । २ । ४ । ३ ॥
- स्योनः स्योनः स्योनमिति शिवः शिवमित्येवैतदाह । श० ३ । ३ ।
३ । १० ॥
- „ स्योनामासीद् सुषदामासीदेति शिवा० शग्मामासीदेत्येव-
तदाह । श० ५ । ४ । ४ । ४ ॥
- स्रक् स्रग्घृताची (अप्सराः, यजु० १५ । १८) । श० ८ । १ ।
१ । १९ ॥
- „ स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीः (यजु० १७ । ५९) इति
स्रक्श्चैतद्वेदीश्चाह (विश्वाची [अप्सराः] = वेदिः । घृताची
[अप्सराः] = स्रक्) । श० ९ । २ । ३ । १७ ॥
- „ योषा हि स्रक् । श० १ । ४ । ४ । ४ ॥
- „ योषा वै स्रग्घृषा स्रवः । श० १ । ३ । १ । ९ ॥
- „ युजौ ह वाऽ एते यज्ञस्य यत्स्रुचौ । श० १ । ८ । ३ । २७ ॥
- „ बाहू वै स्रुचौ । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥
- „ वाग्वै स्रक् । श० ६ । ३ । १ । ८ ॥
- „ गौर्वै स्रुचः । तै० ३ । ३ । ५ । ४ ॥
- „ यजमानः स्रुचः । तै० ३ । ३ । ६ । ३ ॥
- „ इमे वै लोकाः स्रुचः । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ६ । २ ॥
- स्रवः अयमेव स्रुवो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १ । ३ । २ । ५ ॥
- „ प्राणः स्रुवः । श० ६ । ३ । १ । ८ ॥
- „ प्राणो वै स्रुवः । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥
- „ प्राण एव स्रुवः । सो ऽयं प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यनु सञ्चरति ।
तस्माद्दु स्रुवः सर्वा अनु स्रुचः सञ्चरति । श० १ । ३ ।
२ । ३ ॥
- „ वृषा हि स्रुवः । श० १ । ४ । ४ । ३ ॥
- „ योषा वै स्रग्घृषा स्रुवः । श० १ । ३ । १ । ९ ॥

स्रुवः स पालाशे वा स्रुवे वैकङ्कते वा । अपामार्गतण्डुलानादत्ते ।

श० ५ । २ । ४ । १५ ॥

स्वः स्वरिति सामभ्यो ऽक्षरत् स्वः स्वर्गलोको ऽभवत् । ष० १ । ५ ॥

„ (प्रजापतिः) स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त । सो ऽसौ
घौरभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स आदित्यो ऽभवद्रसस्य
रसः । जै० उ० १ । १ । ५ ॥

„ स सुवरिति व्याहरत् । स दिवमसृजत । अग्निष्टोममुक्थ्यमति-
रात्रमृचः । तै० २ । २ । ४ । ३ ॥

„ असौ (द्यु-) लोकः स्वः । ऐ० ६ । ७ ॥

„ स्वरित्यसौ (द्यु-) लोकः । श० ८ । ७ । ४ । ५ ॥

„ (यजु० १ । ११) यन्नो वै स्वरहर्देवाः सूर्यः । श० १ । १ । २ । २१ ॥

„ देवा वै स्वः । श० १ । ९ । ३ । १४ ॥

„ स्वरिति (प्रजापतिः) विशम् (अजनयत) । श० २ । १ । ४ । १२ ॥

„ स्वरिति (प्रजापतिः) पशून् (अजनयत) । श० २ । १ । ४ । १३ ॥

„ अन्तो वै स्वः । ऐ० ५ । २० ॥

स्वगाकारः संवत्सरः स्वगाकारः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥

स्वजः (= उभयतः शिराः सर्पं इति सायणः) सहसः स्वजः (अभवत्) ।

ऐ० ३ । ३६ ॥

स्वधा स्वधायै त्वेति रसाय त्वेत्येवैतदाह । श० ५ । ४ । ३ । ७ ॥

„ स्वधाकारो हि पितृणाम् । तै० १ । ६ । ९ । ५ ॥ ३ । ३ । ६ । ४ ॥

„ स्वधो वै पितृणामन्नम् । श० १३ । ८ । १ । ४ ॥

„ स्वधाकारं पितरः (उपजीवन्ति) । श० १४ । ५ । ९ । १ ॥

„ स्वधा वै शरद् । श० १३ । ८ । १ । ४ ॥

स्वप्नः तौ (यो ऽयं दक्षिणे ऽक्षन्पुरुषो यश्च सव्ये ऽक्षन्पुरुषः) हृदय-
स्याकाशं प्रत्यवेत्य । मिथुनीभवतस्तौ यदा मिथुनस्यान्तं
गच्छतो ऽथ हैतत्पुरुषः स्वपिति । श० १० । ५ । २ । ११ ॥

„ तस्माद्दु ह स्वपन्तं धुरेव न बोधयेत् । श० १० । ५ । २ । १२ ॥

„ तं (सुप्तं) नायतं (= न सहसा भृशं) बोधयेदित्य हुर्दुर्भिष-
ज्यथ्वा हासै भवति यमेष (आत्मा) न प्रतिपद्यते । श०
१४ । ७ । १ । १५ ॥

स्वप्नः तस्माद् दु हैतत्सुषुपुषः श्रेष्ठमणमिव मुखं भवति । श० १० । ५ ।
२ । १२ ॥

„ अजगरं स्वप्नः (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥ ('स्वाप्यय'-
शब्दमपि पश्यत)

स्वयमातृणा (इष्टका) प्राणो वै स्वयमातृणा प्राणो ह्येवैतत्स्वयमात्मन
आतृन्ते । श० ७ । ४ । २ । २ ॥

„ प्राणो वै स्वयमातृणा । श० ८ । ७ । २ । ११ ॥

„ अन्नं वै स्वयमातृणा । श० ७ । ४ । २ । १ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै स्वयमातृणा । श० ७ । ४ । २ । १ ॥

„ इमे वै लोकाः स्वयमातृणाः । श० ७ । ४ । २ । ८ ॥

स्वरः स यदाह खरो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै सूर्यो भूत्वा
ऽमुष्मिल्लोके स्वरति तद्यत्स्वरति तस्मात्स्वरस्तत्स्वरस्य स्वर-
त्वम् । गो० पू० ५ । १४ ॥

„ य आदित्यस्स्वर एव सः । जै० उ० ३ । ३३ । १ ॥

„ प्राणः स्वरः । तां० ७ । १ । १० ॥ १७ । १२ । २ ॥

„ प्राणो वै स्वरः । तां० २४ । ११ । ९ ॥

„ पशवः स्वरः । गो० उ० ३ । २२ ॥ ४ । २ ॥

„ पशवो वै स्वरः । ऐ० ३ । २४ ॥

„ श्रीर्वै स्वरः । श० ११ । ४ । २ । १० ॥

„ प्रजापतिः स्वरः । ष० ३ । ७ ॥

„ यथा स्वरेण सर्वाणि व्यञ्जनानि व्याप्तान्येवं सर्वान्कामानाम्प्रोति
यश्चैवं वेद । संहितो० खं० २ ॥

„ तस्माद्यज्ञे स्वरवन्तं दिदक्षन्तऽ एव । श० १४ । ४ । १ । २७ ॥

„ अनन्तो वै स्वरः । तां० १७ । १२ । ३ ॥

स्वरसामानः (बह्विशेषः) इमान्वै लोकान्स्वरसामभिरस्पृण्वंस्तत्स्व-
रसाम्नां स्वरसामत्वम् । ऐ० ४ । १९ ॥

„ एतैर्ह वा भत्रय आदित्यं तमसो ऽपस्पृण्वत तद्यदपस्पृ-
ण्वत तस्मात्स्वरसामानः । कौ० २४ । ३ ॥

„ स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसा ऽविध्यत्तं देवाः स्वरे-
रस्पृण्वन्यत् स्वरसामानो भवन्त्यादित्यस्य स्पृत्यै । तां०
४ । ५ । २ ॥

- स्वरसामानः प्रजापतिः स्वरसामानः । कौ० २४ । ४, ५, ९ ॥
- „ इमे वै लोकाः स्वरसामानः । ऐ० ४ । १९ ॥
- „ स्वर्गो वै लोकः स्वरसामानः । कौ० १२ । ५ ॥
- „ आपः स्वरसामानः । कौ० २४ । ४ ॥
- „ अथ यत् स्वरसामान उपयन्ति । अप एव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १३ ॥
- „ प्राणाः स्वरसामानः । तां० २४ । १४ । ४ ॥ २५ । १ । ८ ॥
- „ त्रयः स्वरसामानो विश्वजिन्महाव्रतश्चातिरात्रश्च । ष० ३ । १२ ॥
- स्वराट् (यजु० १३ । २४) असौ वै (तु-) लोकः स्वराट् । श० ७ । ४ । २ । २२ ॥
- „ स्वराट् वै तच्छन्दो यत्किञ्च चतुस्त्रिंशदक्षरम् । कौ० १७ । १ ॥
- „ सो ऽश्वमेधेनेष्ट्वा स्वराडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥
- स्वरः एतस्माद् (यूपात्) वा ऽ एषो (शकलः) ऽपच्छियते तस्यै-
तत्स्वमेवारुर्भवति तस्मात्स्वरुर्नाम । श० ३ । ७ । १ । २४ ॥
- स्वर्गो लोकः उपरीव सुवर्गो लोकः । तै० ३ । २ । १ । ५ ॥ ३ । २ । २ । ६ ॥ ३ । २ । ३ । १२ ॥
- „ परो वा अस्माल्लोकात्स्वर्गो लोकः । ऐ० ६ । २० ॥ गो० उ० ६ । २ ॥
- „ सकृदिव हि सुवर्गो लोकः । तै० १ । ६ । ३ । ६ ॥
- „ सकृद्धीतो ऽसौ (स्वर्गः) पराङ् लोकः । तां० ६ । ८ । १५ ॥
- „ पराङ् हीतो ऽसौ (स्वर्गः) लोकः । तां० ९ । ८ । ६ ॥
- „ पराङ्गिव वै स्वर्गो लोकः । श० १३ । १ । ३ । ३ ॥
- „ प्रतिकूलमिव हीतः स्वर्गो लोकः । तां० ६ । ७ । १० ॥
- „ एकविंशशो वा इतः स्वर्गो लोकः । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥
- „ सहस्रसंमितो वै स्वर्गो लोकः । श० १३ । १ । ३ । १ ॥
- „ सहस्रसंमितः सुवर्गो लोकः । तै० ३ । ९ । ४ । ६ ॥ ३ । १२ । ५ । ८ ॥
- „ यावद्वै सहस्रं वा उत्तराधरा इत्याहुस्तावदस्मात् लोकात् स्वर्गो लोक इति तस्मादाहुः सहस्रयाजी वा इमान् लोकान् प्राप्नोति । तां० १६ । ८ । ६ ॥

- स्वर्गो लोकः सहस्राश्वीने वा इतः स्वर्गो लोकः । ऐ० २ । १७ ॥
- ” चतुश्चत्वारिंशदशदाश्वीनानि सरस्वत्या विनशनात् प्लक्षः
प्राञ्चवणस्तावदितः स्वर्गो लोकः सरस्वतीसम्मितेना-
ध्वना स्वर्गं लोकं यन्ति । तां० २५ । १० । १६ ॥
- ” असम्मितः (=अपरिमितः) ह्यसौ (स्वर्गो) लोकः ।
तां० ६ । ८ । १४ ॥
- ” अपरिमितो वै स्वर्गो लोकः । ऐ० ६ । २३ ॥ गो० उ०
६ । ५ ॥ तै० ३ । ८ । ६ । २ ।
- ” अनन्तो ऽसौ (स्वर्गः) लोकः । तां० १७ । १२ । ३ ॥
- ” साम्राज्यं वै स्वर्गो लोकः । तां० ४ । ६ । २४ ॥
- ” स्वर्गो लोकः सरस्वान् । तां० १६ । ५ । १५ ॥
- ” स्तोमा वै परमाः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ४ । १८ ॥
- ” स्तोमा वै त्रयः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ४ । १८ ॥
- ” स्वर्गो वै लोकः सूर्यो ज्योतिरुत्तमम् (यजु० २० । २१) ।
श० १२ । ६ । २ । ८ ॥
- ” एष (आदित्यः) स्वर्गो लोकः । तै० ३ । ८ । १० । ३ ॥
३ । ८ । १७ । २ ॥ ३ । ८ । २० । २ ॥
- ” अहः स्वर्गः । श० १३ । २ । १ । ६ ॥
- ” अहर्वै स्वर्गो लोकः । ऐ० ५ । २४ ॥
- ” स्वर्गो वै लोको ब्रह्मस्य विष्टपम् । ऐ० ४ । ४ ॥
- ” स्वर्गो वै लोको नाकः (यजु० १२ । २ ॥) । श० ६ ।
३ । ३ । १४ ॥ ६ । ७ । २ । ४ ॥
- ” दिशो वै स नाकः स्वर्गो लोकः । श० ८ । ६ । १ । ४ ॥
- ” स्वर्गो हि लोको दिशः । श० ८ । १ । २ । ४ ॥
- ” स्वर्गो वै लोकः सधस्थः (यजु० १८ । ५९) । श० ९ ।
५ । १ । ४६ ॥
- ” अथ यत्परं भाः (सूर्यस्य) प्रजापतिर्वा स स्वर्गो व
लोकः । श० १ । ९ । ३ । १० ॥
- ” सुवर्गो वै लोको बृहद्भाः । तै० ३ । ३ । ७ । ९ ॥
- ” सुवर्गो वै लोको महः । तै० ३ । ८ । १८ । ५ ॥

[स्वर्गो लोकः (६२६)

- स्वर्गो लोकः असौ वै (स्वर्गो) लोको महाभसि । तस्यादित्यां
 अधिपतयः । तै० ३ । ८ । १८ । २ ॥
- „ अग्निर्वै स्वर्गस्य लोकस्याधिपतिः । ऐ० ३ । ४२ ॥
- „ एष वै स्वर्गो लोको यत्र पशुंश्च संश्रपयन्ति । श० १३ ।
 ५ । २ । २ ॥
- „ स्वर्गो वै लोक आहवनीयः । ष० १ । ५ ॥ तै० १ । ६ ।
 ३ । ६ ॥
- „ ओमिति वै स्वर्गो लोकः । ऐ० ५ । ३२ ॥
- „ स्वरिति सामभ्यो ऽक्षरत् स्वः स्वर्गलोको ऽभवत् ।
 ष० १ । ५ ॥
- „ स्वर्गो लोकः सामवेदः । ष० १ । ५ ।
- „ इदं वा वामदेव्यं यजमानलोको ऽमृतलोकः स्वर्गो
 लोकः । ऐ० ३ । ४६ ॥
- „ स्वर्गो वै लोको यज्ञायज्ञियम् (साम) । श० ९ । ४ ।
 ४ । १० ॥
- „ बृहद्वै स्वर्गो लोकः । तै० १ । २ । २ । ४ ॥ तां० ६ ।
 १ । ३१ ॥
- „ बृहता (साम्ना) वै देव स्वर्गो लोकमायन् । तां० १८ ।
 २ । ८ ॥
- „ स्वर्गो लोको बृहत् । तां० १६ । ५ । १५ ॥
- „ बार्हतो वा असौ (स्वर्गः) लोकः । तै० १ । १ । ५ । २ ॥
- „ बार्हतो वै स्वर्गो लोकः । गो० पू० ४ । १२ ॥
- „ बार्हताः स्वर्गो लोकाः । ऐ० ७ । १ ॥
- „ बृहत्यामधि स्वर्गो लोकः प्रतिष्ठितः । श० १३ । ५ । ४२ ॥
- „ बृहत्या वै देवाः स्वर्गो लोकमायन् । तां० १६ । १२ । ७ ॥
- „ बृहती स्वर्गो लोकः । श० १० । ५ । ४ । ६ ॥
- „ स्वर्गो वै लोकः स्वरसाम । कौ० १२ । ५ ॥
- „ स्वर्गो वै लोकः षष्ठमहः । ऐ० ६ । २६, ३६ ॥ गो० ७०
 ६ । १६ ॥
- „ स्वर्गः एव लोकः षष्ठी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १७ ॥

- स्वर्गो लोकः एकवृद्धै स्वर्गो लोकः । श० १३ । २ । १ । ५ ॥
- ” वाजो वै स्वर्गो लोकः । तां० १८ । ७ । १२ ॥ गो० उ०
५ । ८ ॥
- ” तस्मात् (भूलोकात्) असावेव (स्वर्गो) लोकः श्रेयान्
(अथर्व० ७ । ९ । १) । ऐ० १ । १३ ॥
- ” स्वर्गो वै लोको ऽभयम् । श० १२ । ८ । १ । २२ ॥
- ” अमृतं सुवर्गो लोकः । तै० १ । ३ । ७ । ७ ॥
- ” अमृतमिव हि स्वर्गो लोकः । तै० १ । ३ । ७ । ५ ॥
- ” स्वर्गो लोको देवो देवता भवति । गो० पू० ४ । ८ ॥
- ” स्वर्गो वै लोको दूरोहणम् । ऐ० ४ । २०, २१ ॥
- ” स्वर्गस्य ह्येष लोकस्य रोहो यन्निविद् । ऐ० ३ । १६ ॥
- ” स्वर्गो वै लोको रोहः (यजु० १३ । ५१) । श० ७ । ५ ।
२ । ३६ ॥
- ” संवत्सरः सुवर्गो लोकः । तै० २ । २ । ३ । ६ ॥ ३ । ६ ।
२ । २ ॥ श० ८ । ४ । १ । २४ ॥ ८ । ६ । १ । ४ ॥ तां०
१८ । २ । ४ ॥
- ” मध्ये ह संवत्सरस्य स्वर्गो लोकः । श० ६ । ७ । ४ । ११ ॥
- ” तस्य (संवत्सरस्य) वसन्त एव द्वारं हेमन्तो द्वारं तं
वाऽ एतं संवत्सरं स्वर्गं लोकं प्रपद्यते । श० १ । ६ ।
१ । १९ ॥
- ” ता वा एताः पञ्च (इष्टयः) स्वर्गस्य लोकस्य द्वारः ।
अपाद्या अनुवित्तयो नाम । तपः प्रथमां रक्षति । श्रद्धा
द्वितीयाम् । सत्यं तृतीयाम् । मनश्चतुर्थीम् । चरणं पञ्च-
मीम् । तै० ३ । १२ । ४ । ७ ॥
- ” ता वा एताः सप्त (इष्टयः) स्वर्गस्य लोकस्य द्वारः ।
दिवः श्येनयो ऽनुवित्तयो नाम । आशा प्रथमां रक्षति ।
कामो द्वितीयां ब्रह्म तृतीयाम् । यज्ञश्चतुर्थीम् । आपः
पञ्चमीम् । अग्निर्बलिमान् षष्ठीम् । अनुवित्तिः सप्तमीम् ।
तै० ३ । १२ । २ । ९ ॥

- स्वर्गो लोकः पतस्या० ह (उदीच्यां प्राच्यां) दिशि स्वर्गस्य लोकस्य
 द्वारम् । श० ६ । ६ । २ । ४ ॥
- „ स्वर्गो वै लोको यज्ञः । कौ० १४ । १ ॥
- „ स्वर्गकामो यजेत । तां० १६ । १५ । ५ ॥
- „ तथा ह यजमानः सर्वमायुरस्मिन्नलोक एत्याप्तोत्यमृतत्वम-
 क्षितिं स्वर्गे लोके । कौ० १३ । ५, ६ ॥ १४ । ४ ॥
- „ ऋतेनैवैन० स्वर्गं लोकं गमयन्ति । तां० १८ । २ । ९ ॥
- „ छन्दोभिर्हि स्वर्गं लोकं गच्छन्ति । श० ६ । ५ । ४ । ७ ॥
- „ सर्वैर्वै छन्दोभिरिष्ट्वा देवाः स्वर्गं लोकमजयन् । ऐ० १ । ९ ॥
- „ छन्दोभिर्वै देवा आदित्यश्च स्वर्गं लोकमहरन् । तां० १२ ।
 १० । ६ ॥
- „ छन्दोभिर्हि देवाः स्वर्गं लोकं समाश्नुवन्त । श० ३ । ९ ॥
 ३ । १० ॥
- „ देवा वै छन्दा०स्यब्रुवन् युष्माभिः स्वर्गं लोकमयामेति ।
 तां० ७ । ४ । २ ॥
- „ साध्या वै नाम देवा आस०स्ते ऽवच्छिद्य तृतीयसवनेनम्मा-
 ध्यन्दिनेन सवनेन सह स्वर्गं लोकमायन् । तां० ८ । ३ ।
 ५ ॥ ८ । ४ । ९ ॥
- „ देवा वा असुरैर्विजिग्याना ऊर्ध्वाः स्वर्गं लोकमायन् ।
 ऐ० ३ । ४२ ॥
- „ देवा वै यज्ञेन श्रमेण तपसाहुतिभिः स्वर्गं लोकमजयन् ।
 ऐ० २ । १३ ॥
- „ ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति तेषामेतानि न-
 क्षत्राणि ज्योतीश्चिपि । श० ६ । ५ । ४ । ८ ॥
- „ अक्षैर्यया (स्वर्गं लोकं) ऋषयो ऽनुप्राजानन् । तां० ८ ।
 ५ । ७ ॥
- „ पृष्ठैर्वै देवाः स्वर्गं लोकमस्पृक्षन् । कौ० २४ । ८ ॥
- „ पृष्ठानि वा असृज्यन्त तैर्देवाः स्वर्गं लोकमायन् । तां०
 ७ । ७ । १७ ॥
- „ स्वर्गो लोकः पृष्ठानि । तां० १६ । १५ । ६ ॥

- स्वर्गो लोकः स्वर्ग्या वा एते स्तोमा यत् ज्योतिर्भवति (ज्योतिः= ज्योतिष्टोमः) । तां० १६ । ३ । ७ ॥
- ” मधुनामुष्णिन् (स्वर्गे) लोक उपतिष्ठते । तां० १३ । ४ । १० ॥
- ” मध्वमुष्य (स्वर्गस्य लोकस्य रूपम्) । श० ७ । ५ । १ । ३ ॥
- ” (देवाः) सोमैः (सोमयागैः) अमुं (स्वर्गं लोकमभ्य- जयन्) । तां० १७ । १३ । १८ ॥ १८ । २ । १४ ॥
- ” स्वर्गो वै लोको माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ० ३ । १७ ॥
- ” एतद्वै यज्ञस्य स्वर्ग्यं यन्माध्यन्दिनं सवनम् । तां० ७ । ४ । १ ॥
- ” अवस्तात्प्रपदनो ह स्वर्गो लोकः । श० ८ । ६ । १ । २३ ॥
- ” एतेन (पारुच्छेपेन रोहिताख्येन छन्दसा) वा इन्द्रः सप्त स्वर्गलोकानरोहत् । ऐ० ५ । १० ॥
- ” नव स्वर्गा लोकाः । ऐ० ४ । १६ ॥ तै १ । २ । २ । १ ॥
- ” दश स्वर्गा लोकाः । गो० उ० ६ । २ ॥
- ” दश पुरुषे स्वर्गनरकाणि तान्येनं स्वर्गं गतानि स्वर्गं गमयन्ति नरकं गतानि नरकं गमयन्ति । जै० उ० ४ । २५ । ६ ॥
- ” इयं (पृथिवी) वै स्वर्गस्य लोकस्य प्रतिष्ठा । गो० उ० ६ । २ ॥
- ” न वै मनुष्यः स्वर्गं लोकमञ्जसा वेदाश्वो वै स्वर्गं लोक- मञ्जसा वेद । श० १३ । २ । ३ । १ ॥
- ” असमायी वै स्वर्गो लोकः कश्चिद्वै स्वर्गे लोके समेतीति । ऐ० ६ । २६, ३६ ॥
- ” असमाये (? असमायी) वै स्वर्गो लोकः कश्चिद्वै स्वर्गे लोके शमयतीति (? समेतीति) । गो० उ० ६ । १६ ॥
- ” य एवं वेद सशरीर एव स्वर्गं लोकमेति । तै० ३ । ११ । ७ । ३ ॥
- ” अथ य एवमेतमुक्थस्याऽऽत्मानमात्मन्प्रतिष्ठितं वेद स हैवाऽमुष्मिलोके साङ्गस्सतनुस्सर्वस्सम्भवति । जै० उ० ३ । ३ । ५ ॥

स्वर्गो लोकः साध्या वै नाम देवेभ्यो देवाः पूर्वा आस॑स्त एतत्
(शतसंवत्सरं) सत्रायणमुपाय॑स्तेनार्ध्व॑स्ते सगवः-
सपुरुषाः सर्व एव सह स्वर्गं लोकमायन् । तां० २५ ।
८ । २ ॥

॥ ते (देवाः) एनं (ऋचामध्येतारं) तृप्तास्तर्पयन्ति योग-
क्षेमेण प्राणेन रेतसा सर्वात्मना सर्वाभिः पुण्याभिः
सम्पद्भिर्घृतकुल्या मधुकुल्याः पितृन्तस्वधा अभिवहन्ति
(पश्यत-अथर्व० ४ । ३४ । ६ ॥) । श० ११ । ५ । ६ । ७ ॥

॥ यदु ह वाऽएवंभित् तप (तपस्) तप्यतऽ आ मैथुनात्स-
र्व॑ हास्य तस्वर्गं लोकमभिसम्भवति । श० १० । ४ ।
४ । ४ ॥

॥ सुवर्गो वै लोकः काष्ठा । तै० १ । ३ । ६ । ५ ॥

स्वर्णिधनम् देवक्षेत्रं वा एते ऽभ्यारोहन्ति ये स्वर्णिधनमुपयन्ति ।
तां० ५ । ७ । ८ ॥

स्वर्दक्, असौ (सूर्यः) वाव स्वर्दक्तेन सूर्यं नातिशंसति । ऐ० ४ । १० ।
स्वर्मानुः स्वर्मानुर्ह वाऽ आसुरः । सूर्यं तमसा विव्याध । श० ५ ।
३ । २ । २ ॥

॥ स्वर्मानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसा ऽविध्यत् । तां० ४ ।
५ । २ ॥

॥ स्वर्मानुर्वा आसुरिः सूर्यन्तमसा विध्यत् । गो० ३० ३ । १९ ॥

स्वर्विद् (यजु० १७ । १२) अयमग्निः स्वर्विद् । श० ९ । २ । १ । ८ ॥

स्वाध्यायः अथातः स्वाध्यायप्रश॑सा । प्रिये स्वाध्यायप्रवचने
भवतो युक्तमना भवत्यपराधीनो ऽहरहरर्थान्त्साधयते
सुखं॑ स्वपिति परमचिकित्सक आत्मनो भवतीन्द्रिय-
संयमश्चैकारामता च प्रज्ञावृद्धिर्यशो लोकपक्तिः । श० ११ ।
५ । ७ । १ ॥

॥ यदि ह वा अप्यभ्यक्तः । अलंकृतः सुहितः सुखे शयने
शयानः स्वाध्यायमधीतऽ आ हैव स नखाग्नेभ्यस्तप्यते य
एवं विद्वान्त्स्वाध्यायमधीते (मनुस्मृतौ २ । १६७ :—
आ हैव स नखाग्नेभ्यः परमं तप्यते तपः । यः ऋग्व्यपि

द्विजो ऽर्घीते स्वाध्यायं शक्तितो ऽन्वहम् ॥) । श० ११ ।
१ । ७ । ४ ॥

स्वाध्यायः स य एवं विद्वाननुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहास-
पुराणं गाथा नाराशंसीरित्यहरहः स्वाध्यायमर्घीते
मध्वाहुतिभिरेव तद्देवाँस्तर्पयति । श० ११ । ५ । ६ । ८ ॥

” एवञ्चैव तद्ब्राह्मणो भवति यदहः स्वाध्यायं नार्घीते
तस्मात्स्वाध्यायो ऽध्येतव्यस्तस्मादप्यृचं वा यजुर्वा साम
वा गाथां वा कुंब्यां वाभिष्याहरेद् व्रतस्याव्यवच्छेदाय ।
श० ११ । ५ । ७ । १० ॥ ('ब्रह्मयज्ञ'शब्दमपि पश्यत)

स्वाप्ययः एष (यो ऽयं दक्षिणे ऽक्षन्पुरुषो मृत्युनामा सः) उ एव
प्राणः । एष हीमाः सर्वाः प्रजाः प्रणयति तस्यैते प्राणाः
स्वाः स यदा स्वपितृथैनमेते प्राणाः स्वा अपियन्ति त-
स्मात्स्वाप्ययः स्वाप्ययो ह वै तं स्वप्न इत्याचक्षते
परोऽक्षम् । श० १० । ५ । २ । १४ ॥

स्वाराज्यम् अथैनं (इन्द्रं) प्रतीच्यां दिश्यादित्या देवाः .. अभ्यषिञ्चन्
... ..स्वाराज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

” तस्मादेतस्यां प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजानो
ये ऽपाच्यानां स्वाराज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते स्वराडित्ये-
नानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

” यशसो वा एष वनस्पतिरजायत यत्प्लक्षः स्वाराज्यं च ह
वा एतद्वैराज्यं च वनस्पतीनाम् । ऐ० ७ । ३२ ॥

स्वावश्यम् अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि महतश्चाङ्गिरसश्च देवाः
.....अभ्यषिञ्चन् पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽ
धिपत्याय स्वावह्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८ । १४ ॥

स्वाशिरः प्राणा वै स्वाशिरः । तां० १४ । ११ । ६ ॥

स्वाशिरामर्कः (साम विज्ञेयः) अन्नं वा अर्को ऽन्नाद्यस्यावरुध्यै प्राणा वै
स्वाशिरः प्राणानामवरुध्यै । तां० १४ । ११ । ६ ॥

स्वाहाकारः स प्रजापतिर्विदांचकार स्वो वै मा महिमाहेति स स्वाहे-
त्येवाजुहोत्तस्माद्बु स्वाहेत्येव ह्यते । श० १ । २ । ४ । ६ ॥

- स्वाहाकारः हेमन्तो वाऽ ऋतूनां^१ स्वाहाकारो हेमन्तो ऋषिः प्रजाः
स्वं वशमुपनयते । श० १ । ५ । ४ । ५ ॥
- ” स्वाहा वै सत्यसम्भूता ब्रह्मणो दुहिता ब्रह्मप्रकृता ला-
तव्यसगोत्रा ऋण्यक्षराण्येकं पदं त्रयो वर्णाः शुक्लः पद्मः
सुवर्ण इति । ष० ४ । ७ ॥
- ” स्वाहा वै सत्यसम्भूता ब्रह्मणा प्रकृता लामगायनसगोत्रा
द्वे अक्षरे एकं पदं त्रयश्च वर्णाः शुक्लः पद्मः सुवर्ण इति ।
गो० पू० ३ । १६ ॥
- ” एष वै स्वाहाकारो य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ ।
१ । ३ । २६ ॥
- ” अन्नं^२ हि स्वाहाकारः । श० ६ । ६ । ३ । १७ ॥
- ” अन्नं वै स्वाहाकारः । श० ९ । १ । १ । १३ ॥
- ” तस्यै (वाचे) द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च
वषट्कारं च । श० १४ । ८ । ९ । १ ॥
- ” अनिरुक्तो वै स्वाहाकारः । श० २ । २ । १ । ३ ॥
- ” अहुतमिवैतद्यद्स्वाहाकृतम् । श० ४ । ५ । २ । १७ ॥
- ” यज्ञो वै स्वाहाकारः । श० ३ । १ । ३ । २७ ॥
- ” अन्तो वै यज्ञस्य स्वाहाकारः । श० १ । ५ । ३ । १३ ॥
- ” अन्तो वै स्वाहाकारः । ऐ० ५ । २० ॥
- स्वाहाकृतयः प्राणा वै स्वाहाकृतयः । कौ० १० । ५ ॥
- ” प्रतिष्ठा वै स्वाहाकृतयः । ऐ० २ । ४ ॥
- स्वाहाकृतिमान् स्वाहाकृतिमन्तं यजति हेमन्तमेव हेमन्ते वा इदं सर्वं
स्वाहाकृतम् । कौ० ३ । ४ ॥
- स्विष्टकृत् (अग्निः) तद्भ्यः (देवेभ्यो ऽग्निः) स्विष्टमकरोत्तस्मात्
(अग्नये) स्विष्टकृतऽ इति (क्रियते) । श० १ । ७ । ३ । ६ ॥
- ” अग्निर्हि स्विष्टकृत् । श० १ । ५ । ३ । २३ ॥
- ” अग्निर्वै स्विष्टकृत् । कौ० १० । ५ ॥
- ” रुद्रः स्विष्टकृत् । श० १३ । ३ । ४ । ३ ॥
- ” रुद्रो वै स्विष्टकृत् । कौ० ३ । ४ । ६ ॥
- ” रुद्रियः (=रुद्रदेवत्यः) स्विष्टकृत् (यागः) । श० १ । ७ ।
३ । २१ ॥

- स्विष्टकृत् क्षत्रं वै स्विष्टकृत् । श० १२ । ८ । ३ । १९ ॥
 ,, तपः स्विष्टकृत् । श० ११ । २ । ७ । १८ ॥
 ,, अयमेवावाङ् प्राणः स्विष्टकृत् । श० ११ । १ । ६ । ३० ॥
 ,, तृतीयसवनं वै स्विष्टकृत् । श० १ । ७ । ३ । १६ ॥
 ,, वास्तु स्विष्टकृत् । श० १ । ७ । ३ । १८ ॥
 ,, वास्तु वाऽ एतद्यज्ञस्य यत्स्विष्टकृत् । श० १ । ७ । ३ । १७ ॥
 ,, प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत् । ऐ० २ । १० ॥ कौ० ३ । ८ ॥
 ,, एषा (उत्तरा=उदीची) द्वि दिक् स्विष्टकृतः । श० २ । ३ ।
 १ । २३ ॥

स्विष्टम् यद्वै यज्ञस्यान्यूनान्तिरिक्तं तत्स्विष्टम् । श० ११ । २ । ३ । १९ ॥
 स्वेदः तद्यदब्रवीन्महद्वै यज्ञं सुवेदमविदामह इति तस्मात्सुवेदो
 ऽभवत्तं वा एतं सुवेदं सन्तं स्वेद इत्याचक्षते । गो० पू० १ । १ ॥

(ह)

- हंसः शुचिषद् (ऋ० ४ । ४० । ५) एष (आदित्यः) वै हंसः शुचि-
 षद् । ऐ० ४ । २० ॥
 ,, (यजु० १२ । १४) असौ वाऽ आदित्यो ह० हंसः शुचि-
 षत् । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥
 हन्तकारः हन्तकारं मनुष्याः (उपजीवन्ति) । श० १४ । ८ । ६ । १ ॥
 ,, हन्तेति चन्द्रमा ओमित्यादित्यः । जै० उ० ३ । ६ । २ ॥
 हयः (हे ऽश्व त्वं) हयो ऽसि । तां० १ । ७ । १ ॥
 ,, हयो भूत्वा देवानवहत् । श० १० । ६ । ४ । १ ॥
 हरः (यजु० १३ । ४१) (= अर्चिः) परिवृङ्ग्धि हरसा मामिमं-
 स्था इति पर्येनं वृङ्ग्ध्यर्चिषा मैन० द्वि० सीरित्वेतत् । श०
 ७ । ५ । २ । १७ ॥
 ,, वीर्यं वै हर इन्द्रो ऽसुराणां० सपत्नानां० समवृङ्क् । श० ४ ।
 ५ । ३ । ४ ॥
 हरिः प्राणो वै हरिः स हि हरति । कौ० १७ । १ ॥
 ,, [=पापहर्ता (मृत्युः) इति सायणभाष्ये तै० ३ । १० । ८ । १ ॥]
 ,, (यजु० ३८ । २२) एष वै वृषा हरिर्य एष (आदित्यः) तप-
 ति । श० १४ । ३ । १ । २६ ॥

हरिः (ऋ० ६ । ४७ । १८) युक्ता ह्यस्य (इन्द्रस्य) हंस्यं हसतीर्द-
शोति सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः । ते ऽस्य युक्तास्तैरिदं
सर्वं हरति । तद्यदेतैरिदं सर्वं हरति । तस्माद्धरयः (=रश्मयः) ।
जै० उ० १ । ४४ । ५ ॥

हरिकेशः (यजु० १५ । १५) यद्धरिकेश इत्याह हरिरिव ह्यग्निः ।
श० ४ । ६ । १ । १६ ॥

हरिणः (यजु० २३ । ३०) राष्ट्रं हरिणः । श० १३ । २ । ९ । ८ ॥

हरिणी (सूची) ऊर्ध्वं हरिण्यः (सूच्यः) । तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥
श० १३ । २ । १० । ३ ॥

„ हरिणी (=सुवर्णमयी) द्यौः । गो० उ० २ । ७ ॥

„ असौ (द्यौः) हरिणी । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥

„ दिवो (रूपं) हरिण्यः (सूच्यः) । तै० ३ । ६ । ६ । ५ ॥

„ हरिणीव हि द्यौः । श० १४ । १ । ३ । २६ ॥

„ विद् वै हरिणी । तै० ३ । ९ । ७ । २ ॥

हरितः दिशो वै हरितः । श० २ । ५ । १ । ५ ॥

हरिश्रियः पशवो वै हरिश्रियः । तां० १५ । ३ । १० ॥

हरिर्शोभिषनम् (साम्) पशूनामवरुष्यै, श्रियञ्च हरश्चोपैति तुष्टुवानः ।
तां० १५ । ३ । १० ॥

हरी (इन्द्रस्य) ऋक्सामे वै हरी । श० ४ । ४ । ३ । ६ ॥

„ ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी । ऐ० २ । २४ ॥ तै० १ । ६ । ३ । ९ ॥

„ पूर्वपक्षापरपक्षौ वा इन्द्रस्य हरी ताभ्यां हीदं सर्वं हरति ।
ष० १ । १ ॥

„ हर्योर्धानाः । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥

हरी विपक्षत्नै (यजु० २३ । ६) इमे (“द्यावापृथिव्यौ” इति स्तयणः)
वै हरी विपक्षसा । तै० ३ । ९ । ४ । २ ॥

हविः अक्तं हि हविः । श० २ । ६ । २ । ६ ॥

„ हवींषि हि वाऽ आत्मा यज्ञस्य । श० १ । ६ । ३ । ३६ ॥

„ जीवं वै देवानां हविरमृतममृतानाम् । श० १ । २ । १ । २० ॥

„ मासा हवींषि । श० ११ । २ । ७ । ३ ॥

हविर्धानम् अथ यदस्मिन्सोमो भवति हविर्वै देवानां सोमस्तस्मा-
द्धविर्धानं नाम । श० ३ । ५ । ३ । २ ॥

„ वैष्णवं हि हविर्धानम् । श० ३ । ५ । ३ । १५ ॥

हविर्धानम् एतद्वै देवानां निष्क्रेत्रल्यं यद्धविर्धानम् । श० ३ । ३ । १ ।

२३ ॥

„ शिर एवास्य (यज्ञस्य) हविर्धानम् । श० ३ । ५ । ३ । १ ॥

„ शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धाने । कौ० ११ । ८ ॥

„ तस्य (पुरुषस्य) शिर एव हविर्धाने । कौ० १७ । ७ ॥

„ द्यौर्हविर्धानम् । तै० २ । १ । ५ । १ ॥

„ द्यावापृथिवी वै देवानां हविर्धाने आस्ताम् । ऐ० १ । २९ ॥

„ वाक् च वै मनश्च हविर्धाने । कौ० ९ । ३ ॥

„ अयं वै लोको दक्षिणं हविर्धानम् । कौ० ९ । ४ ॥

हविर्यज्ञः अकृत्स्नैव वा एषा देवयज्या यद्धविर्यज्ञः । कौ० १० । ६ ॥

„ अकृत्स्ना वा एषा देवयज्या यद्धविर्यज्ञः । गो० ३० । २ । १७ ॥

„ अग्न्याधेयमग्निहोत्रं पौर्णमास्यमावास्ये । नवेष्टिश्चातुर्मा-

स्यानि पशुबन्धो ऽत्र सप्तम इत्येते हविर्यज्ञाः । गो० पू०

५ । २३ ॥

„ चत्वारो ह्येते हविर्यज्ञस्यैर्त्विजः । ब्रह्मा होता ऽध्वर्युरग्नीत् ।

तै० ३ । ३ । ८ । ७-८ ॥

„ अथैषाज्याहुतिर्यद्धविर्यज्ञः । श० १ । ७ । २ । १० ॥

„ हविर्यज्ञैर्वै देवा इमं लोकमभ्यजयन् । तां० १७ । १३ । १८ ॥

हविष्कृत् वाग्वै हविष्कृत् । श० १ । १ । ४ । ११ ॥

हविष्पङ्क्तिः धानाः करंभः परिवापः पुरोडाशः पयस्येत्येष वै यज्ञो

हविष्पङ्क्तिः । ऐ० २ । २४ ॥

„ तानि वै पञ्च हवींषि भवन्ति दधि धानाः सक्तयः

पुरोडाशः पयस्येति । कौ० १३ । २ ॥

„ अथ वै हविष्पङ्क्तिः प्राण एव । कौ० १३ । २ ॥

„ पशवो वै हविष्पङ्क्तिः । कौ० १३ । २ ॥

हविष्पात्राणि अर्धमासा हविष्पात्राणि । श० ११ । २ । ७ । ४ ॥

हविष्मन्तः (ऋ० १ । २७ । १) पशवो वै हविष्मन्तः । श० १ । ४ ।

१ । ९ ॥

„ अर्धमासा हविष्मन्तः । गो० पू० ५ । २३ ॥

हविष्यः यो व ऊर्मिर्हविष्य इति यो ऊर्मिर्यज्ञिय इत्येवैतदाह । श०

३ । ९ । ३ । २५ ॥

हव्यदातिः (ऋ० ६ । १६ । १०) यजमानो वै हव्यदातिः । श० १ ।
४ । १ । २४ ॥

हव्यवाह् वायुर्वै तूर्णिहव्यवाङ्वायुर्देवेभ्यो हव्यं वहति । ऐ० २ । ३४ ॥

„ एष हि हव्यवाङ्घदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३९ ॥

हव्यवाहनः एष हि हव्यवाहनो यदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३९ ॥

हस्तः हस्तो वितस्तिः । श० १० । २ । २ । ८ ॥

हस्तः (नक्षत्रम्) देवस्य सवितुर्हस्तः । तै० १ । ५ । १ । ३ ॥

„ दातारमघ सविता विदेययो नो हस्ताय प्रसुवाति यक्षम् !
तै० ३ । १ । १ । ६ ॥

„ हस्त एवास्य (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) हस्तः । तै० २ । ५ ।
२ । २ ॥

हस्ती (देवा भादित्याः) तं (मार्तण्डं) विचक्रुर्यथायं पुरुषो विकृ-
तस्तस्य यानि माथ्सानि संकृत्य संन्यासुस्ततो हस्ती सम-
भ्वसस्मादाहुर्न हास्तिनं प्रतिगृहीयात्पुरुषाजानो हि हस्तीति ।
श० ३ । १ । ३ । ४ ॥

हायनाः (= संवत्सरपक्षा व्रीहयः) अतिष्ठा वाऽ एता ओषधयो
यद्धायनाः । श० ५ । ३ । ३ । ६ ॥

हारायणम् (साम) इन्द्रस्तेजस्कामो हरस्कामस्तपोऽतप्यत स एत-
ञ्जारायणमपश्यत्तेन तेजो हरो ऽवारुन्ध तेजस्वी हरस्वी
भवति हारायणेन तुष्टुवानः । तां० १४ । ९ । ३४ ॥

हारियोजनः (प्रः) छन्दाभंसि वै हारियोजनः । श० ४ । ४ । ३ । २ ॥

हारिवर्णम् (नक्षसाम) हरिवर्णो वा एतत्पशुकामः सामपहारम्
सहस्रं पशूनसृजत यदेतत्साम भवति पशूनां पुष्टै
(? पुष्ट्यै) । तां० ८ । ९ । ४ ॥

„ अग्निरसः स्वर्गं लोकं यतो रक्षार्थस्यन्वसचन्त तान्ये-
तेन हरिवर्णो ऽपाहन्त यदेतत्साम भवति रक्षसामपहृत्यै !
तां० ८ । ९ । ५ ॥

„ अप शुचर्थे हते हारिवर्णस्य निधनेन, श्रियञ्च हरश्चोपैति
तुष्टुवानः । तां० १२ । ६ । १० ॥

द्वाविष्कृतम् (साम) द्वाविष्कृतं भवति प्रतिष्ठायै । तां० १५ । ५ । १७ ॥

हाविष्मत्तम् (साम) हविष्माध्वंश्च वै हविष्कृष्णाक्विरसावास्तां द्वितीये-
ऽहनि हविष्मानराध्नोन्नवमेऽहनि हविष्कृत् । तां० ११ ।
१० । ९ ॥

हिङ्कारः हिङ्कारेण वज्रेणाऽस्माल्लोकादसुराननुदत् । जै० उ० २ ।
८ । ३ ॥

„ वज्रो वै हिङ्कारः । कौ० ३ । २ ॥ ११ । १ ॥

„ शुक्लमेव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३४ । १ ॥

„ वायुरेव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३६ । ९ ॥ १ । ५८ । ९ ॥

„ स (प्रजापतिः) पुरोवातमेव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ ।
१२ । ९ ॥

„ प्राणो वै हिङ्कारः । श० ४ । २ । २ । ११ ॥

„ प्राणो हि वै हिङ्कारस्तस्मादपिगृह्यनालिके न हिङ्कर्तुं
शक्नोति । श० १ । ४ । १ । २ ॥

„ प्रजापतिर्वै हिङ्कारः । तां० ६ । ८ । ५ ॥

„ तेभ्यः (पशुभ्यः प्रजापतिः) हिङ्कारमयच्छत् । जै० उ०
१ । ११ । ५ ॥

„ लोमैव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥

„ स (प्रजापतिः) मन एव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ ।
१३ । ५ ॥

„ चन्द्रमा एव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥

„ चन्द्रमा वै हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३ । ४ ॥

„ तस्य साम्न इयमेव प्राची दिग्घिङ्कारः । जै० उ० १ । ३१ । २ ॥

„ यदनुदितः (आदित्यः) स हिङ्कारः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥

„ रश्मय एव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३३ । ६ ॥

„ अहोरात्राणि हिङ्कारः । ष० ३ । १ ॥

„ स (प्रजापतिः) वसन्तमेव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ ।
१२ । ७ ॥

„ वसन्तो हिङ्कारः । ष० ३ । १ ॥

„ वृषा हिङ्कारः । गो० पू० ३ । २३ ॥

„ स (प्रजापतिः) यजूंष्येव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ ।
१३ । ३ ॥

- हिङ्कारः तस्य (एकविंशसाम्नः) त्रय्येव विद्या हिङ्कारः । जै० उ० १।१९।२ ॥
- „ एष वै साम्नां रसो यद्धिङ्कारः । तां० ६।८।७ ॥
- „ हिङ्कृत्य गायति तत्र हि सर्वे कृत्स्नं साम भवति । श० ९।१।२।३४ ॥
- „ तदेतद्यज्ञस्याग्रे गेयं यद्धिङ्कारः । गो० उ० ३।९ ॥
- „ न वाऽअहिङ्कृत्य साम गीयते । श० १।४।१।१ ॥
- „ हिङ्कारो वै गायत्रस्य प्रतिहारः । तां० ७।१।४ ॥
- „ श्रीर्वै साम्नो हिङ्कारः । जै० उ० १।४।६ ॥
- „ श्रीर्वा एषा प्रजापतिस्साम्नो यद्धिङ्कारः । जै० उ० ३।१२।३ ॥
- „ एष वै स्तोमस्य योगो यद्धिङ्कारः । तां० ६।८।६ ॥
- „ येन वै श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठः (हिङ्कारः) । गो० उ० ३।६ ॥
- हितम् प्राणो वै हितं प्राणो हि सर्वेभ्यो भूतेभ्यो हितः । श० ६।१।२।१४ ॥
- हिमस्य जरायु (यजु० १७।५) यद्वै शीतस्य प्रशीतं तद्धिमस्य जरायु । श० ९।१।२।२६ ॥
- हिमाः (यजु० २।२७) शतं हिमा इति शतं वर्षाणि जीव्यासमित्येवैतदाह । श० १।९।३।१६ ॥
- हिरः हिरो (हिरः=“मेखला” इति सायणः) वै रास्ना (=“रशना” इति सायणः) । श० १।३।१।१५ ॥
- हिरण्यकशिपु दिवो (रूपं) हिरण्यकशिपु । तै० ३।९।२०।२ ॥
- हिरण्यगर्भः प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः । श० ६।२।२।५ ॥
- हिरण्यपाणिः तस्मात् (सविता) हिरण्यपाणिरिति स्तुतः । कौ० ६।१३ ॥ गो० उ० १।२ ॥
- हिरण्यम् तद्यदस्य (प्रजापतेः) एतस्यां रम्यायां तन्वां देवा अर-
 मन्त तस्माद्धिरण्यं हिरण्यं ह वै तद्धिरण्यमित्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ७।४।१।१६ ॥
- „ (अथर्व० ५।२८।६—त्रेधा जातं जम्भनेदं हिरण्यमग्निरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् । अपामेकं त्रेधासां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ।)

हिरण्यम् अग्निर्ह वाऽ अपोऽ भिदध्यौ मिथुन्याभिः स्यामिति ताः सम्ब-
भूव तासु रेतःप्रासिञ्चत्तद्विरण्यमभवत्तस्मादेतदाग्निसंकाशम-
ग्नेर्हि रेतस्तस्मादप्सु विन्दन्त्यप्सु हि प्रासिञ्चत् । श० २ ।
१ । १ । ५ ॥

- .. (अग्नेरपत्यमेतद्वै सुवर्णमिति धारणा—महाभारते, अनु०
पर्वणि अ० ८५ । १४७ ॥ अ० ८६ अपि द्रष्टव्यः)
- .. आग्नेयं वै हिरण्यम् । तै० २ । २ । ५ । २ ॥
- .. तस्य (अग्नेः) रेतः परापतत् । तद्विरण्यमभवत् । तै० १ ।
१ । ३ । ८ ॥
- .. अग्ने रेतो हिरण्यम् । श० २ । २ । ३ । २८ ॥
- .. अग्नेर्वाऽ एतद्रेतो यद्विरण्यं नाष्ट्राणां रक्षसामपहत्यै ।
श० १४ । १ । ३ । २९ ॥
- .. समानजन्म वै पयश्च हिरण्यञ्चोभयं ह्यग्निरेतसम् । श०
३ । २ । ४ । ८ ॥
- .. अश्वस्य वा आलब्धस्य रेत उदक्रामत् । तत्सुवर्णं हिर-
ण्यमभवत् । तै० ३ । ८ । २ । ४ ॥ श० १३ । १ । १ । ३ ॥
- .. रेतो हिरण्यम् । तै० ३ । ८ । २ । ४ ॥
- .. (प्रजापतिः) अयसो हिरण्यं (अस्तुजत) तस्मादयो बहु-
ध्मातं हिरण्यसंकाशमिवैव भवति । श० ६ । १ । ३ । ५ ॥
- .. क्षत्रस्यैतद्रूपं यद्विरण्यम् । श० १३ । २ । २ । १७ ॥
- .. आयुर्हि हिरण्यम् । श० ४ । ३ । ४ । २४ ॥
- .. (आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम् । इदं हिरण्यं
वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् । यजु० ३४ । ५० ॥ नैनं र-
क्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।
यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः
॥ २ ॥ अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वी-
र्याणि । इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्ष-
माणो विभ्रद्विरण्यम् ॥ ३ ॥ अथर्व० १ । ३५ । २, ३ ॥)
- .. आयुर्वै हिरण्यम् । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥
- .. यद्विरण्यं वदति आयुस्तेन वर्धयिषु कुरुते । गो० उ० ३ । १९ ॥

- हिरण्यम् अमृतमायुर्हिरण्यम् । श० ३।५।२।२७ ॥ ४।५।२।
१० ॥ ४।६।१।६ ॥
- „ अमृतं हिरण्यम् । तै० १।७।६।३ ॥ १।७।८।१ ॥
श० १०।४।१।६ ॥ तां० ९।९।४ ॥
- „ (यजु० १८।५२ ॥) अमृतं वै हिरण्यम् । श० ९।४।
४।५ ॥ तै० १।३।७।७ ॥
- „ प्राणो वै हिरण्यम् । श० ७।५।२।८ ॥
- „ सोमस्य वा अभिषूयमाणस्य प्रिया तनू रुदक्रामत् तत्सुवर्णं
हिरण्यमभवत् । तै० १।४।७।४-५ ॥
- „ वरुणस्य वा अभिषिच्यमानस्याप इन्द्रियं वीर्यं निरघ्नन् ।
तत्सुवर्णं हिरण्यमभवत् । तै० ५।१।९।१ ॥
- „ वर्चो वै हिरण्यम् । तै० १।८।९।१ ॥
- „ वर्चो वाऽ एतद्यद्विरण्यम् । श० ३।२।४।९ ॥
- „ तेजो हिरण्यम् । तै० ३।१२।५।१२ ॥
- „ तेजो वै हिरण्यम् । तै० १।५।९।१ ॥
- „ चन्द्रं हिरण्यम् । तै० १।७।६।३ ॥
- „ चन्द्रं ह्येतच्चन्द्रेण क्रीणाति यत्सोमं हिरण्येन (चन्द्रः
=सोमः, चन्द्रं=हिरण्यम्) । श० ३।३।३।६ ॥
- „ शुक्रं हिरण्यम् । तै० १।७।६।३ ॥
- „ शुक्रं ह्येतच्छुक्रेण क्रीणाति यत्सोमं हिरण्येन । श०
३।३।३।६ ॥
- „ ज्योतिर्वै शुक्रं हिरण्यम् । ऐ० ७।१२ ॥
- „ ज्योतिर्हिरण्यम् । गो० पू० २।२१ ॥
- „ ज्योतिर्हि हिरण्यम् । श० ४।३।१।२१ ॥
- „ ज्योतिर्वै हिरण्यम् । तां० ६।६।१० ॥ १८।७।८ ॥ तै०
१।४।४।१ ॥ श० ६।७।१।२ ॥ ७।४।१।१५ ॥
गो० उ० ५।८ ॥
- „ यशो वै हिरण्यम् ॥ ऐ० ७।१८ ॥
- „ सत्यं वै हिरण्यम् । गो० उ० ३।१७ ॥
- „ देवानां वाऽ एतद्रूपं यद्विरण्यम् । श० १२।८।१।१५ ॥

- हिरण्यम् पवित्रं वै हिरण्यम् । तै० १ । ७ । २ । ६ ॥
- „ तस्माद्धिरण्यं कनिष्ठं धनानाम् । तै० ३ । ११ । ८ । ७ ॥
- हुतादः (देवाः) पता वै प्रजा हुतादो यद् ब्राह्मणाः । ऐ० ७ । १९ ॥
- „ पते वै देवा अहुतादो यद् ब्राह्मणाः । गो० उ० १ । ६ ॥
- हुम् बग् हुम् बगिति श्रीकामस्य । बगिति ह् श्रियम्पणायन्ति । जै० उ०
३ । १३ । ३ ॥
- हुम्बो हुम्बो इति पशुकामस्य । बो इति ह् पशवो वाश्यन्ते । जै० उ०
३ । १३ । २ ॥
- हुम्भा हुम्भा इति ब्रह्मवर्चसकामस्य । भातीव हि ब्रह्मवर्चसम् । जै०
उ० ३ । १३ । १ ॥
- हृदयम् तदेतत् त्र्यक्षरं हृदयमिति ह् इत्येकमक्षरमभिहरन्त्यस्मै
स्वाश्रान्ये च य एवं वेद् इत्येकमक्षरं द्दन्त्यस्मै स्वाश्रान्ये
च य एवं वेद् यमित्येकमक्षरमेति स्वर्गं लोकं य एवं वेद् ।
श० १४ । ८ । ४ । १ ॥
- „ तस्मादिदं गुहेव हृदयम् । श० ११ । २ । ६ । ५ ॥
- „ मूर्धा हृदये (धितः) । तै० ३ । १० । ८ । ९ ॥
- „ आत्मा वै मनो हृदयम् । श० ३ । ८ । ३ । ८ ॥
- „ कस्मिन्नु मनः प्रतिष्ठितं भवतीति हृदयऽ इति । श० १४ ।
६ । ९ । २५ ॥
- „ मनो हृदये (धितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥
- „ रेतो हृदये (धितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥
- „ श्रोत्रं हृदये (धितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥
- „ वाग्घृदये (धिता) । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥
- „ शरीरं हृदये (धितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥
- „ हिता नाम नाड्यो द्वासप्ततिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्र-
तिष्ठन्ते ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते । श० १४ । ५ ।
१ । २१ ॥
- „ एष प्रजापतिर्यद्घृदयम् । श० १४ । ८ । ४ । १ ॥
- „ हृदयं वै सद्माद् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । २८ ॥
- „ पुत्रो हि हृदयम् । तै० २ । २ । ७ । ४ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यो हृदयम् । श० ९ । १ । ३ । ४० ॥

हृदयम् प्राणो वै हृदयमतो ह्ययमूर्ध्वः प्राणः संचरति । श० ३ । ८ ।
३ । १५ ॥

„ हृत्सु ह्ययं क्रतुर्मनो जवः प्रविष्टः । श० ३ । ३ । ४ । ७ ॥

„ परिमण्डलं हृदयम् । श० ९ । १ । २ । ४० ॥

„ निकक्षे निकक्षे हि हृदयं, दाक्षिणे निकक्षे ऽतो हि हृदयं ने-
दीयः । श० ६ । १ । २ । ४० ॥

„ ऋक्णं हृदयम् । श० ९ । १ । २ । ४० ॥

„ हृदयं वै स्तोमभागाः । श० ८ । ६ । २ । १५ ॥

„ हृदयं स्तोमभागाः । श० ८ । ५ । ४ । ३ ॥

हेक् उपहृतं हेगिति तच्छरीरमुपहृतये । श० १ । ८ । १ । २३ ॥

हेतिः (= अग्नेरायुधम्) यया ते सृष्टस्याग्नेः । हेतिमशमयत्प्रजापतिः
..... (हेतिः = ज्वाला—अमरकोशे, नानार्थवर्गे, श्लो० ७०) ।

तै० १ । २ । १ । ६ ॥

„ (= रुद्रस्य आयुधम्) रुद्रस्य हेतिं दधाति । श० ११ । ७ ।
३ । २० ॥

हेमन्तः (ऋतुः) एतौ (सहस्र सहस्यश्च) एव हैमन्तिकौ (मासौ)
स यद्धेमन्त इमाः प्रजाः सहसेव स्वं वशमुपनयते तेनो
हेतौ सहस्र सहस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १८ ॥

„ तस्य (पर्जन्यस्य) सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्याविति
हैमन्तिकौ तावृत् । श० ८ । ६ । १ । २० ॥

„ हेमन्तो होता तस्माद्धेमन्वषदकृताः पशवः सीदन्ति । श०
११ । २ । ७ । ३२ ॥

„ हेमन्तो हीमाः प्रजाः स्वं वशमुपनयते । श० १ । ५ । ४ ।
५ ॥

„ षड्भिरैन्द्रवैष्णवैः (पशुभिः) हेमन्ते (यजते) । श० १३ ।
५ । ४ । २८ ॥

„ हेमन्तो मध्यम् (संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ४ ॥

„ तस्य (संवत्सरस्य) वसन्त एव द्वारं हेमन्तो द्वारं तं
वा एतं संवत्सरं स्वर्गं लोकं प्रपद्यते । श० १ । ६ ।
१ । १९ ॥

- हेमन्तः यद् वृष्ट्वोद्गृह्णाति तद्धेमन्तस्य (रूपम्) । श० २ । २ ।
३ । ८ ॥
- ॥ हेमन्तो निधनम् । ष० ३ । १ ॥
- ॥ (प्रजापतिः) हेमन्तं निधनं (अकरोत्) । जै० ३० १ ।
१२ । ७ ॥
- ॥ अन्त ऋतूनां हेमन्तः । श० १ । ५ । ३ । १३ ॥
- ॥ हेमन्तो वाऽ ऋतूनां स्वाहाकारो हेमन्तो हीमाः प्रजाः स्वं
वशमुपनयते । श० १ । ५ । ४ । ५ ॥
- ॥ स्वाहाकृतिमन्तं यजति हेमन्तमेव हेमन्ते वा इदं सर्वं
स्वाहाकृतम् । कौ० २ । ४ ॥

होता यद्वा स तत्र यथाभाजनं देवता अमुमावहामुमावहेत्यावाहयति
तदेव होतुर्होत्वम् । ऐ० १ । २ ॥

- ॥ मध्यं वा एतद्यज्ञस्य यद्धोता । तै० ३ । ३ । ८ । १० ॥
- ॥ आत्मा वै होता । ऐ० ६ । ८ ॥ कौ० २२ । ८ ॥ गो० ३० । १४ ॥
- ॥ आत्मा वै यज्ञस्य होता । कौ० ९ । ६ ॥
- ॥ आग्नेयो होता । तां० १८ । ९ । ६ ॥
- ॥ आग्नेयो वै होता । तै० १ । ७ । ६ । १ ॥ ३ । ९ । ५ । २ ॥ श०
१३ । २ । ६ । ६ ॥
- ॥ (ऋ० ६ । १६ । १० ॥ यजु० ११ । ३५ ॥) अग्निर्वै होता ।
श० १ । ४ । १ । २४ ॥ ६ । ४ । २ । ६ ॥ गो० पू० २ । २४ ॥
- ॥ अग्निर्वै देवानां होता । ऐ० १ । २८ ॥
- ॥ तस्याग्निर्होतासीत् । गो० पू० १ । १३ ॥
- ॥ अग्निर्वै होता ऽधिदैवं वाग्ध्यात्मम् । श० १२ । १ । १ । ४ ॥
गो० पू० ४ । ४ ॥
- ॥ वाग्धोता । श० १ । ५ । १ । २१ ॥ गो० ३० । ५ । ४ ॥
- ॥ वागेव होता । गो० पू० २ । १० ॥ गो० ३० । ३ । ८ ॥
- ॥ वाग्वै होता (यजु० १३ । ७) । कौ० १३ । ९ ॥ १७ । ७ ॥
- ॥ वाग्यज्ञस्य होता । ऐ० २ । ५ । २८ ॥
- ॥ वाग्वै यज्ञस्य होता । श० १२ । ८ । २ । २३ ॥ १४ । ६ । १ । १५ ॥
- ॥ वाग्धोता षड्ढोतृणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । २ ॥

होता मनो होता । तै० २ । १ । ५ । ९ ॥

„ प्राणो वै होता । ऐ० ६ । ८ । १४ ॥ गो० उ० ५ । १४ ॥

„ असौ वै होता यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । गो० उ० ६ । ६ ॥

„ पुरुषो वाव होता । गो० उ० ६ । ६ ॥

„ क्षत्रं वै होता । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० उ० ६ । ३ ॥

„ संवत्सरो वाव होता । गो० उ० ६ । ६ ॥

„ संवत्सरो वै होता । कौ० २९ । ८ ॥

„ हेमन्तो होता तस्माद्धेमन्वषट्कृताः पशवः सीदन्ति । श०
११ । २ । ७ । ३२ ॥

„ होतैव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ होता हि साहस्राः । श० ४ । ५ । ८ । १२ ॥

„ प्राची दिग्धोतुः । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥

„ उत्तरत आयातनो (? आयतनो) वै होता । तै० ३ । ९ । ५ । २ ॥

होता वेदिषद् (ऋ० ४ । ४० । ५) एष (सूर्यः) वै होता वेदिषद् ।
ऐ० ४ । २० ॥

„ (यजु० १२ । १४) अग्निर्वै होता वेदिषत् । श० ६ । ७ ।
३ । ११ ॥

होतृचमसः आत्मा होतृचमसः । ऐ० २ । ३० ॥

होतृषदनम् (यजु० ११ । ३६) कृष्णाजिनश्च होतृषदनम् । श० ६ ।
४ । २ । ७ ॥

होत्रकाः अङ्गानि होत्रकाः । ऐ० ६ । ८ ॥ गो० उ० ५ । १४ ॥

होत्राः ऋतवो वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥

„ रश्मयो वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥

„ अङ्गानि वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥

होत्राशंसिनः (ऋत्विजः) अङ्गानि होत्राशंसिनः । कौ० १७ । ७ ॥ २६ ।
८ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

„ विशो होत्राशंसिनः । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० उ० ६ । ३ ॥

„ ऋतवो होत्राशंसिनः । कौ० २९ । ८ ॥

परिशिष्टम्

(अ)

- अंशुः (ग्रहः) प्राण एवांशुरुदानो ऽदाभ्यश्चक्षुरेवांशुः श्रोत्रम-
दाभ्यः (ग्रहः) । श० ११ । ५ । ९ । २ ॥
- ” मनो ह वाऽ अंशुः (ग्रहः) । श० ११ । ५ । ९ । २ ॥
- ” प्रजापतिर्वा एष यदंशुः । श० ४ । ६ । १ । १ ॥
- ” अंशुर्वै नाम ग्रहः स प्रजापतिः । श० ४ । १ । १ । २ ॥
- ” प्रजापतिर्वाऽ एष यदंशुः सो ऽस्य (यजमानस्य) एष
आत्मैव । श० ४ । ६ । १ । १ ॥
- ” प्रजापतिर्ह वाऽ एष यदंशुः । सो ऽस्य (यजमानस्य) एष
आत्मैव । श० ११ । ५ । ९ । १ ॥
- अग्नाविष्णू अग्नाविष्णू इति वसोर्धारायाः (रूपम्) । तै० ३ । ११ ।
९ । ९ ॥
- अग्निः तेजो वाऽ अग्निः । तै० ३ । ३ । ४ । ३ ॥
- ” ततो ऽस्मिन् (अग्नौ) एतद्वर्च आस । श० ४ । ५ । ४ । ३ ॥
- ” अग्निर्वै प्रथमा विश्वज्योतिः (इष्टका) । श० ७ । ४ । २ । २५ ॥
- ” अग्निर्वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥ जै० उ० ४ । २८ । २ ॥
- ” अग्निरेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- ” अग्निर्वै घर्मः । श० ११ । ६ । २ । २ ॥
- ” अग्निर्वा ऋतम् । तै० २ । १ । ११ । १ ॥
- ” अयं वाऽ अग्निर्ऋतमसावादित्यः सत्यं यदिवासावृतमयं
(अग्निः) सत्यमुभयम्वेतदयमग्निः । श० ६ । ४ । ४ । १० ॥
- ” अग्निर्वै द्रष्टा । गो० उ० २ । १९ ॥
- ” अग्निर्वा उपद्रष्टा । गो० उ० ४ । ९ ॥ तै० ३ । ७ । ५ । ४ ॥
- ” अग्निर्हि स्विष्टकृत् । श० १ । ५ । ३ । २३ ॥
- ” अग्निर्वै स्विष्टकृत् । कौ० १० । ५ ॥
- ” यच्छर्वो ऽग्निस्तेन । कौ० ६ । ३ ॥
- ” रुद्रो ऽग्निः । तां० १२ । ४ । २४ ॥

- अग्निः (त्वमग्ने रुद्रः... । ऋ० २ । १ । ६ ॥)
- „ अग्निर्वै रुद्रः । श० ५ । ३ । १ । १० ॥ ६ । १ । ३ । १० ॥
- „ एष रुद्रः । यदग्निः । तै० १ । १ । ५ । ८-९ ॥ १ । १ । ६ । ६ ॥
१ । १ । ८ । ४ ॥ १ । ४ । ३ । ६ ॥
- „ अथ यत्रैतत्प्रथमं समिद्धो भवति । धूप्यतऽ एव तर्हि हैष
(अग्निः) भवति रुद्रः । श० २ । ३ । २ । ९ ॥
- „ शिवः शिव (यजु० १२ । १७) इति शमयत्येवैनं (अग्निम्)
एतदहिंतायै तथो हैष (अग्निः) इमांल्लोकाञ्छान्तो न
हिनस्ति । श० ६ । ७ । ३ । १५ ॥
- „ संवत्सर एवाग्निः । श० १० । ४ । ५ । २ ॥
- „ संवत्सरो ऽग्निः । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥ ६ । ३ । २ । १० ॥ ६ ।
६ । १ । १४ ॥ तां० १० । १२ । ७ ॥
- „ प्रजापतिरेषो ऽग्निः । श० ६ । ५ । ३ । ७ ॥ ६ । ८ । १ । ४ ॥
- „ प्रजापतिराग्निः । श० ६ । २ । १ । २३, ३० ॥ ६ । ५ । ३ । ६ ॥
७ । २ । २ । १७ ॥
- „ अग्निर्वै देवतानां मुखं प्रजनयिता स प्रजापतिः । श० २ । ५ ।
१ । ८ ॥
- „ अग्निः प्रजननम् । गो० पू० २ । १५ ॥
- „ अग्निर्हि देवानां पालीवतः (ग्रहः) । कौ० २८ । ३ ॥
- „ विश्वकर्मायमग्निः । श० ९ । २ । २ । २ ॥ ९ । ५ । १ । ४२ ॥
- „ अग्निर्वै धाता । तै० ३ । ३ । १० । २ ॥
- „ (अग्ने !) त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना । तै० ३ । ११ ।
२ । १ ॥
- „ अथ यत्रैतत्प्रतितरामिव तिरश्चीवार्चिः संशाम्यतो भवति
तर्हि हैष (अग्निः) भवति मित्रः । श० २ । ३ । २ । १२ ॥
- „ तं यद् घोरसंस्पर्शं सन्तं (अग्निं) मित्रकृत्येवोपासते तद्देस्य
(अग्नेः) मैत्रं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
- „ यो वै वरुणः सो ऽग्निः । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥
- „ यो वा अग्निः स वरुणस्तदप्येतद्विषणोक्तं त्वमग्ने वरुणो जायसे
यदिति । ऐ० ६ । २६ ॥

- अग्निः अथ यत्रैतत्प्रदीप्ततरो भवति । तर्हि हैष (अग्निः) भवति
वरुणः । श० २ । ३ । २ । १० ॥
- „ यदग्निर्घोरसंस्पर्शस्तदस्य वारुणं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
- „ अथ (अग्निः) यदुच्च हृष्यति नि च हृष्यति तदस्य मैत्राव-
रुणं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
- „ अग्निरेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १ ॥
- „ स एषो (अग्निः) ऽत्र वसुः । श० ९ । ३ । २ । १ ॥
- „ अग्निर्वै वसुवनिः । श० १ । ८ । २ । १६ ॥
- „ अग्निर्वाव यमः । गो० उ० ४ । ८ ॥
- „ अग्निर्वै यमः (यजु० १२ । ६३) इयं (पृथिवी) यम्याभ्याश्च
हीदश्च सर्वं यतम् । श० ७ । २ । १ । १० ॥
- „ अग्निर्वै मृत्युः । श० १४ । ६ । २ । १० ॥ कौ० १३ । ३ ॥
- „ यो ऽग्निर्मृत्युस्सः । जै० उ० २ । १३ । २ ॥
- „ अग्निर्वै नभसस्पतिः । गो० उ० ४ । ९ ॥
- „ अग्निर्वै वनस्पतिः । कौ० १० । ६ ॥
- „ अङ्गिरसां वा एको ऽग्निः । ऐ० ६ । ३४ ॥
- „ अग्निर्वै भरतः स वै देवेभ्यो हव्यं भरति । कौ० ३ । २ ॥
- „ एष (अग्निः) हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्माद्भरतो ऽग्निरि-
त्याहुः । श० १ । ४ । २ । २ ॥ १ । ५ । १ । ८ ॥
- „ एष (अग्निः) उ वा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा विभर्ति तस्माद्वे-
वाह भारतेति । श० १ । ४ । २ । २ ॥
- „ आग्नेयो ब्राह्मणः । तां १५ । ४ । ८ ॥
- „ आग्नेयो वै ब्राह्मणः । तै० २ । ७ । ३ । १ ॥
- „ ब्रह्म ह्यग्निस्तस्मादाह ब्राह्मणेति । श० १ । ४ । २ । २ ॥
- „ अयमग्निर्ब्रह्म (यजु० १७ । १४) । श० ६ । २ । १ । १५ ॥
- „ अग्निरु वै ब्रह्म । श० ८ । ५ । १ । १२ ॥
- „ ब्रह्म ह्यग्निः । श० १ । ५ । १ । ११ ॥
- „ अथ यत्रैतदङ्गाराश्चाकाशयन्तऽ इव । तर्हि हैष (अग्निः) भवति
ब्रह्म । श० २ । ३ । २ । १३ ॥
- „ अग्निर्वै ब्रह्मा । ष० १ । १ ॥
- „ अग्निर्वै परिक्षित् । ऐ० ६ । ३२ ॥ गो० उ० ६ । १२ ॥

- अग्निः यदाह इयेनो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वा अग्निर्भूत्वा
 ऽस्मिँल्लोके संश्यायति तस्माच्छयेनस्तच्छयेनस्य इयेनत्वम् ।
 गो० पू० ५ । १२ ॥
- „ सत्पतिश्चेकितानः (यजु० १५ । ५१) इत्ययमग्निः सतां पतिश्चे-
 तयमान इत्येतत् । श० ८ । ६ । ३ । २० ॥
- „ अथो ऽग्निर्वै सुक्षितिरग्निर्होवास्मिँल्लोके सर्वाणि भूतानि क्षि-
 यति । श० १४ । १ । २ । २४ ॥
- „ अयमग्निः स्वर्विद् (यजु० १७ । १२) । श० ९ । २ । १ । ८ ॥
- „ अग्निर्वै वयस्कृच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ५ । ५ । २ । ६ ॥
- „ अग्निर्वै भ्रजदछन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥
- „ अग्निर्वै पथिकृत् । कौ० ४ । ३ ॥
- „ अग्निर्वै पथः कर्ता । श० ११ । १ । ५ । ६ ॥
- „ अग्निर्वै रुरः । तां० ७ । ५ । १० ॥ १२ । ४ । २४ ॥
- „ अग्निर्वै महान् । जै० ३० । ३ । ४ । ७ ॥
- „ एष (अग्निः) एव महान् । श० १० । ४ । १ । ४ ॥
- „ अग्निर्वै महिषः (यजु० १२ । १०५, १११) । श० ७ । ३ । १ ।
 २३, ३४ ॥
- „ अग्निर्वाऽ आयुः (यजु० १२ । ६५) । श० ६ । ७ । ३ । ७ ॥
 ७ । २ । १ । १५ ॥
- „ अग्निर्वै भुवो ऽग्नेर्हीदधं सर्वं भवति । श० ५ । १ । १ । ४ ॥
- „ एतानि वै तेषामग्नीनां नामानि यद्भुवपतिर्भुवनपतिर्भूतानां
 पतिः । श० १ । ३ । ३ । १७ ॥
- „ अग्निर्हि वै धूः । श० १ । १ । २ । ९ ॥
- „ एष वै धुर्यो ऽग्निः । तै० ३ । २ । ४ । ३ ॥
- „ अग्निर्वाऽ एष धुर्यः (= युगस्य धुरि भव इति सायणः) । श०
 १ । १ । २ । १० ॥
- „ अग्निर्वै दाता स एवास्मै यज्ञं ददाति । कौ० ४ । २ ॥
- „ अग्निर्वाव पुरोहितः । ऐ० ५ । २७ ॥
- „ एतद् वा इन्द्राग्नेयोः प्रियं भ्राम यद्वागिति । ऐ० ६ । ७ ॥ गो०
 ३० ५ । १३ ॥

- अग्निः सा या सा वागग्निस्सः । जै० उ० १ । २८ । ३ ॥
- „ वाग्वा अग्निः । श० ६ । १ । २ । २८ ॥ जै० उ० ३ । २ । ५ ॥
- „ या वाक् सो ऽग्निः । गो० उ० ४ । ११ ॥
- „ अग्निर्वै वरेण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥
- „ तस्याः (श्रियः) अग्निरन्नाद्यमादत्त । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
- „ अयमग्निः सहस्रयोजनम् । श० ९ । १ । १ । २९ ॥
- „ अग्निर्वै रथन्तरम् । ऐ० ५ । ३० ॥
- „ एष हि यज्ञस्य सुकतुर्यदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३५ ॥
- „ अग्निः प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥
- „ अयं वाऽ अग्निरुच्यः (यजु० १४ । १) । श० ८ । २ । १ । ४ ॥
- „ पवैतदग्नेर्यदुखा । श० ६ । २ । २ । २४ ॥
- „ अग्निर्वै होता (ऋ० ६ । १६ । १० ॥ यजु० ११ । ३५) । श० १ । ४ । १ । २४ ॥ ६ । ४ । २ । ६ ॥ गो० पू० २ । २४ ॥
- „ अग्निर्वै होता वेदिषत् (यजु० १२ । १४) । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥
- „ अग्निर्वै होता ऽधिदैवं वाग्ध्यात्मम् । श० १२ । १ । १ । ४ ॥ गो० पू० ४ । ४ ॥
- „ ते ऽङ्गिरस आदित्येभ्यः प्रजिष्णुः श्वः सुत्या नो याजयत न इति तेषां हाग्निर्दूत आस त आदित्या ऊचुरथास्माकमद्य सुत्या तेषां नस्त्वमेव (अग्ने !) होतासि, बृहस्पतिर्ब्रह्मा ऽयास्य उद्गाता, घोर आङ्गिरसो अध्वर्युरिति । कौ० ३० । ६ ॥
- „ अग्निः पञ्चहोतृणां होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥
- „ अग्निः पञ्चहोता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥
- „ आग्नेयो होता । तां० १८ । ६ । ९ ॥
- „ आग्नेयो वै होता । तै० १ । ७ । ६ । १ ॥ ३ । ६ । ५ । २ ॥ श० १३ । २ । ६ । ९ ॥
- „ एष हि हव्यवाहनो यदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३९ ॥
- „ हव्यवाहनो वै (अग्निः) देवानाम् । श० २ । ६ । १ । ३० ॥
- „ एष हि हव्यवाङ्मयदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३९ ॥
- „ अग्निर्वै देवानां व्रतभृत् । गो० उ० १ । १५ ॥
- „ अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः । गो० उ० १ । १४ ॥
- „ अग्निरु देवानां प्राणः । श० १० । १ । ४ । १२ ॥

- अग्निः तदग्निर्वै प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
- „ प्राणा अग्निः । श० ६ । ३ । १ । २२ ॥ ६ । ८ । २ । १० ॥
- „ अग्निर्वै देवानां मनोता । ऐ० २ । १० ॥ कौ० १० । ६ ॥
- „ देवपात्रं वाऽ एष यदग्निः । श० १ । ४ । २ । १३ ॥
- „ देवरथो वा अग्नयः । कौ० ५ । १० ॥
- „ अग्निः सर्वा देवताः । श० १ । ६ । ३ । २० ॥
- „ एष वै यज्ञो यदग्निः । श० २ । १ । ४ । १९ ॥
- „ अग्निरु वै यज्ञः । श० ५ । २ । ३ । ६ ॥
- „ अग्निर्वै यज्ञः । श० ३ । ४ । ३ । १९ ॥ तां० ११ । ५ । २ ॥
- „ यजमानोऽग्निः । श० ६ । ३ । ३ । २२ ॥ ६ । ५ । १ । ८ ॥ ७ । ४ । १ । २१ ॥ ९ । २ । ३ । ३३ ॥
- „ स उऽएव यजमानस्तस्मादाग्नेयो भवति । श० ३ । ९ । १ । ६ ॥
- „ अग्निर्यजुषाम् (समुद्रः) । श० ६ । ५ । २ । १२ ॥
- „ वृषोऽग्निः समिध्यते (ऋ० ३ । २७ । १४) । श० १ । ४ । १ । २९ ॥
- „ समग्निरिध्यते वृषा (ऋ० ३ । २७ । १३) । श० १ । ४ । १ । २९ ॥
- „ पृथिव्यग्नेः पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥
- „ अग्निर्ह वाऽ अपोऽभिदध्यौ मिथुन्याभिः स्यामिति ताः लम्बभूव तासु रेतः प्रासिञ्चत्तद्विरण्यमभवत्तस्मादेतदग्निंलकाशमग्नेर्हि रे । तस्माद्ऽप्सु विन्दन्त्यप्सु हि (रेतः) प्रासिञ्चत् । श० २ । १ । १ । ५ ॥
- „ अद्भ्यो वाऽ एष (अग्निः) प्रथममाजगाम । श० ६ । ७ । ४ । ४ ॥
- „ तस्य (अग्नेः) रेतः परापतत्तद्विरण्यमभवत् । तै० १ । १ । ३ । ८ ॥
- „ आग्नेयं वै हिरण्यम् । तै० २ । २ । ५ । २ ॥
- „ अग्ने रेतो हिरण्यम् । श० २ । २ । ३ । २८ ॥
- „ अग्नेर्वऽ एतद्रेतो यद्विरण्यम् (महाभारते, अनुशासनपर्वणि ८६ । ३३ ॥) । श० १४ । १ । ३ । २९ ॥
- „ समानजन्म वै पयश्च हिरण्यञ्चोभयथ्छ्वाग्निरेतसम् । श० ३ । २ । ४ । ८ ॥
- „ (अग्नेः) यदास्थि (आसीत्) तत् पीतुदारु (अभवत्) । तां० २४ । १३ । ५ ॥

- अग्निः गन्धो हैवास्य (अग्नेः) सुगन्धितेजनम् । श० ३।५।२।१७ ॥
- „ (अग्नेः) यत्स्नाव तत्सुगन्धितेजनम् । तां० २४।१३।५ ॥
- „ सैषा योनिरग्नेर्यद्वेणुः । श० ६।३।१।३२ ॥
- „ अग्निर्देवेभ्य उदक्रामत्स वेणुं प्राविशत्तस्मात्स सुषिरः । श० ६।३।१।३१ ॥
- „ सैषा योनिरग्नेर्यन्मुञ्जः । श० ६।३।१।२६ ॥
- „ योनिरेषाग्नेर्यन्मुञ्जः । श० ६।६।१।२३ ॥
- „ अग्निर्देवेभ्य उदक्रामत्स मुञ्जं प्राविशत्तस्मात्स सुषिरः । श० ६।३।१।२६ ॥
- „ सूर्योऽग्नेर्योनिरायतनम् । तै० ३।९।२२।२, ३ ॥
- „ अग्निः षट्पादस्तस्य पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौराप श्रोषधिवनस्पतय इमानि भूतानि पादाः । गो० पू० २।६ ॥
- „ षड्भिराग्नेयैः (पशुभिः) वसन्ते (यजते) । श० १३।५।४।२८ ॥
- „ तस्य (अग्नेः) रथगृत्सश्च रथौजाश्च (यजु० १५।१५) सेनानीग्रामण्याष्विति वासन्तिकौ तावृत् । श० ८।६।१।१६ ॥
- „ (अग्नेः) पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला (यजु० १५।१५ ॥) चाप्सरसाष्विति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिः सेना च तु ते समितिश्च । श० ८।६।१।१६ ॥
- „ सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः (यजु० १७।७९ ॥) इति (मुण्डकोपनिषदि १।२।५ः—काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ॥ स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥) । तै० ३।११।९।९ ॥
- „ यथा ते सृष्टस्याग्नेः । हेतिमशमयत्प्रजापतिः ... (हेतिः= अग्नेरायुधम्) । तै० १।२।१।६ ॥
- „ वायुर्वा अग्नेः स्वो महिमा । कौ० ३।३ ॥
- „ (उपसद्देवतारूपाया इषोः) अग्निरनीकम् (=मुखमिति सायणः) । ऐ० १।२५ ॥
- „ अग्निर्वै गायत्री । श० ३।९।४।१० ॥ ६।६।२।७ ॥
- „ गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शिरः । श० १०।३।१।१ ॥

- अग्निः गायत्रो वा अग्निः । कौ० १।१॥३।२॥९।२॥१६।४॥
 तै० १।१।५।३॥
- ॥ विराडाग्निः । श० ६।२।२।३४॥ ६।३।१।२१॥ ६।८।
 २।१२॥ ९।१।१।३१॥
- ॥ विराद् सृष्टा प्रजापतेः । ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी । योनिरग्नेः प्रति-
 छितिः । तै० १।२।२।२७॥
- ॥ प्रजापती रोहिण्यामग्निमसृजत तं देवा रोहिण्यामादधत ततो
 वै ते सर्वान्नोहानरोहन् । तै० १।१।२।२॥
- ॥ तमु हैव पशुषु कामथं रोहति य एवं विद्वान् रोहिण्याम्
 (अग्नी) आधत्ते । श० २।१।२।७॥
- ॥ अग्निश्च ह वा आदित्यश्च रौहिणावेताभ्यां हि देवताभ्यां
 यजमानाः स्वर्गं लोकं रोहन्ति । श० १४।२।१।२॥
- ॥ अग्निरेष यत्पशवः । श० ६।३।२।६॥
- ॥ आग्नेयो वाव सर्वः पशुः । ऐ० २।६॥
- ॥ आग्नेयाः पशवः तै० १।१।४।३॥
- ॥ आग्नेयो वा अजः । श० ६।४।४।१५॥
- ॥ स एषो ऽग्निरेव यत् क्रमुकः (वृक्षविशेषः) । श० ६।६।
 २।११॥
- ॥ आग्नेयी वै रात्रिः । तै० १।१।४।२॥ १।५।३।४॥ २।
 १।२।७॥
- ॥ आग्नेयं वै प्रातस्सवनम् । जै० ७० १।३७।२॥
- ॥ तान् (पशून्) अग्निस्त्रिवृता स्तोमेन नामोत् । तै० २।७।
 १४।१॥
- ॥ आग्नेयः पुरोडाशो भवति । श० २।४।४।१२॥
- ॥ स (आग्नेः) प्राचीं दिशं प्राजानात् । कौ० ७।६॥
- ॥ प्राचीं वै दिशम् । अग्निना प्राजानन् । श० ३।२।३।१६॥
- ॥ प्राचीं दिक् । अग्निर्देवता । तै० ३।११।५।१॥
- ॥ प्राचीं हि दिग्गन् । श० ६।३।३।२॥
- ॥ अग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भवः स्वाहा । श० ५।२।४।५॥
- ॥ अग्निरेव पुरः । श० १०।३।५।३॥

अग्निः अग्निर्वै पुरस्तद्यत्तमाह पुरः (यजु० १३ । १४ ॥) इति प्राञ्चश्च
ह्यग्निमुखरन्ति प्राञ्चमुपचरन्ति । श० ८ । १ । १ । ४ ॥

” अग्नेर्ऋग्वेदः (अजायत) । श० ११ । ५ । ८ । ३ ॥

” स (प्रजापतिः) भूरित्येवगर्वेदस्य रसमादत्त । सेयं पृथिव्य-
भवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् सो ऽग्निरभवद्रसस्य रसः । जै०
७० १ । १ । ३ ॥

अग्निञ् शते शते संवत्सरेष्वग्निचित्काममश्नाति कामं न । श०
१० । १ । ५ । ४ ॥

अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरो वा ऽ अग्निर्वैश्वानरः । तै० १ । ७ । २ । ५ ॥

” अयमग्निर्वैश्वानरो यो ऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते
यदिदमद्यते, तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिघाय
शृणोति स यदोत्क्रमिष्यन्भवति नैतं घोषश्च शृणोति ।
श० १४ । ८ । १० । १ ॥

” एष वा अग्निर्वैश्वानरः । यद्वाह्यणः । तै० ३ । ७ । ३ । २ ॥

” एष ह वा अग्निर्वैश्वानरो यत्प्रदाव्यः । गो० ७० । ४ । ८ ॥

” वैश्वानर इति वा अग्नेः प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ३ ॥

” वैश्वानरो वै सर्वे ऽग्नयः । श० ६ । २ । १ । ३५ ॥ ६ ।
६ । १ । ५ ॥

” अग्नेरेतद्वैश्वानरस्य रेतो यत्सिकताः । श० ७ । १ ।
१ । १० ॥

” अग्नेरेतद्वैश्वानरस्य भस्म यत्सिकताः । श० ७ । १ ।
१ । ९ ॥

” अग्नेर्वा एतद्वैश्वानरस्य भस्म यत्सिकताः । श० ३ ।
५ । १ । ३६ ॥

” अग्नेर्वा एतत् वैश्वानरस्य (श्रौष्टं) साम । तां० १३ ।
११ । २३ ॥

अग्निष्टोमः द्वादशस्तोत्राण्यग्निष्टोमः । तां० ९ । १ । २४ ॥

” विराडा अग्निष्टोमः । कौ० १५ । ५ ॥

अग्निष्टा यजमानो वा ऽ अग्निष्टा । श० ३ । ७ । १ । १६ ॥

अग्निहोत्रम् अग्निहोत्रं वै दशहोतुर्निदानम् । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥

अग्नीषोमौ अग्नीषोमीयश्च हि पौर्णमासश्च हविर्भवति । श० १ । ८ ।
३ । २ ॥

- अङ्गानि अङ्गानि होत्रकाः । ऐ० ६ । ८ ॥ गो० उ० ५ । १४ ॥ -
 ,, अङ्गानि वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥
 ,, अङ्गानि होत्राशंसिनः । कौ० १७ । ७ ॥ २६ । ८ ॥ गो० उ०
 ५ । ४ ॥
 ,, अङ्गानि वै विश्वानि धामानि (यजु० ४ । ३४) । श० ३ ।
 ३ । ४ । १४ ॥
 ,, वैश्वदेवानि ह्यङ्गानि । ऐ० ३ । २ ॥

अङ्गिरसः द्वयो ह वा इदमग्रे प्रजा आसुः । आदित्याश्चैवाङ्गिरसश्च ।
श० ३ । ५ । १ । १३ ॥

- ,, आदित्याश्चाङ्गिरसश्चैतत् सत्रश्च समदधतादित्यानामेकविंशं
शतिरङ्गिरसां द्वादशाहः । तां० २४ । २ । २ ॥
 ,, ते हादित्याः पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मुः पश्चेवाङ्गिरसः षष्ट्यां वा
वर्षेषु । ऐ० ४ । १७ ॥
 ,, (आदित्याः) स्वर्गं लोकमायन्नहीयन्ताङ्गिरसः । तां० १६ ।
१२ । १ ॥
 ,, अन्वञ्च इवाङ्गिरसः सर्वैः स्तोमैः सर्वैः पृष्टैर्गुरुभिः सामभिः
स्वर्गं लोकमस्पृशन् । श० १२ । २ । २ । ११ ॥
 ,, अङ्गिरसः स्वर्गं लोकं यतो रक्षाश्च्यन्वसचन्त । तां० ८ ।
९ । ५ ॥
 ,, त एतेन सद्यः क्रियाङ्गिरस आदित्यानयाजयन् । श० ३ ।
५ । १ । १७ ॥
 ,, तान् हादित्यानङ्गिरसो याजयाञ्चक्रुः । गो० उ० ६ । १४ ॥
 ,, कर्णश्रवा एतदाङ्गिरसः पशुकामः (कार्णश्रवसं) सामा-
पश्यत्तेन सहस्रं पशून्सृजत । (अष्टौ चाङ्गिरसः पुत्रा
वारुणास्ते ऽप्युदाहृताः । बृहस्पतिरुत्थश्च पयस्यः शान्ति-
रेव च ॥ घोरो विरूपः संवर्तः सुधन्वा चाष्टमः स्मृतः ॥
इति महाभारते, उद्योगपर्व० ८५ । १३०-१३१ ॥) । तां० १३ ।
११ । १४ ॥
 ,, अङ्गिरसां वा एको ऽग्निः । ऐ० ६ । ३४ ॥

- अङ्गिरसः ते अङ्गिरस आदित्येभ्यः प्रजिध्युः श्वः सुत्यानो याजयत न इति तेषां हाग्निर्दृत आस त आदित्या ऊचुरथास्माकमद्य सुत्या तेषां नस्त्वमेव (अग्ने !) होतासि, बृहस्पतिर्ब्रह्माऽ-यास्य उद्गाता, घोर अङ्गिरसो ऽध्वर्युरिति । कौ० ३० । ६ ॥
- „ तेषां (अङ्गिरसां) कल्याण आङ्गिरसो ऽध्यायमुद्वजन् स ऊर्णायुङ्क्न्धर्मप्सरसाम्मध्ये प्रेङ्ख्यमाणमुपैत् । तां० १२ । ११ । १० ॥
- „ अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः... ..अभ्यषिञ्चन्.....पारमेष्ठयाय माहाराज्यायाऽऽधि-पत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ५ । १४ ॥
- „ सोमो वैष्णवो राजेत्याह तस्याप्सरसो विशस्ता इमा आसत इति युवतयः शोभना उपसमेता भवन्ति ता उपदिशत्य-ङ्गिरसो वेदः सोयमित्याङ्गिरसामेकं पर्व व्याचक्षाण इवानुद्र-वेत् (घोरं निगदेत्—शांखायनश्रौतसूत्रे १६ । २ । १२) । श० १३ । ४ । ३ । ८ ॥
- „ विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽङ्गिर आयुना नाम्नेहि (यजु० ५ । ६) इति । श० ३ । ५ । १ । ३२ ॥
- अज एकपाद् अजस्यैकपदः पूर्वे प्रोष्ठपदाः । तै० १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । २ । ८ ॥
- „ एकपदा ह भूत्वाजा उच्चक्रमुः । श० ८ । २ । ४ । १ ॥
- अजः गां चाजं च दक्षिणत एतस्यां तद्दिश्येतौ पशू दधाति तस्मादे-तस्यां दिश्येतौ पशू भूयिष्ठौ । श० ७ । ५ । २ । १६ ॥
- „ ताभ्यामेतत्रथा ह्यातिभ्यां वा सखिभ्यां वा सहागताभ्यां स-मानमोदनं पचेदजं वा । श० १ । ६ । ४ । ३ ॥
- „ ते (अजाः) सुश्रपतरा भवन्ति । श० ५ । ५ । ४ । १ ॥
- अजगरः अजगरं स्वप्नः (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥
- अजा सा (अजा) यत्त्रिः संवत्सरस्य विजायते तेन प्रजापतेर्वर्णः । श० ३ । ३ । ३ । ८ ॥
- „ उपांशुपात्रमेवान्वजाः प्रजायन्ते । श० ४ । ५ । ५ । २ ॥
- अजावयः तस्माद्दु सह सतो ऽजाविकस्योभयस्यैवाजाः पूर्वा यन्त्य-नूच्यो ऽवयः । श० ४ । ५ । ५ । ४ ॥

[अदितिः

(६५६)

अजावयः अजावी आलभते भूम्ने । तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥

„ अजाविकमेवोष्णिक् । कौ० ११ । २ ॥

अतिथिः तद्यथैवादो मनुष्यराज आगते ऽन्यस्मिन्वा ऽर्हत्युक्षणं वा-
वेहतं वा क्षदन्ते । ऐ० १ । १५ ॥

अतिरात्रः स कृत्स्नो विश्वजिद्यो ऽतिरात्रः । कौ० २५ । १४ ॥

अत्ता आदित्यो वाऽ अत्ता । तस्य चन्द्रमा एवाहितयः । श० १० । ६ ।
२ । ३ ॥

अथर्ववेदः वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विशस्तऽ इमऽ

आसतऽ इति युवानः शोभना उपसमेता भवन्ति तानुप-
दिशत्यथर्वाणो वेदः सो ऽयमित्यथर्वणामेकं पर्व व्याचक्षण

इवानुद्रवेत् (भेषजं निगदेत्-शाःङ्गायनश्रौतसूत्रे १६ । २ ।
९) । श० १३ । ४ । ३ । ७ ॥

„ ब्रह्मवेद (=अथर्ववेदः) एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

अथर्वा अथर्वा वै प्रजापतिः । गो० पू० १ । ४ ॥

अदाभ्यः (ग्रहः) वागेवादाभ्यः । श० ११ । ५ । ९ । १ ॥

„ प्राण एवा०शुरुदानो ऽदाभ्यश्चक्षुरेवा०शुः श्रोत्रमदाभ्यः
(ग्रहः) । श० ११ । ५ । ६ । २ ॥

अदितिः इयं (पृथिवी) वाऽ अदितिर्मही (यजु० ११ । ५६) । श०
६ । ५ । १ । १० ॥

„ इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिर्विश्वरूपी । तै० १ । ७ । ६ । ७ ॥

„ अदित्यै पुनर्वसू (नक्षत्रविशेषः) । तै० १ । ५ । १ । १ ॥

„ एवा न देव्यदितिरनर्वा । विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा ।
पुनर्वसू हविषा वर्धयन्ती । प्रियं देवानामप्येतु पाथः । तै० ३ ।
१ । १ । ४ ॥

„ अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्तत उच्छिष्टमाश्नात् सा गर्भ-
मधत्त तत आदित्या अजायन्त । गो० पू० २ । १५ ॥

„ अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत् । तस्या
उच्छेषणमददुः । तत्प्राश्नात् सा रेतो ऽधत्त । तस्यै धाता
चार्यमा चाजायेताम् । मित्रश्च वरुणश्चाजायेताम् ।
..... अंशश्च भगश्चाजायेताम् । इन्द्रश्च विव-
स्वांश्चाजायेताम् । तै० १ । १ । ९ । १-३ ॥

- अदितिः अथ यत् प्रायणीयेन यजन्ते । अदितिमेव देवतां यजन्ते ।
श० १२ । १ । ३ । २ ॥
- „ तस्मादादित्यश्चरुः प्रायणीयो भवत्यादित्य उदयनीयः । ऐ०
१ । ७ ॥
- „ ऊर्ध्वामेव दिशं अदित्या प्राजानन्नियं (पृथिवी) वाऽ अदि-
तिस्तस्मादस्यामूर्द्धा ओषधयो जायन्तऽ ऊर्ध्वा वनस्पतयः ।
श० ३ । २ । ३ । १६ ॥
- „ सा (अदितिः) ऊर्ध्वा दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥
- अग्निगुः अग्निगुश्चापापश्च । उभौ देवानां शमितारौ । तै० ३ । ६ ।
६ । ४ ॥
- अध्वर्युः अश्विनावध्वर्युः । ऐ० १ । १८ ॥ श० १ । १ । २ । १७ ॥
३ । ९ । ४ । ३ ॥ तै० ३ । २ । २ । १ ॥ गो० ३० २ । ६ ॥
- „ प्राणापानावेवाध्वर्युः । गो० पू० २ । १० ॥
- „ वायुर्वा अध्वर्युः । गो० पू० २ । २४ ॥
- „ वायुरध्वर्युः । गो० पू० १ । १३ ॥
- „ अध्वर्युरेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ तमेतमग्निरित्यध्वर्यव उपासते । यजुरिति । श० १० । ५ ।
२ । २० ॥
- „ प्रतीच्यध्वर्योः (दिक्) । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥
- „ पर्णमयेनाध्वर्युरभिषिञ्चति । तै० १ । ७ । ८ । ७ ॥
- अध्वा योजनशो हि मिमाना अध्वानं धावन्ति । श० ५ । १ । ५ । १७ ॥
- अनङ्गान् (=सूर्यः) इयेत इव ह्येष (सूर्यः) उद्यंश्चास्तं च यन्भवति
तस्माच्छयेतो ऽनङ्गान्दक्षिणा । श० ५ । ३ । १ । ७ ॥
- अनिरुक्तम् अनिरुक्तान्याज्यानि । श० १ । ६ । १ । २० ॥
- „ अनिरुक्तो वै प्रजापतिः । श० १ । ६ । १ । २० ॥
- „ अनिरुक्तो हि वायुः । श० ८ । ७ । ३ । १२ ॥
- अनुमतिः या द्यौः सा ऽनुमतिः सो एष गायत्री । ऐ० ३ । ४८ ॥
- अनुष्टुप् (छन्दः) आनुष्टुभो वै षोडशी । कौ० १७ । २ । ३ ॥
- „ आनुष्टुभो वा एष वज्रो यत्षोडशी । कौ० १७ । १ ॥
- „ विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिर-
स्वत् (यजु० ११ । ५८) । श० ६ । ५ । २ । ६ ॥

अनुष्टुप् विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा-
ङ्गिरस्वत् (यजु० ११ । ६०) । श० ६ । ५ । ३ । १० ॥

„ विश्वे त्वा देवा उत्तरतो ऽभिषिञ्चन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा ।
तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

„ उदीचीमारोह । अनुष्टुप्त्वावतु । श० ५ । ४ । १ । ६ ॥

„ वास्त्वनुष्टुप् । श० १ । ७ । ३ । १८ ॥

„ या कुङ्कः सानुष्टुप् । ऐ० ३ । ४७, ४८ ॥

„ पषा वै प्रत्यक्षमनुष्टुब्यद्यज्ञायज्ञीयम् (साम) । तां० १५ । ६ । १५ ॥

„ अनुष्टुब् वै परमा परावत् । ऐ० ३ । १५ ॥

„ अनुष्टुबेव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

अनूबन्ध्या मैत्रावरुणी वा अनूबन्ध्या । कौ० ४ । ४ ॥

अनूराधाः (नक्षत्रम्) अनूराधाः प्रथमम् । अपभरणीरुत्तमं तानि
यमनक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ७ ॥

अनृतम् अथ यो ऽनृतं वदति यथाग्निं० समिद्धं तमुदकेनाभिषिञ्चेदेव०
हैन० स जासयति तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति
श्वः श्वः पापीयान् भवति तस्माद्दु सत्यमेव वदेत् । श० २ ।
२ । २ । १९ ॥

„ अनृतं हि कृत्वा मेद्यति । श० २ । ४ । २ । ६ ॥

„ अनृतं स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत ।
श० १४ । १ । १ । ३१ ॥

अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षं गौः । ऐ० ४ । १५ ॥

„ घृतमन्तरिक्षस्य रूपम् । श० ७ । ५ । १ । ३ ॥

„ तद् (ब्रह्म) इदमन्तरिक्षम् । जै० उ० २ । ९ । ६ ॥

„ अन्तरिक्षं वै प्र, अन्तरिक्षं हीमानि सर्वाणि भूतान्यनु-
प्रयन्ति । ऐ० २ । ४१ ॥

„ अन्तरिक्षलोको वै प्रमा (यजु० १४ । १८) अन्तरिक्षलोको
ह्यस्माल्लोकात्प्रमित इव । श० ८ । ३ । ३ । ५ ॥

„ ‘ अन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृष्ट्वान्तरिक्षं मा हिंसीः’
(यजु० १४ । १२) इत्यात्मानं यच्छात्मानं दृष्ट्वान्तरिक्षं मा
हिंसीरित्येतस् (अन्तरिक्षम्=आत्मा) । श० ८ । ३ । १ । ९ ॥

„ इयं (पृथिवी) अन्तरिक्षम् (पृथिवी=अन्तरिक्षम्-वैदिक-
निघण्टौ १ । ३) । ऐ० ३ । ३१ ॥

- अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षमेव विश्वं वायुर्नरः । श० ९ । ३ । १ । ३ ॥
- „ अन्तरिक्षं विश्वव्यचाः । तै० ३ । २ । ३ । ७ ॥
- „ ‘अन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वताम्’ (यजु० १४ । १२) इत्यन्तरिक्षस्य ह्येतत्पृष्ठं व्यचस्वत्प्रथस्वत् । श० ८ । ३ । १ । ९ ॥
- „ अन्तरिक्षं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥
- „ अन्तरिक्षं वै नभाऽसि । तस्य रुद्रा अधिपतयः । तै० ३ । ८ । १८ । १ ॥
- „ अन्तरिक्षं पुरोधस्ता । ऐ० ८ । २७ ॥
- „ अन्तरिक्षं नाराशंसः । श० १ । ८ । १२ । १२ ॥
- „ अन्तरिक्षमाग्नीध्रम् । तै० २ । १ । ५ । १ ॥
- „ अन्तरिक्षं वाऽ आग्नीध्रम् । श० ९ । २ । ३ । १५ ॥
- „ अन्तरिक्षं वाऽ उपयमन्यन्तरिक्षेण हीदं सर्वमुपयतम् । श० १४ । २ । १ । १७ ॥
- „ अन्तरिक्षमुपभृत् । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ६ । ११ ॥
- „ अन्तरिक्षं वाऽ उलूखलम् । श० ७ । ५ । १ । २६ ॥
- „ अन्तरिक्षं ह्येष उद्धिः । श० ६ । ५ । २ । ४ ॥
- „ अथ यथा विद्धः शयित्वा जीवति वा स्त्रियते वा सा द्वि-
तीया (इषुः) तद्विदमन्तरिक्षं सैषा रुजा नाम (इषुः) ।
श० ५ । ३ । ५ । २६ ॥
- „ अन्तरिक्षस्य (रूपं) रजताः (सूच्यः) । तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥
(असुराः) रजतां (पुरीं) अन्तरिक्षे (चक्रिरे) ।
श० ३ । ४ । ४ । ३ ॥
- „ अन्तरिक्षमेवोपांशुसवनः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥
- „ अयमन्तरिक्षलोको निरुक्तः सन्ननिरुक्तः । श० ४ । ६ । ७ । १७ ॥
- „ मनोऽन्तरिक्षलोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥
- „ इयं (पृथिवी) वै वागदो (अन्तरिक्षम्) मनः । ऐ० ५ । ३३ ॥
- „ वागित्यन्तरिक्षम् । जै० ३० ४ । २२ । ११ ॥
- „ अन्तरिक्षं देवी । जै० ३० ३ । ४ । ८ ॥

- अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षं वै वरिवरुच्छन्दः (यजु० १५।४) । श० ८।५।
२।३॥
- ” अन्तरिक्षं वै विवधच्छन्दः (यजु० १५।५) । श० ८।
५।२।५॥
- ” अन्तरिक्षलोको महः । श० १२।३।४।७॥
- ” अन्तरिक्ष एव महः । गो० पू० ५।१५॥
- ” महद्वा अन्तरिक्षम् । ऐ० ५।१८, १९॥
- ” अन्तरिक्षं महाव्रतम् । श० १०।१।२।२॥
- ” अन्तरिक्षं वै तृतीया चितिः । श० ८।४।१।१॥
- ” अन्तरिक्षं वै मध्यमा चितिः । श० ८।७।२।१८॥
- ” अयं मध्यमो (लोकः=अन्तरिक्षं) बृहती । तां० ७।३।९॥
- ” अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ० ४।४॥
- ” अन्तरिक्षलोको वै माध्यन्दिनं सवनम् । श० १२।८।
२।९॥
- ” अन्तरिक्षप्रगाथः । जै० उ० ३।४।२॥
- ” अन्तरिक्षं वै वामदेव्यम् (साम) । तै० १।१।८।२॥
२।१।५।७॥ तां० १५।१२।५॥
- ” उपहृतं वामदेव्यं (साम) सहान्तरिक्षेण । श० १।८।
१।१९॥
- ” ये वधकास्ते अन्तरिक्षस्य रूपम् । श० ५।४।५।१४॥
- ” अन्तरिक्षदेव्यो हि सोमः । गो० उ० २।४॥
- ” वसुरन्तरिक्षसत् (यजु० १२।१४) । श० ५।४।३।२२॥
- ” उपस्यमन्वाह तदन्तरिक्षलोकमाप्नोति । कौ० ११।२।
१८।२॥
- ” (देवाः) अन्तरिक्षं दिङ्निधनेन (अभ्यजयन्) । तां० ।
१०।१२।३॥
- ” अथ यदन्तरिक्षे तत्सर्वमुपद्रवेणाम्प्रोति । जै० उ० १।३१।८॥
- ” अन्तरिक्षं सारस्वतेन (अवरुन्धे) । श० १२।८।२।३२॥
- ” अन्तरिक्षलोकं याज्यया (जयति) । श० १४।६।१।६॥
- ” (देवाः) अन्तरिक्षमुक्थेन (अभ्यजयन्) । तां० ९।२।९॥
- ” (देवाः) उक्थैरन्तरिक्षं (लोकमभ्यजयन्) । तां० २०।१।३॥

- अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षमुक्थ्येन (अभिजयति) । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥
- ” अन्तरिक्षं यजुषा (जयति) । श० ४ । ६ । ७ । २ ॥
- ” अन्तरिक्षलोको यजुर्वेदः । ष० १ । ५ ॥
- ” अन्तरिक्षं वै यजुषामायतनम् । गो० पू० २ । २४ ॥
- ” यजुषां वायुर्देवतां तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दोऽन्तरिक्षं स्थानम् । गो० पू० १ । २९ ॥
- ” अन्तरिक्षं त्रिष्टुप् । जै० उ० १ । ५५ । ३ ॥
- ” अन्तरिक्षमु वै त्रिष्टुप् । श० १ । ८ । २ । १२ ॥
- ” त्रैष्टुभमन्तरिक्षम् । श० ८ । ३ । ४ । ११ ॥
- ” त्रैष्टुभोऽन्तरिक्षलोकः । कौ० ८ । ९ ॥
- ” अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यकथंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा । श० १ । ९ । ३ । १० ॥
- ” (प्रजापतिः) भुव इत्येव यजुर्वेदस्य रसमादत्त । तदिदमन्तरिक्षमभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स वायुरभवद्रसस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ४ ॥
- ” अयमेवाकाशो जूः । यदिदमन्तरिक्षमेतच्छ्रुत्वाकाशमनु जघते तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षं च । श० १० । ३ । ५ । २ ॥
- ” भुवरिति यजुर्भ्योऽक्षरत् । सोऽन्तरिक्षलोकोऽभवत् । ष० १ । ५ ॥
- ” भुव इत्यन्तरिक्षलोकः । श० ८ । ७ । ४ । ५ ॥
- ” स भुव इति व्याहरत् । सोऽन्तरिक्षमसृजत । चातुर्मास्यानि सामानि । तै० २ । २ । ४ । २-३ ॥
- ” वायुरस्यन्तरिक्षे श्रितः । दिवः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ९ ॥
- ” द्यौरन्तरिक्षे प्रतिष्ठिता । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥
- ” स ह प्रजापतिरीक्षां चक्रे । कथं न्विमे (त्रयो) लोका भुवाः प्रतिष्ठिताः स्युरिति स एभिश्चैव पर्वतैर्नदीभिश्चेमाम् (पृथिवीम्) अदृष्ट्व्योभिश्च मरीचिभिश्चान्तरिक्षं जीमूतैश्च नक्षत्रैश्च दिवम् । श० ११ । ८ । १ । २ ॥
- ” वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः । तै० ३ । २ । १ । ३ ॥
- ” युक्तो वातोन्तरिक्षेण ते सह । तां १ । २ । १ ॥

- अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षं वै मातरिभ्वनो घर्मः । तै० ३ । २ । ३ । २ ॥
- „ अन्तरिक्षलोको वै मारुतो मरुतां गणः । श० ९ । ४ । २ । ६ ॥
- „ अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः । तै० ३ । २ । १ । ३ ॥
- अन्नम् अन्नं वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥
- „ अन्नं वाऽ अयं प्रजापतिः । श० ७ । १ । २ । ४ ॥
- „ यत्तदन्नमेष स विष्णुर्देवता । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥
- „ अन्नं वै व्यन्ने (वि, अन्ने) हीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि । श० १४ । ८ । १३ । ३ ॥
- „ अन्नं वै पूषा । कौ० १२ । ८ ॥ तै० १ । ७ । ३ । ६ ॥ ३ । ८ । २३ । २ ॥
- „ अन्नं वाजः । श० ५ । १ । १ । १६ ॥ ८ । १ । १ । ९ ॥
- „ अन्नं वै वाजः । तै० १ । ३ । ६ । २, ६ ॥ १ । ३ । ८ । ५ ॥ श० ५ । १ । ४ । ३ ॥ ६ । ३ । २ । ४ ॥
- „ अन्नं वै वाजाः (ऋ० ३ । २७ । १) । श० १ । ४ । १ । ९ ॥
- „ अन्नं वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥
- „ अन्नं नमः (यजु० ११ । ५) । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥
- „ अन्नं हि स्वाहाकारः । श० ६ । ६ । ३ । १७ ॥
- „ अन्नं वै स्वाहाकारः । श० ९ । १ । १ । १३ ॥
- „ अन्नं श्रुष्टिः (यजु० १२ । ६८) । श० ७ । २ । २ । ५ ॥
- „ अन्नं रश्मिः (यजु० १५ । ६) । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥
- „ अन्नं वै नृम्णम् । कौ० २७ । ४ ॥
- „ भर्गो देवस्य (ऋ० ३ । ६२ । १०) कवयो ऽन्नमाहुः । गो० पू० १ । ३२ ॥
- „ अन्नं वै भद्रम् (यजु० १९ । ११) । तै० १ । ३ । ३ । ६ ॥
- „ (=मेघः) मेघाय (यजु० १३ । ४७) इत्यन्नायेत्येतत् । श० ७ । ५ । २ । ३२ ॥
- „ अन्नं प्रेतिः (यजु० १५ । ६) । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥
- „ अन्नं वै पितुः (यजु० २ । २० ॥ १२ । ६५ ॥) । श० १ । ९ । ३ । २० ॥ ७ । २ । १ । १५ ॥

अन्नम् अथर्वं पितुं मे गोवायेत्याह । अन्नमेवैतेन स्पृणोति । तै० १ ।

१ । १० । ४ ॥

॥ अन्नं वै पितु । ऐ० १ । १३ ॥

॥ अन्नं वै देवाः पृश्नीति वदन्ति । तां० १२ । १० । २४ ॥

॥ अन्नं वै पृश्नि । तै० २ । २ । ६ । १ ॥ श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥

॥ अन्नं वै रूपम् । श० ६ । २ । १ । १२ ॥

॥ अन्नं वै सुरूपम् । कौ० १६ । ३ ॥

॥ अथ यत्कृ०णं तद्पां रूपमन्नस्य मनसा यजुषः । जै० उ० १ ।

२५ । ९ ॥

॥ अन्नं वै वयश्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ६ ॥

॥ अन्नं वै गिरश्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

॥ अन्नं प्रच्छच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

॥ अन्नं केतः । श० ६ । ३ । १ । १९ ॥

॥ अन्नं पुरीषम् । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥ ८ । ७ । ३ । २ ॥

॥ अन्नं वै पुरीषम् । श० ८ । ५ । ४ । ४ ॥ ८ । ६ । १ । २१ ॥

१४ । ३ । १ । २३ ॥

॥ अन्नं वै कम् । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० उ० ६ । ३ ॥

॥ तदन्नं वै विश्वम्प्राणो मित्रम् । जै० उ० ३ । ३ । ६ ॥

॥ अन्नं व्रतम् । तां० २३ । २७ । २ ॥

॥ अन्नं हि व्रतम् । श० ६ । ६ । ४ । ५ ॥

॥ अन्नं वै व्रतम् । तां० २२ । ४ । ५ ॥ श० ७ । ५ । १ । २५ ॥

॥ अन्नं भुजिष्याः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

॥ अन्नं हि गौः । श० ४ । ३ । ४ । २५ ॥ जै० उ० ३ । ३ । १३ ॥

॥ अन्नं वै गौः । तै० ३ । ९ । ८ । ३ ॥

॥ अन्नं पदावः । श० ६ । २ । १ । १५ ॥ ७ । ५ । २ । ४२ ॥

॥ आपो वै सूदो ऽन्नं दोहः । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥

॥ अन्नं सोमः । कौ० ९ । ६ ॥ श० ३ । ३ । ४ । २८ ॥ तां० ६ ।

६ । १ ॥

॥ अन्नं वै सोमः । श० ३ । ९ । १ । ८ ॥ ७ । २ । २ । ११ ॥

॥ एतन्नै परममन्नाद्यं यत्सोमः । कौ० १३ । ७ ॥

- अन्नम् यश उ वै सोमो राजान्नाद्यम् । कौ० ९ । ६ ॥
- ” एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः । श० १ । ६ । ४ ।
५ ॥ २ । ४ । २ । ७ ॥ ११ । १ । ४ । ४ ॥
- ” अन्नं सुरा । तै० १ । ३ । ३ । ५ ॥
- ” अन्नं विशः । श० २ । १ । ३ । ५ ॥
- ” अन्नं वै विशः । श० ४ । ३ । ३ । १२ ॥ ५ । १ । ३ । ३ ॥ ६ ।
७ । ३ । ७ ॥
- ” अन्नं वै श्रीर्विराट् । गो० पू० ५ । ४ ॥ गो० उ० १ । १९ ॥
- ” श्रीर्विराडन्नाद्यम् । कौ० १ । १ ॥ २ । ३ ॥ १२ । २ ॥
- ” श्रीर्वै विराड् यशोऽन्नाद्यम् । गो० पू० ५ । २० ॥ गो० उ० ६ । १ ॥
- ” विराडन्नाद्यम् । ऐ० ४ । १६ ॥ ५ । ४ ॥
- ” एतद्वै कृत्स्नमन्नाद्यं यद्विराट् । कौ० १४ । २ ॥
- ” अन्नं विराट् । कौ० ९ । ६ ॥ १२ । ३ ॥ तै० १ । ६ । ३ । ४ ॥
१ । ८ । २ । २ ॥ तां० ४ । ८ । ४ ॥
- ” अन्नं विराट् तस्माद्यस्यैवेह भूयिष्ठमन्नं भवति स एव भूयिष्ठं
लोके विराजति तद्विराजो विरादत्वम् । ऐ० १ । ५ ॥
- ” अन्नं वै विराट् । ऐ० १ । ५ ॥ ४ । ११ ॥ ५ । १९ ॥ ६ । २० ॥
श० ७ । ५ । २ । १९ ॥
- ” अन्नं वै पङ्क्तिः । गो० उ० ६ । २ ॥
- ” पङ्क्तिर्वा अन्नम् । ऐ० ६ । २० ॥
- ” पाङ्क्तमन्नम् । तां० १२ । १ । ९ ॥
- ” पाङ्क्तं (=पञ्चविधम्) ह्यन्नम् (अन्नं खाद्यं चोष्यं लेह्यं
पेयमिति सायणः) । तां० ५ । २ । ७ ॥
- ” अन्नं वा इडा । ऐ० ८ । २६ ॥ कौ० ३ । ७ ॥
- ” अन्नं वा आपः । श० २ । १ । १ । ३ ॥ ७ । ४ । २ । ३७ ॥ ८ ।
२ । ३ । ६ ॥ तै० ३ । ५ । २ । १ ॥ ३ । ८ । १७ । ५ ॥
- ” अन्नं वृष्टिः । गो० पू० ४ । ४ । ५ ॥
- ” सप्तदशं ह्यन्नम् । श० ५ । ४ । ४ । ७ ॥
- ” अन्नं वै सप्तदशः । तां० २ । ७ । ७ ॥ १७ । ६ । २ ॥ १९ ।
११ । ४ ॥ २० । १० । १ ॥ ५५ । ६ । ३ ॥

- अन्नम् अन्नं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥
- „ अन्नं वै स्वयमातृणा (इष्टका) । श० ७ । ४ । २ । १ ॥
- „ अन्नं^३ समिष्टयजुः । श० ११ । २ । ७ । ३० ॥
- „ अन्नं वै यजुष्मत्य इष्टकाः । श० ८ । ७ । २ । ८ ॥
- „ अन्नमेव यजुः । श० १० । ३ । ५ । ६ ॥
- „ अन्नं याज्या । कौ० १५ । ३ ॥ १६ । ४ ॥ गो० उ० ३ । २१ ॥
- „ अन्नं वै याज्या । गो० उ० ३ । २२ ॥ ६ । ८ ॥
- „ अथो अन्नं निविद इत्याहुः । कौ० १५ । ३, ४ ॥
- „ अन्नमुक्थानि । कौ० ११ । ८ ॥ १७ । ७ ॥
- „ अन्नं वा उक्थ्यम् । गो० पू० ४ । २० ॥
- „ अन्नं वाऽ उक्थ्यः । श० १२ । २ । २ । ७ ॥
- „ अन्नं वै स्तोमाः । श० ६ । ३ । ३ । ६ ॥
- „ अन्नं पृष्ठानि । तां० १६ । ९ । ४ ॥
- „ अन्नं न्यूहः । कौ० १२ । ६, ८ ॥ २५ । १३ ॥ ३० । ५ ॥
- „ अन्नं वै न्यूहः । ऐ० ५ । ३ ॥ ६ । २९, ३०, ३६ ॥ गो० उ० ६ । ८, १२ ॥
- „ तस्मादाहुः सामैवान्नमिति । सा० १ । १ । ३ ॥
- „ साम देवानामन्नम् । तां० ६ । ४ । १३ ॥
- „ सो (प्रजापतिः)ऽब्रवीदेकं वावेदमन्नाद्यमसृक्षि सामैव । जै० उ० १ । ११ । ३ ॥
- „ एतद्वै साक्षादन्नं यद्राजनं (साम), पञ्चविधं भवति पाद्कं ह्यन्नम् । तां० ५ । २ । ७ ॥
- „ अन्नं वै रथन्तरम् । ऐ० ८ । १ ॥
- „ अन्नं वै मरुतः । तै० १ । ७ । ३ । ५ ॥ १ । ७ । ५ । २ ॥ १ । ७ । ७ । ३ ॥
- „ अन्नं वै गार्हपत्यः । श० ८ । ६ । ३ । ५ ॥
- „ एते हि साक्षादन्नं यदूषाः । तै० १ । ३ । ७ । ६ ॥
- „ अन्नं वाऽ ऊर्गुदुम्बरः । श० ३ । २ । १ । ३३ ॥ ३ । ३ । ४ । १७ ॥
- „ अन्नं^३ सम्मार्जनानि । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥
- „ नाभिदघ्ना (आसन्दी) भवति । अत्र (नाभिप्रदेशे) वाऽ अन्नं प्रतितिष्ठतिअत्रोऽप्य रेतस आशयः । श० ३ । ३ । ४ । २५ ॥

[अणुः

(६६६)

अक्षम् वरुणो ऽक्षपतिः । श० १२ । ७ । २ । २० ॥

„ तपो मे तेजो मे ऽक्षम्मे वाङ् मे । तन्मे त्वयि (अग्नौ) । जै०
उ० ३ । २० । १६ ॥

अक्षादः प्रजापतिर्वै देवानामक्षादो वीर्यवान् । तै० ३ । ८ । ७ । १ ॥

„ स यो हैवमेतं वृत्रमन्नादं वेदान्नादो हैव भवति । श० १ । ६ ।
३ । १७ ॥

अक्षाद्यम् औदुम्बरं (यूषम्) अन्नाद्यकामस्य । ष० ४ । ४ ॥

„ सर्वे (प्रैषाः) सारस्वता अन्नाद्यस्यैवावरुद्ध्यै । श० १२ ।
८ । २ । १६ ॥

अन्वाहार्यपचनः (अग्निः) अथैष एव नडो नैषिधो यदन्वाहार्यपचनः ।
श० २ । ३ । २ । २ ॥

अपभरण्यः (नक्षत्रम्) अनूराधाः प्रथमम् । अपभरणीरुत्तमं तानि
यमनक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ७ ॥

अपराङ्कः अपराङ्कः प्रतिहारः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥

अपानः अपानो वरुणः (यजु० १४ । २४) । श० ८ । ४ । २ । ६ ॥
१२ । ९ । २ । १२ ॥

„ वरुणस्य सायम् (कालः) आसवो ऽपानः । तै० १ । ५ ।
३ । १ ॥

„ अपानः प्रस्तोता । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

„ अपानस्त्रिष्टुप् । तां० ७ । ३ । ८ ॥

„ अपानो रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १४, १७ ॥

„ अपानो याज्या । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥

„ प्रत्यञ्चो ऽनुयाजाः (ह्यन्ते) तदपानरूपम् । श० ११ ।
२ । ७ । २७ ॥

„ अपानो वै यन्ता (ऋ० ३ । १३ । ३) ऽपानेन ह्ययं यतः
प्राणो न पराङ्क भवति । ऐ० २ । ४० ॥

अपापः अधिगुश्चापापश्च । उभौ देवानां शमितारौ । तै० ३ । ६ ।
६ । ४ ॥

अपोनहा वज्रस्तेन यदपोनः प्रीया (ऋ०) । ऐ० २ । १६ ॥

अणुः प्रजां वा अणुरित्याहुः । गो० उ० ५ । ९ ॥

असौर्यामा प्रजा वा अप्नुरित्याहुः । प्रजानां यमन इति । गो० उ०

१ । ९ ॥

अक्षराः गन्धेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरसश्चरन्ति । श० ६ । ४ ।

१ । ४ ॥

अभीशुः अभीशवो वै रश्मयः । श० ५ । ४ । ३ । १४ ॥

अभ्रम् अभ्रमेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥

अमावास्या चन्द्रमा वा अमावास्यायामादित्यमनुप्रावेशति । ऐ० ८ । २८ ॥

„ अथैतदेव वृषहृत्यं यदामावास्यं (हविः) वृषं ह्यस्माऽ
पतज्जप्नुषऽ आप्यायनमकुर्वन् । श० १ । ६ । ४ । १२ ॥

„ आमावास्यं वै सान्नाय्यम् । श० २ । ४ । ४ । १५ ॥

„ अमावास्या वै सरस्वती । गो० उ० १ । १२ ॥

„ तस्मादमावास्यायां नाध्येतव्यं भवति । ष० ४ । ६ ॥

अमृतः अमृता देवाः । श० २ । १ । ३ । ४ ॥

अमृतम् अमृतं वाऽ आपः । श० १ । ६ । ३ । ७ । ४ । ४ । ३ । १५ ॥

„ तद्यत्तदमृतं सोमः सः । श० ६ । ५ । १ । ८ ॥

„ अमृतं वै हिरण्यम् (यजु० १८ । ५२) । श० ९ । ४ । ४ ।
५ ॥ तै० १ । ३ । ७ । ७ ॥

„ अमृतं हिरण्यम् । श० १० । ४ । १ । ६ ॥ तां० ९ । ९ । ४ ॥

„ (यजु० १ । ३१) तेजो ऽसि शुक्रमस्यमृतमसि (आज्य !) ।
श० १ । ३ । १ । २८ ॥

„ प्राणो ऽमृतम् । श० १० । २ । ६ । १८ ॥

„ अमृतमु वै प्राणाः । श० ९ । १ । २ । ३२ ॥

„ सदमृतम् । श० १४ । ४ । १ । ३१ ॥

„ अथ यद् ब्रह्म तदमृतम् । जै० उ० १ । २५ । १० ॥

„ अमृतं वा ऋक् । कौ० ७ । १० ॥

„ अमृतं वै रुक् (= दीप्तिः) । श० ७ । ४ । २ । २१ ॥

„ अमृतत्वं वै रुक् (यजु० १८ । ४८) । श० ९ । ४ । २ । १४ ॥

„ अमृतमेव सप्तमी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १८ ॥

„ अमृतमिव हि स्वर्गो लोकः । तै० १ । ३ । ७ । ५ ॥

„ किं नु ते ऽस्मासु (देवेषु) इति ॥ अमृतमिति । जै० उ० ३ ।
२६ । ५ ॥

[अग्निः

(६६८)

अग्नेभ्यम् तद्यदग्नेभ्यम् रिप्रं तत् । श० ३ । १ । २ । ११ ॥

अग्निवका अग्निवका ह वै नामास्य (रुद्रस्य) स्वसा । श० २ । ६ ।
२ । ९ ॥

„ (मैत्रायणीसंहितायाम् १ । १० । २०:—शरद्वै रुद्रस्य योनिः
स्वसाग्निवका..... अग्नी वै स्त्री भगनास्त्री तस्मात्स्व-
म्बकाः ॥ काठकसंहितायाम् ३६ । १४:—शरद्वै रुद्रस्य
स्वसाग्निवका..... अग्नी वै स्त्री भगानास्त्री तस्मात्स्व-
म्बकाः ॥)

अग्भृणः (पान्नविशेषः) वैश्वदेवौ वाऽ अग्भृणावतो हि देवेभ्य उन्नयन्त्य-
तो मनुष्येभ्यो ऽतः पितृभ्यः । श० ४ । ५ । ६ । ३ ॥

अयः (प्रजापतिः) अयसो हिरण्यं (असृजत) तस्माद्यो बहु-
ध्मातश्चि हिरण्यसंकाशमिवैव भवति । श० ६ । १ । ३ । ५ ।

अयनम् इयं (पृथिवी) वाऽ अपामयनमस्याश्चि ह्यापो यन्ति । श० ७ ।
५ । २ । ५० ॥

अयास्यः (आङ्गिरसः) अयास्य उद्गाता । ऐ० ७ । १६ ॥

„ ते ऽङ्गिरस आदित्येभ्यः प्रजिष्युः श्वः सुत्या नो याजयत न
इति तेषां हाग्निर्दूत आस त आदित्या ऊचुरथास्माकमद्य
सुत्या तेषां नस्त्वमेव (अग्ने) होतासि बृहस्पतिर्ब्रह्मा ऽया-
स्य उद्गाता घोर आङ्गिरसो ऽध्वर्युरिति । कौ० ३० । ६ ॥

„ अयास्येनाऽऽङ्गिरसेन (उद्गात्रा दक्षामहा इति) मनुष्या
उत्तरतः (आगच्छन्) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥

अर्कः अस्य (अग्नेः) एवैतानि (घर्मः, अर्क, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः)
नामानि । श० ९ । ४ । २ । २५ ॥

„ एतस्य वै देवस्य (रुद्रस्य) आशयादर्कः समभवत्स्वेनैवैनम्
(रुद्रम्) एतद्भ्रगेन स्वेन रसेन प्रीणाति (यज्ञमानः) । श०
९ । १ । १ । ६ ॥

अग्निः अजज्ञेण भानुना दीद्यतमित्यजज्ञेणार्चिषा दीप्यमानामित्येतत् ।
श० ६ । ४ । १ । २ ॥

„ “परिबृङ्गिष्व हरसा माभिमश्चिस्थाः” (यजु० १३ । ४१) इति
पर्येनं बृहन्ध्यर्चिषा मैनम् हिश्चिरीरित्येतत् (हरः=अग्निः) ।
श० ७ । ५ । २ । १७ ॥

- अधिः (शोचीषि=अचीषि) “ऊर्ध्वा शुक्रा शोचीऽप्यग्नेः” (यजु०
२७।११) इत्यूर्ध्वानि होतस्य (अग्नेः) शुक्राणि शोचीऽप्यची-
ऽषि भवन्ति । श० ६।२।१।३२ ॥
- अर्जुन्यः (नक्षत्रम्) अर्जुन्यो वै नामैतास्ता एतत्परोऽक्षमाचक्षते
फलगुन्य इति । श० २।१।२।११ ॥
- अर्द्धमासः अर्द्धमासौ (=शुक्लकृष्णपक्षौ) वै मित्रावरुणौ । तां० २५।
१०।१० ॥
- “ अथैतावेवार्द्धमासौ मित्रावरुणौ य एवापूर्यते स वरुणो
यो ऽपक्षीयते स मित्रः । श० २।४।४।१८ ॥
- “ अर्द्धमासा उपसदः । श० १०।२।५।५ ॥
- “ अर्द्धमासाः प्रस्तावः । ष० ३।१ ॥
- “ अर्द्धमासः पञ्चदशः । तां० ६।२।२ ॥
- “ अर्द्धमास एव पञ्चदशस्यायतनम् । तां० १०।१।४ ॥
- “ अर्द्धमासा हविष्पात्राणि । श० ११।२।७।४ ॥
- “ अर्द्धमासा हविष्मन्तः । गो० पू० ५।२३ ॥
- “ अर्द्धमासशो हि प्रजाः पशव ओजो बलं पुष्यन्ति । तां०
१०।१।६ ॥
- अर्बुदः अर्बुदः काद्रवेयो राजेत्याह तस्य सर्पा विशः.....सर्प-
विद्या वेदः.....सर्पविद्याया एकं पर्वं व्याचक्षाण इवानु-
द्रवेत् । श० १३।४।३।९ ॥
- अर्च्यमा अर्च्यमा सप्तहोतृणाऽं होता । तै० २।३।५।६ ॥
- “ अर्च्यणो वा एतन्नक्षत्रं यत्पूर्वं फल्गुनी । तै० १।१।२।
४ ॥ १।५।१।२ ॥ ३।१।१।८ ॥
- अधिः अविर्मल्हा (=“गलस्तनयुता” इति सायणः) सारस्वती । श०
५।५।४।१ ॥
- “ अश्वं चार्धि चोत्तरत एतस्यां तद्दिश्येतौ पशू दधाति तस्मा
देतस्यां दिश्येतौ पशू भूयिष्ठौ । श० ७।५।२।१५ ॥
- “ अजावी आलभते भूमने । तै० ३।९।८।३ ॥
- “ तस्मादु सह सतो ऽजाविकस्योभयस्यैवाजाः पूर्वा यन्त्यनूच्यो
ऽवयः । श० ४।५।५।४ ॥

- शानम् (प्रजापतिः) तान् (मनुष्यान्) अब्रवीत् सायम्प्रातर्वो ऽशनं
 प्रजा वो मृत्युर्वो ऽग्निर्वो ज्यातिरिति । श० २ । ४ । २ । ३ ॥
- „ स यो ह वै विद्वान् सायम्प्रातराशी भवति सर्वथै, ह वैवायुरेति ।
 श० २ । ४ । २ । ६ ॥
- „ द्विरहो मनुष्येभ्य उपह्वियते प्रातश्च सायञ्च । तै० १ । ४ । १२ ॥
- „ तस्मै (वृत्राय) ह स्म पूर्वाह्णे देवा अशनमभिहरन्ति मध्य-
 न्दिने मनुष्याऽपराह्णे पितरः । श० २ । ६ । ३ । १२ ॥
- तानाया एको वा अमुष्मिंल्लोके मृत्युः । अशन्या मृत्युरेव । तै० ३ ।
 ९ । १५ । १-२ ॥
- „ अशनाया हि मृत्युः । श० १० । ६ । ५ । १ ॥
- तानिः कतमस्तनयित्नु रित्यशानेरिति । श० ११ । ६ । ३ । ६ ॥
- „ एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः,
 महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श०
 ६ । १ । ३ । १८ ॥
- मा तस्य (वृत्रस्य) एतच्छरीरं यद्विद्यो यदश्मानः । श० ३ । ४ ।
 ३ । १३ ॥ ३ । ९ । ४ । २ ॥ ४ । २ । ५ । १५ ॥
- वः ययुर्नामासीत्याह । एतद्वा अश्वस्य प्रियं नामधेयम् । तै० ३ ।
 ८ । ९ । २ ॥
- अश्वो वै बृहद्रथः । तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥ श० १३ । २ । ६ । १५ ॥
- (हे ऽश्व त्वं) हयो ऽसि । तां० १ । ७ । १ ॥
- (हे ऽश्व त्वं) सप्तिरसि । तां० १ । ७ । १ ॥
- (हे ऽश्व त्वं) वृषासि । तां० १ । ७ । १ ॥
- वाजिनो ह्यशवाः । श० ५ । १ । ४ । १५ ॥
- (अश्वो) वाजी (भूत्वा) गन्धर्वान् (अवहत्) । श० १० । ६ ।
 ४ । १ ॥
- (हे ऽश्व त्वं) वाज्यसि । तां० १ । ७ । १ ॥
- ते (आदित्याः) अबुवन । यम् (अश्वम्) नोऽनेष्ट । सवर्षो
 ऽभूदिति । तस्मादश्वथैः सवर्षेत्याह्वयन्ति । तै० ३ । ९ । २१ । १ ॥
- समुद्र एवास्य (अश्वस्य मेध्यस्य) बन्धुः समुद्रो योनिः (इन्द्रा-
 श्वस्योच्चैःश्रवसः क्षीरसागरादुत्पत्तिः—महाभारत आदिप-
 र्वणि, १८ । ३७) । श० १० । ६ । ४ । १ ॥

अश्वः न वै मनुष्यः स्वर्गं लोकमञ्जसा वेदाश्वो वै स्वर्गं लोकमञ्जसा
वेद । श० १३ । २ । ३ । १ ॥

„ तस्य (अश्वस्य श्वेतस्य) रुक्मः पुरस्ताद्भवति । तदेतस्य रूपं
क्रियते य एष (आदित्यः) तपति । श० ३ । ५ । १ । २० ॥

„ जागतो ऽश्वः प्राजापत्यः । तै० ३ । ८ । ८ । ४ ॥

„ (प्राजापतिः) वारुणमश्वं (आलिप्तत) । श० ६ । २ । १ । ५ ॥

„ स हि वारुणो यदश्वः । श० ५ । ३ । १ । ५ ॥

„ सोमो वै वृष्णो अश्वस्य रेतः । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥

„ अश्वस्य वा आलब्धस्य रेत उदकामत् । तत्सुवर्णं हि रण्यम-
भवत् । तै० ३ । ८ । २ । ४ ॥ श० १३ । १ । १ । ३ ॥

„ अश्वमालभते श्रीर्वा एकशफम् । श्रियमेवावरुन्धे । तै०
३ । ९ । ९ । २ ॥

„ अश्वं चार्विं चोत्तरतः, एतस्यां तद्दिश्येतौ पशू दधाति तस्मा-
देतस्यां दिश्येतौ पशू भूयिष्ठौ । श० ७ । ५ । २ । १५ ॥

अश्वमेधः प्राजापतिरश्वमेधः । श० १३ । २ । २ । १३ ॥ १३ । ४ ।
१ । १५ ॥

„ अग्निर्वा अश्वमेधस्य योनिरायतनम् । तै० ३ । ९ । २१ । २ । ३ ॥

„ सो ऽश्वमेधेनेष्ट्वा स्वराडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥

„ सर्वस्थेष न वेद यो ब्राह्मणः सन्नश्वमेधस्य न वेत्, सो
ऽब्राह्मणः । श० १३ । ४ । २ । १७ ॥

अश्विनौ युव० सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा विपिपाना शुभ-
स्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् (ऋ० १० । १३१ । ४ ॥ यजु० १० ।
३३ ॥) इत्याश्रान्याहाश्विनौ सरस्वतीमिन्द्र० सत्रामाणं
यजेति । श० ५ । ५ । ४ । २५ ॥

„ आश्विनं धूम्रमालभते । तै० १ । ८ । ५ । ६ ॥

„ लोहितः (अजः) आश्विनो भवति । श० ५ । ५ । ४ । १ ॥

„ सर्वे (प्रैषाः) आश्विना भवन्ति । भैषज्याय । श० १२ । ८ ।
२ । १६ ॥

„ “नमुचि”शब्दमपि पश्यत ॥

अष्ट अष्टुरात्रेण वै वेषाः सर्वमाशुवत् । तां० २२ । ११३ । ६ ॥

- अष्टका संवत्सरस्य प्रतिमां यां (एकाष्टकारूपां) त्वा रात्रि यजामहे ।
मं० २ । २ । १८ ॥
- „ एषा वै संवत्सरस्य पत्नी यदेकाष्टका । तां० ५ । ९ । २ ॥
- „ संवत्सरस्य या पत्नी (एकाष्टकारूपा) सा नो अस्तु सुमङ्गली ।
(अथर्व० ३ । १० । २) । मं० २ । २ । १६ ॥
- अष्टरात्रः एतेन वै अष्टरात्रेण देवा देवत्वमगच्छन् देवत्वं गच्छति
य एवं वेद । तां० २२ । ११ । २—३ ॥
- असत् असद्वाऽ इदमग्रऽ आसीत् । श० ६ । १ । १ । १ ॥
- „ इदं वा अग्रे नैव किञ्चनासीत् । न द्यौरासीत् । न पृथिवी ।
नान्तरिक्षम् । तदसदेव सन्मनो ऽकुरुत स्यामिति । तै० २ । २ ।
६ । १ ॥
- असमरथः (यजु० १५ । १७) तस्य (आदित्यस्य) रथप्रोतश्चासमर-
थश्च सेनानीग्रामण्याविति वार्षिकौ तावुत् । श० ८ । ६ ।
१ । १८ ॥
- असिः असिं वै शास इत्याचक्षते । श० ३ । ८ । १ । ४ ॥
- असितः असितो धान्वो राजेत्याह तस्यासुरा विशः । श० १३ । ४ ।
३ । ११ ॥
- असुरः उभये वा एते प्रजापतेरभ्यसृजन्त । देवाश्चासुराश्च । तै० १ ।
४ । १ । १ ॥
- „ सः (प्रजापतिः) अकामयत प्रजायेयेति । स तपो ऽत-
प्यत । सो ऽन्तर्वानभवत् । स जघनादसुरानसृजत स
मुखाद्देवानसृजत । तै० २ । २ । ६ । ५—८ ॥
- „ स (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत तस्मै स-
सृजानाय दिवेवास । अथ यो ऽयमवाङ् प्राणः, तेनासु-
रानसृजत । तस्मै ससृजानाय तम इवास । श० ११ ।
१ । ६ । ७—८ ॥
- „ ते देवाश्चक्रमचरञ्छालम् (=चक्रव्यतिरिक्तं साधनमिति सा-
यणः) असुरा आसन् । श० ६ । ८ । १ । १ ॥
- „ ते देवाः प्रजापतिमेवाभ्ययजन्त । अन्योऽन्यस्यासन्नसुरा
असृष्टुः । प्रजापतिर्देवानुपावर्तत । गो० ३० । १ । ७ ॥

असुरः एकाक्षरं वै देवानामवमं छन्द आसीत्सताक्षरं परमन्नवाक्षर-
मसुराणामवमं छन्द आसीत् पञ्चदशाक्षरं परमम् । तां० १२।
१३। २७ ॥

” ते ऽसुरा ऊर्ध्वं पृष्ठेभ्यो ना ऽपश्यन् । ते केशानग्रे ऽवपन्त ।
अथ इमधूणि । अथोपपक्षौ । ततस्ते ऽवाञ्च आयन् । परा-
भवन् । यस्यैवं वपन्ति । अवाङ्केति । अथो परैव भवति । तै०
१। ५। ६। १-२ ॥

” यज्ञो ऽसुरेषु विदद्वसुः । तां० ८। ३। ३ ॥

” ततो ऽसुरा उभयीरोषधीर्याञ्च मनुष्या उपजीवन्ति याञ्च
पशवः कृत्ययेव त्वद्विषेणेव त्वत्प्रलिलिगुरुतैवं चिद्देवानभि-
भवेमेति ततो न मनुष्या आशुर्न पशव आलिलिशिरे ता हेमाः
प्रजा अनाशकेनोत्पराबभूवुः ते (देवाः) होसुर्हन्ते-
दमासामपजिघांसामेति केनेति यज्ञेनैवेति । श० २। ४। ३।
२-३ ॥

” ते वा असुरा इमानेव लोकन्पुरो ऽकुर्वन्त । ऐ० १। २३ ॥

” असुराणां वा इयं (पृथिवी) अग्र आसीत् । तै० ३। २। ९। ६ ॥

” अर्वाग्वसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा पराग्वसुरसुराणाम् । गो० उ०
१। १ ॥

” परावसुर्ह वै नामासुराणाञ्छ होता । श० १। ५। १। २३ ॥

” उशाना वै काव्यो ऽसुराणां पुरोहित आसीत् । तां० ७। ५। २० ॥

असृक् रक्षसां भागो ऽसि (यजु० ६। १६) इति रक्षसाञ्छ ह्येष भागो
यदसृक् । श० ३। ८। २। १४ ॥

” स यदञ्जा रक्षः संसृजतादित्याह रक्षांस्येव तत्स्वेन भागधेयेन
(असृप्रूषेण) यज्ञाञ्जिरवद्यते । ऐ० २। ७ ॥

अस्थि अस्थीनि वै समिधः । श० ६। २। ३। ४६ ॥

” अस्थीष्टकाः । श० ८। १। ४। ५ ॥ ८। ७। ४। १६ ॥

” अस्थि प्रतिहारः । जै० उ० १। ३६। ६ ॥

अहः अहर्मिन्नः । तां० २५। १०। १० ॥

” अहवै मिन्नः । ऐ० ४। १० ॥

” अहरेव सविता । गो० पू० १। ३३ ॥

” यज्ञो वै स्वः (यजु० १। ११) अहर्देवाः सूर्यः । श० १। १। २। २ ॥

- महः अहः स्वर्गः । श० १३ । २ । १ । ६ ॥
- „ अहर्वै स्वर्गो लोकः । ऐ० ५ । २४ ॥
- „ अग्निर्वाऽ अहः सोमो रात्रिः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥
- „ यजुःमत्यः (इष्टकाः) ज्योतिस्तद्धथद्वार्थं रूपम् । श० १० । २ । ६ । १७ ॥
- „ अहर्वै पान्तम् (ऋ० ८ । ९२ । १ ॥) । तां० २ । १ । ७ ॥
- „ अहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः । कौ० २ । ९ ॥
- „ अहर्वृष्टिः । तै० ३ । ८ । १६ । ४ ॥
- „ अहर्वै वियच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥
- „ सद्महः (सद्मः=ऋतुविशेषः, तैत्तिरीयसंहितायाम् ४ । ४ । ७ । २ ॥ ५ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्ये ऽपि) । श० १ । ७ । २ । २६ ॥
- „ (पूर्वपक्षापरपक्षयोः) यान्यहानि ते मधुवृषाः । तै० ३ । १० । १० । १ ॥
- „ अहर्वै विष्णुक्रमाः । श० ६ । ७ । ४ । १२ ॥
- „ ब्रह्मणो वाऽ एतद्रूपं यदहः । श० १३ । १ । ५ । ४ ॥
- „ ब्रह्मणो वै रूपमहः क्षत्रस्य रात्रिः । तै० ३ । ६ । १४ । ३ ॥
- „ अहर्बाहृतम् । ऐ० ५ । ३० ॥
- अहिः अथ (वृत्रः) यदपात्समभवत्तस्मादहिस्तं दनुश्च दनायुश्च मातेव च पितेव च परिजगृहतुस्तस्मादानव इत्याहुः । श० १ । ६ । ३ । ९ ॥
- अहिर्बुध्न्यः अहिर्बुध्नियस्योत्तरे (प्रोष्ठपदाः) । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥
- अहोरात्रे अहोरात्रे वा उषासानक्ता । ऐ० २ । ४ ॥
- „ अहोरात्रे वै नक्तोषासा (यजु० १२ । २ ॥) । श० ६ । ७ । २ । ३ ॥
- „ अहोरात्रे वै गोआयुषी । कौ० २६ । २ ॥
- „ अहोरात्रे वै नृवाहसा । तै० ३ । ६ । ४ । ३ ॥
- „ (आदित्यस्य) प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ (यजु० १५ । १७) इति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिरहो-
रात्रे तु ते, ते हि प्र च म्लोचतो ऽनु च म्लोचतः । श० ८ । ६ । १ । १८ ॥

- अहोरात्रे तद्वाऽअहोरात्रेऽएवं विष्णुक्रमा भवन्ति । श० ६ । ७ ।
 ४ । १० ॥
- ” अहोरात्रे वात्सप्रम् (सूक्तम्) ।। श० ६ । ७ । ४ । १० ॥
- ” यौ द्वौ स्तोभावहोरात्रे एव ते । जै० उ० १ । २१ । ५ ॥
- ” अहोरात्रे वै रौहिणौ (पुरोडाशौ) । श० १४ । २ । १ । ३ ॥
- ” अहोरात्रौ वै मित्रावरुणौ । तां० २५ । १० । १० ॥
- ” अहोरात्रे वै पिशंगिले । श० १३ । २ । ६ । १७ ॥
- ” अहोरात्राणि वाऽउपसदः । श० १० । २ । ५ । ४ ॥
- ” अहोरात्राणि हिङ्गारः । ष० ३ । १ ॥
- ” अहोरात्राणि वै वरुत्रयोऽहोरात्रैर्हीदिऽसर्वं वृत्तम् । श० ६ ।
 ५ । ४ । ६ ॥
- ” अहोरात्राणां वाऽएतद्रूपं यद्दानाः । श० १३ । २ । १ । ४ ॥

(आ)

- आकाशः आत्मा त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यदाकाशः) । श० १० ।
 ६ । १ । ६ ॥
- ” एष वै बहुलो वैश्वानरः (यदाकाशः) । श० १० । ६ ।
 १ । ६ ॥
- ” आकाशस्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ५ ॥
- आग्नीध्रः वसन्त आग्नीध्रस्तस्माद्दसन्ते दावाश्चरन्ति तद्द्वयग्निरूपम् ।
 श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥
- आग्नीध्रीयः (पुरुषस्य) बाहू मार्जालीयश्चाग्नीध्रीयश्च । कौ० १७ । ७ ॥
- आज्यम् तेज आज्यम् । तै० ३ । ३ । ४ । ३ ॥ ३ । ३ । ९ । ३ ॥
- ” (यजु० १ । ३१) तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि (आज्य!) । श०
 १ । ३ । १ । २८ ॥
- ” एतद्रेतः । यदाज्यम् । तै० १ । १ । ९ । ४ ॥
- ” मेघो वा आज्यम् । तै० ३ । ९ । १२ । १ ॥
- ” एतद्वै मधुदैव्यं यदाज्यम् । ऐ० २ । २ ॥
- ” (=विलीनं सर्पिः) तदाहुः । किन्देवत्यान्याज्यानीति प्राजाप-
 त्नीति ह भूयाऽनिरुक्तो वै प्रजापतिरनिरुक्तान्याज्यानि ।
 श० १ । ६ । १ । ३० ॥

भाज्यम् अथैषाज्याहुतिर्यद्भविर्यज्ञो यत्पशुः (=पशुयज्ञः) । श० १ ।

७ । २ । १० ॥

भाजनम् वृत्रस्य ह्येष कनीनकः (यदाजनम्) । श० ३ । १ । ३ । १५ ॥

भाण्डौ आण्डौ वै रेतःसिचौ, यस्य ह्याण्डौ भवतः स एव रेतः सि-
ञ्चति । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥

„ आण्डाभ्यां हि वृषा पिन्वते । श० १४ । ३ । १ । २२ ॥

भातिष्ठ्यम् शिरो वै यज्ञस्यातिष्ठ्यम् । श० ३ । २ । ३ । २० ॥

भातिष्ठ्यम् अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः.....

अभ्यषिञ्चन्.....पारमेष्ठ्याय माह्वाराज्यायाऽऽधिपत्याय
स्वावइयायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८ । १४ ॥

आत्मा आत्मा ह्ययं प्रजापतिः । श० ४ । ६ । १ । १ ॥ ११ । ५ । ९ । १ ॥

„ आत्मा वै तनूः । श० ७ । ३ । १ । २३ ॥ ७ । ५ । २ । ३२ ॥

„ आत्मा (=शरीरम्) वै पूः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

„ ‘अन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृश्यं हान्तरिक्षं मा हिंसीः’ (यजु०
१४ । १२) इत्यात्मानं यच्छात्मानं दृश्यं हात्मानं मा हिंसी-
रित्येतत् (अन्तरिक्षम् = आत्मा) । श० ८ । ३ । १ । ६ ॥

„ आत्मा वै वृषाकपिः । ऐ० ६ । २९ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

„ (होता) यदि वृषाकपिम् (वृषाकपिदृष्टम्—ऋ० १० । ८६ ।
१—२३ एतत्सूक्तमन्तरियात् = लोपयेत्तदानीम्) आत्मानम्
(=मध्यदेहमिति सायणः) अस्य (यजमानस्य) अन्तरियात् ।
ऐ० ५ । १५ ॥

„ आत्मा वै वेनः (ऋ० १० । १२३ । १) । कौ० ८ । ५ ॥

„ आत्मा वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान् पुष्टिमान् । ऐ० २ । ४० ॥

„ आत्मा सूक्तम् । कौ० १४ । ४ ॥ १५ । ३ ॥ १६ । ४ ॥ २३ । ८ ॥

„ आत्मा वै स्तोत्रम् । श० ५ । २ । २ । २० ॥

„ आत्मैव स्तोत्रियः । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

„ आत्मा वै स्तोत्रियः । कौ० १५ । ४ ॥ २२ । ८ ॥ ऐ० ३ । २३,
२४ ॥ ६ । २६ ॥ गो० उ० ३ । २२ ॥

„ आत्मा वै स्तोत्रियानुरूपौ । कौ० ३० । ८ ॥

„ आत्मा महदुक्थम् । श० १० । १ । २ । ५ ॥

- आत्मा आत्मा उपांशुसवनः । ऐ० २ । २१ ॥
- „ आत्मा लोकम्पृणा (इष्टका) । श० ८ । ७ । २ । ८ ॥
- „ आत्मा वै बृहती । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥
- „ आत्मा त्रिष्टुप् । श० ६ । २ । १ । २५ ॥ ६ । ६ । २ । ७ ॥
- „ आत्मा वै होता । कौ० २९ । ८ ॥ ऐ० ६ । ८ ॥ गो० उ० ५ । १४ ।
- „ आत्मा वै यज्ञस्य होता । कौ० ९ । ६ ॥
- „ आत्मा होतृचमसः । ऐ० २ । ३० ॥
- „ आत्मा वै ब्राह्मणाच्छंसी । कौ० २८ । ९ ॥
- आदित्यः असौ वाऽ आदित्यो विवस्वानेष ह्यहोरात्रे विवस्ते तमेष
(मृत्युः) वस्ते सर्वतो ह्येनेन पत्विृतः । श० १० । ५ । २ । ४ ॥
- „ विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथः । श० ४ । ३ । ५ । १८ ॥
- „ यं (मार्तण्डं) उ ह तद्विचक्रुः (देवा आदित्याः) स
विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः । श० ३ । १ । ३ । ४ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यः सूर्यः (यजु० १८ । ५०) । श० ९ । ४ । २ । २३ ॥
- „ असावादित्यो देवः सविता । श० ६ । ३ । १ । १८ ॥
- „ आदित्य एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ११ ॥
- „ धातासौ स आदित्यः । श० ९ । ५ । १ । ३७ ॥
- „ स एष (आदित्यः) सप्तर्षिमवृषभस्तुविष्मान् (ऋ० २ । १२ । १२) । जै० उ० १ । २८ । २ ।
- „ “यस्सप्तर्षिमः” (ऋ० २ । १२ । १२) इति । सप्त ह्येत
आदित्यस्य रश्मयः । जै० उ० १ । २९ । ८ ॥
- „ “युक्ता ह्यस्य (इन्द्रस्य) हरयश्शतादश” (ऋ० ६ । ४७ । १८) इति सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः । ते ऽस्य
युक्तास्तैरिदं सर्वं हरति । तद्यदेतैरिदं सर्वं हरति । तस्मा-
द्धरयः (=रश्मयः) । जै० उ० १ । ४४ । ५ ॥
- „ स यः स विष्णुर्यज्ञः सः । स यः स यज्ञो ऽसौ स आदित्यः
(विष्णुः = आदित्यः) । श० १४ । १ । १ । ६ ॥
- „ एष वै वृषा हरिः (यजु० ३८ । २२) य एष (आदित्यः)
तपति । श० १४ । ३ । १ । २६ ॥

- आदित्यः असौ वै वैश्वानरं यो ऽसौ (आदित्यः) तपति । कौ० ४ ।
३ । १६ । २ ॥
- „ स यः स वैश्वानरः । असौ स आदित्यः । श० ९ । ३ ।
१ । २५ ॥
- „ चक्षुस्त्वाऽपतद्वैश्वानरस्य (यदादित्यः) । श० १० । ६ । १ । ८ ॥
- „ एष वै सुततेजा वैश्वानरः (यदादित्यः) । श० १० ।
६ । १ । ८ ॥
- „ “वृषभः” (ऋ० २ । १२ । १२) इति । एष (आदित्यः)
ह्येवाऽऽसाम्प्रजानामृषभः । जै० उ० १ । २९ । ८ ॥
- „ आदित्यो वाजी । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यो ब्रध्नो ऽरुषः । श० १३ । २ । ६ । १ ॥
- „ असौ वा आदित्यो ब्रध्नः । तै० ३ । ९ । ४ । १ ॥
- „ आदित्यो वै वृषाकपिः । गो० उ० ६ । १२ ॥
- „ असावादित्यो वेनो यद्वै प्रजिजनिषमाणो ऽवेनत्तस्माद्धेनः ।
श० ७ । ४ । १ । १४ ॥
- „ स य स कूर्मो ऽसौ स आदित्यः । श० ७ । ५ । १ । ६ ॥
६ । ५ । १ । ६ ॥
- „ असौ वै षोडशी यो ऽसौ (आदित्यः) तपति । कौ०
१७ । १ ॥
- „ असावादित्यः षोडशी (यजु० १५ । ३) । श० ८ । ५ ।
१ । १० ॥
- „ एष (आदित्यः) दीक्षितः (अथर्व० ११ । ५ । ६ ॥) ।
गो० पू० २ । १ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यो दिव्यं रोचनम् । श० ६ । २ । १ । २६ ॥
- „ असौ वा आदित्यो दिव्यो गन्धर्वः (यजु० ११ । ७ ॥) । श०
६ । ३ । १ । १९ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यो विश्वव्यचाः (यजु० १३ । ५६ ॥ १५ । १७)
यदा ह्येष उदेत्यथेदं सर्वं व्यचो भवति । श० ८ । १ ।
२ । १ ॥ ८ । ६ । १ । १८ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यो व्यचच्छन्दः (यजु० १५ । ४) । श०
८ । ५ । २ । ३ ॥

- आदित्यः असौ वा आदित्यो भा इति । जै० उ० १ । ४ । १ ॥
- „ असौ वा आदित्यो हृत्सः शुचिषत् (यजु० १२ । १४) ।
श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥
- „ एष (आदित्यः) वै हंसः शुचिषद् (ऋ० ४ । ४० । ५) ।
ऐ० ४ । २० ॥
- „ असौ वा आदित्यस्तपः । श० ८ । ७ । १ । ५ ॥
- „ (आदित्यस्थः) पुरुषो यजूंषि । श० १० । ५ । १ । ५ ॥
- „ अथ य एष एतस्मिन् (आदित्य-) मण्डले पुरुषः सो
ऽग्निस्तानि यजूंषि स यजुषां लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥
- „ असौ वा आदित्य एषो ऽग्निः (यजु० ११ । ३१) । श० ६ ।
४ । १ । १ ॥ ६ । ४ । ३ । ९, १० ॥
- „ आदित्यो वाऽ अस्य (अग्नेः) दिवि वर्चः । श० ७ । १ । १ । २३ ॥
- „ अयं वाऽ अग्निर्ऋतमसावादित्यः सत्यं यदि वासावृतमय-
ं (अग्निः) सत्यमुभयम्वेतदयमग्निः । श० ६ । ४ । ४ । १० ॥
- „ एष (आदित्यः) वै सत्यम् । ऐ० ४ । २० ॥
- „ सत्यमेष य एष (आदित्यः) तपति । श० १४ । १ । २ । २२ ॥
- „ असावादित्यः सत्यम् । तै० २ । १ । ११ । १ ॥
- „ तद्यत्तत्सत्यम् । असौ स आदित्यो य एष एतस्मिन्मण्डले
पुरुषः । श० १४ । ८ । ६ । २३ ॥
- „ सत्यं हैतद्यद्रुक्मः । ……तद्यत्तत्सत्यम् । असौ स
आदित्यः । श० ६ । ७ । १ । १-२ ॥
- „ तस्य (अश्वस्य श्वेतस्य) रुक्मः पुरस्ताद्भवति । तदेतस्य
रूपं क्रियते य एष (आदित्यः) तपति । श० ३ । ११ । २० ॥
- „ असौ वाऽ आदित्य एष रुक्मः । श० ६ । ७ । १ । ३ ॥
- „ आदित्यस्य (रूपं) रुक्मः । तै० ३ । ९ । २० । २ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्य एष रुक्म एष हीमाः सर्वाः प्रजा
अतिरोचते । श० ७ । ४ । १ । १० ॥
- „ आदित्यो वै भर्गः । जै० उ० ४ । २८ । २ ॥
- „ आदित्य एव चरणं यदा ह्येवैष उदेत्यथेदं सधं चरति ।
श० १० । ३ । ५ । ३ ॥

- आदित्यः असौ वाऽ आदित्यो हृदयम् । श० ९ । १ । २ । ४० ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यो द्रप्सः (यजु० १३ । ५ ॥) । श० ७ । ४ । १ । २० ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यः सञ्छिहितः (यजु० १८ । ३९) एष ह्यहोरात्रे संदधाति । श० ९ । ४ । १ । ८ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्य एष रथः । श० ९ । ४ । १ । १५ ॥
- „ तस्य (आदित्यस्य) रथप्रोतश्चासमरथश्च (यजु० १५ । १७) सेनानीप्रामण्याविति वार्षिकौ तावृत् । श० ८ । ६ । २ । १८ ॥
- „ तद्यदेष (आदित्यः) सर्वैर्लोकैस्समस्तस्मादेष (आदित्यः) एव साम । जै० उ० १ । १२ । ५ ॥
- „ (प्रजापतिः) स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त । सोऽसौ घौरभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स आदित्योऽभवद्-सस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ५ ॥
- „ साम्नामादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागतच्छन्दो घौः स्थानम् । गो० पू० १ । २६ ॥
- „ यदनुदितः (आदित्यः) स हिङ्गारः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥
- „ असावादित्य स्तोमभागाः । श० ८ । ५ । ४ । २ ॥
- „ स यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः । श० १४ । १ । १ । ६ ॥
- „ एष वै संवत्सरो य एष (आदित्यः) तपति । श० १४ । १ । १ । २७ ॥
- „ स यः स संवत्सरोऽसौ स आदित्यः । श० १० । २ । ४ । ३ ॥
- „ आदित्य एव प्रायणीयो भवति । श० ३ । २ । ३ । ६ ॥
- „ तदसौ वा आदित्यः प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । ९ ॥
- „ आदित्यो वै प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
- „ उद्यन्तु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्रणयति तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते । ऐ० ५ । ३१ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यः कविः । श० ६ । ७ । २ । ४ ॥
- „ आदित्यो वै घर्मः । श० ११ । ६ । २ । २ ॥
- „ असौ वै घर्मो योऽसौ (आदित्यः) तपति । कौ० २ । १ ॥

- आदित्यः आदित्यो निधित् । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥
- „ यन्महान्देव आदित्यस्तेन । कौ० ६ । ६ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यः शुक्रः (यजु० १८ । ५०) । श० ९ । ४ । २ । २१ ॥
- „ एष वै शुक्रो य एष (आदित्यः) तपति । श० ४ । ३ । १ । २६ ॥ ४ । ३ । ३ । १७ ॥
- „ यद्वाऽ एष एव शुक्रो य एष (आदित्यः) तपति तद्यदेष तपति तेनैष शुक्रः । श० ४ । २ । १ । १ ॥
- „ तत्र ह्यादित्यः शुक्रश्चरति । गो० पू० २ । १९ ॥
- „ असौ वा आदित्यः शुक्रः । तां० १५ । ५ । ९ ॥
- „ आदित्यो वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥
- „ आदित्यो वै देवसंस्फानः । गो० उ० ४ । ९ ॥
- „ असौ वा आदित्यो लोकम्पृणा (इष्टका) । श० ८ । ५ । ४ । ८ ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यो लोकम्पृणैष हीमांल्लोकान्पूरयति । श० ८ । ७ । २ । १ ॥
- „ वायुर्वा एतं (आदित्यं) देवतानामानशे । तां० ४ । ६ । ७ ॥
- „ तदसावादित्य इमांल्लोकान्त्सूत्रे समावयते तद्यत्तत्सूत्रं वायुः सः । श० ८ । ७ । ३ । १० ॥
- „ सा या सा वागसौ स आदित्यः । श० १० । ५ । १ । ४ ॥
- „ आदित्य एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ आदित्यो यशः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥
- „ आदित्यो यूषः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥
- „ असौ वा अस्य (अग्निहोत्रस्य कर्तुः) आदित्यो यूषः । ऐ० ५ । २८ ॥
- „ अथ यद्विषुवन्तमुपयन्ति । आदित्यमेव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १४ ॥
- „ आदित्यो बृहत् । ऐ० ५ । ३० ॥
- „ असौ वाऽ आदित्यो ब्रह्म (यजु० १३ । ३) । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥ १४ । १ । ३ । ३ ॥
- „ आदित्यो वै ब्रह्म । जै० उ० ३ । ४ । ९ ॥
- „ असावादित्यः सुब्रह्म । ष० १ । १ ॥

- आदित्यः हन्तेति चन्द्रमा ओमित्यादित्यः । जै० उ० ३ । ६ । २ ॥
- „ ओमित्यादित्यः । ज० उ० ३ । १३ । १२ ॥
- „ ओमित्यसौ यो ऽसौ (आदित्यः) तपति । ऐ० ५ । ३२ ॥
- „ यदेतत् (आदित्य-) मण्डलं तपति । तन्महदुक्तं ता
क्रचः स क्रचां लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥
- „ (आदित्यस्य) मण्डलमेव ऽर्चः । श० १० । ५ । १ । ५ ॥
- „ अग्निश्च ह वा आदित्यश्च रौहिणावेताभ्यां हि देवताभ्यां
यजमानाः स्वर्गं लोकं रोहन्ति । श० १४ । २ । १ । २ ॥
- „ छन्दोभिर्वै देवा आदित्यं स्वर्गं लोकमहरन् । तां० १२ ।
१० । ६ ॥
- „ त्रैष्टुभो वा एष य एष (आदित्यः) तपति । कौ० २५ । ४ ॥
- „ त्रैष्टुजागतो वा आदित्यः । तां० ४ । ६ । २३ ॥
- „ जगती छन्द आदित्यो देवता श्रोणी । श० १० । ३ । २ । ६ ॥
- „ स (आदित्यः) उद्यन्नेवामूम् (दिवम्) अधिद्रवत्यस्तं
यन्निमाम् (पृथिवीम्) अधिद्रवति । श० १ । ७ । २ । ११ ॥
- „ सूर्यशब्दमपि पश्यत ॥

- आदित्याः अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत् ।
तस्या उच्छेषणमददुः । तत्प्राश्नात् सा रेतो ऽधत् ।
तस्यै धाता चार्यमा चाजायेताम् । ... मित्रश्च वरुणश्चाजाये-
ताम् । ... अंशश्च भगश्चाजायेताम् । ... इन्द्रश्च विवस्वां-
श्चाजायेताम् । तै० १ । १ । ९ । १-३ ॥
- „ अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्त उच्छिष्टमाश्नात् सा गर्भ-
मधत्त तत आदित्या अजायन्त । गो० पू० २ । १५ ॥
- „ (प्रजापते रेतस उत्पन्नं) यत्तृतीयमदीदोदिव त आदित्या
अभधन् । ऐ० ३ । ३४ ॥
- „ द्वयो ह वा इदमग्रे प्रजा आसुः । आदित्याश्चैवाङ्गिरसश्च ।
श० ३ । ५ । १ । १३ ॥
- „ विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पातु । श० ३ । ५ । २ । ७ ॥
- „ वरुण आदित्यैः (उदक्रामत्) । ऐ० १ । २४ ॥
- „ वरुण आदित्यैः (व्यद्रवत्) । श० ३ । ४ । २ । १ ॥

- आदित्याः आदित्यास्त्वा पश्चादभिषिञ्चन्तु जागतेन छन्दसा । तै०
२ । ७ । १५ । ५ ॥
- „ अथैनं (इन्द्रं) प्रतीच्यां दिश्यादित्या देवाः ... अभ्यषि-
ञ्चन् ... स्वाराज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥
- „ गावो वा आदित्याः । ऐ० ४ । १७ ॥
- „ आदित्या एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ आदित्यानीमानि यजूंषीत्याहुः । श० ४ । ४ । ५ । १९ ॥
- „ आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञ-
वल्क्येनाख्यायन्ते । श० १४ । ९ । ४ । ३३ ॥
- „ आदित्यानां तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥ श०
४ । ३ । ५ । १ ॥
- „ आदित्यं हि तृतीयसवनम् । तां० ९ । ७ । ७ ॥
- „ अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्ते । वसवः प्रातःसवनं
रुद्रा माध्यन्दिनं सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ ।
१ । १ । १५ ॥
- „ जगत्यादित्यानां पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥
- „ आदित्यानां वा एतद्रूपम् यल्लाजाः । तै० ३ । ८ । १४ । ४ ॥
- „ वसवो वै रुद्रा आदित्या सन्नावभागाः । तै० ३ । ३ ।
९ । ७ ॥
- „ तान् द्वादित्यान्क्विरसो याजयाञ्चक्रुः । गो० उ० ६ । १४ ॥
- „ त पतेन सद्यःक्रियाक्विरस आदित्यानयाजयन् । श० ३ ।
५ । १ । १७ ॥
- „ आदित्याश्चाक्विरसश्चेतत् सत्रं समदधतादित्यानामेकवि-
ंशतिरक्विरसां द्वादशाहः । तां० २४ । २ । २ ॥
- „ आदित्या वा इत उत्तमां सुवर्गं लोकरुमायन् । ते वा इतो
यन्तं प्रतिनुदन्ते । तै० १ । १ । ९ । ८ ॥
- „ (आदित्याः) स्वर्गं लोकमायन्नर्हीयन्तांक्विरसः । तां०
१६ । १२ । १ ॥
- „ ते द्वादित्याः पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मुः पश्चेवाक्विरसः षष्ट्यां
वा वर्षेषु । ऐ० ४ । १७ ॥
- „ तत उ द्वादित्याः स्वरीयुः । कौ० ३० । ६ ॥

आदित्याः तऽ आदित्याः । चतुर्भिः स्तोमैश्चतुर्भिः पृथ्वैर्लघुभिः सामभिः
स्वर्गं लोकमभ्यप्लवन्त । श० १२ । २ । २ । १० ॥

„ तस्य (स्वर्गस्य लोकस्य) आदित्या अधिपतयः । तै०
३ । ८ । १८ । २ ॥

आधिपत्यम् अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः
.....अभ्यषिञ्चन्.....पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽ-
धिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ । ८ । १४ ॥

आपः आपो वै सरिरम् (यजु० १३ । ४२) । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥

„ आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् । तै० १ । १ । ३ । ५ ॥

„ आपो वा इदमग्रे महत्सलिलमासीत् । जै० ३० । १ । ५६ । १ ॥

„ आपो ह वाऽ इदमग्रे सलिलमेवास । ता (आपः) अकाम-

यन्त (ता आप पेशन्त बह्वयः स्याम प्रजायेमहीति । छान्दो-

ग्योपनिषदि ६ । २ । ४ ॥) कथन्नु प्रजायेमहीति ता अश्वा-

म्यस्तास्तपो ऽतप्यन्त तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्मयमाण्ड-

० सम्बभूवाजातो ह तर्हि संवत्सर आस तदिदं हिरण्मयमा-

ण्डं यावत्संवत्सरस्य वेला तावत्पर्यप्लवत् ॥ ततः संवत्सरे पुरुषः

समभवत् । स प्रजापतिः (“Accordidg to the writings

of the Egyptians, there was a time when neither

heaven nor earth existed, and when nothing had

being except the boundless primeval water, which

was, however, shrouded with thick darkness.

[नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्-

ऋ० १० । १२९ । १ ॥ तम आसीत्तमसा गूढमग्रे ऽप्रकृतं

सलिलं सर्वमा इदम्—ऋ० १० । १२९ । ३ ॥]

At length the spirit of the primeval water felt

the desire for creative activity, and having

uttered the word, the world sprang straightway

into being in the form which had already been

depicted in the mind of the spirit before he

spoke the word which resulted in its creation.

[सो ऽपो ऽसृजत । वाच एव लोकाद्वागेवास्य सासृज्यत—
 श० ६ । १ । १ । ९ ॥ सो ऽकामयत । आभ्यो ऽद्भ्यो ऽधि-
 प्रजायेयेति सो ऽनया त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत्तत
 आपड्ठं समवर्तत तदभ्यमृशदस्त्वित्यः तु भूयो ऽस्त्वित्येव
 तदब्रवीत्ततो ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रय्येव विद्या-श० ६ । १ ।
 १ । १०] The next act of creation was the forma-
 tion of a germ, or egg, from which sprang Ra,
 the Sun-god, within whose shining form was
 embodied the almighty power of the divine
 spirit." See "Egyption Ideas of the Future
 Life" by E.A. Wallis Budge, pages 22 and 23.
 [Sun=सविता=प्रजापतिः-प्रजापतिर्वै सविता । तां० १६ । ३ ।
 १७ ॥] । श० ११ । १ । ६ । १-२ ॥

- आपः एष वै रयिवैश्वानरः (यदापः) । श० १० । ६ । १ । ५ ॥
 ,, वस्तिस्त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यदापः) । श० १० । ६ । १ । ५ ॥
 ,, आपो व्यानः । जै० उ० ४ । २२ । ९ ॥
 ,, शुक्रा ह्यापः । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥
 ,, चन्द्रा ह्यापः । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥
 ,, आपो वै जनयो (यजु० १२ । ३५) ऽद्भ्यो हीदुः सर्वे जायते ।
 श० ६ । ८ । २ । ३ ॥
 ,, यद्भव आपस्तेन (भवः=जन्म—अमरकोषे, ३ काण्डे, ननार्थ-
 वर्गे, २०५ श्लोके ॥ जन्म=आपः—वैदिकनिघण्टौ १ । १२) ।
 कौ० ६ । २ ॥
 ,, आपस्तावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ३ ॥
 ,, आपो वै पुष्करम् । श० ६ । ४ । २ । २ ॥ ७ । ४ । १ । ८ ॥
 ,, आपो वै पुष्करपर्णम् । श० ७ । ३ । १ । ९ ॥
 ,, आपः पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । १ । ९ ॥ १० । ५ । २ । ६ ॥
 ,, आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठी (यजु० १४ । ९ ॥) ता हि परमे
 स्थाने तिष्ठन्ति । श० ८ । २ । ३ । १३ ।

[आपः

(६८६)

- आपः स (परमेष्ठी प्राजापत्यः) आपो ऽभवत्.....परमाद्वाऽ एत-
त्स्थानाद्दर्भवति यहिवस्तस्मात्परमेष्ठी नाम । श० ११ । १ ।
६ । १६ ॥
- „ आपो हि पयः । कौ० ५ । ४ ॥ गो० उ० १ । २२ ॥
- „ अपामेष ओषधीनां रसो यत्पयः । श० १२ । ८ । २ । १३ ॥
- „ वाग्देवत्यं साम वाचो मनो देवता मनसः पशवः पशूनामोष-
धय ओषधीनामापः । तदेतद्भूयो जातं सामाऽप्सु प्रतिष्ठित-
मिति । जै० उ० १ । ५९ । १४ ॥
- „ ओषधयो वाऽ अपामोद्य (यजु० १३ । ५३) । यत्र ह्याप उन्द-
न्त्यस्तिष्ठन्ति तदोषधयो जायन्ते । श० ७ । ५ । २ । ४७ ॥
- „ आपो ह्येतस्य (सोमस्य) लोकः । श० ४ । ४ । ५ । २१ ॥
- „ आपो हि रेतः । तां० ८ । ७ । ९ ॥
- „ आपो रेतः प्रजननम् । तै० ३ । ३ । १० । ३ ॥
- „ आपो मे रेतसि श्रिताः । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥
- „ धर्मो ह्यापः । श० ११ । १ । ६ । २४ ॥
- „ आपः प्रोक्षणयः । ऐ० ५ । २८ ॥
- „ दिव्या आपः प्रोक्षणयः । तै० २ । १ । ५ । १ ॥
- „ आपो वै सूदो ऽन्नं दोहः । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥
- „ आपः स्वरसामानः । कौ० २४ । ४ ॥
- „ अथ यत् स्वरसाम्न उपयन्ति । अप एव देवतां यजन्ते । श० १२ ।
१ । ३ । १३ ॥
- „ रेवत्यः (यजु० १ । २१) आपः । श० १ । २ । २ । २ ॥
- „ आपो वै रेवत्यः । तां० ७ । ९ । २० ॥ १३ । ९ । १६ ॥
- „ आपो वै रेवतीः । तै० ३ । २ । ८ । २ ॥
- „ अपां वा एष रसो यद्रेवत्यः । तां० १३ । १० । ५ ॥
- „ वज्रो वाऽ आपः । श० १ । ७ । १ । २० ॥
- „ आप इति तत् प्रथमं वज्ररूपम् । कौ० १२ । २ ॥
- „ आपो ह वै वृत्रं जघ्रुस्तेनैवैतद्दीर्येणापः स्यन्दन्ते । श० ३ । ९ ।
४ । १४ ॥
- „ वृत्रतुरः (यजु० ६ । ३४) इति वृत्रं ह्येताः (आपः) अग्नन् ।
श० ३ । ६ । ४ । १६ ॥

- आपः आपो वै विधाः (यजु० १४ । ७) अद्भिर्हीदथ्सर्वं विहितम् ।
श० ८ । २ । २ । ८ ॥
- „ आपो वै द्यौः । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥
- „ द्यौर्वाऽपथाथ्सदनम् (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ ।
२ । ५६ ॥
- „ आपो दिव ऊधः (यजु० १२ । २० ॥) । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥
- „ आपो वै दिव्यं नभः । श० ३ । ८ । ५ । ३ ॥
- „ आपो वै वरेण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥
- „ वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः । गो० पू० २ । ८ (९) ॥
- „ आपो वै सर्वः (=शर्वः=रुद्रः) अद्भ्यो हीदथ्सर्वं जायते ।
श० ६ । १ । ३ । ११ ॥
- „ आप एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
- „ एष वाऽपथाथ्सो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० ५ । १ ।
२ । ७ ॥
- „ वायुर्वाऽपामेम (यजु० १३ । ५३) यदा ह्येवेष इतश्चेतश्च
वात्यथापो यन्ति । श० ७ । ५ । २ । ४६ ॥
- „ अपः श्लाघा (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥
- „ स वा एषो (सूर्यः) ऽपः प्रविश्य वरुणो भवति । कौ० १८ । ९ ॥
- „ अथ यदप्सु वरुणं यजति स्व एवैनं तदायतने प्रीणाति । कौ०
५ । ४ ॥
- „ अप्सु वै वरुणः । तै० १ । ६ । ५ । ६ ॥
- „ यो ह वाऽअयमपामावर्त्तः स हावभृथः स ह्येष वरुणस्य पुत्रो
वा भ्राता वा । श० १२ । ९ । २ । ४ ॥
- „ वरुणस्य वा अभिषिच्यमानस्याप इन्द्रियं वीर्यं निरग्नन् ।
तत्सुवर्णथ्सि हिरण्यमभवत् । तै० १ । ८ । ६ । १ ॥
- „ अग्निर्ह वाऽअपो ऽभिदध्यौ मिथुन्याभिः स्यामिति ताः सम्बभूव
तासु रेतः प्रासिञ्चत्तद्विरण्यमभवत्तस्मादेतदग्निंसंकाशमग्नेर्हि
रेतस्तस्मादप्सु (हिरण्यं) चिन्दन्त्यप्सु हि (रेतः) प्रासिञ्चत् ।
श० २ । १ । १ । ५ ॥
- „ अद्भ्यो वा एष (अग्निः) प्रथममाजगाम । श० ६ । ७ । ४ । ४ ॥

[आपः

(६८८)

- आपः आपो वाऽ अस्य (अग्नेः) दिवो ऽर्णः । श० ७ । १ । १ । २४ ॥
,, अन्तरिक्षं वाऽ अपां सधस्थम् (यजु० १३ । ५३) । श० ७ ।
५ । २ । ५७ ॥
,, आपो वै मरुतः । ऐ० ६ । ३० ॥ कौ० १२ । ८ ॥
,, अप्सु वै मरुतः श्रितः (श्रिताः) । गो० उ० १ । २२ ॥
,, अप्सु वै मरुतः शिताः (? श्रिताः) । कौ० ५ । ४ ॥
,, अथ यत्कृष्णं तदपां रूपमन्नस्य मनसो यजुषः । जै० उ० १ ।
२५ । ९ ॥
,, अन्नं वाऽ अपां पाथः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ६० ॥
,, आपो वै सहस्रियो वाजः (यजु० १२ । ४७) । श० ७ । १ ।
१ । २२ ॥
,, गिरिबुध्ना उ वा आपः । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥
,, वैराजीर्वा आपः । कौ० १२ । ३ ॥
,, अद्भिर्यज्ञः प्रणीयमानः प्राङ् तायते । तस्मादाचमनीयं पूर्वमा-
हारयति । गो० पू० १ । ३६ ॥
,, अप्सुयोनिर्वै वेतसः । श० १२ । ८ । ३ । १५ ॥
,, अप्सुजा वेतसः । श० १३ । २ । २ । १९ ॥
,, अप्सुजो वेतसः । तै० ३ । ८ । ४ । ३ ॥ ३ । ८ । १९ । २ ॥ ३ ।
८ । २० । ४ ॥
,, तद्यत्सत्यम् । आप एव तदापो हि वै सत्यम् । श० ७ । ४ ।
१ । ६ ॥
,, तदेतत्सत्यमक्षरं यदोमिति । तस्मिन्नापः प्रतिष्ठिताः । जै० उ०
१ । १० । २ ॥
,, पृथिव्यप्सु श्रिता । तै० ३ । ११ । १ । ६ ॥
,, पृथिव्यप्सु (प्रतिष्ठिता) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥
,, इयं (पृथिवी) वाऽ अपामयनम् (यजु० १३ । ५३) अस्याऽ
ह्यापो यन्ति । श० ७ । ५ । २ । ५० ॥
,, समुद्रो वाऽ अपां योनिः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ ।
२ । ५८ ॥
,, समुद्रो ऽसि तेजसि श्रितः । अपां प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ४ ॥

आपः विद्युद्वाऽ अपां ज्योतिः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ४६ ॥

„ अभ्रं वाऽ अपां भस्म (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ४८ ॥

„ सिकता वा अपां पुरीषम् (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ५९ ॥

„ चक्षुर्वाऽ अपां क्षयः (यजु० १३ । ५३) तत्र हि सर्वदैवापः क्षियन्ति । श० ७ । ५ । २ । ५४ ॥

„ श्रोत्रं वा अपां सधिः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ५५ ॥

आपः (देवाः) साध्याश्च त्वाऽऽप्याश्च देवाः पाङ्केनचञ्छंदासा
त्रिणवेन स्तोमेन शाक्रेण साम्नाऽऽरोहन्तु तानन्वारोहामि
राज्याय । ऐ० ८ । १२ ॥

„ अथैनं (इन्द्रं) अस्यां भुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि
साध्याश्चाऽऽप्याश्च देवाः अभ्यषिञ्चन् राज्याय ।
ऐ० ८ । १४ ॥

आप्रियः (ऋचः) तमेताभिराप्तीभिराप्याययन्ति तद्यदाप्याययन्ति
तस्मादाप्रियो नाम । श० ३ । ८ । १ । २ ॥

„ आप्रीभिराप्तीणाति । ऐ० २ । ४ ॥ कौ० १० । ३ ॥

आमयावी त्रैशोकं ज्योगामयाविने ब्रह्मसाम कुर्यात् । तां० ८ । १ । ८ ॥

„ ज्योगामयाविने उभे (बृहद्रथन्तरे) कुर्यादपक्रान्तौ वा
एतस्य प्राणापानौ यस्य ज्योगामयति प्राणापानावेवास्मि-
न्दघाति । तां० ७ । ६ । १२ ॥

आयुः आयुर्वै विकर्णी (इष्टका) । श० ८ । ७ । ३ । ११ ॥

„ आयुर्वै सहस्रम् । तै० ३ । ८ । १५ । ३ ॥ ३ । ८ । १६ । २ ॥

„ विदेदभिर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिर आयुना नाम्नेहि (यजु० ५ । ९)
इति । श० ३ । ५ । १ । ३२ ॥

„ अमृतमायुर्हिरण्यम् । श० ३ । ८ । २ । २७ ॥ ४ । ५ । २ ।
१० ॥ ४ । ६ । १ । ६ ॥

„ आयुर्हि हिरण्यम् । श० ४ । ३ । ४ । २४ ॥

„ आयुर्वै हिरण्यम् । तै० १ । ८ । ६ । १ ॥

„ यद्विरण्यं वदाति आयुस्तेन वर्षीयः कुरुते । गो० ३० । ३ । १९ ॥

[इन्द्रः

(६९०)

आर्षिः अनात्स्यै त्वेत्येवैतदाह यदाहाव्यथायै त्वेति (व्यथा=आर्षिः) ।

श० ५ । ४ । ३ । ७ ॥

आर्षा (नक्षत्रम्) स (रुद्रः) एतच्छं रुद्रायाऽऽर्षायै प्रैयङ्गवं चरं
पयसि निरवपत् । ततो वै स पशुमानभवत् । तै० ३ । १ ।
४ । ४ ॥

आष्ठाः विष्णवाशानां पते । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥

आशीः बह्वी वै यजुःष्वशीः । श० १ । २ । १ । ७ ॥ ३ । ५ । २ । ११ ॥
३ । ६ । १ । १७ ॥

आशुस्त्रिवृत् (यजु० १४ । २३) वायुर्वाऽ आशुस्त्रिवृत्स एषु त्रिषु लोकेषु
वर्तते । श० ५ । ४ । १ । ९ ॥

आहवनीयः (अग्निः) आहवनीयभाग्यजमानः । कौ० ३ । ६ ॥

आहिताग्निः नो ह्यनाहिताग्नेर्धतचर्यास्ति । श० २ । १ । ४ । ७ ॥

आहुतिः द्वे वा आहुती सोमाहुतिरेवान्याज्याहुतिरन्या । श० १ ।
७ । २ । १० ॥

„ आहुतिर्हि यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । १ ॥

इन्द्रा पेडच्छं रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥

इन्द्रः स वा एष (आदित्यः) इन्द्रो वैमृध उद्यन् भवति इन्द्रो
वैकुण्ठो मध्यन्दिने । जै० उ० ४ । १० । १० ॥

„ इन्द्रमदेव्यो माया असचन्त स प्रजापतिमुपाध्मावत्तस्मा एतं
विघ्नं (क्रतुं) प्रायच्छत्तेन सर्वा मृधो व्यहत । तां० १९ ।
१९ । १ ॥

„ इन्द्रो वै मघवान् । श० ४ । १ । २ । १५, १६ ॥

„ स उ एष मङ्गः स विष्णुः । तत इन्द्रो मखवानभवन्मखवान्ह
वै तं मघवानित्याचक्षते परोऽक्षम् । श० १४ । १ । १ । १३ ॥

„ इन्द्रो वसुधेयः । श० १ । ८ । २ । १६ ॥

„ इन्द्र उ वै वेनः । (ऋ० १० । १२३ । १) । कौ० ८ । ५ ॥

„ इन्द्रो वै वेधाः (ऋ० ५ । ४३ । ११ ॥) । ऐ० ६ । १० ॥ गो०
उ० २ । २० ॥

„ इन्द्रो हि षोडशी । श० ४ । २ । ५ । १४ ॥

„ इन्द्रो ह वै षोडशी । श० ४ । ५ । ३ ॥

„ इन्द्र उ वै षोडशी । कौ० १७ । १, ४ ॥

- इन्द्रः एतद् वा इन्द्रान्योः प्रियं धाम यद्वागिति । ऐ० ६ । ७ ॥
 गो० उ० ५ । १३ ॥
- „ वाग्धैन्द्री । ऐ० २ । २६ ॥
- „ वाक् च प्राणश्चैन्द्रवायवः (ग्रहः । इन्द्रः=वाक्; वायुः=प्राणः) ।
 ऐ० २ । २६ ॥
- „ अथैतद्दामे ऽक्षणि पुरुषरूपम् । एषास्य (दक्षिणे ऽक्षणि वर्त्त-
 मानस्य पुरुषस्येन्द्राख्यस्य) पत्नी विराद् । श० १४ । ६ ।
 ११ । ३ ॥
- „ इन्द्रो वृषा । श० १ । ४ । १ । ३३ ॥
- „ इन्द्रो वै वृषा । तां० ९ । ४ । ३ ॥
- „ इन्द्रो वै वाजी । ऐ० ३ । १८ ॥
- „ इन्द्रो वै गोपाः (ऋ० १ । ८६ । १) । ऐ० ६ । १० ॥ गो० उ०
 २ । २० ॥
- „ इन्द्र उ वै परुच्छेपः । कौ० ३३ । ४ ॥
- „ एतेन (पारुच्छेपेन रोहिताख्येन छन्दसा) वा इन्द्रः सप्त
 स्वर्गोर्लोकानरोहत् । ऐ० ५ । १० ॥
- „ इन्द्रो वै चतुर्होता । तै० २ । ३ । १ । ३ ॥
- „ इन्द्रः सप्तहोता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥
- „ इन्द्रः सप्तहोत्रा । तै० २ । २ । ८ । ५ ॥
- „ यन्मनः स इन्द्रः । गो० उ० ४ । ११ ॥
- „ इन्द्रो वै प्रदाता स एवास्मै यज्ञं प्रयच्छति । कौ० ४ । २ ॥
- „ यो इ खलु वाव प्रजापतिः स उ वेवेन्द्रः । तै० १ । २ । २ । ५ ॥
- „ इन्द्रो वै त्वष्टा (ऋ० १ । ३२ । ६ ॥) । ऐ० ६ । १० ॥
- „ इन्द्र उ वै वातापिः स हि वातमाप्त्वा शरीराण्यर्हन्प्रतिप्रैति ।
 कौ० २७ । ४ ॥
- „ कतमत्तदक्षरमिति । यत्क्षरन्नाऽक्षीयतेति । इन्द्र इति । जै०
 उ० १ । ४३ । ८ ॥
- „ इन्द्र उ वै वरुणः स उ वै पयोभाजनः । कौ० ५ । ४ ॥
- „ इन्द्रो वै वरुणः स उ वै पयोभाजनः । गो० उ० १ । ३२ ॥
- „ इन्द्रस्य (=‘वरुणस्य’ इति ज्ञायणः) शतभिषक् (नक्षत्रम्) ।
 तै० १ । ५ । १ । ५ ॥

इन्द्रः इन्द्रो लोकम्पृणा । श० ८ । ७ । २ । ६ ॥

„ यत्पुरस्ताद्वासीन्द्रो राजा भूतो वासि । जै० ७० ३ । २१ । २ ॥

„ दक्षिणा दिक् । इन्द्रो देवता । तै० ३ । ११ । ५ । १ ॥

„ अथ यद्विश्वजितमुपयन्ति । इन्द्रमेव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १५ ॥

„ इन्द्रो विश्वजिदिन्द्रो हीदं सर्वं विश्वमजयत् । कौ० २४ । १ ॥

„ ततो वा इदमिन्द्रो विश्वमजयद्यद्विश्वमजयत्तस्माद्विश्वजित् । तां० १६ । ४ । ५ ।

„ इन्द्रो वै युधाजित् । तां० ७ । ५ । १४ ॥

„ वृषणश्वस्य ह मेनस्य मेनका नाम दुहितास तां० हेन्द्रश्चक्रमे । ष० १ । १ ॥

„ इन्द्रो वै प्रासहस्पतिस्तुविष्मान् । ऐ० ३ । २२ ॥

„ सेना वा इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नाम । ऐ० ३ । २२ ॥

„ सेना ह नाम पृथिवी (=विस्तीर्णैति सायणः) धनञ्जया विश्वव्यचा अदितिः । सूर्यत्वक् । इन्द्राणी देवी प्रासहा इदानी । तै० २ । ४ । २ । ७ ॥

„ वैखानसा वा ऋषय इन्द्रस्य प्रिया आसन् । तां० १३ । ४ । ७ ॥

„ इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एतच्छुद्धाशुद्धीयमपश्यत्तेनाशुध्यत् (इन्द्रो यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तान्दक्षिणत उत्तरवेद्या आदन्—तैत्तिरीयसंहितायाम् ६ । २ । ७ । ५ ॥ अथर्ववेदे २ । २७ । ५—तयाहं शत्रून्साक्षे इन्द्रः सालावृकाँ इव ॥ ऋ० १० । ७३ । ३—त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन्धिषे ॥) । तां० १४ । ११ । २८ ॥

„ इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एते शुद्धाशुद्धीये (सामनी) अपश्यत्ताभ्यामशुध्यत् । तां० १९ । ४ । ७ ॥

„ यत्रेन्द्रं देवताः (यज्ञेषु) पर्यवृञ्जन्, (यतः स इन्द्रः) विश्वरूपं त्वाप्स्रमभ्यमंस्त वृत्रमस्तुत यतीन्सालावृकेभ्यः प्रादा-

दरुर्मघानवधीद् बृहस्पतेः प्रत्यवधीदिति तत्रेन्द्रः सोमपीथेन
 व्याद्धत [तं (प्रतर्दनं) हेन्द्र उवाच मामेव विजानीत्येतदेवाहं
 मनुष्याय हिततमं मन्ये यन्मां विजानीयात्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्र-
 महनमरुमुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छं बह्वीः सन्धा
 आतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीयानतृणमहमन्तरिक्षे पौलोमान् पृथि-
 व्यां कालकाञ्जास्तस्य मे तत्र न लोम च नामीयत स यो
 मां (इन्द्रं) वेद न ह वै तस्य केन चन कर्मणा लोको मीयते
 न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया न मातृवधेन न पितृवधेन नास्य पापं
 चक्षुषो मुखान्नालं वेतीति—शंङ्करानन्दीयटीकायुतायां कौषी-
 तकिब्राह्मणोपनिषदि ३ । १ ॥] । ऐ० ७ । २८ ॥

- इन्द्रः कालकञ्जा वै नामासुरा आसन् । ते सुवर्गाय लोकायाग्निम-
 चिन्वत । पुरुष इष्टकामुपादधात् पुरुष इष्टकाम् । स इन्द्रो
 ब्राह्मणो ब्रुवाण इष्टकामुपाधत् । एषा मे चित्रा नामेति । ते
 सुवर्गलोकमापारोहन् । स इन्द्र इष्टकामवृहत् । ते ऽवाकीर्यन्त
 ये ऽवाकीर्यन्त । त ऊर्णनाभयो ऽभवन् । द्वाबुदपतताम् । तौ
 दिव्यौ श्वानावभवताम् (पश्यत—मैत्रायणीसंहिता १ । ६ । ९ ॥
 काठकसंहिता ८ । १) । तै० १ । १ । २ । ४-६ ॥
- ॥ इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्
 स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतमुपहृद्यं प्रायच्छत् । तां० १८ ।
 १ । ६ ॥
- ॥ इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उद्दिश्यन्त रायो-
 वाजो बृहद्भिरिः पृथुरश्मिः । तां० ८ । १ । ४ ॥
- ॥ इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उद्दिश्यन्त
 पृथुरश्मिर्बृहद्भिरि रायोवाजः । तां० १३ । ४ । १७ ॥
- ॥ युव० सुरामश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती
 इन्द्रं कर्मस्वावतम् (ऋ० १० । १३१ । ४ ॥ यजु० १० । ४३ ॥)
 इत्याश्राव्यादाश्विनौ सरस्वतीमिन्द्र० सुत्रामाणं यजेति । श०
 ५ । ५ । ४ । २५ ॥
- ॥ (नमुचिः) तस्य (इन्द्रस्य) एतयैव सुरयेन्द्रियंवीर्यं० सोम-
 पीथमन्नाद्यमहरत्स ह न्यर्णः शिश्ये । श० १२ । ७ । १ । १० ॥

- इन्द्रः 'अपां फेनेन नमुचेः) शिर इन्द्रोदवर्तयः' विश्वा यद्वज्रः) स्पृघः (ऋ० ८। १४। १३) इति पाप्मा वै नमुचिः । श० १२ ७। ३। ४ ॥
- „ इन्द्रश्च वै नमुचिश्चासुरः समदधातास्र नौ मरुतश्च दिवाहन-
शार्द्रेण न शुष्कणेति तस्य व्युष्टायामनुदित आदित्येऽपां
फेनेन शिरो ऽछिनत् । तां० १२। ६। ८ ॥
- „ नमुचिर्ह वै नामासुर आस्र तमिन्द्रो निविद्याध तस्य पदा
शिरो ऽभितष्टौ स यदभिष्टित उदबाधत स उच्छृङ्खस्तस्य पदा
शिरः प्रविच्छेद ततो रक्षः समभवत् । श० ५। ४। १। ९ ॥
- „ “नमुचि”शब्दमपि पश्यत ॥
- „ तं (त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं विश्वरूपं) इन्द्रो दिद्वेष तस्य तानि
शीर्षाणि प्रविच्छेद । श० १। ६। ३। २ ॥
- „ स (इन्द्रः) यत्र त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं विश्वरूपं जघान । श०
१। २। ३। २ ॥
- „ इन्द्रो वै वृत्रहा । कौ० ४। ३ ॥
- „ महानास्रीभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहन् । कौ० २३। २ ॥
- „ इन्द्रो वा एष पुरा वृत्रस्य वधादथ वृत्रं हत्वा यथा महा-
राजो विजिग्यान एवं महेन्द्रो ऽभवत् । श० १। ६। ४। २१ ॥
४। ३। ३। १७ ॥
- „ इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा विश्वकर्मा ऽभवत् । ऐ० ४। २२ ॥
- „ तस्य (इन्द्रस्य) असौ (शु-) लोको नाभिजित आसीत्
(इन्द्रः) विश्वकर्मा भूत्वाभ्यजयत् । तै० १। २। ३। ३ ॥
- „ मरुतो ह वै क्रीडिनो वृत्रं हनिष्यन्तमिन्द्रमागतं तमभितः
परिविक्रीडुर्महयन्तः । श० २। ५। ३। २० ॥
- „ ते (मरुतः) एनं (इन्द्रं) अघ्यक्रीडन् । तै० १। ६। ७। ५ ॥
- „ इन्द्रो वै मरुतः क्रीडिनः । गो० ३०। १। २३ ॥
- „ इन्द्रो वै मरुतः सान्तपनाः । गो० ३०। १। २३ ॥
- „ इन्द्रस्य वै मरुतः । कौ० ५। ४। ५ ॥
- „ धर्म इन्द्रो राजेत्याह तस्य देवा विशः । श० १३। ४। ६। १४ ॥

- इन्द्रः पतद्वाऽ इन्द्रस्य निष्केवल्यः सवनं यन्माध्यन्दिनः सवनं
 तेन वृत्रमजिघांसत्तेन व्यजिगीषत । श० ४ । ३ । ३ । ६ ॥
- „ ऐन्द्रं वै माध्यन्दिनं सवनम् । जै० उ० १ । ३७ । ३ ॥
- „ इन्द्रस्य माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १४ । ५ ॥
- „ ऐन्द्रं हि त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० २९ । २ ॥
- „ ऐन्द्रं त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ० ४ । ४ ॥
- „ त्रैष्टुभ इन्द्रः । कौ० ३ । २ ॥ २२ । ७ ॥
- „ इन्द्रः (श्रियः) बलम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
- „ तान् (पशून्) इन्द्रः पञ्चदशेन स्तोमेन नामोत् । तै० १२ । ७ ।
 १४ । २ ॥
- „ ऐन्द्रो राजन्यः । तां० १५ । ४ । ८ ॥
- „ (राजन्यस) इन्द्रो देवता । तां० ६ । १ । ८ ॥
- „ हरिव आगच्छेति पूर्वपक्षापरपक्षौ वा इन्द्रस्य हरी ताभ्याः
 हीदः सर्वं हरति । ष० १ । १ ॥
- „ ऐन्द्री घाँः । तां० १५ । ४ । ८ ॥
- „ द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी । श० १४ । ६ । ४ । २१ ॥
- „ ऐन्द्रः हि पुरीषम् । श० ८ । ७ । ३ । ७ ॥
- „ अथ यत्पुरीषः स इन्द्रः । श० १० । ४ । १ । ७ ॥
- „ ऐन्द्रयो वालखिल्याः (ऋचः) । ऐ० ६ । २६ ॥
- „ ऐन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत्साकमेधाः । कौ० ५ । ५ ॥ गो० उ०
 १ । २३ ॥
- „ इन्द्रो ज्येष्ठामनु नक्षत्रमेति । तै० ३ । १ । २ । १ ॥
- „ इन्द्रस्य रोहिणी (=ज्येष्ठानक्षत्रमिति सायणः) । तै० १ । ५ ।
 १ । ४ ॥
- „ एता वाऽ इन्द्रनक्षत्रं यत्फल्गुन्यः । श० २ । १ । २ । ११ ॥
- „ ऐन्द्रः साम्नाय्यम् (हविः) । श० २ । ४ । ४ । १२ ॥
- „ ऐन्द्रं वै दधि । श० ७ । ४ । १ । ४२ ॥
- „ ऐन्द्रो ब्राह्मणाच्छंसी । श० ९ । ४ । ३ । ७ ॥ तै० १ । ७ । ६ । १ ॥
- „ ऐन्द्राबार्हस्पत्यं ब्राह्मणाच्छंसिन उक्थं भवति । गो० उ० ४ ।
 १४, १६ ॥

इन्द्रः ऐन्द्रो वाऽ एष यज्ञो यत्सौत्रामणी । श० १२ । ८ । २ । २४ ॥

„ ऐन्द्रो वा एष यज्ञकर्तुर्यत् सौत्रामणी । कौ० १६ । १० ॥ गो०
उ० ५ । ७ ॥

„ ऋषभमिन्द्राय सुत्रामणऽ आलभते । श० ५ । ५ । ४ । १ ॥

„ तस्मात्सदस्यृक्सामाभ्यां कुर्वन्त्यैन्द्रं हि सदः । श० ४ । ६ ।
७ । ३ ॥

„ ऐन्द्रं हि सदः । श० ३ । ६ । १ । २२ ॥

इन्द्राग्नी इन्द्राग्नी वै विश्वे देवाः । श० २ । ४ । ४ । १३ ॥

„ इन्द्राग्नी हि विश्वे देवाः । श० २ । ९ । २ । १४ ॥

„ नक्षत्राणामधिपत्नी विशाखे । श्रेष्ठाविन्द्राग्नी भुवनस्य गोपौ ।
तै० ३ । १ । १ । ११ ॥

„ इन्द्राग्निर्विशाखे (= नक्षत्रविशेषः) । तै० १ । ५ । १ । ३ ॥

„ एतद् वा इन्द्राग्न्योः प्रियं धाम यद्वागिति । ऐ० ६ । ७ ॥ गो०
उ० ५ । १३ ॥

इन्द्रावृहस्पती षड्भिरैन्द्रावार्हस्पत्यैः (पशुभिः) शिशिरे (यजते) । श०
१३ । ५ । ४ । २८ ॥

इन्द्राविष्णू षड्भिरैन्द्रावैष्णवैः (पशुभिः) हेमन्ते (यजते) । श० १३ ।
५ । ४ । २८ ॥

इन्द्रियाणि प्राणा इन्द्रियाणि । तां० २ । १४ । २ ॥ २२ । ४ । ३ ॥

„ जायमानो ह वै ब्राह्मणः सप्तेन्द्रियाण्यभिजायते ब्रह्मवर्च-
सञ्च यशश्च स्वप्नं च क्रोधं च श्लाघां च रूपं च पुण्यमेव
गंधं सप्तमम् । गो० पू० २ । २ ॥

इरा ऐरं वै बृहत् । तां० ७ । ६ । १७ ॥

इष्टुः चतुःसंधिर्हीषुरनीकं शल्यस्तेजनं पर्णानि । ऐ० १ । २५ ॥

„ इषंवा वै दिद्यवः । श० ५ । ४ । २ । २ ॥

ईशानः या सा तृतीया (ओङ्कारस्य) मात्रैशानदेवत्या कापिला वर्णेन
यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्देशानं पदम् । गो० पू० १ । २५ ।

उक्थम् (तमेतम्पुरुषं) उक्थमिति बह्वृचाः (उपासते) एष हीदथि
सर्वमुत्थापयति श० १० । ५ । २ । २० ॥

उक्थ्यः उक्थ्या वाजिनः । गो० उ० १ । २२ ॥

उत्तरकुरवः “ कुरवः ” इत्येतं शब्दं पश्यत ।

उत्तरमद्राः “ मद्राः ” इत्येतं शब्दं पश्यत ।

उदरम् (इन्द्रः) तं (वृत्रं) द्वेषान्वाभिनतस्य यत्सोम्यं न्यक्तमास
तं चन्द्रमसं चकाराथ यदस्यासुय्यमास तेनेमाः प्रजा उद-
रेणाविध्यत् । श० १ । ६ । ३ । १७ ॥

„ यदिमाः प्रजा अशनमिच्छन्ते ऽस्माऽपवैतद्वृत्रायोदराय बलिं
हरन्ति ! श० १ । ६ । ३ । १७ ॥

„ प्रजापतेर्वा एतदुदरं यत्सदः । तां० ६ । ४ । ११ ॥

„ (पुरुषस्य) उदरं सदः । कौ० १७ । ७ ॥

„ उदरमेवास्य (यज्ञस्य) सदः । श० ३ । ५ । ३ । ५ ॥

„ उदरं वै सदः । कौ० ११ । ८ ॥

„ उदरं मध्यमा चितिः । श० ८ । ७ । २ । १८ ॥

उदानः प्रेति (‘प्र’ इति) वै प्राण एति (‘आ’ इति) उदानः । श०
१ । ४ । १ । ५ ॥

„ उदानो वै बृहच्छोचाः । श० १ । ४ । ३ । ३ ॥

„ उदाना मासाः । तां० ५ । १० । ३ ॥

उपनयनम् एतद्वै पत्न्यै व्रतोपनयनम् (यद्योक्तेण संनहनम्) । तौ
३ । ३ । ३ । २ ॥

ऋषिः एते वै कवयो यदृषयः । श० १ । ४ । २ । ८ ॥

„ ये वै ते न ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते वै कवयः (ऋ० ३ । ३८ । १) ।
ऐ० ६ । २० ॥

कश्यपः कश्यपो वै कूर्मः । श० ७ । ५ । १ । ५ ॥

कामधेनुः ‘ विश्वरूपी ’ ‘ शबली ’ ‘ विराट् ’ इत्येताञ्छ्वान् पश्यत ।

कुन्तापम् विश्वशक्तिर्वा अन्तरुदरे कुन्तापान्युदरमेकविंशम् । श०
१२ । २ । ४ । १२ ॥

कुन्तापसूक्तानि (अथर्ववेदे २० । १२७-१३६) अथैतत्कुन्तापं यथाञ्छ
न्दसं शंसति सर्वेषामेव कामानामाप्यै नाराशंसीः
(अथर्व० २० । १२७ । १-३) रैभीः (अथर्व० २० । १२७ । ११-१४)
४-६ ॥ कारव्याः (अथर्व० २० । १२७ । ११-१४)
इन्द्राग्न्याः (अथर्व० २० । १२८ । २-१६) भूतेष्वः

(अथर्व० २०।१३५।११-१३॥) पारिक्षितीः (अथर्व०
२०।१२७।७-१०॥) एतशप्रलापम् (अथर्व० २०।
१२९॥) इति । कौ० १०।५॥

क्षत्रियः स (क्षत्रियः) ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणतामभ्युपैति । ऐ० ७।
२३॥

क्षेमः यदास्ते । स क्षेमः । तै० ३।३।३।३॥

गर्भः प्रादेशमात्रो वै गर्भो विष्णुः । श० ७।५।१।१४॥

गिरिः गिरिर्वाऽअद्रिः (यजु० १३।४२) । श० ७।५।२।१८॥

„ गिरिबुध्ना उ वा आपः । श० ७।५।२।१८॥

जाया (तैत्तिरीयसंहितायाम् ६।६।४।३ः—यदेकस्मिन्यूपे द्वे
रशने परिव्ययति तस्मादेको द्वे जाये विन्दते यन्नैकांशं
रशनां द्वयोर्यूपयोः परिव्ययति तस्मान्नैका द्वौ पती विन्दते ॥
काठकसंहितायाम्:—२९।८ः—द्वे द्वे रशने यूपमुच्छ्रित-
स्तस्मात्त्रियः पुंसो ऽतिरिक्तास्तस्मादुतैको बह्वीर्जाया वि-
न्दते नैका बहून्पतीन् ॥ मैत्रायणीसंहितायाम् ४।७।९ः-
तस्मात्त्रियः पुंशो ऽतिरिच्यन्ते ऽथ द्व एकस्य रशने द्वे
एकस्य तस्मात्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांशसम् ॥)

तृतीया चितिः अन्तरिक्षं वै तृतीया चितिः । श० ८।४।१।१॥

त्रिष्टुप् (उन्दः) वज्रो वै त्रिष्टुप् । श० ७।४।२।२४॥

„ वीर्यं त्रिष्टुप् । श० ७।४।२।२४॥

अम्बिकाः (पुरोडाशाः) “अम्बिका” शब्दं पश्यत ॥)

देवयजनी इयं वै पृथिवी देवी देवयजनी । श० ३।२।२।२०॥

देवी इयं वै पृथिवी देवी देवयजनी । श० ३।२।२।२०॥

द्यौः (प्रजापतिः) जीमूतैश्च नक्षत्रैश्च दिवम् (अहंहत्) । श० ११।
८।१।२॥

पर्वतः स (प्रजापतिः) एभिश्चैव पर्वतैर्नदीभिश्चेमाम् (पृथिवीम्)
अहं हत् । श० ११।८।१।२॥

(प्रजापतेर्वा एतज्जयेष्टं लोकं यत्पर्वतास्ते पक्षिण आस-
ंश्चस्ते परापातमासत यत्र यत्राकामयन्ताथ क इयं (पृथिवी)
तर्हि शिथिरासीत्पामिन्द्रः पक्षानखिनसैरिमाम् (पृथिवीम्)

(६५९)

[बहिर्णिघनम्

अदृश्वत्—मैत्रायणीसंहितायाम् १ । १० । १३ ॥ अयमेव
भावः—काठकसंहितायाम् ३६ । ७ ॥

पृथिवी स (प्रजापतिः) एभिश्चैव पर्वतैर्नदीभिश्चेमाम् (पृथिवीम्)
अदृश्वत् (यः पृथिवीं व्यथमानामदृश्वत्—ऋ० २ । १२ ।
२ ॥)

„ पर्वतशब्दमपि पश्यत ॥

बहिर्णिघनम् (देवाः) अमुं (द्युलोकं) बहिर्णिघनेन (अभ्यजयन्) ।
तां० १० । १२ । ३ ॥
